प्रमुख देशों का आर्थिक विकास

डा० श्यामलाल माडावत
एम० ए० पी० एच० डी०
अर्थशास्त्र विभाग राजकीय महाविद्यालय
भीलवाड़ा (राजस्थान)।

मीनाक्षी प्रकाशन
मेरठ नयी दिल्ली

प्रमुख देशों का आर्थिक विकास



ब्रिटेन का आर्थिक विकास

पहला अध्याय

कृषि व्यवस्था व कृषि क्रान्ति

(AGRICULTURE SYSTEM AND AGRICULTURAL REVOLUTION)

आधुनिक युग के आरम्भ होने तक इंग्लैण्ड एक कृषि प्रधान आर्थिक व्यवस्था का ही देश था। ब्रिटिश कृषि विकास का इतिहास तीन महान् अवस्थाओं[1] से गुजरता है पहली, दासता की अवस्था जो रोमन साम्राज्य के काल से सम्बद्ध है तथा जिसकी मुख्य विशेषताएँ—ग्रामीण अर्थव्यवस्था का होना, भूमि पर कुछ बड़े व सम्पन्न भू स्वामियों का स्वामित्व होना व खेती का सारा काम दासों द्वारा किया जाना—रही थी। दूसरी, मेनोरियल (जमीदारी) अवस्था जिसमे मध्य युग का अधिकाश समय शामिल किया जाता है तथा जिसकी मुख्य विशेषता खेतीहर ढाँचे में अर्द्ध सामन्तीपन पाया जाना था। इस अवस्था मे भू-स्वामित्व तो कुछ बड़े जागीरदारों या जमीदारों (लॉर्ड्स) के हाथ में था किन्तु भूमि जोतने का काम जो लोग करते थे वे न तो पूरी तरह दास थे और न ही पूरी तरह से स्वतन्त्र। उनकी स्थिति दासता व स्वतन्त्रता के बीच की थी। तीसरी, अनुबन्ध अवस्था जो कृषि म आधुनिक युग का सूत्रपात करती है तथा जिसके अन्तर्गत न केवल भू-स्वामियों की सख्या अत्यधिक देखने को मिलती है बल्कि सम्पूर्ण कृषिगत ढाँचा ऐच्छिक अनुबन्ध प्रणाली पर टिका हुआ दिखलाई पड़ता है। इंग्लैण्ड की कृषि म आज जो भी आधुनिक तरीके देखने में आते हैं तथा वहाँ व यूरोप के अन्य देशों मे खेतीहर जनसख्या की जो भी स्थिति है वह सब कृषि विकास के इतिहास मे दूसरे काल से तीसरे काल तक पहुँचने के बीच हुए प्रयत्नों का ही परिणाम है। अर्थात् ब्रिटिश कृषि के इतिहास मे मेनोरियल पद्धति का विशृखलित होना, उसका टूट जाना, सर्वाधिक महत्त्व की घटना रही है तथा उसी से आधुनिक कृषि के विकास का चरण प्रारम्भ हुआ है।

मेनोरियल पद्धति

इतिहासकार इस बारे मे बिल्कुल भी एकमत नहीं हैं कि मेनर (Manor) या जमींदारी प्रथा का उदगम स्रोत कहाँ है। एक विचारधारा के अनुसार मेनोरियल पद्धति रोमन साम्राज्य की वह विरासत थी जिसे उसने मध्य युग को सौंपा था। दूसरी विचारधारा के अनुसार मेनर प्रथा का जन्म ट्यूटॉनिक काल मे हुआ था। इस प्रथा के उदगम के बारे में आधुनिक मत यह है कि मेनोरियल प्रणाली का विकास

[1] Ogg and Sharp, *Economic Development of Modern Europe*, 1959, 17–39

इग्लैण्ड मे स्वतन्त्र रूप से हुआ। साथ ही आधुनिक मत के अनुसार, मेनोरियल पद्धति का उद्गम चाहे किसी भी तरह या किसी भी देश मे हुआ हो, इतना निश्चित है कि यह प्रणाली अलग-अलग नामो के अन्तर्गत न केवल इग्लैण्ड मे पनपी बल्कि इसका विकास फ्रास, रूस, जापान व भारत जैसे एक दूसरे से असम्बद्ध देशो मे भी हुआ। इस तरह एक बात स्पष्ट है कि जमीदारी प्रथा का उद्भव ससार के सभी प्रमुख देशो की आर्थिक प्रगति के इतिहास मे एक अनिवार्य चरण के रूप मे मौजूद रहा है।

मेनर या जागीर, एक ऐसी सस्था जो मध्य युग मे खूब फली-फूली, ऐसी भू-सम्पत्ति थी जिसका स्वामित्व लॉर्ड का होता था तथा जिस पर आश्रित किसानो का एक समुदाय रहता था। उस भूमि पर लॉर्ड अपना स्वामित्व या तो उस भूमि को सामन्ती भेंट के रूप म प्राप्त करने से स्थापित करता था या वह उस खरीदता था। कई बार लॉर्ड उस भूमि पर अपना स्वामित्व उसे जबर्दस्ती हथिया कर या फिर किसी और तरीके से कब्जा जमा कर भी स्थापित कर लेता था। लॉर्ड की जमीन पर जो आसामी (tenants) होते थे वे या तो अपने पूर्वजो की जमीन पर रह रहे लोग होन थे या फिर उस जमीन पर आबाद होने वाले व्यक्ति होते थे जिस पर लॉर्ड का आधिपत्य होता था। लॉर्ड के स्वामित्व के अन्तर्गत आने वाली इस भूमि पर आबाद होने वाले आसामियो मे वे लोग भी शामिल होन थे जो स्थायी रूप से लॉर्ड के कर्जदार बन चुके थे या जो लोग बसने के लिए लॉर्ड की कृपा व सुरक्षा की आकाक्षा रखते थे। इग्लैण्ड मे सारे मध्य युग मे लगभग सम्पूर्ण भूमि किसी न किसी मेनर अर्थात् जागीर के अन्तर्गत आती थी। बारहवी व तेरहवी शताब्दी मे इग्लैण्ड मे आधुनिक व्यापार व शहरी जीवन के विकास के पहले देश की लगभग सारी आबादी मेनोरियल थी।

जार्ज डब्लू० साउथगेट[1] के अनुसार, एक मेनर एक बडी भू सम्पत्ति से बनता था जिसमे आमतौर पर एक पूरा का पूरा गाँव व उसके आस पास की जमीन शामिल होती थी। इस भू सम्पत्ति के चौतरफा एक कामचलाऊ बाडा लगा दिया जाता था जिससे मेनर की हद का भी पता चलता था और उसके भीतर की जमीन की सुरक्षा भी होती थी। प्रत्येक मेनर म एक लॉर्ड हुआ करता था यद्यपि यह कहना सही नहीं होगा कि लॉर्ड ही पूरे के पूरे मेनर का मालिक होता था। निरपेक्ष स्वामित्व तो केवल सम्राट का था और मेनर का लॉर्ड अर्थात् जागीर का स्वामी सम्राट का प्रतिनिधि या 'आसामी' माना जाता था। लेकिन एक लॉर्ड, जो मेनर का सर्वेसर्वा होता था, उसके मेनर (जागीर) से कानूनन तब तक नहीं हटाया जा सकता था जब तक उसने देश द्रोह का ही कोई काम न किया हो। इस तरह अपने अपने मेनर पर लार्ड का अधिकार काफी सुरक्षित था।

मेनोरियल पद्धति की विशेषताएँ

देश के एक बहुत बडे भाग मे मेनोरियल सगठन से काफी समानता पायी

[1] G W Southgate, *English Economic History*, 1958, 1-17

जाती थी। मेनर या जागीर की मुख्य विशेषताएँ निम्न थी—

(1) सुसम्बद्ध मकान—जागीर के अन्तर्गत आने वाले मकानो से एक सुसम्बद्ध गाँव का आभास होता था। गाँव की सबसे महत्त्वपूर्ण व विशाल इमारत मेनर भवन ही होता था जिसमे लॉर्ड रहा करता था। आम लोगो के मकान कच्चे व फूस की छतो के बने होते थे जिनमे साधारणत एक कमरा होता था। गाँव के पास ही झरने पर कोई पानी का मिल या पहाडी पर पवन चक्की होती थी।

(2) खुले खेत की व्यवस्था—मध्य युगीन कृषि की सबसे महत्त्वपूर्ण विशेषता, जो इगलैण्ड मे 19वी शताब्दी तक चलती रही, खुले खेत की व्यवस्था (open field system) थी। एक ही मेनर अर्थात् जागीर के अन्तर्गत रहने वाले विभिन्न व्यक्तियो की जमीनो को अलग-अलग करने के लिहाज से न केवल कोई बाडा नही होता था बल्कि पूरे मेनर मे, भीतर की तरफ, कोई मजबूत दीवार, जिससे जमीनें बँटी हुई दिखायी दे, नही होती थी। फसलो की रक्षा के लिए कुछ भौडी बाधाएँ इधर-उधर लगा दी जाती थी। फसलो के हेर-फेर (crop rotation) के लिए कोई भी वैज्ञानिक पद्धति नही थी। इसके स्थान पर एक तिहरी-खेत-प्रणाली (three field system) होती थी जिसमे कृषि योग्य भूमि को तीन भागो मे बाँट दिया जाता था। इनमे से दो भागो पर तो खेती की जाती थी और शेष एक भाग को हर साल परती भूमि के रूप मे छोड दिया जाता था। खुली खेती प्रणाली की एक अन्य विशेषता यह भी थी कि जमीन के टुकडे को कई पट्टियो मे विभाजित कर दिया जाता था ताकि उन पट्टियों को आसामियो को सौपा जा सके।

(3) जोते और आसामी—भूमि रखने वाले मेनर के प्रत्येक आसामी को भूमि की अनेक पट्टियाँ (strips) सौप दी जाती थी। ये पट्टियाँ अक्सर अलग-अलग खेतो मे होती थी और कई बार तो ये एक ही खेत के भिन्न-भिन्न हिस्सो मे होती थी। कुल मिलाकर एक आसामी के पास औसतन 30 एकड के लगभग भूमि होती थी। प्रत्येक मेनर मे चरागाह होते थे जो सर्दी के मौसम मे पशुओ के लिए घास पैदा करने के लिए पर्याप्त होते थे। जमीन के ऐसे टुकडो को, जो न तो खेती योग्य होते थे और न ही चरागाह के रूप मे काम आ सकते थे, 'बेकार भूमि' माना जाता था। इस बेकार भूमि को, कुछ प्रतिबन्धो के अन्तर्गत, मेनर के ही निवासी काम मे लेते थे।

(4) स्वामित्व—मेनर का स्वामी अक्सर कोई बहादुर (knight) सरदार, काउण्ट, ड्यूक या बिशप या फिर स्वय सम्राट ही हुआ करता था। कुछ अधिक प्रभावशाली या सम्पन्न स्वामियो के पास कई जागीरें (manors) होती थी जो कई क्षेत्रो मे बिखरी हुई होती थी। मेनर या जागीर फीफ (Fief) का एक भाग होते थे। भू-स्वामी से ऊपर की ओर सम्बन्धो मे सामन्तीपन था जब कि भू-स्वामी से नीचे के लोगो मे सम्बन्धो का ढाँचा मेनोरियल रीति-रिवाजो पर आधारित था। ये मेनोरियल रीति-रिवाज वैसे तो सामन्ती व्यवस्थाओ से काफी मिलते-जुलते थे किन्तु फिर भी कुछ मानो मे भिन्न थे। मध्य युग से पहले की मेनोरियल आबादी मुख्य रूप से कृषि-दासो (serfs) की थी। लेकिन ये कृषि-दास गुलाम नही थे। इनको खरीदा या बेचा

नहीं जा सकता था। ये कृषि-दास कोई चल-सम्पत्ति (chattel) या बिक्री योग्य वस्तु नहीं बल्कि व्यक्ति माने जाते थे। फिर भी कृषि-दासो को पूर्ण रूप से स्वतन्त्र व्यक्ति का दर्जा भी प्राप्त नहीं था। जब भूमि का स्वामित्व बदलता था तो जमीन के साथ कृषि-दास भी नये मालिक को मिल जाते थे। कृषि दास सम्पत्ति रखने के लिए, यहाँ तक कि शादी करने के लिए भी स्वतन्त्र नहीं थे। इसके अलावा इन कृषि-दासो को अपने स्वामी (lord) के प्रति अनेक कर्तव्यो का निर्वाह करना होता था।

(5) बडा भाग स्वामी का—मेनर या जागीर का बहुत बड़ा भाग—कई बार आधा या उससे भी अधिक—लॉर्ड के लिए आरक्षित होता था। लॉर्ड के अधीन मेनर की भूमि डिमेन (demesne) या 'कार्य-क्षेत्र' कहलाती थी। इस क्षेत्र में सिंचित भूमि के अलावा, चरागाह व जगल भी सम्मिलित होते थे। आसामियों के लिए यह एक प्रकार से अनिवार्य था कि वे डिमेन पर कृषि का काम देखें। लॉर्ड व उसका परिवार डिमेन से प्राप्त उत्पाद पर ही ऐश-आराम की जिन्दगी बसर करते थे।

(6) वस्तु-विनिमय प्रथा—मध्ययुगीन मेनर पर प्राकृतिक अर्थ-व्यवस्था प्रचलित थी। वस्तुओ के बदले वस्तुएँ विनिमय की जाती थी तथा मिल वाले, लुहार व गाँव के अन्य कारीगरो की सेवाओ के बदले उन्हे अनाज, ऊन, अण्डे व ऐसी ही अन्य वस्तुएँ दी जाती थी।

(7) कृषि-दास प्रथा—मेनर की भूमि को दो भागो मे विभाजित किया जाता था डिमेन या आन्तरिक भूमि जिस पर लॉर्ड का अधिकार रहता था तथा कृषि-दास भूमि या बाह्य भूमि जो कृषि दासो को बाँटी हुई होती थी। इन कृषि-दासो के पास अपनी भूमि के लिए कोई बँधपट्टा नहीं होता था। उस भूमि पर उनका अधिकार केवल परम्परा से था जबकि कानूनन वह भूमि लॉर्ड की मानी जाती थी। लॉर्ड उन्हे बेदखल कर सकता था। कृषि दासो की प्रत्येक चीज डिमेन का ही भाग मानी जाती थी।

(8) आत्म-निर्भरता—मेनर का काम-काज आत्म-निर्भरता के आधार पर चलता था। यह धारणा प्रचलित थी कि एक मेनर मे उन सब चीजो का उत्पादन किया जाना चाहिए जिनकी कि जरूरत पडती है और यह भी कि जो कुछ पैदा किया जाये उसका वहीं के निवासियो द्वारा उपभोग कर लिया जाना चाहिए। बाह्य व्यापार को अवाछनीय माना जाता था तथा उसे कम से कम रखने पर बल दिया जाता था। पूर्ण आत्म-निर्भरता तो खैर कभी प्राप्त नहीं हो पाती थी किन्तु हाँ एक मेनर द्वारा बहुत बडे अशो तक आत्म-निर्भरता प्राप्त कर ली जाती थी। मेनर के लोग अपने गेहूँ स्वय पीसते थे, वे अपना सूत खुद कातते थे, अपना कपडा खुद बुनते थे तथा पशुओ की खालो को नम चमडे मे बदल कर अपने जूते भी खुद बनाते थे। किन्तु रेशम, सुईयाँ, कीलियाँ तथा नमक आदि जैसी चीजो के लिए उन्हें अन्य लोगो पर आश्रित रहना पडता था। इस तरह पूर्ण आत्म-निर्भरता तो मेनर या एक जागीर के लिए अप्राप्य लक्ष्य ही बना रहता था किन्तु बाहरी जगत के साथ कम से कम व्यापार को अच्छे प्रबन्ध की निशानी माना जाता था।

(9) आजाद और गुलाम—एक मेनर की आबादी को स्वतन्त्र और बन्धन

युक्त लोगों की दो श्रेणियो मे वर्गीकृत किया जा सकता है। मुक्त लोगो मे मेनर का स्वामी अर्थात् लॉर्ड, उसका कारिन्दा (bailiff), गाँव का पादरी तथा कुछ अन्य लोग आते थे। बन्धन युक्त (unfree) लोगो मे आर्थिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण वर्ग आता था क्योंकि मेनर के लिए श्रम की पूर्ति का स्रोत वही था। यही लोग लॉर्ड के अधिकार वाली भूमि डिमेन को जोतते थे। इन बन्धन युक्त लोगो को विलइन (villeins) या कृपिदास भी कहा जाता था। इनमे दूसरी श्रेणी के लोग को बोरदार (bordars) कहा जाता था जिनकी हालत विलइन से कुछ खराब होती थी।

एक पूर्ण-विलइन (कृपिदास) के पास एक विरगेट (virgate) भूमि अर्थात् लगभग 30 एकड जमीन होनी थी जबकि अर्द्ध-विलइन के पास 15 एकड जमीन ही होती थी। बोरदार के पास तो और भी कम जमीन होनी थी—एक एकड से लेकर पाँच एकड तक। प्रत्येक विलइन को लॉर्ड की भूमि पर सप्ताह मे दो-तीन दिन तक काम करना पडता था तथा वह अपने मेनर को लॉर्ड की अनुमति के बिना नही छोड़ सकता था। लॉर्ड को विलइनस (कृपिदासो) पर कर लगाने का अधिकार तो था मगर उसे उन्हे प्राणदड देने का अधिकार नही था। बोरदार (Bordars) के पास न केवल कम भूमि होती थी बल्कि विलइन की भाँति उन्हे तो अपने हल-बैल रखने का भी अधिकार नही प्राप्त था। बोरदार लोगो को हर सोमवार लॉर्ड के लिए काम करना पडता था। इसीलिये उन्हे कभी-कभी 'सोमवारी आदमी' भी कहा जाता था। विलइनो पर लगे हुए सारे प्रतिबन्ध बोरदारो पर भी लागू होते थे। किन्तु इन कृपिदासो के लिए स्वतन्त्रता प्राप्त कर पाना सम्भव था। बहुत कम मौको पर ही लॉर्ड किसी कृपिदास को स्वतन्त्रता प्रदान करता था। अक्सर दास लोग अपनी स्वतन्त्रता का क्रय करते थे।

इग्लैण्ड के आर्थिक इतिहास पर लिखने वालो, जैसे साउथगेट ने लिखा है कि कृपि-दासो की स्थिति अत्यधिक पद दलित नही थी यद्यपि वह बहुत सन्तोषजनक होने से काफी दूर थी। उनका जीवन स्तर आज के श्रमिक वर्ग के जीवन स्तर से काफी नीचा था। लेकिन उन्हे बेकारी का कोई भय नही था। न ही बीमारी या बुढापा उनके लिये अनर्थकारी होता था। अपने कृपि-दासो का दमन करना स्वय लॉर्ड के हित मे नही होता था क्योंकि मेनर की समृद्धि सन्तुष्ट कृपि-दासो द्वारा की जाने वाली आवश्यक श्रम की पूर्ति पर ही निर्भर करती थी।

(10) **सार्वभौमिक प्रचलन**—अपने प्रचलन काल मे मेनोरियल प्रथा सार्वभौमिक थी तथा वह सारे देश मे पायी जाती थी। यहाँ तक कि मध्ययुगीन कस्बे भी विकसित मेनर ही थे। अपने सगठन व कार्यो की दृष्टि से इग्लैण्ड भर के मेनर काफी समानता लिये हुए थे। कृषि करने का मुख्य उद्देश्य बाजारो मे पूर्ति बढाना नही बल्कि जीवन-निर्वाह करना मात्र था। मेनोरियल प्रथा की सबसे प्रमुख विशेषता लॉर्ड की भूमि डिमेन (demesne) पर कृपि-दासो के श्रम द्वारा खेती किया जाना था। जब कृषि की यह व्यवस्था समाप्त हो गई तब मेनोरियल पद्धति का भी अन्त हो गया।

मेनोरियल पद्धति के हानि-लाभ

मेनोरियल पद्धति का सर्वप्रमुख लाभ तो यह था कि उसने एक बड़ी सख्या मे

लोगो मे भूमि के प्रति रुचि जागृत की तथा उस रुचि को स्थायित्व प्रदान किया। इस प्रथा ने हिंसा के उस युग मे लोगो को सुरक्षा भी प्रदान की। इसमे कृषि के विकास मे योगदान मिला तथा इस प्रथा मे सहकार व निगम का वह सिद्धान्त निहित था जिस पर मध्ययुगीन समाज आधारित था।[1]

लेकिन मेनोरियल प्रथा के कई दोष थे और वे बडे ही स्पष्ट थे—

(1) छोटे मालिको को भूमि अर्जित करने मे भारी कठिनाई होती थी तथा लॉर्ड व उसके कारिन्दे का आसामियो के साथ एकदम मनमाना व्यवहार हुआ करता था।

(2) सामूहिक तौर पर खेती करने की जो परम्परा मेनर मे प्रचलित थी उससे बुद्धिमान व उद्यमी व्यक्तियो द्वारा खेती मे नये प्रयोग करने मे बाधा पडती थी। भूमि मे किसी भी तरह का सुधार असम्भव-सा था।

(3) सीमा सम्बन्धी झगडे सामान्य थे तथा एक पट्टी से दूसरी पट्टी तक जाने में बहुत अधिक समय की बर्बादी होती थी।

(4) कृषि के तरीके एकदम आदिम थे तथा उसकी उत्पादकता भी बहुत कम थी। प्रति एकड गेहूँ का उत्पादन 1930 के उत्पादन की तुलना मे एक-चौथाई से भी कम था। फसले बहुत कम थी। बीजो की किस्म बहुत घटिया होती थी तथा कृषि-पद्धतियाँ एकदम पुरातनपन्थी थी।

(5) जनसख्या का एक बहुत बडा भाग अभावग्रस्त था, यहाँ तक कि बहुत से लोग भूखे रहते थे।

(6) ग्रामीण जीवन मे एकरसता और उत्पीडन था। मकान तग और गन्दे थे, खाना बेस्वाद होता था तथा मजदूरी बहुत कडी व थकाने वाली होती थी।

कृषिदास प्रथा का पतन

तेरहवी शताब्दी के बाद कृषिदास प्रथा का पतन होना आरम्भ हो गया। कुछ कृषिदासो को मानवीय या धार्मिक आधारो पर स्वतन्त्र कर दिया गया। अनेक कृषि-दासो को मेनर छोडकर जाने की अनुमति इस शर्त पर दे दी गई कि वे मामूली-सा व्यक्ति कर (poll-tax) चुकाते रहेगे। अधिक हिम्मत वाले कृषिदास भागकर दूर के कस्बो या जागीरो मे जा बसे। काला बुखार, श्रमिको के बारे मे इस अवधि मे बनाये गये अनेक विधेयक तथा चौदहवी शताब्दी मे हुए किसान विप्लव (peasant's rebellion) जैसे कारणो ने मिलकर कृषिदासो के स्वतन्त्र होने की गति को और भी तेज कर दिया। सोलहवी शताब्दी तक तो कृषिदास प्रथा (serfdom) का कोई व्यावहारिक अर्थ रह ही नही गया था। कृषिदास प्रथा के इग्लैण्ड मे पराभव के सम्बन्ध मे लाजवाब बात यह रही कि देश मे इस प्रथा को कभी भी कानून पास करके औपचारिक रूप से समाप्त नही किया गया और न ही इसे समाप्त करने के लिए स्थानीय इकाइयो ने कोई विधेयक पारित किये। कृषक समुदाय को मेनोरियल या जागीरदारी करो व भुगतानो से केवल इसलिए ही छूट

[1] W J Ashley, *Introduction to English Economic History and Theory*, 33-34

मिलती चली गयी कि वे पुराने पड चुके थे या किसी काम के नही रह गये थे। स्वय जमींदारो (lords) ने ही उन करो या भुगतानो की अनुपालना पर जोर देना वन्द कर दिया था। जब कृषि श्रमिको को उनकी मजदूरी के बदले नकद मिलने लगा तथा जब कृषिदासो पर लगी ढेर-सारी पावन्दियो की अनुपालना असम्भव-सी हो गयी तो कृषिदास कृषि श्रमिको के ही एक विशाल भाग का अभिन्न अग वन गये।[1]

मेनोरियल प्रथा का अन्त

चौदहवी शताब्दी के अन्त तक यह स्पष्ट हो चुका था कि मेनोरियल पद्धति की कोई उपयोगिता नही रह गयी थी तथा यह प्रथा कटक लगने लगी थी। ब्रिटिश आर्थिक इतिहास के प्रमुख लेखको साउथगेट तथा ऑग व शार्प ने तीन मुख्य तत्त्वो का उल्लेख किया है जो मेनोरियल पद्धति के अन्त के लिए उत्तरदायी कहे जा सकते है।

(1) **श्रमिको को नकद-भुगतान**—श्रमिको की सेवाओ के बदले नकद देने की प्रथा जिसे रूपान्तरण (commutation) या परिवर्तन प्रणाली के नाम से जाना जाता था तथा जो 13वी शताब्दी के बाद सामान्य बन गयी, मेनोरियल व्यवस्था के अन्त मे एक सहयोगी कारण बनी। रूपान्तरण प्रथा का आरम्भ तो भू-स्वामी तथा आसामियो के बीच लेन-देन की सुविधा के लिए हुआ था। आसामियो ने उनके हिस्से मे आने वाले वस्तु-भुगतान के दायित्वो तथा अन्य सेवा सम्बन्धी दायित्वो का निपटारा नकद राशि भू स्वामी को देकर करना शुरू कर दिया तो इस पद्धति को रूपान्तरण (commutation) का नाम दिया गया। भू-स्वामी को अपने आसामियो से जो नकद राशि इस प्रकार मिलती थी उससे वह मजदूरी देकर श्रमिको को काम पर रखने लगा जिनसे अधिक कुशल काम लेना भी सम्भव था तथा जिससे भू-स्वामी की कृषि क्रियाओ मे अधिक लोचशीलता भी आ जाती थी। दूसरी तरफ आसामियो को नकद दे देने से जब भू-स्वामी की बेगार मे छुटकारा मिल जाता था तो वे अपना ध्यान उनकी अपनी जमीन, पशुओ या मुर्गीपालन पर केन्द्रित कर सकत थे।

इस तरह रूपान्तरण की प्रथा 13वी सदी के बाद धीरे-धीरे किन्तु नियमित रूप से प्रगति करती गयी। इस प्रथा को एक स्वतन्त्र श्रमिक वर्ग के उदय तथा नकद मुद्रा के प्रचलन मे तीव्रता से और भी प्रोत्साहन मिला। किसान की स्थिति लगभग आज लगान देने वाले व्यक्ति जैसी हो गयी। ये रूपान्तरित भुगतान (commuted payments), जो एक बार निश्चित कर दिये जाते थे, एक पवित्र अनुबन्ध का रूप ले लेते थे तथा उन्हे लगभग नही के बराबर बदला जाता था। धीरे-धीरे मुद्रा की क्रय शक्ति घटने के साथ ये अनुबन्ध किसानो के लिए लाभ का सौदा बन गये। अन्त मे, यद्यपि इसके पीछे कोई सुनिश्चित योजना नही थी, मेनोरियल सम्बन्धो मे ह्रास आता चला गया तथा वे मृतप्राय हो गये व कृषिदास (serfs) मुक्त आसामी (free tenants) बन गये।

(2) **डिमेन (Demesne) खेती का परित्याग**—लॉर्ड की व्यक्तिगत भूमि

[1] Cheyney, *Industrial and Social History*, 1920, 113

डिमेन से विमुख होते चले जाने, बड़ी जोतों का विकास होने तथा सहवर्ती जमीनों की बाड़ाबन्दी (enclosure) जैसी प्रवृत्तियों ने भी मिलकर उस दूसरे तत्त्व को जन्म दिया जो इग्लैण्ड में मेनोरियल पद्धति के बिखराव का कारण बना। जब मेनोरियल प्रणाली अपने चरमोत्कर्ष पर थी तब लॉर्ड की अपनी भूमि डिमेन (demesne) पर कृषि का काम प्रत्यक्ष रूप से लॉर्ड द्वारा अपने कारिन्दे (bailiff) की देख-रेख में कृषिदासों के लिए निर्धारित श्रम के सहारे करवाया जाता था। भू-स्वामी या लॉर्ड का मुनाफा उस भूमि से उत्पन्न होने वाली वस्तुएं होती थीं जिनका वह उपभोग करता था या जिनको बेचता था। तेरहवीं शताब्दी के बाद, जब सेवाओं को नकद रकम में रूपान्तरित करने की प्रथा चल निकली, तो लॉर्ड की अपनी भूमि पर मजदूरी का अधिकांश काम भाड़े के मजदूरों द्वारा किया जाने लगा।

1348–50 के वर्षों में आये काले बुखार की महामारी में इग्लैण्ड की जनसंख्या 40 लाख से घटकर सिर्फ 25 लाख रह गयी। इसके परिणामस्वरूप श्रमिकों का अभाव हो गया तथा उनकी मजदूरी में 50% की वृद्धि कर दी गयी। रूपान्तरण (commutation) की वजह से लॉर्ड को कृषिदासों के अनिवार्य श्रम या बेगार से पहले ही हाथ धोना पड़ गया था। अब मजदूरी में यकायक इतनी वृद्धि से उसके लिए भाड़े के मजदूरों को काम पर लगाना और भी अव्यावहारिक हो गया। एक शब्द में कहा जाए तो मध्ययुगीन मेनर या जागीर का श्रम संगठन टूट चुका था।[1] इस स्थिति ने भू स्वामियों को अपनी जमीन आसामियों को लीज (lease) पर देने के लिए मजबूर कर दिया। यहाँ तक कि आसामियों को आकर्षित करने के लिए भू स्वामी बीज व अन्य चीजें देने लग गये। जहां तक सम्भव होता एक भू स्वामी या लॉर्ड अपनी सारी की सारी जमीन एक ही आसामी को लीज पर देता था। कभी-कभी जमीन को कई आसामियों के बीच बाँटना जरूरी हो जाता था।

पूर्ण स्वामित्व वाले आसामियों (freeholders) जो अपनी जमीनें सम्राट से प्रत्यक्षत प्राप्त करते थे तथा आंशिक स्वामित्व वाले आसामियों (copyholders), जिन्हें अपनी जमीन पर तब तक बने रहने का अधिकार था जब तक वे लगान (quitrent) देते रहें, की तुलना में डिमेन पर काम करने वाले आसामी, जो लीज-धारी (leaseholders) कहलाते थे, जमीन को लॉर्ड से कुछ निश्चित शर्तों पर पूर्व निर्धारित अवधि के लिए प्राप्त करते थे। आरम्भ में ये लीजधारी आसामी (अर्थात् सत्रहवीं शताब्दी तक) अपने लगान वस्तुओं के रूप में अदा किया करते थे किन्तु बहुत जल्द ही उन्होंने भी अपने लगान को मुद्रा में रूपान्तरित करवा लिया। इस तरह भू-स्वामी पूरी तरह से आधुनिक किस्म वाला लॉर्ड बन गया जो अपने लीज-धारियों द्वारा अदा किये जाने वाले मौद्रिक लगान से अपना काम चलाता था। यही लीजधारी आसामी, जो अपना लगान मुद्रा के रूप में अदा करते थे, बाद में स्वतन्त्र लगान देने वाले किसानों के रूप (free renting farmers) में सामने आये।

मेनोरियल पद्धति के कमजोर पड़ते जाने तथा डिमेन खेती (लॉर्ड की भूमि

[1] R H Tawney, *The Agrarian Problem in the Sixteenth Century*, 1912, Part I, (full description of the process)

पर दासों द्वारा कृषि) की प्रथा के परित्याग का एक प्रभाव यह भी हुआ कि कृषि जोतो के आकार मे असमानता अत्यधिक बढ गई। महनती और अपनी कमाई बचाकर चलने वाले आसामियों को भू-स्वामी लोग अपनी अधिक से अधिक जमीन लीज पर देते चले गये जिससे उनकी जोतो का आकार अत्यधिक बडा बन गया। भू-स्वामियों को तो सिर्फ अपने लगान से मतलब था। भूमि का इस रूप में कुछ ही व्यक्तियों के हाथों मे केन्द्रीकरण हो जाने से उस पूंजीवादी कृषि की नीव पडी जो इंग्लैण्ड मे सत्रहवी व अट्ठारहवी शताब्दी मे उभरी।

(3) **भेड-फार्मिंग के लिए बाडाबन्दी**—भेड प्रजनन के लिए बाडाबन्दी की जो प्रथा चल निकली थी तथा जिसमे खेती योग्य जमीन को चरागाहो मे बदलने की आवश्यकता पडती थी, ने भी मेनोरियल प्रणाली के टूटने मे अपना योगदान दिया। यह प्रक्रिया भी तेरहवी शताब्दी मे ही आरम्भ हुई। फ्लैंडर्स के औद्योगिक केन्द्रो मे ऊन की बढती हुई माग ने भेड प्रजनन को एक बहुत मुनाफे वाला व्यवसाय बना दिया था। एक डिमेन के अन्तर्गत जितनी भूमि आती थी वह भेड प्रजनन (sheep farming) के लिए पर्याप्त नही होती थी। भेड प्रजनन फार्मों के आकार को बढाने के लिए कुछ भू-स्वामियो (lords) ने अपनी भूमि डिमेन के साथ सामान्य चरागाह तथा बेकार पडी भूमि व जगलात वाली भूमि की भी बाडाबन्दी कर दी। ग्राम-वासियो के अधिकारो पर यह एक गम्भीर अतिक्रमण था क्योकि इसके कारण उनको चरागाहो के उपयोग से वंचित होना पडा। सिंचित भूमि की छोटी-छोटी व बिखरी हुई पट्टियो (जिन पर पहले कई आसामी खेती करते थे) का पुनर्गठन हो जाने से अनेक आसामियो को पूर्ण अथवा आशिक रूप से बेदखल करना पडा। इस तरह भूमि से बेदखल किये गये आसामियो की सख्या भी काफी थी। एक बार भूमि से बेदखल कर दिये जाने के बाद ये आसामी भूमिहीन कृषि मजदूर बन गये या आवारागर्दी करने लगे।

तेरहवी शताब्दी के कानूनो ने भू-स्वामियो द्वारा चरागाह, बेकार पडी भूमि तथा यहाँ तक कि कृषि-योग्य भूमि की भेड प्रजनन के लिए बाडाबन्दी को वैध माना। आसामियों का निर्वासन या उनकी बेदखली इतनी सामान्य व अन्धाधुन्ध हो गयी थी कि अपने एक प्रार्थना प्रवचन मे 1549 में बिशप लेटिमर ने उनकी इस व्यथा-कथा को अभिव्यक्त करते हुए कहा कि 'जहाँ पहले हमे कई मकान और लोग-बाग खडे दिखाई देते थे वहाँ अब एक गडरिया और उसका कुत्ता खडे मिलते है।' इस तरह मेनर या जागीरें भेड प्रजनन फार्म बन गय जिन पर केवल भू स्वामियो का कब्जा था तथा जिनकी देखभाल के लिए कुछ गडरिये रख लिये गये थे।

(4) **अन्य तत्व**—इन उपर्युक्त तीन तत्वो के अलावा, जो कि मेनोरियल प्रथा के पतन के लिए उत्तरदायी थे, इंग्लैण्ड की बढती हुई जनसख्या ने भी इस पद्धति को दिनातीत अर्थात् पुराना बना दिया क्योकि मेनोरियल प्रणाली कम जनसख्या के लिए अधिक उपयुक्त थी। कृषि मे विविधता तथा कानून और व्यवस्था की स्थिति मे निरन्तर सुधारो ने भी मेनोरियल प्रणाली की उपयोगिता समाप्त कर दी। कृषिदासो की स्वतन्त्रता की तरफ प्रगति से मेनोरियल अदालतो (Manorial

courts) का भी पतन हो गया जो पहले जुर्मानो आदि से लॉर्ड के लिए काफी मुद्रा जुटाती थी।

इस तरह पन्द्रहवी शताब्दी के अन्त तक मध्ययुगीन मेनोरियल प्रणाली की पूर्ण रूप से समाप्ति हो चुकी थी।

सोलहवी व सत्रहवी शताब्दी की कृषि क्रान्ति

अपने मध्ययुगीन स्वरूप से आधुनिक स्वरूप मे आने तक ब्रिटिश कृषि का रूपान्तरण होने मे जितने बडे पैमाने पर परिवर्तन हुए हैं उन्हे देखते हुए इसे 'कृषि क्रान्ति' का नाम एकदम सही दिया गया है। सोलहवी तथा सत्रहवी शताब्दी में इगलैण्ड मे घटित होने वाली इस कृषि क्रान्ति की मुख्य विशेषताएँ निम्न थी—

(1) बाडाबन्दी आन्दोलन (enclosure movement) जिससे विशाल भेड विकास फार्मो (sheep raising farms) की स्थापना हुई तथा जिनसे मेनोरियल प्रणाली का अन्तिम रूप से विघटन हुआ।

(2) समुदाय भावना का ह्रास तथा उसके स्थान पर व्यक्तिवाद की भावना का विकास भी वह तत्त्व था जिसने श्रेणियो (gilds) तथा जागीरो (manors) के पतन को और भी तेज कर दिया। स्वहित के दावे अधिक महत्त्वपूर्ण बन गये तथा मध्य युग म प्रचलित मिल जुलकर काम करने की भावना के स्थान पर प्रतिस्पर्द्धा की भावना अधिक जोर पकडती चली गई। परम्पराओ का स्थान शुद्ध व कोरी व्यावसायिकता ने ले लिया।

(3) 'मुनाफे के लिए खेती' कृषि का मूलमन्त्र बन गया। ऐसा सोलहवी शताब्दी से हुआ। इस शताब्दी से पहले कृषि का मुख्य उद्देश्य जीवन निर्वाह (subsistence) करना मात्र था।

(4) इस अवधि मे भूमि के पुनर्गठन (consolidation of land) के कारण रोजगार में कुछ कमी आयी होगी तथा कुछ छोटे किसानो की बेदखली भी हुई होगी किन्तु कुल मिलाकर इस प्रवृत्ति से कृषि अधिक लाभकारी व्यवसाय बन गयी।

(5) चरागाह खेती (pasture farming) न केवल बडे भू-स्वामियो के बीच अधिक लोकप्रिय हुई बल्कि वह उन लीजधारियो (leaseholders) मे भी लोकप्रिय हो गयी जिन्होने लीज पर बडी मात्रा मे भूमि ले रखी थी। बडे लीजधारियो ने यह महसूस कर लिया कि भेडो के फार्म स्थापित करना फसलें उगाने से कही अधिक लाभप्रद है।

(6) उन ग्रामीण प्रदेशो से जनसख्या का ह्रास अधिक तीव्र हो गया जहाँ भेड पालन तेजी से किया जाने लगा था। अधिकाश लोगो को अपने-अपने मेनर छोड़ने के लिए बाध्य होना पडा क्योकि अब उन्हे भेड पालन के उद्देश्य से चरागाहो मे रूपान्तरित कर दिया गया था।

(7) भू-स्वामियो द्वारा सोलहवी शताब्दी मे बहुत ऊँचे लगानो की माँग की जाने लगी तथा इस अवधि मे उनका यह लालच बढता ही गया। इन वर्षों मे मूल्यो के चढने के कारण भी लगानो मे और वृद्धि हुई।

(8) आवारागर्दी काफी आम बात हो गयी क्योंकि जो लोग मेनर छोड-छोडकर जाने के लिए बाध्य हो गये थे उन्हे तुरन्त काम नही मिला और वे रोटी तक मांगकर खाने के लिए मजबूर हो गये। कगाली (pauperism) एक गम्भीर समस्या बन गयी तथा राज्य को बाध्य होकर इस समस्या का मुकाबला करने के लिए एक सुनिश्चित नीति तैयार करनी पडी।

(9) गरीबो मे बढते हुए असन्तोष की अभिव्यक्ति विप्लवों (revolts) के रूप मे हुई। कृषि-असन्तोष ने इग्लैण्ड मे 1549 मे हुए विद्रोह मे देशद्रोहियो की सख्या बढाने मे काफी सहायता की।

(10) 1487 मे इस प्रकार के विधेयक लाये गये जिनमे सिंचित भूमि का चरागाहों मे रूपान्तरण करने पर रोक लगा दी गई। इस तरह नये-नये रूपान्तरित किये गये चरागाहो को पुन सिंचित खेतों मे बदल दिया गया।

(11) धार्मिक मठो के समापन कर देने से देश की एक-तिहाई कृषि-भूमि आम लोगो के हाथो मे पहुँच गई। ये भूमि के नये स्वामित्व वाले लोग अपनी भूमि को प्राय बेचते रहते थे। ये लोग नये विचारो वाले लोग थे तथा इनका एकमात्र उद्देश्य कृषि से प्राप्त होने वाले लाभ को लगान की दरें चढाकर बढाते रहना था। पुरानी परम्पराओ को अस्वीकार करते हुए इन लोगो ने भेड पालन पर अधिक बल दिया व उसकी शुरुआत की।

ये सारे परिवर्तन जो ब्रिटिश कृषि मे ट्यूडर (Tudor) काल मे हुए, तत्कालीन लेखको द्वारा बढ़ा-चढाकर बताये गये। किन्तु, इन अतिशयोक्तियो के उपरान्त, ब्रिटिश कृषि के तौर तरीको, उद्देश्यो तथा सगठन के क्षेत्र मे इस अवधि मे हुए ये परिवर्तन इतने महत्वपूण अवश्य थे कि उनसे आधुनिक युग का आरम्भ होने की बात स्वीकार की जा सकती है।

ब्रिटिश कृषि की कायापलट : 1700–1850

आमतौर पर सत्रहवी शताब्दी को ब्रिटिश कृषि के इतिहास मे जडता का युग माना जाता है। लकिन चाहे इस युग मे कृषि के रूपान्तरण या कायाकल्प की गति चाहे धीमी अवश्य पड गई हो, वह एकदम रुकी नही थी। बाडाबन्दी आन्दोलन (enclosure movement) के विपरीत उठाये गये आपत्तियो—कि इससे जनसख्या उजडती है, कगाली तथा अकाल का खतरा पैदा होता है—का कोई विशेष महत्व नही रह गया था। यहाँ तक कि सत्रहवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध मे एक निश्चित मात्रा मे कृषि भूमि का पुनर्गठन तथा बाडाबन्दी भी की गई थी। बहुत सारी बेकार पडी भूमि (waste land), जिस पर अब तक कोई खेती नही की गई थी, का भी पुनर्ग्रहण किया गया तथा कृषि मे सुधार करने के उद्देश्य से वैज्ञानिक पद्धतियो को अपनाने के बारे मे भी प्रयास किये गये।

कृषि-क्रान्ति से तुरन्त पहले अर्थात् 1750 के आस-पास खुली-खेत प्रणाली (open-field system) लगभग आधे इग्लैण्ड मे मौजूद थी। इस प्रणाली मे भूमि का बहुत दुरुपयोग होता था क्योकि प्रति वर्ष तीन खेतो म से एक खेत को

बेकार छोड दिया जाता था, अर्थात् उस पर खेती नही की जाती थी। अठारहवी शताब्दी मे जनसख्या भी तेजी से बढ रही थी जिससे खाद्यान्नो की मांग बढने लगी तथा उनकी कमी पैदा होने लगी। इसका परिणाम यह हुआ कि खाद्यान्नों के मूल्य चढने लगे और यह अनिवार्य हो गया कि उनके उत्पादन मे वृद्धि की जाये। यह उत्पादन की वृद्धि पुराने तरीको मे सम्भव नही थी।

ब्रिटेन मे जनसंख्या वृद्धि

(जनसख्या लाखो में)

वर्ष	जनसख्या	वर्ष	जनसख्या
1760	108	1870	316
1780	126	1880	350
1800	157	1890	382
1810	179	1900	415
1820	210	1910	452
1830	241	1920	428
1840	269	1930	448
1850	275	1950	506
1860	291		

उपर्युक्त तालिका से यह स्पष्ट है कि इग्लैण्ड की जनसख्या 1760 से 1820 की 60 वर्षों की अवधि मे दुगुनी तथा 1860 मे 1760 की तुलना मे तिगुनी हो चुकी थी। जनसख्या के इस बढते हुए दबाव की स्थिति में एक एकड भूमि भी बेकार करना सम्भव नही रह गया था। भूमि का पुनर्गठन (consolidation) तथा बाड़ाबन्दी (enclosure) अनिवार्य बन चुके थे। 1801 मे एक सामान्य बाडाबन्दी अधिनियम (Enclosure Act) पारित किया गया। खुले खेत समाप्त हो गये तथा ग्रामीण क्षेत्रो मे खेतो के चारो ओर बाडें लगा दी गयी।

इग्लैण्ड मे कृषि-क्रान्ति होने से पहले वहाँ के ग्रामीण क्षेत्रो मे समाज तीन श्रेणियो में बँटा हुआ था—

(i) मैनोरियल लॉर्ड या जागीरदार,

(ii) पूर्ण स्वामित्व वाले किसान (Small Freeholders), तथा

(iii) श्रमिक।

उन्नीसवी शताब्दी मे इन श्रेणियो के सदृश अनुरक्षक (squire), आसामी कृषक (tenant farmers) व श्रमिक हुआ करते थे।

भूमि के पुनर्गठन तथा बाडो (enclosures) की स्थापना से कृषि मे नये प्रयोगो को प्रोत्साहन मिला। अठारहवी शताब्दी मे खेती के काम मे लिए जाने वाले पशुओ की नस्ल मे सुधार पर भी काफी ध्यान दिया गया। गो मास का उत्पादन करने के लिए बैलो की नस्ल तैयार की गई। अठारहवी शताब्दी मे इन बैलो की नस्ल मे सुधार से उनका वजन दुगुना हो गया। इसी तरह भेड-मास तथा ऊन के लिए भेडो का प्रजनन किया गया। भेडो की नस्ल-सुधार के प्रयासो से इसी अठारहवी शताब्दी मे

उनका वजन तिगुना हो गया तथा उनसे प्राप्त होने वाली ऊन के भार मे तो और भी अधिक वृद्धि हुई ।

कृषि करने के तरीको मे सुधार के प्रयासो को राजकीय आश्रय दिया गया। सम्राट जॉर्ज तृतीय ने कृषि-सुधारो मे इतनी अधिक रुचि ली कि लोग उसे स्नेहवश कृषक जॉर्ज (Farmer George) कहकर पुकारने लगे थे। जेथ्रो टुल द्वारा ड्रिल का आविष्कार किये जाने से बुआई के तरीके में महत्त्वपूर्ण सुधार हुआ। आर्थर यग तथा टॉमस कोक जैसे आधुनिकतावादी लोगो ने किसानो को नये एव आधुनिक कृषि तरीके अपनाने के लिए प्रोत्साहित किया।

लेकिन ब्रिटिश कृषि मे हुए इन परिवर्तनो से बढती हुई जनसख्या को अधिकाधिक खाद्यान्न उपलब्ध कराने की समस्या का समाधान करने मे आशिक सफलता ही मिल पाई। 1750 के बाद ब्रिटिश जनसख्या मे होने वाली वृद्धि इतनी तीव्र थी कि उन्नीसवी शताब्दी के लगते ही अनाज का आयात शुरू करना पडा। इस तथ्य के बावजूद कि बढती हुई जनसख्या के लिए अनाज का आयात अनिवार्य बन गया था, अठारहवी शताब्दी मे इग्लैण्ड मे हुई कृषि-क्रान्ति ने ब्रिटिश कृषि को यूरोप के अन्य देशो की तुलना मे सबसे आगे की कतार मे ला खडा किया। इग्लैण्ड की कृषि तत्कालीन यूरोप मे सबसे अच्छी कृषि थी तथा आने वाले कई वर्षों तक वह एक आदर्शस्वरूप बनी रही।

अठारहवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध मे तथा उन्नीसवी शताब्दी के पूर्वार्द्ध मे इग्लैण्ड मे महत्त्वपूर्ण आर्थिक व सामाजिक उतार-चढाव लाने वाली घटनाएँ घटी। इन परिवर्तनो को दो मोटी श्रेणियो के अन्तर्गत रखा जा सकता है—(1) कृषि की कायापलट, तथा (2) उद्योग मे क्रान्ति। ऐतिहासिक दृष्टि से देखने पर यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि इन दोनों ही प्रकार के परिवर्तनो मे घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। यूरोप के अलग-अलग प्रदेशो मे कृषि-क्रान्ति के भिन्न-भिन्न अर्थ लगाये गये। इग्लैण्ड मे कृषि-क्रान्ति का जो अर्थ लगाया गया उसे ऑग व शार्प[1] ने निचोड के रूप मे इस तरह अभिव्यक्त किया है भूमि पर स्वामित्व तथा नियन्त्रण का घटते हुए भू स्वामियो के हाथो मे केन्द्रीकरण, सामान्य भूमि की बाडाबन्दी (enclosure) के आन्दोलन का नवीनीकरण (जिस भूमि का उपयोग आसामी लोग अपने जीवन-निर्वाह के लिए खेती करने के आदी हो चुके थे), बडी सख्या मे आसामियो तथा छोटे भू-पतियो का श्रमिक वर्ग मे प्रवेश तथा अनेक लोगो का कृषि-व्यवसाय से पूरी तरह निष्कासन—यही इग्लैण्ड की कृषि-क्रान्ति का आशय था।

ब्रिटिश कृषि की यह कायापलट, जिसे अनेक लेखको ने कृषि-क्रान्ति का नाम दिया है, अठारहवी शताब्दी के अन्तिम वर्षो मे प्रारम्भ हुई थी तथा उन्नीसवी शताब्दी के पूर्वार्द्ध मे तो बहुत कुछ महत्त्वपूर्ण घटित हो चुका था।

ब्रिटेन म हुई क्रान्ति की व्याख्या करते समय केवल इसी तथ्य का ध्यान रखा जाना पर्याप्त नही है कि अठारहवी शताब्दी मे इग्लैण्ड मे आर्थिक दशाएँ अनुकूल थी बल्कि इस तथ्य को भी ध्यान मे रखना होगा कि यह क्रान्ति भू-स्वामियो के

[1] Ogg and Sharp, *op cit*, 114

विशेषाधिकारों के उन्मूलन के लिए नहीं की गयी थी तथा न ही इसका उद्देश्य लोगों को आर्थिक अथवा सामाजिक मुक्ति दिलाना या उन्हें अधिक राजनीतिक शक्ति प्रदान करना ही रहा था। ब्रिटेन की कृषि-क्रान्ति किसी अचानक फट जाने वाले विप्लव का परिणाम नहीं थी जैसा कि प्राय 'क्रान्ति' शब्द के साथ आभास होता है। वास्तव में वर्ग आन्दोलन नहीं था। यह तो केवल उन स्वाभाविक धीरे धीरे परिपक्व होने वाली दशाओं का प्रतिनिधत्व करती है जिनसे ब्रिटिश कृषि की कायापलट हुई थी।

ब्रिटिश आर्थिक परिवर्तनों पर लिखते हुए आर्थर बिर्नी[1] ने कहा है कि इस अवधि में कृषि करने के तरीकों में तीन मुख्य परिवर्तन हुए (1) जल-निकास (drainage) की पद्धति में सुधार, (2) कृत्रिम रासायनिक खादों की खोज, (3) कृषि मशीनों का आविष्कार। ब्रिटिश कृषि-क्रान्ति ने अपने आपको विविध रूपों में प्रस्तुत किया है किन्तु उसके मूल तत्त्व निम्न रहे हैं—

(1) **कृषि मे पूँजी का प्रयोग**—अठारहवीं शताब्दी में इंग्लैण्ड में पूँजीवाद का विकास एक आधारभूत आर्थिक तथ्य रहा है। पूँजीवाद के अभ्युदय ने न केवल वहाँ के उद्योग और व्यापार को प्रभावित किया अपितु उसने कृषि पर भी अत्यधिक प्रभाव डाला। ब्रिटेन के भू स्वामियों ने मिट्टी की किस्म सुधारने, नई फसलें उगाने के प्रयोग करने तथा कृषि करने के तरीकों में सुधार लाने के उद्देश्य से पूँजी का व्यापक उपयोग आरम्भ कर दिया। अधिक सम्पन्न भू स्वामियों ने अपनी पूँजी का एक बड़ा भाग अतिरिक्त भूमि खरीदने, मशीनें तथा खाद का क्रय करने व कृषि करने के नये व महँगे तरीकों को अपनाने के लिए अलग रख दिया। कृषि में इस पूँजी-निवेश का मुख्य मन्तव्य यह था कि कृषि से प्रतिफल की एक निश्चित दर प्राप्त की जा सके—एक ऐसा विचार जिसने उस पुरानी धारणा को एकदम उलट दिया जिसके अनुसार कृषि केवल जीवन-निर्वाह के लिए थी। यहाँ तक कि छोटे किसानों ने भी अपने आप ही कृषि में पूँजी लगाना आरम्भ कर दिया। इससे कृषि में विज्ञान तथा अनुभव से तैयार की गई प्रक्रियाओं का उपयोग काफी बढ़ गया। साथ ही इसके कारण मनुष्य के स्थान पर मशीनों का प्रयोग आरम्भ हुआ। यह प्रवृत्ति निम्न तालिका से पूरी तरह स्पष्ट होती है—

कृषि जनसंख्या मे कमी

वर्ष	कृषि में कुल जनसंख्या का प्रतिशत
1811	34
1821	32
1831	28
1841	22
1851	16
1861	10

[1] A Birnie *An Economic History of Europe 1760–1930*, 1953, 13

कृषि पर आश्रित जनसंख्या के प्रतिशत मे आयी इस गिरावट से यह स्पष्ट हो जाता है कि उन्नीसवी शताब्दी मे मशीनो का उपयोग बढने से कृषि मजदूरो की माँग मे निरन्तर कमी आती चली गई। पूँजी-प्रधान कृषि की शुरुआत हो जाने से बडे पैमाने की प्रतिस्पर्द्धा भी आरम्भ हो गई जिसने छोटे भू-स्वामियो को निकाल बाहर किया तथा भूमि की बडी जोतो मे केन्द्रीकरण होने की प्रवृत्ति को बढावा दिया।

(2) **यन्त्रीकरण तथा उन्नत तकनीक का उपयोग**—अठारहवी तथा उन्नीसवी शताब्दी मे घटित शान्त ब्रिटिश कृषि-क्रान्ति का दूसरा महत्वपूर्ण पहलू मशीनो के बढते हुए उपयोग के कारण कृषि-तकनीक मे होने वाले सुधार थे। कृषि करने की तकनीक मे इन सुधारो का उद्देश्य कृषि-उत्पादन को अधिकतम करना तथा उसकी लागत को न्यूनतम करना था। ब्रिटिश किसानो तथा सुधारको ने नई तकनीको का प्रयोग तथा जाँच करने मे अगुवाई की। टाउनशेंड[1] ने इग्लैण्ड मे शीतकालीन भूमि के नीचे उगने वाली फसलो को लोकप्रिय बनाया तथा उसने एक नई चार-चक्रीय (Four course Rotation) पद्धति का विकास किया जिसमे परती (fallow) भूमि पर चुकन्दर तथा तिपतियाँ फसलें उगायी जाने लगी। रॉबर्ट बेकवेल ने पशु-नस्ल सुधार का वैज्ञानिक तरीका खोज निकाला जिससे उसने थोडे ही समय मे भेडो व अन्य जानवरो का वजन दुगुना करने मे सफलता प्राप्त कर ली। स्काटलैण्ड के एक किसान डीवस्टन ने पकाई हुई मिट्टी की सिलिण्डर के आकार की ईंटो द्वारा जल-निकास की एक नई पद्धति का आविष्कार किया।

कृषि मे मशीनो के प्रयोग मे एक यन्त्रीकृत फसल बाँधने वाली मशीन (Mechanical String Binder) के आविष्कार से एक नया अध्याय जुडा। यह मशीन न केवल अनाज की खडी फसल को काटने का काम करती थी बल्कि स्वचालित रूप मे उसकी पूलियाँ बाँध देती थी। प्राकृतिक व रासायनिक खाद के उपयोग मे भी वृद्धि हुई तथा मिट्टी की किस्म को बदल कर उसे गेहूँ की खेती के लायक बनाने की प्रथा भी सामान्य बन गई। मशीन निर्माण के कारण श्रम की बचत की नई विधियाँ खोजी गयी इनमे घोडे से चलने वाली गाहने की मशीन (Threshing Machine) सबसे प्रमुख थी। अनेक किसान गोष्ठियाँ तथा पशु-मेले आयोजित किये जाने लगे। लेबेग तथा अन्य शोधकर्ताओ की रासायनिक खोजो से, जो 1840–49 के वर्षो मे हुई, वैज्ञानिक सिद्धान्तो के व्यावहारिक उपयोग को बढावा मिला।

(3) **बाडाबन्दी (Enclosures) का पुनर्जीवन**—कृषि के क्षेत्र मे पूंजी तथा मशीनो के बढते हुए उपयोग ने उन अनेक छोटे भू-स्वामियो पर विपरीत प्रभाव डाला जो बडे भू-स्वामियो के साथ कदम से कदम मिलाकर चलने मे समर्थ नही थे। उधर निर्माण-उद्योग (manufacturing) के विकसित होते चले जाने के कारण छोटे किसानो को कुटीर उद्योगो आदि से प्राप्त होने वाली सहायक आय भी मिलनी बन्द हो गई। बाडाबन्दी-प्रथा का फिर से पुनर्जीवित किया जाना तो उनके लिए अन्तिम चोट थी। सामान्य भूमि की बाडाबन्दी को फिर से अस्तित्व मे लाने का कारण यह था कि खाद्य वस्तुओ के बढते हुए मूल्यो के कारण कृषि-योग्य भूमि से मिलने वाला

[1] *Ibid*, 15

लाभ बढ़ता जा रहा था। इस बार बाड़ाबन्दी कृषित-भूमि की हुई और उसे अनाज के उत्पादन में प्रयुक्त किया गया। एडम स्मिथ जैसे जाने-माने अर्थशास्त्रियों ने भी बाड़ाबन्दी प्रणाली (enclosure system) का समर्थन किया और इस तथ्य की तरफ ध्यान आकर्षित किया कि उप-विभाजित तथा खुले खेत वाली प्रणाली से भूमि का दुरुपयोग होता था। एडम स्मिथ ने यह स्पष्ट कर दिया कि ब्रिटिश कृषि का भविष्य बड़े आकार के खेतों में ही निहित है तथा उसमें भारी पूँजी विनियोग की आवश्यकता है। 1836 में पारित किये गये एक विधेयक से इस बात को सम्भव बना दिया गया कि यदि दो-तिहाई लोगों की सहमति हो तो कुछ विशेष प्रकार की सामूहिक भूमि (common lands) की, बिना ससद की पूर्वानुमति के, बाड़ाबन्दी की जा सकती थी। बाड़ाबन्दी आन्दोलन 1800–1819 की अवधि में चरमोत्कर्ष पर पहुँच गया था जब इंग्लैण्ड में 30 लाख एकड़ से भी अधिक भूमि की बाड़ाबन्दी की गई थी।

इंग्लैण्ड में भूमि की बाड़ाबन्दी (Enclosure)

वर्ष	बाड़ाबन्दी (लाख एकड़ों में)
1700–1759	3 4
1760–1769	7 0
1770–1779	12 0
1780–1789	4 5
1790–1799	8 6
1800–1809	15 5
1810–1819	15 6
1820–1829	3 8
1830–1839	2 5
1840–1849	3 5

औसत लघु कृषक पर बाड़ाबन्दी के विपरीत प्रभाव पड़े। 1801 में आर्थर यंग ने लिखा था कि 'इन बाड़ाबन्दियों से गरीब लोगों को चोट लगी थी और कुछ को तो गम्भीर चोट लगी थी।' नकद के रूप में जो मुआवजा दिया गया था वह अपर्याप्त था तथा बाड़ाबन्दी के विरुद्ध लोगों का विरोध काफी हिंसक रूप लेने लगा। किन्तु इस विरोध का कोई परिणाम नहीं निकला क्योंकि पूँजीगत एवं वैज्ञानिक तरीकों के बढ़ते हुए प्रयोग तथा जनसंख्या में हो रही निरन्तर वृद्धि ने बड़े खेतों को एक प्रकार से अनिवार्य बना दिया था। ऐसी स्थिति में छोटे किसान शहरों की तरफ चल पड़े जहाँ वे समय के साथ फैक्ट्रियों में काम करने वाले मजदूर बन गये। उनमें से कई संयुक्त राज्य अमरीका चले गये। इस प्रकार छोटे किसानों के वर्ग का पतन हुआ तथा कृषि-क्रान्ति के फलस्वरूप वे पूरी तरह समाप्त हो गये।

(4) भूमि का बड़ी जोतों के रूप में पुनर्गठन—कृषि-क्रान्ति के फलस्वरूप उत्पन्न हुई नई परिस्थितियों में भू-स्वामियों में अधिकाधिक केन्द्रीकरण की प्रवृत्ति स्पष्ट होती चली गई। औद्योगिक पूँजीपतियों ने भी भूमि के बड़े-बड़े टुकड़े खरीद

लिये जिनसे भूमि के पुनर्गठन की प्रक्रिया में और भी तेजी आ गई। छोटे भू-स्वामी (small freeholders) अपनी जमीनो से पिंड छुडाकर खुश ही होते थे। कृषि विपत्ति के युग मे तथा उसके बाद 1815 के शान्ति युग मे छोटे किसानो द्वारा बेची जाने वाली जमीनो की सख्या अपनी चरम सीमा पर पहुँच गई। 1845 तक केन्द्रीकरण की यह प्रक्रिया अपनी सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण अवस्थाओ से गुजर चुकी कही जा सकती है।[1]

एक प्रसिद्ध ब्रिटिश लेखक कनिघम ने लिखा है कि 'कृषि सुधारो मे होने वाली प्रगति ने ग्रामीण समाज मे गहरी दरारें पैदा कर अपना निशान छोडा। छोटा किसान, जिसे इस सघर्ष मे घुटने टेक देने पडे और भी दया का पात्र था क्योकि औद्योगिक श्रमिको की जिस श्रेणी मे वह जा मिला था वह तो स्वय ही घोर कष्ट अधोगति के युग मे प्रवेश कर रही थी।'[2]

इग्लैण्ड मे हुई कृषि-क्रान्ति के फलस्वरूप तीन स्पष्ट वर्गों का उदय हुआ : (1) भू-स्वामी वर्ग; (2) कृषक लोग जो पूँजीपति के लिए खेत की देखभाल करने मात्र का काम करते थे जिससे कि उसे लाभ देने वाली इकाई बनाया जा सके; तथा (3) खेतीहर मजदूर जो न भूमि के मालिक थे, न उसका प्रबन्ध उनके हाथ मे था और जो केवल मजदूरी के बदले मे काम करते थे।

1850 के बाद ब्रिटिश कृषि

उन्नीसवी शताब्दी का तीसरा-चतुर्थांश ब्रिटिश इतिहास का स्वर्ण-युग माना जाता है। यह समृद्धि 1874 तक चली जो अच्छी फसल का अन्तिम वर्ष था। 1875 से 1884 तक फसलें खराब रही तथा मन्दी की छाया पडनी प्रारम्भ हो गयी। इस तरह ब्रिटिश कृषि पर जो मन्दी छा गई वह प्रथम महायुद्ध तक चलती रही।

इस सम्बन्ध मे सबसे पहला मामला 1875 के बाद कृषि के अन्तर्गत आने वाली भूमि के क्षेत्र मे निरन्तर कमी तथा चरागाह के अन्तर्गत उपयोग मे आने वाली भूमि की वृद्धि के रूप मे सामने आया।

ब्रिटेन मे भूमि का वर्गीकरण

(मिलियन एकड मे)

वर्ष	कृषित भूमि	स्थायी चरागाह भूमि
1871	18 4	12 4
1881	17 4	14 [illegible]
1891	16 4	16 4
1901	15 6	16 7
1911	14 6	17 4

गेहूँ की खेती के अन्तर्गत आने वाले क्षेत्र मे भी गिरावट आयी तथा वह 1870 मे 3 7 मिलियन एकड से घटकर 1903 मे मात्र 1·6 मिलियन एकड रह गयी।

[1] Porter, *Progress of the Nation*, 1847, 159–60

[2] Cunningham, *The Industrial Revolution*, 1908, 562

इस कमी से यह स्पष्ट ही है कि कृषि-उत्पादन में भी गिरावट आयी। गेहूँ का उत्पादन, जो 1841–45 के वर्षों में इतना था कि वह देश की 90 प्रतिशत जनता के लिए पर्याप्त था, 1906 में इतना गिर चुका था कि अब वह केवल 11 प्रतिशत जनसख्या के लिए पर्याप्त था।

ब्रिटिश कृषि में आने वाली इस गिरावट के लिए मुख्य रूप से तीन कारण उत्तरदायी थे—(1) कृषित भूमि के अन्तर्गत आने वाले क्षेत्र में एक-चौथाई गिरावट आ जाना, (2) अनाजो के उत्पादन में आयी कमी की पूर्ति मास आदि के उत्पादन में वृद्धि से आंशिक रूप में ही हो पाना, तथा (3) आयातित खाद्यान्नो पर आश्रित जनसख्या के अनुपात में वृद्धि होना। समुद्री यातायात की सस्ती लागत ने ब्रिटिश कृषि के लिए विदेशी प्रतिस्पर्द्धा का दरवाजा खोल दिया। उन्नीसवी शताब्दी के अन्त में तो ब्रिटिश बाजारो में अमरीकी गेहूँ के अम्बार लग गये। 1875 से 1885 तक की अवधि में कृषि-पदार्थों के मूल्यो में निरन्तर गिरावट भी आयी।

1882 म नियुक्त किये गये शाही आयोग ने स्पष्ट किया कि ब्रिटिश कृषि में मन्दी आने के मुख्य कारण विदेशी प्रतिस्पर्द्धा, ऊँचे लगान, पशुओ की बीमारियाँ तथा फसलो का खराब हो जाना थे। लॉर्ड एवरस्ले की अध्यक्षता में एक अन्य शाही आयोग 1893–97 में बिठाया गया। अपने प्रतिवेदन म इस आयोग ने बताया कि चादी के मूल्यो में गिरावट से भू-स्वामियो तथा किसानो को पूँजी का भारी नुकसान हुआ है। आयोग ने यह भी स्पष्ट किया कि श्रेष्ठ श्रमिक शहरो को प्रस्थान कर रहे थे तथा फलो की खेती, डेयरी फार्मिंग तथा मुर्गीपालन अधिक लाभ वाली कृषि गतिविधियाँ बनते जा रहे थे। ब्रिटिश कृषि का न्यूनतम बिन्दु उन्नीसवी शताब्दी के समाप्त होने के पहले आ चुका था।

ब्रिटिश कृषि का पुनरुत्थान बीसवी शताब्दी के शुरू के वर्षों से आरम्भ हुआ जब वहाँ के कृषको ने यह महसूस किया कि उन्हे अपने आपको नई परिस्थितियो के अनुरूप ढालना होगा। उन्हे यह आशा नही रही कि वे खाद्यान्नो का आयात रोकने में सफल हो पायेंगे, इसलिए उन्होंने अपना ध्यान पशुपालन, दुग्ध उत्पादन तथा अण्डे व मक्खन के उत्पादन पर लगाया। इस प्रकार की उत्पादक गतिविधियाँ मूलत श्रम-प्रधान थी तथा छोटी जोतो वाले किसान जो अधिक व्यक्तिगत देखभाल करने की स्थिति में थे, इसमें अधिक सफल हो सकते थे। इससे देहाती किसानो के एक वर्ग का अभ्युदय हुआ। वैसे बड़े भू-स्वामी छोटी जोतो वाले आसामियो की सख्या बढ़ने के खिलाफ थे क्योंकि इससे उनकी परेशानी बढ़ने का भय था किन्तु ससद ने 1908 में छोटी जोतें तथा आवटन सम्बन्धी विधेयक (Small Holdings and Allotments Act, 1908) (तथा 1926 में पुन इसी विधेयक को सशोधित कर) व 1931 में कृषि भूमि उपयोग सम्बन्धी विधेयक (Agricultural Land Utilisation Act, 1931) पारित कर पाँच एकड की छोटी जोतें स्थापित करने का रास्ता साफ कर दिया।

प्रथम विश्व-युद्ध (1914–19) के दौरान ब्रिटिश कृषि में अस्थायी तौर पर समृद्धि आयी। यथासम्भव अनाज का देश ही में उत्पादन करने के प्रयासो को बढावा देने से चरागाह के रूप में प्रयुक्त की जा रही भूमि को कृषित भूमि के रूप में

पुनर्स्थापना हुई। देश में पैदा किये गये गेहूँ के ऊँचे मूल्य मिले। 1917 का अनाज उत्पादन अधिनियम (Corn Production Act, 1917) न्यूनतम मूल्य की गारण्टी देने, लगान निश्चित करने तथा कृषि मजदूरों को न्यूनतम मजदूरी दिलाने के उद्देश्य से लाया गया। 1924 के कृषि मजदूरी अधिनियम (Agricultural Wages Act, 1924) ने न्यूनतम मजदूरी के भुगतान को अनिवार्य बना दिया।

द्वितीय विश्व-युद्ध का आरम्भ ब्रिटिश कृषि के लिए नई आशा लेकर आया क्योंकि इंग्लैण्ड अपनी ही भूमि पर अधिक से अधिक अनाज उगाने के लिए बाध्य हो गया। कृषित क्षेत्र लगभग दुगुना हो गया तथा गेहूँ के मूल्यों में भी अत्यधिक वृद्धि हुई। 1942 व 1943 के युद्ध-वर्षों में रिकॉर्ड फसलों का उत्पादन हुआ दूसरे विश्व-युद्ध की समाप्ति पर ब्रिटेन में गेहूँ का उत्पादन व आलू का उत्पादन 1938 की तुलना में दुगुना हो रहा था और भारी मात्रा में चुकन्दर की भी खेती हो रही थी।

सरकार ने भी कृषि में भारी रुचि लेना आरम्भ कर दिया। प्रत्येक काउण्टी में स्थापित युद्ध-कृषि समितियों के अलावा 1941 में एक कृषि सुधार परिषद् स्थापित की गयी जिसका उद्देश्य कृषि में आधुनिक अनुसन्धानों के प्रयोग को बढ़ावा देना था। श्रमिकों का अभाव होने के कारण कृषि श्रमिकों की मानद मजदूरी में निरन्तर वृद्धि की जाती रही यद्यपि वे औद्योगिक श्रमिकों की तुलना में नीचे बने रहे।

दूसरे महायुद्ध के बाद का समय ब्रिटिश कृषि के बारे में लेखे-जोखे से शुरू हुआ। यह अनुमान था कि देश के कुल 60 मिलियन एकड़ क्षेत्रफल में से 48 मिलियन एकड़ का उपयोग कृषि के लिए हो रहा था। ब्रिटिश कृषि में करीब साढ़े बारह लाख लोगों को रोजगार मिल रहा था। कृषि उत्पादन का मूल्य दुगुना हो चुका था और दूसरे महायुद्ध के आरम्भ होने से पहले के 290 मिलियन पौंड मूल्य के मुकाबले वह 580 मिलियन पौंड वार्षिक के स्तर तक पहुँच गया। 1947 में पारित कृषि अधिनियम का उद्देश्य स्थिर एवं कुशल कृषि बनाये रखना था।

द्वितीय युद्ध के बाद की ब्रिटिश कृषि की मुख्य विशेषताएँ

(1) कृषि मूल्यों की गारण्टी तथा नियन्त्रण की नीति का कड़ाई से पालन किया गया। ये मूल्य कृषि मन्त्री द्वारा एक निश्चित अवधि तक के लिए तय किये जाने की व्यवस्था की गयी।

(2) अकुशल खेती के लिए अब कोई स्थान नहीं रह गया था। अकुशल किसानों को उनकी भूमि से बेदखल किया जा सकता था।

(3) भू स्वामी द्वारा अपने आसामी को जमीन से हटा देने के उसके अधिकार को सीमित कर दिया गया। कृषक को इस निर्णय के विरुद्ध मन्त्री को अपील करने का अधिकार दिया गया।

(4) छोटी जोतों का सवाल कृषिगत आधारों पर तय किया जाने लगा न कि सामाजिक मुद्दों पर। इसी को दृष्टिगत रखते हुए 1947 के कृषि अधिनियम में यह व्यवस्था रखी गयी कि उचित लगान पर छोटी जोतें बनी रह सकें ताकि अनुभवी कृषि मजदूर 'नीचे के स्तर से उठकर' कुशल कृषक बन सकें।

(5) 1946 व 1956 मे पहाड़ी खेती अधिनियम (Hill Farming Acts) ब्रिटिश ससद द्वारा पहाडी खेती की अवनति को रोकने तथा चरागाहो की स्थिति सुधारने (उन्नत रासायनिक खादो का उपयोग बढाकर तथा घटिया चरागाहो मे पुन बीज डालकर) के उद्देश्य से पारित किये गये। यह करना इसलिए जरूरी था कि ग्रेट, ब्रिटेन मे अधिकाश गौ-माँस तथा भेड-माँस इन्ही वेल्स, स्काटलैण्ड तथा उत्तरी इग्लैण्ड के पहाडी इलाको से प्राप्त होता है।

(6) ऐच्छिक व सरकारी विपणन व्यवस्थाओ का विकास भी आधुनिक ब्रिटिश कृषि की महत्त्वपूर्ण विशेषता रही है। 1955 मे एक आलू विपणन बोर्ड तथा 1957 मे एक अण्डा विपणन बोर्ड स्थापित किया गया। कुछ अन्य कृषि उत्पादो के भी नियन्त्रित रूप मे विपणन की व्यवस्था की गई। सूअर उद्योग विकास बोर्ड 1957 मे स्थापित किया गया।

(7) बीसवी सदी के दूसरे चतुर्थांश मे कृषि सहकार का भी काफी विकास हुआ। यह सहकार सरकारी विपणन सुविधाओ के साथ-साथ पनपा। किसानो ने अपने क्षेत्रीय या काउण्टी सगठन बनाये जिनका उद्देश्य कृषिगत वस्तुओ की सहकारी खरीद व बिक्री को बढावा देना था।

पिछले सौ सालो मे कृषि के क्षेत्र मे आये उतार-चढावो ने व्यक्ति को यह सोचने के लिए बाध्य कर दिया है कि क्या भूमि का निजी स्वामित्व उपयुक्त व्यवस्था है ? किन्तु अपने 1947 के कृषि विधेयक मे श्रम दल की सरकार ने भूमि का राष्ट्रीयकरण नही किया तथा वह निजी स्वामित्व मे बनी रही। अकुशल किसानो को उनकी जमीन से निकाल देने के अधिकार की भी काफी आलोचना की गई तथा 1958 के कृषि विधेयक ने राज्य से वह अधिकार वापस ले लिया। यह इसलिये किया गया कि आम धारणा यह बनी थी कि अकुशल किसान को राज्य द्वारा बेदखल करने की आवश्यकता नही है क्योकि जब वह अपने खेत से पर्याप्त प्रतिफल प्राप्त करने मे असफल हो जायेगा तो उसे बाध्य होकर अपना खेत छोडना पडेगा।

ब्रिटिश कृषि के बारे मे नवीनतम स्थिति यह है कि वहाँ की समग्र राष्ट्रीय आय मे कृषि का प्रतिशत योगदान घटता जा रहा है। 1965 मे यह प्रतिशत योगदान 3 3% था जो 1970 मे घटकर 2 8% रह गया। 1975 मे यह घटकर 2 7% हो चुका था। ऐसा इसलिये हुआ है कि इस दौरान निर्मित माल वाले क्षेत्र मे अत्यधिक तेजी से प्रगति हुई है। लेकिन इसका यह अर्थ नही है कि कृषि का निरपेक्ष भाग भी राष्ट्रीय उत्पाद मे घटा है। राष्ट्रीय उत्पाद मे कृषि का निरपेक्ष अशदान 1965 से 1975 के दस वर्षों मे दुगुने से भी अधिक हो चुका है। वह मूल्य की दृष्टि से 1965 के 1027 मिलियन पौंड के मुकाबले 1975 मे 2,527 मिलियन पौंड का हो चुका था। 1980 तक उसके और भी ड्योढे हो जाने के अनुमान हैं।

दूसरा अध्याय

औद्योगिक क्रान्ति

(THE INDUSTRIAL REVOLUTION)

प्रसिद्ध ब्रिटिश इतिहासकार अर्नाल्ड टॉयनबी ने 1884 में 'औद्योगिक क्रान्ति' की अभिव्यक्ति का उपयोग उन महान् परिवर्तनों का उल्लेख करने की दृष्टि से सबसे पहली बार किया था जिनसे ब्रिटिश अर्थव्यवस्था का अठारहवीं तथा उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में कायापलट हुआ था। लेकिन 'औद्योगिक क्रान्ति' की अभिव्यक्ति पर यह आपत्ति उठायी जाती रही है कि आर्थिक इतिहास में क्रान्तियाँ अज्ञात रही हैं क्योंकि आर्थिक विकास (economic evolution) की प्रक्रिया सदैव धीमी होती है। दूसरी ओर 'क्रान्ति'[1] का अर्थ होता है—आधारभूत परिवर्तन, एक राजनीतिक क्रान्ति का अर्थ होता है—सरकार का पूरी तरह से बदला जाना (उदाहरण के लिए फ्रांस की 1789 व रूस की 1917 की हिंसक क्रान्तियाँ), एक कूटनीतिक क्रान्ति का आशय होता है—अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में समग्र पुनर्व्यवस्था, एक कृषि क्रान्ति का अर्थ होता है—कृषि की तकनीक व सगठन में परिवर्तन, और एक सामाजिक क्रान्ति का अर्थ होता है—विभिन्न सामाजिक वर्गों की सापेक्षिक स्थिति में परिवर्तन।

इन आधारों को लिया जाय तो यही प्रतीत होता है कि औद्योगिक क्रान्ति न तो आकस्मिक थी और न ही ध्वसात्मक। यह तो एक ऐसा आन्दोलन था जो 150 वर्षों तक चलता रहा। यह उक्ति सही ही है कि जो लोग औद्योगिक क्रान्ति की अवधि में जी रहे थे वे उन महान् परिवर्तनों के प्रति शायद ही चेतन या जागरूक रहे होंगे जो उस समय हो रहे थे। लेकिन, जैसा कि आर्थर बिर्नी ने अपनी पुस्तक 'यूरोप का इतिहास' में लिखा है, यह अभिव्यक्ति एकदम अनुपयुक्त भी नहीं थी। जिन परिवर्तनों का वर्णन औद्योगिक क्रान्ति की अवधि से सम्बन्धित है वे परिवर्तन इतने 'दूरगामी और गूढ़' अपनी अच्छाइयों व बुराइयों के अनूठे मिश्रण में इतने कारुणिक तथा सामाजिक उत्पीडन व भौतिक प्रगति के मिले-जुले रूप में इतने नाटकीय रहे कि उन्हें बिना किसी अतिशयोक्ति के 'क्रान्तिकारी' कहा जा सकता है। उन्हें क्रान्तिकारी परिवर्तनों का नाम देने से हमें यह बात स्मरण हो आती है कि अठारहवीं तथा उन्नीसवीं शताब्दी के दौरान हुए आर्थिक परिवर्तनों में उससे पहले के युग में हुए आर्थिक परिवर्तनों की तुलना में अत्यधिक तेजी थी तथा सामाजिक उत्पीडन के रूप में इन दोनों शताब्दियों में हुई आर्थिक प्रगति के लिए जो कीमत

[1] G W. Southgate, *op cit*, 1957, 115

चुकानी पडी वह भी पहले की तुलना मे बहुत अधिक थी ।[1]

साउथगेट ने भी यही विचार व्यक्त किया है कि 'किसी क्रान्ति के लिए यह आवश्यक नहीं है कि वह अचानक या हिंसक हो, वह धीरे-धीरे और यहाँ तक कि न दिखायी पडने वाली अर्थात् अगोचर भी हो सकती है" औद्योगिक क्रान्ति औद्योगिक प्रणाली मे आये हुए परिवर्तनो से सम्बद्ध थी, हाथ से काम करने के स्थान पर मशीनो (जिन्हे शक्ति से चलाया जाने लगा था) द्वारा काम तथा औद्योगिक सगठन की दृष्टि से घरो मे काम करने के पुराने तरीके की जगह फैक्ट्रियो मे काम औद्योगिक क्रान्ति का परिचायक थे। इन नयी परिस्थितियो मे उद्योग का उद्देश्य बड़े पैमाने पर उत्पादन करना बन गया था, एक सीमित व स्थायी बाजार के लिए ही उत्पादन करने के पुराने आदर्श के स्थान पर अब सस्ता व भारी मात्रा मे उत्पादन करने का निश्चय प्रतिस्थापित हो चुका था। इसका उद्देश्य उन बाजारो तक चीजें पहुँचाना था जो राष्ट्रीय सीमाओ से बाहर भी पहुँचते थे और यहाँ तक कि विश्व-व्यापी बन चुके थे।' श्रीमती नॉवेल्स ने सारी वस्तु-स्थिति का निचोड अपने इस कथन मे बड़े ही सुन्दर तरीके से प्रस्तुत किया है कि 'औद्योगिक क्रान्ति जैसी अभिव्यक्ति का प्रयोग इसलिए नही किया जाता कि परिवर्तन की प्रक्रिया बहुत तीव्र थी बल्कि उसका प्रयोग इसलिए किया जाता है कि जब वे पूर्ण हो गये तब वे परिवर्तन आधारभूत थे।' श्रीमती नॉवेल्स ने आगे लिखा है कि 'वैसे देखा जाय तो औद्योगिक दशाओ मे क्रान्तिकारी परिवर्तन आ गया था किन्तु यह नही कहा जा सकता कि वे अचानक बदल गयी थी।'

लेकिन जैसा कि आर्थर बिर्नी ने लिखा है कि 'औद्योगिक क्रान्ति' की अभिव्यक्ति एकदम अनुपयुक्त नही है, उस दृष्टि से यह कहना ठीक होगा कि इग्लैण्ड मे हुई औद्योगिक क्रान्ति की सबसे महत्त्वपूर्ण बात यही रही कि उससे देश मे आर्थिक विकास की गति तीव्र होने मे बहुत सहायता मिली। 1781 से 1913 तक के बीच इग्लैण्ड मे जो आर्थिक विकास की दर रही वह 1700 से 1780 तक की आर्थिक विकास की दर की तुलना मे तीन गुना थी। अमरीकी अर्थशास्त्री प्रो० डब्लू० डब्लू० रोस्टोव ने अनुमान लगाया है कि ब्रिटिश अर्थव्यवस्था ने स्वय स्फूर्त विकास की अवस्था (take-off stage) 1780 के बाद के दो ही दशको मे प्राप्त कर ली थी।

क्रान्ति का युग

'औद्योगिक क्रान्ति' कहलाने वाले जो महत्त्वपूर्ण परिवर्तन इग्लैण्ड मे हुए उन्हे कोई निश्चित तिथि दे पाना बहुत कठिन काम है। ब्रिटिश आर्थिक इतिहासकार माउथगेट ने लिखा है कि 1765 से 1785 की बीस वर्षों की अवधि मे अनेक महत्त्वपूर्ण सूती वस्त्र उद्योग से सम्बन्धित आविष्कार हुए लेकिन फिर भी यह नही माना जा सकता कि औद्योगिक क्रान्ति इस अल्पावधि तक ही सीमित रही। इतिहासकार अर्नाल्ड टॉयनबी ने उन सभी महत्त्वपूर्ण परिवर्तनो को औद्योगिक क्रान्ति के विषय-क्षेत्र मे सम्मिलित किया है जो इग्लैण्ड मे 1760 से लेकर 1850 तक की

[1] A Birnie, *op cit*, 1

नब्बे वर्ष की अवधि मे हुए। प्रोफेसर नेफ ने स्थिति का अधिक व्यापक रूप स्वीकार करते हुए उन सभी परिवर्तनो को औद्योगिक क्रान्ति की सीमा मे शामिल किया है जो 1550 से लेकर 1890 तक की 340 वर्षों की अवधि मे हुए। श्रीमती नॉविल्स ने औद्योगिक क्रान्ति के अन्तर्गत हुई महान् घटनाओ को दो स्पष्ट अवधियो मे विभाजित किया है—पहली अवधि 1770 से 1840 तक तथा दूसरी अवधि 1840 से 1914 तक की है। अपने आपको बिना किसी विवाद मे उलझाये हुए, जो औद्योगिक क्रान्ति की अवधि निर्धारित करते समय अक्सर उत्पन्न होता है, हम यह कह सकते है कि वे समस्त तकनीकी परिवर्तन और बडे आविष्कार जो इग्लैण्ड मे 1750 मे लेकर 1914 तक की अवधि मे हुए ब्रिटेन की औद्योगिक क्रान्ति के मर्म या केन्द्र-बिन्दु कहे जा सकते हैं। इस तरह ग्रेट ब्रिटेन की औद्योगिक क्रान्ति की सक्रिय अवधि लगभग 164 वर्ष की रही मानी जा सकती है।

औद्योगिक क्रान्ति के कारण

उन कारको की एक बहुत लम्बी सूची है जिन्होने सबसे पहले इग्लैण्ड मे तथा उसके बाद यूरोप के अन्य देशो मे उस औद्योगिक क्रान्ति को जन्म दिया जिसने मानव के आर्थिक विकास को नये आयाम प्रदान किये। अठारहवी शताब्दी के मध्य तक ब्रिटिश अर्थव्यवस्था मूलत कृषि प्रधान थी। आधुनिक मानदण्ड को यदि आधार माना जाय तो उस समय इग्लैण्ड मे बहुत कम नगर थे तथा 80% जनसख्या गाँवो मे रहती थी। गाँवो मे बसने वाली जनसख्या के लिए जीविकोपार्जन का मुख्य साधन कृषि ही था। अधिकाश उद्योग, जिनमे सूती वस्त्र, ऊन, इस्पात, लोहे का छोटा सामान, काच तथा चीनी के बर्तन बनाना सम्मिलित हैं, अपने आधुनिक स्वरूप मे सारे ब्रिटेन मे कही पर भी नही थे और यदि वे कही पर थे भी तो ग्रामीण क्षेत्रो मे बहुत ही छोटे पैमाने पर चलाये जा रहे थे।

उपनिवेशो के बढते चले जाने के साथ अठारहवी शताब्दी मे ब्रिटिश व्यापार भी फैलने लगा था। ब्रिटिश व्यापारियो को इग्लैण्ड मे बने हुए सूती वस्त्र के लिए निरन्तर बढती हुई माँग का सामना करना पड रहा था और तत्कालीन उत्पादन के ढाँचे के अन्तर्गत उत्पादन मे अधिक वृद्धि कर पाना असम्भव सा था। एक ओर बुनकरो को धागे के अभाव मे काफी समय तक बेकार बैठे रहना पडता था तो दूसरी ओर सूत कातने वाले हमेशा ही व्यस्त रहते थे। पूरे समय काम करने वाला एक बुनकर 6 सूत कातने वाले लोगो द्वारा तैयार किये गये धागे का उपयोग कर सकता था। ऐसी स्थिति मे इस प्रकार का परिवर्तन होना आवश्यक था कि जिससे सूत का उत्पादन काफी बढ सके। सूती धागे का उत्पादन बढाने की आवश्यकता ने ही सबसे पहले औद्योगिक क्रान्ति को आरम्भिक गति प्रदान की। यही वह सबसे प्रमुख कारण था जिसके फलस्वरूप इग्लैण्ड मे हुई औद्योगिक क्रान्ति के आरम्भिक वर्षों मे आविष्कारो की जो एक शृखला बनी वह सूती वस्त्र उद्योग के क्षेत्र से ही सम्बन्धित थी।

इग्लैण्ड मे घटित औद्योगिक क्रान्ति के अभ्युदय व उसकी परिपक्वता के लिए

निम्न तत्वों को उत्तरदायी ठहराया जा सकता है—

(1) **अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का प्रसार**—इंग्लैण्ड मे हुई औद्योगिक क्रान्ति का सर्वाधिक प्रमुख कारण अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार मे होने वाला वह महत्त्वपूर्ण प्रसार था जो वहाँ की अर्थव्यवस्था मे सत्रहवीं तथा अठारहवीं शताब्दी मे हुआ था। इसके अतिरिक्त 1776 मे प्रसिद्ध अर्थशास्त्री एडम स्मिथ ने अपनी पुस्तक 'राष्ट्रो की सम्पदा' (Wealth of Nations), जो अर्थशास्त्र की सबसे पहली प्रामाणिक पुस्तक बनी, मे इस बात का उल्लेख किया था कि श्रम-विभाजन या व्यवसायों का विशिष्टीकरण बाजारो के प्रसार पर निर्भर करता है। एडम स्मिथ की यह अवधारणा एक स्वयंसिद्ध तथ्य है। यह तो इसी से स्पष्ट हो जाता है कि आर्थिक विकास की प्रक्रिया के आरम्भ से ही विशिष्टीकरण की प्रवृत्ति को बढावा मिलता रहा है। सोलहवीं व सत्रहवीं शताब्दी मे नये समुद्री मार्गों की खोज ने इंग्लैण्ड के उद्यमियो व व्यावसायियो के लिए एशिया, अफ्रीका तथा अमरीका के नये बाजार खोल दिये थे। इसका प्रभाव यही हुआ था कि यूरोप के देशो तथा इन तीनो महाद्वीपो के देशो के बीच व्यापार का परिमाण काफी बढ गया।

सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह थी कि इन महाद्वीपो मे सूती वस्त्र, अन्य उपभोक्ता वस्तुओ तथा टिकाऊ पदार्थो की आवश्यकता थी और इन सभी वस्तुओ के उत्पादन मे मशीनो का उपयोग बडी आसानी से किया जा सकता था। इन वस्तुओ की माँग मे होने वाली वृद्धि ने यन्त्रीकृत उत्पादन (mechanised production) को अत्यधिक गति प्रदान की और यही गति अठारहवीं शताब्दी के दौरान हुए अनेक महान् आविष्कारो के लिए उत्तरदायी थी। हारग्रीव्ज द्वारा आविष्कृत कताई की मशीन (spinning jenny), आर्कराइट का वाटरफ्रेम (waterframe), क्रॉम्पटन की चर्ख़ी (mule) तथा कार्टराइट द्वारा आविष्कृत शक्ति चालित करघा (powerloom), ये सब वे यन्त्रीकृत तरीके थे जिनका उद्देश्य कताई व बुनाई के तरीको को अधिक द्रुतगामी बनाकर सूती वस्त्र का उत्पादन बढाना था। जिस चीज ने इन आविष्कारो को अनिवार्य बना दिया था वह सस्ती चीजो के लिए निरन्तर बढती रहने वाली माँग थी। सस्ती वस्तुओ का उत्पादन करने वाली मशीनें मात्र तैयार करना तब तक निरर्थक है जब तक कि वृद्धिगत उत्पादन की खपत के लिए व्यापक बाजार न हो। यही कारण है कि ब्रिटिश आर्थिक इतिहास का विवेचन करने वाले लगभग सभी प्रमुख लेखकों ने बाजार के प्रसार को औद्योगिक क्रान्ति का एक प्रमुख कारण माना है। बिर्नी ने तो यहाँ तक लिखा है कि 'बाजार पहले होना चाहिए, उसके अनुसार आविष्कार का तो अनुकरण कर सकते है।'

(2) **ब्रिटिश उपनिवेशो का प्रसार**—विदेशी व्यापार मे हुए विकास के इस आर्थिक कारण के अतिरिक्त उस समय ऐसे कई राजनीतिक तत्त्व भी थे जिन्होने ब्रिटेन के लिए रास्ता आसान बना दिया तथा उसे औद्योगिक क्रान्ति के क्षेत्र मे अगुआ बनाया। यूरोप के प्रमुख राष्ट्रो मे उस समय एशिया तथा अफ्रीका मे अधिक से अधिक उपनिवेश बनाने की होड-सी लगी थी तथा झगडे हो रहे थे। इन संघर्षों मे ब्रिटेन एक विजयी राष्ट्र के रूप मे उभरा। नौसैनिक शक्ति की श्रेष्ठता ने ब्रिटेन

को स्पेन, फ्रांस तथा हालैण्ड जैसे देशो की चुनौतियो का सफलतापूर्वक सामना कर सकने की शक्ति प्रदान की। विशेष रूप से भारत तथा अमरीका मे ब्रिटिश उपनिवेशो की स्थापना हो जाने से नये बाजार प्राप्त करने का लाभ जैसे ब्रिटेन के लिए ही सीमित हो गया। फ्रांस, जो कि एक अपेक्षाकृत धनी और अधिक साधन सम्पन्न देश था, के पास अपनी वस्तुओ को बाहर भेजने के लिए कोई रास्ता नही था। राजनीतिक दृष्टि से विभाजित जर्मनी की स्थिति तो और भी खराब थी। हर यूरोपीय युद्ध मे जर्मनी की ही सबसे अधिक बरबादी हुई थी। इन परिस्थितियो मे ब्रिटिश राजनीतिज्ञो की चतुराई और दूरदर्शिता ने ब्रिटेन को सारे यूरोप मे सर्वोच्च राष्ट्र के रूप मे स्थापित कर दिया। राजनीतिक सर्वोच्चता के इस अकेले तत्व ने ब्रिटिश साहसकर्त्ताओ और व्यापारियो को निरन्तर बढती जा रही औपनिवेशिक इकाइयो का अधिकाधिक शोषण करने के लिए प्रवृत्त किया जो उस ब्रिटिश साम्राज्य का भाग थी जहाँ सूर्य कभी अस्त नही होता था।

(3) **पूंजी की प्रचुरता**—बहुत बडे पैमाने पर विश्व बाजारो पर एकाधिपत्य होने के अतिरिक्त ब्रिटेन के पास आवश्यक पूंजी भी उपलब्ध थी जो औद्योगिक प्रयोगो व अनुसधानो के लिए अनिवार्य थी। ब्रिटिश व्यावसायियो ने, जो विदेश व्यापार की कला मे प्रवीण थे, इस कार्य के लिए पर्याप्त ससाधन जुटा लिये थे। वहाँ की बैंकिग व्यवस्था भी काफी विकसित हो चुकी थी जिससे पूंजी का श्रेष्ठतम उपयोग कर सकने मे बडी आसानी हो गयी थी। देश की राजनीतिक एव सामाजिक दशाएँ भी तीव्र गति से पूंजी निर्माण कर सकने के पक्ष मे थी जिससे औद्योगिक विकास का गतिमान होना स्वाभाविक ही था।

(4) **व्यापार की स्वतन्त्रता**—अपनी सीमाओ के भीतर ब्रिटेन मे पूर्ण व्यापारिक स्वतन्त्रता थी। द्वितीय राष्ट्र होने के कारण इग्लैण्ड युद्धो के उन विनाशकारी प्रभावो से बचकर रह सका था जिन्होने यूरोप के अन्य देशो को बरबाद कर दिया था। मुक्त व्यापार की यह नीति (laissez faire) ब्रिटेन के लिए दोहरी लाभकारी थी क्योकि इसके कारण ब्रिटिश व्यापारी अपने उपनिवेशो से कच्चे माल का स्वतन्त्र रूप मे आयात कर सकने के अलावा उन्हे निर्मित माल भी बिना किसी सरकारी हस्तक्षेप के भेज सकते थे। इस सिद्धान्त का प्रतिपादन तथा समर्थन प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियो द्वारा किया गया था। अन्य प्रतिस्पर्द्धियो से अधिक श्रेष्ठ स्थिति मे होने के कारण तथा एक शासक देश होने के कारण भी मुक्त व्यापार ब्रिटेन के लिए काफी लाभकारी नीति थी। सबसे मुख्य बात यह थी कि तकनीक मे होने वाले प्रत्येक सुधार से विभिन्न औद्योगिक वस्तुओ के उत्पादन मे काफी वृद्धि हो रही थी। उस वृद्धिगत उत्पादन को बेचने के लिए ब्रिटेन के पास बाजार तैयार थे। इसके अतिरिक्त ब्रिटेन का इन बाजारो मे कोई प्रतिद्वन्द्वी नही था।

(5) **व्यक्तिगत स्वतन्त्रता के लिए सम्मान**—ब्रिटेन मे औद्योगिक क्रान्ति होने का एक अन्य कारण एक औसत ब्रिटिश नागरिक को प्राप्त धार्मिक तथा राजनीतिक स्वतन्त्रता थी। यह कहना सही है कि एक बहुत लम्बे समय तक ब्रिटेन मे भी राजनीतिक अधिकार एक बहुत ही छोटे समुदाय का एकाधिकार बने रहे थे

तथा देश की सरकार सम्पन्न एव प्रभावशाली कहे जाने वाले भू-स्वामी वर्ग की मुट्ठी मे बंद थी। लेकिन, अन्य देशो की तुलना मे, इस ब्रिटिश मध्यवर्ग या सम्पन्न भू-स्वामियो के वर्ग की विशेषता यह थी कि इस वर्ग के लोगो मे उद्योग तथा व्यवसाय के प्रति बडा सम्मान था। इतना ही नही, वे उसे प्रोत्साहन भी देते थे। ब्रिटेन में वर्ग-भेद था तो अवश्य लेकिन उसमे उतनी तीव्रता या पैनापन नही था जितना कि यूरोप के अन्य देशो मे था। यहाँ तक कि भू-स्वामी वर्ग तथा सामान्य व्यक्तियों, आसामियो आदि के बीच वैवाहिक सम्बन्ध भी होते रहते थे और उसका परिणाम यह होता था कि भू-स्वामियो के वर्ग मे नया खून प्रवेश पाता रहता था। इसके अतिरिक्त सामान्य-जन के साथ बहुत निकट-सम्बन्धों के कारण वहाँ का भू-स्वामी वर्ग देश के शेष लोगो से कटा हुआ या अलग नही रहता था। जिन दिनों ब्रिटेन के मुख्य प्रतिस्पर्द्धी माने जाने वाले देश फ्रास, हालैण्ड तथा जर्मनी म समयातीत हो चुकी सामन्ती व्यवस्था की जकडन ज्यों की त्यों कायम थी उन दिनों ब्रिटेन मे एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था कायम हो चुकी थी जो आर्थिक परिवर्तनों को न केवल सहज रूप से स्वीकार करती थी बल्कि जो उनके प्रति जागरूक भी थी। उस समय प्रचलित सामान्य धारणा कि 'प्रत्येक व्यक्ति का घर ही उसका अभेद्य दुर्ग है' ने ब्रिटेन मे व्यक्तिगत स्वतन्त्रता को पूरी तरह स्थापित कर दिया था। आविष्कारको तथा नव-प्रवर्तको के लिए यह एक ऐसा अनुकूल वातावरण था जिसमें वे अपने नये आविष्कारो या नव प्रवर्तनो के लिए प्रयत्न कर सकते थे।

मॉरिस डॉब ने सारी स्थिति पर विचार करने के बाद बडे ही सटीक रूप मे लिखा है कि 'औद्योगिक आविष्कार मूलत सामाजिक उत्पाद होते हैं आविष्कारको के सम्मुख जो प्रश्न उठाये जाते हैं तथा आविष्कारक को जिन चीजों की आवश्यकता अपने आविष्कार के लिए पडती है उन सभी का निर्धारण तत्कालीन सामाजिक एव आर्थिक परिस्थितियो तथा आवश्यकताओ से ही होता है।' प्रत्येक व्यक्ति की व्यक्तिगत विशेषताओ व योग्यताओ के प्रति प्रशंसा के भाव ने ब्रिटेन मे उन अनुकूल परिस्थितियो को जन्म दिया जिनमे उद्यमियो के वर्ग का अभ्युदय आसान बन गया।

(6) प्रगतिशील विचारो का फैलाव—क्रान्तियाँ हमेशा सबसे पहले मनुष्यो के मस्तिष्को मे जन्म लेती हैं। नॉवेल्स[1] ने लिखा है कि विचारो के फैलाव ने भी औद्योगिक क्रान्ति को लाने मे महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी। नॉवेल्स के अनुसार, उन्नीसवी सदी फ्रासीसी क्रान्ति का ही प्रतिफल थी जिसमे 'स्वतन्त्रता, समानता तथा भ्रातृत्व' के नारों को गुंजाया गया था। इस नयी भावना के साथ इग्लैण्ड मे यन्त्रीकृत उत्पादन के लिए होने वाले आविष्कारो की श्रृंखला भी जुड गयी और इसका परिणाम यह हुआ कि इनके रास्ते मे आने वाली सारी भौतिक तथा कानूनी बाधाएँ साथ ही साथ हटती चली गयी।

अनेक ब्रिटिश आर्थिक इतिहासकारो ने इग्लैण्ड मे घटित औद्योगिक क्रान्ति को बदलते हुए दृष्टिकोणो के सन्दर्भ म समझाने का प्रयास किया है। उदाहरण के

[1] L C A Knowels, *The Industrial and Commercial Revolution in Great Britain during the 19th Century*, 5-7

लिए, लोहे के परिद्रवण (smelting) के लिए कोयले के उपयोग का सिद्धान्त 1620 ही मे खोज लिया गया था किन्तु तत्कालीन औद्योगिक परिस्थितियो मे उनका उपयोग इस कार्य के लिए पसन्द नही किया गया। उस समय लकडी का उपयोग लोहे को गलाने के काम मे अधिक आर्थिक समझा जाता था। कोई सौ वर्षों के बाद ही डर्बी ने लोहे गलाने वाले कारखानो के मालिको को यह समझाने मे सफलता पायी कि लोहे को गलाने मे कोयले का उपयोग अधिक मितव्ययितापूर्ण है और उसकी सलाह भी शायद इसलिए प्रभावकारी रही होगी क्योंकि तब तक इग्लैण्ड मे लकडी का इतना अभाव हो गया था कि खनिज कोयला (coke) ही अधिक सस्ते ईंधन के रूप में दिखाई पडने लगा था।

(7) **नव-प्रवर्तक साहसकर्ता**—प्रसिद्ध अर्थशास्त्री शुम्पीटर ने औद्योगिक क्रान्ति को इस रूप मे समझाने का प्रयास किया है कि वह नव-प्रवर्तक साहसी (innovating entrepreneur) के कारण हुई थी जिसने क्रान्ति के मध्य महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। यह सही भी है कि ब्रिटिश साहसियो ने सामुद्रिक यात्राओ तथा दूर-दूर तक के देशो के साथ व्यापारिक सम्बन्धो की कडियाँ जोडने मे विश्व के अनेको आश्चर्यजनक रिकॉर्ड कायम किये थे। किन्तु अनेक अन्य आर्थिक इतिहासकारो का मत है कि साहस भरा उद्यम ब्रिटेन मे औद्योगिक क्रान्ति को जन्म देने मे एक प्रमुख कारण रहा है किन्तु शुम्पीटर की इस राय का मानना सम्भव नही है कि सारी की सारी औद्योगिक क्रान्ति साहसकर्ताओ का ही परिणाम थी। अन्य अनेक तत्वो जैसे—सस्ता श्रम, विशाल क्षेत्रो मे फैले हुए व्यापक बाजार तथा तकनीकी सुधारो के कारण उत्पादकता मे होने वाली अभूतपूर्व वृद्धियाँ भी औद्योगिक क्रान्ति के जनक के रूप मे उतने ही उत्तरदायी माने जा सकते है। इन सभी तत्वों ने मिलकर जिस औद्योगिक क्रान्ति को जन्म दिया उसी से ब्रिटिश उद्योगों का कायापलट सम्भव बना।

औद्योगिक क्रान्ति सबसे पहले इग्लैण्ड ही मे क्यो ?

ब्रिटिश कृषि जिसका कि कायापलट अठारहवी सदी के उत्तरार्द्ध तथा उन्नीसवी सदी के पूर्वार्द्ध मे हुआ था के बदले हुए स्वरूप का अनुकरण उद्योगों द्वारा इस रूप मे किया गया कि उनकी तकनीक तथा सगठन के क्षेत्रो मे अनेक दूरगामी परिवर्तन हुए। ये सक्रमणकालीन स्थितियाँ अनेक रूपो मे मुखरित हुई जिनमे उद्योगो का कुछ ही स्थानो पर केन्द्रीकरण, इन औद्योगिक केन्द्रो पर जनसख्या का जमाव तथा उनके फलस्वरूप होने वाला नगरो का विकास व निर्मित वस्तुओ के ब्रिटिश उत्पादन मे अभूतपूर्व वृद्धि को विशेष रूप से लिया जा सकता है।

इन सब बातो को देखते हुए कई बार यह प्रश्न उठाया जाता रहा है कि उद्योगो मे हुए ये समस्त क्रान्तिकारी परिवर्तन सर्वप्रथम इग्लैण्ड ही मे क्यो हुए? क्या कारण था कि इग्लैण्ड ही के समकक्ष माने जाने वाले अन्य यूरोपीय देशो के उद्योगो को उतनी ही क्रान्तिकारी अवस्था मे प्रवेश करने के लिए और भी काफी समय तक प्रतीक्षा करनी पडी? कम से कम छ ऐसे प्रमुख कारण रहे जिनकी वजह से

औद्योगिक क्रान्ति के क्षेत्र मे ब्रिटेन अग्रणी रहा[1]—

(1) **अतिरिक्त पूंजी की तुलनात्मक बहुतायत**—हमारे पास अठारहवी सदी मे ब्रिटेन या यूरोप के अन्य देशो, किसी के भी बारे मे इस सम्बन्ध मे आँकडे उपलब्ध नही हैं कि उस सदी मे पूंजी की मात्रा कितनी थी या उसे कहाँ और किस तरह लगाया गया था। इस कठिनाई के उपरान्त इतना कहना सम्भव है कि जो कुछ भी हमारी जानकारी है उसके हिसाब से यही प्रतीत होता है कि औद्योगिक क्रान्ति के जमाने मे ब्रिटेन मे उपलब्ध पूंजी निर्माण के अवसर तथा उस पूंजी निर्माण पर प्रतिफल स्वरूप प्राप्त होने वाले पुरस्कार तत्कालीन यूरोपीय देशो की तुलना मे काफी अधिक थे। इसके अतिरिक्त इग्लैण्ड मे उस समय विद्यमान राजनीतिक एव धार्मिक स्थितियाँ भी अधिक अनुकूल थी। इग्लैण्ड की आर्थिक प्रणाली भी कम रुकावटें डालने वाली थी। 1694 मे बैंक ऑफ इग्लैण्ड की स्थापना तथा उसके तुरन्त बाद अन्य अनेक बैंको की स्थापना ने भी एक निश्चित गतिशीलता प्रदान की। अठारहवी सदी के उत्तरार्द्ध मे ब्रिटेन मे धन व पूंजी के विकास की प्रक्रिया को तत्कालीन युद्धो से कुछ आघात अवश्य लगा किन्तु ब्रिटेन को होने वाला यह नुकसान उसके सबसे निकट के प्रतिस्पर्द्धी फ्रास को होने वाली हानि से काफी कम था। इग्लैण्ड मे तो 1800 से काफी पहले ही धन का उपयोग बडे परिसम्पत (estates) का निर्माण करने, नई फसलो को पहली बार उगाने के प्रयोग करने तथा पूंजी प्रधान कृषि-व्यवस्था का विकास करने मे किया जा रहा था। यह बात तत्कालीन यूरोप के और किसी भी अन्य देश मे नही हो रही थी। लगभग इसी समय इग्लैण्ड मे बडे पैमाने पर निर्मित माल तैयार करने वाले उद्योगो के लिए भी विशाल मात्रा मे चल कोष (mobile funds) सामान्य रूप से उपलब्ध थे।

(2) **कुशल व अकुशल श्रम की बहुतायत**—एक अन्य तत्त्व जिसने इग्लैण्ड को औद्योगिक क्रान्ति के क्षेत्र मे अगुवा बनाया वह यह था कि वह कुशल व अकुशल श्रमिकों की पूर्ति की दृष्टि से अधिक अच्छी व लाभदायक स्थिति मे था। सत्रहवी व अठारहवी सदी मे ब्रिटेन ने फास तथा नीदरलैण्ड्स के अनेक कुशल शिल्पियो को अपने यहाँ बसने के लिए आकर्षित किया। इस अकेले तत्त्व ने ब्रिटिश श्रमिक वर्ग की औद्योगिक क्षमता व वृद्धि के स्तर को काफी ऊँचा उठा दिया। मुख्य रूप से आप्रवासी शिल्पियो का लाभ देश के रेशम, कागज तथा चीनी मिट्टी के बर्तन बनाने वाले उद्योगो को मिला किन्तु इग्लैण्ड मे निर्मित माल तैयार करने वाले उद्योगो की एक भी शाखा ऐसी नही बची थी कि जिसे आप्रवासी शिल्पियो की दक्षता तथा उनके ज्ञान का लाभ न पहुँचा हो।[2]

(3) **बाजारो का प्रसार**—विशेष रूप से 1760 के बाद ब्रिटिश वस्तुओ के लिए दुनिया के अनेक भागो मे होने वाली माँग निरन्तर बढती चली गयी। उत्पादन की नई पद्धतियो ने न केवल वस्तुओं के उत्पादन को बढा दिया था बल्कि उन्होंने

[1] Ogg and Sharp *op cit*, 129

[2] J E T Rogers *Industrial and Commercial History of England*, New York 1892, Lectures I and II

उत्पादन लागत को भी इस तरह कम कर दिया था कि ब्रिटिश वस्तुओं के लिए और भी अधिक माँग पैदा होती चली गयी। शुरू शुरू में तो श्रमिकों को, जो अनभिज्ञ थे, ऐसा लगा कि मशीनें उन्हें नौकरी से निकलवा देंगी। किन्तु निरन्तर बढ़ती हुई माँग तथा वस्तुओं की सस्ती लागत के कारण अन्त में कम नहीं बल्कि पहले से भी ज्यादा लोगों को काम मिला।

निर्मित वस्तुओं के बड़े पैमाने पर उत्पादन ने उन वस्तुओं के दुनिया-भर में निर्यात को बढ़ावा दिया। अपने प्रमुख औद्योगिक प्रतिद्वन्द्वियों, विशेष रूप से फ्रांस पर इंग्लैण्ड ने शुरू में ही जो बढ़त हासिल कर ली थी उसके आधार पर वह दूर-दूर के देशों से व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित करने में सफल हो गया। नये-नये बाजारों की खोज की गयी व उनका विकास किया गया तथा ब्रिटिश वस्तुओं ने विदेशों में अपनी प्रतिष्ठा जमा ली।

(4) **श्रेणी व्यवस्था (guild system) का विघटन**—उद्योग का बड़े पैमाने पर केन्द्रीकृत हो जाने का सिलसिला ब्रिटेन में फैक्ट्री प्रणाली से सीधे-सीधे आरम्भ नहीं हो गया जैसा कि अन्य देशों में हुआ था। सत्रहवीं तथा अठारहवीं शताब्दी में इंग्लैण्ड का ऊन-उद्योग व्यापारी-निर्माताओं (merchant manufacturers) के नियन्त्रण में आ गया जिनके पास कच्चा माल होता था तथा जो औजारों के भी मालिक हुआ करते थे। ये लोग अकसर बुनकरों, रंगाई करने वालों तथा अन्य कामगारों को काम पर रख लेते थे। ये कामगार अलग-अलग जगहों पर रहते थे तथा अपना काम भी अपने-अपने घरों या दुकानों पर ही करते थे। यह व्यवस्था फैक्ट्री प्रणाली से सिर्फ एक कदम ही पीछे थी जिसमें वस्तुओं का निर्माण एक ही छत के नीचे किया जाता था।

(5) **यान्त्रिक आविष्कारों की जल्दी व तीव्र प्रगति**—इस बारे में अनेक प्रकार की कल्पनाएँ की जा चुकी हैं कि आखिर इंग्लैण्ड में ही क्यों महान् वैज्ञानिकों जैसे के (Kay), हारग्रीव्ज (Hargreaves), आर्कराइट (Arkright), कॉम्पटन (Crompton) रेडक्लिफ (Radcliff), होरोक्स (Horrocks), न्यूकॉमिन (Newcomen), वॉट (Watt), बोल्टन (Bolton), टेल्फोर्ड (Telford), मर्डक (Murdock), ट्रेवेथिक (Trevethick), कोर्ट (Cort) आदि व अन्य अनेक प्रबुद्ध वैज्ञानिकों का एक पूरा का पूरा नक्षत्र मण्डल उदित हुआ। यही वे लोग थे जिनके द्वारा अठारहवीं तथा उन्नीसवीं सदी में ब्रिटेन का औद्योगिक नेतृत्व मजबूती के साथ स्थापित हो सका था। ऐसा इसलिए नहीं हुआ था कि परिष्कृत मशीनों व यन्त्रों की आवश्यकता इंग्लैण्ड में फ्रांस, जर्मनी या अन्य यूरोपीय राष्ट्रों की अपेक्षा अधिक तीव्रता से अनुभव की गयी थी और न ही ऐसा इसलिए हुआ कि ब्रिटेन शुद्ध-विज्ञानों (pure sciences) में किसी प्रकार का नेता था यद्यपि वहाँ भी डेवी (Davy), फैरेडे (Faraday), केवेंडिश (Cavendish) जैसे महान् वैज्ञानिकों ने सैद्धान्तिक विज्ञान के क्षेत्र में अपने-अपने महत्त्वपूर्ण योगदान दिये थे।

दो प्रमुख तत्त्व ऐसे रहे जिन्होंने आविष्कारों के क्षेत्र में भी इंग्लैण्ड को अगुआ बनाया। पहला तत्त्व तो यह था कि ब्रिटेन में आविष्कारों की जरूरत कम

से कम उतनी तो थी ही जितनी अन्य देशों में थी। दूसरा, औद्योगिक क्रान्ति की इस अवधि में ब्रिटिश वैज्ञानिकों का झुकाव व्यावहारिक पहलू की ओर अधिक रहा। जिन दिनों संकुचित दृष्टिकोण रखने वाले अन्य यूरोपीय देश बिजली, विद्युत् शक्ति व रासायनिक प्रतिक्रियाओं आदि के क्षेत्र में सैद्धान्तिक अनुसन्धानों में उलझे हुए थे उन दिनों ब्रिटिश वैज्ञानिकों ने अपने आपको उपलब्ध ज्ञान के ही व्यावहारिक उपयोग में लगा दिया। इन अधिकांश ब्रिटिश आविष्कारकों की शिक्षा दीक्षा नाममात्र की ही हुई थी किन्तु धैर्य के साथ प्रयोगों के माध्यम से इन लोगों ने ऐसे यन्त्र बनाये जिनका बहुत व्यावहारिक महत्त्व था। वॉट ने वाष्प को शक्ति के एक महान् स्रोत के रूप में विकसित किया। इन महान् ब्रिटिश आविष्कारकों ने इसी सिद्धान्त को चित्रित किया कि आवश्यकता आविष्कार का नेतृत्व करती है। यद्यपि यूरोप के अनुभव ने यही प्रदर्शित किया था कि आवश्यकता हमेशा आविष्कारों को पैदा नहीं करती।

(6) **बड़े पैमाने पर उत्पादन योग्य वस्तुएँ**—ऑग व शार्प के अनुसार अन्तिम तत्त्व जो ब्रिटेन को औद्योगिक क्रान्ति का नेता बनाने के लिए उत्तरदायी था वह यह रहा कि इंग्लैण्ड द्वारा उत्पादित निर्मित वस्तुएँ (manufactured goods), फ्रांस द्वारा उत्पादित वस्तुओं के विपरीत, कुछ इस प्रकार की थी कि उनके उत्पादन में अत्यधिक व्यक्तिगत कुशलता या कारीगरी की आवश्यकता नहीं पड़ती थी। इस प्रकार की वस्तुएँ निश्चय ही फैक्ट्री प्रणाली के अन्तर्गत बड़े पैमाने पर उत्पादन करने के लिए सर्वाधिक उपयुक्त थी। इस तरह फैक्ट्री प्रणाली के अन्तर्गत उत्पादित ब्रिटिश वस्तुओं की प्रगति के अवसर अच्छे थे जबकि यूरोप के अन्य देशों में बनने वाली कलात्मक वस्तुओं को निरन्तर धक्का लग रहा था।

ब्रिटिश आर्थिक इतिहासकार जार्ज साउथगेट ने लिखा है कि एक और तत्त्व भी ऐसा था जिसके कारण इंग्लैण्ड ऐसा देश बना जहाँ उद्योगों में सबसे पहले क्रान्ति हुई। साउथगेट के अनुसार ब्रिटेन को अनेक प्राकृतिक लाभ प्राप्त थे। इंग्लैण्ड की भौगोलिक स्थिति विश्व व्यापार के लिए सर्वाधिक उपयुक्त थी दुनिया का कोई भी भाग उसके जहाजों की पहुँच के परे नहीं था। उसके तट पर अनेक अच्छे बन्दरगाह थे तथा नौपरिवहन के लिए उपयोगी उसकी नदियाँ आन्तरिक जल यातायात के लिए काफी उपयोगी थी। एक द्वीप होने के कारण यूरोप से 14 मील चौड़ी इंग्लिश चैनल के कारण अलग होने से, उसे वह सुरक्षा प्राप्त थी जो यूरोप के किसी भी अन्य देश को प्राप्त नहीं थी। यही वह सबसे महत्त्वपूर्ण तत्त्व था जिसने इंग्लैण्ड को बार बार होने वाले युद्धों से उत्पन्न होने वाली बाधाओं से दूर ही रखा।

ब्रिटेन की जलवायु भी स्वास्थ्य के अधिक अनुकूल थी तथा उसमें काम करने की प्रवृत्ति को प्रोत्साहन मिलता था। तकनीकी कारणों से यह जलवायु वहाँ के वस्त्र उद्योग के लिए विशेष रूप से उपयुक्त था। प्राकृतिक संसाधन विशेषतया कोयला व लोहा प्रचुर मात्रा में उपलब्ध थे। यह कहने में कोई अतिशयोक्ति नहीं है कि यदि इंग्लैण्ड में इंजिनों तथा मशीनों के निर्माण के लिए लोहा उपलब्ध न होता तथा उसे गलाने के लिए व इंजिनों को चलाने के लिए कोयले का अभाव होता तो वहाँ शायद

औद्योगिक क्रान्ति कभी नही होती।

औद्योगिक क्षेत्र मे इग्लैण्ड के प्रथम रहने का एक प्रमुख कारण वहाँ की राजनीतिक एव वित्तीय स्थायित्व की स्थिति भी थी। 1688 के बाद इग्लैण्ड का सविधान बहुत ही सुदृढ आधार पर खडा कर दिया गया था। यूरोप के अधिकाश देशो ने इन सिद्धान्तो को उन्नीसवी शताब्दी के आरम्भ होने तक भी नही अपनाया था। जहाँ तक वित्तीय स्थायित्व का प्रश्न है, इग्लैण्ड की महान् व्यापारिक कम्पनियाँ देश मे प्रचुर मात्रा मे धन-सम्पदा ला रही थी। इस प्रवृत्ति ने, धार्मिक मान्यताओ से उत्पन्न मितव्ययिता की आदत के साथ मिलकर जो स्थिति पैदा की उससे पूँजी का सचय होना स्वाभाविक ही था और वही पूँजी उद्योगो के लिए उपलब्ध होने लगी।

औद्योगिक क्रान्ति के परिणाम मुख्य परिवर्तन और उनका स्वरूप

(1) **औजारो के स्थान पर मशीनो का प्रयोग**—औद्योगिक क्रान्ति का प्रथम परिणाम, बिर्नी के अनुसार, औद्योगिक तक्नीक मे होने वाला वह महत्त्वपूर्ण परिवर्तन था जिसे सक्षेप मे औजारो की जगह मशीनो के प्रयोग का नाम दिया जा सकता है। मशीनें और औजार दोनो ही भौतिक उपकरण होते है लेकिन औजारो को जहाँ हाथ मे काम लेना होता है वहाँ मशीन को चलाने के लिए भाप जैसी शक्ति का उपयोग किया जा सकता है। हवा और पानी के स्थान पर भाप की ताकत का उपयोग शुरू हुआ तथा भाप ने मशीनी तरीको से उत्पादन की तक्नीक को स्वीकारने की व्यावहारिकता का निर्माण किया। यही कारण है कि भाप के इन्जिन को सम्पूर्ण औद्योगिक क्रान्ति का केन्द्रीय तत्त्व माना गया है और जो सही भी है।

भाप द्वारा किसी भी चीज को चला सकने की शक्ति के विषय मे तो कई शताब्दियों से पता था किन्तु इस जानकारी को व्यावहारिक स्वरूप सत्रहवी शताब्दी मे ही मिल पाया। न्यूकॉमेन ने एक इन्जिन बनाया था जिसका उपयोग इग्लैण्ड मे अठारहवी सदी मे व्यापक रूप से किया गया। न्यूकॉमेन के इजिन की कमियो को जेम्स वॉट ने ठीक किया। किन्तु आरम्भिक वर्षों के इन आविष्कर्ताओ के प्रयत्नो मे इसलिए अधिक कठिनाई उपस्थित हुई क्योकि दक्ष कारीगरो व अभियन्ताओ का काफी अभाव था। अठारहवी शताब्दी के अन्त मे जाकर, वह भी वॉट व उसके सहयोगियो के प्रयासो से, देश मे प्रशिक्षित इजीनियरो का एक वर्ग तैयार हो पाया। यह कठिनाई 1794 मे और भी कम हो गयी जब मॉडस्ले (Maudsley) ने एक मशीनी औजार स्लाइड रेस्ट (slide rest) का आविष्कार किया। यह अकेला आविष्कार ही इतना महत्त्वपूर्ण था कि उसने इजीनियरिंग उद्योग मे क्रान्ति का द्वार खोल दिया।

(2) **कोयले व लोहे का व्यापक उपयोग**—पहले-पहले जो मशीनें बनी वे लकडी की थी इसलिए ज्यादा टिकाऊ नही थी। भाप का उपयोग शुरू होने पर मशीनो के निर्माण मे लोहे का उपयोग वाछनीय बन गया। लोहे को गलाने के लिए पहले जिस लकडी के कोयले का प्रयोग होता था उसके स्थान पर डर्बी के आविष्कार के बाद खनिज कोयले (coke) का उपयोग होने लगा। 1829 मे नेलसन (Neilson)

ने लोहा गलाने का एक नया तरीका खोज निकाला जिसे गर्म-भट्टी पद्धति (Hot Blast Method) का नाम दिया गया। इस पद्धति में कच्चे कोयले का उपयोग सम्भव बना और इसी ने भावी औद्योगिक समृद्धि की एक प्रकार से नींव डाली।

लोहा उद्योग विकास के साथ-साथ मशीनों को चलाने के लिए वाष्प शक्ति के बढ़ते हुए प्रयोग ने मिलकर औद्योगिक कार्यों के लिए कोयले की माग में निरन्तर वृद्धि की। फ्रांस जैसे देश औद्योगिक सर्वोच्चता के लिए हो रहे संघर्ष में गम्भीर रूप से पिछड़ गये क्योंकि वे कोयले के अभाव से ग्रस्त थे। इस बात का अन्दाजा इसी से लगाया जा सकता है कि 1913 में फ्रांस का कोयले का उत्पादन मात्र 41 मिलियन टन था जबकि उसी वर्ष में ब्रिटेन में कोयले का उत्पादन 292 मिलियन टन (7 गुने से भी अधिक) था। कोयले का अभाव फ्रांस के अधूरे और लड़खड़ाते हुए औद्योगीकरण के लिए प्रमुख उत्तरदायी कारण रहा।

(3) **फैक्ट्री प्रणाली का विकास**—अठारहवी तथा उन्नीसवी शताब्दी के दौरान ब्रिटिश उद्योगों द्वारा प्राप्त की गयी तकनीकी प्रगति ने वहाँ के औद्योगिक संगठन का स्वरूप ही बदल दिया। औद्योगिक क्रान्ति से पहले उद्योगों को छोटे पैमाने पर संगठित किया जाता था तथा औद्योगिक इकाई एक छोटा कारखाना (workshop) हुआ करता था। कुछ उद्योगों में छोटी-छोटी श्रेणियाँ (guilds) भी थी तथा श्रमिक घरेलू प्रणाली के अन्तर्गत (domestic system) संगठित थे। अपने छोटे से कारखाने में श्रमिक अपना मालिक स्वयं ही था।

औद्योगिक क्रान्ति ने छोटे कारखानों में उत्पादन की इस मध्ययुगीन प्रथा का अन्त कर दिया। मशीनों के प्रयोग ने एक ही भवन की छत के नीचे भारी संख्या में श्रमिकों के केन्द्रीकरण को बढ़ावा दिया। इन श्रमिकों पर नियोक्ता की ओर से कोई निरीक्षक या अभिकर्ता नियुक्त किया जाता था। कार्य-कुशलता की दृष्टि से फैक्ट्री प्रणाली की श्रेष्ठता के बारे में किसी प्रकार का सन्देह नहीं रह गया था। मशीन से बनी चीजों की प्रतिस्पर्द्धा में हाथ से सामान तैयार करने वाले श्रमिकों ने कुछ समय तक तो व्यर्थ संघर्ष किया और बाद में वे भी उसी 'घृणित' फैक्ट्री प्रणाली में सम्मिलित हो गये।

फैक्ट्री प्रणाली का अभ्युदय विशाल पैमाने पर उत्पादन करने की उस सामान्य प्रवृत्ति का केवल एक उदाहरण है जो आधुनिक औद्योगीकरण की मुख्य विशेषता बनी है। औद्योगिक इकाई के आकार में इस वृद्धि से व्यावसायिक इकाई के आकार में भी काफी वृद्धि हुई। व्यवसाय की एकल स्वामित्व प्रणाली का स्थान भागीदारी प्रथा ने लिया तथा भागीदारी प्रथा से सीमित दायित्व वाली कम्पनियों का निर्माण आरम्भ हुआ।

फैक्ट्री प्रणाली (factory system) की मुख्य विशेषता यह थी कि पूँजीपतियों के स्वामित्व वाले कारखानों में बड़ी संख्या में मजदूरों को भर्ती किया गया। इस बारे में बहुत ही सीधा-सादा तर्क दिया जा सकता है कि कताई-बुनाई की प्रक्रियाओं को लेकर हुए आविष्कारों या सुधारों ने आखिर क्यों-कर वस्त्र-मिलों को जन्म दिया। सबसे पहले तो यही कारण लिया जा सकता है कि नई मशीनें काफी

मँहगी थी। दूसरे, नई मशीनों को घर में ही रखकर कार्य कर सकना असम्भव हो चुका था। इन्ही कारणो से फैक्ट्री प्रणाली का विकास हुआ। फैक्ट्री प्रणाली सबसे पहले सूती वस्त्र के उत्पादन में फैली, उसके बाद चमडा उद्योग, ऊनी वस्त्र उद्योग, धातु उद्योग तथा अन्य कई उद्योगो में भी इस प्रणाली का विकास हुआ।

'उत्पादन की एक विशिष्ट इकाई', जैसा एक ब्रिटिश लेखक ने लिखा था, 'अब एक परिवार या कुछ लोगो का एक समूह कतई नही रह गयी थी जो सस्ते व सीधे सादे औजारो से थोडे से कच्चे माल को लेकर वस्तुएँ बनाती थी बल्कि वह सुगठित व सुसगठित श्रमिको का एक विशाल समूह बन चुकी थी जो हजारो-लाखो व्यक्तियो से मिलकर बनी थी तथा जो भारी मात्रा मे व पेचीदा मशीनो पर बडे पैमाने पर उत्पादन करने में सहयोग करती थी और जिसके हाथो से निरन्तर और विशाल परिमाण में कच्चा माल तैयार चीजें बनकर उपभोक्ताओ तक पहुँचता था।'

यही नई इकाई उन्नीसवी शताब्दी की फैक्ट्री थी।

(4) जनसख्या मे वृद्धि—औद्योगिक क्रान्ति के वर्षों मे ब्रिटिश जनसख्या मे बडी तेजी से वृद्धि हुई। 1801 में की गई जनगणना मे ब्रिटेन की जनसख्या केवल 9 मिलियन थी। यही जनसख्या 1851 तक दुगुनी हो गयी तथा 1901 तक फिर दुगुनी हो गयी। फ्रास मे इसी अवधि मे जनसख्या 50 प्रतिशत से भी कम बढी।

औद्योगिक क्रान्ति से पहले इग्लैण्ड की अधिकाश जनसख्या गाँवो मे रहती थी। लेकिन औद्योगिक परिवर्तनो के परिणामस्वरूप लोग लोहा व कोयला क्षेत्रो मे केन्द्रित होते चले गये और धीरे-धीरे स्थिति यह बनी कि 80 प्रतिशत के लगभग लोग कस्बो व शहरो मे रहने लग गये।

(5) विदेश व्यापार का विकास—विदेश व्यापार का विकास औद्योगिक क्रान्ति का कारण और परिणाम दोनो ही रहा। उन्नीसवी शताब्दी के आरम्भ मे सम्पूर्ण यूरोप मे ब्रिटेन ही एकमात्र औद्योगिक राष्ट्र था और इसलिए वह स्वाभाविक रूप से विश्व का कारखाना (workshop of the world) बन गया। इग्लैण्ड के उद्योग कम विकसित राष्ट्रो को निर्मित माल भेजते थे तथा उसके बदले में वे कच्चा माल तथा खाद्य पदार्थों का आयात करते थे। इस प्रकार का विनिमय ब्रिटेन के लिए बहुत ही लाभ का सौदा था क्योकि ब्रिटेन निर्मित माल बहुत ही सस्ती लागत पर तैयार करता था और उसे काफी ऊँचे मूल्य पर बेचता था। इस प्रकार एक निर्मित माल वाला देश (manufacturing country) होने से ब्रिटेन को लाभ ही लाभ था। 1913 मे ब्रिटेन के 80% निर्यात निर्मित वस्तुओ के थे जबकि उसके तीन-चौथाई आयात कृषि पदार्थों के थे।

(6) पूँजी को सर्वोच्च स्थान—औद्योगिक क्रान्ति का एक बहुत महत्त्वपूर्ण पहलू यह था कि उद्योग मे पूँजी का स्थान सर्वोच्च हो गया। मध्य युग मे पूँजी को उद्योगो मे महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त नही था अर्थात् मध्ययुगीन उद्योग पूँजी-प्रधान नही थे। श्रेणियो (guilds) में काम करने वाले कारीगर को अपना धन्धा जमाने के लिए थोडे मे और बहुत सस्ते किस्म के औजारो की आवश्यकता होती थी। यह कहना सही है कि वस्त्र उद्योग तो सोलहवी शताब्दी के बाद से ही किसी से किसी रूप मे

पूंजी-प्रधान रहा किन्तु तत्कालीन इकाइयो मे लगी हुई पूंजी की तुलना मे औद्योगिक क्रान्ति के दौरान स्थापित हुई विशाल औद्योगिक इकाइयो मे लगी हुई पूंजी का परिमाण अत्यधिक विशाल था।

(7) **कताई व बुनाई के लिए मशीनो का आविष्कार**—1733 मे जॉन के (John Kay) ने एक नई तकनीक फ्लाइंग शटल (flying shuttle) के लिए स्वत्वाधिकार प्राप्त किया जिससे बुनकरो की उत्पादकता इस सीमा तक बढ गयी कि कताई करने वालो के लिए उनकी सूत की मांग को पूरा कर पाना असम्भव-सा हो गया। जिस करघे को चलाने के लिए पहले दो आदमियों की आवश्यकता पड़ती थी वहाँ के (Kay) के आविष्कार के बाद केवल एक ही बुनकर काफी था तथा करघे की उत्पादकता भी पहले से दुगुनी हो चुकी थी। सूती धागे के लिए मांग उसकी पूर्ति की तुलना मे इतनी अधिक बढ चुकी थी कि 1761 मे दो इनामो को देने की घोषणा इस बात के लिए की गयी कि कोई ऐसे चरखे (spinning wheel) का आविष्कार करे जो एक ही समय मे एक से अधिक धागा बुन सके।

बिना किसी विलम्ब के 1764 मे जेम्स हारग्रीव्ज ने अपनी कताई-चरखी (spinning jenny) पूरी कर डाली जो एक सीधी सादी हाथ से चलने वाली मशीन थी। शुरू म तो इस चरखी पर एक साथ 8 धागे बन सकते थे जो बाद म 16, उसके बाद 20 तथा आविष्कर्ता हारग्रीव्ज के अपने जीवन-काल म ही 80 तक पहुँच गये। इसके अतिरिक्त हारग्रीव्ज की यह मशीन इतनी आसान थी कि कोई बच्चा भी उसे चला सकता था। किन्तु इस मशीन से बुना जाने वाला धागा इतना पतला होता था कि उसे सिर्फ बाने (weft) मे ही प्रयुक्त किया जा सकता था। इस कमी को रिचर्ड आर्करोइट ने 1771 मे दूर किया। उसने अपने नाम पर रजिस्टर्ड करवायी गयी नई मशीन वाटरफ्रेम (waterframe) बनाई जिसने न सिर्फ धागे को मजबूती प्रदान की बल्कि जिससे पहली बार सिर्फ कपास पर आधारित धागा बुनना सम्भव हुआ।

आर्कराइट द्वारा आविष्कृत वाटरफ्रेम (waterframe) वस्त्र निर्माण के इतिहास मे केन्द्रीय महत्त्व की घटना न केवल इसलिए मानी जाती है कि इसके बनने से पूर्णरूप से कपास पर आधारित कपडा बुनना सम्भव हो गया बल्कि इस आविष्कार का महत्त्व इसलिए भी है कि इसके दो जोडे रॉलर पानी या भाप की शक्ति से ही चल सकते थे जिन्हें घर पर या छोटे से कारखाने मे नहीं लगाया जा सकता था और जो बड़े कारखाने मे ही लाभप्रद हो सकते थे। 1779 मे सेम्युअल क्रॉम्पटन ने चर्ट्टी (mule) या म्यूल जेनी (mule jenny) का आविष्कार किया जिसमे उसने हारग्रीव्ज तथा आर्कराइट के आविष्कारो की अच्छाइयो का सम्मिश्रण कर लिया। इस म्यूल जेनी पर दो हजार तकुए एक साथ लगाये जा सकते थे तथा इसे एक अकेला आदमी चला सकता था। यह क्रॉम्पटन के आविष्कार का ही परिणाम था कि अच्छे किस्म का धागा देश मे पहली बार तैयार होने लगा जिससे इग्लैण्ड मे मलमल के उत्पादन की शुरुआत हुई।

कताई के क्षेत्र मे 1764 से 1779 के बीच जो महान् सुधार हुए उन्होंने कताई करने वालो तथा बुनकरो के बीच चले आ रहे परम्परागत सम्बन्धो को एकदम

उलट दिया। बुनाई के क्षेत्र मे के (Kay) द्वारा आविष्कृत फ्लाइंग शटल के बाद कोई नया आविष्कार नही हुआ इसलिए अब पिछड़ने की वारी बुनकरो की थी। 1784 के बाद डा० एडवर्ड कार्टराइट (Edward Cartwright) ने पहले शक्ति-चालित करघे के सिद्धान्तो का विकास किया जिसे पानी से चलाया जाना था। लेकिन उसके आविष्कार को मान्यता उन्नीसवी शताब्दी के प्रथम दशक मे ही मिल पायी 1809 मे ब्रिटिश ससद ने कार्टराइट को 10,000 पौण्ड का अनुदान स्वीकृत कर उद्योग के प्रति उसकी सेवाओ का सम्मान किया।

रेडक्लिफ, होरोक्स आदि ने मिलकर कार्टराइट द्वारा निर्मित करघे में इतने अधिक सुधार किये कि 1815 तक बुनकर भी कताई उद्योग की बराबरी मे आ गये। आरम्भ के वर्षो मे बुनाई घरेलू प्रणाली (domestic system) के अन्तर्गत की जाती थी किन्तु भाप की शक्ति का प्रयोग आरम्भ होने के बाद सन्तुलन कारखानो (factories) के पक्ष मे हो गया। इस तरह वस्त्र उद्योग को धीरे-धीरे औद्योगिक क्रान्ति के पर्यायवाची के रूप मे जाना जाने लगा।

औद्योगिक क्रान्ति के प्रभाव

(अ) आर्थिक एव सामाजिक प्रभाव—ब्रिटेन मे फैक्ट्री प्रणाली के विकास पर टिप्पणी करते हुए एक लेखक ने लिखा था कि 'महान् आविष्कारो ने फैक्ट्री मे जो किया वह यही था कि उन्होने हाथ से काम के स्थान पर यान्त्रिक सहायता की स्थापना कर दी।' कहने को तो वॉट, क्रॉम्पटन व कोर्ट के आविष्कारो से पहले भी ब्रिटेन मे कारखाने थे किन्तु उन्नीसवी शताब्दी मे जो फैक्ट्री प्रणाली विकसित हुई उसमें श्रमिक की मशीन के अधीन काम करने की बात सन्निहित थी। श्रम तथा पूंजी के बीच नये समीकरणो का निर्माण हुआ। मध्ययुगीन श्रेणी-सदस्य (guildsman) स्वय ही मजदूर और स्वय ही मालिक भी था। किन्तु फैक्ट्री प्रणाली के अन्तर्गत मालिक और मजदूर के बीच एक स्पष्ट रेखा खिंच गयी। एक तो न केवल कच्चे माल की पूर्ति करता था बल्कि कारखानो के भवनो तथा मशीनो का भी मालिक होता था जबकि दूसरा केवल मजदूरी के बदले काम करता था।

इस तरह औद्योगिक क्रान्ति ने एक ऐसा मजदूरो का विशाल वर्ग तैयार कर दिया जिनके पास बेचने के लिए अपने हाथो के श्रम के अतिरिक्त कुछ भी न था। वर्ग-सघर्ष के बीज बो दिये गये थे। इसके अतिरिक्त श्रमिको की सख्या अधिक होने का अर्थ यह था कि उनको मिलने वाली मजदूरी कम तथा काम के घण्टे अधिक रहते। श्रमिको को एव अमानवीय जीवन बिताने की स्थिति मे छोड दिया गया था।

फैक्ट्री प्रणाली का एक और प्रभाव यह हुआ कि औरतो और बच्चो से काम लेने की प्रथा आरम्भ हुई। मशीनो से काम लेने मे अधिक शक्ति का प्रयोग करने की आवश्यकता नही थी और स्त्रियां तथा बच्चे काम के लिए सस्ते रहते थ। यह प्रथा विशेष रूप से वस्त्र उद्योग मे खूब फैली। इसका अर्थ पुरुषो के लिए बेकारी था। कई बार तो ऐसा हुआ कि वयस्क व्यक्ति काम की तलाश ही करते रहते जबकि उनके बीवी-बच्चे परिवार की रोजी-रोटी की व्यवस्था करने वाले (breadvinner) बन जाते।

यद्यपि प्रत्येक आविष्कार का अन्तिम परिणाम यह हुआ था कि रोजगार में वृद्धि हुई किन्तु प्रारम्भ में उसके कारण कुछ लोगों को बेकार होना पड़ा। इसमें उत्पीड़न की स्थिति पैदा हुई तथा श्रमिक लोग ऐसे आविष्कारों के विरुद्ध हिंसक हो उठे। आविष्कारक हारग्रीव्ज को एक बार ऐसी ही हिंसक भीड़ का सामना करना पड़ा। लेकिन हाथ से काम करने के स्थान पर मशीनों के प्रतिस्थापन की प्रवृत्ति इतनी दृढ़ थी कि उसे मुट्ठी भर लोगों के हिंसक विरोधों से रोका नहीं जा सकता था। श्रमिक वर्ग को इस अपरिहार्यता को स्वीकार करना ही पड़ा।

औद्योगिक क्रान्ति के उद्भव ने व्यापार चक्रों की प्रक्रिया को भी जन्म दिया। इससे इंग्लैण्ड में तेजी और मन्दी की एक शृंखला-सी बन गयी। विनियोग के स्तर में होने वाले गम्भीर उतार-चढ़ावों ने मूल्यों तथा रोजगार के स्तर में भी भारी उच्चावचन पैदा किये। औद्योगिक क्रान्ति से पहले लोगों ने इस प्रकार की आर्थिक घटनाओं को घटित होते हुए कभी नहीं देखा था। इस तरह आर्थिक जड़ता की पिछली अनेक शताब्दियों की स्थिति यकायक पूरी तरह नष्ट हो गयी और उसके स्थान पर पूंजी-प्रधान तकनीक पर आधारित विशाल पैमाने के उत्पादन का एक नया युग आरम्भ हुआ।

आधुनिक ब्रिटिश औद्योगीकरण के जीवन के प्रारम्भिक वर्ष 1850 तक समाप्त प्राय हो चुके थे और उसी के साथ औद्योगिक क्रान्ति की भी विदाई हो गयी। बावजूद इसके कि औद्योगिक क्रान्ति ने अपने समय में कुछ पीढ़ियों को कष्ट और पीड़ा पहुँचाई थी, यह इंग्लैण्ड के आर्थिक इतिहास में घटने वाली सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण घटना थी। इंग्लैण्ड के आर्थिक जीवन में 1850 के बाद जो क्रान्तिकारी परिवर्तन आये तथा औद्योगिक क्रान्ति के दौरान हुए रूपान्तरण के कारण औद्योगिक उत्पादन में जो ज्यामितिक वृद्धियों का दौर शुरू हुआ वह उस औद्योगिक क्रान्ति का ही परिणाम था जो वहाँ अट्ठारहवीं तथा उन्नीसवीं शताब्दी में बड़े ही शान्त तरीके से होती चली गयी थी। औद्योगिक क्रान्ति ने ही विशिष्टीकरण (specialisation) की प्रवृत्ति को गति प्रदान की तथा उसके दौरान ही रेलमार्ग यातायात एवं जल-परिवहन के क्षेत्र में अनेकों क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए।

(ब) राजनीतिक प्रभाव—औद्योगिक क्रान्ति ने इंग्लैण्ड के राजनीतिक पटल पर भी अपना न मिटने वाला प्रभाव छोड़ा। औद्योगिक क्रान्ति से पहले ब्रिटिश संसद में भू-स्वामियों व सामन्त वर्ग के प्रतिनिधियों का ही बोलबाला था तथा सामान्य जनता की वहाँ अनदेखी की जाती थी। औद्योगिक क्रान्ति प्रारम्भ हो चुकने के बाद के कई वर्षों तक भी यह स्थिति बनी रही कि बरबाद हो रहे कस्बों या नाममात्र के गाँवों से कॉमन सभा (House of Commons) में प्रतिनिधि भेजे जाते रहे जबकि इस दौरान विकसित हुए नये औद्योगिक केन्द्रों में रहने वाली घनी आबादी को प्रतिनिधित्व नहीं दिया गया। यह विसंगति तब और भी गहरी होती चली गयी जब एक ओर तो औद्योगिक केन्द्रों की संख्या में निरन्तर वृद्धि हुई तथा दूसरी ओर उनका प्रतिनिधित्व सदन में नहीं बढ़ाया गया। भू स्वामियों ने इस बात के भरसक प्रयास किये कि जैसे भी हो औद्योगिक समुदाय के लोगों को राजनीति से अलग ही रखा

जाए किन्तु ससदीय सुधारो के लिए की जाने वाली मांग इतनी प्रभावी थी कि ऐसा बहुत अधिक समय तक कर पाना सम्भव नही रहा।

फिर भी यहाँ यह कहना गलत नही होगा कि श्रमिक-वर्ग को एक मान्यता प्राप्त राजनीतिक शक्ति बनने मे काफी लम्बा समय लगा तथा उन्हे सफलता भी काफी लम्बे सघर्ष के वाद ही मिल पायी। जो भी हो, आज की ब्रिटेन की लेबर पार्टी का जन्म औद्योगिक क्रान्ति के उन सघर्षमय वर्षों मे ही हुआ था। इग्लैण्ड के औद्योगिक क्षेत्र 'सर्वहारा वर्ग के गढ, श्रम सघवाद के किले तथा समाजवाद के बाल-निकेतन बन गये।'

औद्योगिक क्रान्ति के दौरान विश्व के अन्य देशो की अपेक्षा ब्रिटेन द्वारा की गयी प्रगति का ही यह परिणाम था कि इग्लैण्ड एक राजनीतिक महाशक्ति बन गया तथा उसकी यह राजनीतिक सर्वोच्चता द्वितीय महायुद्ध होने तक कायम रह सकी। फ्रास को नीचा दिखाने मे इग्लैण्ड को मिली सफलता भी वहाँ की औद्योगिक क्रान्ति का ही परिणाम थी। यह सही ही है कि 'खून और खजर के बूते पर नही बल्कि लोहे और कोयले की नीव पर ब्रिटिश साम्राज्य स्थापित किया गया था।'

तीसरा अध्याय

प्रमुख उद्योगों का विकास

(THE DEVELOPMENT OF MAJOR INDUSTRIES)

यन्त्रीकरण के क्षेत्र मे हुए अनेक आविष्कारो तथा औद्योगिक क्रान्ति के वर्षों मे सगठन सम्बन्धी हुए अनेक महत्त्वपूर्ण परिवर्तनो के परिणामस्वरूप सूती वस्त्र उद्योग, कोयला, लोहा व इस्पात तथा इजीनियरिंग जैसे अनेक प्रमुख उद्योगो मे पूरी तरह से उत्पादन का तौर-तरीका ही बदल गया। इन उद्योगो मे होने वाले उत्पादन मे उत्तरोत्तर वृद्धि हुई तथा लागतो मे भी भारी गिरावट आयी। फैक्ट्री-प्रणाली के अभ्युदय के बाद तो इन उद्योगो का पूरी तरह से कायापलट ही हो गया। औद्योगिक क्रान्ति के उन सघर्ष भरे वर्षो मे इन प्रमुख उद्योगो का जो इस तरह रूपान्तरण हुआ वह ब्रिटिश आर्थिक इतिहास की नि सन्देह महानतम घटना कही जा सकती है।

1 सूती वस्त्र उद्योग

जिन चार महान् आविष्कारो ने ब्रिटेन के सूती वस्त्र उद्योग की तकदीर ही पलट दी उनकी शुरुआत 1733 मे जॉन के (John Kay) द्वारा आविष्कृत फ्लाइग शटल (flying shuttle) से हुई थी। इस आविष्कार का अनुकरण 1767 मे हारग्रीब्ज (Hargreaves) की स्पिनिंग जेनी (spinning jenny), 1769 मे आर्कराइट द्वारा आविष्कृत वाटर फ्रेम (water frame) तथा 1776 मे सेम्युल क्रॉम्पटन द्वारा तैयार की गयी म्यूल जेनी (mule jenny) द्वारा किया गया। इसके बाद जब 1785 मे एडमण्ड कॉर्टराइट (Edmund Cartwright) ने शक्ति चालित करघे का निर्माण कर लिया ग्रेट ब्रिटेन के सूती वस्त्र उद्योग मे एक तरह से सम्पूर्ण क्रान्ति आ गयी।

अठारहवी शताब्दी के प्रारम्भिक वर्षों मे सूती चीजो का उत्पादन काफी नगण्य व अमहत्त्वपूर्ण ही था। इसकी जगह ऊनी चीजो का उत्पादन काफी लोकप्रिय था तथा सूत की बनी चीजो का भारत से आयात किया जाता था। 1720 के बाद भी लगभग 50 वर्षो तक ब्रिटेन ऐसे धागे का उत्पादन करता था जो सूत और सन (linen) का मिश्रण होता था।

1707 मे औरगजेब की मृत्यु के बाद भारत मे लगभग अराजकता की स्थिति फैल गयी तथा भारत पर अपना-अपना आधिपत्य जमाने मे फ्रास तथा इग्लैण्ड के बीच सघर्ष छिड गया। अराजकता की इस स्थिति मे भारत से सूत की बनी चीजो के ब्रिटेन में आयात मे बाधा उपस्थित हुई तथा अग्रेज व्यापारियो ने इस अवसर का

उपयोग भारत से कपास का आयात करने में किया।

ऐसा इसलिए किया गया क्योंकि ग्रेट ब्रिटेन में सूती वस्त्र मिलों का तो निर्माण औद्योगिक क्रान्ति के विभिन्न आविष्कारों के कारण हो चुका था किन्तु वहाँ पर कपास का उत्पादन बिलकुल भी नहीं होता था। अब तक 1769 में आकराइट द्वारा आविष्कृत वाटर फ्रेम की वजह से इंग्लैण्ड में ऐसा मजबूत सूती धागा भी बनाया जाने लगा था जिसका उपयोग ताने (warp) के रूप में किया जा सकता था। इसका परिणाम यह हुआ कि अब इंग्लैंड में पूरी तरह से सूती वस्त्र का उत्पादन कर सकना सम्भव हो गया। तीसरा तत्त्व, जिसने इंग्लैण्ड के सूती वस्त्र उद्योग के विकास को बढ़ावा दिया वह यह था कि वहाँ की सरकार ने 1774 में छपे हुए सूती कपड़ों पर लगे हुए प्रतिबन्ध को हटा लिया था। चौथा तत्त्व जिसने अन्तिम रूप से सूती वस्त्र उद्योग के विकास को प्रोत्साहन दिया वह संयुक्त राज्य अमरीका के दक्षिणी राज्यों में कपास की बड़े पैमाने पर खेती आरम्भ कर दिया जाना था। इसका परिणाम यह रहा कि अठारहवीं शताब्दी के अन्त तक इंग्लैण्ड के सूती वस्त्र उद्योग के लिए कपास अपरिमित मात्रा में आयात कर सकने का यह एक प्रमुख स्रोत बन गया।

उद्योग का स्थानीयकरण (Localisation of Industry)

अनेक कारणों से सूती वस्त्र उत्पादन के लिए सर्वाधिक उपयुक्त स्थान इंग्लैण्ड में लंकाशायर बना। सूती धागे के उत्पादन के लिए गीली जलवायु की आवश्यकता होती है तथा लंकाशायर में वर्षा की अधिकता के कारण वहाँ की जलवायु में सदैव नमी बनी रहती है। लंकाशायर में झरने भी थे जो तब उपयोगी थे जब जल-शक्ति का उपयोग किया जाता था। जब कोयले का उपयोग भाप बनाने के लिए किया जाने लगा तब भी यही स्थान सूती वस्त्र उद्योग के लिए उपयुक्त रहा क्योंकि इंग्लैण्ड में कोयले के भण्डार भी इसी क्षेत्र में पड़ते थे। लीवरपूल में स्थित लंकाशायर काउंटी (जिला) में एक अच्छा बन्दरगाह भी था जो कपास का आयात करने तथा निर्मित सूती वस्त्र का निर्यात करने के लिए उपयुक्त था। इन सभी कारणों से लंकाशायर ही सूती वस्तुओं के उत्पादन के लिए सबसे उपयुक्त जगह थी। सूती वस्त्र उद्योग काफी सुसंगठित भी हो गया तथा उसके बाजार व व्यापार मार्ग भी लगभग निर्धारित हो गये। सूती वस्त्र उद्योग की विभिन्न क्रियाओं ने लंकाशायर में इतनी विशिष्टता और कुशलता प्राप्त कर ली थी कि पूरे देश में उसका कोई मुकाबला नहीं था। इसके अतिरिक्त वहाँ अनेक सहायक उद्योग धन्धे भी खुल गये थे।

सर्वोच्च शिखर पर

इंग्लैण्ड में सूती वस्त्र उद्योग का आरम्भ अठारहवीं शताब्दी में हुआ था जबकि ऊनी वस्त्रों का उत्पादन वहाँ सैकड़ों वर्षों से होता आया था। कच्ची ऊन की पूर्ति वहाँ सीमित थी। दूसरी तरफ आयातित कपास ऊन के मुकाबले सस्ता भी था और बाहर से आयात किये जाने के उपरान्त उसकी पूर्ति लगभग असीमित थी।

कातने व बुनने के तरीके भी बहुत समय तक अपरिवर्तित रहे तथा उनमे मानवीय हाथो के श्रम का ही उपयोग होता रहा। 1790 मे कार्टराइट द्वारा ऊन साफ करने की एक मशीन का आविष्कार किये जाने से पहले ऊन साफ करने का काम हाथो द्वारा ही किया जाता था। चर्ख़ियो (mules) का ऊन साफ करने के लिए काम उपयोग काफी बाद मे शुरू हुआ। ऊनी वस्त्र बनाने के लिए शक्ति चालित करघे का उपयोग 1824 के बाद ही शुरू हुआ हालाकि 1850 तक भी हाथ से ही ऊनी कपडे बुनने की प्रथा समाप्त नही हुई थी।

ऊन के उत्पादन मे न्यू साउथ वेल्स (new south wales) म 1805 के बाद बडे बडे भेड फार्मो की स्थापना के बाद काफी वृद्धि हो गयी। 1830 के बाद ऊन का आयात भी शुरू हो गया था। लेकिन इन सब परिवर्तनो के बावजूद इग्लैण्ड के ऊनी वस्त्र उद्योग को उसका पुराना स्थान वापस नही मिल पाया। 1830 के बाद तो लगभग प्रति वर्ष सूती वस्त्र उद्योग ने ऊन उद्योग को विस्थापित करना आरम्भ कर दिया तथा उसकी सर्वोच्च स्थिति को छीन लिया। ऊन उद्योग को दूसरे स्थान पर ढकेल दिया गया था।

सन उद्योग (linen industry) इग्लैण्ड मे कभी महत्त्वपूर्ण नही रहा। कम से कम सूती वस्त्र या ऊनी वस्त्र उद्योग के मुकाबले मे तो कभी नही। इस उद्योग मे भी मशीनो का उपयोग 1840 के बाद ही सामान्य बना यद्यपि बुनाई के क्षेत्र मे इस उद्योग मे मशीनो को 1860 से पहले स्वीकार नही किया गया था। रेशम उद्योग भी इग्लैण्ड मे शताब्दियो से विद्यमान था किन्तु वह भी सत्रहवी सदी के अन्त मे ही महत्वपूर्ण बना। अठारहवी शताब्दी के पूर्वार्द्ध मे रेशम उद्योग ने भी ऊनी उद्योग के साथ मिलकर कुछ ऐसे कानून बनवाये जिनसे सूती वस्त्र उद्योग के विकास मे बाधा पडी। मशीनो के उपयोग के अठारहवी व उन्नीसवी शताब्दी मे प्रारम्भ हो जाने तथा कुछ सरक्षण प्राप्त होने से रेशम उद्योग उन्नीसवी सदी के मध्य तक फलता-फूलता रहा। किन्तु इग्लैण्ड के रेशम उद्योग को फ्रास की प्रतिस्पर्द्धा तथा 1860 के बाद उस पर लगे सरक्षणवादी तटकरो को हटा लेने की क्रिया ने समाप्त प्राय कर दिया।

वस्त्र सफेद करने की कला (bleaching) तथा रगाई के क्षेत्र मे आयी क्रान्ति ने भी, जो सूती वस्त्र उत्पादन के लिए अनुकूल थी, उद्योग को चरमबिन्दु पर ले जाकर स्थापित कर दिया। पुराने समय मे सूती वस्त्र को सफेद करने मे कई महीनो का समय लग जाता था और काफी स्थान की भी आवश्यकता होती थी क्योकि हर गज टुकडे को धूप मे फैला-फैलाकर सुखाना पडता था। क्लोरीन की सहायता से ब्लीचिंग कर सकने की खोज उद्योग के लिए भाग्यशाली रही। अब सूती कपडे को सफेद करने मे कुछ ही दिन लगने लगे। औद्योगिक क्रान्ति के आरम्भ से ही नई रगाई तकनीको (new dyes) का आविष्कार हो रहा था। किन्तु टॉमस बेल (Thomas Bell) के बेलनाकार छपाई (cylindrical printing) के आविष्कार ने सूती वस्त्रो की रगाई मे नई क्रान्ति ला दी। इस अकेले आविष्कार ने सूती वस्त्र उद्योग को सर्वोच्च स्थिति प्रदान कर दी।

सूती वस्त्र उद्योग के बारे मे आँकडो से यही इगित होता है कि उन्नीसवी शताब्दी के पहले 60 वर्षों मे उसमे निरन्तर प्रगति हुई। इस अवधि मे सूती वस्त्र तैयार करने के लिए जितने यन्त्रीकृत तरीके अपनाये गये उन सभी का इतने कम स्थान मे तो उल्लेख करना भी सम्भव नही है। 1830 मे आविष्कृत गोलाकार कताई मशीन (ring spinning frame), हेलमेन (Heilmann) द्वारा 1847 मे बनायी गयी कपास साफ करने की मशीनें तथा शताब्दी के अन्त मे बने नॉर्थ्रप करघे (Northrop Loom) जैसे आविष्कारो का विशेष उल्लेख किया जा सकता है। इन आविष्कारो के बाद सूती वस्त्र निर्माण की प्रत्येक क्रिया मे मशीनो का उपयोग बढता गया तथा उद्योग के भीतर ही विशिष्टीकरण को भी और बढावा मिला। कताई तथा बुनाई अब दो अलग अलग विभाग बन गये तथा ऊन व सूत दोनो ही में ब्लीचिंग का काम व रगाई का काम अलग अलग उद्योगो के रूप मे किया जाने लगा।

इग्लैण्ड के सूती वस्त्र उद्योग को सबसे पहला गम्भीर झटका अमरीकी गृह युद्ध के समय लगा। अमरीकी सघीय नौसेना द्वारा दक्षिणी राज्यो के सभी बन्दरगाहो की नाकेबन्दी कर दिये जाने से लकाशायर को पहुँचने वाला कच्चा माल बन्द हो गया। अन्य स्रोतो से कच्चा माल प्राप्त करने की चेष्टाएँ अपर्याप्त रही। रूई कपडा मिलो को बन्द कर देना पडा। इससे मिल मालिको को भारी वित्तीय नुकसान उठाना पडा तथा एक बहुत बडी सख्या मे श्रमिक भी बेकार हो गये। लेकिन वस्त्र उद्योग ने इस विपत्ति का साहस व धैर्य के साथ मुकाबला किया। पुन पूर्व स्थिति मे पहुँचने मे काफी समय लग गया।

अमरीकी गृह-युद्ध के कडवे अनुभव ने लकाशायर के वस्त्र निर्माताओ को भारत, दक्षिणी अफ्रीका तथा आस्ट्रेलिया जैसे देशो से कपास की पूर्ति प्राप्त करने की सम्भावना को प्रोत्साहित करने के लिए बाध्य कर दिया। भारत मे रलो के निर्माण से यह प्रक्रिया और भी आसान हो गई तथा उन्नीसवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध मे ब्रिटेन ने भारत तथा मिस्र से भारी मात्रा मे कपास का आयात किया। मिस्र से प्राप्त रूई अच्छी किस्म की मानी जाती थी और वह अमरीकी रूई के समकक्ष ही थी।

रूई की पूर्ति के अभाव के भय स बीसवी शताब्दी के आरम्भ होते ही 1902 मे ब्रिटिश कपास उत्पादक सघ का गठन किया गया। इस सस्था ने ब्रिटिश उष्ण जलवायु वाले उपनिवेशो मे कपास की खेती को बढावा देने के उद्देश्य से भारी मात्रा मे रकम लगाई। इसका परिणाम यह रहा कि भारत तथा वेस्टइण्डीज मे कपास की किस्म मे भी सुधार हुआ तथा उसका उत्पादन भी बढा।

प्रथम महायुद्ध छिड जाने से भी ब्रिटिश सूती वस्त्र उद्योग को भारी धक्का लगा। दूर-दराज के देशो से समुद्री मार्ग द्वारा कपास का आयात करना बहुत कठिन बन गया। कच्ची रूई की कमी आ जाने के कारण युद्ध की अवधि के दौरान सूती वस्त्र उद्योग को कपास नियन्त्रण समिति (Cotton Control Committee) के अधिकार क्षेत्र के अन्तर्गत ले आया गया। कपास का राशनिग करना पडा। युद्ध के कारण जहाजो को अन्य स्थानो पर भेजना पडा जिससे कई बाजार हाथ से निकल गये।

प्रथम विश्व-युद्ध के बाद सूती वस्त्र उद्योग

प्रथम विश्व-युद्ध के समाप्त होने के तुरन्त बाद ब्रिटिश सूती वस्त्र उद्योग के लिए उपनिवेशो से वस्त्र की माँग मे एक अस्थायी उफान आया। किन्तु उसके बाद पुन: अवनति आरम्भ हो गई। 1924 तक तो सूत व कपडे के उत्पादन मे एक-तिहाई गिरावट आ चुकी थी। 1911 से 1924 के बीच लगभग 50,000 श्रमिक बेकार हो गये। सूती वस्त्र उद्योग की अवनति का प्रमुख कारण यह था कि उद्योग के हाथ से भारत तथा चीन जैसे बडे बाजार हाथ से निकल गये थे। ये दो देश ब्रिटिश सूती वस्त्र उद्योग के कुल उत्पादन का लगभग दो-तिहाई माल खरीदते थे। 1913 से 1929 के बीच ब्रिटिश सूती वस्त्र उद्योग ने इन दोनो देशो मे क्रमश 58 तथा 71 प्रतिशत बाजार खो दिये थे। ऐसा इसलिए हुआ कि युद्ध के बाद जापान एक शक्तिशाली प्रतिस्पर्द्धी के रूप मे अवतरित हुआ तथा चीन व भारत मे स्थानीय स्तर पर भी सूती वस्त्र उद्योग काफी पनप गया। 1930 तक इन देशो मे स्थानीय सूती वस्त्र उद्योग वहाँ की आधी जरूरतें पूरी करने लग गया था तथा ब्रिटेन का भाग (वहाँ की कुल माँग मे) जो प्रथम युद्ध से पूर्व 71 प्रतिशत तक था, वह गिरकर 29 प्रतिशत पर आ गया।

पहले महायुद्ध के बाद ब्रिटिश सूती वस्त्र उद्योग की अवनति काफी अशो तक इन वर्षों मे जापानी वस्त्र उद्योग की तीव्र प्रगति का भी परिणाम मानी जा सकती है। प्रथम विश्व-युद्ध के बाद जापान को न केवल भारतीय बाजार पर अधिकार करने मे सफलता मिल गयी बल्कि चीन के बाजार मे भी उसका प्रतिशत भाग 1913 के 22 से बढकर 1929 मे 67 हो गया। ब्रिटिश सूती वस्त्र उद्योग की अवनति को अधिक तीव्र बना देने के लिए कुछ ऐसे तत्त्व भी उत्तरदायी थे जो उसके बस के बाहर थे। कच्चे माल के स्रोत से बहुत दूर लकाशायर मे सूती वस्त्र उद्योग के स्थानीयकरण का एक प्रमुख कारण यही था कि प्रथम महायुद्ध से पहले तक ग्रेट ब्रिटेन मे उद्योगो तथा यातायात के क्षेत्र म एक व्यापक क्रान्ति हो चुकी थी। इसके अतिरिक्त सुदूर पूर्व के देश औद्योगीकरण मे बहुत धीमे थे। लेकिन प्रथम महायुद्ध के बाद पूर्वी देशो मे भी उद्योगो का विकास आरम्भ हो गया था। इसके अतिरिक्त पूर्वी देशो को एक स्वाभाविक लाभ तो यह था कि उनके पास कच्चे माल का भण्डार था तथा दूसरी ओर उनके यहाँ विशाल स्थानीय बाजार भी उपलब्ध थे। इन बदली हुई परिस्थितियो को ध्यान म रखते हुए कई लेखको ने तो यहाँ तक मान लिया कि लकाशायर के वस्त्र उद्योग की समाप्ति सिर्फ थोडे से समय का प्रश्न रह गया है।

1930 की महान् मन्दी

1930 मे महान् मन्दी की स्थिति ने आग मे घी झोकने का ही काम किया और ब्रिटिश सूती वस्त्र उद्योग की हालत और भी गम्भीर हो गयी। सूत की बनी चीजो का निर्यात 1932–33 मे 1910–11 के मुकाबले एक-तिहाई रह गया। पूर्वी देशो के कृषको के पास विद्यमान क्रय-शक्ति का अभाव होने (क्योकि कृषि पदार्थो के

मूल्यों में मन्दी के कारण भारी गिरावट आ चुकी थी) तथा जापान द्वारा गलाकाट प्रतियोगिता करने से भी ब्रिटिश सूती वस्त्र उद्योग में 1930 के बाद भारी गिरावट आती चली गयी। इसके अतिरिक्त भारत की स्थानीय कपड़ा मिलों ने भी अपना उत्पादन अत्यधिक बढ़ा लिया था। इन सब तत्त्वों ने मिलकर लकाशायर की सूत की बनी चीजों की मांग में अस्थायी नहीं बल्कि स्थायी कमी कर दी।

ब्रिटिश सूती वस्त्र उद्योग की हालत निरन्तर गम्भीर होती जा रही थी और महान् मन्दी के वर्षों में उसे सुधारने के लिए कोई सन्तोषप्रद हल नहीं ढूंढा जा सका था। इस बीच ब्रिटिश सूती वस्त्र उद्योग को एक धक्का तब और लगा जब भारतीय तथा जापानी सूती वस्त्र मिलों ने उत्पादन के ऐसे तरीके अपनाने आरम्भ कर दिये कि जिनसे सूत की बनी वस्तुओं की उत्पादन लागत एकदम नीचे आ गयी। इस तरह 1930 के बाद ब्रिटिश सूती वस्त्र उद्योग के सामने फिर एक बार अपने यहाँ बनने वाली सूती वस्तुओं की उत्पादन लागत घटाने का प्रश्न उठ खड़ा हुआ। इस काम को प्रारम्भ करने का अर्थ था सम्पूर्ण उद्योग का पुनर्गठन तथा बीमार व पुरानी पड़ चुकी औद्योगिक इकाइयों को सूती वस्त्र उत्पादन के क्षेत्र से निकाल बाहर करना। 1928 में समूह बनाने की नीति (policy of combination) प्रारम्भ की गयी जिसके अन्तर्गत रूई व्यापार संस्थान की एक संयुक्त समिति (joint committee of cotton trade organisation) गठित की गयी। इस समिति के गठन का उद्देश्य अन्तिम रूप में देश के एक करोड़ तकुओं तथा 30,000 करघों पर नियन्त्रण स्थापित करना था। किन्तु सूती वस्त्र उद्योग में बहुत बड़ी मात्रा में बेकार पड़ी क्षमता विद्यमान थी और जब तक उसमें लगी पूँजी को बट्टा खाते नहीं लिख दिया जाता (write-off) तब तक सम्पूर्ण उद्योग की वित्तीय स्थिति नहीं सुधर सकती थी। किन्तु यह सारी व्यवस्था चूँकि ऐच्छिक थी इसलिए इसे अधिक समर्थन नहीं मिल पाया। वह सफल नहीं हो पायी।

अन्त में, सरकार ने स्थिति को सुधारने तथा उद्योग को आधुनिक बनाने के उद्देश्य से एक तकुआ बोर्ड (spindle board) 1936 में गठित किया। पुराने तकुओं को निकाल बाहर फेंकने व उद्योग की क्षमता में सुधार करने का निश्चय किया गया। 1939 तक बोर्ड ने लगभग 40 लाख तकुओं को निकाल बाहर किया था। सितम्बर 1939 में सरकार ने एक और व्यापक उपाय किया जिसके अन्तर्गत सूती वस्त्र उद्योग पुनर्गठन विधेयक पारित किया गया। सरकार द्वारा किये गये इन प्रयासों का परिणाम भी अच्छा निकला तथा सूती वस्त्र उद्योग ने कुछ सीमा तक अपनी खोई हुई शक्ति पुनः प्राप्त की। किन्तु इसके बावजूद 1939 में स्थिति यह थी कि लगभग एक लाख से अधिक मजदूर बेकार थे तथा सूती वस्त्र उद्योग में लगी हुई एक-तिहाई मशीनरी बेकार पड़ी हुई थी।

द्वितीय विश्व-युद्ध और सूती वस्त्र उद्योग[1]

द्वितीय विश्व-युद्ध के छिड़ने के साथ ही सेना के लिए कपड़े बनाने के भारी मात्रा में ऑर्डर्स (orders) मिले जिससे सूती वस्त्र उद्योग को काफी प्रोत्साहन

मिला। लेकिन युद्ध छिड जाने का एक परिणाम यह भी हुआ कि उद्योग पर लगे सरकारी नियन्त्रण और भी कडे हो गये। इसके अतिरिक्त समुद्री मार्ग असुरक्षित हो गये तथा अनेक व्यापारिक जहाजो को सैनिक कार्यों मे लगा दिया गया। 1940 तक तो सूती वस्त्र उद्योग के सामने श्रमिको तथा कच्चे माल की बेहद कमी आ खडी हुई। सरकार ने दो नई केन्द्रीय सस्थाएँ कपास बोर्ड (cotton board) तथा कपास नियन्त्रण सस्था (cotton control body) स्थापित की। 1941 मे कपास की सीमित पूर्ति की व्यवस्था (limitation of supplies orders) के अन्तर्गत मिलो को रुई की पूर्ति तीन महीनो मे एक बार की जाने लगी तथा नागरिको को दिये जाने वाले कपडो पर भी कुछ प्रतिबन्ध लगा दिये गये। ब्रिटेन के व्यापार बोर्ड (board of trade) ने यह सलाह दी कि रुई के अभाव को देखते हुए सूती वस्त्र के उत्पादन को केन्द्रीकृत कर दिया जाना चाहिए। इस नवीन व्यवस्था के अन्तर्गत दो-तिहाई चुनी हुई मिलो को तो सूती कपडे का उत्पादन करते रहने की अनुमति प्रदान की गयी लेकिन शेष एक-तिहाई मिलो को बन्द कर दिया गया।

सूती वस्त्र के उत्पादन मे इस केन्द्रीकरण ने एक नई समस्या उत्पन्न कर दी। कई सारी मिले बन्द कर दिये जाने से मजदूर वर्ग सूती वस्त्र उद्योग से असन्तुष्ट हो गया। सूती वस्त्र उद्योग मे लगे हुए अनेक श्रमिको ने युद्ध के दौरान उपलब्ध अनेक वैकल्पिक काम ढूँढ लिये तथा सूती वस्त्र उद्योग को एकदम छोड दिया। परिणाम यह रहा कि सूती वस्त्र उद्योग मे काम करने वाले श्रमिको की सख्या दिसम्बर 1939 के 3 87 लाख के स्तर से गिरकर दिसम्बर 1943 तक 2 29 लाख के स्तर पर आ गयी।

सूती वस्त्र उद्योग मे द्वितीय विश्व-युद्ध के दौरान रोजगार

वर्ष	कुल रोजगार (हजारो मे)
1939	387
1940	377
1941	266
1942	247
1943	229
1944	237
1945	256

जब 1945 मे दूसरा महायुद्ध समाप्त हुआ तो सूती वस्त्र उद्योग को पुन शान्तिकालीन परिस्थितियो के अनुरूप ढालना आवश्यक हो गया। सम्पूर्ण सूती वस्त्र उद्योग के पुनर्गठन का एक तीव्र कार्यक्रम आरम्भ किया गया। इन प्रयत्नो का परिणाम यह रहा कि 1951 तक तो सूती वस्त्र उद्योग के उत्पादन मे वृद्धि होती रही लेकिन उसके बाद फिर एक बार उसे धक्का लगा जब विदेशो मे ब्रिटेन मे बने

कपड़े की माँग में भारी गिरावट आ गयी। कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि सूती वस्त्र उद्योग के लिए द्वितीय विश्व-युद्ध के बाद उत्पादन, रोजगार तथा निर्यात के क्षेत्र मे भयकर उतार-चढ़ावो का युग प्रारम्भ हो चुका था।

सूती वस्त्र उद्योग मे रोजगार उत्पादन तथा निर्यात

वर्ष	रोजगार ('000 मे)	सूत उत्पादन (मि० पौंड)	वस्त्र उत्पादन (मि० गज)	सूत निर्यात (मि० पौंड)
1937	359	1,376	4,124	159
1946	240	781	1,974	19
1951	319	1,077	2,961	65
1958	239	774	2,030	27

उपर्युक्त आँकड़ो को देखने से यह बात तो काफी स्पष्ट हो जाती है कि द्वितीय विश्व-युद्ध के बाद से ब्रिटिश सूती वस्त्र उद्योग सकट की अवस्थाओ से गुजरता रहा है। ऐसे कई कारण रहे है जिन्होने मिलकर ब्रिटिश सूती वस्त्रो की अन्तर्राष्ट्रीय बाजार मे स्थिति को काफी कमजोर बना दिया है। इन कारणो मे से कुछ मुख्य कारण निम्न हैं .

(1) ब्रिटिश सूती वस्त्र उद्योग जो कि औद्योगिक क्रान्ति के पूर्ण एकाधिकार वाले स्वर्णिम दिनो मे पनपा था (जब सभी औपनिवेशिक बाजारो पर ब्रिटेन का पूर्ण नियन्त्रण था) अब ऐसी स्थिति मे पहुँच गया है जहाँ उसे जापान, भारत तथा कुछ यूरोप के देशो मे घोर प्रतिस्पर्द्धा का सामना करना पड रहा है। विश्व बाजार मे उसका पूर्ण एकाधिकार समाप्त हो गया है। इतना ही नही, अब इग्लैण्ड का घरेलू बाजार भी राष्ट्र कुल के देशो से आने वाले सूती सामान से भर गया है।

(2) पिछले कुछ वर्षो से विश्व मे कई अन्य धागे जैसे कृत्रिम रेशम, नाइलॉन, टैरेलिन, कृत्रिम धागा (acrylic fibre) आदि भारी मात्रा मे तैयार किये जा रहे हैं। इन्हें रासायनिक प्रक्रिया द्वारा तैयार किया जाता है। ये धागे अधिक टिकाऊ होते है, देखने मे ज्यादा खूबसूरत और बनाने मे कम खर्चीले होते है। इनके अत्यधिक उत्पादन ने सूती वस्त्र की माँग को विपरीत रूप से प्रभावित किया है तथा सूती कपडो के स्थान पर अब इनका प्रयोग किया जाने लगा है।

(3) अपने प्रतिस्पर्द्धी जापान द्वारा काम मे ली जा रही आधुनिक मशीनो व उपकरणो की तुलना में ब्रिटिश सूती वस्त्र उद्योग द्वारा प्रयुक्त मशीनें पुरानी और दिनातीत (outdated) हैं तथा उनको बदलने की प्रक्रिया भी काफी धीमी है। यहाँ तक कि ब्रिटिश सूती वस्त्र उद्योग द्वारा प्रयुक्त उत्पादन की तकनीको के मुकाबले जापान की तकनीक मे अत्यधिक सुधार हो चुका है। इन बातों का परिणाम यह हुआ है कि ब्रिटिश सूती वस्त्र उद्योग अपने प्रतिस्पर्द्धियो से प्रभावशाली ढग से मुकाबला करने की स्थिति मे नही रह गया है। यही वजह है कि अब जापानियो ने

सूती वस्त्र के उत्पादन मे विश्व मे प्रधानता की स्थिति बना ली है।

(4) नये विनियोगकर्ता सूती वस्त्र उद्योग मे अपनी पूंजी लगाने मे अधिक हिचकिचाहट प्रदर्शित करते रहे है क्योकि अब यह स्पष्ट हो चला है कि इस उद्योग का भविष्य उज्ज्वल नही है। इस स्थिति ने भी सूती वस्त्र उद्योग के आधुनिकीकरण को अत्यधिक कठिन बना दिया है।

(5) एक ओर प्रतिस्पर्द्धी देश जापान और भारत को यह लाभ प्राप्त है कि वहाँ सस्ता श्रम उपलब्ध है जिसे काम मे लेकर वे अपनी उत्पादन लागत कम रख सकते हैं तो दूसरी ओर ब्रिटिश सूती वस्त्र उद्योग मे अभी भी अत्यधिक कुशल श्रमिको को लिया जा रहा है जिन्हे बहुत ऊँची तनख्वाहें देने की जरूरत पडती है। इसका परिणाम यह है कि ब्रिटिश सूती माल की उत्पादन लागत अपेक्षाकृत ऊँची रहती है।

इस बारे मे तो अब रचमात्र भी सन्देह नही रह गया है कि ब्रिटिश सूती वस्त्र उद्योग के लाभ कमाने के दिन समाप्त हो गये हैं। उपनिवेशो के समाप्त हो जाने तथा चारो तरफ शक्तिशाली प्रतिस्पर्द्धियो से घिर जाने के साथ ही ब्रिटिश सूती वस्त्र उद्योग एक दूसरे ही युग मे प्रवेश कर चुका है। लेकिन इन निराशाजनक प्रवृत्तियो के उभरने का यह अर्थ नही लगाया जाना चाहिए कि ब्रिटिश सूती वस्त्र उद्योग का भविष्य एकदम अन्धकारपूर्ण हो चुका है। सच्चाई यह है कि आज तक भी सूती वस्त्र उद्योग ब्रिटेन मे तैयार माल वाले उद्योगो (manufacturing industry) मे सबसे महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है तथा देश से निर्यात की जाने वाली वस्तुओ मे भी सूती वस्त्र का निर्यात काफी प्रमुख बना हुआ है। 1960 तथा 1970 वाले दशको मे इस दिशा मे अनेक प्रयास किये गये हैं कि ब्रिटिश सूती वस्त्र उद्योग मजबूत और स्वस्थ बन सके और उनका अच्छा परिणाम भी निकला है। 1979 मे ब्रिटेन का सूती वस्त्र उद्योग पुन सन्तोषजनक स्थिति मे पहुँच गया है।

2 लोहा और इस्पात उद्योग

इग्लैण्ड मे लोहे का उत्पादन बहुत प्राचीन काल से होता रहा है। लोहे को गलाने का काम रोमन काल तथा एग्लो-साक्सन (anglo-saxon) काल मे बराबर किया जाता रहा तथा मध्य युग मे यह उद्योग काफी फला-फूला। लोहे तथा इस्पात का उपयोग पहले तो तलवारें बनाने के लिए किया जाता था तथा बाद मे, विशेष रूप से चौदहवी सदी के बाद, उसका उपयोग तोपें बनाने के काम मे किया गया। लोहे के लिए उस समय भी मांग इतनी अधिक थी कि उसका आयात किया जाता था।

लोहे का उत्पादन तथा उसका इस्पात की शक्ल मे रूपान्तरण अनेक अवस्थाओ से गुजरा है। प्रत्येक अवस्था को पूरा होने मे कई वर्ष लगे हैं। 1750 तक लोहे को गलाने के लिए लकडी के कोयले काम मे लिये जाते थे जिसका परिणाम यह हुआ कि देश मे वनो का नाश होना चला गया। जैसे जैसे जगलो का विनाश बढा वैसे-वैसे लकडी काटने पर सरकारी नियन्त्रणो को भी बढाया गया। इस स्थिति का परिणाम यह निकला कि लोहे का उत्पादन गिरता चला गया तथा 1740 मे उसका वार्षिक

उत्पादन मात्र 18,000 टन रह गया था और इग्लैण्ड स्वीडन तथा रूस से लोहे का आयात करने के लिए बाध्य हो गया।

इस स्थिति से निवटने के लिए खनिज कोयले का उपयोग (लकडी के कोयलो के स्थान पर) लोहा गलाने के लिए करने की दिशा मे ध्यान केन्द्रित किया गया। अठारहवी शताब्दी के शुरू मे अब्राहम डर्बी नाम के व्यक्ति ने कोयले को कोक (coke) मे रूपान्तरित करने की विधि खोज निकाली तथा कोक का उपयोग लोहा गलाने के लिए किया जाने लगा। इस खोज ने लोहा गलाने के काम को जगलो की कटाई से असम्बद्ध कर दिया। हेनरी कोर्ट द्वारा 1784 मे की गयी खोजो से लोहे का सस्ता तथा अत्यधिक मात्रा मे उत्पादन सम्भव बना। लोहा गलाने की भट्टियो मे सुधार के प्रयासो को तब भारी सफलता मिली जब 1828 मे नेलसन ने गर्म भट्टी (hot blast) का आविष्कार किया जिससे न केवल लोहा गलाने मे कम समय लगने लगा बल्कि उसके लिए ईंधन की आवश्यकता भी कम हो गयी। अठारहवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध मे विलकिंसन ने लोहे का उपयोग पुल, जहाज तथा मकान बनाने के काम मे किया। लोहे के उपयोग के प्रति विलकिंसन का प्रेम कितना गहरा था यह तो इसी से स्पष्ट है कि अपनी मृत्यु के समय उसने यह निर्देश दिया था कि उसे लोहे के बक्से (coffin) मे रखकर गाडा जाए।[1]

अठारहवी शताब्दी के अन्त मे रूस तथा स्वीडन द्वारा लोहे पर लगाये गये भारी तटकरो ने इग्लैण्ड के लिए लोहे के आयात को मँहगा बनाकर भी लौह उद्योग के विकास मे मदद दी। रेलो के निर्माण, जहाजो के निर्माण मे लकडी के स्थान पर लोहे का उपयोग किये जाने तथा मशीनो के निर्माण मे लोहे के निरन्तर बढते हुए उपयोग ने भी लोहे की माँग को अत्यधिक बढा दिया था। इन सब कारणों ने मिलकर इग्लैण्ड के लौह उद्योग का इतना अधिक विकास किया कि 1890 तक इग्लैण्ड लोहा व इस्पात का उत्पादन करने वाले विश्व के देशो मे प्रथम स्थान पर रहा।

उन्नीसवी शताब्दी के दौरान लोहे मे कार्बन की मात्रा नियन्त्रित करके इस्पात की किस्म मे भारी सुधार किये गये। इस कार्य के लिए हेनरी बेसेमर (Henry Bessemer) ने एक बहुत शक्तिशाली भट्टी विकसित करके 1855 मे एक नई प्रक्रिया की शुरुआत की। पुराने नरम लोहे (malleable iron) के स्थान पर बेसेमर इस्पात (Bessemer steel) अत्यधिक श्रेष्ठ था। इस्पात के उत्पादन मे एक और सुधार की शुरुआत 1878 मे गिलक्राइस्ट तथा थॉमस द्वारा की गयी जिससे फॉसफोरस युक्त कच्चे लोहे का इस्पात तैयार करने की दिशा मे उपयोग सम्भव बन गया। 1867 म साइमेस तथा मार्टिन ने मिलकर एक खुली भट्टी पद्धति (open hearth system) विकसित की। साइमेस ने तो 1878 मे ही एक विद्युत भट्टी भी तैयार कर डाली थी लेकिन उसका बडे पैमाने पर उपयोग नही किया गया। फिर भी यह भट्टी अच्छी किस्म का इस्पात तैयार करने के लिए काफी उपयोगी है।

[1] G W Southgate, *op cit*, 145

इग्लैण्ड मे लोह्-पिड उत्पादन

वर्ष	उत्पादन (टनो मे)
1720	17,000
1740	18 000
1788	68 000
1839	13 47 000
1859	38 00 000
1871	65 00 000
1913	76 63 000

1870 के बाद जर्मन तथा अमरीकी लोह व इस्पात उद्योग की तीव्र प्रगति ने ब्रिटिश उद्योग की समृद्धि के लिए खतरा उपस्थित कर दिया। इन दोनो देशो मे लोह व इस्पात उद्योग की प्रगति इतनी तीव्र थी कि 1890 तक अमरीका ने ब्रिटिश लोह व इस्पात उद्योग को पीछे छोड दिया तथा 1903 तक जर्मनी भी इग्लैण्ड से आगे निकल गया। 1913 तक तो स्थिति यह हो गयी थी कि अमरीकी लोह व इस्पात का उत्पादन ब्रिटिश उत्पादन का चौगुना तथा जर्मन उत्पादन ब्रिटिश उत्पादन का तिगुना हो चुका था। इन देशो मे लोहे के उत्खनन मे आसानी ने भी प्रतिस्पर्द्धियो के रूप मे उनकी क्षमता काफी बढा दी थी। इससे ब्रिटिश लोह व इस्पात के निर्यातो मे गिरावट आयी। किन्तु 1900 के बाद निर्यात मे वृद्धि का एक नया दौर आया तथा ब्रिटेन के निर्यात भी 29 मिलियन पौण्ड से बढकर प्रथम महायुद्ध से पहले तक 48 मिलियन पौण्ड हो गये।

प्रथम महायुद्ध और लोह एव इस्पात उद्योग

प्रथम महायुद्ध से पहले तक ब्रिटिश लोह और इस्पात उद्योग की दो प्रमुख विशेषताएँ थी (1) प्रथमत सम्पूर्ण उद्योग देश के कोयला उत्पादक क्षेत्र के इर्द गिर्द केन्द्रित था जिससे कि उद्योग के लिए लोह व इस्पात का उत्पादन भारी मात्रा मे तथा सस्ती लागत पर कर सकना सम्भव था। (2) दूसरी विशेषता यह थी कि उद्योग इस रूप मे सगठित था कि उसका कच्चे लोहे कोयले तथा इस्पात मिलो पर पूरा नियन्त्रण था। इस प्रकार का केन्द्रीकरण बडे पैमाने की मितव्ययिताएँ प्राप्त करने मे सहायक होता है। 1928 मे देश के कुल लोह व इस्पात उत्पादन का 70 प्रतिशत भाग 20 फर्मों द्वारा उत्पादित होता था। किन्तु अफसोस की बात यह रही कि ब्रिटिश लोह व इस्पात उद्योग मे इस सीमा तक केन्द्रीकरण होने के उपरान्त भी वह बहुत मजबूत नही बन पाया क्योकि इसी अवधि मे अमरीका तथा जर्मनी मे लोह व इस्पात उद्योग मे और भी अधिक केन्द्रीकरण हो चुका था। जर्मनी मे तो सम्पूर्ण लोह व इस्पात उत्पादन का 70 प्रतिशत केवल 5 फर्मों के हाथ मे केन्द्रित था जबकि अमरीका मे सिर्फ 2 फर्में देश के कुल उत्पादन का 55 प्रतिशत भाग उत्पादित कर रही थी।

प्रथम महायुद्ध की अवधि की एक अन्य विशेषता यह भी रही कि इस अवधि

मे विश्व के कई और देशों मे भी लौह व इस्पात के उत्पादन मे वृद्धि हो गयी। प्रथम विश्व युद्ध के समाप्त होने तक विश्व स्तर पर लौह व इस्पात उद्योग की कुल उत्पादन क्षमता मे काफी वृद्धि हो चुकी थी। युद्ध के तुरन्त बाद इंग्लैण्ड के लौह व इस्पात उद्योग पर उसकी माँग मे कमी होने का भी विपरीत प्रभाव पडा। ऐसा विशेष रूप से इसलिए हुआ कि इग्लैण्ड मे बने लोहे की उत्पादन लागत अपेक्षाकृत ऊँची थी तथा इस बीच विश्व माँग का झुकाव लोहे की जगह इस्पात की ओर हो गया था। 1929–33 की अवधि मे आयी विश्व मन्दी ने उद्योग की हालत और भी खराब कर दी। इस बात का अनुमान केवल इसी तथ्य से लगाया जा सकता है कि 1928–33 के बीच लौह पिंड व इस्पात का उत्पादन क्रमश 7 29 व 9 6 मिलियन टन से घटकर 4 12 व 7 0 मिलियन टन रह गया था।

1927 मे जर्मनी, बेल्जियम, फ्रास तथा लासमवर्ग द्वारा बनाये गये अन्तर्राष्ट्रीय इस्पात सघ (International Steel Cartel) से ब्रिटिश लौह व इस्पात उद्योग को एक और धक्का लगा। घरेलू स्तर पर तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर उठ खडी हुई इन चुनौतियो का मुकाबला करने के उद्देश्य से ब्रिटिश सरकार ने दो सस्थाओ का गठन किया। पहली सस्था ब्रिटिश इस्पात निर्यात सघ (British Steel Export Association) तथा दूसरी सस्था लौह व इस्पात शोध सस्थान (Iron and Steel Research Council) के नाम से जानी गई। इन सस्थाओ के गठन का उद्देश्य देश के लौह व इस्पात उद्योग का विवेकीकरण (rationalisation) करना था तथा बैंक ऑफ इग्लैण्ड ने, अपनी सहायक बैंकिंग सस्थाओ के माध्यम से, इस प्रकार के विवेकीकरण के लिए वित्तीय सहायता प्रदान करने की स्वीकृति दे दी थी।

किन्तु आश्चर्य की बात यह रही कि जिन दिनो ब्रिटिश लौह व इस्पात उद्योग को पुनर्जीवित करने के लिए ये सब प्रयास किये जा रहे थे उन्ही दिनो लौह व इस्पात उद्योग 1929 की महान् मन्दी के कुचक्र मे फँस गया। सरकार को अपनी स्वतन्त्र व्यापार की नीति का परित्याग करने के लिए बाध्य होना पडा तथा उसने लौह व इस्पात उद्योग को सरक्षण देने की नीति भी अपनायी। एक नई सस्था गठित की गयी जिसका नाम लौह व इस्पात उद्योग की राष्ट्रीय परिषद् (National Council of Iron and Steel Industry) रखा गया। इसका उद्देश्य उद्योग को पुन सक्रिय करना था। लेकिन यह सस्था भी उद्योग को मन्दी के पजो से छुडा पाने मे सफल नही हो पायी। लौह व इस्पात उत्पादको को सरकार द्वारा आयातित लोहे व इस्पात पर भारी मात्रा मे तटकर लगा देने से घरेलू बाजार तो प्राप्त हो गया लेकिन ये उत्पादक तो अन्तर्राष्ट्रीय बाजार मे भी अपना हिस्सा प्राप्त करना चाहते थे। इस कार्य के लिए ब्रिटिश लौह व इस्पात सघ (British Iron and Steel Federation) ने अन्तर्राष्ट्रीय इस्पात सघ (International Steel Cartel) के साथ एक समझौते पर हस्ताक्षर किये जिसके अनुसार उद्योग को विदेशी बाजारो मे उसके 1934 के निर्यातो के बराबर अश (Quota) प्रदान किया गया। इन उपायो से ब्रिटिश लौह व इस्पात उद्योग को आशिक रूप से स्थिति सुधारने मे सफलता मिली।

द्वितीय विश्व-युद्ध मे लौह व इस्पात उद्योग

युद्ध के दौरान लौह व इस्पात की सैनिक आवश्यकताओ के कारण बढ़ी हुई माँग के दबाव ने उद्योग को काफी सहारा दिया। 1936 मे स्थिति मे सुधार के बाद से ही लौह व इस्पात की माँग मे निरन्तर वृद्धि होती जा रही थी और उसे पूरा करने के लिए देश की खानो से निकाला जाने वाला कच्चा लोहा अपर्याप्त था। इसके परिणामस्वरूप युद्ध-पूर्व के वर्षो की बढती हुई माँग को पूरा करने के लिए भारी मात्रा मे कच्चे लोहे (iron-ore) का आयात करना पडा। किन्तु द्वितीय विश्व-युद्ध के वर्षो मे जगह-जगह हुई नौसैनिक नाकेबन्दियो (Naval Blockades) तथा जहाजो से कच्चा लोहा पूर्ति मे भारी कमी आ गयी। इस तरह आयातित लोहा लादकर लाने ले जाने मे बढते हुए खतरो की वजह से युद्ध-पूर्व के 5 मिलियन टन के स्तर से गिरकर 1941 मे 1 5 मिलियन टन वार्षिक पर आ गया। कच्चे लोहे की पूर्ति मे इतनी अधिक गिरावट आ जाने से नई व्यवस्था करने की आवश्यकता पडी तथा इस्पात मिलो को पुराना लोहा (iron-scrap) कच्चे माल के रूप मे उपलब्ध कराया गया।

द्वितीय विश्व-युद्ध के दौरान लौह व इस्पात का उत्पादन

(हजार टनो मे)

वर्ष	कच्चे लोहे का उत्पादन	लोह पिंडो का उत्पादन	इस्पात का उत्पादन
1939	14,486	7,980	—
1940	17,702	8,205	—
1941	18,974	7,395	10,127
1942	19,906	7,726	10,647
1943	18,494	7,187	10,282
1944	15,472	6,737	10,010
1945	14,175	7,107	8,865

यदि सम्पूर्णता से देखा जाए तो यही स्पष्ट होता है कि द्वितीय विश्व-युद्ध के कारण लौह व इस्पात की उत्पादन पद्धतियो मे अनेक दूरगामी परिवर्तन हुए। युद्ध के कारण उत्पन्न हुई अनेक बाधाओ और कठिनाइयो के उपरान्त न केवल इस्पात और लौह का उत्पादन बनाये रखा गया अपितु उसमे वृद्धि भी की गयी। किन्तु दूसरा विश्व-युद्ध जैसे ही समाप्त हुआ उसके विनाशकारी प्रभाव दिखाई देने लगे और यह पाया गया कि लौह व इस्पात उद्योग तो सबसे अधिक खराब हालत मे है। सारा का सारा यूरोप लोहे के अकाल (iron famine) से ग्रस्त था और बुरी तरह ध्वस्त हो चुका था। प्रो० जी० डी० एच० कोल ने लौह व इस्पात उद्योग की युद्ध के बाद की स्थिति का चित्रण करते हुए बडा ही सटीक सारांश निकाला है कि 'जर्मनी के उत्पादन के 15 मिलियन टन के 1938 के प्राप्त उत्पादन स्तर से गिरकर ढाई मिलियन टन पर आ जाने, फ्रास तथा अन्य प्रमुख यूरोपीय देशो मे 1937 के 15 मिलियन टन के सयुक्त उत्पादन से घटकर 9 मिलियन टन पर

केन्द्रीय संस्था के द्वारा ही होता है।

1946 से लेकर 1955 तक विश्व के लौह व इस्पात उत्पादक देशों मे ब्रिटेन तीसरे स्थान पर रहा। किन्तु जर्मनी व जापान के अभ्युदय के बाद ब्रिटिश लौह व इस्पात उद्योग ने अपनी सर्वोच्चता खो दी है तथा विश्व उत्पादन मे इसका प्रतिशत भाग निरन्तर गिरता जा रहा है। 1946 मे विश्व लौह व इस्पात उत्पादन मे ब्रिटेन का भाग 10 प्रतिशत था जो 1956 तक गिरकर 8 प्रतिशत पर आ चुका था। स्वीडन व अन्य देशों पर कच्चे लोहे की आपूर्ति के लिए ब्रिटिश लौह व इस्पात उद्योग की भारी निर्भरता भी उसकी धीमी प्रगति के लिए उत्तरदायी रही है।

इन सब विपरीत परिस्थितियों के उपरान्त यह बात ब्रिटिश लौह व इस्पात उद्योग की प्रशसा मे अवश्य कही जा सकती है कि वह आज तक भी इंग्लैण्ड का एक प्रमुख आधारभूत उद्योग बनी हुई है। यह उद्योग द्वितीय विश्व युद्ध के बाद प्रारम्भ हुई विकट प्रतिस्पर्द्धा की स्थिति मे भी न केवल अपना अस्तित्व बनाये रख सका है बल्कि इसने यह भी सिद्ध कर दिया है कि कच्चे माल का अभाव उद्योग के लिए कोई स्थायी कठिनाई नही है। आज दिन तक ब्रिटिश लौह व इस्पात उद्योग द्वारा प्रयुक्त आधे से भी अधिक कच्चा लोहा आयात किया जा रहा है किन्तु इसके उपरान्त उद्योग अन्तर्राष्ट्रीय बाजार मे अपना पांव जमाये हुए है। ब्रिटिश लौह व इस्पात उद्योग की प्रशसा मे यह भी कहा जाना चाहिए कि उसी के कारण हमने इस्पात युग मे प्रवेश किया है। यह नही कहा जा सकता कि इस्पात युग हमेशा-हमेशा के लिए चलता रहेगा। ऐसे अनेक मिश्रण (alloys) तैयार हो चुके है जो इस्पात से अधिक श्रेष्ठ है। धातु निर्माण के विज्ञान को तो अभी अन्तिम शब्द कह देने से पहले कई मंजिले तय करनी हैं।

3 कोयला उद्योग

औद्योगिक क्रान्ति ने हाथ से काम करने की जगह मशीनो द्वारा उत्पादन को प्रतिस्थापित कर एक आधारभूत परिवर्तन ला दिया था। मशीनें केवल शक्ति से ही चलाई जा सकती थी और सबसे पहले उसकी पूर्ति जल द्वारा की गयी। समय के साथ भाप की शक्ति को पहचाना गया और भाप की शक्ति के उपयोग ने लोहे की मांग पैदा की क्योंकि वह मशीनों तथा इंजिनो के निर्माण के लिए जरूरी था और कोयला उन्हें चलाने के लिए आवश्यक था। ग्रेट ब्रिटेन के पास लोहा व कोयला दोनो ही प्रचुर मात्रा मे थे, यदि यह बात नही होती तो वह शायद ही इतनी प्रमुखता प्राप्त कर पाता।[1]

उत्पादन के नये तरीके

खनिज कोयले का प्रयोग घरेलू काम-काज के लिए तो ब्रिटेन मे शताब्दियो से होता आ रहा था किन्तु इसे लोहा गलाने (smelting) के काम के लिए अनुपयुक्त समझा जाता था क्योंकि इसमे गन्धक (sulphur) होता था। लेकिन सत्रहवी शताब्दी

[1] *Ibid*, 136

के अन्त तक जमलो के नष्ट हो जाने के कारण लकडी के कोयलो का अभाव हो गया। जैसे-जैसे शहरो का विकास हुआ तथा रेलो का प्रसार हुआ वैसे-वैसे ईंधन की माँग बढी। यह समस्या तब सुलझी जब डर्बी (Darby) ने एक ऐसा तरीका खोज निकाला जिससे खनिज कोयले को नरम कोयले यानि कि कोक (coke) मे बदला जा सकता था (गन्धक अलग करके) तथा उसे लोहा गलाने के काम मे लिया जा सकता था।

उन्नीसवी शताब्दी के मध्य तक कोयले के उपयोग के क्षेत्र मे अनेक नई खोजे हुई। 1856 मे विलियम हेनरी परकिंस ने एक ऐसी विधि खोज निकाली जिससे कोलतार द्वारा रग की डाई (dyes) तैयार की जा सकती थी जो वस्त्रो के रगने के काम आती थी। अब तो हमे कोयले से अनेको दवाएँ, रग, सुगन्धित पदार्थ व सत प्राप्त होने लग गये है।

उत्खनन सम्बन्धी कठिनाइयाँ

प्रमुखता प्राप्त करने से पहले कोयला उद्योग को अनेक कठिनाइयो से गुजरना पडा और उन्हे दूर करना पडा। जैसे-जैसे कोयला निकाले जाने वाले गड्ढे गहरे होते उनमे पानी भरता चला जाता। अठारहवी सदी से पहले इस पानी को हाथो से खाली किया जाता था। यह प्रक्रिया न्यूकॉमिन तथा जेम्स वॉट द्वारा भाप के इजिन के आविष्कार के बाद काफी आसान हो गयी।

कोयले का खनन करने वालो के सामने दूसरी कठिनाई छतो का ढह जाना थी। अठारहवी शताब्दी मे यह एक आम प्रथा थी कि कोयला निकालते समय यहाँ-वहाँ कुछ खम्भे छोड दिये जाते थे और जब उस भाग पर काम पूरा हो जाता तो वे खम्भे हटा लिये जाते थे। 1810 के बाद यह आम रिवाज बन गया कि खान की छतो के नीचे मजबूत लकडी के बने खम्भे लगाये जाते। दूषित हवा निकालने के लिए पखो (exhaust fan) के 1837 मे हुए आविष्कार से पहले खानो मे रोशनदानो की भी भारी कठिनाई आती थी।

खिडकियो रोशनदानो की समस्या के साथ ही जुडी हुई एक अन्य समस्या रोशनी का प्रबन्ध करने की थी। खानो मे खुले लैम्प काम मे लेना खतरे भरा काम था क्योंकि कोयले की परतो से विस्फोटक गैसे निकलती रहती है। सर हम्फ्री डेवी द्वारा 1815 म आविष्कृत एक लैम्प, जिसे डेवी लैम्प का ही नाम दिया गया, ने इस समस्या को भी हल कर दिया। अब तो अधिक महत्त्वपूर्ण गलियारो मे रोशनी करने के लिए बिजली का उपयोग किया जाता है। 1839 मे लोहे के तारो के सहारे चलने वाली ट्राली का आविष्कार होने से पहले खान के भीतर से कोयले को ऊपर तक लाना भी एक भारी समस्या थी। कोयला खान की एक और समस्या यह होती है कि खान की गहराई बढने के साथ-साथ उसका तापमान भी बढता जाता है। इस कठिनाई के कारण पहले बहुत गहराई तक खान खोदना असम्भव-सा था किन्तु कृत्रिम रूप से खानो को भीतर से ठण्डा रखने के तरीके खोज लिये जाने से यह कठिनाई भी दूर हो गयी।

एक अन्य कठिनाई जिसने इग्लैण्ड मे खनिज कोयले के उत्पादन को शताब्दियो तक काफी कम बनाये रखा, यह थी कि कोयले को देश के विभिन्न भागो तक पहुँचाना असम्भव था। भारी चीज होने के कारण यह खच्चरो या घोडो के बस की बात नही थी। नहरो से परिवहन की व्यवस्था के विकास तथा बाद मे रेलो के जाल से कोयले का आवागमन न केवल आसान बन गया बल्कि उसकी लागत भी काफी कम हो गयी। कोयले को खानो के भीतर शीघ्रता से काटने की मशीनो के आविष्कार के बाद तो मानवीय श्रम की आवश्यकता मे काफी कटौती सम्भव हो गयी।

काम की दशाएँ

आम जनता और यहाँ तक कि सरकार को भी अठारहवी तथा उन्नीसवी शताब्दी के पहले कुछ वर्षो तक कोयला खानो मे काम की दशाओ से कोई सरोकार ही नही था। इन खानो मे काम की दशाएँ इतनी अमानवीय थी कि बहुत गहराई तक उनमे कोयला काटने तथा उसे बाहर तक ढोकर लाने के काम मे आदमियो, औरतो और बच्चो को लगाया जाता था जिन्हे दिन मे चौदह-चौदह घण्टे काम करना पडता था। गम्भीर दुर्घटनाएँ होना आम बात थी। मजदूरी और व्यवसायो की अपेक्षा कुछ अधिक थी। स्कॉटलैण्ड के कोयला मजदूर तो इग्लैण्ड के मजदूरो से भी बुरी हालत मे काम करने के लिए मजबूर थे। उनकी हालत तो गुलामो की सी थी। अगर वह खान बेच दी जाती जिसमे वे काम कर रहे होते तो साथ मे वे भी बिक जाते। उनकी हालत मे सुधार अठारहवी शताब्दी के अन्त मे ही हुआ।

ब्रिटिश ससद ने उन्नीसवी शताब्दी मे कोयला खानो मे काम करने वाले मजदूरो की काम की दशाएँ सुधारने के लिए अनेक कानून बनाये। 1842 मे दस वर्ष से कम उम्र के बच्चो तथा किसी भी उम्र की लडकियो या औरतो के खानो के अन्दर काम करने पर रोक लगा दी गयी। 1850 मे खानो के निरीक्षण के लिए एक व्यवस्था स्थापित की गयी। 1860 तथा 1872 मे कोयला खान नियमन कानून (Coal Mines Regulation Act) पारित किये गये। 1881 म गृह सचिव को कोयला खानो मे होने वाली दुर्घटनाओ की जाँच करने का अधिकार दिया गया। 1911 के कोयला खान नियमन कानून मे कोयला खानो से सम्बन्धित सम्पूर्ण कानून को सहिताबद्ध (codified) किया गया। इस कानून मे खानो मे खम्भो की व्यवस्था (roof support), मशीनो तथा विस्फोटको (explosives) का उपयोग, रोशनदानों की व्यवस्था, सुरक्षा उपाय करने, दुर्घटना क समय कार्यवाही की प्रक्रिया तथा खानो के निरीक्षण मे सम्बन्धित विषय शामिल किये गये। 1920 मे एक शाही आयोग ने खानो के राष्ट्रीयकरण की सिफारिश की लेकिन सरकार ने इस सिफारिश को स्वीकार नही किया।

महान् मन्दी का काल

1929 की मन्दी आने के कुछ ही वर्षो पहले तक से ही कोयला उद्योग को घटती हुई माँग तथा बेकारी की समस्या का सामना करना पड रहा था। कोयला

खान के मालिको ने यह तर्क दिया कि कोयले की माँग के स्तर को बनाये रखने के लिए कोयले के मूल्यो मे कमी करना आवश्यक था तथा कोयले के मूल्यो मे कमी तभी सम्भव थी जबकि मजदूरी मे कमी की जाती। मालिको के इस सुझाव का श्रमिको ने स्वाभाविक रूप से विरोध किया और 1925 मे एक आम हड़ताल तभी होने से बच सकी जब सरकार ने मजदूरी के तत्कालीन स्तर को बनाये रखने के उद्देश्य से अनुदान देने की घोषणा की। लॉर्ड सेम्युअल की अध्यक्षता मे नियुक्त एक अन्य शाही आयोग ने मजदूरी के स्तर को अपरिवर्तित रखने के उद्देश्य से सरकार द्वारा दिये जाने वाले इस अनुदान की कटु आलोचना की तथा इसे बन्द करने की भी सिफारिश की किन्तु साथ ही आयोग ने कोयला खानो मे काम करने वाले मजदूरो की दशा सुधारने के लिए भी कई उपाय सुझाए। इस आयोग ने यह भी सिफारिश की कि कोयला खानें निजी स्वामित्व एवं प्रबन्ध के अन्तर्गत ही रहनी चाहिए। जब अप्रैल 1926 मे अनुदान बन्द कर दिया गया तो कोयला खान के मालिको ने मजदूरी मे कटौती करने की घोषणा कर दी और उसका परिणाम यह हुआ कि मजदूरो ने काम बन्द कर दिया। किन्तु कुछ सप्ताह बेकार घूमने के बाद श्रमिको को मजबूरन काम पर लौटकर आना पड़ा क्योंकि उनके पास बिल्कुल पैसा नही बचा था। 1926 मे पारित कोयला खान विधेयक (Coal Mines Act, 1926) ने तो खानो के अन्दर काम मे एक घण्टा प्रतिदिन की वृद्धि भी कर दी। किन्तु बेचारे कोयला खान मजदूरो के पास कोई विकल्प नही था क्योंकि मन्दी पूरे जोरो पर थी और उनके सामने बेकारी की समस्या विकट थी। वे तो निजी स्वामित्व के अन्त होने की आशा कर रहे थे। वे मजदूरी की कटौती स्वीकार करने के लिए तैयार नही थे। किन्तु दोनो ही जगह उन्हे हार माननी पड़ी।

दो विश्व-युद्धो के बीच कोयला उद्योग

प्रथम विश्व-युद्ध छिड़ते ही कोयला उद्योग को सरकारी नियन्त्रण मे रख दिया गया। श्रम के अभाव के कारण भी उत्पादन पर विपरीत प्रभाव पड़ा। जहाजो के न मिल पाने के कारण कोयलो के निर्यात मे भी कमी आयी। कोयला उद्योग ने अपने 287 मिलियन टन के उत्पादन का रिकॉर्ड 1913 मे कायम किया।

कोयला उत्पादन मे प्रगति

(मिलियन टन मे)

वर्ष	उत्पादन	वर्ष	उत्पादन
1800	10	1918	287
1860	80	1924	267
1900	225	1930	244
1913	287	1933	208

प्रथम विश्व युद्ध की समाप्ति पर कोयला उद्योग की स्थिति मे थोड़ा सुधार अवश्य आया किन्तु थोड़े ही समय मे उद्योग को पुन संकट का सामना करना पड़ा।

किन्तु 1927 तक उद्योग ने निर्यात माँग मे हुई अस्थायी वृद्धि के कारण बदली हुई परिस्थितियो का पूरा प्रभाव अनुभव नही किया। दो विश्व-युद्धो के बीच के काल मे कोयले का उत्पादन विश्व-स्तर पर भी काफी बढ चुका था। हॉलैण्ड, भारत, स्पेन तथा जापान जैसे देश कोयले का भारी मात्रा मे उत्पादन करने लग गये थे और उनमे से कुछ न केवल घरेलू बाजार को सुरक्षा (protection) प्रदान कर रहे थे बल्कि वे उनके कोयले के निर्यात को बढावा देने की दृष्टि से अनुदान भी दे रहे थे। प्रतिस्पर्द्धियो की इस नई लहर से ब्रिटिश कोयला उद्योग पर विपरीत प्रभाव पडना अवश्यम्भावी था।

मन्दी समाप्त हो जाने के बाद भी कोयला उद्योग की धीमी गति से प्रगति के लिए ब्रिटिश कोयला उद्योग के सगठनात्मक दोष भी उत्तरदायी थे। देश के कई भागो मे बिखरे हुए कोयला भण्डारो के कारण उनके प्रबन्ध मे किसी प्रकार की एकरूपता स्थापित नही की जा सकती थी। कोयला उद्योग मे अनेक छोटी छोटी इकाइयाँ थी जिन पर आसानी से नियन्त्रण नही स्थापित किया जा सकता था। 1924 मे लगभग 2400 कम्पनियाँ कोयला उद्योग मे कार्यरत थी। इसके अलावा ब्रिटिश कोयला उद्योग मूलत पुराने उत्पादन के तरीको से चल रहा था। 1913 तक भी ब्रिटिश कोयला खानो मे मशीनो से कोयले की कटाई का कुल उत्पादन मे प्रतिशत 8 था तथा कई आगामी वर्षो मे भी उसमे कोई वृद्धि नही हुई जबकि इन्ही वर्षो मे जर्मनी मे मशीनों से कोयले की खुदाई 2 प्रतिशत स बढकर 1928 म 85 प्रतिशत हो चुकी थी। इसके अलावा ब्रिटिश कोयला उद्योग इस्पात, विद्युत तथा रसायन से सम्बन्धित मेल-जोल वाली क्रियाओ से भी ताल-मेल स्थापित करके नही चल रहा था। निर्यात माँग पर अत्यधिक निर्भरता ने भी कोयला उद्योग की स्थिति और भी खराब कर दी।

कोयला उद्योग को फिर से पटरी पर लाने के उद्देश्य से 1930 म कोयला खान अधिनियम (Coal Mines Act, 1930) पारित किया गया। इस अधिनियम के द्वारा कोयले के उत्पादन तथा उसकी बिक्री को नियमित करने तथा उद्योग मे विलय (amalgamations) को प्रोत्साहन देकर पुनर्गठित करने का प्रयास किया गया। किन्तु 1930 का अधिनियम अनेक कानूनी बारीकियो मे उलझकर रह गया। इसलिए 1937 मे सरकार द्वारा एक और कोयला विधेयक (Coal Bill) लाया गया जिसने छोटी इकाइयो के विलय को अनिवार्य बना दिया। कोयला उद्योग की स्थिति मे सुधार लाने के लिए किये गये इन समस्त प्रयासो के बावजूद वह काफी दबा-दबा-सा रहा तथा यह स्थिति द्वितीय विश्व युद्ध छिडने तक बनी रही। कोयला उद्योग कम मजदूरी, भीषण बेकारी तथा बिगडते हुए औद्योगिक सम्बन्धो की बीमारियो से ग्रस्त रहा।

जब द्वितीय विश्व-युद्ध छिड गया तो सरकार ने एक योजना बनायी जिसके अनुसार कोयले का वार्षिक उत्पादन 270 मिलियन टन के लगभग बनाये रखना था। कोयले के उत्पादन तथा वितरण के अनेक स्तरो पर नियन्त्रण रखा जाता था। जब दूसरा विश्व-युद्ध लम्बा चलता चला गया तो कोयले के लिए माँग काफी बढ़ गयी और

उसकी माँग तथा पूर्ति के बीच अन्तर भी काफी चौड़ा हो गया। कोयले की कमी, उसके ऊँचे मूल्य तथा वितरण सम्बन्धी कठिनाइयों से निबटने के लिए एक अलग ईंधन व शक्ति मन्त्रालय की स्थापना की गयी। कोयले के उत्पादन में कमी आने का मुख्य कारण श्रमिकों का अभाव तथा कोयला निकालने की मशीनों का उपलब्ध न होना था। उद्योग में लगे हुए श्रमिकों की संख्या 1939 में 7 66 लाख से घटकर 1943 में 7 08 लाख रह गयी। खानों में अनुपस्थिति (absenteeism) भी बढ़ गयी तथा अनुपस्थित रहने वाले श्रमिकों की संख्या का देश की कोयला खानों में प्रतिशत 1939 के 6 9 से बढ़कर 1945 में 16 3 हो गया। अनुपस्थिति दर में यह वृद्धि आवश्यक सेवा अधिनियम (essential work order) लागू किये जाने के बावजूद हुई जिसमें श्रमिकों के उद्योग छोड़ने पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया था।

द्वितीय विश्व-युद्ध के दौरान कोयले का उत्पादन व उपभोग

(मिलियन टन में)

वर्ष	कुल उत्पादन	कुल उपभोग
1939	231	233
1940	224	222
1941	206	206
1942	205	205
1943	199	198
1944	193	193
1945	183	185

युद्ध के दौरान कोयला उद्योग बराबर गड़बड़ी का केन्द्र बना रहा। उसके संचालन में कठिनाइयाँ आती रहीं तथा उसकी समस्याएँ युद्ध समाप्त हो चुकने के बाद भी बनी रहीं। इस उद्योग की लागत बहुत ऊँची थी। कोयला उद्योग को यन्त्रीकरण के लिए पूँजी प्राप्त करने में भी कठिनाई हो रही थी। खानों के भीतर काम आने वाली मशीनों का भी अभाव था। पुरानी खानें गहरी से गहरी होती जा रही थीं और उन्हें चलाना अत्यधिक खर्चीला काम साबित हो रहा था। मजदूरों को खानों पर काम करने के लिए ठहराने मात्र के लिए ऊँची मजदूरी देनी पड़ रही थी। इस तरह यह कहा जा सकता है कि द्वितीय विश्व युद्ध की समाप्ति पर कोयला उद्योग बड़ी बुरी हालत में था और उसे जड़ता की स्थिति से बचाने के लिए क्रान्तिकारी उपायों की जरूरत थी।

आधुनिक समय में कोयला उद्योग

समय बीतने के साथ कोयला खानों में काम की दशा में सुधार हुआ मगर खनिक फिर भी असन्तुष्ट ही रहे। यह स्पष्ट हो चुका था कि श्रमिक लोग तब तक सन्तुष्ट नहीं होंगे जब तक कि खानें निजी स्वामित्व के अन्तर्गत बनी रहेंगी। 1946 में, जब लेबर दल की सरकार बनी, कोयला खान राष्ट्रीयकरण विधेयक पारित किया

गया। कोयला खानो का अधिग्रहण करने के लिए एक राष्ट्रीय कोयला बोर्ड बनाया गया। यह बोर्ड कोयला खानो मे होने वाले काम के लिए उत्तरदायी था और साथ ही औद्योगिक व उपभोक्ता माँग के लिए कोयला उपलब्ध कराना भी इसी का काम था। राष्ट्रीयकरण विधेयक 1 जनवरी 1947 को लागू किया गया तथा श्रमिको ने इस दिन को मुक्ति दिवस के रूप मे मनाया। मई 1947 मे उद्योग मे पाँच दिन का सप्ताह आरम्भ किया गया।

किन्तु कोयला उद्योग का राष्ट्रीयकरण भी मजदूरो को सन्तुष्ट करने मे असफल रहा है। काम की दशाओं मे काफी सुधार हुआ है, मजदूरी मे भी भारी वृद्धि हुई है, कोयला काटने की मशीने भी खानो मे स्थापित की गई है। इसके बावजूद हड़ताले कम नही हुई है तथा श्रम विवादो को आसानी से हल नही किया जा सका है। युद्धोत्तर काल मे हो रहा कोयले का उत्पादन बडी मुश्किल से ही घरेलू जरूरतों को पूरा कर पाता है। कोयले के निर्यात का तो अब प्रश्न ही नही रह गया है। 1958 मे कोयले का कुल उत्पादन 202 मिलियन टन था और 1970 मे यह लगभग 250 मिलियन टन था। यह उत्पादन स्तर 1913 के रिकार्ड उत्पादन से काफी नीचा ही था।

कोयला उद्योग पर विशेष ध्यान न दिये जाने का एक कारण यह भी है कि 1960 के बाद ईंधन की पूर्ति मे अनेक वैकल्पिक स्रोतो का उपयोग किया जाने लगा है। विद्युत शक्ति तैयार करने के लिए आणविक शक्ति का उपयोग किया जा रहा है। बीच मे तो यही लगने लगा था कि शायद ऊर्जा के स्रोत के रूप मे कोयले का उपयोग धीरे-धीरे समाप्त ही हो जायेगा। लेकिन 1973 व दिसम्बर 1978 की तेल मूल्य वृद्धियो (जिनसे तेल की कीमत चार गुने से भी अधिक हो चुकी है) के बाद कोयला उद्योग के लिए आशा की एक नई किरण जगी है। ईंधन के स्रोत के रूप मे कोयले को पुन प्रतिष्ठित किया जा रहा है।

4 आधुनिक जहाज निर्माण उद्योग

वणिकवादी विचारक (Mercantilists) देश के लिए एक मजबूत नौ-सेना के पक्ष मे थे। इस उद्देश्य को ध्यान मे रखकर ही उन्होने इग्लैंण्ड मे अनेक नौ-परिवहन विधेयक (Navigational Acts) पारित करवाये थे। सबसे पहला नौ-परिवहन विधेयक 1381 मे पारित किया गया जिसमे यह व्यवस्था की गई कि सारे आयात व निर्यात इग्लैण्ड के ही जहाजो के माध्यम से किये जाये। आगे के विधेयक 1532 तथा 1540 मे पारित किये गये। 1650 मे पारित किये गये नौ-परिवहन विधेयक ने इग्लैण्ड के बागानो के साथ विदेशी जहाजो के व्यापार पर प्रतिबन्ध लगा दिया। 1660 के नौ-परिवहन विधेयक ने, जो अधिक व्यापक एव स्पष्ट था, कुछ ऐसे सिद्धान्त बनाये जिन पर ब्रिटिश जहाजरानी का विकास अगली दो शताब्दियो तक नियमित होता रहा। इन नौ-परिवहन कानूनो का उद्देश्य, जैसा कि 1660 के विधेयक की भूमिका मे लिखा गया, यह था कि 'जहाजो की सख्या मे वृद्धि तथा इग्लैण्ड के नौ-परिवहन को प्रोत्साहन देना··· जिसमे कि इग्लैण्ड की सुरक्षा, सम्पत्ति

तथा शक्ति इतनी अधिक अन्तर्निहित थी।' ये नौ-परिवहन सम्बन्धी प्रतिबन्धात्मक कानून उन्नीसवी सदी मे अपनी उपयोगिता खो चुके थे जब कि मुक्त व्यापार की नीति को बढ़ावा दिया जाने लगा था। किन्तु इतना अवश्य कहा जा सकता है कि अपने परित्याग के पहले इन कानूनो ने ब्रिटिश जहाजरानी उद्योग के विकास मे भारी योगदान दिया था।

उन्नीसवी शताब्दी मे इग्लैण्ड के जहाजरानी उद्योग मे अनेको महत्त्वपूर्ण तकनीकी परिवर्तन हुए। पहला भाप से चलने वाला जहाज पहले भाप से चलने वाले रेल इंजिन से काफी पहले बना लिया गया था। पहला वाष्प चालित जहाज विलियम सिमिंगटन (William Symington) द्वारा 1802 मे निर्मित किया गया। 1819 मे अन्ध महासागर को पार करने वाला प्रथम वाष्प चालित जहाज सवानाह (Savannah) था। 1824 मे जनरल स्टीम नेविगेशन कम्पनी का निर्माण किया गया।

1869 मे स्वेज नहर के यातायात के लिए खुल जाने से जहाजरानी उद्योग को भारी प्रोत्साहन मिला। आरम्भ मे वाष्प चालित जहाज लकड़ी व लोहे दोनो को मिलाकर बनाये जाते थे तथा इनका उपयोग भी 19वी सदी के उत्तरार्द्ध मे ही आरम्भ हुआ। जहाज निर्माण मे सुधार का क्रम जारी रहा। 1854 मे एक चार सिलेण्डर वाला जहाज बनाया गया जिसमे भाप भी ज्यादा पैदा होती थी और जो ईंधन भी कम खाता था। सर चार्ल्स पार्सस (Sir Charles Parsons) ने एक टर्बाइन (Turbine) का आविष्कार किया जिसने जहाजो की गति तथा विश्वसनीयता को काफी बढा दिया। आज तक भी अधिकाश जहाज मोटर चालित ही है तथा वे ईंधन के रूप मे तेल अथवा कोयले का उपयोग करते हैं।

जहाज निर्माण मे होने वाले इन उत्तरोत्तर सुधारो के कारण इग्लैण्ड न केवल विश्व मे सबसे बडा जहाजी बेडे वाला देश बन गया बल्कि वह सबसे आधुनिक बेडे वाला देश भी बन गया। विदेशो मे पजीकृत अनेको जहाज ब्रिटेन मे ही निर्मित होते थे। ब्रिटिश व्यापारिक जहाजी बेडे मे ऐसे जहाज थे जिनमे नवीनतम सुधार किये जा चुके थे और इनके कारण वे काम के उद्देश्य से मितव्ययितापूर्ण एव लाभदायक थे।

1854 मे नौ-परिवहन विधेयको (Navigational Acts) के निरस्त कर दिये जाने के बाद ब्रिटिश जहाजरानी उद्योग सरकारी हस्तक्षेप से लगभग पूरी तरह मुक्त हो चुका है। एक जहाजी कम्पनी के लिए रेल कम्पनी की तरह ससद की अनुमति प्राप्त करना आवश्यक नही था क्योकि रेलो की तरह जहाजो को लाइन बिछाने के लिए जमीन की आवश्यकता तो पडती ही नहीं थी। समुद्र ही उनके लिए मार्ग था और वह सबके लिए मुक्त था। इसका परिणाम यह भी हुआ कि इग्लैण्ड के अनेक जहाज 'छुट्टे जहाज' (Tramp Ships) बन गये जो अपने लिए माल किसी भी बन्दरगाह से किसी भी अन्य बन्दरगाह के ढोते और जो भी किराया मिलता ले लेते। ऐसे जहाज वर्षों तक इग्लैण्ड से बाहर रहते और उनकी गतिविधियो पर कोई नियन्त्रण लगाना भी सम्भव नही था उन्हे उनकी समुद्र मे रह सकने की योग्यता (Seaworthiness)

के लिए जांचा भी नही जा सकता था इसका परिणाम कई बार यह निकलता था कि नाविको की जान के खतरे को अनदेखा करके पुराने जहाजो मे उनकी क्षमता से भी अधिक माल भर दिया जाता। मालिक लोग तो अपने जहाजो का भारी बीमा करवा लेते और सिर्फ लाभ कमाने के फिक्र मे रहते।

सरकारी नियमन (Governmental Regulations)

एक सासद सेम्युअल प्लिमसोल (Samuel Plimsol) पहला व्यक्ति था जिसने अनियन्त्रित जहाजी कपनियो की हठधर्मी की आलोचना की तथा उनके खिलाफ आवाज उठाई। उसने इस बात पर बल दिया कि जहाजो को सलामती प्रमाण-पत्र (Fitness Certificate) तब तक नही जारी किया जाना चाहिए जब तक उनकी पूरी तरह जांच न कर ली जाए। यह अधिकार 1873 मे व्यापार-बोर्ड को दिया भी गया किन्तु उससे भी काम नही चला। 1875 तथा 1876 के व्यापारिक जहाज अधिनियमो मे उन जहाज मालिको पर भारी जुर्माना लगाने का प्रावधान किया गया जो अपने जहाजो को खराब मौसम मे भी समुद्र मे भेज देते थे। 1912 मे टाइटेनिक (Titanic) नामक विशाल यात्री जहाज के समुद्र मे डूब जाने के बाद यात्रियो व जहाज कर्मचारियो की सुरक्षा के लिए बने हुए कानूनो का अधिक कडाई से पालन किया जाने लगा।

ब्रिटिश रेलो ही की तरह ब्रिटिश जहाजरानी का भी उन्नीसवी शताब्दी मे विकास निजी उद्यम के आधार पर ही हुआ। यह उस जमाने मे ब्रिटिश उद्योग मे हो रहे विकास का स्वाभाविक परिणाम था तथा सरकार ने इस उद्योग के विकास के लिए कोई प्रत्यक्ष योगदान नही किया। ब्रिटिश तैयार माल (manufactured goods) की माग ससार भर के देशो मे थी। इसके अलावा ब्रिटेन अपना कच्चा माल भी दुनिया भर से प्राप्त करता था। जहाजो की जरूरत इन दोनो ही कामो के लिए पडती थी।

इग्लैण्ड मे जहाज दो मुख्य कारणो से निर्मित किये जाते थे (1) प्रथमत, इस बात की पूरी आशा रहती थी कि जहाज निर्माण मे लगने वाली पूँजी पर अच्छा प्रतिफल प्राप्त हो सकेगा। (2) दूसरा कारण यह था कि जहाज निर्माण की जो सुविधाएँ ब्रिटेन मे उपलब्ध थी उनसे प्रतिस्पर्द्धी देशो का तो सिर्फ इसीलिए सफाया हो जाता था कि ब्रिटिश जहाज निर्माण की लागत सबसे कम थी। इसका परिणाम यह हुआ कि उन्नीसवी शताब्दी मे ब्रिटिश जहाज निर्माण उद्योग म खूब समृद्धि आई। उस समय ब्रिटेन ने विश्व के लगभग 80 प्रतिशत जहाजो का निर्माण किया और 1890 के पहले तक विश्व के कुल जहाजो मे 60 प्रतिशत जहाज ब्रिटेन के थे। उद्योग म अत्यधिक विशिष्टीकरण (specialisation) की स्थिति आ गई। तट के करीब ही कोयले व लोहे के प्रचुर मात्रा मे भण्डार उपलब्ध होने से भी ब्रिटिश जहाज निर्माण उद्योग को काफी लाभ रहा।

उन्नीसवी शताब्दी के अतिम चरण मे ब्रिटिश व्यापारिक जहाजी बेडे को जर्मनी से प्रतिस्पर्द्धा का सामना करना पडा। उद्योग को मदी का भी सामना करना पडा। प्रतिस्पर्द्धा का मुकाबला करने के लिए ब्रिटिश जहाजी कम्पनियो ने मेल-जोल

(conferences) की व्यवस्था कायम कर ली। उन व्यापारियो को विशेष रियायत दी जाने लगी जो अपना माल हमेशा एक ही कम्पनी के द्वारा भेजते थे। किन्तु इन व्यवस्थाओ की इसलिए आलोचना हुई कि ये एकाधिकारिक प्रवृत्तियो को बढावा देती थी। इन सब परिस्थितियो की जाच करने के उद्देश्य से 1906 मे एक शाही आयोग नियुक्त किया गया। आयोग ने इस व्यवस्था की आलोचना इस बात के लिए तो की कि इससे भाडे की दरें बढती है किन्तु साथ ही उसने मेल जोल पद्धति (Conference System) को उचित ठहराया। मेल-जोल पद्धति का जहाजी कम्पनियो को फायदा यह था कि वे अपने जहाजो को नियत तारीख पर पर यात्रा के लिए रवाना कर सकती थी तथा अपने भाडो मे एकरूपता भी स्थापित कर सकती थी।

विश्व युद्धो का प्रभाव

प्रथम विश्व-युद्ध मे ब्रिटिश जहाजरानी को जर्मन नाकेबदी (Blockade) के कारण भारी हानि उठानी पडी। यह नाकेबदी ब्रिटिश जहाजरानी को बिल्कुल समाप्त ही कर देती यदि ब्रिटिश नौ सेना उसे तोडने मे सफल न होती। प्रथम महायुद्ध के अत मे ब्रिटिश जहाजो का टन भार घट गया था किन्तु तेजी के साथ नये जहाजो का निर्माण होने से क्षति-पूर्ति थोडे ही समय मे हो गई। युद्ध के बाद निर्मित ब्रिटिश जहाज (व्यापारिक) अधिक तेज गति से चलने वाले, सभी उपकरणों मे सुसज्जित, नवीनतम तथा खनिज तेल से चलने वाले थे। प्रथम महायुद्ध के अत के बाद भी ब्रिटिश व्यापारिक जहाजी बेडा विश्व मे सबसे बडा था यद्यपि उसमे विश्व के जहाजो का एक-तिहाई भाग ही रह गया जो कि 1914 मे आधे के लगभग था।[1]

प्रथम विश्व-युद्ध के बाद होने वाला जहाज निर्माण आवश्यकता को देखते हुए अधिक था। 1930 की मदी ने भी जहाजरानी उद्योग पर विपरीत प्रभाव डाला। व्यापार के परिमाण मे कमी आ जाने के कारण कम जहाजो की आवश्यकता रह गई। मदी की भीषणता के कारण जहाज निर्माण उद्योग को भी सरकारी सहायता की आवश्यकता पडने लगी। लगभग प्रत्येक देश की सरकार वहाँ की जहाजी कम्पनियो को अनुदान दे रही थी। ब्रिटिश सरकार ने भी 1939 तक उद्योग को अनुदान एव ऋण प्रदान किये।

दूसरे महायुद्ध के बाद ब्रिटिश जहाजरानी उद्योग को गम्भीर सकट का सामना करना पडा। पुनर्निर्माण का काम अत्यधिक भीषण था। किन्तु विजेता देश होने के कारण इंग्लैण्ड को कई जर्मन जहाज मिले। जहाज निर्माण के काम मे भी तेजी लाई गई तथा 1946 मे यह अनुमान लगाया गया था कि ब्रिटेन विश्व मे बन रहे जहाजो मे से आधे जहाज बना रहा था। पिछले कुछ वर्षों से जापान, जर्मनी तथा स्वीडन प्रमुख जहाज निर्माता देश बन चुके है। 1957 के बाद से तो जापानी जहाज निर्माण स्थलों (shipyards) से बनकर निकलने वाले जहाजो का टन भार ब्रिटेन से अधिक हो चुका है। 1957 मे विश्व मे बनने वाले कुल जहाजो मे ब्रिटेन का भाग गिर कर

[1] *Ibid*, 268

20 प्रतिशत से भी नीचे आ गया था।

ब्रिटिश जहाजरानी तथा उसके व्यापारिक वेड़े की सर्वोच्चता तो द्वितीय विश्व-युद्ध के वाद से ही इतिहास का एक अध्याय वन चुकी है। अमरीका, जापान तथा सोवियत सघ ने विशाल जहाजी वेड़े बना लिये हैं। किन्तु इतना अवश्य कहना होगा कि आज दिन तक भी ब्रिटेन जहाजी वेडा रखने वाले अग्रणी देशों की पंक्ति मे ही आता है। जापानी प्रतिस्पर्द्धा की पृष्ठभूमि मे ब्रिटिश जहाज-निर्माण उद्योग न केवल अपना अस्तित्व बनाये रखने मे सफल हुआ है वल्कि उसने अपनी कार्यविधि मे सुधार भी किया है तथा पिछले कुछ वर्षों में लागत मे भी कमी की है। आज भी यह पूरे सम्मान के साथ अपना अस्तित्व बनाये हुए है।

चौथा अध्याय

यातायात एवं व्यापार में क्रान्ति

(REVOLUTION IN TRANSPORT AND COMMERCE)

यातायात मे क्रान्ति औद्योगिक क्रान्ति का एक स्वाभाविक परिणाम थी। ऑग एव शार्प[1] ने अपनी पुस्तक मे यातायात क्रान्ति के क्षेत्र में हुई उपलब्धियों को चार प्रमुख अवस्थाओं मे बाँटा है जो बहुत महत्त्व की है— (i) सडकों की स्थिति में सुधार, (ii) नहरों का निर्माण, (iii) रेलो के निर्माण का आरम्भ, तथा (iv) वाष्प शक्ति का नदियो तथा समुद्र मे नौ-परिवहन के लिए उपयोग। इस सूची मे बीसवी शताब्दी मे हुए वायु यातायात के विकास को और जोडा जा सकता है।

यातायात के क्षेत्र मे हुई इन उत्तरोत्तर प्रगतियो से न केवल भौगोलिक दूरियो को घटाने में सहायता मिली बल्कि वे बाजार की सीमाओ का विस्तार करने के लिए भी उत्तरदायी थी। यातायात के क्षेत्र मे हुए इन सुधारो से समस्त विश्व में लोगो की गतिशीलता मे भी व्यापक रूप से वृद्धि हुई। श्रीमती नॉवेल्स ने यातायात के क्षेत्र मे आई इस क्रान्ति को यह कहकर बड़े सही रूप मे चित्रित किया है कि 'रेलो व वाष्प चालित जहाजो के आगमन का अर्थ था—राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के स्थान पर अन्तर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था का प्रतिस्थापन, जिसके सामान्य परिणाम अन्तर्राष्ट्रीय निर्भरता और विश्व प्रतिस्पर्द्धा के रूप मे सामने आये। यन्त्रचालित यातायात के साधनो ने विभिन्न राष्ट्रो के व्यापारिक एव औद्योगिक महत्त्व के क्षेत्र मे एक नयी क्रान्ति ला दी। इससे वस्तुओ और मनुष्यो के लिए नयी गतिशीलता की स्थिति उत्पन्न हुई। साथ ही, इससे राष्ट्रीय नीतियाँ भी प्रभावित हुई।

वास्तव मे देखा जाये तो यातायात में हुई क्रान्ति ने न केवल औद्योगिक क्रान्ति की गति को अत्यधिक बढा दिया बल्कि उसने तो व्यापार के स्वभाव को ही बदल डाला। देश के सामाजिक एव राजनीतिक अचल मे भी अनेक दूरगामी परिवर्तन आये। यह कहने मे कोई अतिशयोक्ति नही होगी कि यह यातायात के क्षेत्र मे आयी क्रान्ति ही थी कि जिसने ब्रिटेन को लहरो पर राज करने के योग्य बनाया और वह नन्हा-सा द्वीप लगभग 400 वर्ष तक विश्व के एक विशाल और समृद्ध भूभाग पर शासन करता रहा।

1. सड़क यातायात

उन्नीसवी शताब्दी के मध्य तक ब्रिटेन मे सडको की स्थिति सतोषजनक कही जाने योग्य नही थी। मैकॉले ने अपने इग्लैण्ड के इतिहास (History of England)

[1] Ogg and Sharp, *op cit*, 227

मे चार्ल्स द्वितीय के समय मे सडको की शोचनीय स्थिति का विवेचन किया है। अठारहवी शताब्दी मे सडको की स्थिति मे कोई विशेष सुधार नही किया गया था। जिन्हे सडकें कहा जाता था वे अक्सर छोटी सकरी पगडडियाँ (tracks) हुआ करती थी तथा उन पर अक्सर डाकू-लुटेरो का आतक बना रहता था। कई बार उन पर गुजरना भी असम्भव हो जाता था। लन्दन से मैनचेस्टर तक की यात्रा मे पाँच दिन लग जाते थे। देश के ही सूबे (counties) एक-दूसरे से इतने दूर लगते थे जितना कि आजकल एक देश से दूसरा देश। सडक मार्ग से व्यापार काफी असुविधाजनक था तथा कोयले जैसी भारी चीजो को दूर की जगहो तथा केन्द्रो तक ले जाना असम्भव-सा था।

सरकार ने सडको की स्थिति सुधारने पर तब तक कोई विशेष ध्यान नही दिया जब तक कि 1555 मे सडको की मरम्मत का दायित्व तय करने सम्बन्धी एक कानून पारित न कर दिया गया। किन्तु उस कानून को कभी लागू नही किया गया। तीन ऐसे प्रमुख कारण थे जिनके फलस्वरूप अठारहवी शताब्दी से पहले तक देश मे अच्छी सडको का निर्माण असम्भव बना रहा पहला, सडको के निर्माण के लिए आवश्यक तक्नीक उपलब्ध नही थी, दूसरा, जनसख्या बहुत कम थी, और तीसरा, देश-भर में सडकें बनाने के लिए आर्थिक समाधनो की कोई व्यवस्था नही थी।

किन्तु अठारहवी शताब्दी मे सडको मे सुधार का काम एक बडे विचित्र रूप में शुरु हुआ। यह कम से कम सरकारी हस्तक्षेप का युग था। लोगो का विश्वास था कि निजी उद्यम सडको की अच्छी तरह देख-भाल कर सकता है। कोई भी धनी आदमी, जो अपना धन-सडक निर्माण पर व्यय करता, उसे सडक के उतने ही टुकडे पर नियन्त्रण का अधिकार प्राप्त हो जाता। इस तरह सडक के प्रत्येक भाग के खत्म होने पर दरवाजे होते और वहाँ से गुजरने वाले हर व्यक्ति, हर जानवर और वाहन को उस सडक के मालिक को कर (toll) चुकाना पडता। इससे तात्पर्य यह था कि सडक के रख-रखाव का खर्च साधारण जनता मे न लेकर केवल सडक का उपयोग करने वालो से लिया जाए।

टर्नपाइक या मुख्य सडको के निर्माण का काल

सडक निर्माण की दृष्टि से पहला टर्नपाइक कानून (Turnpike Act) ब्रिटिश समद द्वारा 1663 म पारित किया गया जिसका उद्देश्य उन टर्नपाइक न्यासो (Turnpike Trusts) को गठित करना था जो सडको का निर्माण करके तथा उन पर नियत्रण रखकर लाभ कमाते थे। किन्तु नयी सडकें बनाने की क्रिया ने अठारहवी शताब्दी में ही अधिक जोर दिया। यह बात इसी से सिद्ध हो जाती है कि 1760 से 1774 के बीच इस तरह के 450 कानून पारित किये गये।

इन टर्नपाइक न्यासो के माध्यम मे सडक-निर्माण की व्यवस्था द्वारा देश मे कुछ अच्छी मुख्य सडको का निर्माण हुआ। इस व्यवस्था के अनेक आलोचक भी थे जो यह मानते थे कि टर्नपाइक सडको की देख रेख अच्छी नही होती थी। मोटे तौर पर यह आलोचना उन सहायक सडको तथा गाँवो को जोडने वाली सडको पर लागू होती थी जो छोटे-छोटे गाँवो को जोडती थी। ऐसा इसलिये होता था कि इन सडको पर याता-यात बहुत कम रहता था और टर्नपाइक ट्रस्ट लाभ म अधिक रुचि रखते थे। इसके

अतिरिक्त अठारहवी शताब्दी के अन्त तक मुख्य सड़कें काफी अच्छी स्थिति मे आ चुकी थीं तथा बड़े शहरो को बराबर चलने वाली कोच (coach) सेवा द्वारा जोडा जा चुका था।

सड़को का मेकेडेमीकरण (Macadamisation of Roads)

अठारहवी शताब्दी के अन्त तक सडक-निर्माण की तकनीक मे भी कुछ प्रगति की जा चुकी थी। सैकडो मील लम्बी सडकें तथा अनेक पुलो का निर्माण जॉन मेटकॉफ तथा टॉमस टेलफोर्ड जैसे व्यक्तियो द्वारा करवाया जा चुका था। किन्तु सडक-निर्माण की कला मे क्रान्ति लाने का श्रेय जॉन मेकएडम (Johan MacAdam) को जाता है। उसने पहले पत्थरो की तह पर मिट्टी (Corcrete) की परत जमा कर उस पर भारी रोलर घुमाकर सडक निर्माण की पद्धति का विकास किया। ऐसी सड़कें न केवल अधिक टिकाऊ होती थी, बल्कि कडी सतह वाली होने के कारण वाहनो के आवागमन के लिए काफी उपयुक्त रहती थी। यह सडक-निर्माण की पद्धति इतनी सफल रही कि आज तक भी कई छोटी सड़को को सिर्फ मेकेडेमीकृत (Macadamised) करके ही छोड दिया जाता है। इस तरह सडको के निर्माण की इस तकनीक के विकसित होने के साथ ही सडकों ने एक नये युग मे प्रवेश कर लिया था।

न्यासो का विलय (Amalgamation of Trusts)

उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध की विशेषता यह रही कि इसमे टर्नपाइक न्यासो (Turnpike Trusts) के विलय का आन्दोलन चल निकला। अनेक छोटे टर्नपाइक ट्रस्टों के स्थान पर कुछ विशाल टर्नपाइक ट्रस्टो का उद्भव हुआ। इन बडी कम्पनियों के पास अधिक धन था व प्रशिक्षक सर्वेक्षको (Surveyors) तक इनकी पहुँच थी तथा ये अधिक कुशल भी थीं। किन्तु रेलो के आगमन के साथ ही इन बड़े और छोटे सभी टर्नपाइक ट्रस्टो का विघटन हो गया। सडक यातायात मे कमी आयी और उससे प्राप्त आगम भी घट गया और इस तरह एक-एक करके ये टर्नपाइक ट्रस्ट विलुप्त हो गये। सडको के रख-रखाव का उत्तरदायित्व स्थानीय सार्वजनिक सस्थाओं पर आ पडा।

मोटर यातायात का युग (Era of Motor Traffic)

बीसवी सदी के आरम्भ मे ही मोटर यातायात के द्रुत विकास ने सडको को पुन अत्यधिक महत्वपूर्ण बना दिया है। गति एव भार मे अप्रत्याशित वृद्धि हो जाने के कारण सडक निर्माण की पुरानी तकनीको को एकदम आधुनिक तकनीको से प्रतिस्थापित कर दिया गया है। सडक-निर्माण की नयी तकनीको ने अधिक टिकाऊ धरातल वाली सडको का निर्माण सम्भव बना दिया है।

मोटर यातायात मे वृद्धि होने के साथ ही एक और बात यह हुई कि जनसाधारण ने सडको की स्थिति मे सुधार करने की माँग शुरू कर दी। किन्तु सडको को चौडा करने, सीधा बनाने, उनके धरातल को फिर से तैयार करने (resurfacing) व नयी सडकें बनाने मे भारी खर्च की आवश्यकता पडती है। इस लागत के लिए कोई

न कोई स्रोत ढूंढना आवश्यक था इसलिये 1909 से 1937 तक एक विशेष कोष बनाया गया जिसमे मोटर-कर से प्राप्त सारी राशि जमा की जाती रही। मोटर-करो से प्राप्त समस्त धनराशि सडक कोष को स्थानान्तरित करने की प्रथा 1937 मे ही समाप्त की गयी। अब सडक कोष (Road Fund) को उतनी ही राशि प्राप्त होती है जितनी कि ससद द्वारा उसके लिए पारित की जाती है। 1929 के स्थानीय सरकार अधिनियम (Local Government Act, 1929) मे सडको को वर्गीकृत भी कर दिया गया है। ये वर्गीकृत सडके अब काउन्टी परिषदो (County Councils) का दायित्व मान ली गयी हैं। नयी सडके बनाने पर आने वाले वित्तीय खर्च का आशिक दायित्व तो यातायात मत्रालय पर है और कुछ खर्च स्थानीय सस्थाएँ भी देती हैं।

1939 मे इग्लैण्ड म 1 80 लाख मील लम्बी सडके मौजूद थी और लगभग 30 लाख वाहनो को सडक उपयोग करने का लाइसेंस प्राप्त था। जब दूसरा महायुद्ध छिडा तो सरकार ने एक आपत्कालीन सडक परिवहन सगठन (Emergency Road Transport Organisation) गठित किया। यह सगठन वाहनो को सरकारी काम के लिए ले सकता था तथा ईधन का राशन भी तय करता था। जब युद्ध समाप्त हुआ तो सडको को मरम्मत की आवश्यकता थी। मरम्मत का यह काम 1953 तक चला जबकि फिर एक बार नयी सडको के निर्माण का काम शुरू किया गया। 1958 तक लाइसेंस शुदा वाहनो की सख्या 80 लाख तक पहुँच गयी। आजकल देश के प्रत्येक तीन व्यक्तियो के बीच एक मोटरवाहन का औसत आता है।

1947 मे पारित सडक यातायात विधेयक (Road Transport Act, 1947) ने सडक यातायात द्वारा ढोए जाने वाले माल का राष्ट्रीयकरण कर दिया। एक सशोधन द्वारा 1953 मे आशिक रूप मे उसे पुन अराष्ट्रीयकृत कर दिया गया। ग्रेटर लन्दन के लिए लन्दन यातायात सेवा बोर्ड द्वारा एक अलग यातायात व्यवस्था सचालित की जाती है। सडको के निर्माण का काम तो बहुत पहले ही पूरा हो चुका है। एक छोटा-सा द्वीपीय राष्ट्र होने के कारण उसकी सडक आवश्यकताएँ भी सीमित हैं और वे पूरी हो चुकी हैं। सडको का रख-रखाव बडे सुन्दर तरीके से किया जाता है तथा वाहन यातायात बराबर बढ रहा है। 1970-80 के दशक म आये स्फीति व जडता (Stagflation) के मिश्रित वातावरण के बावजूद सडक यातायात पर कोई विपरीत प्रभाव नही पडा है।

2 नहरें व अन्तर्देशीय जल परिवहन

यद्यपि अठारहवी शताब्दी के दौरान सडक यातायात के क्षेत्र मे अनेक सुधार हो चुके थे। किन्तु फिर भी वे औद्योगिक गतिविधि मे हुई वृद्धि के कारण भारी चीजो (जैसे कोयला) की बढी हुई माँग को पूरा करने के लिए पर्याप्त नही थे। इस आवश्यकता को नहरो के निर्माण द्वारा पूरा किया गया। एअरे (Aire) तथा केल्डर (Calder) को जोडने वाली आरम्भिक नहर सत्रहवी सदी मे पूरी की गयी।

ब्रिजवाटर नहर (Bridgwater Canal) का निर्माण ब्रिटिश अन्तर्देशीय जल परिवहन के इतिहास मे एक महान् घटना थी। इस नहर ने मेनचैस्टर को वसले (Worsely) स्थित कोयले की खानो से जोडकर इस औद्योगिक शहर के लिए कोयले

के आवागमन मे भारी सुविधा कर दी। एक अन्य नहर मैनचेस्टर को लिवरपूल से जोड़ने के लिए बनायी गयी। इन दोनों नहरो का निर्माण बिंदले (Bindley) की इंजीनियरिंग दक्षता का परिणाम था।

नहरोन्माद (Canal Mania) का काल : 1760–1800

महान् शहरो को जोडने मे बिन्दले को प्राप्त हुई सफलता से प्रोत्साहित होकर देश-भर मे नहरो का निर्माण शुरू किया गया। 1760 से 1800 के बीच अनेक नये जल-मार्गों (Waterways) का निर्माण किया गया। 1791 से 1797 के बीच की छह वर्षों की अवधि मे तो देश में इतनी अधिक नहरो की खुदाई की गयी थी कि इस अवधि को नहरोन्माद (Canal mania) का युग कहा गया। इस सबका परिणाम यह रहा कि अठारहवी सदी के समाप्त होने से पूर्व ही देश मे नहरो का जाल फैल गया।

यहाँ यह बात महत्त्वपूर्ण है कि नहरो के निर्माण मे भी सरकार ने धन नही दिया। निजी उद्यमियो ने ही सारा का सारा धन जुटाया। इससे निर्माण कार्य मे एकरूपता भी नही रही और दूर तक के यातायात (through traffic) मे कठिनाइयाँ भी आयी। किन्तु यह सब सरकारी अहस्तक्षेप की नीति के कारण ही हुआ। ये नहर कम्पनियाँ भी टर्नपाइक ट्रस्टो की तरह ही उपयोग करने वालो से कर (toll tax) वसूल करती थी। ये स्वय वस्तुएँ लाने ले जाने का काम नही करती थी।

अनेक दोषो के बावजूद उस जमाने मे ये नहरे ही चीजो के आवागमन के लिए सर्वोत्कृष्ट माध्यम थी। औद्योगिक विकास नहरो के अभाव मे शायद ही सम्भव हो पाता। उनके द्वारा खाद्य पदार्थ और कच्चे माल लाये लेजाये जाते। निर्मित वस्तुएँ भी उन्ही के द्वारा भेजी जाती। कोयले को ले जाने की समस्या भी हल हो गयी।

नहरी व्यवस्था की अवनति

कई वर्षों तक नहरी व्यवस्था को समृद्धि प्राप्त होती रही। किन्तु रेलो के आगमन के साथ ही उनकी अवनति प्रारम्भ हो गयी। उनका बहुत सारा माल पहले तो रेलो और बाद मे तटीय स्टीमरो द्वारा ढोया जाने लगा। इन नहरी कम्पनियो का विलय (amalgamation) भी इन्हे गला-काट प्रतिस्पर्द्धा से नही बचा पाया। कुछ नहरी कम्पनियाँ तो प्रतिस्पर्द्धा समाप्त कर डालने के उद्देश्य से रेल कम्पनियो द्वारा खरीद ली गयी। जब किसी एक नहरी भाग (canal section) को खरीद लिया जाता तो दूसरे नहरी भाग की स्थिति अपने आप ही कमजोर पड जाती। रेल कम्पनियो ने लगभग एक-तिहाई नहरो को खरीद लिया था।

रेलों की नहरो के साथ अनुचित प्रतिस्पर्द्धा के लिए आलोचना की गयी तथा 1888 मे रेलो द्वारा और अधिक नहरो के खरीदने पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। उन्नीसवी शताब्दी के अन्तिम वर्षों मे लीवरपूल को मैनचेस्टर से जोडने के लिए जहाजो के आ-जा सकने योग्य नहर का निर्माण किया गया। यह भी अपने आपमे एक इंजीनियरिंग चमत्कार था। इसे मैनचेस्टर शिप केनाल (Manchaster Ship Canal) का नाम दिया गया और यह एकदम सफल हो गयी। 1955 मे इस नहर

तथा ब्रिजवाटर नहर ने मिलकर 19 मिलियन टन वजन का आवागमन सम्भव बनाया था।

नहरो की उपयोगिता अभी भी इग्लैण्ड मे पूरी तरह समाप्त नही हुई है। 1909 मे अपनी एक रिपोर्ट मे नहरी शाही आयोग ने यह सिफारिश की थी कि एक जलमार्ग बोर्ड (Waterways Board) गठित किया जाना चाहिए। किन्तु इस सुझाव को व्यवहार मे नही लाया जा सका। 1947 मे पारित यातायात विधेयक ने नहरो पर नियन्त्रण गोदी व अन्तर्देशीय जलमार्ग निदेशक (Docks & Inland Waterways Executive) को सौंप दिया था। इस सस्था को भी 1953 मे समाप्त कर दिया गया तथा नहरो के नियन्त्रण का काम प्रबन्धक बोर्ड (Board of Management) को सौप दिया गया है।

3 ब्रिटिश रेलें

रेल युग का आरम्भ लगभग 1830 मे हुआ। उसी वर्ष मे जार्ज स्टीफेंसन ने वाष्प-चालित इजिन की व्यावहारिकता सिद्ध कर दी व उसके द्वारा निर्मित प्रथम रेल इजिन 'रॉकेट' ने सफलतापूर्वक 13 टन वजन 29 मील प्रति घण्टा की रफ्तार से खीचकर दिखाया। जार्ज स्टीफेंसन की इस सफलता ने यातायात के इस नये तरीके के विकास द्वारा अनेक बाधाएँ दूर कर दी तथा इग्लैण्ड में एक राष्ट्रीय रेल-व्यवस्था स्थापित करने का मार्ग प्रशस्त कर दिया। इग्लैण्ड मे रेलो के निर्माण मे अनेक नवीन बाते सामने आयी

(1) निजी पहल—देश मे रेल व्यवस्था कायम करने का काम पूरा का पूरा निजी कम्पनियो पर छोड दिया गया। सरकार को सामान्य नियन्त्रण का अधिकार था तथा रेल परियोजनाओ को ससदीय अनुमति प्राप्त करनी होती थी।

(2) ऊँची लागत—ग्रेट ब्रिटेन मे रेलो के निर्माण की लागत काफी ऊँची आती थी। इग्लैण्ड मे 1849 मे प्रति एक मील रेल लाइन बिछाने पर औसत लागत 56,915 पौण्ड आती थी जबकि यही लागत प्रशा (Prussia) व ऑस्ट्रिया (Austria) मे क्रमश 10,000 पौण्ड तथा 11,300 पौण्ड थी। ब्रिटेन मे रेल लाइन बिछाने की इतनी ऊँची लागत इसलिए आती थी कि वहाँ रेल लाइने बिछाने के लिए आवश्यक भूमि पर बहुत ऊँची दर पर मुआवजा देना पडता था। सरकार द्वारा नक्शे आदि भी नही बनवाये हुए थे और उसका खर्चा भी निजी कम्पनियो को ही वहन करना होता था। यह सारी प्रक्रिया काफी खर्चीली थी।

(3) प्रयोगो की लागत—भाप से चलने वाले रेल इजिनो का आविष्कार सबसे पहले इग्लैण्ड ही मे हुआ था। उनमे सुधार करने के लिए अनेक प्रयोग किये गये। इसमे सफलता अनेक बार की कोशिशो से ही मिली। इन प्रयोगो पर भी खर्च हुआ।

(4) इजीनियरिंग की समस्याएँ—इजीनियरिंग की कठिन समस्याओ को हल करने के लिए भी भारी खर्च की आवश्यकता थी। लम्बे समतल भूखण्ड उपलब्ध नही थे इसलिए काफी खुदाई करनी पडती थी। जगह-जगह पहाडो को आर-पार

खोदना पडा था।

(5) **निर्माण कार्य की मजबूती—निर्माण कार्य की मजबूती** पर काफी बल दिया जाता था। रेल लाइने बिछाने मे काफी सुरक्षा व्यवस्था की जाती थी जिससे खर्च काफी बढ जाता था।

यह एक विचारणीय प्रश्न है कि जब आरम्भिक निर्माण लागत इतनी ऊँची थी तो ब्रिटेन मे रेलो का जन्म और विकास केवल निजी उपक्रमियो के बल पर किस तरह हुआ ? यह इसलिए सम्भव हुआ कि बडे पैमाने पर उत्पादन का युग आरम्भ हो चुका था और अनेक लोगो ने बडी मात्रा मे सम्पत्ति अर्जित कर ली थी। ऐसे लोग अपना धन यातायात के इस नये तरीके मे लगाकर लाभ कमाना चाहते थे। ब्रिटिश रेलो का विकास वहाँ के व्यवसाय की आवश्यकताओं को दृष्टिगत रखते हुए किया गया था और उसमे विनियोग करने वालो को अपने लगाये हुए धन पर तुरन्त लाभ पाने की आशा थी।

अपने निर्माण की प्रारम्भिक अवस्थाओं मे रेल कम्पनियो का नहर कम्पनियो, कोच के मालिको तथा टर्नपाइक ट्रस्टो के साथ सीधा सघर्ष आरम्भ हुआ। सडको मे काफी सुधार हो चुका था तथा अठारहवी शताब्दी मे देश-भर की नहरो का भी जाल फैल चुका था। उन्नीसवी सदी मे एकाधिकार को बढावा नही दिया जाता था इसलिए सरकार ने रेलो की रेलो के साथ प्रतिस्पर्द्धा तथा रेलो की नहरो के साथ प्रतिस्पर्द्धा को बढावा दिया। न केवल रेलो तथा नहरो के बीच प्रतिस्पर्द्धा को बनाये रखा जाता था बल्कि विभिन्न रेल कम्पनियों के बीच भी इतनी तीव्र प्रतिस्पर्द्धा थी कि किसी भी बडे शहर मे एक से कही अधिक रेल कम्पनियाँ सेवाएँ देती थी। अन्य यूरोपीय देशो मे, जहाँ नहरे होती थी, उन्हे प्रतिद्वन्द्वी के रूप मे नही बल्कि रेलो के लिए माल की आपूर्ति बढाने की दृष्टि से (feeders) काम मे लिया जाता था।

रेल कम्पनियो के प्रारम्भिक उपक्रमियो ने ग्रेट ब्रिटेन मे किसी राष्ट्रीय रेल व्यवस्था स्थापित करने की दृष्टि से कभी नही सोचा। उन्होंने विभिन्न गेज (gauge) वाली छोटी-छोटी लाइनो का निर्माण किया। कुछ समय बीत जाने के बाद ही इस बात का अनुभव किया गया कि इन लाइनो को जोडने की आवश्यकता है। अन्य देशो ने तो ब्रिटेन की इस कठिनाई से सबक सीखा और अपने यहाँ रेल लाइनो को जोडने मे बिल्कुल भी समय नही खोया। रेल उद्योग के अगुवाओ (pioneers) ने माल लाने ले जाने से ही अधिक लाभ कमाने की आशा की थी इसलिए उन्होने यात्रियो के आवागमन को सुविधाजनक बनाने पर कोई ध्यान नही दिया। किन्तु यह एक त्रुटि थी। प्रारम्भिक वर्षो मे रेलो को प्राप्त होने वाले आगम मे 75 प्रतिशत भाग यात्रियो से प्राप्त भाडे का होता था। ब्रिटिश रेलो की एक और विशेषता यह थी कि रेल कम्पनियाँ सिर्फ रेल लाइनो की मालिक होती थी जबकि उन पर चलने वाले डिब्बे आदि और ही लोगो द्वारा चलाये जाते थे। ऐसा इसलिए था कि डिब्बो आदि की खरीद पर और भी अधिक पूंजी लगानी पडती। ये रेल कम्पनियाँ डिब्बो पर फीस वसूल करती थी किन्तु इस व्यवस्था मे अनेक कठिनाइयाँ थी।

ब्रिटिश रेलो के विकास को कुछ मुख्य कालो मे विभक्त किया जा सकता है.

1 आरम्भिक प्रयोगो का काल 1821–1850

ब्रिटिश रेल व्यवस्था को उन्नीसवी शताब्दी के दूसरे चतुर्थांश मे एक निश्चित स्वरूप प्राप्त हो चुका था। रेले तो 1825 से पहले भी मौजूद थी किन्तु वे भाप की शक्ति का उपयोग नही करती थी। 1850 तक रेलो के निर्माण के बारे मे काफी प्रगति हो चुकी थी। वास्तव मे रेल व्यवस्था की स्थापना ही इसी अवधि मे हुई। *1821 मे स्टाकटन एण्ड डार्लिंगटन रेलवे (Stockton & Darlington Railways)* की स्थापना की गयी। यह रेल कम्पनी घोडो के स्थान पर भाप से चलने वाले इजन का उपयोग करना चाहती थी। जार्ज स्टीफेंसन द्वारा तैयार किये गये प्रथम भाप के इजन द्वारा एक रेलगाडी 1825 मे पहली बार चलायी गयी। यह प्रयोग सफल रहा तथा 1830 मे लीवरपूल व मैंनचेस्टर के बीच रेल-व्यवस्था पूर्ण की गयी। अन्य रेल लाइनो के निर्माण का भी काम हाथ म लिया गया तथा 1838 मे लन्दन को भी मैंनचेस्टर से रेल लाइन द्वारा जोड दिया गया।

इस समय तक अनेक रेल लाइनें, जो एक दूसरे से सम्बन्धित नही थी, देश-भर मे बिछाई जा रही थी। 1843 से 1847 के बीच 'रेल सम्राट' (Railway King) जॉर्ज हडसन द्वारा दिये गये प्रोत्साहन से देश मे रेल उन्माद (Railway Mania)[1] की स्थिति पैदा हो गयी। किन्तु इतनी जल्दी-जल्दी मे किये गय रेल-निर्माण से अनेक मूर्खतापूर्ण परियोजनाएँ भी तैयार कर ली गयी जिनमे विनियोजको को बहुत से धन से हाथ धोना पडा। किन्तु सारी योजनाएँ ऐसी नही थी और 1850 तक इग्लैण्ड मे रेलो का जाल बिछ गया। 1844 मे इग्लैण्ड मे सक्रिय रेल लाइनो की लम्बाई 2100 मील तक पहुँच चुकी थी।

2 पुनर्गठन व ससदीय नियन्त्रण का काल 1850–1893

प्रारम्भिक रेल लाइनें तो छोटी निजी कम्पनियो द्वारा ही बनायी गयी किन्तु बाद म विलय (amalgamations) हुए उनके द्वारा 1850 तक तो लन्दन एण्ड नॉर्थ वस्टर्न (London & North Western) तथा मिडलैण्ड (Midland) व ग्रेट नार्थर्न (Great Northern) जैसी विशालकाय रेल कम्पनियाँ स्थापित हो चुकी थी। ससद ने भी पहले तो इस प्रकार के विलयो को प्रोत्साहन दिया किन्तु जब दो बडी रेल कम्पनियो—द लन्दन एण्ड नॉर्थ वेस्टर्न तथा द मिडलैण्ड—ने एक होने के लिए अनुमति चाही तो उन्हे ससद ने इस आधार पर मना कर दिया कि इससे एकाधिकार को बढावा मिलता है। सरकार स्वतन्त्र प्रतिस्पर्द्धा को बढावा देने के पक्ष म थी। किन्तु इसके अतिरिक्त कई कम्पनियो के बीच अनौपचारिक मेल-जाल (combinations) चलता रहा जिससे प्रतिस्पर्द्धा मे कमी ही आयी।

रेलो द्वारा इसी अवधि मे जिस एक अन्य समस्या का सामना करना पडा वह गेज के समानीकरण (standardisation of gauge) की थी। ससद ने इस सम्बन्ध मे 1846 तक कोई कदम नही उठाया था। 1846 ही मे ससद ने एक विधेयक पारित किया जिसके अनुसार भविष्य मे सभी रेल लाइनो के बीच की दूरी के लिए

[1] G W Southgate, *op cit*, 200

मानक गेज (standard gauge) चार फीट साढे आठ इच तय कर दिया गया। बाकी रेल लाइनो के रूपान्तरण का काम भी 1892 तक पूरा हो गया। परिस्थितियो ने रेल कम्पनियो को यात्री व माल ढोने के लिए भी बाध्य कर दिया हालांकि मूल रूप से उनका इरादा केवल लाइनो का उपयोग करने वालो से टैक्स वसूलना ही था।

धीरे-धीरे यह महसूस किया जाने लगा कि यद्यपि रेलो का विकास निजी उपक्रम के प्रयासो का ही परिणाम था किन्तु उनकी सार्वजनिक महत्ता भी कम नही थी। उन पर कुछ सीमा तक राज्य का नियन्त्रण आवश्यक था। आरम्भ म ससद किसी भी प्रकार के नियन्त्रण के विरुद्ध थी लेकिन आखिर 1873 मे उसने एक रेल व नहर आयोग (Railway & Canal Commission) गठित कर ही दिया। रेलो का नियन्त्रित करने का यह पहला कदम था।

इससे पहले 1840 मे यह कानून बना ही दिया गया था कि नयी लाइनो का निर्माण बोर्ड ऑफ ट्रेड की स्वीकृति मिलने के बाद ही किया जा सकता था। 1845 मे ससद ने माल भाडे (freight rates) की अधिकतम दरें भी तय कर दी थी। 1854 मे एक कार्डवेल विधेयक (Cardwell Act) भी पारित किया गया जिसने रेल कम्पनियो को इस बात के निर्देश जारी किये कि वे वस्तुओ के आवागमन मे यथासम्भव सुविधाएं प्रदान करे तथा अनुचित प्राथमिकताएँ न दें। किन्तु कार्डवेल विधेयक कई वर्षो तक अप्रभावी बना रहा तथा रेल कम्पनियो ने अनेक वर्षो तक विभिन्न ग्राहकों से मानक दरें वसूल नही की। 1873 के विधेयक मे कम्पनियो के लिए हर स्टेशन पर माल भाड की दरा की पुस्तक (rate book) रखना भी अनिवार्य कर दिया गया था। 1873 म स्थापित रेल तथा नहर आयोग को निम्न मुख्य काम सौपे गये

(1) प्राथमिकताएँ (preferences) देने पर लगी पाबन्दी को लागू करवाना।
(2) विलय के प्रस्तावो की जाँच पडताल करना।
(3) लम्बी दूरी के लिए भाडे की उचित दरें निर्धारित करना।
(4) कम्पनियो के बीच हुए विवादो को पचनिर्णय के लिए सौपना, तथा
(5) नहरो को खरीदने से सम्बन्धित प्रस्तावो को स्वीकृति देना।

आरम्भ मे तो आयोग को जन विश्वास भी नही मिला और कम्पनियो ने भी उसकी अनदेखी की। किन्तु आयोग को कम्पनियो द्वारा दी जाने वाली प्राथमिकताओ को घटाने मे सफलता मिली। 1888 मे रेल व नहर यातायात विधेयक (Railway and Canal Traffic Act 1888) के पारित कर दिये जाने के बाद रेल कम्पनिया पर सार्वजनिक नियन्त्रण कडा हो गया। काफी समय से रेल-भाड की दरो का सवाल व्यापारियो तथा कम्पनियो के बीच झगडे की जड बना हुआ था। विधेयक मे इन दरो के निर्धारण तथा प्रकाशन के लिए प्रावधान किया गया। रेल कम्पनियो ने विभिन्न वस्तुओ की श्रेणियाँ बनायी तथा प्रत्येक श्रेणी के लिए अधिकतम दर को प्रस्तावित व प्रकाशित किया गया। वस्तुओ का यह श्रेणीकरण वस्तुओ के मूल्य पर आधारित था न कि उनके वजन या आकार पर।

रेल कम्पनियो द्वारा तय की गयी इन भाडे को दरो पर कई आपत्तियाँ उठायी

गयी। नयी सूचियाँ तैयार की गयी। इन नयी दरो को ससद ने भी स्वीकृति दे दी तथा उन्हे 1 जनवरी 1893 से लागू करने का प्रस्ताव किया गया। किन्तु इन नयी दरो से भी सिर्फ वे ही व्यापारी सन्तुष्ट हुए जिन्हे उनके अन्तर्गत की गयी कटौतियो से कोई लाभ होता था। दूसरे व्यापारी शिकायतें करते रहे। कुछ महीनो बाद कम्पनियो ने फिर वही पुरानी दरे वसूल करनी शुरू कर दी। सरकार ने इस आशय की घोषणा की कि 1892 मे प्रचलित दरो मे कोई भी वृद्धि अनुचित मानी जाएगी।

3. राज्य नियन्त्रण व विलय 1893–1913

ब्रिटिश ससद ने 1896 मे एक लाइट रेलवे आयोग (Light Railway Commission) नियुक्त किया। आयोग को ऐसी योजनाएँ बनाकर प्रस्तुत करने का काम सौपा गया जिनसे ग्रामीण क्षेत्रो को हल्की रेल लाइनें (Light Railways) बनाकर जोड़ा जा सके। किन्तु आयोग की नियुक्ति के प्रभाव के रूप मे कोई विशेष निर्माण कार्य नही हुआ।

1890 से 1913 तक की अवधि मे अधिकाश रेल कम्पनियाँ अतिरिक्त माल ढोने के लिए गहरी प्रतिद्वन्द्विता करती रही। यात्रियो या ढोये जाने वाले माल मे वृद्धि होने से रेलो को चलाने की लागत नही बढती थी इसलिए इन वृद्धियो से रेल कम्पनियो को अत्यधिक लाभ था। कम्पनियो ने अधिक माल व यात्री आकर्षित करने की दृष्टि से अपनी दरो मे कटौती भी की।

उन्नीसवी शताब्दी के मध्य मे विलयीकरण (amalgamations) का जो दौर चला था वह भी जारी रहा। 1899 मे लन्दन-चेटहेम (London-Chatham) तथा दक्षिण-पूर्वी रेलवे (South-Eastern Railway) ने मिलकर एक कामचलाऊ सघ बना लिया। बीसवी शताब्दी के प्रारम्भिक वर्षों मे ऐसे और भी अनेक सघ बनाये गये। तीन मुख्य कम्पनियो ने 1908–09 मे कामचलाऊ समझौते किये। 1909 मे ससद द्वारा अनुमति न दिये जाने के बावजूद तीन और कम्पनियो—द ग्रेट नार्दर्न (the Great Northern), ग्रेट ईस्टर्न (Great Eastern), तथा ग्रेट सेन्ट्रल रेलवे (Great Central Railway) *ने ससद की सहमति के बिना ही एक कामचलाऊ समझौता* कर लिया ताकि अनावश्यक प्रतिस्पर्द्धा समाप्त की जा सकती। 1912 मे लन्दन टिलबरी रेलवे (London Tilbury Railway) मिडलैण्ड रेलवे (Midland Railway) मे मिल गयी।

बीसवी शताब्दी लगने के बाद तो रेलो के क्षेत्र मे अनेक सुधार हुए है। शयन-यान, यात्रियो के बैठने के लिए अच्छे डिब्बे, तेज गति से चलने वाली गाडियाँ आदि उनमे से कुछ है। कम्पनियो ने इन सुविधाओ के लिए अपने भाडे भी अधिक नही बढ़ाये। *तृतीय श्रेणी के डिब्बो की हालत काफी सुधारी गयी।* 1938 मे लन्दन ट्रासपोर्ट (London Transport) द्वारा सेवारत क्षेत्र मे तो वर्गहीन (classless) यात्रा आरम्भ कर दी गयी और प्रथम श्रेणी को हटा दिया गया।

किन्तु प्रथम विश्व-युद्ध से पहले के ये कुछ वर्ष रेलो के लिए समृद्धि के वर्ष नही थे। कार्यकारी व्यय बढ रहा था। सुविधाओ मे वृद्धि का अर्थ था—कम्पनियो के

लिए ऊँची लागत। यहाँ तक कि कोयले की लागत और करो की दरें भी ऊँची हो गयी थी। श्रम-संघो का विकास हो जाने के कारण बढी हुई मजदूरी के लिए माँगे भी बढ गयी। कम्पनियो को ग्रामीण इलाको मे बनी हुई उन शाखाओं को भी बन्द नही करने दिया गया जिनसे कोई लाभ नही होता था। किन्तु 1913 मे एक विधेयक पारित किया गया जिसने कम्पनियो को यात्री-भाडा व माल-भाडा बढाने की अनुमति इस आधार पर क्षतिपूर्ति के रूप मे दी कि उन्होने इस दौरान अनेक सुधार करके अपनी लागत काफी ऊँची कर ली थी।

4 प्रथम विश्व-युद्ध और सरकारी नियन्त्रण

1914 मे जब प्रथम विश्व-युद्ध छिडा तो रेलो का नियन्त्रण सरकार ने अपने हाथो मे ले लिया। रेलो का प्रबन्ध तो कम्पनियो के पास ही रहने दिया गया किन्तु रेलें सरकार के उपयोग के लिए निश्चित कर दी गयी ताकि सैनिको व सैनिक साज-सामान को इधर-उधर आसानी से ले जाया जा सके। रेलो की स्थिति युद्ध के वर्षों मे इतनी दयनीय हो चुकी थी कि जब युद्ध समाप्त हुआ तो सरकार ने उन्हे क्षतिपूर्ति के लिए 60 मिलियन पौण्ड की रकम प्रदान की।

सरकार ने सम्पूर्ण रेल व्यवस्था के पुनर्गठन का भी निर्णय लिया। 1921 के एक विधेयक द्वारा देश की 121 रेल कम्पनियो को चार बडी कम्पनियो मे समूहीकृत कर दिया गया

(i) द लन्दन एण्ड नॉर्थ ईस्टर्न (the London and North Eastern),

(ii) द लन्दन मिडलैण्ड एण्ड स्कॉटिश (the London Midland and Scottish),

(iii) द ग्रेट वेस्टर्न (the Great Western), तथा

(iv) द सदर्न (the Southern)।

इन विलयो से यह अपेक्षा की गयी थी कि व्यर्थ की प्रतिद्वन्द्विता समाप्त हो जाएगी तथा उद्योग अधिक समृद्ध बनेगा। एक रेल दर ट्रिब्युनल (Railway Rates Tribunal) गठित किया गया जिसे ऐसी दरें व भाडे तय करने को कहा गया कि जिनसे कम्पनियो को निश्चित आगम प्राप्त हो सके। 1892 मे वस्तुओ का जो श्रेणीकरण किया गया था उसे समाप्त कर दिया गया। उसके स्थान पर 21 श्रेणियो वाला एक नया वर्गीकरण किया गया जिसके आधार पर दरो का निर्धारण होना था। दरो का निर्धारण युद्ध-पूर्व के स्तर से 60 प्रतिशत ऊँचे स्तर पर किया गया। इन दरो को प्रदर्शित करने वाले चार्ट छापे गये और उन्हे आम जनता को बेचा गया। कम्पनियो को सूची मे अंकित दर से कम या अधिक दर वसूल करने से रोक दिया गया।

रेल कर्मचारियो की काम की दशाओ तथा उनके लिए वेतन-निर्धारण पर भी लोगो का ध्यान गया। प्रत्येक कम्पनी के लिए एक मजदूरी परिषद् (wage council) का गठन अनिवार्य कर दिया गया और उसके असफल होने पर मामला केन्द्रीय मजदूरी बोर्ड को भेजने की व्यवस्था की गयी। अपील का प्रावधान रखा गया जो

राष्ट्रीय मजदूरी बोर्ड को की जा सकती थी। किन्तु यह व्यवस्था सन्तोषप्रद नही रही और इसे 1935 मे समाप्त करना पडा। नयी व्यवस्था के अन्तर्गत एक रेलवे कर्मचारी राष्ट्रीय परिषद् बनायी गयी जिसका कार्यक्षेत्र भी व्यापक था। असफलता की स्थिति मे मामला ट्रिब्युनल (Tribunal) मे ले जाया जा सकता था जिसमे तीन सदस्य होते थे। एक कम्पनियो का प्रतिनिधित्व करता था, एक यूनियनों का तथा एक सभापति होता था जिसे श्रम-मन्त्री नियुक्त करता था।

किन्तु ये सारी व्यवस्थाएँ जो 1921 के विधेयक के अन्तर्गत की गयी थी न तो प्रतिद्वन्द्विता समाप्त कर पायी और न ही विलयीकरण को बढावा देकर वे उद्योग को समृद्धि के मार्ग पर ले जा सकी। रेलो की प्राप्तियाँ (revenue) घट गयी तथा श्रम असन्तोष बढ गया। इन कठिनाइयो के अतिरिक्त रेलो के सामने अब सबसे गम्भीर समस्या मोटर यातायात मे वृद्धि हो जाने के कारण उसके साथ होने वाली प्रतिद्वन्द्विता थी। यह यातायात का साधन अधिक लोकप्रिय होता जा रहा था क्योकि यह सस्ता एव सुविधाजनक था। सारा का सारा अच्छा माल अब मोटर परिवहन द्वारा ही ढोया जाने लगा। कम मुनाफे वाला माल ही अब रेलो के लिए शेष रह गया।

रेल व मोटर यातायात के बीच प्रतिद्वन्द्विता की गुत्थी सुलझाने के उद्देश्य से ब्रिटिश ससद ने 1933 मे रेल व सडक यातायात विधेयक (The Road and Rail Traffic Act, 1933) पारित किया। यह विधेयक दोनो ही यातायात के साधनो को वडे ग्राहको को कुछ रियायतें देने की अनुमति देता था। 1937 मे यात्री भाडे व माल भाडे मे भी 5 प्रतिशत की वृद्धि की गयी किन्तु उससे रेलो को कोई लाभ मिलने की सम्भावना नही थी क्योकि सारा माल मोटर परिवहन को स्थानान्तरित हो जाने का अन्देशा था।

विभिन्न समयो मे ब्रिटिश रेलो की लम्वाई

वर्ष	मील
1840	1,857
1860	10,433
1900	21,666
1904	24,755
1912	31,553
1920	23,734
1923	20,314
1930	20,402
1947	19,414
1958	19,025

नोट 1912 के बाद रेलों की लम्बाई मे कमी कुछ बिना मुनाफे वाली रेल लाइनो के बन्द कर दिये जाने से हुई।

5. द्वितीय विश्व-युद्ध का काल : *1939–1945*

जिन दिनो रेल कम्पनियाँ सरकार से कुछ रियायते प्राप्त कर मोटर यातायात

के साथ प्रतिद्वन्द्विता कर पाने के लिए तयार कर रही थी उन्ही दिनो सितम्बर 1939 मे दूसरा विश्व-युद्ध छिड गया। युद्ध के वर्षों मे रेलो का कार्य-सचालन आर्थिक नही बल्कि सैनिक आधार पर किया गया। एक बार पुन वे सरकारी नियन्त्रण मे चली गयी। 1940 मे एक योजना स्वीकार की गयी जिसके अनुसार रेलो को प्रतिवर्ष 40 मिलियन पौण्ड की न्यूनतम प्राप्तियो (minimum receipts) की गारण्टी प्रदान की गयी। यदि कोई नुक्सान होता तो उसे सरकार द्वारा वहन करने का प्रस्ताव किया गया। इस राशि को बढाकर 43 मिलियन पौण्ड कर दिया गया।

किन्तु वास्तव मे कुछ ऐसा हुआ कि इस योजना के अन्तर्गत सरकार ने भारी लाभ कमाया। 1941–45 की अवधि मे रेलो को हुई कुल प्राप्तियों मे से कम्पनियो को भुगतान कर देने के बाद भी 200 मिलियन पौण्ड का अतिरेक शेष रह गया। इसके अलावा सरकार को सैनिको व उनके साज-सामान का आवागमन बिना कोई भुगतान किये कर सकने की सुविधा भी मिल गयी।

लाभ बढा किन्तु युद्ध के दौरान रेलो की स्थिति खराब होती चली गयी। रेल इजिनो से उनकी क्षमता से अधिक काम लिया गया, लाइनो की अच्छी तरह देखभाल नही हो पायी तथा कर्मचारियो की सख्या घटा दी गयी। इस तरह युद्ध के बाद रेलो का पुनर्निर्माण एक भारी काम बन गया।

6 ब्रिटिश रेलो की आधुनिक स्थिति

1945 मे लेबर दल की सरकार ने यह अनुभव किया कि रेलो के पुनर्निर्माण का काम उनके राष्ट्रीयकरण के बाद ही सम्भव था। अब उद्योग मे सिर्फ चार ही मुख्य रेल कम्पनियाँ बच रही थी। 1947 के विधेयक के अन्तर्गत एक यातायात आयोग (Transport Commission) स्थापित किया गया जिसे न केवल रेलो बल्कि नहरो व सडक यातायात कम्पनियो को भी अधिगृहित (acquire) करने का काम सौंपा गया। सरकार ने यह कदम देश मे एक एकीकृत यातायात व्यवस्था कायम करने के उद्देश्य से उठाया।

नयी रेल व्यवस्था को छह क्षेत्रो मे विभक्त किया गया। पुरानी सस्थाओं को समाप्त कर दिया गया तथा उनके स्थान पर एक नया यातायात ट्रिब्युनल गठित किया गया जिसका काम किरायो व भाडो की नयी सूची को स्वीकृति देना था। आरम्भ मे राष्ट्रीयकरण के कदम से कठिनाइयाँ ही बढी। कई नयी परेशानियाँ भी पैदा हुई। लागते काफी चढ चुकी थी और पुनर्निर्माण का काम काफी खर्चीला बन गया। पैट्रोल पर राशनिंग हटा लिये जाने के बाद रेलो को फिर एक बार सडक यातायात की प्रतिद्वन्द्विता का सामना करना था। 1956 मे रलो को 120 मिलियन पौण्ड का घाटा हुआ।

एक नवीनीकरण योजना जो 1971 तक चलनी थी, घोषित की गयी। इस योजना की लागत बहुत ऊँची थी और उसके लिए 1240 मिलियन पौण्ड का अनुमान लगाया गया था। इस योजना मे भाप से चलने वाले इजिनो के स्थान पर डीजल तथा बिजली से चलने वाले इंजनो को लगाने का प्रस्ताव था। 1947 के

विधेयक ने रेलो को राज्य के एकाधिकार वाला उद्योग बना दिया। यह एक तरह से विरोधाभास ही था क्योकि उन्नीसवी शताब्दी मे स्वय उसी ब्रिटिश ससद ने किसी भी प्रकार के एकाधिकार का विरोध किया था। जो भी हो, आधुनिक ब्रिटिश रेल-जाल काफी पेचीदा बन चुका है और अब वह अधिक अच्छी तरह सगठित भी है। इस बीच विकसित हुए हवाई यातायात से भी उसे कोई खतरा पैदा नही हुआ है।

रेलो के आर्थिक प्रभाव

(1) मध्य विक्टोरियाई काल (1850–73) मे आयी हुई तेजी रेलो के निर्माण होने के कारण ही आयी थी।

(2) बाजार का आकार काफी व्यापक हो गया। स्थानीय बाजार राष्ट्रीय बाजार के रूप मे रूपातरित हो गये।

(3) कोयले का आवागमन काफी मितव्ययितापूर्ण बन गया जिससे उसका उत्पादन बढने मे सहायता मिली।

(4) व्यापारिक फर्में विशाल से अति विशाल बनती चली गयी।

(5) रेलो के विकास से शहरीकरण को काफी बढावा मिला। कई नये रेल शहर जैसे क्रेवे तथा स्विडन (Crewe and Swindon) तैयार हो गये। पुराने शहरो मे भी जनसख्या काफी बढ गयी।

(6) रेलो के विकास से ब्रिटिश श्रम-सघो के विकास मे भी सहायता मिली।

4 जहाजरानी यातायात*
(Shipping Transport)

औद्योगिक क्रान्ति के एक शानदार सहयोगी के रूप मे ब्रिटिश जहाजरानी का अद्भुत विकास हुआ। जहाजरानी का विकास पन्द्रहवी से लेकर उन्नीसवी शताब्दी के बीच पारित किये गये अनेक नौ-परिवहन विधेयको (Navigational Acts) से प्रारम्भ हुआ था। उन्नीसवी शताब्दी मे ही लकडी से बने जहाजो के स्थान पर लोहे व इस्पात के बने जहाजो के प्रयोग से भी एक नये युग की शुरुआत हुई। 1870 मे इस यातायात के क्षेत्र मे 2 लाख लोगो को रोजगार मिला हुआ था। 1913 मे ब्रिटिश जहाज विश्व के जहाजो द्वारा ढोये हुए माल का 52 प्रतिशत भाग ढोते थे।

किन्तु विश्व मे जहाजो के कुल भार मे वृद्धि होने के साथ ही ब्रिटिश बेडे का अश गिरता गया। प्रथम विश्व-युद्ध से पहले ससार के जहाजी बेडे मे ब्रिटिश जहाजो का प्रतिशत भाग 50 से भी अधिक था जो 1937 मे घटकर 37 तक आ चुका था। विश्व जहाजी बेडे मे ब्रिटिश बेडे का यह भाग 1947 मे 25 प्रतिशत तथा 1957 मे 17 प्रतिशत ही रह गया। वर्तमान मे यह विश्व जहाजी बेडे का 10 प्रतिशत के लगभग आता है। दुनिया-भर के कुल जहाजो मे से 50 प्रतिशत से भी अधिक जहाज अमरीका के स्वामित्व मे हैं।

* अधिक व्यापक विश्लेषण के लिए तीसरा अध्याय देखें।

अवनति के कारण

(1) 'विश्व का कारखाना' बन जाने के बाद अब धीरे-धीरे ब्रिटेन की औद्योगिक शक्ति का ह्रास होता चला गया है। इसके परिणामस्वरूप विदेशों के साथ ब्रिटिश व्यापार में कमी आयी है जिससे जहाजो की माँग भी घटी है।

(2) जापान, स्वीडन तथा सयुक्त राज्य अमरीका अब ब्रिटेन के शक्तिशाली प्रतिद्वन्द्वी बन चुके है।

(3) द्वितीय विश्व-युद्ध के बाद उपनिवेशो के हाथ मे निकल जाने तथा युद्ध के दौरान अनेक जहाज नष्ट हो जाने के कारण भी ब्रिटिश जहाजी यातायात को भारी धक्का लगा है।

(4) वायु यातायात का विकास हो जाने के कारण यात्री जहाज तो बिल्कुल बेकार से हो गये हैं।

यह बात अब लगभग निश्चित-सी हो चुकी है कि ब्रिटिश जहाजी यातायात की प्रमुखता की स्थिति समाप्त हो गयी है। इसका यह अर्थ बिल्कुल भी नही है कि ब्रिटेन का जहाजी टन भार निरपेक्ष रूप से कम हो गया है। चूँकि विश्व भर मे जहाजी टन भार में वृद्धि की दर अत्यधिक तीव्र रही है (विशेष रूप से जापान व अमरीकी जहाजी टन भार अत्यधिक तेजी से बढ गया है) इसीलिए ब्रिटिश जहाजों का टन भार प्रतिशत रूप से गिरता चला गया है।

5. हवाई यातायात
(The Air Transport)

भाप के इंजिन की तरह ही ब्रिटिश आविष्कारों को 'उडने वाली मशीन' (Flying Machine) बनाने का श्रेय नही मिला। यह काम अमरीका के राइट बन्धुओ (Wright Brothers) ने ही किया। ब्रिटेन मे पहली हवाई यातायात कम्पनी इम्पीरियल एयरवेज लिमिटेड (Imperial Airways Limited) 1926 मे गठित की गयी। उसके बाद से लेकर आज तक हवाई यातायात ने एक से एक नये कीर्तिमान स्थापित किये हैं। नवीनतम कॉनकोर्ड (Concorde) वायुयान, जो 2000 किलोमीटर प्रति घण्टा की रफ्तार से उडने वाला विश्व का सर्वाधिक तेज गति वाला वायुयान है, एक ब्रिटिश फर्म द्वारा ही तैयार किया गया है। एक अन्तर्राष्ट्रीय सगठन के रूप मे बी० ओ० ए० सी० (B O A C) ने अन्तर्राष्ट्रीय हवाई यातायात के क्षेत्र मे अच्छी ख्याति अर्जित की है तथा विश्व हवाई यातायात मे उसका भाग भी काफी अच्छा है।

व्यावसायिक क्रान्ति
(The Commercial Revolution)

यातायात के क्षेत्र में हुई एक सम्पूर्ण क्रान्ति औद्योगिक क्रान्ति के साथ मिल कर व्यवसाय में भी क्रान्ति उत्पन्न करने के अतिरिक्त कर ही क्या सकती थी। जहाजरानी तथा रेलो के विकास ने ब्रिटिश साम्राज्य के प्रसार मे महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई

थी। ब्रिटेन की व्यावसायिक क्रान्ति की ऐसी अनेक विशेषताएँ रही जिनका उल्लेख किया जा सकता है

(1) भारी वस्तुओ के व्यापार का प्रसार—यातायात एव दूर सचार के साधनो के क्षेत्र मे हुए क्रान्तिकारी सुधारो से न केवल दुनिया बहुत सिमट चुकी है। बल्कि उनके कारण व्यापार की सरचना मे भी अनेक दूरगामी परिवर्तन हुए हैं। ब्रिटिश वस्तुएँ अधिक समानीकृत (standardised) हुई है। सगठन एव बिक्री के तरीको मे भारी परिवर्तन हुए हैं। व्यावसायिक क्रान्ति के बाद बडे व्यापारिक सौदे करते समय वस्तुओ की भौतिक रूप मे उपस्थिति की अनिवार्यता समाप्त हो चुकी है। भारी वस्तुएँ जैसे कोयला, लोहा, गेहूँ तथा अन्य कच्चे माल अब बहुत दूर तक आसानी से ले जाये जा सकते है। इसके परिणामस्वरूप विश्व-भर मे मूल्य एकरूपता स्थापित हुई है।

(2) व्यावसायिक सगठन मे क्रान्ति—सयुक्त पूँजी कम्पनियो का प्रादुर्भाव एव विकास, स्टॉक एक्सचेंज, आधुनिक वस्तु विनिमयालय (produce exchanges), अत्यधिक विकसित कृषि एव औद्योगिक बाजार तथा अनेक मध्यस्थ इकाइयो (intermediaries) का उद्भव एव प्रगति व्यावसायिक क्रान्ति का ही परिणाम हैं। बडे-बडे विभागीय स्टोरो (departmental stores) के रूप मे खुदरा व्यापार का विकास तथा बहुधन्धी फर्मों का आगमन भी व्यावसायिक क्रान्ति के कारण ही हुआ है। इन विभागीय दुकानो मे एक ही छत के नीचे सभी तरह की चीजे उपलब्ध होने लगी। बहुशाखा फर्में (multiple firms) दुकानो की श्रृखला के रूप मे विकसित हुई जो शाखाओ के रूप मे सभी भागो मे फैल गयी।

(3) उद्योग तथा व्यवसाय का पृथक्करण—व्यावसायिक क्रान्ति ने विशिष्टीकरण के युग की भी शुरुआत की। पहली बार उद्योग को व्यवसाय से अलग करके देखा जाने लगा। स्वय उद्योगकर्ता द्वारा अपनी वस्तुएँ बाजार मे बेचने के लिए ले जाना, उनके लिए मोल भाव करना आदि बिल्कुल बन्द हो गया। विपणन (marketing) एक अलग ही शाखा के रूप मे विकसित हुआ तथा उसे व्यवसाय की एक विशिष्ट शाखा माना जाने लगा।

व्यावसायिक सगठन स्पष्ट रूप से दो भागो मे विभक्त हो गया थोक शाखा व खुदरा शाखा। इसके अलावा वस्तुगत विशिष्टीकरण की प्रथा भी आरम्भ हो गयी जिससे गेहूँ तथा कपास विनिमयालय (Wheat and Cotton Exchanges) की स्थापना हुई। क्रय एव विक्रय भी दो अलग अलग क्रियाएँ बन गयी। व्यवसाय मे आये इन परिवर्तनो ने व्यावसायिक अभिकर्ताओ (business agents) के एक ऐसे वर्ग को जन्म दिया जो अपनी फर्मों के लिए खरीद और बिक्री का ही काम देखते थे।

इन दिनो वापस ऐसी प्रवृत्ति देखने मे आ रही है जिसमे निर्माता लोग स्वय ही अपने लिए खरीद कर रहे है। इस प्रवृत्ति को 'व्यवसाय एव उद्योग के पुनर्गठन' की सज्ञा दी गयी है। यह प्रथा मुख्य रूप से तम्बाकू, कपडा तथा घरेलू मशीनें तैयार करने वाले उद्योगो मे देखी जा रही है।

(4) एकीकरण की प्रवृत्ति—रेलो तथा वाष्प-चालित जहाजो के उन्नीसवी

तथा बीसवी शताब्दी मे व्यापक उपयोग से तथा औद्योगीकरण की गति अत्यधिक तीव्र हो जाने से समूहो तथा विलयीकरणो (combinations and amalgamations) के नये-नये रूप सामने आये है। खडे (vertical) तथा आडे (horizontal) समूह बन गये हैं। खडे समूहो के अन्तर्गत कोयला खानो को चलाने, कच्चे लोहे की आपूर्ति करने, इस्पात तैयार करने के लिए भट्टियां चलाने जैसी क्रियाएँ एक ही प्रबन्ध के अन्तर्गत की जा रही है। आडे समूहो के अन्तर्गत एक ही प्रकार का व्यवसाय करने वाली अनेक फर्मे इकट्ठा हो गयी हैं जिससे कि आपसी प्रतिद्वन्द्विता को घटाया जा सके व मुनाफा बढ सके। विभागीय दुकानो (departmental stores) का विकास भी खुदरा व थोक व्यवसाय का सामूहिकीकरण ही है।

(5) **नयी वित्तीय क्रियाओ का युग**—यातायात एव सदेशवाहन के नये तरीको ने पूंजी की गतिशीलता को भी काफी बढा दिया है। पूंजी का आवागमन अन्तर्राष्ट्रीय बन चुका है। सार्वजनिक वित्त के क्षेत्र का भी विकास हुआ है क्योकि रेलो के निर्माण के लिए अनेक बार राष्ट्रीय ऋण लिये गये थे। रेलो और सडक परिवहन के साधनो तथा जहाजो के निर्माण से विनियोग के नये-नये अवसर पैदा हुए हैं। अन्य देशो मे रेल-निर्माण करने का काम भी ब्रिटिश विनियोगकर्ताओ के लिए लाभदायक रहा क्योकि उनके पास अपने छोटे से देश मे लगाने से कही अधिक धन उपस्थित था।

सरकारो तथा विभिन्न देशो के बीच विनियोग के समझौते भी सामान्य बात बन गये। वस्तुओं व सेवाओं के आवागमन मे वृद्धि हो जाने से समाशोधन गृहो (clearing houses) तथा सट्टे बाजारो का भी विकास हुआ। व्यावसायिक बैंको द्वारा की जाने वाली साख निर्माण की प्रक्रिया मे भी अनेक परिवर्तन आये।

(6) **विदेशी व्यापार का विकास**—यातायात एव दूरसचार के साधनो मे हुई क्रान्ति के साथ-साथ व्यावसायिक नीति मे आये परिवर्तनो ने मिलकर ब्रिटेन के विदेश व्यापार को काफी बढा दिया। यह वृद्धि पिछली दो शताब्दियो मे मुख्यत हुई है। विदेश व्यापार का परिमाण सबसे अधिक 1800 से 1925 की अवधि के बीच बढा। उसके निर्यातो मे हमेशा निर्मित माल की प्रधानता तथा आयातो मे कच्चे माल का आधिक्य रहा। इनके अतिरिक्त ब्रिटेन ने अनेक अदृश्य मदो जैसे जहाजी भाडो व विदेशो में अपने विनियोग पर प्राप्त प्रतिफलो से भी काफी मात्रा मे धन कमाया।

(7) **व्यावसायिक क्रान्ति के सामाजिक प्रभाव**—व्यावसायिक क्रान्ति ने नये नगरों को जन्म दिया। लोगो तथा पूंजी की गतिशीलता मे भारी वृद्धि हुई। इसके परिणामस्वरूप जनसख्या का आव्रजन, निष्क्रमण तथा स्थानान्तरण हुआ। दक्षिणी अफ्रीका, आस्ट्रेलिया तथा कनाडा का उपनिवेशन (colonisation) इग्लैण्ड तथा यूरोप में यातायात एव व्यापार के क्षेत्र मे हुई क्रान्ति का प्रत्यक्ष परिणाम थे। रेलो के विकास ने तो ड्राइवरो, गार्डो, आग बुझाने वालो (firemen) तथा स्टेशन मास्टरो का एक पूरा वर्ग ही तैयार कर दिया।

पाँचवाँ अध्याय

व्यावसायिक नीति : मुक्त व्यापार बनाम संरक्षण

(THE COMMERCIAL POLICY FREF TRADE vs PROTECTIONISM)

ब्रिटिश व्यावसायिक नीति मे पिछली चार-पाँच शताब्दियो के दौरान हुए परिवर्तनो को मोटे तौर पर तीन स्पष्ट वर्गों मे रखा जा सकता है

(1) वणिकवाद (mercantilism) की नीति जिसका कि उद्देश्य ब्रिटेन को सर्वाधिक शक्तिशाली राष्ट्र बनाना था। यह नीति लगभग 250 वर्षों तक बड़े जोर-शोर से चलती रही जो सोलहवी शताब्दी से प्रारम्भ होकर अठारहवी शताब्दी के मध्य तक चली। वणिकवादियो (mercantilists) का यह विश्वास था कि व्यवसाय और उद्योग पर राज्य का नियमन एव नियन्त्रण रहना चाहिए।

(2) 1776 मे एडम स्मिथ की पुस्तक 'वेल्थ ऑफ नेशन्स' के प्रकाशन के बाद मुक्त व्यापार (laissez faire) का एक नया युग प्रारम्भ हुआ जो सम्पूर्ण उन्नीसवी शताब्दी तथा बीसवी शताब्दी के भी प्रारम्भिक वर्षों तक चलता रहा।

(3) ब्रिटिश व्यावसायिक नीति का तीसरा चरण उन्नीसवी सदी के आखिरी वर्षों मे शुरू हो चुका था लेकिन सरक्षणवाद (protectionism) की नीति वाला यह चरण 1930 के बाद ही पूरी तरह स्थापित हो पाया। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद की आधुनिक व्यावसायिक नीति पर द्विपक्षीय तथा बहुपक्षीय समझौतो के रूप मे विकसित हुई अन्तर्राष्ट्रीय पद्धतियो (bilateral and multilateral agreements) का व्यापक प्रभाव पडा है।

ब्रिटिश व्यावसायिक नीति के ये तीनो चरण, जिनका उल्लेख ऊपर किया गया है, काफी लम्बी अवधि तक चलते रहे। प्रत्येक चरण समय एव परिस्थितियो के आदेशो का पालन करता हुआ चला और जब समय व परिस्थितियाँ बदल गयी तो वह समाप्त हो गया तथा उसके स्थान पर एकदम भिन्न प्रणाली का प्रादुर्भाव होता चला गया।

1 वणिकवाद और राजकीय नियन्त्रण .

पन्द्रहवी शताब्दी से पहले इग्लैण्ड मे आर्थिक गतिविधियो की परिधि स्थानीय थी और सम्पत्ति का सचय ईसाई धर्म की मान्यताओ के विरुद्ध माना जाता था।

सामाजिक वर्गों का विभाजन आड़ी किस्म (horizontal) का था तथा लोग अपने आपको सूरमाँ (knights), पादरी (priests), व्यापारी या कृषिदास (serfs) के रूप मे मानते थे। वे अंग्रेज, फ्रेंच या स्पेनवासी बाद म थे। यह प्रवृत्ति पन्द्रहवीं शताब्दी आते ही एकदम बदल गयी तथा नव-जागरण (renaissance) के आन्दोलन ने इग्लैण्ड म प्राचीन काल से चली आ रही सामन्तवादी प्रथा को समाप्त कर दिया व धर्म के क्षेत्र मे भी सुधारवादी (reformation) आन्दोलन सक्रिय हो गया।

पन्द्रहवी शताब्दी के समाप्त होते होते राष्ट्रवाद की भावना का विकास काफी स्पष्ट हो चुका था। यूरोप का प्रत्येक देश अपने आपको एक अलग राजनीतिक, धार्मिक एव आर्थिक इकाई मानने लगा था। इस तरह जब विभिन्न देश अपने-अपने हितो के प्रति जागरूक हो गये तो उन्होने अन्य देशो को अपने प्रतिद्वन्द्वी के रूप मे देखना शुरू कर दिया। प्रत्येक देश का उद्देश्य अपनी आजादी की रक्षा करना था। इस उद्देश्य के लिए लोगो की गतिविधियो पर नियन्त्रण लगाना जरूरी था जिनको मध्य युग मे स्वतन्त्र छोड दिया गया था। यह अधिकार राज्य द्वारा प्रयुक्त होना था और इसीलिए सोलहवी से अठारहवी शताब्दी के बीच राज्य (state) इग्लैण्ड व अन्य यूरोपीय देशो मे काफी शक्तिशाली बन गया।

लोगो के क्रिया कलापो पर राजकीय नियन्त्रण के समर्थको को वणिकवादियो (mercantilists) का नाम दिया गया। वणिकवाद (mercantilism) का अर्थ इस प्रकार के आर्थिक व राजनीतिक नियन्त्रण लगाना था कि जिनसे इग्लैण्ड एक शक्तिशाली देश बन सके। वणिकवाद, जो सोलहवी सदी से अठारहवी सदी के बीच फला फूला, इस बात मे विश्वास करता था कि राज्य के हितो को प्राथमिकता देने के लिए व्यक्ति के हितो पर नियन्त्रण लगाया जाना चाहिए।

वणिकवाद के उद्देश्य

(1) **राष्ट्रीय शक्ति का विकास**—यह इसका प्रथम उद्देश्य था जिसके लिए विशाल एव स्वस्थ जनसख्या को आवश्यक माना गया। चिकित्सा विज्ञान का अभी तक विकास नही हुआ था और सरकार का यह विश्वास था कि ग्रामीण जीवन अधिक स्वास्थ्यवर्द्धक होता है इसलिए वह शहरो के विकास को हतोत्साहित करती थी। किसानो को जमीन से सम्बद्ध रखना सर्वाधिक महत्वपूर्ण समझा जाता था।

(2) **खाद्यान्नों मे आत्मनिर्भरता**—वणिकवादी खेती को चरागाह से अधिक महत्त्व देते थे। उनका मानना था कि यदि कोई देश खाद्यान्नो के लिए दूसरो पर निर्भर करता है तो उसे भूखो मरना पड सकता है।

(3) **सुदृढ़ नौसेना**—इग्लैण्ड की भौगोलिक स्थिति को देखते हुए वणिकवादी यह अनुभव करते थे कि ब्रिटेन के लिए सुदृढ नौसेना आवश्यक थी। जहाज निर्माण को राजकीय सरक्षण प्रदान किया जाना था।

(4) **उद्योगो का नियमन**—यह स्थानीय स्तर पर किया जाता था किन्तु वणिकवादियो का विश्वास था कि उद्योगो पर राजकीय नियन्त्रण होना चाहिए।

(5) **विदेशी व्यापार पर नियन्त्रण**—वणिकवादी विदेशी व्यापार पर भी

राजकीय नियन्त्रण के पक्ष मे थे। यह नियन्त्रण विदेशी व्यापार को कुछ विशेष रूप से बनायी कम्पनियो के हाथो सौंपकर किया जाना था। ईस्ट इण्डिया कम्पनी ऐसी ही एकाधिकारिक कम्पनी थी।

(6) **सोना व चांदी के पर्याप्त भण्डार**—राज्य की सुरक्षा के लिए स्वर्ण व रजत के विशाल भण्डारों को अनिवार्य माना गया। ये युद्ध कार्य का सचालन करने के लिए आवश्यक थे क्योकि इनसे हर चीज खरीदी जा सकती थी। वणिकवादी इग्लैण्ड के लिए सोना व चांदी के भण्डार जमा करना इसलिए भी जरूरी समझते थे क्योकि ये दोनो धातु इग्लैण्ड की खानो मे नही निकलते थे। उनका विश्वास था कि इग्लैण्ड के विदेश व्यापार का नियमन इस प्रकार किया जाना चाहिए कि जिससे अधिक से अधिक बहुमूल्य धातुएँ प्राप्त हो सकें। वे सिर्फ ऐसे विदेशी व्यापार के हामी थे जो ब्रिटेन के पक्ष मे हो ताकि अधिक से अधिक सोना देश मे आ सके। ऐसा करते समय उन्होने यह नही सोचा कि बहुमूल्य धातुओ की मात्रा बढ जाने से उनकी कीमत घट जायेगी तथा यह भी कि किसी भी देश के लिए हर समय निर्यात अतिरेक बनाये रखना सम्भव नही होता।

वणिकवादियो के अधिकाश बड़े विचार, जो इग्लैण्ड को सर्वाधिक शक्तिशाली बनाने के लिए थे, आलोचना के शिकार हुए। किन्तु वह एक ऐसा समय था जब आत्मनिर्भरता अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से तथा सुरक्षा बहुलता से अधिक महत्वपूर्ण मानी जाती थी।

वणिकवाद के प्रभाव

(1) ब्रिटिश कृषि को आत्मनिर्भर बनाने के लिए अनेक कानून पारित किये गये। खाद्यानो के आयात को सीमित करने के लिए अन्न कानून (corn laws) पारित किये गये। ब्रिटिश ससद ने, जिसमे कि भूस्वामियो का दबदबा अधिक था, 1773 मे यह तय किया कि इग्लैण्ड मे तब तक अनाज का आयात नही किया जायगा जब तक कि उसके मूल्य 48 शिलिंग की सीमा को न छू ले। किन्तु जब 1815 मे अनाज (corn) के मूल्य 60 शिलिंग तक बढ गये तो सीमा को बढाकर 80 शिलिंग कर दिया गया। इस तरह अनाज के आयात की अनुमति नही दी गयी। किन्तु यह सब श्रमिको तथा सामान्य उपभोक्ताओ के हित मे नही था। डेविड रिकॉर्डो ने, जोकि भू-स्वामियो का कट्टर विरोधी था, तर्क दिया कि अन्न कानून (corn laws) श्रमिको के हितो के विरुद्ध थे तथा उनका कल्याण कम करते थे। इससे एक कटु सघर्ष आरम्भ हुआ तथा 1846 मे अन्न कानूनो को रद्द कर दिया गया।

(2) सूती वस्त्र एव ऊन उद्योग को वणिकवादी नीतियो से भारी लाभ मिला। उनसे विदेशी व्यापार को भी प्रोत्साहन मिला। अनेक महत्त्वपूर्ण औद्योगिक कानून पारित किये गये। उत्पादन का समानीकरण (standardisation) किया गया तथा अनेक बडी एकाधिकारी फर्में बनी। वणिकवादी तैयार माल के आयात के विरुद्ध थे तथा वे कच्चे माल के आयात का स्वागत करते थे। 1463 मे रेशम तथा अन्य अनेक वस्तुओं के आयात पर लगायी गयी रोक वणिकवाद का प्रत्यक्ष प्रभाव थी।

कच्चे माल के निर्यात का भी विरोध किया गया। ऊन उद्योग को प्रोत्साहन देने के उद्देश्य से कच्ची ऊन का निर्यात रोक दिया गया। 1721 मे केलिको कानून (Calico Act) पारित किया गया जिसने भारतीय बढिया वस्त्र के उपयोग पर रोक लगा दी। उनकी कला को रहस्य बनाये रखने के उद्देश्य से ब्रिटिश कारीगरो के देश छोडकर जाने पर भी प्रतिबन्ध लगा दिया गया। इसके विपरीत विदेशी कारीगरो को इग्लैण्ड मे आने के लिए प्रोत्साहित किया गया।

माप व तोल को सुनिश्चित बनाया गया। श्रमिको की काम की दशाओ को नियमित किया गया। 1563 मे पारित एक विधेयक मे न्यूनतम मजदूरी तथा सबको रोजगार देने का प्रावधान किया गया।

(3) वणिकवादी नीतियो के प्रभाव मे इग्लैण्ड की सरकार ने अनेक व्यावसायिक सन्धियां (commercial treaties) की जिनका उद्देश्य देश के लिए नये बाजार तथा कुछ स्वत्वाधिकार प्राप्त करना था। निर्यात व आयात के आँकडो का बराबर अध्ययन किया जाता। फ्रास के साथ व्यापार को हतोत्साहित किया गया क्योकि उसमे अकसर इग्लैण्ड को घाटा रहता था।

(4) ब्रिटिश व्यापारिक जहाजो का विकास करने के उद्देश्य से नौ-परिवहन कानून (navigation laws) बनाये गये। 1381 मे पारित एक विधेयक ने ब्रिटिश व्यापारियो द्वारा विदेशी जहाजो के उपयोग पर रोक लगा दी। 1660 मे पारित विधेयक ने उपनिवेशो के बीच वस्तु व्यापार को ब्रिटिश जहाजो के लिए सुरक्षित कर दिया तथा साथ ही औद्योगिक वस्तुओ के व्यापार को भी ब्रिटिश व्यापारिक जहाजी बेडे का एकाधिकार घोषित कर दिया।

(5) वणिकवादियो ने उपनिवेशो के अधिकाधिक शोषण की ब्रिटिश साम्राज्य की नीति को भी प्रोत्साहित किया। उनका मानना था कि उपनिवेशो का तो अस्तित्व ही इग्लैण्ड के लाभ के लिए था। उनका यह भी विश्वास था कि उपनिवेश कच्चा माल पैदा करने के लिए थे और उनका दूसरा उपयोग ब्रिटिश निर्मित माल के लिए सुरक्षित बाजारो के रूप मे था। उपनिवेशो मे नियुक्त ब्रिटिश गवर्नरो को यह निर्देश दिये गये कि वे उपनिवेशो मे ऐसे उद्योग विकसित न होने दें जो ब्रिटिश उद्योगो के साथ प्रतिद्वन्द्विता कर सकते हो। 1699 मे पारित विधेयक ने उपनिवेशो से ब्रिटेन मे कपडे के आयात पर प्रतिबन्ध लगा दिया जिससे कि लकाशायर के वस्त्र उद्योग को फलने फूलने मे आसानी होती।

(6) उपर्युक्त वर्णित वणिकवादी उपायो से इग्लैण्ड को भारी मात्रा मे स्वर्ण भण्डार बढाने मे सहायता मिली। सरकार के प्रत्यक्ष हस्तक्षेप द्वारा स्वर्ण के निर्यात पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। पन्द्रहवी शताब्दी मे स्वर्ण मुद्राओ के निर्यात को एक गम्भीर अपराध माना जाता था। विदेशियो को एक लिखित प्रमाण पत्र देना पडता था कि वे अपनी कमाई सोने या चाँदी के रूप मे नही भेजेगे। वणिकवादियो ने सन्तुलित व्यापार नीति का प्रतिपादन किया जिसे स्वर्ण के आयात व निर्यात के नियमन मे काम मे लिया गया।

किन्तु वणिकवादियो के इस स्वर्ण-उन्माद (gold mania) की कई लोगो

द्वारा आलोचना की गयी। किन्तु यही सम्पूर्ण वणिकवाद नही था और न ही वणिकवादी केवल स्वर्ण उन्मादी (gold maniacs) थे। वे ब्रिटिश कृषि, उद्योग, जहाजरानी तथा विदेशी व्यापार मे सरक्षणवादी नीतियो के समर्थक थे। वे देश की आर्थिक स्वतन्त्रता के लिए अत्यधिक चिंतित थे तथा ब्रिटेन की आर्थिक सर्वोच्चता कायम करना चाहते थे। इसके लिए उन्होने तीन स्तम्भ बनाये। ये स्तम्भ थे अन्न कानून (corn laws), वे विधेयक जिनमे उद्योगो को सरक्षण प्रदान किया गया तथा नौ-परिवहन कानून (navigation laws)। इस प्रकार से ब्रिटेन की कानूनी सीमाबन्दी (legal insulation) उस समय की ऐतिहासिक आवश्यकता थी तथा उसने देश को औद्योगिक क्रान्ति मे अगुवा बना दिया। इसके बावजूद वणिकवादियो की अनेक बातो को लेकर आलोचना हुई जिसकी चर्चा की जा सकती है।

वणिकवाद की आलोचना

(1) **आत्मनिर्भरता का सकुचित दृष्टिकोण**—वणिकवादी विचारको ने आर्थिक आत्मनिर्भरता प्राप्त करने पर आवश्यकता से अधिक बल दिया। उन्होने यह नही समझा कि विशिष्टीकरण से लागतो मे कमी आती है तथा सस्ती लागत पर उत्पादित वस्तुओ के परस्पर विनिमय से सभी को लाभ होता है।

(2) **स्वर्ण उन्माद (Gold Mania)**—एडमस्मिथ तथा जे० एस० मिल ने लिखा कि वणिकवादी विचारक केवल सोने व चाँदी को ही धन का एकमात्र स्वरूप मानते थे। इन लेखको ने वणिकवादियो पर यह भी आरोप लगाया कि उनका यह विश्वास था कि 'मुद्रा ही धन थी' (Money alone constituted Wealth)। किन्तु कुछ लोग इस बात से सहमत नही हैं। जैसे लिप्सन (Lipson) ने लिखा है कि 'खजाने को भरते जाना वणिकवाद का कोई आधारभूत सिद्धान्त नही था।' किन्तु इतना अवश्य कहना होगा कि वणिकवादी विचारक यह तथ्य नही समझ पाए कि सोने का सग्रह करने के लिए राष्ट्र को निर्यातो के रूप मे कीमत चुकानी पडती है। उन्होने स्वर्ण तथा रजत का भारी मात्रा मे सग्रह करने से उनकी माँग व पूर्ति की स्थितियो मे आने वाले परिवर्तनो को भी अनदेखा कर दिया।

(3) **उपनिवेशो के लिए हानिकारक**—वणिकवादी नीतियाँ अनुदार तथा अज्ञानतापूर्ण थी जिनसे उपनिवेशो के साथ घोर अन्याय हुआ।

(4) **देशो के बीच प्रतिद्वन्द्विता की भावना मे वृद्धि**—अत्यधिक स्वार्थी दृष्टिकोण की बहुत अधिक वकालत करके वणिकवादियो (mercantilists) ने यूरोप के विभिन्न राष्ट्रो के बीच ईर्ष्या तथा प्रतिद्वन्द्विता की भावनाओ को उभारा और इस तरह अनेक युद्धो के बीज बो दिये।

(5) **परस्पर विरोधी नीतियाँ**—नौ परिवहन कानून (Navigational Acts), जिन्हे ब्रिटिश व्यापारिक जहाजो के विकास के लिए बनाया गया था, उद्योग तथा व्यापार के रास्ते मे रोडा बन गये।

(6) **ब्रिटिश सर्वोच्चता स्थापित करने मे नगण्य योगदान**—आलोचको ने ब्रिटेन को महाशक्ति बनाने मे वणिकवादी नीतियो को अधिक श्रेय नही दिया है। इन

आलोचको का मानना है कि 17वी तथा 18वी शताब्दी मे आयी ब्रिटिश समृद्धि ब्रिटिश साहसकर्ताओ के प्रयासो तथा यूरोप के देशो के बीच हो रहे युद्धो से उसका कोई वास्ता न होने के कारण आयी ।

इन विचारो के साथ-साथ उस समय की परिस्थितियो को नही भुलाया जाना चाहिये । उस समय देश एक-दूसरे से निरतर शत्रुता की स्थिति मे जीते थे तथा अपने पडोसियो पर भी उनका भरोसा नही था। ये देश सुरक्षा को समृद्धि या बहुलता से अधिक पसद करते थे । इन बिन्दुओ को यदि ध्यान मे रखा जाये तो लगता है कि उस काल मे वणिकवाद (mercantilism) ही एकमात्र व्यावहारिक नीति थी ।

2. मुक्त व्यापार नीति

सोलहवी शताब्दी के बाद कम से कम 250 वर्षों तक ब्रिटिश अर्थव्यवस्था पर राज्य द्वारा अनेक नियत्रण व नियमन आरोपित किये जाते रहे । इस तरह अर्थव्यवस्था पर राज्य की निगरानी वणिकवादी सिद्धान्तो पर आधारित थी । यह सब अठारहवी शताब्दी तक चलता रहा किन्तु तब तक व्यापार व व्यवसाय पर राजकीय नियमन की नीतियो मे लोगो की आस्था इस सीमा तक गिर चुकी थी कि उसका मुक्त व्यापार (Free Trade) के पक्ष मे परित्याग करना पडा । एडमस्मिथ की शिक्षाओ के प्रभाव मे 'बहुतायत की नीति' (policy of plenty) 'शक्ति की नीति' (policy of power) के स्थान पर प्रतिस्थापित होती चली गई । इसकी अन्तिम परिणति मुक्त व्यापार की एक शताब्दी के रूप मे हुई जिसे अहस्तक्षेप का युग (Laissez Faire) भी कहा जाता है ।

अहस्तक्षेप की नीति की मान्यताएँ

(1) व्यक्ति द्वारा अधिकतम लाभ अर्जित किया जा सकता है यदि प्रतिस्पर्द्धा मुक्त एव प्रतिबध रहित हो । अगर लोगो को प्रतिबन्धो तथा नियमनो से मुक्त रखा जाता है तो वे ऐसी गतिविधियो या क्रिया कलापो को चुनेगे कि जिनसे उनको अधिकतम लाभ मिलेगा ।

(2) इसके अतिरिक्त यह कि जब सब लोग अपने-अपने अधिकतम लाभ के लिए काम करेंगे तो स्वाभाविक रूप से उसकी अन्तिम परिणति के रूप मे सारे देश को अधिकतम लाभ प्राप्त होगा ।

(3) आर्थिक गतिविधियो पर राज्य द्वारा नियमन की प्रथा को जारी रखना देश के लिए हानिकर माना गया । राज्य का कर्त्तव्य यह निर्धारित किया गया कि वह निर्विकार भाव से एक ओर खडा रहे तथा आर्थिक हितो के टकराव मे किसी प्रकार भाग न ले । राज्य से यही अपेक्षा की गई थी कि वह अपनी गतिविधियो को बाह्य आक्रमण से देश की रक्षा करने व आतरिक कानून एव व्यवस्था की स्थिति बनाये रखने तक सीमित रखे ।

मुक्त व्यापार की नीति स्वीकार करने के लिए उत्तरदायी तत्त्व

(1) **औद्योगिक क्रान्ति का उद्‌भव**—अठारहवी सदी के मध्य तक ब्रिटिश उद्योगपति प्रतिस्पर्द्धा से डरते थे। उत्पादन कार्य छोटे पैमाने पर किया जाता था।[1] किन्तु यह सारा चित्र औद्योगिक क्रान्ति द्वारा बदल दिया गया। औद्योगिक क्रान्ति ने इग्लैण्ड को दुनिया का सबसे अधिक औद्योगिक देश बना दिया था। उसके उद्योगपतियो को अपना माल बेचने के लिए अधिक से अधिक नये बाजारो की आवश्यकता थी। इस आवश्यकता ने ब्रिटिश उद्योगपतियो को सरक्षणवादी कानूनो को एक के बाद एक हटाने की माँग करने के लिए प्रेरित किया। वैसे भी ये प्रतिबन्ध प्रभावहीन हो चुके थे क्योकि दुनिया के किसी भी देश मे ब्रिटिश सर्वोच्चता को चुनौती दे सकने की क्षमता नही रह गई थी।

(2) **विदेशो मे बदले की कार्यवाही**—अनाज से लेकर ऊन तथा जहाजो पर जो प्रतिबध वणिकवादी नीतियो के प्रभाव मे लगाये गये थे उन पर यूरोप के देशो मे भारी रोष उत्पन्न हो गया था। उन्होने भी बदले के तौर पर कई प्रतिबन्ध ब्रिटिश वस्तुओ पर लगा दिये थे जो विकासशील ब्रिटिश उद्योगो के लिए हानिकारक थे।

(3) **श्रमिक वर्ग द्वारा विरोध**—1760 मे औद्योगिक क्रान्ति के आरम्भ होने के साथ ही औद्योगिक श्रमिको की सख्या मे निरतर वृद्धि होती जा रही थी। वे लोग अनाज के आयात पर लगे हुए प्रतिबधो का घोर विरोध करते थे क्योकि इससे खाद्य वस्तुओं के मूल्य बढते थे और उन्हे उनके अधिक मूल्य देने के लिए बाध्य होना पडता था।

(4) **स्वर्णमान की व्यवस्था अपना लिया जाना**—नैपोलियन के साथ हुए युद्धो मे ब्रिटेन की विजय के बाद से ही ब्रिटिश निर्यात आकाश को छूने लगे थे तथा देश ने स्वर्णमान की व्यवस्था को स्वीकार कर लिया था। स्वर्णमान अपनाने के लिए यह आवश्यक था कि वे सभी प्रतिबध हटा दिये जाते जिन्हें वणिकवादी नीतियो के प्रभाव मे आकर पहले लगाया गया था। आयात की जाने वाली वस्तुओ पर लगे हुए प्रतिबधात्मक कर (duties) हटाने पडे क्योकि ब्रिटिश उद्योगो को भारी मात्रा मे तथा निरन्तर कच्चे माल की आवश्यकता थी। ब्रिटेन ने अपने निर्यातो के बदले आयात करने वाले देश से भुगतान के रूप मे कच्चा माल भी स्वीकार करना आरम्भ कर दिया क्योकि वह प्रत्येक खरीददार देश को स्वर्ण मे ही भुगतान के लिए बाध्य नही कर सकता था।

(5) **निजी उपक्रम (Private Enterprise) मे आस्था**—जब औद्योगिक क्रान्ति के परिणामस्वरूप फैक्ट्री प्रणाली का उद्‌भव हुआ तो उसने अनेक बुराइयो को जन्म दिया। इससे श्रमिको को भारी कठिनाइयो का सामना करना पडा। लेकिन सरकार को इस विषय पर किसी भी प्रकार का हस्तक्षेप करने से इस आधार पर रोका गया कि श्रमिको को अधिक मजदूरी देने या उनके काम के घटे घटाने का अर्थ होगा ब्रिटिश निर्माताओ को उनके प्रतिद्वद्वियो की तुलना मे प्रतिकूल स्थिति मे रख दिया

[1] G W Southgate, *op cit*, 344–45

जाना ।

इन्ही सिद्धान्तो को औद्योगिक आवास की व्यवस्था करने तथा यातायात के नये साधन अपनाने के मार्ग मे अडचनें डालने के काम मे लिया गया । टर्नपाइक सडको की देख-भाल के लिए निजी स्वामित्व वाले टर्नपाइक ट्रस्ट बनाये गये तथा नहरो का निर्माण कार्य भी निजी कम्पनियो द्वारा ही किया गया, सरकार ने इन्हे न तो कोई सहायता दी और न ही किसी प्रकार की शर्तें लगाईं । रेलो का निर्माण कार्य भी निजी कम्पनियो द्वारा, बिना किसी सरकारी सहायता के, सफलतापूर्वक किया जा चुका था । इन कार्यो के निजी कम्पनियो द्वारा सही तरीके से पूरा कर लेने से लोगो तथा सरकार के मस्तिष्क मे निजी उपक्रम की क्षमता के बारे मे आस्था उत्पन्न हो गई नियत्रण तभी लगाये गये जब उनके बिना काम चल ही नही सकता था ।

(6) एडमस्मिथ द्वारा स्वतन्त्र व्यापार की वकालत—प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियो ने सरकार द्वारा आरोपित सरक्षणवादी उपायो का घोर विरोध किया । उनका सबसे महान् प्रवक्ता एडमस्मिथ था जिसकी पुस्तक 'राष्ट्रो की सम्पदा' (Wealth of Nations) ने आर्थिक विचारो मे क्रान्ति ला दी । उसने यह सिद्धान्त प्रतिपादित किया कि सभी व्यक्ति इसलिए कार्य करते हैं क्योकि वे अपने स्व-हित (self-interest) से अनुप्राणित होते हैं तथा यह भी कि व्यक्ति व राज्य के हित हमेशा एक-दूसरे से मेल खाते हैं अर्थात एक-दूसरे के पूरक होते है इस प्रकार का तालमेल या समन्वय स्थापित करने वाली एक अदृश्य शक्ति (invisible hand) होती है ऐसी स्थिति मे सरकारी हस्तक्षेप की कही भी आवश्यकता नही पडती ।

इन सभी तत्त्वों के परिणामस्वरूप 19वी शताब्दी मे इग्लैण्ड मे स्वतन्त्र व्यापार की नीति की मजबूती से स्थापना हुई । इस आर्थिक दर्शन के फलस्वरूप अनेको नये आर्थिक नियमो की भी स्थापना हुई । एडमस्मिथ ने अपना स्व-हित का नियम (the law of self-interest) प्रतिपादित किया जिसके अन्तर्गत उसने लिखा कि हमे अपना दोनों समय का खाना कसाई या बेकरी वाले की दया के कारण नही मिलता बल्कि वह हमे इसलिए मिलता है कि प्रत्येक व्यक्ति अपने 'स्व' (self) से सचालित होता है तथा धन प्राप्त करना चाहता है । इस नीति का स्वाभाविक परिणाम राष्ट्रीय समृद्धि के रूप मे सामने आया । प्रतिस्पर्द्धा की भावना (spirit of competition) को नई ऊँचाइयो पर पहुँचाया गया । जे० एस० मिल ने तो यहाँ तक लिखा कि 'प्रतिस्पर्द्धा पर लगाया गया प्रत्येक नियन्त्रण बुराई है, उसमे होने वाला प्रत्येक प्रसार अन्तिम अच्छाई है ।' मुक्त व्यापार के समर्थक माँग व पूर्ति की शक्तियो के साथ किसी भी प्रकार की छेड-छाड के विरुद्ध थे । जे० बी० से (J B Say) ने तो कहा था कि 'पूर्ति अपनी माँग स्वय पैदा करती है ।'

सरकार से यह भी अपेक्षा की जाती थी कि वह मजदूरी के निर्धारण मे भी किसी प्रकार का हस्तक्षेप न करे । स्वतन्त्र व्यापार के समर्थको, जैसे कोबडन (Cobden) ने लिखा कि 'मजदूरी बढी है जब-जब दो मालिक एक ही आदमी के पीछे भागते हैं, और वह गिरी है जब-जब दो मजदूर एक ही मालिक के पीछे भागते है ।' इसका अर्थ यह हुआ कि माँग व पूर्ति का नियम श्रमिको के सन्दर्भ मे भी उतना ही लागू ।

होता था जितना वस्तुओ के सन्दर्भ मे तथा यदि उनकी जनसख्या मे अत्यधिक वृद्धि नही होती तो उन्हे उनकी सीमान्त उत्पादकता के बराबर मजदूरी प्राप्त हो सकने की पूरी-पूरी सम्भावना बनती थी अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के सिद्धान्त मे भी भारी क्रान्ति हुई जब रिकार्डो ने अपना यह मत व्यक्त किया कि विनिमय की प्रक्रिया मे दोनो ही पक्षो को लाभ होता है।

मुक्त व्यापार नीतियो का निर्माण व क्रियान्वयन

नैपोलियन के साथ हुए युद्धो के समाप्त होने के समय मौ परिवहन तथा औद्योगिक क्षेत्र मे जो सर्वोच्चता ब्रिटेन प्राप्त कर चुका था उसे तब अनेक आर्थिक एव सामाजिक कठिनाइयो का सामना करना पडा जबकि व्यापार स्वातन्त्र्य की माँगो ने जोर पकडा। 1815 मे ब्रिटेन पर 860 मिलियन पौण्ड का कर्ज चढा हुआ था तथा उसका वार्षिक करारोपण 72 मिलियन पौण्ड तक जा पहुँचा था जोकि कुछ ही वर्षों पहले तक केवल 17 मिलियन पौण्ड ही था। लगभग प्रत्येक वस्तु पर इतनी ऊँची दर से टटकर लगा दिये गये थे कि उनसे व्यापार बन्द होने का खतरा पैदा हो गया था। व्यवसाय को बेडियाँ डाल दी गई थी। कृषि मन्दी ग्रस्त हो चुकी थी। मजदूरी नीची थी और खाने की चीजे महँगी। कुल मिलाकर लोगो को यह अच्छी तरह पता चल चुका था कि देश की आर्थिक स्थिति शोचनीय थी।[1]

लोगो पर कर-भार कम करने के बजाय 1815 मे जो कदम उठाए गए उनसे तो भू-स्वामियो को ही सबसे अधिक लाभ होता था। 1815 मे एक ओर जहाँ आय पर कर को समाप्त कर दिया गया वहाँ दूसरी ओर अनाज के मूल्य तथा लगानो को ऊँचा रखा गया। जब 1815 मे शान्ति की घोषणा की गई तथा ब्रिटेन मे मुक्त रूप से अनाज के आयात की सम्भावना बनी, जिससे कि अनाज का मूल्य काफी गिर सकता था, तो वहाँ के भू स्वामी काफी परेशान हो गये। उन्होने ससद के समक्ष सरक्षण की अपील की। ससद, जोकि उस समय भू-स्वामियो द्वारा ही नियन्त्रित होती थी, ने 1815 मे 'अनाज कानून' (corn law) के नाम से एक ऐतिहासिक कानून पारित कर दिया।

1815 के विधेयक ने अनाज के आयात पर पूर्ण प्रतिबध लगा दिया केवल उस परिस्थिति के जबकि उसके मूल्य 80 शिलिंग से अधिक बढ जाये। इस मूल्य सीमा को जान बूझ कर ऊँचा रखा गया ताकि भू-स्वामियो के हितो को अधिकाधिक सुरक्षित किया जा सके। जिस समय यह अनाज कानून (corn law) पारित किया गया उस समय अनाज का वास्तविक मूल्य 61 शिलिंग था। यह एक ऐसा कदम था जिससे लोगो को काफी आघात लगा। 1793 के बाद से ही इग्लैण्ड मे खाद्यान्नो के अतिरेक की स्थिति समाप्त हो चुकी थी तथा बढती हुई जनसख्या ने अनाज को और भी महँगा बना दिया था क्योकि उसके आयात की अनुमति नही थी। फसलें खराब हो जाने से (लगातार दो वर्ष तक) अनाज के मूल्य 1817 मे 96 शिलिंग तक पहुँच गये। उसके अतिरिक्त अनाज के आयात करने की दिशा मे कोई प्रयास नही किये गये।

[1] *Ogg and Sharp, op cit*, 246

आरम्भ से ही अधिकाश लोगो द्वारा अनाज कानून (Corn law) को दुष्टतापूर्ण माना गया था औद्योगिक जनसख्या विशेष रूप से इसके मतव्यो के बारे मे आशकित थी। किन्तु जब गेहूँ के दाम चढते चले गये तो अनाज कानून रद्द करने की माँग जोर पकडती चली गई। 1820 मे लन्दन के व्यापारियो के एक समूह ने ससद के समक्ष एक माँग-पत्र (petition) प्रस्तुत किया जिसमे उन्होने एडमस्मिथ की पुस्तक 'वैल्थ ऑफ नेशन्स' को उद्धृत किया तथा स्वतन्त्र व्यापार की दिशा मे तटकर प्रणाली मे सामान्य सुधार के लिए प्रार्थना की। 1821 मे नियुक्त एक लॉर्ड्स् जाँच समिति ने भी यही पाया कि अनाज कानून तथा पूरी की पूरी सरक्षणवादी व्यवस्था की उपयोगिता समाप्त हो चुकी थी।

शुरू मे इग्लैण्ड द्वारा अपनायी गयी स्वतत्र व्यापार की नीति तीन मुख्य दिशाओ की तरफ चली

(1) **अनाज कानूनो का अत** (Collapse of Corn Laws)—अनाज कानूनो को रद्द करने की माग बलवती होती चली गई। अनाज कानून विरोधी आदोलन ससद के भीतर और बाहर चलता रहा। 1832 तक इस आदोलन को प्रमुख अर्थशास्त्रियो का भी समर्थन प्राप्त हो चुका था। ससद ने यह सकेत दिया कि यद्यपि वह अनाज कानूनो को समाप्त करने मे पहल नही करेगी किन्तु वह आम राय का अनुसरण करेगी। 1839 मे एक अन्न कानून विरोधी सघ (Anti-corn Law League) मेनचेस्टर मे गठित किया गया व देश के विभिन्न अनाज कानून विरोधी सघ उससे सम्बद्ध हो गये। रिचर्ड कोवडन (Richard Cobden) व जॉन ब्राइट (John Bright) तथा अनेक कपास उत्पादक लोग इस आदोलन के प्रबल समर्थको मे थे। इन लोगो ने मिलकर एक समाचार पत्र 'अनाज कानून विरोधी परिपत्र' भी निकाला व लाखो परचे 1843 मे अन्न कानून के विरोध मे बाटे।

कोबडन के हाउस ऑफ कॉमस के लिए चुन लिये जाने के बाद तो अनाज कानून विरोधी आदोलन को और भी बल मिला। इतिहास ने एक नई करवट ली। क्योकि इन अनाज कानूनो को अनुदार दल की सरकार ने रद्द किया जिसमे कि भूस्वामियो का बहुमत था तथा जो सरक्षणवादी नीतियो को जारी रखना चाहती थी। 1842 मे सर रॉबर्ट पील (Sir Robert Peel) की सरकार ने अनाज कानूनो मे थोडी ढील दी। किन्तु अनाज कानूनो को रद्द करने की प्रक्रिया को पूरा करने का काम 1845 व 1846 की खराब फसलो ने किया। 15 मार्च 1849 को हाउस ऑफ कॉमस ने एक विधेयक पारित किया जिसने अनाज कानूनो को रद्द कर दिया।

40 वर्षो के ऐतिहासिक सघर्ष के बाद अनाज कानून रद्द करवाने मे मिली सफलता ने उन सरक्षणवादी नीतियो के भाग्य के दरवाजे बन्द कर दिये जिन्हे वणिकवादियो (Mercantilists) ने बडी मेहनत से तैयार किया था। मुक्त व्यापार के समर्थको के लिए यह एक महान् विजय थी तथा उन्होने अन्य सरक्षणवादी उपायो का उन्मूलन करवाने का अपना सघर्ष जारी रखा।

(2) **नौ परिवहन कानूनो का निरस्तीकरण** (Repeal of Navigation Laws)—इग्लैण्ड के नौ-परिवहन कानूनो को रद्द किये जाने के लिए तीन प्रमुख तत्त्व

उत्तरदायी थे . (i) सयुक्त राज्य अमरीका की स्वतन्त्रता, (ii) नेपोलियन युग के युद्ध, तथा (iii) वणिकवादी विचारो के स्थान पर अहस्तक्षेपवादी विचारधारा का प्रतिस्थापन ।

कुछ समय तक टालमटोल करने के बाद ब्रिटिश सरकार ने आखिरकार 1824 मे नौ-परिवहन अधिकारो के सम्बन्ध मे विदेशी राष्ट्रो के साथ पूर्ण समानता एव परस्पर स्वीकृति के आधार पर समझौता किया । 1830 तक ब्रिटेन ने लगभग सभी प्रमुख व्यापारिक राष्ट्रो के साथ नौ परिवहन सधियाँ कर ली थी । विदेशी जहाजो को तटीय व्यापार से अब भी अलग रखा गया था किन्तु उपनिवेशो के साथ व्यापार का अधिकार सभी राष्ट्रो को प्रदान कर दिया गया जिससे दूसरे देशो के उपनिवेशो के साथ व्यापार कर सकने का अधिकार ब्रिटेन को भी स्वत ही मिल गया । किन्तु बाकी बचे विभेदकारी प्रावधानो को भी 1854 मे तिलाजली दे दी गई । विलियम हसकिसन (William Huskisson), जो बोर्ड ऑफ ट्रेड का अध्यक्ष था, ने ब्रिटिश नौ-परिवहन कानूनो को निरस्त करवाने मे प्रमुख भूमिका निभाई । इस नई नीति के आलोचको की उपेक्षाओ के विपरीत ब्रिटिश व्यापारिक जहाजो की तीव्र प्रगति हुई । व्यापारिक जहाजो का टन भार 1800 से 1850 के पचास वर्षो मे 1 6 मिलियन टन से बढ कर 3 5 मिलियन टन हो गया ।

(3) सामान्य तटकर मे सशोधन (*Revision of General Tariff*)—हसकिसन (Huskisson) ने लौटती हुई समृद्धि का लाभ उठाकर न केवल पुराने व दिनातीत हो चुके नौ-परिवहन कानूनो को रद्द करवाने मे सफलता प्राप्त की बल्कि उसने पूरे सामान्य तटकर ढाचे का स्वरूप ही बदल डाला । सीमा शुल्को को पूरी तरह बदल डाला गया । हालाकि हसकिसन स्वय कोई मुक्त व्यापार का कट्टर समर्थक नही था मगर उसने यह महसूस कर लिया कि व्यापार की कोई भी प्रथा हमेशा के लिए सतोषजनक नही बनी रह सकती । उसने तथा उसके समर्थको ने पाया कि इग्लैण्ड का व्यापार 1500 अलग अलग तरह के कानूनो की गिरफ्त मे जकडा हुआ था जिनमे अनेक प्रतिबन्ध व अवरोध सम्मिलित थे । वे ब्रिटिश व्यापार को इन सभी बन्धनो से मुक्त करना चाहते थे और इस दिशा मे वे वालपोल (Walpole) से भी काफी आगे निकल गये । उन्होने चार उपलब्धियाँ प्राप्त की

(i) सीमा शुल्क सम्बन्धी कानून आसान बनाये गये ।

(ii) कच्चे माल पर लगने वाले कर (जैसे कोयला, ऊन, रेशम आदि जिन्हे ब्रिटिश निर्माता आयात करते थे) घटाये गये ।

(iii) 1825 के अधिनियम ने तो आयात किये जाने वाले निर्मित माल पर भी सीमा शुल्को मे 30 प्रतिशत की कमी कर दी । पहले प्रतिबन्धित चीजे जैसे रेशम भी अब इस 30 प्रतिशत मे घटाये गये तटकरो पर आयात किये जा सकते थे ।

(iv) निर्यातो पर लगे हुए सभी प्रतिबन्ध—चाहे वे कच्चे माल, श्रम या निर्मित माल पर हो—हटा लिये गये । यहाँ तक कि मशीनो के आयात की भी अनुमति दे दी गई जिन पर पहले इस डर से प्रतिबन्ध लगा हुआ था कि कही इग्लैण्ड के

प्रतिद्वन्द्वी न तैयार हो जाएँ।[1]

यह पहले से चली आ रही नीतियो से काफी अलग था तथा सरक्षणवादी व्यवस्था लगभग पूरी तरह टूट चुकी थी। आठ वर्ष बाद 1833 मे परिगणित चीजो पर सारे सीमा शुल्क समाप्त कर दिये गये तथा सीमा शुल्क की दरें अन्य 700 वस्तुओ पर कम कर दी गयी। इन परिवर्तनो के परिणाम आशा से कही अधिक अच्छे निकले। आयात व निर्यात, दोनो ही में खूब बढोत्तरी हुई तथा देश समृद्धि के मार्ग पर आगे बढने लगा।

हसकिसन द्वारा आरम्भ किये गये काम को पूरा करने की जिम्मेदारी ग्लेडस्टन (Gladstone) पर पडी जिसने, जब वह 1853 मे वित्तमन्त्री बना, 120 वस्तुओ पर सीमा शुल्क हटा दिया तथा अन्य 140 वस्तुओं पर सीमा शुल्क कम कर दिया। 1860 मे उसने फ्रास के साथ एक सधि पर हस्ताक्षर किये तथा सीमा शुल्क वाले आयातो की कुल सख्या मात्र 48 कर दी। इस तरह अब रेशम, ऊनी कपडो तथा निर्मित वस्तुओ पर लगे हुए अतिम सीमा शुल्क भी हट गये। इन सभी उपायो ने इग्लैण्ड को एक स्वतन्त्र व्यापार वाला राष्ट्र बना दिया। 1875 तक इमारती लकडी, अनाज तथा चीनी पर लगे हुए तटकर भी उठा लिये गये। खाद्यान्नो को पूरी तरह से मुक्त कर दिया गया। अतिम रूप से शुल्क वाली चीजो की सख्या घटकर 20 रह गई तथा 1914 तक यही स्थिति बनी रही।

(4) **औद्योगिक कानूनो की समाप्ति**—अनेक वर्षों तक श्रमिक वर्ग को देश की सामान्य समृद्धि मे कोई हिस्सा नही मिला। इससे अनेक विचारको के मस्तिष्क मे चिन्ता की स्थिति पैदा हुई। इन विचारको ने अनुभव किया कि इस असतोषजनक स्थिति की जिम्मेदारी अहस्तक्षेप की नीति के अधूरे क्रियान्वयन पर थी। इस बात को ध्यान म रखते हुए निम्न महत्त्वपूर्ण औद्योगिक कानूनो को रद्द किया गया—

(अ) सगठन कानून (Combination Laws) को 1824–25 मे निरस्त किया गया। इसमे श्रमिको को अपनी मजदूरी के लिए सौदेबाजी करने की छूट मिल गई। इन कानूनो के रद्द हो जाने से श्रमिको को अपने सघ (Unions) बनाने का भी अधिकार मिल गया। 1875 मे पारित श्रम सघ अधिनियम ने श्रमिको को अपने व्यवसाय सघ (Trade Unions) बनाने की स्वतन्त्रता प्रदान कर दी।

(ब) एलिजाबेथ के काल के औद्योगिक विधेयक 1756 में ही रद्द किये जा चुके थे।

(स) प्रवास (emigration) पर लगी हुई रोक को भी 1825 मे हटा लिया गया। उसी वर्ष मशीनों के आयात पर लगी हुई रोक को भी उठा लिया गया।

(द) भत्ता व्यवस्था (allowance system) को भी 1834 में समाप्त कर दिया गया।

(5) **न्यूनतम हस्तक्षेप की उपनिवेश नीति**—अमरीका मे 13 उपनिवेशो में हुए विद्रोह ने इग्लैण्ड को अपनी औपनिवेशिक नीति पर पुनर्विचार करने के लिए बाध्य कर दिया। वणिकवादी विचारक इन उपनिवेशो को बहुत ही निम्न स्तर देते थे तथा

[1] *Ibid*, 251

उनका अधिकतम शोषण करना चाहते थे। इन उपनिवेशो की रक्षा करना भी काफी खर्चीला काम था। 1807 मे गुलामो का व्यापार समाप्त कर दिये जाने से भी इस व्यवसाय मे लगे हुए ब्रिटिश व्यापारियो को बडा धक्का लगा। उपनिवेश दायित्व (liabilities) बन गये तथा 1783 से लेकर 1870 तक की अवधि श्वेत लोगो द्वारा बसी हुई औपनिवेशिक बस्तियो के मामलो मे कम से कम हस्तक्षेप का काल मानी जा सकती है।

स्वतन्त्र व्यापार के लिए सघर्ष काफी कडा व लम्बा था। सब कुछ सोचने विचारने के बाद यही बात उभरती है कि ब्रिटेन द्वारा स्वतन्त्र व्यापार की नीति अगीकार कर लिया जाना आधुनिक आर्थिक व राजनीतिक इतिहास का एक आधार-भूत सर्वप्रमुख तथ्य है।[1] ब्रिटिश लोगो ने स्वतन्त्र व्यापार की नीति किसी प्रचार के प्रभाव मे आ कर स्वीकार नही की थी। उन्होने तो इसके पीछे छिपे हुए आर्थिक तर्क का अनुभव कर लिया था। उन्होने यह खोज लिया कि मजदूरी मे उच्चावचन अनाज के मूल्यो के कारण नही आते जैसा कि वणिकवादियो का विश्वास था। उन्होने यह भी पाया कि खाने की चीजो पर सीमा शुल्क घटाने से बाजार मे उनका अबार नही लगता और न ही उससे कृषि का कोई नुक्सान होता है।

ब्रिटेन ने यह भी अनुभव कर लिया कि उसके निर्मित माल उत्पादो (manufactures) को किसी प्रकार के सरक्षण की आवश्यकता नही रह गई थी तथा उसकी कृषि भी अन्य देशो के साथ स्पर्द्धा कर सकती थी। अनेक विपरीत परिस्थितियो के दबावो के बावजूद देश ने यह भी अनुभव कर लिया कि वह एक उद्योग प्रधान राष्ट्र बन चुका है तथा इसके अतिरिक्त वह और कुछ भी नही बन सकता था। इस स्थिति से जो निष्कर्ष निकला वह यह था कि श्रमिको का ऐसी स्थिति मे लाया जाना चाहिये जहाँ वे खाने पीने की चीजें सस्ते दामो पर खरीद सकें। अनाज कानूनो के रद्द कर दिये जाने के बाद औद्योगिक सरक्षण को बनाये रखना भी सभव नही रह गया था। अन्तिम बात यह रही कि देश ने यह अनुभव कर लिया कि सरक्षण को समाप्त कर देने से आय मे जो कमी हुई थी उसकी क्षति-पूर्ति मुक्त व्यापार क कारण हुए लाभ से हो चुकी थी।

उन्नीसवी सदी का तृतीय चतुर्थाश ब्रिटिश कृषि, उद्योग तथा व्यवसाय के लिए स्वर्ण युग था। केलिफोर्निया तथा आस्ट्रेलिया मे सोने की खोज ने ऐसी आर्थिक तेजी की परिस्थितियाँ पैदा कर दी थी कि जिनमे व्यापार व उद्योग को प्रोत्साहन मिल रहा था। उद्योग की कुछ शाखाओ मे तो लगभग ब्रिटेन का एकाधिकार था। जर्मनी का एकीकरण हो रहा था। फ्रास नैपोलियन तृतीय के शासन मे सैनिक तैयारियों मे लगा हुआ था। रूस ने अपने कृषि दासो (Serfs) को मुक्त कर दिया था। तथा लिंकन के राष्ट्रपतित्व मे अमरीका ने भी दासो को स्वतन्त्र कर दिया था। अमरीका मे दासो को स्वतन्त्र कर देने स गृह युद्ध छिड गया था। ग्रेट ब्रिटेन इन सभी परिस्थितियो से लाभ उठा सकता था जिन्होने उसके प्रतिद्वन्द्वियो का ध्यान बँटा रखा था उसने अपने उद्योग और व्यापार का सुदृढ निर्माण किया तथा दुनिया के हर हिस्से

[1] *Ibid*, 255

मे सम्बन्ध स्थापित किए। 1850–75 मे आयी आर्थिक समृद्धि ने पहले से ही स्थापित इस विचारधारा को और पुष्टि कर दी कि सतत समृद्धि का रहस्य अहस्तक्षेप (laissez faire) के सिद्धान्तो के क्रियान्वयन मे ही ढूंढा जा सकता था।

मुक्त व्यापार के विरोध मे प्रतिक्रिया

कहावत है कि सफलता की तरह और कोई सफल नही होता। जब मुक्त व्यापार प्रचलित था तथा देश समृद्धि की ओर बढ रहा था तब सब कुछ ठीक था। किन्तु इस नीति ने अपना चरम बिन्दु उन्नीसवी सदी के तृतीय चतुर्थांश मे पा लिया था। लॉर्ड एशले (Lord Ashley) के नेतृत्व मे कुछ मानवतावादी (humanitarians) साथ-साथ कुछ राजकीय हस्तक्षेप की माग कर रहे थे। अनाज कानून (corn laws) रद्द किये जाने के 30 साल बाद तक मुक्तव्यापार नीतियाँ लोकप्रिय बनी रही। 1780 के बाद उनकी यह लोकप्रियता समाप्त हो गई तथा 1929 मे अन्तिम रूप से उनका परित्याग कर दिये जाने से पहले अनेक वर्षों तक उनका बचाव तथा आलोचना की जाती रही। सरक्षणवाद के पुनरागमन के पीछे कई कारण थे

(1) **मदियो की शृखला** (Series of Depressions)—उन्नीसवी सदी के तृतीय चतुर्थांश की समृद्धि के तुरन्त बाद मदियो की एक लहर-सी आ गई। सबसे खराब प्रभाव 1873–86 की अवधि मे अनुभव किये गये। यह पहली मदी थी। ये मदियाँ थोडे थोडे समय से फिर फिर आती रही। ब्रिटिश अर्थव्यवस्था को एक के बाद एक 1894, 1903 तथा 1929 मे मदी का सामना करना पडा। इस स्थिति ने लोगो का मुक्त व्यापार व राज्य के अहस्तक्षेप मे विश्वास हिला दिया। कृषि तथा उद्योग दोनो ही को इन मदियो का शिकार होना पडा था। 1869 मे स्वेज नहर खुल जाने के बाद ब्रिटिश जहाजरानी को भी मदी का शिकार होना पडा। भाडे इस कदर गिर गये कि जहाज मामूली लाभ कमाने की हालत मे भी नही रहे तथा कई पुराने जहाजो को कबाडियो के हाथो बेचना पडा। यूरोप तथा अमरीका से निरतर बढती हुई प्रतिस्पर्द्धा भी इन मदियो के प्रमुख कारणो मे से एक थी।

(2) **अन्य देशो द्वारा सरक्षणवाद स्वीकार किया जाना**—1879 मे जर्मनी ने उच्च सरक्षणवादी नीति अपना ली तथा उसका अनुकरण कई और देशो ने भी कर लिया। अमरीका फ्रास तथा अन्य यूरोपीय देशो ने भी कडे सरक्षणवादी उपाय अपना लिये। यहाँ तक कि स्वशासित ब्रिटिश उपनिवेश (Self-governing British Colonies) भी अपने शिशु उद्योगो (infant industries) को सरक्षण प्रदान कर रहे थे। ये सभी उपाय ब्रिटिश व्यापार के लिए हानिकारक सिद्ध हो रहे थे।

(3) **तकनीकी परिवर्तनो की भारी लागत**—ब्रिटेन अब लोहे के उत्पादन मे पहले की तरह एकाधिकारिक स्थिति मे नही था। जब इस्पात बनाने के लिए बेसेमर प्रक्रिया (Bessemer process) खोज निकाला गया तो ब्रिटेन को भारी मात्रा मे पुरानी मशीनो मे लगी पूँजी को बेकार करना पडा। उसके प्रतिद्वन्द्वियो के सामने यह स्थिति नही आई क्योकि उन्होने पहले पूँजी लगा ही नही रखी थी। प्रत्येक

परिवर्तन के बाद ब्रिटेन अपने उद्योगो का पुनर्गठन भारी लागत लगा कर ही कर सकता था।

(4) **अन्य देशो मे राजकीय हस्तक्षेप व सरकारी सहायता**—अनेक देशो मे आर्थिक गतिविधियो को राजकीय सहायता दी जा रही थी और जो उनके लिए अच्छा था वह ब्रिटेन के लिए बुरा कैसे हो सकता था ? यह विचारधारा बलवती होती जा रही थी कि ब्रिटिश सरकार को अपने उद्योगो के लिए वही करना चाहिये जो जर्मन सरकार अपने उद्योगो के लिए कर रही थी।

(5) **व्यापार असन्तुलन**—1885–90 के दौरान यह अनुभव किया गया कि देश के आयात उसके निर्यातो के मुकाबले अधिक तेजी से बढ रहे थे। कई लोगो ने ऐसी तटकर नीति की आलोचना की कि जिससे आयातो को प्रोत्साहन मिल रहा था।

(6) **कृषि मूल्यो मे गिरावट**—उन्नीसवी शताब्दी के अन्तिम दो चतुर्थांशो में कृषि मूल्यो मे गिरावट आई तथा कृषको के मुनाफे भी घट गये। इसके निदान के लिए जो उपाय सुझाया गया वह यही था कि विदेशो से आयात किये जाने वाले कृषि पदार्थों पर प्रतिबन्धात्मक तट-कर लगाये जाएँ।

(7) **औद्योगिक तथा व्यावसायिक मुनाफों में कमी**—1880 के बाद औद्योगिक तथा व्यावसायिक मुनाफे भी गिरने लगे। जिन लोगो को इसकी वजह से घाटा उठाना पडा उन्होने यही सोचा कि सरक्षणवाद से कम से कम घरेलू उद्योगो को प्रोत्साहन तो मिल सकेगा।

(8) **अधिक सरकारी हस्तक्षेप के लिए लोगो की माग**—फैक्ट्रियो के नियमन, अनिवार्य शिक्षा तथा नियोक्ताओ के दायित्व सम्बन्धी विधेयकों ने आम जनता को सामाजिक व आर्थिक नियमन का अभ्यस्त बना दिया था। इनके लाभ देखकर और अधिक राजकीय हस्तक्षेप की माग की जाने लगी।

(9) **मुक्त व्यापार वाला एकमात्र देश**—सारे ससार मे मुक्त व्यापार के प्रसार का युग कभी नही आया। फ्रास तथा जर्मनी कुछ समय तक मुक्त व्यापार के प्रति झुके भी किन्तु उन्होने भी इसे छोड दिया। अमरीका ने भी अपने तटकर (tariffs) बढा दिये। ब्रिटेन अकेला छूट गया। व्यापार व तटकर पारस्परिक (reciprocal) बन गये जहां तटकरो का प्रयोग बदले की कार्यवाही के लिए हथियारो के रूप मे किया जाने लगा।

मुक्त व्यापार की अवनति

अन्य देशो मे उद्योग तथा व्यापार का प्रसार वहाँ की सरकारो की मदद से हो रहा था। इस बात की जोरदार माग की जाने लगी कि ब्रिटिश सरकार भी अपने व्यापारियो व निर्माताओ की सहायता के लिए आगे आये। इस मुक्त व्यापार की, धीरे-धीरे ही सही, अवनति होने लगी।

उपनिवेश सचिव जोसफ चेबरलेन ने 1903 मे सपूर्ण गैर-ब्रिटिश विश्व के विरुद्ध वे तटकरो की दीवार (Tariff Wall) खडी करने तथा अधिमान्य व्यवस्था

(preferential system) कायम करने की जोरदार वकालत की । खाद्यान्न पर सीमा शुल्क लगाया गया तथा ब्रिटिश उद्योगो को विदेशी उद्योगो की अनुचित प्रतिस्पर्द्धा से बचाने के उद्देश्य से सीमा शुल्क आरोपित करने का प्रस्ताव किया गया । चेंबरलेन के विचारो से लोग बहुत प्रभावित हुए । एक तटकर सुधार सघ गठित किया गया । सघ ने एक तटकर सुधार आयोग (Tariff Reform Commission) बनाया जिसने चेंबरलेन के प्रस्तावो को उचित ठहराया । किन्तु 1905 मे अनुदार दल की सरकार की पराजय से लेकर 1914 तक उदारवादी सरकार ने सरक्षण के लिए कोई उपाय नही किये ।

मुक्त व्यापार का परित्याग सर्वाधिक स्पष्ट रूप से ब्रिटन के उसके साम्राज्य के प्रति दृष्टिकोण म देखा जा सकता था । पुरानी औपनिवेशिक प्रणाली पर अमरीकी उपनिवेश खो देने का कलक लग चुका था। जब 1895 मे जोसफ चेंबरलेन (Josheph Chamberlain) उपनिवेश सचिव बना तो उसने लोगो को सलाह दी कि 'साम्राज्यवादी तरीके से सोचें' (think imperially) । उस समय ब्रिटिश साम्राज्य मे दो प्रकार के देश सम्मिलित थे

(अ) मैत्री पर आधारित साम्राज्य (Empire in Alliance) जिसमे कि स्वशासी स्वतन्त्र उपनिवेश (Self governing Dominions) सम्मिलित थे तथा जहाँ श्वेत लोगो का निवास था। इनमे कनाडा, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड आदि देश शामिल थे जहाँ 1875 से पहले ही जिम्मेदार सरकारो का गठन किया जा चुका था। इन देशो के साथ निश्चित आर्थिक व राजनीतिक सम्बन्ध स्थापित करने के उद्देश्य से कई बैठकें (conferences) की गई। ये बैठक 1887 से आरम्भ हुई तथा इनमे पाया गया कि यद्यपि इन स्वशासी स्वतन्त्र उपनिवेशो के साथ राजनीतिक एकीकरण सम्भव नही है किन्तु इनके साथ निकट के आर्थिक सम्बन्ध स्थापित किये जा सकते है। एक ही तरह के डाक टिकट जारी करके तथा साम्राज्यीय प्रसारण सेवा (imperial broadcasting) स्थापित करके सदेशवाहन के साधनो म सुधार किया गया। 1908 म इन स्वतन्त्र उपनिवेशो (dominions) म शाही व्यापार आयुक्त (Imperial Trade Commissioners) नियुक्त किये गय। अन्तर-साम्राज्यीय व्यापार म अधिमान्य तटकर (Preferential Tariffs) शुरू करने के प्रयास भी किये गये। 1897 म कनाडा द्वारा ब्रिटन को कुछ अधिमान स्वीकृत किये गये।

1914–18 के दौरान हुए प्रथम महायुद्ध मे ब्रिटन ने अपनी कडी स्वतन्त्र व्यापार नीति त्याग दी। सीमा शुल्क, जिन्हे मेकेना (Mckenna) शुल्क कहा गया, अनेक आयात की जाने वाली वस्तुओ पर लगाये गये। अगर ये चीजे उपनिवेशो से आती तो उन पर छूट देने की व्यवस्था की गई। 1931 मे ब्रिटेन ने पुन सरक्षण की नीति अगीकार कर ली। 1932 मे ओटावा (Ottawa) म हुई शाही आर्थिक बैठक (imperial economic conference) मे उपनिवेशो की वस्तुओ पर अधिमान का पैमाना तय किया गया।

(ब) न्यासपरक साम्राज्य (Empire in Trust) मे उष्ण कटिबधीय राष्ट्र सम्मिलित थे जो ब्रिटेन को खाद्य पदार्थ व कच्चा माल भेजते थे तथा उससे निर्मित

माल मगवाते थे। इन देशो के साथ भी मुक्त व्यापार की नीति का परित्याग कर दिया गया क्योंकि इनके विकास मे काफी सरकारी हस्तक्षेप की आवश्यकता थी। स्वास्थ्य की दशाओ मे तथा कृषि मे सुधार किया गया। रेलो के लिए वित्तीय साधन जुटाए गये।

मुक्त व्यापार की अवनति के वर्षों मे राज्य के हस्तक्षेप के कई स्वरूप रहे :

(1) **श्रमिको की स्थिति मे सुधार के लिए राज्य द्वारा हस्तक्षेप**—फैक्ट्री मे कानूनो का कार्यक्षेत्र बढाया गया तथा उन्हे सिलसिलेवार (codified) बनाया गया। दुकानो के घण्टे तथा जल्दी काम बद करने सम्बन्धी कानून पारित किये गये। 1909 मे श्रमिको के शोषण की प्रथा का उन्मूलन करने के लिए न्यूनतम मजदूरी का निर्धारण करने हेतु व्यापार सघो (Trade Boards) की स्थापना की गई। 1918 मे इस व्यवस्था को और आगे बढाया गया। 1896 मे औद्योगिक दुर्घटनाओ का शिकार हो जाने वाले श्रमिको की क्षतिपूर्ति से सम्बन्धित कानून पारित किया जा चुका था। 1900 मे वृद्धावस्था पेंशन चालू की गई तथा राष्ट्रीय बीमा योजना (National Insurance Scheme) 1911 मे स्वीकार की गई।

औद्योगिक विवादो का निपटारा करने के लिए अनेक प्रावधान किये गये। मध्यस्थता विधेयक 1896 मे पारित हुआ तथा पच फैसला कचहरियाँ (arbitration courts) 1908 मे स्थापित की गई। युद्ध के वर्षो मे अनिवार्य पच फैसले (compulsory arbitration) की व्यवस्था लागू की गई। 1916 मे ह्विटले समितियाँ (Whitley Councils) बनाई गई तथा 1919 के अधिनियम द्वारा औद्योगिक अदालतो का गठन किया गया। श्रमिको की शिक्षा को राज्य का दायित्व करार दिया गया। ये सभी प्रावधान नही किये जा सकते थे यदि देश मे सरकारी हस्तक्षेप न करने देने की नीति को पूर्ववत् जारी रखा जाता।

(2) **कृषि को राजकीय सहायता**—वस्तु निशानदेही विधेयक, 1887 (Merchandise Marks Act, 1887) ने मूल उत्पादक देश के लिए उसकी अपनी वस्तुओं पर किसी तरह का निशान या मार्का लगाना आवश्यक कर दिया था ताकि उसकी चीजों को ब्रिटिश वस्तुएँ बता कर न बेचा जा सके। ट्रेड मार्क की नकल करने पर रोक लगा दी गई। पेटेंट कानून, 1907 (Patent Act 1907) मे पारित किया गया ताकि ब्रिटिश पेटेंट की आड मे उन्ही चीजो का विदेशो मे उत्पादन रोका जा सकता। व्यापार बोर्ड (Board of Trade) ने एक पत्रिका का प्रकाशन आरम्भ कर दिया। विदेशी व्यापार के लिए एक अलग विभाग कायम किया गया।

1930 की महान मदी ने औद्योगिक तथा व्यावसायिक गतिविधियो मे राजकीय हस्तक्षेप को और भी अनिवार्य बना दिया। मुक्त व्यापार का पूरी तरह परित्याग कर दिया गया। द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान तो राजकीय नियन्त्रण लगभग आर्थिक गतिविधियो के प्रत्येक पहलू पर लगा हुआ था।

3. महायुद्ध के बाद सरक्षणवाद

प्रथम विश्व युद्ध ने पहले से चली आ रही मुक्त व्यापार नीति मे एक निश्चित

परिवर्तन किया था। 1915 मे मेकेना शुल्क (Mckenna Duties) के अन्तर्गत कारो, फिल्मो तथा घडियो के आयात पर सीमा शुल्क लगाया जाना मुक्त व्यापार से पहला प्रस्थान था। 1921 के औद्योगिक सुरक्षा अधिनियम ने इस सरक्षण को आधारभूत उद्योगो तक और बढा दिया। इस विधेयक के अन्तर्गत 6000 वस्तुओं पर भारी सीमा शुल्क लगाये गये तथा विदेशी वस्तुओ के राशिपातन (dumping) पर रोक लगा दी गई। यगसन (Youngson) का कहना है कि '1920 के आस पास सरक्षण का कुल आकार तो छोटा था किन्तु तटकर व्यवस्था अधिकाधिक सरक्षणवादी बनती जा रही थी।' 1920–30 की अवधि मे सरक्षणवाद को चुनावी मुद्दा बनाया गया। अनुदार दल की पराजय हुई तथा 1931 मे एक अत्यधिक सरक्षणवादी सरकार सत्ता मे आई। इस घटना के तुरन्त बाद अनेक सरक्षणवादी कानून पारित किये गये। 1931 व 1932 के सीमा शुल्क कानूनो (Customs Duties Acts) ने कुछ वस्तुओ के आयात पर 100 प्रतिशत आयात कर लगा दिये। 1932 के आयात कर कानून ने सभी विदेशी वस्तुओ पर 10 प्रतिशत कर समान रूप से लगा दिया। इस बीच 1932 मे ओटावा मे राष्ट्र-कुल के देशो की एक बैठक हुई जिसम ब्रिटेन ने इन देशो मे तटकर रहित वस्तुएँ आने देने की बात स्वीकार की। बदले मे राष्ट्र-कुल के देशो (Commonwealth Countries) ने सूती वस्त्र तथा रसायनो जैसी ब्रिटिश वस्तुओ को विशेष अधिमान देने की बात स्वीकार की।

महान् मदी के बाद स्वर्णमान का परित्याग कर दिया गया जिसने ब्रिटेन को अधिक मुक्त बनाया। 1938 मे अमरीका के साथ द्विपक्षीय समझौते किये गये। किन्तु फ्रास अभी भी ब्रिटिश वस्तुओ के साथ भेद-भाव की नीति अपना रहा था इसलिए बदले की कार्यवाही के तौर पर कुछ फ्रासीसी वस्तुओ पर 20 प्रतिशत सीमा शुल्क लगाया गया।

द्वितीय विश्व-युद्ध ने व्यापक एव कडे नियत्रणो को अनिवार्य बना दिया। इसके अलावा ब्रिटिश व्यापार मित्र तथा तटस्थ राष्ट्रो तक सीमित था। युद्ध के बाद देश को घाटो का सामना करना पडा। उसके विनियोग घट गये तथा उसका व्यापार सतुलन विपरीत हो गया।

'तटकर एव व्यापार पर सामान्य सहमति' (GATT) का निर्माण अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के क्षेत्र मे द्वितीय विश्व-युद्ध के बाद की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण घटना थी। इसका उद्देश्य बहुपक्षीय व्यापार समझौतो को बढावा देना तथा तटकरो मे कमी लाना था। 'गाट' (GATT) मे ब्रिटेन की सदस्यता होने से उसे अपने सीमा शुल्क कुछ घटाने पड़े किन्तु उसे राष्ट्रकुल अधिमान (Commonwealth preferences) बनाये रखने की अनुमति दे दी गई।

द्वितीय विश्व-युद्ध के बाद की एक अन्य महत्त्वपूर्ण घटना अनेक व्यवस्थाओ द्वारा यूरोप मे स्वतन्त्र व्यापार की स्थापना के प्रयास रहे है। यूरोपीय सहयोग सघ (O E C D) की 1948 मे स्थापना तथा 1952 मे कोयला व इस्पात समुदाय (E C S C) की स्थापना इसी दिशा मे कुछ कदम थे। इग्लैण्ड ने यूरोप मे एक स्वतन्त्र व्यापार क्षेत्र की स्थापना का भी समर्थन किया। 1959 मे 6 देशो (बेल्जियम, फ्रास, प० जर्मनी, इटली, लक्समबर्ग व नीदरलेंड्स) ने मिलकर यूरोपीय साझा

बाजार (E C M) की स्थापना की। ब्रिटेन फ्रांस के विरोध तथा देश मे ही कुछ लोगों के विरोध के कारण काफी वर्षों तक इस संस्था का सदस्य नहीं बन पाया। किन्तु 1970 के दशक मे एक जनमत संग्रह द्वारा ब्रिटेन के लोगो ने अपने देश को यूरोपीय साझा बाजार का सदस्य बना दिया।

दूसरे महायुद्ध के बाद ब्रिटेन ने अपने तटकरो मे अनेक कटौतियाँ की हैं। यूरोप के साथ स्वतन्त्र व्यापार को बढावा देने के उद्देश्य से 1957 व 1958 मे दो महत्त्वपूर्ण विधेयक पारित किये गये 1968, 1971, 1972 व 1978 में सीमा शुल्कों मे और कमियाँ की गई। यूरोपीय साझा बाजार का सदस्य बन जाने के बाद तटकर मे भारी कटौतियाँ की गई है। एक बार फिर ब्रिटेन कम प्रतिबन्ध वाले व्यापार की दिशा मे अग्रसर हो रहा है।

सारांश मे, ब्रिटिश व्यावसायिक नीति तीन सुस्पष्ट चरणो से गुजरी है: (i) वणिकवादियो का राजकीय नियन्त्रण वाला चरण, (ii) उन्नीसवीं सदी व बीसवी सदी के आरम्भिक वर्षो मे अहस्तक्षेप की नीति (*laissez faire*) वाला काल, तथा (iii) युद्ध के बाद बहुपक्षीय व्यावसायिक समझौतो व तटकरो मे कटौतियो का काल। इस तरह पहिया पूरा चक्र घूम चुका है।

या समूह (combinations) आदि बनाए जाने के विरुद्ध था। इन समूहो को जनता के खिलाफ षड्यन्त्र माना जाता था तथा इन पर फौजदारी कार्यवाही की जाती थी। व्यक्तिगत रूप से श्रमिक अधिक मजदूरी की माँग कर सकते थे या काम करने से इनकार भी कर सकते थे लेकिन यदि वे इन उद्देश्यो के लिए सगठित होकर काम करते तो उन पर जुर्माना किया जा सकता था या उन्हे जेल भेजा जा सकता था। इगलिश कॉमन लॉ (English Common Law) के अतिरिक्त, जिसमे श्रमिको के समूह (worker's combinations) गैर कानूनी करार दिये गये थे, कई ऐसे कानून और भी थे जिन्हे श्रमिको के खिलाफ, उनके द्वारा सघ बनाने की चेष्टा करने पर प्रयुक्त किया जा सकता था। ये कानून श्रमिको द्वारा राजनीतिक सगठन बनाने या कोई आन्दोलन करने के विरुद्ध बने हुए थे। कुल मिलाकर लगभग 35 ऐसे ससदीय कानून थे जिनका उद्देश्य श्रमिको को सगठित होने से रोकना था। अठारहवी शताब्दी के अन्तिम वर्षों मे इन कानूनो म कुछ सख्त कानून और जोडे गये।

किन्तु इन कडे कानूनो की प्रतिक्रिया स्वरूप ही कुछ गुप्त श्रम सगठन प्रस्फुटित हो गए जिनमे ससद को काफी भय लगने लगा। 1799 मे ससद ने श्रमिको द्वारा गैरकानूनी रूप से सगठित होने को रोकने के लिए एक कानून (An Act to prevent Unlawful Combinations of Workmen) बनाया। 1801 मे कुछ अतिरिक्त प्रावधान जोडकर इस कानून को और भी कडा बना दिया गया। मजदूरी मे वृद्धि की माँग करने के लिए सगठित होने वाले श्रमिको को सपरिश्रम कारावास की सजा दी जा सकती थी।

उन्नीसवी शताब्दी के पहले दो दशको मे निम्न चार बाते श्रमिको के लिए दण्डनीय अपराध थी

(i) एक निश्चित मजदूरी पर ही काम के लिए तैयार होना या कुछ निश्चित घटो या समयो पर ही काम के लिए राजी होना।

(ii) मजदूरी बढाने काम के घटो मे फेरबदल करवाने या काम की मात्रा घटाने के उद्देश्य से कोई भी सगठन बनाना।

(iii) किसी भी व्यक्ति को किसी विशिष्ट निर्माता के यहाँ काम करने के लिए राजी करना या उसके यहाँ से नौकरी छुडवाना।

(iv) मजदूरी, काम के घटे आदि के बारे मे अनुबन्ध करने की दृष्टि से आयोजित की जाने वाली किसी भी सभा मे भाग लेना या उसे अपना समर्थन देना।

1349 व 1562 के जो श्रम कानून (labour statutes) अभी तक कायम थे उनमे न केवल श्रमिको को किसी भी प्रकार का सगठन बनाने से रोका गया था बल्कि उन्हे स्थानीय न्यायाधीशो (local justices) द्वारा निर्धारित की गई मजदूरी से अधिक मजदूरी स्वीकार करने की भी मनाही की गई थी और ये स्थानीय न्यायाधीश आमतौर पर मालिक लोग ही होते थे जो श्रमिको को काम देते थे।

अन्धकार भरा युग 1800–1824

1799 से लेकर 1824 तक सगठित श्रम सघवाद (organised trade

unionism) गैर कानूनी था। इस रोक के पीछे मुख्य कारण राजनीतिक था। इतना ही नहीं, श्रम संघ स्वयं श्रमिकों के लिए हानिप्रद समझे जाते थे। यह माना जाता था कि मजदूरी कोष (wages fund) जो बँधा-बँधाया (fixed) होता है और उसी निश्चित रकम में से मजदूरी दी जाती है। इसलिए यदि एक समूह अपने लिए अधिक मजदूरी पाने में सफल हो जाता है तो अन्य मजदूरों को मिलने वाली मजदूरी घट जाती है।

इस अवधि में श्रमिकों ने समूह कानून (combination laws) को रद्द कराने के लिए विशेष आन्दोलन भी नहीं किये। इसके पीछे कई कारण थे (i) श्रमिक इतने अशिक्षित और अज्ञानी थे कि वे सगठित होने से मिलने वाले लाभों को अनुभव नहीं कर सकते थे। (ii) उनकी मजदूरी इतनी कम थी कि वे चंदा दे पाने की स्थिति में नहीं थे। और (iii) श्रमिक इतने अनजान थे कि उन्हें यह भी मालूम नहीं था कि उन्हीं के जैसे लोग अन्य औद्योगिक शहरों में जिल्लत की जिन्दगी जी रहे हैं।

श्रम समूहों (Labour Combinations) के लिए विधेयक 1824–25

ये सारे श्रम विरोधी कानून, जिनका उल्लेख ऊपर हुआ है, 1831 तक सक्रिय रहे। इनमें से कुछ 1867 तक भी चलते रहे और इनमें से सभी कानूनों को तो 1875 तक ही रद्द किया जा सका। किन्तु इन श्रम संघ विरोधी कानूनों (anti-labour combination laws) को 1824 में काफी नरम बना दिया गया। नैपोलियन के साथ हुए युद्धों की समाप्ति के बाद देश में काफी औद्योगिक अशान्ति फैल गई थी तथा श्रम संघ विरोधी कानूनों को रद्द करवाने के लिए कुछ प्रदर्शन आदि भी किये गये। अनेक गुप्त सगठन भी गठित किये गये।

1824 में नियुक्त की गई एक संसदीय समिति ने पाया कि (i) देश में श्रमिकों के अनेक समूह (combinations) विद्यमान थे तथा इस बाबत बने हुए कानून प्रभावहीन सिद्ध हुए थे, (ii) हड़तालें काफी संख्या में हो रही थीं जो मालिकों व मजदूरों के लिए समान रूप से मँहगी थी, (iii) मालिकों ने भी मजदूरी घटाने के उद्देश्य से गैर कानूनी सगठन बना रखे थे, (iv) जहाँ कानूनों की अवज्ञा करने पर श्रमिकों को दण्ड मिलता था वहाँ मालिक लोग बिना दण्ड के ही छूट रहे थे।

इस संसदीय समिति ने सिफारिश की कि (i) उन सभी कानूनों को, जो मालिकों तथा मजदूरों को मजदूरी की सौदेबाजी तथा शान्तिपूर्ण तरीके से सभाएँ करने पर रोक लगाते हैं, रद्द कर दिया जाना चाहिए, (ii) औद्योगिक विवादों का निपटारा पंच फैसले (arbitration) द्वारा होना चाहिए, (iii) मालिक या मजदूर लोग, पारस्परिक समझौता करने की पूर्ण स्वतन्त्रता के उपरान्त यदि हिंसा या धमकियों का आश्रय लें तो उन्हें कानून द्वारा दण्डित किया जाना चाहिये।

इन सिफारिशों की रोशनी में जून 1824 में ब्रिटिश संसद ने श्रमिकों के सगठन के खिलाफ तथा उनसे सम्बन्धित बने हुए अनेक अन्य कानूनों को रद्द कर दिया। पिछले 500 वर्षों के दौरान बने 34 कानूनों को निरस्त (repeal) कर दिया गया। श्रमिकों द्वारा अपनी मजदूरी बढ़वाने काम के घंटे कम करवाने या काम की

मात्रा मे कमी करवाने के उद्देश्य से शान्तिपूर्ण तरीके से व स्वेच्छापूर्वक बनाये गये समूहों (combinations) को वैधानिक करार दे दिया गया। इस कानून से मालिकों को अत्यधिक भय लगा तथा उन्होंने इस नये कानून को रद्द करने के लिए आवाज उठायी। 1825 मे बनायी गयी एक हाउस ऑफ कॉमन्स की समिति ने 1824 मे बनाये गये इस कानून को रद्द करने तथा इसके स्थान पर कम क्रान्तिकारी (radical) उपाय करने की सिफारिश की। इस तरह 1825 मे पारित सशोधित कानून मे इगलिश कॉमन लॉ (English Common Law) मे मौजूद श्रम सघ विरोधी प्रावधानो (anti-labour combination provisions) को बरकरार रखते हुए श्रमिको द्वारा शान्तिपूर्ण तरीके से सभाएँ करने व सगठित होने की अनुमति प्रदान की गई।

अनिश्चितता का काल 1825–45

1825 के विधेयक के पारित हो जाने के साथ ही ब्रिटिश श्रम सघ के इतिहास का निर्माणात्मक काल (formative period) समाप्त हो गया। 1825 के विधेयक के प्रावधान 1875 तक सकार्यशील रहे। इस सम्पूर्ण अवधि मे श्रम सघ गैर कानूनी बने रहे यद्यपि उन्हे अपराधी सगठन नही माना गया। शान्तिपूर्वक मिलते रहने के श्रमिको के अधिकार को तो गारण्टी दी गई किन्तु कॉमन ला मे अभी भी श्रम सघो को षड्यन्त्रकारी माना जाता रहा। श्रमिको को सामान्यत सजाएँ दी जाती रही।

किन्तु साथ ही 1825 के श्रम अधिनियम ने श्रमिक आन्दोलन को भारी गति प्रदान की। निम्नलिखित प्रमुख घटनाएँ घटित हुई

(i) श्रम सघो की सख्या मे काफी वृद्धि हो गई।

(ii) सगठन की स्वतन्त्रता से हडतालो की लहर आ गई।

(iii) एक राष्ट्रीय स्तर के श्रम सगठन का विचार जन्म लेने लगा।

श्रम सघो के सघ (federations) बनाये जाने लगे। 1829 म एक नेशनल यूनियन आफ कॉटन स्पिनस गठित की गई। 1830 मे श्रमिको की सुरक्षा के लिए एक राष्ट्रीय सघ (National Association for the Protection of Labour) बनाया गया जिसमे 150 यूनियनें शामिल हुई। अन्त मे, 1834 म एक जनरल ट्रेड्स यूनियन का निर्माण किया गया जिसे बाद मे महान् पुनर्गठित राष्ट्रीय श्रम सघ (Grand Consolidated National Trades Union) का नाम दिया गया। यह कोई शुल्क नहीं लेती थी तथा इसकी सदस्य सख्या 5 लाख के लगभग थी। इस सगठन ने आठ घण्टो के काय दिवस के प्रश्न पर एक देशव्यापी हडताल का आह्वान किया किन्तु वह असफल रही तथा अनेक श्रमिको को दण्डित किया गया। इस असफलता ने श्रमिको का ध्यान उस समय चल रहे अन्य सामाजिक एव राजनीतिक आन्दोलनो जैसे चार्टिज्म (Chartism) तथा ओवेन (Owen) के सहकारवाद की तरफ मोडा।

ब्रिटिश श्रम सघवाद का प्रसार 1845–75

इस अवधि मे श्रम सघो की सख्या व सदस्यता की दृष्टि से काफी विकास हुआ। विशिष्ट व्यवसायो मे श्रम सघो के राष्ट्रीय स्तर पर सघ बनाने की प्रवृत्ति

अधिक सामान्य बनती चली गई। श्रमिक लोग अधिक व्यावहारिकतावादी बन गए। आदर्शवादी चार्टिस्ट आन्दोलन विघटित हो गया तथा पुन: एक बार श्रम सघवाद का अभूतपूर्व विकास होने लगा। अनेको नये सगठन बने तथा श्रमिको व यूनियनो द्वारा सघ बनाने की स्वतन्त्रता को प्रतिबन्धित करने वाले सभी कानूनो को रद्द करवाने मे सफलता मिली।

ताल्लुका (county), सभागीय (sectional) तथा राष्ट्रीय स्तर पर अलग-अलग निकायो (bodies) के निर्माण हो जाने से यूनियनो के सगठनात्मक ढाँचे मे भी व्यापक सुधार हुआ। इस अवधि के प्रमुख संघो (federations) मे 1841 का खनिक सघ (Miners' Association, 1841), अमलगमेटेड सोसायटी ऑफ इजीनियर्स (Amalgamated Society of Engineers), 1850 व नेशनल यूनियन ऑफ बूट एण्ड शू ऑपरेटिवज (National Union of Boot and Shoe Operatives), 1874 प्रमुख थे। तत्कालीन सघो के अधिकारो का अतिक्रमण न करते हुए 1845 मे लन्दन मे एक श्रमिको के हित रक्षार्थ सयुक्त व्यवसायो के राष्ट्रीय सघ (National Association of United Trades for the Protection of Labour) की भी स्थापना की गई जो पन्द्रह वर्ष चला।

इस अवधि के श्रम सघवाद के सगठनात्मक ढाँचे का एक महत्त्वपूर्ण पहलू यह भी रहा कि इस काल मे श्रम समितियाँ (Trade Councils) भी गठित की गयी। ये समितियाँ एक ही शहर मे एक विशिष्ट यूनियन की समस्त शाखाओ का प्रतिनिधित्व करती थी। इन समितियो ने श्रमिको के हित सवर्द्धन की दिशा मे अच्छा कार्य किया तथा ससद मे उदार श्रम कानूनो के पारित किये जाने के लिए पृष्ठभूमि तैयार की। पहली राष्ट्रीय श्रम संघ कांग्रेस (National Trade Union Congress) 1864 मे आयोजित हुई। यह प्रथा इतनी सफल रही कि इसे वार्षिक घटना बना दिया गया तथा इसे श्रमिको की ब्रिटिश ससद के नाम से जाना जाने लगा।

उदार श्रम सघ कानून · 1871–76

ब्रिटिश श्रम सघवाद के दूसरे चरण मे बाकी बचे हुए श्रम सघ विरोधी कानूनो को समाप्त कर दिया गया। यह सब 1866–76 के दौरान किये गये लम्बे व उग्र प्रदर्शनो तथा हड़तालो के बाद हुआ। 1867 मे एक ससदीय आयोग गठित किया गया। आयोग ही अव्यवस्था व गड़बड़ियो के लिए यूनियनो को ही दोषी नही ठहराया यद्यपि उसका प्रतिवेदन यूनियनो के पक्ष मे नही था। इस आयोग ने यूनियनो के पजीकरण की सिफारिश की ताकि उनके पास जमा विशाल राशि को सुरक्षित बनाया जा सके।

ससदीय आयोग की इस रिपोर्ट को आधार बनाकर तीन प्रमुख कानून पारित किये गए (i) 1871 का श्रम सघ कानून (Trade Union Act of 1871), (ii) षड्यत्र एव सम्पत्ति सुरक्षा कानून 1875 (Conspiracy and Protection of Property Act of 1875), तथा (iii) 1876 का श्रम सघ कानून। इस व्यापक श्रम सघ विधान ने अग्राकित मुख्य परिवर्तनो की आधारशिला रखी :

(1) **श्रम संघ की परिभाषा की गई**—श्रम की परिभाषा करते हुये उसे 'ऐसी कोई भी सस्था या समूह (combination), चाहे वह स्थायी हो या अस्थायी, माना गया जो मालिको एव मजदूरो के बीच सम्बन्धो का नियमन करता हो।'

(2) **पजीकरण के लिए नियम**—कोई भी सात या उससे अधिक लोग मिल कर श्रम सघ पजीकृत करवा सकते थे तथा कानून द्वारा प्रत्याभूत विशेषाधिकार प्राप्त कर सकते थे।

(3) **गैर-कानूनी नहीं**—श्रम सघो के उद्देश्यो को अब गैर कानूनी नही माना गया तथा उन पर फौजदारी मुकदमे नही चलाये जा सकते थे।

(4) **सम्पत्ति रखने का अधिकार**—यूनियनो को चदा इक्ट्ठा करने व सम्पत्ति रखने का पूरा अधिकार प्रदान किया गया।

(5) **अनुबन्ध तोडने पर सजा या जुर्माना**—दुर्भावना से प्रेरित हो कर श्रम अनुबन्ध तोडने पर 20 पौड जुर्माना या 3 माह की कैद का प्रावधान किया गया।

असाधारण प्रगति का काल 1876–1905

1871 के बाद यूनियनो की सख्या व सदस्यता मे असाधारण रूप से वृद्धि हुई। प्रतिबन्धो मे ढील तथा सामान्य समृद्धि ने इस विकास मे अपना योगदान दिया। 1874 मे इग्लैण्ड मे श्रम सघो की कुल सदस्यता 11 लाख थी। 1875–80 में मदी छा जाने तथा कुछ हडतालो के असफल हो जाने से देश मे यूनियनो की सदस्य सख्या मे कुछ गिरावट आयी। श्रम सघवाद मे पुन प्रगति 1890 से 1900 के बीच हुई।

बीसवी शताब्दी के आरम्भ से ही श्रमसघवाद का विकास हुआ। 1899 मे यूनियनो का एक सघ बनाया जा चुका था। श्रम सघो की सदस्यता बढ कर 23 लाख हो चुकी थी। इस अवधि मे दिये गये दो न्यायिक फैसले यूनियनो के लिए प्रतिकूल रहे। पहला मामला टेफ वेल (Taff-Vale Case) का था जिसमे रेल कर्मचारी सघ (Railway Servants Society) पर हाऊस ऑफ लार्ड्स द्वारा क्षतिपूर्ति के रूप मे 23,000 पौंड का जुर्माना किया गया। श्रम सघो के लिए एक गहरा धक्का था क्योंकि वे तो कानूनी निरापदता (immunity) के भरोसे बैठी हुई थी। श्रमिको द्वारा इस फैसले की घोर निन्दा की गई।

हडतालों की एक लहर सी आ गयी तथा सरकार को एक शाही आयोग नियुक्त करना पडा। लेकिन आयोग ने टेफ वेल निणय (Taff Vale Decision) मे बनाये गये नियमो मे ढील देने का कोई प्रस्ताव नही किया। 1905 मे उदार दल (Liberal Party) की सरकार बनने के बाद पुन एक बार यूनियनो के दायित्व को क्षति-पूर्ति देने के सम्बन्ध मे सीमित करने के प्रयास किये गये, विशेष रूप से उन मामलो मे जहाँ कोई भी काम यूनियन की कार्यकारिणी द्वारा अधिकृत किया जा चुका हो। 1906 मे पारित किये गये श्रम सघ तथा श्रम विवाद विधेयक (Trade Unions and Trade Disputes Act, 1906) ने अदालतो को श्रम सघो के विरुद्ध हानि या अन्याय (torts) के मामलो पर विचार करने से रोक दिया।

1906 के इस कानून ने शान्तिपूर्ण तरीके से घरना देना (picketing) भी वैध माना।

श्रम सघ कानून (Trade Union Act) 1913

श्रम सघवाद पर दूसरी चोट उसकी राजनीतिक गतिविधियो के कारण लगी। श्रम सघो द्वारा ऐसे ससद सदस्यो को वेतन या भत्ता देने की प्रथा बन गयी थी जो ससद मे लेबर दल के कार्यक्रमो का समर्थन करते थे। इस काम के लिए श्रम सघ अपने सदस्यो से चन्दा लेते थे। श्रम सघो के इस अधिकार को चुनौती दी एक कुली (porter) वाल्टर ओसवोर्न (Walter Osborne) ने जो अमलगमेटेड सोसाइटी ऑफ रेलवे सर्वेन्ट्स का सदस्य था। उसकी बात को अदालतो ने स्वीकार किया। ओसवोर्न निर्णय (Osborne Judgement) के पीछे जो तर्क दिया गया वह यह था कि श्रम सघो को इस बात का कोई अधिकार नही है कि वे अपने सदस्यो से इसलिए चन्दा उगाहे कि वे ससद सदस्यो को भत्ता देते है। अदालत ने श्रम सघ के कोषा का इस कार्य के लिए उपयोग करने पर भी रोक लगा दी।

न्यायालय के इस निर्णय पर प्रहार किये गये तथा इसको रद्द करने के लिए (reversal) आन्दोलन भडक उठे। इस स्थिति मे कुछ परिवर्तन तब आया जब एक उपाय करके हाउस ऑफ कॉमन्स के सभी गैर सरकारी सदस्यो (non-official members) को 400 पौण्ड वार्षिक का वेतन देने की स्वीकृति दे दी गयी (पहले श्रम सघ उसके समर्थक ससद सदस्यो को इसीलिए वेतन आदि देते थे क्योकि कोई तनख्वाह या भत्ता नही मिलता था और न ही वे इतने सम्पन्न थे)।

किन्तु ओसवोर्न निर्णय के विरुद्ध आन्दोलन फिर भी जारी रहे। 1913 मे एक नया विधेयक लाया गया। 1913 के इस श्रम सघ अधिनियम मे दो नई बाते थी (1) इसने श्रम सघ की पुन परिभाषा की तथा उसे ऐसा समूह (combination) माना जिसका उद्देश्य व्यवसाय का नियमन करना तथा अपने सदस्यो के लाभ का प्रावधान करना था। (ii) यूनियन के कोषो का उपयोग करने के बारे मे नये नियम बनाये गये। ओसवोर्न निर्णय (Osborne judgement) ने यूनियनो द्वारा अपने कोषो का राजनीतिक व अन्य अनेक उद्देश्यो के लिए उपयोग करने पर रोक लगा ही दी थी।

1913 के अधिनियम ने श्रम सघो को राजनीतिक गतिविधियो मे भाग लेने की अनुमति दे दी यदि बहुमत चाहे तो इस कार्य के लिए कोष भी एकत्रित किया जा सकता था। कोई भी व्यक्ति उस राजनीतिक कोष मे चन्दा देने से इनकार कर सकता था जिसकी रकम अलग ही रखी जाती थी। किन्तु मजदूरो ने इसे अपनी आशिक विजय ही माना तथा अपने सघर्ष को जारी रखा। इस बीच 1914 तक श्रम सघो की सदस्य सख्या बढकर 36 लाख हो चुकी थी तथा ब्रिटिश श्रम सघो को दुनिया-भर म न केवल सबसे पुरानी बल्कि सबसे सुदृढ यूनियने होने का गौरव भी प्राप्त हो चुका था।

प्रथम विश्व-युद्ध और श्रम सघ

1914 म पांच व्यवसायो मे श्रम सघ सर्वाधिक मजबूत थे . (1) खाने,

(ii) धातु इंजीनियरिंग व जहाज निर्माण, (iii) सूती वस्त्र उत्पादन, (iv) भवन निर्माण, तथा (v) रेल, गोदी व अन्य यातायात व्यवसाय। प्रथम महायुद्ध की पूर्व सन्ध्या पर श्रम संघो की कुल सदस्यता 42 लाख हो चुकी थी। लडाई छिड जाने पर एक औद्योगिक सन्धि (industrial truce) की गयी तथा श्रमिको ने नियोक्ताओ के साथ सहयोग करने का आश्वासन दिया। श्रम संघो ने सरकार का भी साथ देने का फैसला किया तथा अपने कई नियमो को ढीला कर दिया।

युद्ध के कारण श्रमिको की भारी कमी हो गयी क्योंकि अधिकांश मजदूर या तो युद्ध सामग्री के उत्पादन मे लगा दिये गये या फिर उन्हे फौज मे दाखिल कर लिया गया। समय की माग यही थी कि सारे राष्ट्र की शक्ति को बटोर कर मुकाबला किया जाय। यौद्धिक सामग्री विधेयक (Amunitions of War Acts) 1915 में पारित किये गये जिनमे सरकार को उद्योगो पर नियन्त्रण करने का अधिकार मिल गया। हडतालें तथा तालाबन्दियाँ गैर कानूनी घोषित कर दी गयी। काम से अनुपस्थिति (absenteeism) को दण्डनीय बना दिया गया। औद्योगिक विवादो का निपटारा पंच फैसले द्वारा करना अनिवार्य हो गया। महिला श्रमिको को प्रोत्साहित किया गया तथा उनका राष्ट्रीय संघ बनाया गया।

सरकार द्वारा घोषित इन कड़े उपायो के उपरान्त तथा श्रम संघो की गतिविधियो पर रोक लगा दिये जाने के उपरान्त 1916–17 मे गम्भीर श्रम असन्तोष की स्थिति पैदा हुई। 1917 मे औद्योगिक हडतालो के कारण लगभग 55 लाख मानव दिवसो की हानि हुई। सरकार ने ह्विटले आयोग (Whitley Commission) भी नियुक्त किया किन्तु वह भी श्रमिको को सन्तुष्ट कर पाने मे असफल रहा।

इस दौरान श्रम संघो की सदस्यता मे बराबर वृद्धि हो रही थी। 1919 में वह 85 लाख हो गयी। श्रम असन्तोष जारी रहा। एक उच्च स्तरीय बैठक बुलाई गयी जिसमें सभी यूनियनो ने भाग लिया। यह बैठक इस निर्णय पर पहुँची कि कार्य दिवस 8 घण्टे का होना चाहिए न्यूनतम मजदूरी कानून द्वारा निर्धारित की जानी चाहिए तथा श्रम संघो को पूरी तरह मान्यता दी जानी चाहिए। किन्तु इस दिशा मे कुछ विशेष प्रगति नही हो पाई जिससे श्रमिको को शान्त नही किया जा सका। 1922 मे लेबर दल (Labour Party) अधिकृत रूप से विरोधी दल बनी तथा 1924 मे उसने सरकार बना ली।

युद्धो के बीच का काल तथा महान् मन्दी

प्रथम महायुद्ध समाप्त होने के बाद माँग मे आने वाली गिरावट मे मन्दी आयी तथा उसके कारण भारी संख्या मे लोग बेरोजगार हो गये। मालिक लोग मजदूरी घटाना चाहते थे किन्तु मजदूरी मे इन कटौतियो का श्रमिको ने विरोध किया जिसके फलस्वरूप हडतालें व तालाबन्दियाँ हुईं। 1926 की राष्ट्र व्यापी आम हडताल के बाद 1927 मे एक श्रम संघ कानून (Trade Unions Act) पारित किया गया जिसमे उल्लेख किया गया कि (i) हडतालें गैर-कानूनी मानी जायेंगी यदि

वे सरकार पर दबाव डालने के उद्देश्य से की जाती हैं। (ii) एक बार यदि हड़ताल को गैर कानूनी घोषित कर दिया जाता है तो श्रम संघ के कोषो को प्रदान की जाने वाली सुरक्षा समाप्त मानी जायगी। (iii) नागरिक सेवा अधिकारी (civil servants) अन्य श्रम संघ संगठनो के साथ सम्बद्ध नही हो सकेंगे। तथा (iv) महाधिवक्ता की प्रार्थना पर न्यायालय श्रम संघो द्वारा उनके कोषो का उपयोग करने पर प्रतिबन्ध लगा सकेंगे। इस अन्तिम प्रावधान ने श्रम संघो को न्यायाधीशो की कृपा पर आश्रित कर दिया।

प्रथम महायुद्ध के बाद के ब्रिटिश श्रम संघवाद ने 1917 की रूसी क्रान्ति से भी प्रेरणा ली। अनेको ब्रिटिश शहरो मे हिंसात्मक श्रमिक आन्दोलन हुए तथा उन्हे दबाने के लिए सेना तैनात करनी पड़ी। युद्ध के वर्षों मे सरकार ने रेलो तथा खानो को अपने नियन्त्रण मे ले लिया था। श्रमिको को युद्ध के वर्षों मे अपना जीवन स्तर बनाये रखने के लिए बोनस (cost of living bonus) दिया गया था क्योंकि कीमतें बहुत बढ़ गयी थी। 1919 मे रेल कर्मचारियों ने रहन सहन की लागत मे अत्यधिक बढ़ोत्तरी हो जाने से राष्ट्रव्यापी हड़ताल कर दी। हड़ताल पूरे देश मे रही। सरकार को कुछ माँगे माननी भी पड़ी किन्तु वह हड़ताल से अप्रसन्न ही रही।

युद्ध के दौरान रेलो खानो तथा कुछ अन्य उद्योगो पर राजकीय नियन्त्रण लगा देने के बाद जब युद्ध समाप्त हुआ तो उनके राष्ट्रीयकरण की माँग की गयी। सरकार ने 1919 मे एक शाही आयोग नियुक्त किया जिसने सिफारिश की कि खनिको के काम के घण्टे कम किये जाएँ मजदूरी मे 2 शिलिंग प्रतिदिन के हिसाब से वृद्धि की जाए तथा कोयला उद्योग का पूर्ण राष्ट्रीयकरण कर दिया जाए। सरकार द्वारा यह रिपोर्ट पूरी तरह नही मानी गयी जिसका परिणाम यह रहा कि ट्रेड यूनियन कांग्रेस (T U C) ने 1919 म एक आन्दोलन छेड दिया। उन्होंने खानो के राष्ट्रीयकरण की माग की किन्तु यह आन्दोलन असफल रहा क्योंकि श्रमिक स्वय आपस मे विभाजित थे।

1922 मे इंजीनियरो द्वारा की गयी एक हड़ताल भी असफल रही। 1926 की सारे देश मे की गयी आम हड़ताल भी सफल नही रही तथा सरकार ने 1927 मे एक श्रम संघ अधिनियम पारित कर दिया जिसका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। 1926 की आम हड़ताल की असफलता, बेकारी मे दिनोदिन वृद्धि तथा मन्दी ने मिलकर श्रमिको का मनोबल गिरा दिया। 1936 मे यूनियनो की सदस्य संख्या घटकर 50 लाख रह गयी। लेबर दल की सरकार जो 1929–31 की अवधि मे सत्ता मे आयी, 1927 के श्रम संघ कानून को रद्द करना चाहती थी किन्तु वैसा करने के लिए वह पर्याप्त समर्थन नही जुटा पायी।

द्वितीय विश्व-युद्ध के दौरान श्रम संघ 1939–45

सर विंस्टन चर्चिल के नेतृत्व मे युद्ध के दौरान लिबरल, कंजरवेटिव व लेबर दल की एक मिली जुली सरकार बनायी गयी थी। उद्योग तथा श्रम को राष्ट्र के लिए अत्यधिक महत्वपूर्ण माना गया तथा उन्हे कड़े सरकारी नियन्त्रण मे रखा गया।

श्रम सघो ने राष्ट्रीय रक्षा कार्यक्रमो मे अपना पूरा सहयोग दिया। श्रम सघो ने इस अवधि मे अपनी स्थिति को काफी सुगठित कर लिया। उनकी सदस्य सख्या 1939 मे 62 लाख थी जो 1946 मे बढकर 88 लाख हो गयी। इसी अवधि मे अनेक यूनियनो के आपस मे विलय से यूनियनो की कुल सख्या 1019 से घटकर 757 रह गयी।

युद्ध के दौरान एक अन्य महत्त्वपूर्ण उपलब्धि यह रही कि सरकार ने श्रम सघो के महत्व को स्वीकार कर लिया। ब्रिटिश प्रधानमन्त्री द्वारा श्रमिको से सम्बन्ध रखने वाले प्रत्येक मामले पर ट्रेड यूनियन काग्रेस (T U C) से सलाह ली गयी। यूनियनो को सामाजिक व राजनीतिक मान्यता भी प्राप्त हो गयी। 1945 में जब लेबर दल की सरकार बनी तो उसने 1946 मे समर्थन प्राप्त कर 1927 के श्रम सघ कानून को (जो श्रमिको के विरुद्ध था) रद्द करा दिया।

आधुनिक युग

आधुनिक श्रम सघवाद के निम्न स्वरूप काफी महत्त्वपूर्ण है

(1) **महिला श्रमिको मे कम सक्रिय**—ऐसा इस कारण है कि अधिकाश महिलाओ के लिए औद्योगिक अथवा व्यावसायिक रोजगार उनके जीवन का मुख्य धन्धा नही है। इसके अतिरिक्त उनके लिए काम की दशाओं का फैक्ट्री कानूनो द्वारा बराबर नियमन होता रहा है व उनके लिए यूनियनो के हस्तक्षेप की आवश्यकता नही के बराबर है।

(2) **गैर-शारीरिक (Non-manual) कार्य का प्रसार**—सफेदपोश लोगो जैसे डॉक्टर कलाकार शिक्षक, सरकारी कर्मचारी आदि ने भी श्रम सघो के ही ढाँचे के आधार पर अपने अपने अलग सघ बना लिए है।

(3) **सघो (Federations) का निर्माण**—यह बात बहुत महत्त्वपूर्ण है कि बीसवी शताब्दी के दौरान श्रम सघो द्वारा अनेक महासघो व मैत्री सस्थाओ का निर्माण किया गया है। अनेको विलय (amalgamations) भी बीसवी सदी मे हुए हैं। 1889 मे ग्रेट ब्रिटेन के खनिको का सघ (Miners' Association) बना था। 1920 मे एमलगमेटेड इजीनियरिंग यूनियन का गठन किया गया। नेशनल यूनियन आफ माइन वर्कर्स 1945 मे अस्तित्व मे आयी।

श्रम सघो की सदस्यता मे एक ओर जहाँ निरन्तर वृद्धि हुई है वहीं उनकी सख्या में कमी आती जा रही है। 1939 मे श्रम सघो की सख्या 1019 थी जो 1957 म घटकर 653 1964 मे 591 तथा 1979 मे 350 के लगभग हो गयी है।

(5) **श्रम सघ काग्रेस (Trade Union Congress)**—ब्रिटिश श्रम सघो की यही शीर्ष सस्था है तथा इसकी सदस्यता 1 करोड (10 मिलियन) के आस-पास रहती है। देश की अधिकाश यूनियनें इसी से सम्बद्ध है। इसकी (T U C) स्थापना 1868 मे हुई थी। ट्रेड यूनियन काग्रेस के प्रमुख कार्य हैं श्रम सघो के

आपसी झगडों का निपटारा करवाना, ऐसी किसी भी यूनियन की गतिविधियों की जाँच पड़ताल करना जो सारे श्रम समुदाय के हितों को नुकसान पहुँचाती हो, प्रस्तावित श्रम कानूनों पर नजर रखना तथा उचित कार्यवाही करना तथा श्रम संघों के बीच मिले-जुले कार्यक्रमों को प्रोत्साहन देना।

कई बार ऐसा भी हुआ है जब कई उद्योगों मे श्रमिकों ने ऐसे श्रमिको के साथ काम करने से इनकार कर दिया है जो यूनियन के सदस्य नही हैं। कुछ समय से स्थानीय समितियाँ इस बात पर जोर दे रही है कि सभी कर्मचारियों को किसी न किसी व्यावसायिक संघ का सदस्य होना चाहिए। ट्रेड यूनियन कांग्रेस ने आधिकारिक रूप से 'बन्द दुकान' (closed shop) की इस प्रथा का अनुमोदन नही किया है किन्तु उसने बिना जोर जबर्दस्ती के सौ प्रतिशत यूनियन सदस्यता के लक्ष्य को प्राप्त करने का आदर्श भी सामने रखा हुआ है। वर्तमान मे लगभग 320 यूनियनें ट्रेड यूनियन कांग्रेस से सम्बद्ध हैं तथा वह करीब 90 लाख श्रमिकों का प्रतिनिधित्व करती हैं।

ट्रेड यूनियन कांग्रेस (T U C) से सम्बद्ध यूनियनों को 18 श्रेणियों मे रखा जाता है। ये श्रेणियाँ व्यवसाय के अनुसार होती है तथा इनमे रेले, इंजीनियरिंग उद्योग, निर्माण व रसायन उद्योग आदि सम्मिलित हैं। सरकार ने ट्रेड यूनियन कांग्रेस (T U C) को मान्यता प्रदान की हुई है तथा वह इसे औद्योगिक श्रमिको की प्रतिनिधि संस्था मानती है। यह स्वय एक गैर-राजनीतिक संस्था है लेकिन इससे सम्बद्ध यूनियनें राजनीतिक कोष संग्रह करने के लिए स्वतन्त्र है।

लगभग प्रत्येक उद्योग मे आजकल कोई न कोई यूनियन बन गयी है। काम लोगों को रोजगार देने वाले उद्योग अधिक संगठित हैं। कृषि श्रमिक भी राष्ट्रीय कृषि मजदूर संघ के झण्डे तले संगठित है तथा उसकी सदस्यता 2 लाख के लगभग है। श्रम संघ सार्वजनिक सेवाओ (public utilities) तथा राष्ट्रीयकृत उद्योगो मे भी विद्यमान है।

आज की आरामदेह स्थिति मे पहुँचने तक ब्रिटिश श्रम संघ आन्दोलन को लगभग एक शताब्दी से भी अधिक का समय लगा है। अब वे इस स्थिति में है कि वे चाहे तो सारी अर्थ-व्यवस्था का काम ठप्प कर सकते हैं। श्रम संघो ने 1974, 1976, 1977 व 1978 मे अनेक राष्ट्रव्यापी हड़तालें कराई है। लेबर दल का तो जन्म ही श्रमिकों द्वारा किये गये एक लम्बे व कड़े संघर्ष का परिणाम है। लेबर दल की अधिकांश शक्ति का स्रोत संगठित श्रमिक आन्दोलन ही रहा है।

आज के युग मे ट्रेड यूनियन कांग्रेस सम्पर्क की कड़ी का काम कर रही है। साथ ही, अपने समाजवादी देशों की साथी यूनियनों की तरह ब्रिटिश यूनियनें न तो आग उगलने वाली हैं न ही क्रान्तिकारी। उन्होने इतनी परिपक्वता प्राप्त कर ली है कि विश्व के श्रम आन्दोलन मे उनका स्थान अनुपम है। 1973 के बाद से लेकर 1979 तक स्फीतिपरक प्रवृत्तियों (Inflationary trends) द्वारा पैदा की गयी कठिनाइयों ने इस जिम्मेदारी को अनुभव करने वाले ब्रिटिश श्रम संघवाद को पुन एक बार परीक्षा की स्थिति मे लाकर रख दिया है।

सातवाँ अध्याय

1930 की महान् मंदी : आर्थिक स्थिरीकरण की नीतियाँ
(THE GREAT DEPRESSION OF 1930 · POLICIES OF STABILISATION)

वॉल स्ट्रीट सकट (Wall Street Crisis) जो 1929 मे अमरीका मे शुरू हुआ विश्वव्यापी मदी मे बदल गया तथा उसने लगभग सारे यूरोपीय देशो पर चोट की। इग्लैण्ड इस आर्थिक मदी का सबसे भयकर शिकार हुआ। 1930 की इस महान् मदी ने न केवल ब्रिटिश अर्थव्यवस्था को अस्त-व्यस्त कर दिया बल्कि उसने ब्रिटिश उपनिवेशो की अर्थव्यवस्थाओ पर भी अपना दुष्प्रभाव डाल कर इग्लैण्ड की स्थिति को और भी दयनीय बना दिया।

महान् मदी के बारे मे प्रसिद्ध लेखक आर्थर लुईस ने लिखा है कि '1929 मे जो अवसाद प्रारम्भ हुआ वह कोई साधारण मदी नही थी बल्कि आधुनिक इतिहास मे अपनी दीर्घकालीनता और कठोरता दोनो ही दृष्टियो से सबसे बडी मदी थी और सबसे खराब स्थिति तो 1932 मे आयी जबकि बेरोजगारो की सख्या बढते-बढते 3 करोड तक हो चुकी थी।' आर्थर बिर्नी ने निष्कर्ष निकाला कि '1930 का सकट इग्लैण्ड की अर्थव्यवस्था के धीरे धीरे हो रहे पतन की शायद एक अपरिहार्य अवस्था थी। उसने अपना औद्योगिक नेतृत्व (Industrial leadership) खो दिया था और साथ ही निर्यात बाजार भी। वह कम अनुकूलनशील (adaptable) कम प्रगतिशील, कम गत्यात्मक तथा कम कुशल बन गई थी।'

मदी का आरम्भ

1914–20 की प्रथम महायुद्ध की अवधि मे इग्लैण्ड तथा अन्य यूरोपीय देशों मे मूल्यों मे भारी वृद्धि हुई थी। युद्ध के दौरान भारी मात्रा मे पत्र-मुद्रा छापे जाने के कारण इग्लैण्ड मे मुद्रा की कुल मात्रा मे भारी प्रसार हो गया था। कुछ समय तक तो यह पत्र-मुद्रा स्वर्ण मे परिवर्तनशील (convertible) बनाये रखी गयी किन्तु उसके बाद वह अपरिवर्तनीय और भार स्वरूप बन गयी। सेना द्वारा उपयोग मे ली जाने वाली वस्तुओं को छोडकर अन्य चीजो के कम उत्पादन से उनका अभाव हो गया। इग्लैण्ड को पहुँचने वाली खाद्यान्नो की पूर्ति मे भी युद्ध की अवधि के दौरान काफी कटौती कर दी गई थी जिससे उनके मूल्यो मे भी अत्यधिक वृद्धि हो

चुकी थी।

प्रथम महायुद्ध के दौरान मूल्यो मे हुई वृद्धि को कई लोगो द्वारा काफी गभीर माना गया। बोर्ड ऑफ ट्रेड द्वारा जारी किये गये मूल्य निर्देशाको के अनुसार सामान्य मूल्य स्तर जुलाई 1914 से लेकर जुलाई 1920 तक की 6 वर्षों की अवधि मे तिगुना हो चुका था। 1900 को आधार वर्ष मानने पर बोर्ड ऑफ ट्रेड का 1914 के लिए मूल्य निर्देशाक 117 था जबकि 1920 मे वह 358 तक पहुँच गया। इन बढते हुए मूल्यो का श्रमिको पर जो प्रभाव पडा उसकी गणना करना कठिन है। इन लोगो ने युद्ध के वर्षो मे मृत्यु बीमारी, अपगता तथा मानसिक सतुलन खो बैठने के रूप मे जो घोर कष्ट उठाये उनका कोई हिसाब नही था। ये सभी कष्ट ज्यादा महत्त्वपूर्ण थे तथा मूल्य वृद्धि मे इनका कोई सम्बन्ध नही था। यह बात अवश्य रही कि इन वर्षो मे कोई बेरोजगार नही था। कई उद्योगो में तो मजदूरो की इतनी कमी थी कि उनमे पुरुषो के स्थान पर महिलाओं को काम पर लगाने की स्थिति आ पहुँची थी। मजदूरी मे भी काफी वृद्धि हुई यद्यपि विभिन्न उद्योगो मे यह वृद्धि अलग अलग रही। यह अनुमान लगाया गया है कि 1914 से 1920 तक की अवधि मे श्रमिको को मूल्य वृद्धि से जो कष्ट हुए वे नौकरी पेशा लोगो, क्लर्को आदि के मुकाबले अपेक्षाकृत कम थे क्योंकि इन लोगो की आमदनी मे शारीरिक काम करने वालो की आमदनी के अनुपात मे वृद्धि नही हो पायी।

स्फीति की इस विकट स्थिति की पहली प्रतिक्रिया यही रही कि विस्फीतिकारी (deflationary) नीति अपनायी जाये। विस्फीति की नीति 1921 मे ब्रिटेन मे जाँच के तौर पर चलाई भी गयी। किन्तु विस्फीति व उससे उत्पन्न मदी से जो मूल्य गिरे तथा बेरोजगारी बढी उसने तो समाज पर जो चोट की वह स्फीति के कारण पैदा हुई अस्त-व्यस्तता से कही अधिक तिलमिलाने वाली थी।[1] इसके बाद विस्फीति माग के स्थान पर स्थिरीकरण (stabilisation) की माग की गई। लॉर्ड कीन्स तथा केम्ब्रिज विचारधारा के अथशास्त्रियों ने 'सचालित मुद्रा' (Managed Currency) का विचार लोगों के सामने रखा। उन्होने यह तर्क दिया कि मूल्यो मे स्थायित्व सभव है यदि प्रचलन मे रहने वाली मुद्रा की पूर्ति को उसकी माग के अनुपात मे घटाया बढाया जाता रहे। किन्तु इन विचारो को स्वीकार नही किया गया तथा ब्रिटिश सरकार ने इस समस्या से निपटने के लिए पुन स्वर्णमान (gold standard) अपनाने का निश्चय किया जिसे कि युद्ध छिडने के समय त्याग दिया गया था। स्वर्ण मान को फिर से अपनाने वाला यह महत्त्वपूर्ण निर्णय 1925 म लिया गया। कागजी नोटो को फिर से स्वर्ण मे परिवर्तनीय घोषित किया गया यद्यपि उन्हे स्वर्ण मुद्राओ मे नही बल्कि सोने-चाँदी (bullion) में ही बदलवाया जा सकता था। इस प्रावधान का उद्देश्य ऋण चुकाने तथा आयातो का भुगतान करने के लिए अधिक स्वर्ण प्राप्त करना था। आंतरिक लेन-देन मे स्वर्ण का प्रयोग नही किया जाना था जिन्हे कि कुशलतापूर्वक व न्यूनतम लागत पर पत्र मुद्रा मे ही निपटाया जा सकता था। इस व्यवस्था मे स्वर्ण के उपयोग मे काफी मितव्ययिता सम्भव हुई। इग्लैण्ड द्वारा स्वर्ण

[1] A Birnie, *op cit*, 83

मान की पुनर्प्रतिष्ठा ने कई अन्य यूरोपीय देशो को भी स्वर्णमान की व्यवस्था की ओर लौटने के लिए प्रवृत्त किया यद्यपि यह सब थोडे ही समय तक चलने वाला था।

मूल्यों मे गिरावट

1920 के बाद से ही मूल्यो मे गिरावट शुरू हो चुकी थी। मूल्य निर्देशाक जो 1920 मे 300 से भी ऊपर थे, अगले ही वर्ष 200 से भी नीचे आ गए। 1921 के बाद मूल्यो मे यह कमी थोडी धीमी पड गई तथा 1924 मे तो उनमे अस्थायी तौर पर कुछ वृद्धि भी हुई। किन्तु कुल मिला कर गिरावट चलती रही तथा 1932 मे *बोर्ड ऑव ट्रेड द्वारा प्रसारित थोक मूल्य निर्देशाक घटते-घटते 1924* के स्तर का 61 प्रतिशत तथा 'स्टेटिस्ट' (statist) निर्देशाक केवल 58 प्रतिशत रह गया। युद्धोत्तरकालीन[1] वर्षो मे मूल्यो मे आने वाली इस गिरावट का प्रमुख कारण मुद्रा तथा उत्पादन के बीच रहने वाले आनुपातिक सम्बन्ध का गडबडा जाना था। सामान्य मूल्य स्तर इसी आनुपातिक सम्बन्ध पर आश्रित होता है। दूसरा तत्त्व, जिसने मूल्यो मे गिरावट पैदा की, वे विस्फीतिकारी (deflationary) नीतियाँ थी जो युद्धोत्तरकाल मे मूल्यो मे और वृद्धि न होने देने के उद्देश्य से अपनायी गयी थी। तीसरा कारण, युद्ध समाप्त हो जाने के बाद उत्पादन की अनेक शाखाओ मे उत्पादन में जो अत्यधिक वृद्धि हुई उसमे भी बाजार मे चीजो का अबार (glut in the market) लग गया। यह इसलिए हुआ क्योकि प्रभावी माग कम रही।

1920 से 1924 के बीच ब्रिटेन मे प्रचलित कुल मुद्रा मे से 70 मिलियन *पौंड के करेंसी नोटो को कम कर दिया गया था। नोटो की यह रकम* प्रचलन से निकाल ली गई तथा उसे नष्ट कर दिया गया। इसके साथ-साथ कई उद्योगो मे चली आ रही दशाओ का पुनर्मूल्याकन किया गया। नई मशीनें स्थापित की गयी, गौण-उत्पादनो (by products) का नये तरीके से उपयोग किया गया तथा श्रम व अन्य ऊपरी लागतो मे कटौतियाँ की गयी। इस तरह एक ओर तो उत्पादन मे वृद्धि होती चली गई तथा दूसरी ओर प्रचलन मे नोटो की मात्रा कम कर देने से मूल्यो मे गिरावट की स्थिति उत्पन्न हुई जिससे मदी का सकट बढता चला गया।

स्वर्णमान की व्यवस्था को पुन अपनाने का अनेक देशो का कदम भी अपरिपक्व सिद्ध हुआ। यह व्यवस्था अब युद्ध-पूर्व के दिनो की तरह सहज रूप से चलने की स्थिति मे नही रह गयी थी क्योकि स्वर्ण के भडारो के वितरण मे कुसमायोजन हो गया था। उस समय के *अर्थशास्त्रियो का यह विश्वास* गलत सिद्ध हुआ कि कोई भी देश उसकी मुद्रा व्यवस्था के लिए वाछित स्वर्ण से अधिक सोना अपने पास नही रखेगा। 1931 तक फ्रास तथा सयुक्त राज्य अमरीका के पास ससार का 3/5 सोना जमा हो चुका था। उनके पास सोना इसलिए जमा होता चला गया कि उन्होने ऋणदाता (creditor) देश होने के उपरात स्वर्णमान के नियमो के अनुसार अपने अतिरेक को देनदार (debtor) देशो मे विनियोग नही किया। देनदार देश, दूसरी

[1] G. W. Southgate, *op cit*

ओर, अपने ऋण केवल स्वर्ण मे ही चुका सकते थे। इसका परिणाम यह हुआ कि जब 1931 मे वित्तीय सकट फट पडा तो ससार की मौद्रिक व्यवस्था बिखर गई। परिस्थितियो ने इग्लैण्ड को पुन 1931 मे स्वर्णमान का परित्याग करने के लिए विवश कर दिया।

ब्रिटेन द्वारा स्वर्णमान के परित्याग के उदाहरण का अन्य देशो ने भी अनुकरण किया। 1930 के वर्षो मे विश्व मौद्रिक व्यवस्था अनियत्रित व अराजकतापूर्ण हो गयी। सपूर्ण विश्व मोटे तौर पर तीन स्पष्ट गुटो मे बँट गया जिनमे प्रत्येक गुट भिन्न मौद्रिक नीति अपना रहा था—डॉलर समूह जिसका नेता अमरीका था, व जिसका लक्ष्य स्फीति पैदा करना था, स्वर्ण गुट (gold block) जिसका नेतृत्व फ्रास कर रहा था व जिसका उद्देश्य अपस्फीति (deflation) पैदा करना था, तथा स्टर्लिग समूह (Sterling group) जिसका नेता ब्रिटेन था व जिसका उद्देश्य स्थिरीकरण (stabilisation) करना था। जब 1936 मे फ्रास ने भी स्वर्णमान का परित्याग कर दिया तो हालत मे कुछ सुधार हुआ किन्तु विश्व व्यापार के विकास एव प्रसार मे मौद्रिक अव्यवस्था 1939 तक भी एक भारी अड़चन बनी रही।

प्रथम विश्व युद्ध के बाद परिस्थितियो मे आये क्रातिकारी परिवर्तन के अतिरिक्त कुछ प्रमुख तत्त्व और भी थे जिन्होने ब्रिटिश अर्थव्यवस्था को महान् मदी का शिकार बनाया। महान् मदी के ये कारण निम्न थे—

(1) **विश्व माग मे भारी गिरावट**—विश्व युद्ध ने ब्रिटिश उद्योगो द्वारा उत्पादित लगभग प्रत्येक वस्तु की माग मे अस्थायी रूप से भारी वृद्धि कर दी थी। जैसे ही युद्ध समाप्त हुआ यह माग गिरने लगी तथा उससे मदी आयी।

(2) **नये औद्योगिक देश**—बीसवी सदी के प्रारम्भिक वर्षो मे फ्रास, जर्मनी तथा अमरीका ने भारी प्रगति कर ली थी। उनके पास विशाल मात्रा में प्राकृतिक ससाधन उपलब्ध थे तथा वे विश्व बाजार मे निर्मित माल के क्षेत्र म शक्तिशाली प्रतिद्वन्द्वी बन गये। इस क्षेत्र मे बनी हुई ब्रिटिश सर्वोच्चता समाप्त हो गई।

(3) **सरक्षणवाद की लहर**—सरक्षणवाद की एक नई लहर ने पहले चली आ रही मुक्त व्यापार नीति का स्थान ले लिया था। जर्मनी, अमरीका तथा अनेक यूरोपीय देशो ने तटकरो की एक अभेद्य दीवार (impregnable tariff wall) खडी कर ली थी तथा वे अपने देश के उद्योगो को आगे लाने के लिए सभी प्रकार की राजकीय सहायता दे रहे थे। इन सभी बातो से ब्रिटिश उद्योगो को, जोकि मुक्त व्यापार के वातावरण मे पले थ, गभीर धक्का लगा।

(4) **विनियोग के अवसरो का अभाव**—ब्रिटिश विनियोगकर्ताओ के समक्ष विनियोग को लेकर सतृप्ति (saturation) की स्थिति उपस्थित हो गयी थी। देश के भीतर विनियोग की अब कोई सभावना नही थी। बाहर विनियोग करने मे अब काफी सावधानी की जरूरत थी क्योकि अधिकाश उपनिवेशो मे आजादी के लिए सघर्ष काफी शक्तिशाली बन चुके थे। ब्रिटिश साम्राज्य एक तरह से पतन की स्थिति की ओर बढ रहा था।

(5) **बेलोचदार निर्यात उद्योग**—मुख्य ब्रिटिश निर्यात उद्योग जैसे कोयला,

लोहा व इस्पात तथा सूती वस्त्र उद्योग समय के साथ अपने आप को बदल नही पाये। उत्पादन की पद्धतियो को बदलना तथा उसमे विविधता लाना आवश्यक बन चुका था। किन्तु ये ब्रिटिश उद्योग समय की माग के अनुसार अपने आप को बदलने मे आलस्य करते रहे और परिणाम यह रहा कि वे दौड मे पिछड गए। इजीनियरिंग तथा रासायनिक वस्तुओ की विश्व बाजार मे भारी माग थी किन्तु ब्रिटिश उद्योग अपने परम्परागत उत्पादनो मे ही लगे रहे।

मदी के प्रभाव

(1) **व्यापक बेकारी**—1930 की मदी से लोग भारी सख्या मे बेरोजगार हो गए तथा बेरोजगारो की यह सख्या इतनी अधिक थी कि वह दूसरे महायुद्ध के प्रारम्भ होने तक लुप्त नही हुई। चार प्रमुख ब्रिटिश उद्योगो मे लगे हुए लोगो की सख्या मे निरन्तर कमी आयी। 1907 मे इन चार प्रमुख उद्योगो मे लगे हुए श्रमिको का भाग कुल श्रम-शक्ति का 44 प्रतिशत था। 1930 मे यह घट कर 25 प्रतिशत रह गया। एक अनुमान के अनुसार 1930 की मदी को सबसे खराब समय मे देश की कुल श्रम शक्ति का लगभग एक-चौथाई भाग बेरोजगार हो चुका था।

इस स्थिति मे और बिगाड तब हुआ जब उद्योगो का विवेकीकरण (rationalisation) करने के कुछ प्रयास भी इसी समय छेडे गये। कीमतो मे भारी गिरावट ने निर्माताओ को अपनी उत्पादन लागतें घटाने के लिए मजबूर कर दिया था। उन्होने ऐसा करने के लिए अपने उत्पादन ढाचे को पुनर्गठित किया जिसमे ऊपरी लागतो (overhead costs) मे कटौती, मजदूरी मे कटौती, श्रम की बचत करने वाली नई मशीने लगाना आदि उपाय सम्मिलित थे। इससे बेकारी मे और वृद्धि हुई।

(2) **औद्योगिक अशाति**—उद्योगपति युद्ध के दौरान कृत्रिम रूप से बढायी गयी मजदूरियो (inflated wages) को घटाने की माग कर रहे थे। इन मजदूरी की कटौतियो तथा मजदूरो की छटनी (retrenchment) ने मिल कर देश मे औद्योगिक अशाति के वातावरण को जन्म दिया।

(3) **वृद्धिगत ऋण भार**—मूल्यो मे गिरावट का एक और प्रभाव यह हुआ कि राष्ट्रीय ऋण (National debt) का वास्तविक भार (real burden) और बढ गया। हजारो मिलियन पौंड तब उधार लिये गये थे जब उनकी क्रय-शक्ति 1930 मे गिरे हुए मूल्य स्तर की अपेक्षा काफी कम थी। वस्तुओ के मूल्यो म यह भारी गिरावट सरकारी प्रतिभूतियाँ (state securities) रखने वाले लोगो के लिए काफी लाभप्रद सिद्ध हुई।

(4) **निर्यातो मे कमी**—महान् मदी से पहले ही ब्रिटिश निर्यातो मे वृद्धि होना रुक चुका था। प्रथम विश्व युद्ध के बाद राष्ट्रवाद की भावना अत्यधिक बलवती हो उठने के कारण भी निर्यातो मे यह गिरावट आने लगी थी। वस्तुओ का, विशेषकर निर्मित माल (manufacturing) का उत्पादन प्रत्येक देश का स्थानीय मामला बन गया। युद्ध मे ध्वस्त हो चुके राष्ट्रो के पास ब्रिटेन से माल मगवाने के लिए क्रय-शक्ति

बिल्कुल नही बच रही थी। ब्रिटिश उपनिवेश, जो मूलत. कृषि प्रधान थे, भी मदी के गहरे शिकार हुए थे क्योकि उनके प्रमुख निर्यात कच्चे माल आदि के थे जिनके मूल्यो मे भी भारी कमी आ चुकी थी। इस तत्त्व ने निर्मित माल का आयात कर सकने की उनकी क्षमता मे कमी कर दी थी।

ये कुछ प्रमुख कारण थे जिनके कारण से ब्रिटिश निर्यात प्रधान उद्योगों को मदी के वर्षों मे भारी हानि उठानी पडी। 1913 की तुलना मे 1929 मे ब्रिटिश उद्योगो के निर्यात 12 से लेकर 37 प्रतिशत तक गिर चुके थे।

ब्रिटिश भुगतान सन्तुलन

(मिलियन पौण्ड मे)

1913	+181
1926	− 7
1928	+137
1929	+ 88
1930	+ 33
1931	−145

(5) **औद्योगिक अवनति**—कुल मिलाकर 1930 की महान् मदी ब्रिटिश उद्योगो के विकास के लिए काफी घातक सिद्ध हुई। अस्थिर व गलत मौद्रिक नीतियो, ऊँची लागतो, पुराने पड चुके सगठन तथा श्रमिक असतोष की परिस्थितियो ने मिल कर एक ऐसी हालत पैदा कर दी जिसमे औद्योगिक उत्पादन मे आयी गिरावट और भी अधिक स्पष्ट झलकने लगी। स्वर्णमान की पुनर्सस्थापना तथा कुछ वर्षों तक चलायी गयी विस्फीतिकारी (deflationary) नीतियो ने भी ब्रिटिश उद्योगो को हानि पहुँचाई। मदी के वर्षों मे श्रमिकों द्वारा किये गये आन्दोलनो से सकट और भी विकट हो गया। 1919 से 1926 की अवधि मे श्रम असतोष के कारण कुल मिला कर लगभग 357 मानव दिवसो की क्षति हुई। श्रमिक किसी भी प्रकार की मजदूरी मे कटौती के लिए राजी नही थे जबकि स्थिति यह थी कि जहाँ थोक मूल्यो मे 40 प्रतिशत की गिरावट आ चुकी थी वहाँ मजदूरी मे केवल 2 प्रतिशत की कमी आयी थी।

निम्नलिखित निर्देशाको से महान् मदी के चित्र को देखा जा सकता है—

मदी के दौरान आर्थिक सूचक (1923=100)

	1929	1930	1931
औद्योगिक उत्पादन	106	98	89
रोजगार	102	98	94
विशुद्ध निर्यात मूल्य	103	89	74
थोक मूल्य	97	85	74

(6) **बजट मे घाटा**—1929 मे ग्रेट ब्रिटेन के चालू खाते मे 100 मिलियन पौंड का अतिरेक था। 1931 तक यह अतिरेक न केवल लुप्त हो चुका था बल्कि उसके स्थान पर 100 मिलियन पौंड का घाटा और हो गया था। इसके अतिरिक्त आगामी वर्षों मे भी बजटो मे विशाल घाटे के अनुमान लगाये गये थे तथा देश की वित्तीय स्थिति की जाँच पडताल करने वाली एक समिति ने पाया कि देश दिवालियेपन की ओर अग्रसर हो रहा था।

1930 की मदी ने औद्योगिक देशो को घोर निराशा की स्थिति मे ढकेल दिया था। सबसे अधिक प्रभावित होने वाला देश तो अमरीका ही था। ब्रिटेन पर भी मदी का आघात काफी जबर्दस्त लगा किन्तु उसकी सुनियोजित सामाजिक सुरक्षा व्यवस्था इस मौके पर काफी उपयोगी व कारगर साबित हुई। बेकारी बीमा आयोग (Unemployment Insurance Commission) की एक रिपोर्ट के अनुसार 1930 मे बीमाशुदा प्रत्येक 8 श्रमिको मे से एक श्रमिक बेरोजगार था। सामाजिक सेवाओ पर किया जाने वाला खर्च आकाश को छूने लग गया था।

निदान के उपाय

सामाजिक सेवाओ पर किये जा रहे खर्च मे कटौती के मामले पर उठ खडे विवाद को ले कर सितम्बर 1931 मे लेबर दल की सरकार ने त्यागपत्र दे दिया तथा देश को आर्थिक दिवालियेपन के भय से बचाने के लिए अनुदार दल (Conservative Party) के बहुमत वाली एक राष्ट्रीय सरकार (National Government) का गठन किया गया। मदी का मुकाबला करने के लिए निम्न प्रमुख उपाय किये गये—

(1) **सरक्षणवादी नीतियाँ**—ब्रिटिश ससद ने प्रथम महायुद्ध प्रारम्भ होने से पहले तथा उसके बाद भी कुछ आयात शुल्क लगाये थे किन्तु कुल मिला कर ब्रिटेन एक मुक्त व्यापार वाला देश ही बना रहा था। ब्रिटेन द्वारा समझाने-बुझाने पर 1927 मे अमरीका, हालैण्ड, जापान तथा कुछ अन्य देशो ने भी व्यापार पर लगे हुए प्रतिबन्धों को हटाना स्वीकार कर लिया था। किन्तु वास्तव मे इन देशों ने वैसा नही किया। 1929 तक अर्थात् दो ही वर्षों बाद, जर्मनी ने अपने तटकरो मे 129 प्रतिशत की वृद्धि कर दी और हालैण्ड ने अपने तटकर तो इससे भी अधिक अर्थात् 167 प्रतिशत से बढा दिये। स्पष्ट है कि इग्लैण्ड के पास कोई विकल्प नही रह गया था।

अब ब्रिटेन को भी यह बात समझ आ गयी कि मुक्त व्यापार के दिन लद चुके थे। ब्रिटिश ससद ने अनेक आपतकालीन विधेयक पारित कर अपने देश के उद्योगो को सरक्षण प्रदान किया। इग्लैण्ड ने अपने प्रतिद्वन्द्वियो के साथ अनेक उदार व्यावसायिक समझौते भी किये। 1932 मे ओटावा (कनाडा) मे हुई साम्राज्यीय आर्थिक बैठक (Imperial Economic Conference) मे साम्राज्य अधिमान की नीति (Policy of Imperial Preference) स्वीकार की गई। इसके अनुसार प्रथम प्राथमिकता या अधिमान (preference) घरेलू उद्योगो को दिया जाना था व दूसरा

अधिमान साम्राज्य के देशो को व अन्तिम अधिमान विदेशी प्रतिद्वन्द्वियो को देना था जो ब्रिटिश बाजारो मे प्रवेश पाना चाहते थे।

ग्रेट ब्रिटेन द्वारा अपनायी गयी इस नई सरक्षणवादी नीति के प्रमुख लक्ष्य थे . भुगतान सतुलन मे हो रहे घाटे को ठीक करना, सरकारी आय मे वृद्धि करना तथा देश के अन्दर हो रहे उत्पादन व वितरण को अधिक कुशल बनाना। 1932 मे मूल्य पर आधारित (ad valorem) 10 प्रतिशत का आयात शुल्क प्रत्येक वस्तु पर, केवल खाद्य पदार्थों व कच्चे माल को छोडकर, लगा दिया गया। निर्मित माल के आयातों पर शुल्क की यह दर 10 प्रतिशत रखी गई व उपनिवेशो मे आने वाले माल को अधिमान प्रदान किया गया। यह समझौता परस्पर किया गया था किन्तु इसका लाभ ब्रिटिश तैयार माल बनाने वाले उद्योगो को ही मिला जो पहले से ही मजबूत स्थिति मे थे।

सरक्षणवादी नीतियो का ध्येय ब्रिटिश उद्योगो के लिए अधिक अवसर उपलब्ध कराना था। विश्व-व्यापार मे ब्रिटेन का प्रतिशत भाग 1924 के 12 9 प्रतिशत से घट कर 1929 मे 10 8 प्रतिशत रह गया था। किन्तु इन उपायो से विशेष लाभ इसलिए नही हो पाया कि अन्य देशो द्वारा अपनाये गये सरक्षणवादी उपायो व तटकर वृद्धियो के परिणामस्वरूप अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का कुल परिमाण ही घट गया था।

(2) **मौद्रिक नीति मे परिवर्तन**—1931 मे दूसरी बार स्वर्णमान का परित्याग करने के बाद सस्ती मुद्रा-नीति (cheap money policy) को अपनाया गया। पौंड-स्टर्लिंग का मूल्य गिरने दिया गया जिससे कि ब्रिटिश निर्यात विदेशी बाजारो मे सस्ते बिक पाते। इसके पीछे विचार यह था कि निर्यातो मे वृद्धि करके उत्पादन व रोजगार दोनो मे वृद्धि की जा सकती थी। किन्तु यह लक्ष्य भी इसलिए प्राप्त नही हो पाया क्योकि 1936 तक अन्य सभी देशो ने भी स्वर्णमान का परित्याग कर दिया था तथा इसी प्रकार की नीतियाँ अपना ली थी।

यह भय लगने लगा था कि पौंड-स्टर्लिंग के मूल्य मे भारी उच्चावचन (fluctuations) हो सकते है। इस सभावना को रोकने के उद्देश्य से 1932 मे एक विनिमय समानीकरण कोष (Exchange Equalisation Fund) स्थापित किया गया जिसका लक्ष्य विनिमय दरो पर अकुश बनाये रखना था। 1930 के बाद ब्रिटिश करेंसी (British Currency) के सचालन तथा अनेक विनिमय नियन्त्रणो के लगा दिये जाने से देश के भुगतान सतुलन मे हो रहे घाटे को ठीक करने म बडी सहायता मिली।

सस्ती मुद्रा नीति (cheap money policy) लागू करने के इरादे से 1932 मे यह निर्णय किया गया कि युद्ध के समय के लिए गये सभी ऋणो (जोकि कुल राष्ट्रीय ऋणो का एक-तिहाई थे) पर ब्याज की दर 5 प्रतिशत से घटा कर साढे-तीन प्रतिशत कर दी जायेगी। इस उपाय से ऋणो की सेवा (debt servicing) पर हो रहा व्यय घट गया तथा सरकार करो को कम करने की स्थिति मे पहुँच गयी। स्वर्ण-मान को विदा कर देने से सरकार को अधिक मौद्रिक स्वतन्त्रता प्राप्त हुई तथा व्यावसायिक गतिविधियो को पुनर्जीवित करने के उद्देश्य से नई मुद्रा छापी गई।

लेकिन अभी भी कीस द्वारा प्रचारित राजकीय व्यय मे वृद्धि करने का प्रस्ताव व्यवहार रूप में लागू नही किया गया था तथा सार्वजनिक व्यय के प्रयोग मे सकोच बना रहा।

(3) **कृषि मे सुधार**—अनाज का स्वतन्त्र रूप से आयात होने से ब्रिटिश कृषि की स्थिति काफी खराब हो गई थी। इन आयातो पर पूरी तरह से रोक लगाना भी सम्भव नही था क्योकि वैसा करने से खाद्य पदार्थ काफी महँगे हो जाते। इस परिस्थिति मे सरकार ने अनुदान (subsidies) देने व नई विपणन योजनाएँ लाने की नीति अपनायी। 1931 व 1932 मे उत्तरोत्तर दो कृषि विपणन विधेयक (Agricultural Marketing Acts) पारित किये गये। इन विधेयको का उद्देश्य एक विपणन बोर्ड (Marketing Board) की स्थापना करना था जो उन कृषिगत पदार्थों के आयातो पर प्रतिबंध लगा सकें जिन्हे कृषि विपणन स्कीमो (agricultural marketing schemes) के अन्तर्गत ले आया गया था। गेहूँ के लिए 45 शिलिंग प्रति क्वार्टर (quarter) की गारटी दी गई। चुकदर की खेती को भी प्रोत्साहन दिया गया।

इस तरह 1931 मे बनायी गयी कृषि नीति का ध्येय इग्लैण्ड को खाद्यानो के मामले मे आत्मनिर्भर बनाना था।

(4) **आवास पर विनियोग** (Investment in Housing)—1930 के बाद के वर्षों मे भवन निर्माण के काम मे जो तेजी आयी (Building boom) वह ब्रिटिश अर्थव्यवस्था को पुनर्जीवित करने वाले तत्त्वो मे सर्वप्रमुख कही जा सकती है। कम ब्याज की दर होने के अलावा मकान बनाने की क्रिया ने इसलिए भी जोर पकडा क्योंकि उस समय मकान बनाना सस्ता पडता था। निर्माण कार्य के बढने से रोजगार के अवसर बढे। रोजगार बढने से लोगो के हाथो में क्रय-शक्ति बढी तथा अधिक क्रय शक्ति लोगो के हाथो तक पहुँचने से निर्मित वस्तुओ की माग मे भी वृद्धि हुई।

(5) **बेकारी बीमा** (Unemployment Insurance)—1932 मे रजिस्टर्ड बेरोजगारो की सख्या बढ कर 27 लाख के लगभग पहुँच चुकी थी जैसे-जैसे बेरोजगारो की सख्या मे वृद्धि हुई वैसे-वैसे बेरोजगारी बीमा योजना अधिक खर्चीली होती चली गई। किस्तो की दर को बदलना पडा। 1934 मे स्थिति मे कुछ सुधार आया जब कोष पर्याप्त हो गये तथा सामान्य लाभ पुनर्स्थापित हो गये। 1936 मे दरो को सशोधित किया गया तथा पुरुष के लिए वे 16 शिलिंग तथा महिला के लिए 15 शिलिंग तय की गयी।

बेरोजगारी मे क्षेत्रीय असमानताएँ भी थी। देश मे कुछ ऐसे भी क्षेत्र या प्रदेश थे जहाँ बेरोजगारी की समस्या अधिक गभीर थी क्योकि वहाँ के उद्योगो का स्थायी रूप से पतन हो गया था। उन्हे 'विपदग्रस्त क्षेत्र' (distressed areas) घोषित किया गया। इन विपदग्रस्त क्षेत्रो की समस्या सुलझाने के लिए या तो वहाँ के बेरोजगारो को उन क्षेत्रो मे स्थानान्तरित करने की आवश्यकता थी जहाँ रोजगार उपलब्ध था या फिर विपदग्रस्त क्षेत्रो मे ही नये उद्योग खोलने की आवश्यकता थी ताकि वहाँ के लोगो को वही काम मिल सकें। लेकिन कोई ठोस काम इस बारे मे

नही हो पाया जब तक कि 1934 मे विशिष्ट क्षेत्र विधेयक (Special Areas Act) नही पारित कर दिया गया जिसके अन्तर्गत इन क्षेत्रो की देखभाल के लिए आयुक्त नियुक्त किये गये। इस विधेयक मे 2 मिलियन पौंड का एक कोष भी बनाया गया।

(6) निर्यातो को अनुदान (Subsidies to Exports)—अन्य देशो मे चलाई जा रही स्कीमो की भाँति इग्लैण्ड मे भी निर्यातो को अनुदान देने की स्कीमे हाथ मे ली गई। कुछ निर्यातोन्मुख उद्योगो के लाभ को ऊँचा रखने के उद्देश्य से उनके लिए *एकाधिकारिक व्यवस्थाएँ की गई।*

1932 से 1937 की अवधि मे सुधार धीमी गति से किन्तु नियमित रूप से हुआ। इन पाँच वर्षो मे औद्योगिक उत्पादन मे 50 प्रतिशत की वृद्धि हुई तथा मुनाफे 10 प्रतिशत से बढे। बेरोजगारी मे भी काफी कमी आयी यद्यपि वह पूरी तरह से समाप्त नही हुई। नये उद्योगो जैसे यातायात, रसायन, बिजली का साज-सामान व इजीनियरिंग *सामान बनाने वाले उद्योगो की भारी प्रगति हुई। इस अवधि मे अन्य* महत्त्वपूर्ण औद्योगिक देश जैसे अमरीका, जापान तथा जर्मनी भी काफी सभल चुके थे।

1929 के सूचकाकों की 1936 के सूचकाको के साथ तुलना से ब्रिटिश अर्थव्यवस्था में हुए तत्कालीन असाधारण सुधार का अनुमान किया जा सकता है।

अर्थव्यवस्था मे समुत्थान (Recovery) के सूचकाक

(आधार वर्ष 1928=100)

	1929	1936
औद्योगिक उत्पादन	88	121
रोजगार	94	108
शुद्ध निर्यात	50	61
थोक मूल्य	72	80
औद्योगिक लाभ	65	99

इन आकडो से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि ब्रिटिश अर्थव्यवस्था मे सुधार *या उसका समुत्थान (recovery) आशिक ही था। उस समय ऐसे कई लोग थे जो* यह सोचते थे कि दूसरी मदी भी अब दूर नही है। किन्तु तभी दूसरा महायुद्ध छिड गया। सामान्य मूल्य स्तर युद्ध की अवधि (1939–45) मे पुन खूब चढ गया। जीवन-स्तर लागत निर्देशाक (Cost of living index) जो सितम्बर 1939 मे युद्ध प्रारम्भ होने के समय *155 पर था (1914=100), 1941 मे बढकर 196* व 1942 मे 200 हो गया। युद्ध के अन्त मे यह 202 तक पहुँच गया था।

आठवाँ अध्याय

विदेशी व्यापार

(FOREIGN TRADE)

अठारहवी सदी के अन्त मे एक प्रसिद्ध ब्रिटिश राजनीतिज्ञ ने बेंजामिन फ्रेंकलिन (अमरीकी राजनेता) से यह इच्छा व्यक्त की थी कि वह इग्लैण्ड को एक स्वतन्त्र बन्दरगाह (Free Port) के रूप मे देखना चाहता है। जिसके लिए, उस ब्रिटिश राजनेता ने कहा कि 'इग्लैण्ड स्वभाव से, पूंजी की दृष्टि से, साहस के प्रति प्रेम की दृष्टि से, नौसैनिक दृष्टि से तथा नई व पुरानी दुनिया के बीच स्थित होने की अपनी भौगोलिक स्थिति की दृष्टि से तथा यूरोप के उत्तर व दक्षिण मे होने से सर्वाधिक उपयुक्त देश है।' आगे उस ब्रिटिश राजनेता ने यह भी कहा कि 'जो लोग व्यापार व्यवसाय के लिए सर्वाधिक उपयुक्त होते है वे लोग व्यापार को मुक्त रखकर लाभ ही उठा सकते हैं।' इस तरह ब्रिटेन मे स्वतन्त्र व्यापार (Free Trade) के युग का आरम्भ हुआ और उसके साथ ही ब्रिटिश समृद्धि का युग भी। ब्रिटेन का आयात व निर्यात व्यापार जर्मनी, फ्रास व अमरीका के व्यापार मे अत्यधिक प्रसार हो चुकने के उपरान्त भी, विश्व व्यापार का अनुमानित पाँचवाँ हिस्सा (1/5) था।

उन्नीसवी सदी मे ब्रिटिश विदेशी व्यापार की असाधारण प्रगति के लिए अनेक कारण उत्तरदायी थे। प्रथमत बाहरी दुनिया के सन्दर्भ मे इग्लैण्ड की अति विशिष्ट भौगोलिक स्थिति ही इसके लिए उत्तरदायी थी। दूसरा कारण इग्लैण्ड का नौसैनिक दृष्टि से ताकतवर होने का था जिसकी वजह से वह न केवल युद्धो के समय अपने व्यापारिक जहाजो की रक्षा कर सकता था बल्कि जहाजो, गोदियो (docks) तथा नाविको की सुविधा व्यापार के लिए वहाँ हर समय मौजूद रहती थी। तीसरा महत्त्वपूर्ण तत्त्व ब्रिटेन का उपनिवेशो पर अधिकार की दृष्टि से सबसे प्रमुख राष्ट्र होना था। चौथा तत्त्व इग्लैण्ड मे तुलनात्मक दृष्टि से बड़े पैमाने पर उत्पादन कर सकने वाले उद्योगो का जल्दी विकास हो जाना था जिनसे कि निर्यात के लिए भारी मात्रा मे अतिरेक प्राप्त किया जा सकता था। फ्रास व जर्मनी 1870 तक जाकर ही उतना औद्योगिक उत्पादन कर सकने की स्थिति मे पहुँच सके थे कि जिससे वे अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के लिए भारी अतिरेक पैदा कर सकते। पाचवी बात यह थी कि ब्रिटिश निर्माता ऐसी चीजो का उत्पादन कर रहे थे जिनकी विश्व मे भारी माँग थी। अन्तिम बात यह रही कि ब्रिटेन ऐसा पहला देश था जिसने अपने व्यापार को बन्धनो से मुक्त किया तथा अपने नौ-परिवहन कानूनो को उदार बनाया।

उन्नीसवी सदी के उत्तरार्द्ध मे ब्रिटिश विदेशी व्यापार के प्रसार की तीव्रता

का अनुमान निम्नलिखित तालिका से लगाया जा सकता है :

उन्नीसवी सदी मे ब्रिटिश विदेश व्यापार

(मिलियन पौंड मे)

वर्ष	औसत आयात	औसत निर्यात
1855–1859	146	116
1860–1864	193	138
1865–1869	237	181
1870–1874	291	235
1875–1879	320	202
1880–1884	344	234
1885–1889	318	226
1890–1894	357	234
1895–1899	393	238
1900	460	283

1890–99 के दशक मे ब्रिटिश विदेश व्यापार की प्रगति धीमी रही। किन्तु 1900 के बाद असाधारण गति से प्रसार आरम्भ हो गया तथा 1914 तक ब्रिटिश निर्यात दुगुने हो गये। 1913 मे निर्यातो का मूल्य बढकर 525 मिलियन पौण्ड तथा आयातो का कुल मूल्य 768 मिलियन पौण्ड हो चुका था। इस सम्पूर्ण अवधि मे ब्रिटेन ने तैयार माल के निर्माण मे अधिकाधिक विशिष्टीकरण किया। देश के निर्यात अधिकाश रूप मे निर्मित माल जैसे सूती वस्त्र, मशीनो, चमडे की बनी चीजो, रसायनो तथा चीनी मिट्टी के बर्तनो जैसी चीजो के रहे। आयातो मे मुख्य रूप से खाद्य सामग्री, कच्चा लोहा, कपास चमडा तथा कागज प्रमुख थे।

प्रथम विश्व युद्ध के पहले तक विश्व विदेशी व्यापार मे ब्रिटेन का भाग सबसे बडा था। यह निम्न तालिका से स्पष्ट है

विदेश व्यापार मे ब्रिटेन का भाग

(प्रथम विश्व-युद्ध से पूर्व) (प्रतिशत मे)

देश	निर्यात		आयात	
	1894	*1907*	*1894*	*1907*
ग्रेट ब्रिटेन	20 8	15 5	14 2	11 2
जर्मनी	13 2	10 5	13 6	9 3
अमरीका	8 9	9 5	12 4	15 1
हॉलैंड	8 0	6 6	—	—
सोवियत सघ	6 4	6 4	12 7	12 7

ब्रिटिश अर्थव्यवस्था में विदेशी व्यापार ने हमेशा महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। अठारहवीं सदी के अन्त में ब्रिटिश आयातों व निर्यातों का वहाँ की राष्ट्रीय आय में भाग 34 प्रतिशत था। 1870 में निर्यात कुल राष्ट्रीय आय का करीब 22 प्रतिशत थे जबकि आयात उसका लगभग 36 प्रतिशत थे। इस तरह दोनों मिलाकर राष्ट्रीय आय का 58 प्रतिशत हो जाते थे। 1950–55 के वर्षों में भी इन दोनों का राष्ट्रीय आय में भाग विशेष घटा नहीं था, वह 47 प्रतिशत के लगभग था।

इंग्लैण्ड के निवासियों की साहसिक यात्राएँ करने की आकांक्षा ने ब्रिटिश अर्थव्यवस्था को विदेश व्यापार प्रधान अर्थव्यवस्था बनाया। महारानी एलिजाबेथ प्रथम के जमाने में सोलहवीं सदी में ही अनेक व्यापारिक कम्पनियाँ गठित हो चुकी थीं। बार्बरी कम्पनी (Barbary Company) ने उत्तरी अफ्रीका के साथ व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित किये थे जबकि लेवेंट कम्पनी (Levant Company) ने मेडिटेरेनियन देशों (Mediterranean Countries) देशों के साथ खासा व्यापार कायम कर लिया था। इन व्यापारिक कम्पनियों में सबसे प्रसिद्ध ईस्ट इण्डिया कम्पनी (East India Company) थी। हडसन बे कम्पनी (Hudson's Bay Company) 1670 में हडसन की खाड़ी वाले क्षेत्र में व्यापार के लिए स्थापित की गयी। दक्षिण अमरीका के साथ व्यापार करने के लिए 1711 में साउथ सी कम्पनी (South Sea Company) को गठित किया गया। ये कम्पनियाँ 17वीं सदी में अपनी मालिक आप थी किन्तु 18वीं सदी में इनका पतन हो गया।

ब्रिटिश साहसिकता (adventurism) का प्रसिद्ध लेखक जी० डब्लू० साउथगेट ने बहुत अच्छा चित्रण किया है[1] 'वे लोग जिनके कि पुरखे घरों में रहकर जानवर चराने का काम करते थे और जो यह सोचते थे कि उनका द्वीप सभ्यता के केन्द्र से बहुत दूर है, इस तथ्य के प्रति जागरूक बने कि दुनिया के बारे में जितना पता चला है दुनिया उससे कहीं अधिक बड़ी है, और यह भी कि इसमें बहुत से अजीबोगरीब देश मौजूद हैं और बहुत-सी आश्चर्यजनक चीजें विद्यमान हैं जो खोजे जाने की प्रतीक्षा में हैं तथा वे लोग खोज का यह कार्य करने के लिए उत्तम स्थिति में हैं। इस तरह अंग्रेजों के मस्तिष्क में जोखिम उठाने की एक ऐसी भावना भर गयी जो उसके बाद कभी नहीं मरी। इंग्लैण्ड के जहाजों ने साहसिक यात्राएँ कीं, और ट्यूडर (Tudor) युग समाप्त होने से पहले ही अंग्रेज सारी धरती की परिक्रमा कर चुके थे।'

उन्नीसवीं तथा बीसवीं सदी में ब्रिटिश विदेश व्यापार में कई महान् परिवर्तन हुए हैं। उसके परिमाण में अत्यधिक वृद्धि हुई है। विश्व व्यापार में उसका सापेक्ष भाग 1876–80 के 38% से घटकर 1913 में 27% के करीब आ गया था। किन्तु निरपेक्ष रूप में ब्रिटिश विदेश व्यापार ने 1913 में अपना चरमबिन्दु छू लिया था जब वह 1295 मिलियन पौण्ड पहुँच गया। ब्रिटिश विदेश व्यापार में आयात निर्यातों के मुकाबले हमेशा अधिक रहे हैं क्योंकि जनसंख्या में वृद्धि होते चले जाने के साथ खाद्यान्नों के आयातों की आवश्यकता बढ़ती चली गयी है। अपने दृश्य

[1] G W Southgate, *op cit*, 74

निर्यातों पर दृश्य आयातों के आधिक्य (excess of visible imports over exports) के कारण इंग्लैण्ड भुगतान के लिए अपनी अदृश्य आय (invisible earnings), जो उसे जहाजी भाड़ों, बीमा कम्पनियों व बैंकिंग सेवाओं से मिलती रही है, का उपयोग करता रहा है।

ब्रिटिश विदेश व्यापार की सरचना मे भी काफी परिवर्तन आया है। 1820 से 1920 की सौ सालों की अवधि मे कच्चे माल के आयात मे 15 गुना वृद्धि हुई। उसके निर्यात तो प्रारम्भ से ही मुख्यत निर्मित माल के रहे। 1815 मे भी ब्रिटेन के निर्यातों मे तीन-चौथाई भाग तैयार माल का था। 1914 मे वे धीरे-धीरे घटकर 50 प्रतिशत तक आ गये क्योंकि इस बीच इंजीनियरिंग तथा रासायनिक चीजों का भाग बढ चुका था।

दो विश्व-युद्धों मे विदेश व्यापार

ब्रिटिश विदेश व्यापार को पहला गहरा धक्का प्रथम विश्व-युद्ध से लगा। प्रथम विश्व-युद्ध के बाद दो शक्तिशाली प्रतिद्वन्द्वियों—अमरीका व जापान—के मैदान मे आ जाने से विश्व व्यापार मे ब्रिटेन का भाग काफी घट गया। इन दो देशों के अतिरिक्त कनाडा तथा आस्ट्रेलिया भी आगे आ रहे थे। इसके अलावा प्रथम युद्ध के समाप्त होने के तुरन्त बाद अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के कुल परिमाण मे कमी भी आ रही थी। यह स्थिति तब और भी शोचनीय हो गयी जब 1930 की महान् मन्दी ने दुनिया को, जैसे बदला लेने की भावना से, झकझोर दिया।

मन्दी के वर्षों मे ब्रिटिश निर्यातों मे भारी कमी आयी। यह गिरावट इतनी अधिक थी कि भौतिक अर्थों (physical terms) मे तो 1914 मे प्राप्त निर्यात स्तर वापस 1950 मे जाकर ही प्राप्त किया जा सका। 1930 के बाद के वर्षों मे अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार मे ब्रिटेन का भाग भी घटकर 10 प्रतिशत से भी कम रह गया था। द्वितीय विश्व युद्ध भी ब्रिटिश विदेशी व्यापार के लिए गहरा धक्का ही साबित हुआ। जब द्वितीय महायुद्ध समाप्त हुआ तो अमरीका वा विश्व के सर्वाधिक शक्तिशाली देश के रूप मे उदय हो चुका था।

ब्रिटेन ने 1945 के बाद निर्यात बढ़ाने के लिए आवश्यक कच्चे माल के आयातों को अधिमान (preference) देने की नीति अपना ली थी। ऐसा करने से अगले 7 वर्षों की अवधि मे ब्रिटिश निर्यातों मे लगभग 60 प्रतिशत की वृद्धि हुई। युद्धोत्तरकाल के वर्षों मे जहाँ एक और परम्परागत वस्तुओं के निर्यात मे कमी की प्रवृत्ति जारी रही, इंजीनियरिंग वस्तुओं के निर्यात मे भारी वृद्धि होती चली गयी। इसका परिणाम यह हुआ है कि जहाँ सूती वस्त्र तथा जहाजों के निर्यात म कमी आई है, वहीं बिजली के उपकरणों, मोटर कारों, हवाई जहाजों तथा रसायनों के निर्यात बढ गये हैं।

विश्व निर्यात बाजार मे नवीनतम प्रवृत्ति यह देखने मे आयी है कि औद्योगिक राष्ट्र भी भारी मात्रा मे मशीनों तथा इंजीनियरिंग सामानों का आयात करने लगे हैं। यहाँ तक कि अमरीका भी ऐसी चीजें निरन्तर खरीद रहा है। अपने आपको

अच्छी स्थिति में रखने के उद्देश्य से अब ब्रिटेन ने भी यूरोपीय साझा बाजार की सदस्यता स्वीकार कर ली है। इसी का नतीजा है कि अब ब्रिटेन में बनी चीजें पश्चिमी जर्मनी द्वारा भी खरीदी जा रही हैं।

अधिकांश ब्रिटिश विदेशी व्यापार निजी फर्मों द्वारा चलाया जाता है जिनका संचालन निर्यातक व्यापारी (export merchants) करते हैं। ये निजी फर्में अपनी चीजें अपने प्रतिनिधियों की मार्फत सम्बन्धित देशों में भेजती हैं। द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान तो देश का सम्पूर्ण विदेश व्यापार एक बार तो सरकार ने अपने हाथों में ही ले लिया था। किन्तु पुनः एक बार उसे निजी फर्मों के हाथों में सौंप दिया गया। अनेकों तटकरों तथा प्रतिबन्धित व्यावसायिक गतिविधियों, जिन पर युद्ध के दौरान प्रतिबन्ध लगा दिया गया था, को युद्ध समाप्त होने के बाद वापस हटा दिया गया या उनमें ढील दे दी गयी। कुछ अधिक महत्त्वपूर्ण विनिमय नियन्त्रण के उपायों (Exchange Control Measures) को जिन्हें कि युद्ध के दौरान लागू किया गया था, 1947 के विनिमय नियन्त्रण कानून (Exchange Control Act) में स्थायी रूप से सम्मिलित कर लिया गया।

विदेश व्यापार बढ़ाने के उपाय

(1) ब्रिटिश सरकार ने अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष तथा 'गाट' (General Agreement on Trade and Tariff) की सदस्यता स्वीकार करने के बाद कुछ आयातों पर लगे हुए प्रतिबन्धों को हटाने के लिए कदम उठाये थे। इन वस्तुओं का आयात करने के लिए निश्चित मात्राएँ (Quota) तय कर दी गयी थी। लेकिन स्टर्लिंग क्षेत्र के बाहर के देशों को किये जाने वाले अनेक निर्यातों तथा कुछ अन्य देशों से किये जाने वाले आयातों पर प्रतिबन्ध अभी तक लगे हुए हैं।

(2) बोर्ड ऑफ ट्रेड (Board of Trade), जिसे आयातों व निर्यातों को प्रतिबन्धित करने व नियमित करने का अधिकार प्राप्त है, भी निर्यात संवर्द्धन में सहायता करता है। अधिकांश राष्ट्रकुल देशों (Commonwealth Countries) में व्यापार आयुक्त (Trade Commissioners) नियुक्त किये गये है जो बोर्ड ऑफ ट्रेड के प्रति उत्तरदायी है। उनका काम इन राष्ट्रकुल के देशों में ब्रिटिश निर्यातकों की सहायता करना है।

(3) एक अन्य महत्त्वपूर्ण संस्था जिसे विदेशी विपणन निगम (Overseas Marketing Corporation) के नाम से जाना जाता है, 1967 में स्थापित की गयी थी जो ब्रिटिश निर्यातकों की नये बाजारों की खोज करने में सहायता करती है।

(4) निर्यात संवर्द्धन के लिए अन्य महत्त्वपूर्ण संस्थाओं में निर्यात साख गारण्टी विभाग (Export Credits Guarantee Department), पश्चिमी गोलार्द्ध निर्यात समिति (Western Hemisphere Exports Council), तथा यूरोपीय देशों के लिए निर्यात परिषद् (Exports Council for Europe) सम्मिलित है। राष्ट्रकुल के देशों में ब्रिटिश वस्तुओं के निर्यात को बढ़ाने के उद्देश्य से 1964 में

एक राष्ट्रमण्डल निर्यात परिषद् (Commonwealth Export Council) भी गठित की गयी थी।

यह ब्रिटेन जैसे लघुकाय राष्ट्र के लिए बडे गर्व की बात है कि विश्व जनसख्या मे उसकी आवादी 2 प्रतिशत के लगभग होने पर भी अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार मे उसका भाग 1979 मे भी 10 प्रतिशत के लगभग है। ब्रिटिश अर्थव्यवस्था मे अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का कितना महत्त्वपूर्ण स्थान है यह तो इसी से स्पष्ट हो जाता है कि 1977 के राष्ट्रीय उत्पाद मे निर्यातित वस्तुओ का भाग 30% था।[1] विश्व व्यापार मे आज भी ब्रिटेन का स्थान (1979 मे) पाँचवाँ है। 1977 मे ब्रिटेन ने विश्व भर मे खरीदे गये कच्चे माल का लगभग 9 प्रतिशत खरीदा व लगभग इतना ही निर्मित माल दुनिया के विभिन्न देशो को निर्यात किया।

[1] Britain 1977, *An Official Handbook*, 190

था। हवाई-अड्डो को भी राष्ट्रीयकृत कर दिया गया। नागरिक उड्डयन मंत्री (Civil Aviation Minister) को यात्री भाडो, यात्रा सुविधाओ, सुरक्षा आदि मामलो मे सलाह देने के उद्देश्य से एक वायु यातायात सलाहकार परिषद् गठित की गई।

(6) लोहा व इस्पात का राष्ट्रीयकरण—अनुदार दल ने इस कदम का डट कर विरोध किया। सरकार ने भी पहले तो कुछ हिचकिचाहट प्रदर्शित की किन्तु बाद मे इसे भी राष्ट्रीयकृत करने का निर्णय ले लिया गया।

(7) दूर सचार साधनो पर राज्य का स्वामित्व—लेबर दल की सरकार का मत था कि दूर सचार (Telecommunications) के साधनो पर सरकार का ही स्वामित्व होना चाहिये। यह अब तक केबल एण्ड वायरलैस लिमिटेड के हाथ म थे। सरकार ने अशधारियो को क्षतिपूर्ति की रकम देकर कम्पनी की शेयर पूंजी पर अपना वर्चस्व स्थापित करने का निर्णय किया। इस सारे सगठन को पोस्ट-मास्टर जनरल के नियन्त्रण मे रख दिया गया।

समाज सुधार की योजनाएँ (Social Amelioration Schemes)

लेबर दल की सरकार ने अपने आप को मुख्य उद्योगो का राष्ट्रीयकरण करने तक ही सीमित नही रखा। निम्न मुख्य विधेयक पारित किये गए—

(1) परिवार भत्ता विधेयक, 1945—इस विधेयक द्वारा स्कूल जाने वाले बच्चो के परिवार मे मा को साप्ताहिक भत्ता देने का प्रावधान किया गया।

(2) राष्ट्रीय बीमा योजना, 1946—इस विधेयक मे घायल हो जाने वाले श्रमिको के लिए अधिक मुआवजे की व्यवस्था तथा उनकी मृत्यु हो जाने पर उनके आश्रितो को अधिक मुआवजा देने का प्रावधान किया गया।

(3) अन्य समाज सुधार विधेयक—राष्ट्रीय स्वास्थ्य सेवा विधेयक 1946 म पारित किया गया। उसी वर्ष एक और राष्ट्रीय बीमा विधेयक (National Insurance Act) भी और पारित किया गया। 1948 मे राष्ट्रीय सहायता विधेयक (National Assistance Act) भी पारित किया गया।

बीसवी शताब्दी के दौरान इग्लैण्ड मे सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण बात यह रही कि इस अवधि में आर्थिक गतिविधियो मे राज्य का नियन्त्रण निरन्तर बढता चला गया है। यह समझ मे न आने वाली बात थी कि युद्ध के दौरान राष्ट्रीय आर्थिक जीवन के प्रत्येक पहलू पर राज्य का नियन्त्रण होना चाहिए था और किसी ने इसका विरोध भी नही किया। किन्तु 1945–51 के वर्षो के दौरान लेबर दल की सरकार द्वारा कुछ मुख्य उद्योगों का राष्ट्रीयकरण करने के लिए उठाये गए कदमो का कजरवेटिव दल ने जोरदार विरोध किया।

किन्तु राजकीय नियन्त्रण मे उत्तरोत्तर वृद्धि की प्रवृत्ति इतनी मजबूत बन चुकी थी कि 1951 मे जब पुन एक बार कजरवेटिव दल की सरकार सत्ता मे लौटी तो सर विंस्टन चर्चिल के नेतृत्व वाली इस सरकार ने भी अपनी पहले वाली सरकार की नीतियो को उलट देने का काम नही किया। इसने कुछ परिवर्तन अवश्य किये जैसे

लोहा व इस्पात उद्योग के राष्ट्रीयकरण को रद्द कर दिया गया तथा इस उद्योग को आयरन एण्ड स्टील बोर्ड के सामान्य निरीक्षण मे रख दिया। इसी तरह सडक परिवहन भी निजी क्षेत्र को लौटा दिया गया। पाँच यातायात कार्यकारियो (Five Transport Executives) को समाप्त कर दिया गया तथा उनका काम यातायात आयोग को स्थानान्तरित कर दिया गया। किन्तु कजरवेटिव दल की सरकार ने लेबर दल की सरकार द्वारा उठाये गये सामाजिक उपायो को उलट-पुलट नही किया। ये उपाय दलीय हितो से ऊपर माने गये। युद्ध के ही वर्षो मे ब्रिटिश प्रधानमन्त्री ने लॉर्ड बेवेरिज को सामाजिक सुरक्षा का एक व्यापक कार्यक्रम तैयार करने के लिए आमन्त्रित किया था तथा उनकी वह योजना 1948 से अस्तित्व मे आ चुकी थी।

युद्धोत्तरकालीन नियन्त्रण (Post-war Controls)

(1) **लगान**—प्रथम विश्व युद्ध के समय से ही लगान व भाडो पर नियन्त्रण लगे हुए थे। किन्तु यह एक पेचीदा व्यवस्था थी। 1957 मे तत्कालीन कजरवेटिव दल की सरकार ने इनको आशिक रूप से नियन्त्रण से बाहर कर दिया।

(2) **भवनो पर नियन्त्रण**—युद्ध मे हुई तबाही के कारण लाखो लोग बेघर हो गये थे। उधर भवन बनाने के लिए आवश्यक सामग्री की कमी थी। यह माना गया कि मकानो का निर्माण अन्य भवनो के पुनर्निर्माण से अधिक जरूरी है। 1956 के बाद यह स्थिति काफी सुधर चुकी थी तथा अन्य भवनो के निर्माण की अनुमति भी दी जाने लगी थी।

(3) **अनाज राशनिंग की समाप्ति**—युद्ध के प्रारम्भिक वर्षो मे खाद्य पदार्थों की कमी हो जाने से उनका राशनिंग करना अनिवार्य हो गया था। खाद्य मन्त्रालय ने अनेक खाद्य पदार्थों के मूल्य निश्चित कर दिये थे तथा उन्हे सस्ता रखने के लिए अनुदान भी दिये थे। किसानो को उत्पादन बढाने के लिए भी अनुदान देने की व्यवस्था की गयी। खाद्य पदार्थों पर से राशनिंग व्यवस्था 1954 मे हटा ली गयी। 1954 मे खाद्य मन्त्रालय भी समाप्त कर दिया गया तथा उसके काम कृषि मन्त्रालय को हस्तातरित कर दिये गए।

(4) **पैट्रोल व विदेश यात्रा पर से प्रतिबन्धो का हटाया जाना**—लोगो द्वारा उपयोग किये जाने वाले पैट्रोल पर युद्ध के वर्षों मे प्रतिबन्ध लगाये गये थे इन्हे 1950 मे हटा लिया गया। विदेश यात्रा के लिए दिया जाने वाला भत्ता भी 1954 के बाद काफी बढा दिया गया।

(5) **औद्योगिक व व्यावसायिक गतिविधियो पर छूट**—शेयर पूंजी के निर्गमन पर युद्ध के दौरान प्रतिबन्ध लगा दिये गये थे। नई तथा पहले से विद्यमान कम्पनियाँ पहले सरकारी अनुमति प्राप्त करने के बाद ही शेयर जारी कर सकती थी। कई कम्पनियो के लिए कच्चे माल का आयात करने के लिए सरकारी अनुमति प्राप्त करना भी कठिन बन गया था। 1953 मे इन प्रतिबन्धो मे कुछ ढील दी गई तथा वर्ष भर मे कुल मिलाकर 50 000 पौंड से अधिक के शेयर जारी करने पर ही सरकारी अनुमति लेना आवश्यक रखा गया। एक के बाद एक, कच्चे माल के आयात

पर लगे हुए प्रतिबन्धो को भी, जैसे-जैसे स्थिति मे सुधार हुआ, हटा लिया गया। अखबारी कागज की राशनिंग के रूप मे लगा हुआ अन्तिम प्रतिबन्ध भी 1957 म हटा लिया गया।

एकाधिकारिक प्रवृत्तियो का विकास अर्थव्यवस्था के लिए हानिकारक माना गया। 1948 मे एक एकाधिकारी एव प्रतिबन्धात्मक व्यापार प्रथाएँ विधेयक (Monopolies and Restrictive Trade Practices Act) पारित किया गया जिसके अन्तर्गत एक एकाधिकार आयोग (Monopolies Commission) की स्थापना की गयी। इस आयोग को उद्योग तथा व्यापार के क्षेत्र मे एकाधिकार स्थापित करने की शिकायतो पर विचार करने का अधिकार प्रदान किया गया। यदि यह पाया जाता कि कोई एक फर्म किसी उद्योग विशेष मे हो रहे उत्पादन के एक-तिहाई से अधिक भाग पर नियन्त्रण करती है, तो आयोग उस मामले को बोर्ड ऑफ ट्रेड के सामने रखने के लिए बाध्य था। इस प्रकार के एकाधिकार को रोकने के लिए नियम बनाये जा सकते थे।

औद्योगिक कुशलता को बढाने की दृष्टि से 1947 के औद्योगिक विकास एव सगठन अधिनियम के अन्तर्गत विकास परिषदें (Development Councils) गठित करने का निर्णय किया गया। इन परिषदो के सदस्यो मे मालिको, मजदूरो व आम जनता के प्रतिनिधि होते थे। शोषित श्रमिको (Sweated labour) की प्रथा की जाँच पडताल करने तथा वेतन वृद्धि की उचित मागो पर विचार करने के उद्देश्य से मजदूरी परिषदे (Wage Councils) भी गठित की गयी। इन मजदूरी परिषदो द्वारा इनसे पहले 1909 व 1918 मे स्थापित ट्रेड बोर्डो (Trade Boards) का स्थान लिया जाना था।

व्यापार सन्तुलन (Balance of Trade)

युद्ध से पहले इग्लैण्ड के दृश्य आयात (visible imports) हमेशा ही उसके दृश्य निर्यातो (visible exports) से अधिक होते थे। ऐसी स्थिति मे सन्तुलन की स्थापना उसके अदृश्य निर्यातो (invisible exports) से प्राप्त होने वाली राशि, जिसमे विदेशो मे किये हुए ब्रिटिश पूँजी विनियोग पर मिलने वाला ब्याज व लाभाश (interest and dividend), ब्रिटिश जहाजी कम्पनियो की आय, ब्रिटिश बीमा कम्पनियो द्वारा अर्जित लाभ तथा ब्रिटिश बैंको द्वारा ससार भर मे अपनी सेवाएँ देने के स्थान पर मिलने वाली कटौती-रकम (discount) सम्मिलित थी, से किये जाते थे। युद्ध के बाद युद्ध के कारण पडे वित्तीय भार तथा ब्रिटिश जहाजो बेडे म आयी कमी ने मिलकर ब्रिटेन के इन अदृश्य निर्यातो (invisible exports) से प्राप्त होने वाली आय को काफी कम कर दिया। अब यह स्पष्ट हो चला था कि दृश्य आयातो व निर्यातो (visible imports and exports) के बीच का अन्तर केवल दृश्य निर्यातो मे वृद्धि करके ही कम किया जा सकता है। निर्यातो को बढाने की दृष्टि से अर्थव्यवस्था पर कई नियन्त्रण आरोपित किये गय। इस काम म इसलिए दोहरी कठिनाई हो रही थी कि युद्ध के परिणामस्वरूप अन्य अनेक देशो को भी भारी नुकसान उठाना पडा था

तथा वे ब्रिटिश वस्तुएँ खरीद पाने की स्थिति में नहीं रह गये थे। इसके अतिरिक्त आयातों पर लगे हुए प्रतिबन्धो तथा कोटा प्रणालियो (quota systems) के कारण भी निर्यात वृद्धि के मार्ग मे रुकावट आती थी।

इस बीच दो ऐसी महत्त्वपूर्ण बातें हुई जिन्होने ब्रिटिश निर्यातो तथा उसकी भुगतान सतुलन की स्थिति की सहायता की। पहली घटना कनाडा व आस्ट्रेलिया जैसे राष्ट्र कुल के देशो से उसे उदार भेंट व अनुदान के रूप मे अनेक वस्तुएँ व रकम प्राप्त होना रही। दूसरी घटना जिसने ब्रिटिश अर्थव्यवस्था को पुनर्जीवित करने मे सहायता की, वह उसे अमरीका द्वारा मार्शल योजना (Marshall Plan) के अन्तर्गत दी गई भारी सहायता थी। इस तरह द्वितीय महायुद्ध के बाद के वर्षो मे ब्रिटिश निर्यात व्यापार की समृद्धि का युग 1957 के बाद आरम्भ हुआ।

किन्तु 1960 व 1970 के दशको मे ब्रिटेन के सामने अनेक वित्तीय व अन्य प्रकार के सकट आते रहे हैं। ऐसी सबमे पहली कठिनाई पौड स्टर्लिंग (Pound Sterling) के मूल्य मे गिरावट के रूप में उपस्थित हुई। इसे निपटाने के लिए कई बार अवमूल्यन किये गये। दूसरी कठिनाई 1973 म तब उपस्थित हुई जब तेल उत्पादक एव निर्यातक राष्ट्रो (O P E C) ने एक होकर तेल मूल्यो को तिगुना-चौगुना बढा दिया। इन कठिनाइयो तथा और भी अनेक कठिनाइयो के बावजूद ब्रिटिश अर्थव्यवस्था का कार्य बुरा नही रहा है। अब वह एक कल्याणकारी राज्य (Welfare State) बन चुका है जो कभी उसके समाजवादी चिंतको का स्वप्न रहा था अधिकाश आम लोग समृद्धि का जीवन जी रहे हैं तथा गरीबी को काफी सीमा तक घटा दिया गया है। ब्रिटिश शिक्षा व्यवस्था भी काफी फैल चुकी है। 1973 के बाद के पिछले चार-पाच वर्षों को अगर छोड दिया जाए तो ब्रिटिश अर्थव्यवस्था मे बेकारी लगभग नही के बराबर रही है। ब्रिटिश अर्थव्यवस्था आज भी निर्यातोन्मुखी (export oriented) बनी हुई है। आज की दुनिया मे मौजूद अनेको बहुराष्ट्रीय निगम ब्रिटिश मूल के हैं।

ब्रिटिश उद्योगो ने वायुयान-निर्माण के क्षेत्र में भारी प्रगति की है (नवीनतम मॉडल कॉनकोर्ड का है) जिनमे अनेक प्रकार के विमान शामिल है। कारें बनाने व उनका निर्यात करने, बिजली का साज-सामान बनाने, मोटर साइकिलें तैयार करने व युद्ध पोतो तथा व्यापारिक जहाजो का निर्माण करने मे भी ब्रिटिश उद्योगो ने भारी उन्नति की है। औद्योगिक कार्यों के लिए परमाणु ऊर्जा का उपयोग करने वाले विश्व के देशो मे भी ब्रिटेन अग्रणी रहा है।

ब्रिटेन का यूरोपीय साझा बाजार (E C M) मे प्रवेश

युद्धोत्तरकालीन वर्षों की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण आर्थिक घटना ब्रिटेन द्वारा यूरोपीय साझा मण्डी (European Common Market) मे प्रवेश की रही है। जबसे 1958 मे यूरोपीय साझा मण्डी का गठन हुआ है तभी से आर्थिक प्रेक्षक इस मत के रहे कि ब्रिटेन का इस मण्डी मे प्रवश उसकी आर्थिक विकास दर को तीव्र कर सकता है तथा उसके सामने मुँह बाए खडे आर्थिक जडता के दुष्चक्र (vicious circle

of stagnation) को तोडने मे भी सहायक हो सकता है। साझा बाजार गठित करने के उद्देश्य थे सदस्य देशो के बीच मौजूद व्यापार बाधाओ (Trade barriers) को हटाना, सामान्य कृषि एव यातायात सम्बन्धी नीतियां तैयार करना, गैर सदस्य राष्ट्रों के साथ व्यापार करने के लिए एक सी नीतियां बनाना तथा साझा बाजार के सदस्य देशो के बीच स्वस्थ प्रतिस्पर्द्धा को बढावा देना। साझा बाजार की स्थापना युद्ध के बाद अमरीकी अर्थ-व्यवस्था के भीमकाय हो जाने के कारण उत्पन्न हुई चुनौती का सामना करने की दृष्टि से भी अनिवार्य बन गई थी।

आरम्भ मे ब्रिटेन ने यूरोपीय साझा बाजार मे सम्मिलित होने का प्रस्ताव ठुकरा दिया क्योंकि वैसा करने पर शायद उसे राष्ट्रकुल (Commonwealth) छोडना पडता। इसके अतिरिक्त वह एक राष्ट्र के रूप म अपना स्वतन्त्र अस्तित्व भी बनाए रखना चाहता था। इसलिए साझा बाजार का सदस्य बनने की जगह सात देशो ने मिलकर एक प्रतिद्वंद्वी सगठन यूरोपीय मुक्त व्यापार क्षेत्र (European Free Trade Area) का गठन किया। किन्तु जब यूरोपीय मुक्त व्यापार क्षेत्र (E F T A) के तीन सदस्यो ने 1961–62 मे यूरोपीय साझा बाजार की सदस्यता स्वीकार कर ली तो ब्रिटेन के सम्मुख पुन साझा बाजार का सदस्य बनने न बनने की उलझन उठ खडी हुई। पश्चिमी जमनी की बढती जा रही आर्थिक शक्ति का मुकाबला करने तथा अमरीका की आर्थिक सुदृढता के सामने ठहर पाने की दलीलो को लेकर कुछ प्रमुख अर्थशास्त्रियो द्वारा ब्रिटेन के साझा बाजार का सदस्य बन जाने का समथन किया। उनका मानना था कि अगर ब्रिटेन यूरोपीय साझा बाजार का सदस्य बन जाता है तो ब्रिटिश उद्योगो को काफी विशाल बाजार उपलब्ध हो जाएगा। इस के पक्ष मे और भी कई आर्थिक तर्क प्रस्तुत किये गये।' यूरोपीय साझा बाजार की सदस्यता इस तरह ब्रिटिश उद्योगो पर दो प्रभाव डालेगी। वह हमे अपने प्रयास उन चीजो पर केन्द्रित करने के लिए बाध्य कर देगी जिन्हे हम सबसे अच्छे तरीके से कर सकते हैं और वह उन चीजो को हमारे द्वारा और भी अधिक कुशलतापूर्वक किये जाने को बढावा देगी और इसलिए वह हमारे लिए अधिक लाभ का सौदा भी रहेगा। अन्त में जाकर हम आर्थिक दृष्टि से लाभ मे रहेगे या हानि म, यह दो बातो पर निर्भर करेगा वह दर जिसके हिसाब से सम्पूर्ण यूरोपीय साझा बाजार मे वस्तुओ के लिए माग बढेगी तथा अन्य यूरोपीय प्रतिद्वंद्वियो (Continental Rivals) की तुलना मे हमारे अपने उद्योगो की कार्य-क्षमता किन्तु यूरोपीय साझा बाजार की सदस्यता स्वीकार कर लेने से हम कुछ हानि और कुछ लाभ होंगे लेकिन उससे अलग बैठे रहने से तो केवल हानि ही हानि होनी है।'

किन्तु जो लोग ब्रिटेन द्वारा यूरोपीय साझा बाजार मे प्रवेश का विरोध करते थे उनके द्वारा यह दलील दी गयी कि ऐसा करने से खाद्य पदार्थ मँहगे हो जायेंगे क्योंकि फिर ब्रिटेन उन्हे यूरोपीय आर्थिक समुदाय (European Economic Community) से ही मँगवाने के लिए बाध्य हो जायेगा जबकि वे उसे अब तक राष्ट्रकुल के देशो से सस्ते मिलते रहे हैं और खाद्य पदार्थ ब्रिटेन द्वारा आयातित वस्तुओ में काफी महत्त्वपूर्ण मद हैं। इसके अलावा ब्रिटिश नीतियो मे राजकीय

नियमन (State Regulation) की आवश्यकता साझा बाजार के अन्य सदस्य देशो द्वारा अपनायी जाने वाली नीतियो के मुकाबले अधिक किया जाता है। अर्थशास्त्री आर० एफ० हैरोड (R. F Harrod) ने तर्क दिया कि यदि ब्रिटेन साझा बाजार की सदस्यता स्वीकार कर लेता है तो उससे राष्ट्रकुल के अर्द्ध-विकसित सदस्य देशो को हानि होगी।

साझा बाजार मे प्रवेश

लेकिन इन साझा बाजार प्रवेश विरोधी तर्को को अनदेखा करते हुए तथा अपने प्रवेश को लेकर फ्रांस द्वारा किये जा रहे प्रतिरोध को शान्त करते हुए अन्तत. 1 जनवरी 1973 को ब्रिटेन ने यूरोपीय साझा बाजार मे प्रवेश कर लिया। ब्रिटेन द्वारा साझा बाजार की सदस्यता स्वीकार करने के बाद उसकी सदस्य सख्या नौ की हो चुकी है। अब सुविस्तृत यूरोपीय आर्थिक समुदाय की कुल जनसख्या अमरीका तथा रूस, दोनो ही महाशक्तियो की आबादी से अधिक है। समुदाय अब विश्व की दूसरी बडी आर्थिक व औद्योगिक शक्ति बन गया है। पहला स्थान अभी भी सयुक्त राज्य अमरीका का है। विश्व व्यापार मे यूरोपीय आर्थिक समुदाय का भाग, ब्रिटेन द्वारा उसकी सदस्यता स्वीकार कर लिये जाने के बाद, अब बढकर 40 प्रतिशत तक जा पहुँचा है।

यूरोपीय आर्थिक समुदाय के ये नौ सदस्य देश अब अधिक नजदीकी राजनीतिक सम्बन्ध भी कायम करने की दिशा मे प्रयत्नशील हैं। इन देशो के राज्याध्यक्ष समय-समय पर मिलते रहकर आपसी समस्याओ का निपटारा भी करते रहते है तथा भावी नीति की रूपरेखा भी तैयार करते है। सयुक्त यूरोप (United Europe) का विचार अब कोई असम्भव बात नही रह गयी है। ब्रिटेन का भाग्य भी अब समुदाय के भाग्य के साथ जुड गया है।

ब्रिटिश अर्थव्यवस्था के सामने मुख्य समस्याए

(1) **मुद्रा स्फीति**—मजदूरी, मूल्य तथा आय पर नियन्त्रण रखने के अपने समस्त प्रयासो के बावजूद ब्रिटिश अर्थव्यवस्था मे, विशेष रूप से 1973 की तेल मूल्य वृद्धि के बाद, स्फीति की गति अनियन्त्रित-सी हो गयी है। इग्लैण्ड के समुद्र तट पर खनिज तेल की नई खोज, जिनसे कि 1980 तक देश के आत्मनिर्भर हो सकने की सम्भावनाएँ व्यक्त की जा रही है, से कुछ आशा बनती है।

(2) **विकास की दर मे तेजी लाना**—इस काम के लिए उत्पादकता मे भारी सुधार तथा औद्योगिक कार्य कुशलता मे भारी वृद्धि की आवश्यकता है। यह एक आम शिकायत है कि ब्रिटिश उद्योग अपने आपसे सन्तुष्ट है तथा वह अपनी प्रगति की धीमी दर के बारे मे विशेष चिंतित नही है। शायद 1950 के बाद के अनेक वर्षों तक जडता की स्थिति मे रहने (ब्रिटिश अर्थव्यवस्था) के पीछे यही कारण रहा था।

(3) **प्रतिकूल भुगतान सन्तुलन**—ब्रिटिश निर्यातो मे तीन प्रतिशत वार्षिक

से भी कम की दर से वृद्धि हो रही है जबकि उसके आयात 4 प्रतिशत से भी अधिक बढ़ रहे हैं। इस प्रकार आयात व निर्यात के बीच इस अन्तर ने व्यापार घाटे को काफी गम्भीर बना दिया है। इस स्थिति को स्थायी रूप से ठीक करने के लिए ब्रिटिश निर्यातों की प्रतिस्पर्द्धात्मकता (competitiveness) को काफी हद तक बढ़ाना जरूरी हो गया है।

(4) **बेकारी व श्रम असन्तोष**—1970 के दशक के आरम्भ से ही ब्रिटिश अर्थव्यवस्था में बेरोजगारी की एक नई लहर आने लगी थी। एक समय तो यह बेकारी कुल रोजगार का 8 प्रतिशत से भी अधिक हो गयी थी। इस समस्या के साथ एक और समस्या भी जुड़ गयी और वह थी मजदूरी बढ़ाने की माँगों को लेकर की जाने वाली हड़तालों के कारण पैदा हो रहे श्रम असन्तोष की समस्या 1976 के बाद मजदूरी का जमा देने (Wage Freeze) के प्रयास किये गये। 20 जुलाई 1977 को ब्रिटिश प्रधानमन्त्री जेम्स कैलेहन (James Callaghan) ने हाऊस ऑफ कॉमर्स को सूचित किया कि औद्योगिक अशान्ति की एक नई स्थिति उत्पन्न हो गयी है। ऐसा शायद इसलिए हुआ है कि '1978 के बाद देश में कहीं भी किसी वेतन-वृद्धि को लागू नहीं किया जाएगा" यह कि इस प्रकार सरपट दौड़ते हुए वेतन-वृद्धि निर्णयों से देश में मूल्य वृद्धि के एक नये दौर की शुरुआत हो जायेगी। 1975 में 30 प्रतिशत से भी अधिक की बेहूदा (absurd) वेतन वृद्धियों की याद अभी भी हमारे मस्तिष्क में ताजा है जिन्हें हमने स्वीकार किया था किन्तु जो उन लोगों के जीवन-स्तर को सुधारने में असफल रही जिन्होंने उन्हें पा लिया था।'

प्रधानमन्त्री कैलेहन ने आगे कहा कि '1973 के तेल संकट तथा उसके परिणामस्वरूप हुई अभूतपूर्व मूल्य वृद्धियों ने इस देश की परिस्थितियों में अन्य देशों की ही भाँति आधारभूत परिवर्तन किये हैं हम अपना जीवन स्तर अपने स्वयं के प्रयासों द्वारा ही सुधारने की सम्भावनाओं पर ध्यान देना चाहिए।' साथ ही, 'सार्वजनिक क्षेत्र की किसी भी शाखा में अत्यधिक मजदूरी का अर्थव्यवस्था के शेष भाग पर प्रभाव पड़े बिना नहीं रहेगा उनके परिणामस्वरूप मूल्यों में वृद्धि होगी—जो स्फीति के विरुद्ध किये जा रहे संघर्ष पर एक प्रत्यक्ष चोट होगी। मैं मौजूदा मुश्किलों को कम बताने की चेष्टा नहीं कर रहा हूँ, 1974 में प्रसारित लेबर दल के चुनाव घोषणा पत्र में बतायी गयी मुश्किलों से बिल्कुल भी कम नहीं, जबकि देश के सामने पिछले अनेक वर्षों की तुलना में सबसे गम्भीर संकट उपस्थित हो गया था।'

'हमारा समाज एक ऐसा समाज होगा जिसमें जिनके पास साधन हैं वे उनका त्याग करेंगे ताकि उन्हें उन लोगों को उपलब्ध कराया जा सके जिनके पास कुछ भी नहीं है। मेरा विश्वास है कि हमारा समाज ब्रिटेन के औद्योगिक भविष्य के लिए एक आधार प्रदान करने में सक्षम होगा तथा हमें संयुक्त प्रयासों द्वारा हमारे अपने ही राष्ट्र के निर्माण के काम को सफलतापूर्वक पूरा करने के लिए योग्य बनायेगा।'

आर्थिक आयोजन की ओर

द्वितीय महायुद्ध के बाद ब्रिटेन धीरे-धीरे अपनी अर्थव्यवस्था के नियोजित

विकास की ओर अग्रसर होता रहा है। देश के आर्थिक मामलो की नियोजित रूप से प्रगति को प्रोत्साहित करने के लिए अनेको विभाग तथा संस्थाएँ स्थापित की गयी है। 1961 मे राष्ट्रीय आर्थिक विकास परिषद् (National Economic Development Council) की स्थापना की गयी ताकि वह निजी व सरकारी क्षेत्र मे चल रही प्रवृत्तियो की जाच पडताल करे। राष्ट्रीय आर्थिक विकास परिषद् को उन फलदायी उपायो का सुझाव देने की जिम्मेदारी भी सौंपी गयी जिनसे कि देश के ससाधनो का सर्वोत्तम उपयोग किया जा सकता था। 1964 मे परिषद् का स्वरूप पूरी तरह से बदल दिया गया तथा उसे उद्योगो के सर्वागीण विकास के लिए एक योजना बनाने तथा उसे लागू करने का काम सौपा गया। अपनी स्थापना के बाद से ही अर्थव्यवस्था की कार्यशीलता पर अनेक आर्थिक प्रतिवेदनो का प्रकाशन कर परिषद् ने अत्यधिक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

दूसरी महत्त्वपूर्ण आयोजन सस्था आर्थिक मामलो का विभाग (Department of Economic Affairs) है जिसे 1964 मे स्थापित किया गया था। इसके कार्य आयोजन से सम्बन्धित गतिविधियों का समन्वय करना तथा उनकी निगरानी (supervision) करना है। उद्योगो, आमदनियो तथा मूल्यो के बारे मे नीतियो का निर्धारण करते समय यह विभाग नियोक्ताओ व कर्मचारियों, दोनो ही के प्रतिनिधियो के साथ मिलकर मुद्दे तय करता है। इस विभाग के पाँच उपखण्ड हैं

(i) आर्थिक आयोजन खण्ड

(ii) आर्थिक समन्वय खण्ड (घरेलू).

(iii) आर्थिक समन्वय खण्ड (वैदेशिक),

(iv) क्षेत्रीय नीति खण्ड,

(v) औद्योगिक नीति खण्ड।

पिछले कुछ वर्षो से क्षेत्रीय नियोजन (regional planning) पर काफी जोर दिया जा रहा है। इस कार्य के लिए क्षेत्रीय आर्थिक आयोजन बोर्ड (Regional Economic Planning Boards) गठित किये गये है। किन्तु यहाँ यह समझ लेना महत्त्वपूर्ण है कि आयोजन को बजट उपायो (budgetary measures) तक ही सीमित रखा गया है तथा ब्रिटिश अर्थव्यवस्था मूल रूप से अभी तक भी मुक्त अर्थव्यवस्था (free economy) बनी हुई है।

दसवाँ अध्याय

आधुनिक अर्थव्यवस्था
(THE MODERN ECONOMY)

ब्रिटिश अर्थव्यवस्था[1] को उसके राष्ट्रीय उत्पाद मे निर्मित माल उद्योग (manufacturing) तथा सेवाओ[2] (services) से जाना जा सकता है जिनका कि कुल घरेलू आय मे भाग क्रमश 30 से लेकर 45 प्रतिशत तक आता है तथा उसे अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के महत्त्वपूर्ण होने से भी जाना जाता है। वस्तुओ व सेवाओ का निर्यात कुल घरेलू उत्पादन (Gross Domestic Product) का 30 प्रतिशत के लगभग है। ब्रिटेन विश्व व्यापार मे पाचवें स्थान पर है (अमरीका, पश्चिमी जर्मनी, जापान तथा फ्रास के बाद) तथा बाजार अर्थव्यवस्थाओ (market economies) के बीच हो रहे कुल व्यापार मे उसका हिस्सा 6 प्रतिशत के लगभग आता है। इगलैण्ड दुनिया भर मे निर्यात होने वाली प्राथमिक वस्तुओ (primary products) मे से लगभग 9 प्रतिशत भाग खरीदता है तथा निर्मित माल के प्रमुख निर्यातक देशो द्वारा तैयार माल के निर्यातो मे भी उसका योगदान 9 प्रतिशत के लगभग है।

1976 मे उत्तरी समुद्री तट पर तेल व प्राकृतिक गैस की खोज का देश की अर्थव्यवस्था पर आधारभूत प्रभाव पड रहा है। यह खोज वास्तव मे इतनी दूरगामी है कि 1980 के बाद यह ब्रिटेन को विश्व का प्रमुख खनिज तेल उत्पादक देश बना सकती है।

कृषि उत्पादकता

कृषि मे विद्यमान उत्पादकता के अत्यधिक उच्च स्तर के कारण ब्रिटेन अपनी खाद्य आवश्यकता का आधे से कुछ अधिक अपनी भूमि से ही पूरा कर लेता है जबकि उसकी कुल कार्यशील जनसख्या का केवल 2 7% भाग खेती के काम मे लगा हुआ है। कृषि मे जनसख्या का यह अनुपात विश्व के किसी भी अन्य औद्योगिक देश की तुलना मे कम है। शेष कृषि पदार्थों का आयात किया जाता है और ब्रिटेन गेहूँ, मास, मक्खन, पशुओ का चारा, फल, चाय, तम्बाकू तथा ऊन जैसी चीजो के विश्व के सबसे बडे आयातको मे से है। उसके अन्य आयातो मे कच्चा माल (जैसे कच्ची धातुएँ, क्रूड

[1] Britain 1977, *An Official Handbook*, 190–202

[2] इस सदर्भ मे सेवाओ मे यातायात, सदेशवाहन, वितरणात्मक व्यापार, बीमा, बैंकिंग, वित्तीय एव व्यावसायिक सेवाएँ, जन स्वास्थ्य, शिक्षा व अन्य सेवाएँ (लोक प्रशासन रक्षा तथा मकानो के स्वामित्व के अलावा) सम्मिलित की गई हैं।

ऑयल तथा इमारती लकडी) अर्द्ध निर्मित वस्तुएँ (जैसे रसायन, सूती धागे) व कुछ निर्मित वस्तुएँ भी सम्मिलित हैं।

ब्रिटेन अपनी विदेशी मुद्रा निर्मित माल के निर्यात तथा अदृश्य लेन-देन (invisible transactions) जैसे विदेशी विनियोग से प्राप्त आय, यात्रा, नागरिक उड्डयन, ब्रिटिश अधिकार वाले जहाजो, वित्तीय, बैंकिंग, बीमा कम्पनियाँ व अन्य सेवाओ से प्राप्त आय से अर्जित करता है। ब्रिटेन ससार के विमानो, मोटर कारो, बिजली के साज-सामानो, तैयार सूती वस्त्रो तथा अनेक प्रकार की मशीनो का निर्यात करने वाले सबसे बडे देशो मे से एक है। ब्रिटेन मे प्रति व्यक्ति कुल घरेलू उत्पाद मे 1965 से 1975 की दस वर्षो की अवधि म 19 प्रतिशत की वृद्धि हुई है।

ब्रिटिश भुगतान सतुलन में अदृश्य निर्यातो (invisible exports) के द्वारा किये जाने वाले भारी योगदान से यही सिद्ध होता है कि ब्रिटेन अभी भी विश्व का प्रमुख वित्तीय केन्द्र बना हुआ है। उसके बैंक, बीमा लेखाकार (insurance underwriters), दलाल व अन्य अनेक वित्तीय सस्थाएँ अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर वित्तीय सेवाएँ प्रदान कर रहे है। लन्दन शहर मे शायद दुनिया की सबसे आधुनिक व विशाल मण्डी उपलब्ध है।

अर्थव्यवस्था की पिछली विकास उपलब्धियाँ

अठारहवी व उन्नीसवी सदी मे हुई औद्योगिक क्रांति के परिणामस्वरूप ब्रिटेन विश्व के पहले औद्योगिक राष्ट्र के रूप में तथा यातायात के नये साधनो, सदेशवाहन व तकनीकी के क्षेत्र मे अगुवा राष्ट्र के रूप मे उभरा। विश्व भर मे निर्माता, व्यापारी, बैंकर तथा विनियोजक के रूप मे उसने नेतृत्व की स्थिति प्राप्त की तथा अपनी तेजी से बढती हुई जनसख्या को अर्थव्यवस्था का विकास तीव्र गति से कर सहारा दिया। 1870 से 1890 तक ब्रिटिश उद्योग स्पष्ट रूप से विश्व के किसी भी अन्य देश की तुलना मे आगे रहे। 1890 से लेकर 1914 तक यूरोप के देशो व अमरीका के साथ प्रतिस्पर्द्धा अत्यधिक बढ चुकी थी किन्तु इस प्रतिस्पर्द्धा का ब्रिटेन पर कोई विशेष प्रभाव इसलिए नही पडा कि इस अवधि मे विश्व व्यापार के परिणाम मे अत्यधिक वृद्धि हो गई थी तथा इसके अतिरिक्त ब्रिटेन को उसके विदेशी विनियोगो पर भारी मात्रा मे प्रतिफल प्राप्त हो रहे थे।

प्रथम विश्व युद्ध के समाप्त हो जाने पर ब्रिटेन के पुराने उद्योगो को अत्यधिक बढी हुई प्रतिस्पर्द्धा का सामना करना पडा। उदाहरण के लिए, कोयला व लोहा उद्योग मे यूरोप के साथ तथा सूती वस्त्र के उत्पादन मे पूर्वी देशो के साथ उसका मुकाबला कडा रहा जहाँ श्रम सस्ती दरो पर उपलब्ध था। 1929 मे आयी आर्थिक महान् मन्दी ने स्थिति को और भी कठिन बनाया इसके साथ ही सम्बन्धित देशो द्वारा आयात घटाने के प्रयासो से ब्रिटेन की कठिनाइयाँ और भी बढ गयी। ब्रिटेन मे इसका प्रभाव, जैसा कि उसके अन्य साथी देशो पर भी रहा, यह पडा कि वहाँ बेरोजगारी भयकर रूप से बढ गयी।

1932 के बाद फिर एक बार उत्पादन व रोजगार के स्तर बढने लगे। इसके

बाद वाले दशक मे वाहनो, बिजली, रसायन व विमान निर्माण उद्योगो का तेजी के साथ विकास हुआ तथा देश मे इन्ही दिनो बने 30 लाख मकानो के कारण भवन निर्माण एव सहायक उद्योगो मे काफी तेजी आयी।

द्वितीय महायुद्ध व उसके बाद

द्वितीय विश्व-युद्ध के दौरान (1939–45) युद्ध प्रयासो को दृष्टिगत रखते हुए सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था मे तीव्र एव दूरगामी परिवर्तन किये गये तथा इसके लिए केन्द्रीय आयोजन का सहारा लिया गया। इस तरह अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्रिया-कलापो मे जो राजकीय हस्तक्षेप अनिवार्य बन गया वह, कुछ सशोधनो के साथ, ब्रिटिश आर्थिक प्रणाली का स्थायी स्वरूप बन चुका है।

अमरीका व कनाडा द्वारा दी गई उदार सहायता के उपरान्त, जहाजो के तहस नहस हो जाने, बमबारी होने, औद्योगिक रख-रखाव तथा पुरानी या ध्वस्त हो चुकी मशीनो को बदलने की आवश्यकता के कारण ब्रिटेन की निजी घरेलू पूँजी मे करीब 3,000 मिलियन पौण्ड की कमी आ गई थी। लगभग 1,000 मिलियन पौण्ड की लागत वाले विदेशी प्रतिष्ठानो को बेच दिया गया जिनमे से आधे उत्तरी अमरीका मे थे। लगभग 3 000 मिलियन पौण्ड मूल्य के नये अन्तर्राष्ट्रीय ऋण लिये गये। इस बीच निर्यात काफी घट गये थे।

युद्ध समाप्त हो जाने के बाद जैसे जैसे नागरिक उपभोग्य वस्तुओ का उत्पादन बढा तथा व्यापार का पुनरुद्धार होने लगा वैसे-वैसे राशनिंग व अन्य नियन्त्रणो को ढीला किया गया। अधिकाश आयातो पर लगे हुए मात्रात्मक नियन्त्रणो (quantitative controls) को हटा लिया गया, स्टर्लिंग क्षेत्र तथा शेष विश्व के बीच व्यापार पर लगे हुए अधिकाश विनिमय नियन्त्रणो को भी हटा लिया गया तथा गैर ब्रिटिश नागरिको के लिए भी चालू खाते मे स्टर्लिंग को परिवर्तनशील (convertible) घोषित कर दिया गया।

आर्थिक प्रबन्ध (Economic Management)

अर्थव्यवस्था का सचालन करने के पीछे सरकार के निम्न उद्देश्य रहे है—

(अ) सुस्थिर एव निर्वाह योग्य (sustainable) विकास दर प्राप्त करना।
(ब) निर्यातो व आय को बढाना।
(स) मजबूत भुगतान सन्तुलन की स्थिति बनाना।
(द) ऊँचे स्तर का रोजगार-आधार बनाना।
(य) धन का अधिक समान वितरण करना।

इन नीतियो को कार्यरूप मे परिणित करने के काम का उत्तरदायित्व राष्ट्रीय स्तर पर आर्थिक उत्तरदायित्व वाले मुख्य सरकारी विभागो का है राजकोष (Treasury), व्यापार विभाग, उद्योग विभाग, रोजगार विभाग, ऊर्जा, मूल्य, उपभोक्ता, सुरक्षा, पर्यावरण, यातायात विभाग व कृषि, मत्स्य तथा खाद्य मन्त्रालय।

सामान्य आर्थिक नीति निर्धारण के लिए एक प्रमुख सलाहकार सस्था राष्ट्रीय

आर्थिक विकास परिषद् (National Economic Development Council) है जिसमें सरकार, प्रबन्धकों तथा श्रम संघों के प्रतिनिधि प्रधानमन्त्री की अध्यक्षता में एकत्रित होते हैं। इस परिषद् का एक स्वतन्त्र यद्यपि सरकारी खर्चे पर चलाया जा रहा सचिवालय है तथा इसने भिन्न-भिन्न उद्योगों से सम्बन्ध रखने वाली अनेक *आर्थिक समितियाँ भी नियुक्त की हैं। ये समितियाँ सेवाओं तथा एक ही उद्योग के* भिन्न भिन्न पहलुओं को भी देखती हैं। नीति निर्धारण के विशिष्ट पहलुओं पर सलाह देने के लिए बनायी गयी अन्य संस्थाओं में एकाधिकारिक शक्ति के दुरुपयोग पर रोक लगाने हेतु एकाधिकार एवं विलय आयोग (Monopolies and Mergers Commission) तथा जन-शक्ति अर्थशास्त्र कार्यालय (Office of Manpower Economics) सम्मिलित हैं।

मोटे तौर पर आर्थिक नीति का निर्धारण करने तथा मुद्रा स्फीति जैसी समस्या का मुकाबला करने के लिए सरकार अपने उद्देश्यों व उपायों को पहले से सार्वजनिक रूप से घोषित कर देती है। महत्त्वपूर्ण सार्वजनिक नीति सम्बन्धी विषयों पर सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था में चलने वाले घटनाक्रमों से अपने आपको अवगत कराने के लिए सरकार मुख्य औद्योगिक वित्तीय तथा श्रम हितों के साथ अनौपचारिक रूप से ही सही लेकिन बराबर सम्पर्क बनाये रखती है। किन्तु आर्थिक नीति को सुनिश्चित स्वरूप प्रदान करने का मुख्य उत्तरदायित्व अन्तिम रूप से मन्त्री परिषद् का ही रहता है।

क्षेत्रीय आर्थिक आयोजन मशीनरी

पर्यावरण के लिए राज्य मन्त्री (Secretary of State for Environment) पर इंग्लैण्ड के क्षेत्रीय आयोजन (regional planning) का भी दायित्व है। यह कार्य क्षेत्रीय आर्थिक आयोजन परिषदों तथा आर्थिक आयोजन बोर्डों की सहायता से किया जाता है। देश के आठों आर्थिक आयोजन क्षेत्रों में ऐसी एक परिषद् व एक बोर्ड बने हुए हैं। परिषदों में, जिनका काम सलाह देने का ही होता है, उस क्षेत्र के अनुभवी व्यक्तियों को सदस्य बनाया जाता है। ये मोटे तौर पर आर्थिक व भू-उपयोग सम्बन्धी नीतियाँ बनाने में सहायता करते हैं ताकि बाद में उस क्षेत्र की रूपरेखा (regional framework) को आधार मानते हुए राष्ट्रीय एवं स्थानीय स्तर पर विनियोग सम्बन्धी निर्णय लिए जा सकें। बोर्डों में वरिष्ठ क्षेत्रीय सरकारी अधिकारी सदस्य होते हैं जिनका क्षेत्रीय आयोजन के विभिन्न पहलुओं से सम्बन्ध होता है। वे विभिन्न विभागों के क्षेत्रीय कार्यों का समन्वय भी करते हैं तथा परिषदों को सूचना एवं सलाह भी देते हैं।

स्काटलैण्ड में भी अलग से एक आर्थिक परिषद् (Economic Council) तथा आर्थिक आयोजन बोर्ड (Economic Planning Board) है। एक वेल्श परिषद् (Welsh Council) तथा वेल्श आयोजन बोर्ड भी बना हुआ है। उत्तरी आयरलैण्ड के लिए एक आर्थिक परिषद गठित की हुई है।

इंग्लैण्ड में 1945 के बाद के वर्ष बढ़ते हुए उत्पादन के वर्ष थे तथा 1970 तक बेरोजगारी का स्तर भी बहुत नीचा (2 5 प्रतिशत या उससे भी कम) था। किन्तु आर्थिक विकास की दर जिसका कि औसत 1971 तक 2 से 3 प्रतिशत वार्षिक का रहा, अधिकांश पश्चिमी यूरोप के देशों की तुलना में नीची रही। इसके अतिरिक्त कुछ समस्याएँ निरन्तर बनी ही रही। उदाहरण के लिए, भुगतान सन्तुलन को लेकर समय-समय पर पैदा होने वाली कठिनाइयाँ, जो विशेष रूप से माँग वृद्धि के दबाव वाले वर्षों में तो बड़ी विकट हो गयी। अदृश्य निर्यातों द्वारा किये जाने वाले भारी योगदान के बावजूद चालू खाते में अनेक वर्षों तक काफी घाटा होता रहा।

1960 के दशक में तथा उसके बाद आने वाली सरकारों ने इन समस्याओं को अनेक तरीकों से हल करने की चेष्टा की। कभी उन्होंने घरेलू माँग में होने वाली वृद्धि पर रोक लगायी तो कभी आय व मूल्य में होने वाली वृद्धियों को नियन्त्रित बनाने के लिए बनायी गयी नीतियों को क्रियान्वित किया। 1967 में स्टर्लिंग के अवमूल्यन के बाद, जब पौण्ड का मूल्य 2 80 डालर से घटाकर 2 40 डालर कर दिया गया था निर्यातों का कुछ उद्धार हुआ। इससे दृश्य निर्यातों से भी भारी अतिरेक मिलने लगा तथा 1971 में चालू खाते में रिकॉर्ड अतिरेक दिखाई दिया।

1973 में अर्थव्यवस्था ने 5 प्रतिशत की विकास दर प्राप्त कर ली। आर्थिक विकास की दर को बढ़ाने व बेकारी की दर घटाने के लिए 1971 के बाद अपनायी गयी सरकारी नीतियों का इसमें काफी योगदान रहा। लेकिन 1973 के अन्त में, जब विश्व में ऊर्जा संकट उत्पन्न हो गया, इंग्लैण्ड की आर्थिक विकास दर फिर धीमी हो गयी। 1974 में विश्व अर्थव्यवस्था ने अवसाद (recession) के चरण में प्रवेश किया जिसके मुख्य कारण सरपट दौड़ने वाली स्फीति व तेल मूल्यों में अप्रत्याशित वृद्धि रहे। ब्रिटिश अर्थव्यवस्था पर इन तत्त्वों का मुख्य प्रभाव 1975 के आरम्भ में दिखाई दिया, यह अन्य देशों की तुलना में कुछ देरी से था। 1975 के तीसरे चतुर्थांश तक कुल घरेलू उत्पाद (G D P) परिमाण की दृष्टि से 1974 के तीसरे चतुर्थांश की तुलना में 4 5 प्रतिशत घट गया था। निर्मित माल बनाने वाले उद्योगों में यह गिरावट अधिक तीव्र रही तथा बेरोजगारी भी बढ़ने लगी।

अप्रैल 1975 में रखे गये अपने बजट में सरकार ने निर्यातों के लिए समाधन उपलब्ध कराने हेतु कुछ उपाय किये। इसके अतिरिक्त ब्रिटेन के औद्योगिक आधार को अधिक सुदृढ़ बनाने तथा कुल राष्ट्रीय उत्पाद के प्रतिशत के रूप में सार्वजनिक क्षेत्र की ऋण आवश्यकताओं को घटाने के लिए भी उपाय अपनाये गये। मोटे तौर पर, मध्यकालीन लक्ष्य के रूप में इन उपायों का उद्देश्य रोजगार की व्यवस्था करना तथा विश्व अर्थव्यवस्था के उद्धार के साथ साथ ब्रिटिश अर्थव्यवस्था में भी अपेक्षित उद्धार की भूमिका बनाना था। 1975 के अन्तिम दिनों में कुछ सुधार के लक्षण दिखाई पड़ने लगे। खुदरा मूल्यों में वृद्धि की दर में कुछ गिरावट आयी तथा 1975 के चालू

खाते में भुगतान असन्तुलन के कारण होने वाला घाटा 1974 के घाटे की अपेक्षा आधे से भी कम रहा। निर्यातों के परिमाण में भी तीव्र वृद्धि के आसार दिखायी दिये जो आंशिक रूप से विश्व व्यापार में वृद्धि को प्रतिबिम्बित करते थे। किन्तु बेकारी में वृद्धि बराबर होती रही तथा इस वृद्धि दर को घटाने के लिए कुछ चुने हुए उपाय 1975 के अन्त व 1976 के प्रारम्भ में किये गये।

तेजी के साथ पूर्ण रोजगार, विदेशी व्यापार में सन्तुलन तथा ब्रिटिश उद्योगों को नये सिरे से सक्रिय करने के ध्येय को सामने रखते हुए अप्रैल 1976 के बजट में मुद्रा स्फीति को घटाने के उपाय किये गये। स्फीति को घटाने की नीति का ही एक अंग मानते हुए आयकर में कुछ सशर्त परिवर्तन प्रस्तावित किये गये। शर्त यह थी कि ट्रेड यूनियन कांग्रेस नई वेतन सीमा को स्वीकार करे।

सरकार के द्वारा किये जाने वाले सार्वजनिक व्यय के बारे में तथा आर्थिक विकास के सम्बन्ध में जो सामान्य लक्ष्य रखे गये थे उन्हें 1976 में प्रकाशित एक परिपत्र '1979–80 में सार्वजनिक व्यय' में स्पष्ट किया गया। जुलाई 1976 में सार्वजनिक क्षेत्र के लिए ऋण जरूरतों को घटाने के लिए और उपाय किये गये। इनमें 1977–78 में सार्वजनिक व्यय में कटौती के प्रस्ताव सम्मिलित थे जिनसे 1,000 मिलियन पौण्ड की कुल बचत होने तथा नियोक्ताओं द्वारा राष्ट्रीय बीमे में दिये जाने वाले योगदान में (दर बढ़ा दिये जाने के कारण) 900 मिलियन पौण्ड की वृद्धि के अनुमान लगाये गये। इन उपायों के परिणामस्वरूप ऋण जरूरतें, जो 1976–77 में राष्ट्रीय उत्पाद (G D P) का 9 प्रतिशत थी, 1977–78 में 6 प्रतिशत रह गयीं।

स्फीति पर नियन्त्रण

स्फीति, जिसका कि प्रकोप 1950 व 1960 वाले दशक से ही बढ़ता जा रहा था, ब्रिटेन में अन्य औद्योगिक राष्ट्रों की ही भांति 1970 वाले दशक में भी निरन्तर बढ़ती रही है। 1970 से 1975 तक ब्रिटेन में स्फीति के दौर में अपेक्षाकृत अधिक तीव्रता विश्व में खाद्यान्नों के मूल्यों में तीव्र वृद्धि होने तथा कच्चा माल (जिसमें खनिज तेल प्रमुख है) जिसे ब्रिटेन को भारी मात्रा में मंगाना पड़ता है, के मूल्यों में भारी वृद्धि के कारण आयी है। दूसरा कारण 1974 के बाद वेतन वृद्धियाँ रहा है जिन्होंने औद्योगिक लागतों को बहुत लेकिन 1975 के बाद स्फीति की दर में पुन एक बार गिरावट आ रही है। पिछले 30 वर्षों में विविध सरकारों ने स्फीति पर नियन्त्रण लगाने के उद्देश्य से अनेक नीतियाँ अपनायी हैं जिनमें मूल्य व मजदूरी पर कानूनी रोक (Statutory Control) तक शामिल है। जबसे 1974 के आरम्भ में लेबर दल की सरकार ब्रिटेन में सत्ता में आयी तब से स्फीति विरोधी नीतियों के तीन चरण (Phases) रहे है तथा प्रत्येक चरण लेबर दल व ट्रेड यूनियन कांग्रेस के बीच हुए 'सामाजिक अनुबन्ध' से सम्बन्धित रहा है। इस अनुबन्ध के अनुसार लेबर दल ने मूल रूप में बिना सरकारी नियन्त्रण वाली मजदूरी निर्धारण के लिए स्वतन्त्र सयुक्त सौदेबाजी (Free Collective Bargaining) को बनाये

रखने, मूल्यो पर नियन्त्रण लगाने, पेंशन पाने वाले लोगो व कम आय वाले लोगो की सहायता करने तथा पूर्ण रोजगार की स्थिति लाने का वायदा किया। बदले मे ट्रेड यूनियन काग्रेस ने यह माना कि वैधानिक आय नीति (statutory incomes policy) के अभाव मे श्रम सघो की निष्ठा न केवल उनके अपने सदस्यो के प्रति वरन् समाज के अन्य सदस्यो के प्रति भी है इसलिए उन्हे वेतन वृद्धियो को जीवन-निर्वाह की लागत मे होने वाली वृद्धियो के बराबर रखना चाहिए।

जून 1974 मे ट्रेड यूनियन काग्रेस (T U C) ने 'सामूहिक सौदेबाजी व सामाजिक अनुबन्ध' नाम से एक नीति विषयक बयान जारी किया जिसमे स्थिति का मूल्याकन करने के अलावा श्रम सघो व अन्य मध्यस्थो के लिए आने वाले वर्षों मे सामूहिक सौदेबाजी के बारे मे कुछ सिफारिशें व निर्देश दिये गये। यह बयान सरकार के उस वायदे के उत्तर मे था जिसमे सरकार ने सामाजिक एव आर्थिक कार्यक्रमो के लिए अपनी प्रतिबद्धता (commitment) व्यक्त की थी तथा कुछ खाद्य पदार्थों पर अनुदान की व्यवस्था करने, मकान भाडो पर नियन्त्रण लगाने, ऊँची पेंशनें देने व अन्य सामाजिक लाभ प्रदान करने की इच्छा प्रकट की थी।

वैसे तो 1974–75 के दौरान मजदूरी के बारे मे जो भी विचार विमर्श हुए उनमे ट्रेड यूनियन काग्रेस के निर्देशो को ध्यान मे रखा गया किन्तु सामाजिक अनुबन्ध का यह प्रस्ताव वेतन वृद्धियो पर नियन्त्रण नही लगा पाया। परिणाम यह रहा कि 1975 के पहले 6 महीनो मे मजदूरी की दरें पिछले वर्ष की तुलना मे 33 प्रतिशत बढ गयी तथा खुदरा मूल्य भी इसी अवधि मे 25 प्रतिशत चढ गये। मध्य 1975 मे सरकार व ट्रेड यूनियन काग्रेस के बीच अत्यन्त महत्त्वपूर्ण विचार विमर्श हुआ। ट्रेड यूनियन काग्रेस ने एक-एक नया बयान जारी किया। 'सामाजिक अनुबन्ध का विकास' नाम के इस बयान मे वेतन वृद्धियो पर 6 पौण्ड प्रति सप्ताह से अधिक न होने देने के लिए स्वेच्छा से सीमा तथा वार्षिक वेतन प्राप्त करने वालो के लिए एक बिन्दु के बाद बिल्कुल वेतन वृद्धि की माँग न करने की बात कही गयी। यह सीमा 1 अगस्त 1975 से आगामी एक वर्ष के लिए थी। जुलाई 1975 मे प्रकाशित एक सरकारी बयान 'स्फीति पर आक्रमण' मे सरकार ने 6 पौण्ड प्रति सप्ताह की वृद्धि सीमा तथा 8000 पौण्ड वार्षिक की आय को अन्तिम बिन्दु (cut off point) मान लिया। सरकार ने अपने लिए यह कार्य तय किया कि वह मूल्य वृद्धि को रोकने के लिए कार्य करती रहेगी (इसमे मूल्य नियन्त्रणो की मौजूदा व्यवस्था को बनाये रखना तथा पहले से प्रस्तावित खाद्य पदार्थ व आवासीय अनुदानो पर अधिक खर्च शामिल थे) तथा लाभाशो मे वृद्धि को 10 प्रतिशत पर सीमित करेगी। मेहनताना भुगतान व अनुदान विधेयक 1975 (Remuneration, Charges and Grants Act) लाया गया तथा नियोक्ताओ को 6 पौण्ड से अधिक की वेतन वृद्धियाँ न करने के लिए अनुबन्ध के उत्तरदायित्व से मुक्त किया गया। स्फीति से लडने के एक अन्य उपाय के रूप मे सरकार ने यह घोषणा की कि वह 'नक्द सीमा' का व्यापक प्रयोग करते हुए 1976–77 मे सार्वजनिक व्यय पर कडे नियन्त्रण लगायेगी।

6 पौण्ड की सीमा सारे देश मे मानी गयी तथा वह बडी सफल रही।

जुलाई 1976 तक औसत आय में हुई वृद्धियाँ इससे पिछले वर्ष के मुकाबले आधी ही रहीं। इसी के परिणामस्वरूप खुदरा मूल्यों की स्फीतिक दर भी नाटकीय ढंग से घट गयी और वह भी पिछले वर्ष की तुलना में आधी रह गयी।

किन्तु इस सबके बावजूद ब्रिटेन में मुद्रा स्फीति की दर उसके अन्य विदेशी प्रतिद्वन्द्वियों की तुलना में काफी ऊँची बनी रही। 1976 में इस स्थिति को ध्यान में रखते हुए कुछ और विचार विमर्श किया गया तथा सरकार ने मालिकों व मजदूरों को स्वेच्छा से मजदूरी नियन्त्रण पर वार्ता के दूसरे दौर के लिए बुलाया। इसमें 1 अगस्त 1976 से आगामी एक वर्ष तक मजदूरी पर स्वेच्छापूर्वक रोक लगाने की बात कही गयी ताकि 1977 तक ब्रिटेन में भी स्फीति की दर को उसके प्रतिद्वन्द्वी देशों की स्फीति दर के बराबर किया जा सके। फिर एक बार नई वेतन सीमा का विस्तृत ब्यौरा ट्रेड यूनियन कांग्रेस द्वारा प्रकाशित मई 1976 की एक रिपोर्ट में प्रस्तुत किया गया। नई सीमा, जो 1 अगस्त 1976 से अगले 12 महीनों के लिए थी, 5 प्रतिशत वृद्धि की रखी गयी जिसमें न्यूनतम वृद्धि 2.5 पौण्ड तथा अधिकतम वृद्धि 4 पौण्ड प्रति सप्ताह तक की जानी थी। ट्रेड यूनियन कांग्रेस द्वारा इस प्रकार वेतन वृद्धि पर सीमा लगाने की बात मान लिए जाने के बाद सरकार ने भी करों में राहत देने सम्बन्धी उन अनेक उपायों की घोषणा कर दी जो पहले सशर्त प्रस्तावित किये गये थे। जून 1976 में सरकार ने इस प्रस्तावित वेतन वृद्धि सीमा का अनुमोदन कर दिया। ट्रेड यूनियन कांग्रेस तथा लेबर पार्टी की सहयोग समिति द्वारा जुलाई 1976 में इस बात को पुनः दोहराया गया कि आगामी तीन वर्षों तक आर्थिक नीति व प्राथमिकताओं के कार्यक्रम पर सहयोग बनाये रखा जायेगा।

मूल्य नियन्त्रण

1973 से ही स्फीति विरोधी अधिनियम, 1973 के तहत स्थापित एक स्वतन्त्र वैधानिक संस्था मूल्य आयोग (Price Commission) मूल्य नियन्त्रण के एक बड़े कार्यक्रम को क्रियान्वित कर रहा था। ये नियन्त्रण एक मूल्य आचार संहिता (Price Code) में दिग्दर्शित किये जाते हैं जिन्हें सरकार तैयार करती है तथा जिनमें समय समय पर उचित संशोधन किया जाता रहता है। मोटे तौर पर यह माना जा सकता है कि मूल्य आचार संहिता यह इत्मिनान करने के लिए है कि मूल्य वृद्धियाँ अपरिहार्य हैं तथा लागत में वृद्धि हो जाने के कारण न्यायोचित हैं।

मुद्रा पूर्ति

मुद्रा पूर्ति पर नियन्त्रण लगाने से पहले सरकार यह ध्यान रखने का प्रयास कर रही है कि अन्य मांगों से पहले उद्योग की वित्तीय आवश्यकताएँ पूरी होती रह सकें। इसके साथ ही मौद्रिक अतिरेक से स्फीतिक दबाव न बनने देने की भी चेष्टा की गयी है।

सार्वजनिक क्षेत्र की ऋण जरूरतों में वृद्धि के उपरान्त 1972 व 1973 में अनुभव किया गया मुद्रा प्रसार 1974 व 1975 में काफी धीमा हो चला है तथा

1976 मे उसकी गति बहुत साधारण ही रही है। 1975 के आरम्भिक महीनो मे ब्याज की दरे यकायक चढ जाने के बाद 1976 के आरम्भ मे वे पुन गिरी है। मई 1976 मे न्यूनतम उधार दर (Minimum Lending rate) मे वृद्धि हो जाने के बाद ब्याज दरे पुन एक बार स्थिर हो गयी हैं।

सार्वजनिक क्षेत्र की भूमिका

ब्रिटेन की मिश्रित अर्थव्यवस्था मे उद्योग तथा व्यापार मे जब कभी प्रत्यक्ष राजकीय हस्तक्षेप किया जाना होता है तो वह विधान द्वारा स्वीकृत विशेष सार्वजनिक निगमो की स्थापना करके क्रियान्वित किया जाता है। ये निगम वैसे सरकारी विभाग की तरह तो काम नही करते लेकिन इन पर विविध सीमाओ मे सार्वजनिक नियन्त्रण रहता है। इन निगमो मे सबसे महत्त्वपूर्ण वे हैं जो लोकहित मे प्रमुख राष्ट्रीयकृत उद्योगो का सचालन करते है जिनमे कोयला, विद्युत, गैस, इस्पात, रेलें, हवाई अड्डे व हवाई यातायात, व्यावसायिक सडक यातायात तथा डाक सेवा सम्मिलित है। कुल मिलाकर लगभग 8 प्रतिशत कर्मचारी इन सस्थाओ मे काम करते हैं। सम्पूर्ण सार्वजनिक क्षेत्र मे कुल कार्यशील जनसख्या का लगभग एक-चौथाई हिस्सा कार्यरत है।

नवीनतम घटनाक्रम मे ब्रिटिश राष्ट्रीय तेल निगम की स्थापना रही है जिसके द्वारा सरकार ब्रिटेन के समुद्र तट पर हो रही तेल की खोज मे अपने भागीदारी अधिकार बनाये हुए है। इसके अलावा जहाज निर्माण व वायुयान निर्माण के कारखानो तथा निजी लोगो के स्वामित्व वाले व्यावसायिक बन्दरगाहो व उनके द्वारा माल ढोने की गतिविधियो को भी राष्ट्रीयकृत करके सार्वजनिक स्वामित्व व नियन्त्रण के अन्तर्गत लाने के प्रस्ताव हे।

इन राष्ट्रीयकृत उद्योगो का सचालन करने वाले बोर्ड तथा कर्मचारी आमतौर पर प्रशासनिक सेवा के लोग ही नही हैं। ससद मे अपने उद्योगो के प्रति उत्तरदायी ये बोर्ड है न कि सरकार। इन राष्ट्रीयकृत उद्योगो मे कुछ तो आत्मनिर्भर हैं, अन्य निगमो को उनका काम-काज चलाने के लिए सरकारी सहायता दी जाती रहती है।

इन सभी निगमो मे दो विशेषताएँ लगभग सामान्य है। प्रथमत, बोर्ड के चेयरमैन व सदस्यो की नियुक्ति (व बर्खास्तगी) मन्त्री द्वारा की जाती है, तथा द्वितीयत, मन्त्री को यह अधिकार होता है कि वह इस बारे मे अपने सामान्य सुझाव दे सकता है कि उद्योग को किस तरह चलाया जाय यद्यपि वह दैनिक कार्यो मे हस्तक्षेप नही करता। बोर्ड के लिए यह भी अनिवार्य है कि वह मन्त्री द्वारा चाही गयी कोई भी जानकारी आँकडा या वित्तीय हिसाब-किताब माँगे जाने पर उसके सम्मुख प्रस्तुत करे। व्यवहार रूप मे क्योकि सम्बन्धित मन्त्री को सारी जानकारी समय-समय पर दी जाती रहती है तथा बडे निर्णय भी उसी की सहमति से लिए जाते हैं इसलिए ऐसा मौका कभी नही आता जब मन्त्री को इन कामो के लिए कोई औपचारिक आदेश जारी करना पडता हो।

मत्री को वित्तीय अधिकार व और जिम्मेदारियाँ भी है। साधारणतया

वैधानिक आवश्यकता यह है कि बोर्ड को अपना कार्य इस तरह चलाना होता है कि जिससे एक निश्चित अवधि मे प्राप्तियाँ खर्चे के बराबर हो जाएँ। किन्तु सरकार व विभिन्न उद्योगो के बीच वित्तीय लक्ष्यो को लेकर स्वीकृति हो चुकी है जिसमे पूँजी पर 15 प्रतिशत के प्रतिफल प्राप्त करने से लेकर 'न लाभ न हानि' तक के समझौते सम्मिलित है। इसमे घिसावट व ब्याज के लिए अलग से प्रावधान होता है। इसके अलावा नये उद्योगो से यह अपेक्षा की जाती है कि वे अपने नये विनियोगो के लिए 10 प्रतिशत की रियायत (Test discount) को पाने के लिए आवेदन करे। सम्बन्धित मन्त्री इस बात को तय करता है कि यदि प्राप्तियो मे कोई अतिरेक पैदा होता है तो उसका क्या किया जाये। जहाँ तक पूँजीगत खर्च (Capital expenditure) का प्रश्न है अभी की व्यवस्था इस प्रकार है कि यदि आन्तरिक साधनो मे उसकी व्यवस्था नही की जा सकती तो सरकार से उसके लिए ब्याज वाले ऋण प्राप्त किये जा सकते हैं और कुछ मामलो मे तो विदेशो से ऋण भी लिए जा सकते है।

सम्बन्धित मन्त्री का यह वैधानिक उत्तरदायित्व है कि वह इस बात को देखे कि उद्योग के ग्राहको के हितो की अच्छी प्रकार सुरक्षा हो रही है। यह साधारणतया उपभोक्ता परिषदें स्थापित करके किया जाता है जो शिकायतो व सुझावो पर विचार करती हैं तथा बोर्ड या मन्त्री को उनके बारे मे अपनी सलाह देती हैं।

राष्ट्रीयकृत उद्योगो के बारे में सरकारी नीति के लिए संसद के अनुमोदन की आवश्यकता पडती है। इन राष्ट्रीयकृत उद्योगो के वार्षिक प्रतिवेदनो पर संसद में बहस होती है। हाऊस ऑफ कॉमन्स की एक चयनित समिति (Select Committee) राष्ट्रीयकृत उद्योगो के प्रतिवेदनो व हिसाबो की जाँच करती है। उद्योगो मे राज्य की भागीदारी के और भी कई स्वरूप है जैसे कुछ कम्पनियो के अधिसंख्य शेयर राष्ट्रीय उपक्रम बोर्ड (National Enterprise Board) द्वारा खरीदे या रख लिए जाते है।

वैदेशिक स्थिति

(1) **विदेश व्यापार तथा भुगतान**—1967 मे पौंड के अवमूल्यन के बाद वस्तुओ एव सेवाओ के निर्यात मे वास्तविक अर्थों मे तेजी के साथ वृद्धि हुई। 1971 मे 1,000 मिलियन पौण्ड के रिकॉर्ड अतिरेक (Record Surplus) तथा भारी मात्रा मे पूँजी के देश मे आगमन की सहायता से मई 1972 मे विदेशी मुद्रा कोष 2,740 मिलियन पौंड के उच्च स्तर तक पहुँच चुके थे और यह ऊँचाई सरकारी अल्पकालिक एव मध्य कालिक ऋणो का भुगतान कर देने के बाद प्राप्त की गयी थी।

लेकिन 1972 के बाद व्यापार सन्तुलन मे ह्रास होने लगा। घरेलू माग मे वृद्धि हो जाने के कारण आयातो मे वृद्धि हो गयी और निर्यातो पर अनेक तत्त्वो का विपरीत प्रभाव पडा जिनमे से एक तत्त्व विश्व व्यापार का धीमी गति से विकास होना भी था। इस ह्रास के साथ स्फीति का भय और जुड गया था और इनके परिणामस्वरूप जून 1972 मे अल्पकालिक सट्टा पूँजी (Short term Speculative Capital) का बहिर्गमन आरम्भ हो गया। सरकार ने पौंड स्टर्लिंग की विनिमय दर को तैरने (float) के लिए मुक्त छोड दिया स्टर्लिंग क्षेत्र मे आने वाले देशो के साथ

लेन-देन पर भी विनिमय नियन्त्रण लागू कर दिये। स्टर्लिंग की नीची विनिमय दर ने ब्रिटेन के निर्यातों को काफी प्रतिस्पर्द्धात्मक बना दिया और निर्यातों का परिमाण जो 1971 से 1972 मे अपरिवर्तित ही रहा था वह 1973 मे 14 प्रतिशत तथा 1974 मे 7 प्रतिशत से बढ गया।

यह सब होने के उपरान्त, मुख्य रूप से आयातों के मूल्य बढ जाने से, जिनमे खनिज तेल शामिल था, चालू खाते मे 1973 व 1974 मे भारी घाटा दिखाई दिया। किन्तु 1975 मे स्थिति मे काफी सुधार आया जिसका मुख्य कारण आयातों के परिमाण मे कमी तथा व्यापार की शर्तो (Terms of Trade) का अधिक अनुकूल बन जाना रहा। भावी वर्षों मे उत्तरी सागर तट से इग्लैण्ड को प्राप्त होने वाले खनिज तेल की पूर्ति बढ जाने के उसके भुगतान सन्तुलन की स्थिति मे पर्याप्त सुधार की आशा की जा सकती है।

(1) **विनिमय दरें**—दिसम्बर 1971 मे, काफी समय तक अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा बाजार मे अनिश्चितता भरा वातावरण रहने के बाद, जिसमे डॉलर विशेष रूप से प्रभावित हुआ, *वाशिंगटन स्थित स्मिथसोनियन इस्टीट्यूट मे एक सम्मेलन आयोजित* किया गया जिसमे सभी मुद्राओं को डॉलर के सन्दर्भ मे पुनर्मूल्यित (revalue) कर दिया गया। इन नये सम्बन्धो के एक भाग के रूप मे डॉलर के सन्दर्भ मे स्टर्लिंग की दर 8 5% से ऊपर चली गई तथा अब नई विनिमय दर 2 60 डॉलर हो गई जबकि पुरानी दर 2 40 डॉलर प्रति पौंड थी। अगस्त 1976 के अत तक स्टर्लिंग पौंड वास्तव मे इस विनिमय दर के मुकाबले 39 प्रतिशत गिर चुका था।

(3) **अन्तर्राष्ट्रीय मौद्रिक समझौते**—बीस राष्ट्रो की समिति (the Committee of Twenty) जिसमे मुख्य औद्योगिक एव विकसित देशों के प्रतिनिधि थे, तथा जो अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के ढाँचे के भीतर स्थापित की गयी थी, ने अन्तर्राष्ट्रीय मौद्रिक प्रणाली मे सुधार करने के अपने कार्य को जून 1974 मे पूरा कर लिया। समिति ने विशेष आहरण अधिकार (S D R), जिनका कि अन्तर्राष्ट्रीय रक्षित परिसपत के रूप मे इस्तेमाल होता है, के अर्हता अनुमान (Valuation) के लिए एक तरीके पर सहमति व्यक्त की जो अन्तरिम समय (interim period) के लिए थी। समिति ने तैरती हुई दरो (floating rates) के सचालन के निर्देश भी सुझाए तथा भुगतान असन्तुलन वाले देशो की स्थिति ठीक करने के लिए कुछ उपाय भी सुझाये।

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के क्षेत्र मे आरम्भ के वर्षो मे ही ब्रिटेन की नेतृत्व वाली स्थिति के कारण स्टर्लिंग घरेलू मुद्रा होने के साथ-साथ एक प्रमुख अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा बन गया था। ऐसा विशेष रूप से स्टर्लिंग क्षेत्र (Sterling area) के देशो के सन्दर्भ मे हुआ जिन्होंने अपनी मुद्रायें स्टर्लिंग के साथ बाँध दी। इस स्टर्लिंग क्षेत्र मे सारे राष्ट्र कुल के देश व उन पर आश्रित क्षेत्र, कनाडा व रोडेसिया के अलावा, आ जाते थे।

जैसे-जैसे आधुनिक वर्षों मे व्यापार तथा भुगतान के तौर-तरीको मे विविधता आयी है वैसे-वैसे स्टर्लिंग मुद्रा का अन्तर्राष्ट्रीय उपयोग घटता चला गया है। अब

केवल कुछ ही देशों ने स्टर्लिंग के साथ अपना नाता जोड़ा हुआ है। यद्यपि स्टर्लिंग क्षेत्र के बाहर वाले अन्य अनेक देशों के पास अभी भी रक्षित कोषों के रूप में भारी मात्रा में स्टर्लिंग विद्यमान है।

राष्ट्रीय आय तथा व्यय

(1) **उत्पादन**—1975 में ब्रिटेन का कुल राष्ट्रीय उत्पाद (GNP) साधन मूल्यों पर (at factor cost) 99,095 मिलियन पौंड होने का अनुमान था। मूल्यों में हुए परिवर्तनों का समायोजन करने के बाद 1965 के बाद के 10 वर्षों में यह वृद्धि लगभग 22 5 प्रतिशत रही।

कुल उत्पादन का लगभग एक तिहाई निर्मित माल रहा है तथा निर्मित माल वाले उद्योग का यह अनुपात पिछले कई वर्षों से लगभग स्थिर रहा है। पिछले कुछ सालों से जिन क्षेत्रों में अधिक प्रसार हुआ है उनमें अधिकांश सेवायें, विशेष रूप से बैंकिंग, बीमा, वित्त, सार्वजनिक या लोक प्रशासन, स्वास्थ्य एवं शिक्षा, प्रमुख रही हैं। कृषि, वन एवं मछली उद्योगों का भाग अपेक्षाकृत कम एवं गिरता हुआ रहा है और खनिज उत्पादन का भाग भी कम तथा गिरता हुआ ही आता है। वितरणात्मक व्यापार (distributional trade) का सापेक्ष भाग भी गिरा है। (तालिका 1 परिशिष्ट)

(2) **ससाधनों का उपयोग**—तालिका सख्या 2 (परिशिष्ट) से स्पष्ट है कि वस्तुओं व सेवाओं की कुल आपूर्ति का वितरण 1965, 1970 तथा 1975 में, 1970 के बाजार मूल्यों के आधार पर, व्यक्तिगत उपभोग, सार्वजनिक व्यय तथा विनियोग एवं निर्यात कार्य के लिए किस प्रकार विभाजित हुआ है।

1965 के बाद से मुख्य प्रवृत्ति यही देखने में आ रही है कि कुल उत्पादन में से वह आनुपातिक भाग जो व्यक्तिगत उपभोग के काम में लिया जाता है बराबर घट रहा है तथा उसके साथ ही निर्यात में काम लिये जाने वाले उत्पादन का कुल उत्पादन में आनुपातिक भाग निरन्तर बढ़ता जा रहा है। यह अर्थव्यवस्था के लिए एक अच्छा सकेत माना जा सकता है।

(3) **व्यक्तिगत आय तथा उपभोक्ता व्यय**—कर लगने से पहले की व्यक्तिगत आय, वर्तमान मूल्यों पर, तेजी से बढ़ी है तथा उसकी यह वृद्धि निरन्तर हुई है। 1965 में यह 30,000 मिलियन पौंड से कुछ अधिक थी जो 1975 में 97,500 मिलियन पौंड हो चुकी थी। उपभोक्ता व्यय 1975 में कर लगने से पहले की आय में 66 प्रतिशत के लगभग था जबकि यही व्यय 1965 में 76 प्रतिशत था। यह अन्तर प्रत्यक्ष करों के अधिक भार, राष्ट्रीय बीमा योजना में अधिक चदे देने तथा व्यक्तिगत बचतों में कुछ वृद्धि हो जाने से आया है।

(अ) **आय के स्रोत**—रोजगार से होने वाली आय 1975 में 68,200 मिलियन पौंड थी जो कुल व्यक्तिगत आय का लगभग 71 प्रतिशत होती थी। व्यक्तिगत आय के तीन अन्य स्रोत स्व-रोजगार (9 प्रतिशत), लाभांश व ब्याज (9 प्रतिशत) तथा लोक अधिकरणों (Public authorities) द्वारा स्वीकृत अनुदान (11%) रहे।

करारोपण हस्तान्तरण भुगतान (Transfer payments) तथा वस्तुओं के

रूप में लाभ का मिला-जुला उद्देश्य आय का अधिक समानता के आधार पर वितरण करना है। केन्द्रीय सांख्यिकी कार्यालय (Central Statistical Office) द्वारा किये गये एक अध्ययन के अनुसार 1974 में सबसे निर्धन जनसंख्या के लगभग 20 प्रतिशत को सभी परिवारों की मध्यका आय (Median income) के निकटतम लाना था। शाही आयोग के एक प्रतिवेदन के अनुसार भी, जो धन के वितरण का अध्ययन करने के लिए नियुक्त किया गया था, सर्वोच्च 5 प्रतिशत जनसंख्या की आय (कुल आय की) 1949 के 17 7 प्रतिशत से घट कर 1972–73 में 14 2 प्रतिशत पर आ चुकी है और उसमें यह गिरावट जारी है। कम्पनियों की आय पर एक दूसरी रिपोर्ट में यह स्पष्ट हुआ है कि एक-तिहाई से भी अधिक लाभांश व्यावसायिक पेंशन स्कीम के लगभग 11 मिलियन सदस्यों में बँटता है। इसके अलावा यह 2 25 मिलियन करदाता व्यावसायिक पेंशनरों व 14 मिलियन ऐसे लोगों में बँटता है जो जीवन बीमा निगम के माध्यम से अपनी बचत करते हैं। इन सभी वर्गों में कम आय अर्जित करने वाले लोग ही आते हैं।

(ब) उपभोक्ताओं द्वारा व्यय—उपभोक्ताओं द्वारा किये जा रहे व्यय के परिमाण में वृद्धि, ब्रिटेन में ठीक उसी तरह जिस तरह कि अन्य विकसित देशों में हो रहा है, उसके स्वरूप में परिवर्तन के साथ जुड़ गयी है। खाद्य पदार्थ, कपड़ा तथा तम्बाकू पर होने वाला उपभोक्ता खर्च बराबर गिरता जा रहा है जब कि मकान, शराब तथा मोटर कार चलाने पर होने वाले खर्च का अनुपात निरन्तर बढ़ता जा रहा है। (तालिका 3 . परिशिष्ट)

सार्वजनिक व्यय

वस्तुओं एवं सेवाओं पर केन्द्र सरकार एवं स्थानीय संस्थाओं द्वारा किया जाने वाला व्यय 1965 व 1975 के बीच 29 प्रतिशत से बढ़ चुका है। व्यय में इस वृद्धि का मुख्य कारण सामाजिक सेवाओं, विशेष रूप से शिक्षा, में होने वाला प्रसार रहा है। रक्षा व्यय का कुल सार्वजनिक व्यय में भाग प्रतिशत रूप में पिछले कुछ वर्षों से गिरता जा रहा है। 1953 में यह 48 प्रतिशत था जो 1965 में घट कर 34 प्रतिशत व 1975 में 22 प्रतिशत पर आ गया था।

वस्तुओं एवं सेवाओं पर व्यय करने के अतिरिक्त सार्वजनिक प्राधिकरण भारी मात्रा में रकम अन्य क्षेत्रों को हस्तांतरित करते हैं, विशेष रूप से व्यक्तिगत क्षेत्र को जिसे कि राष्ट्रीय बीमा योजना व अन्य सामाजिक सुरक्षा लाभों, अनुदानों, ब्याज आदि के माध्यम से रकम प्राप्त होती रहती है। सरकार स्थानीय प्राधिकरणों (Local authorities) को भी उनका व्यय चलाने के लिए उनके चालू व्यय का 55 प्रतिशत के लगभग वित्तीय सहायता के रूप में देती है।

विनियोग

कुल घरेलू स्थिर पूँजी निर्माण (Gross Domestic Fixed Capital) साधन

मूल्य पर कुल घरेलू उत्पाद (G D P at factor cost) का 22 प्रतिशत है। स्थिर परिसंपत (Fixed assets) का मूल्य इग्लैण्ड मे 1965 से 1975 के बीच 47 प्रतिशत बढ जाने का अनुमान है। उनका शुद्ध मूल्य, घिसावट को घटा देने के बाद 1975 मे लगभग 3,22,100 मिलियन पौण्ड था जिनमे से दो-तिहाई मूल्य भवनो का तथा बाकी एक-तिहाई मूल्य कारखानो, मशीनो और वाहनो आदि का था।

1975 के कुल घरेलू स्थिर पूँजी निर्माण मे निजी क्षेत्र का विनियोग कुल घरेलू उत्पाद (G D P) का 12 2 प्रतिशत तथा सार्वजनिक क्षेत्र का विनियोग 8 9 प्रतिशत था। 1975 के कुल स्थिर विनियोग मे विभिन्न उद्योग समूहो के अश इस प्रकार थे (कोष्ठक मे 1970 के आकड़े दिये गये है निर्मित माल उद्योग, 17% (23 प्रतिशत), गैस, बिजली व पानी, 6% (13 प्रतिशत), सामाजिक एव अन्य सार्वजनिक सेवाएँ, 14% (15 प्रतिशत), अन्य उद्योग, 24% (16 प्रतिशत)। निर्मित माल वाले उद्योगो मे विनिमय का एक चक्रीय स्वरूप रहा है। 1967 मे वह काफी कम था, 1973 व 1974 मे वह बढा तथा 1975 मे पुन घट गया। पिछले कुछ वर्षो की विनियोग प्रवृत्ति का अध्ययन करने पर पता चलता है कि कृषि, उत्खनन (कोयला खानो के अलावा), उत्तरी समुद्र तेल उत्खनन उपकरण जहाज निर्माण व खुदरा वितरण जैसे क्षेत्रो मे विनियोग मे वृद्धि हुई है।

कम्पनी क्षेत्र की वित्तीय स्थिति मे 1975 मे काफी स्पष्ट रूप से सुधार दिखाई दिया था। किन्तु सार्वजनिक क्षेत्र का वित्तीय घाटा 1975 मे अत्यधिक बढ गया तथा वह 8,280 मिलियन पौण्ड तक पहुँच गया जो 1974 के घाटे के मुकाबले 56 प्रतिशत अधिक था। इसी तरह विदेश व्यापार मे होने वाला अतिरेक भी 1975 में 1974 की अपेक्षा बहुत कम रहा। व्यक्तिगत क्षेत्र (personal sector) मे अतिरेक 1975 के दौरान भी बढता रहा, जो मुख्य रूप से उच्च व्यक्तिगत बचत अनुपात प्रदर्शित करता है।

कर्मचारियो मे असन्तोष ब्रिटिश अर्थव्यवस्था का नवीनतम सर दर्द बन गया है। 1979 के जनवरी के महीने मे ट्रक ड्राइवरो की हडताल के बाद वैमानिको, रेलो तथा अन्य अनेक सावजनिक सेवाओ के कमचारियो की हडताल वहाँ की अर्थव्यवस्था की गिरती हुई स्थिति का ही परिचायक है। ये सभी हडताले मजदूरी बढाने की माँग को लेकर की गयी है जो इस बात का प्रमाण है कि स्फीति की दर व मूल्य वृद्धि पर नियन्त्रण के उपाय कारगर सिद्ध नही हुए हैं।

परिशिष्ट

तालिका 1

उद्योगवार कुल घरेलू उत्पाद
(G D P. by Industry)

(चालू मूल्यों पर)

	1965		1975	
	मिलियन पौंड	प्रतिशत	मिलियन पौंड	प्रतिशत
कृषि, वन व मछली पालन	1,527	3.3	2,527	2.7
खानें	708	2.3	1,645	1.8
निर्मित माल	10,624	34.0	26,726	28.7
निर्माण	2,153	6.9	6,411	6.9
गैस, बिजली, पानी	1,006	3.2	2,866	3.1
यातायात	1,984	6.3	5,753	6.2
संदेशवाहन	646	2.1	2,809	3.0
वितरणात्मक व्यापार	3,605	11.5	9,159	9.8
बीमा, बैंकिंग वित्त	2,092	6.7	7,727	8.3
मकानों की सम्पत्ति	1,395	4.5	5,535	5.9
लोक प्रशासन व रक्षा	1,805	5.8	7,107	7.6
जन स्वास्थ्य, शिक्षा	1,430	4.6	7,154	7.7
अन्य सेवाएँ	3,651	11.7	10,430	11.2
वित्तीय सेवाओं के लिए समायोजन	—905	—2.9	—3,623	—3.9
शेष त्रुटि	—	—	920	1.0
कुल घरेलू उत्पादक, साधन मूल्यों पर	31,221	100.00	93,146	100.00
विदेशों से प्राप्त शुद्ध आय	435	—	949	—
कुल राष्ट्रीय उत्पाद	31,656	—	94,095	—

Source: *National Income and Expenditure, 1965-75*

तालिका 2

वस्तुओ व सेवाओ की कुल आपूर्ति का वितरण

(प्रतिशत में)

	1 65	1975
उपभोक्ता व्यय	53 2	50 7
सरकारी चालू खर्च	15 5	15 5
कुल घरेलू पूंजी निर्माण	15 8	13 3
वस्तुओं-सेवाओ का निर्यात	15 5	20 5
	100 00	100 C0

तालिका 3

उपभोक्ता व्यय के स्वरूप मे परिवर्तन
(Changes in Pattern of Consumers' Spending)

(चालू मूल्यो पर)

	1965		1975	
	मिलियन पौंड	प्रतिशत	मिलियन पौंड	प्रतिशत
खाद्य पदार्थ	5,059	22 1	12 092	19 1
शराब आदि	1,499	6 6	4,902	7 7
तम्बाकू	1,428	6 3	2 741	4 3
आवास (भाडे, दर)	2,592	11 4	9 201	14 5
ईंधन व रोशनी	1,087	4 8	2,927	4 6
कपड़ा, जूते	2,099	9 2	5,320	8 4
कारें, मोटर साइकिलें	707	3 1	1,932	3 1
अन्य टिकाउ चीजें	1,078	4 7	2,926	4 6
मोटरवाहनो के चलाने पर खर्च	940	4 1	3,940	6 2
अन्य यात्रा व्यय	741	3 2	1,989	3 1
होटल सेवा	1,196	5 2	2,832	4 5
अन्य वस्तुएँ	2,132	9 3	6,290	9·9
अन्य सेवाएँ	2,096	9 2	6,432	10 2
अन्य मदें (उपभोक्ताओ द्वारा विदेशो मे खर्च विदेशियो द्वारा देश में खर्च मे से घटाने पर)	191	0 8	—151	—0 2
	22,845	100 00	63,373	100 00

अमरीका का आर्थिक विकास

पहला अध्याय

अमरीकी क्रान्ति

(THE AMERICAN REVOLUTION)

क्रान्ति से पूर्व की अमरीका की स्थिति पर टिप्पणी करते हुए थॉमस पेन ने कहा है कि 'ऐसे छोटे द्वीप जो स्वय अपनी रक्षा करने मे भी असमर्थ हो बड़े साम्राज्यो द्वारा देखभाल किये जाने योग्य होते हैं, किन्तु किसी महाद्वीप के स्थायी रूप से किसी लघुकाय द्वीप के अधीन रहने की बात मे एक अजीब-सा बेतुकापन लगता है।'[1]

अक्तूबर 1492 मे क्रिस्टोफर कोलम्बस द्वारा अमरीकी उपमहाद्वीप की खोज करने के कोई सौ वर्षों के भीतर स्पेन के साहसी खोजकर्ताओ ने कैरेबियन द्वीपसमूहो (Caribbean islands) पर अपने उपनिवेश स्थापित कर लिये थे। इन द्वीपो पर उपनिवेशो की स्थापना के बाद ही उन्होने आज के उत्तरी अमरीका कहे जाने वाले उपमहाद्वीप की मुख्य भूमि की खोज आरम्भ की। 1504 तक स्पेनवासियो ने मध्य अमरीका तथा दक्षिणी अमरीका के एक विशाल भू-भाग पर विजय पा ली थी और वर्तमान अमरीका के दक्षिणी भाग का खोज कार्य पूरा कर लिया था।

स्पेन अमरीकी उपमहाद्वीप मे उपनिवेशो की स्थापना करना चाहता था लेकिन उसके पास इस कार्य के लिए सुदृढ आधार नही था। वह एक निर्धन राष्ट्र था तथा उसके पास बहुत कम ससाधन थे। स्पेन के साहसियो तथा उसके शासको का मुख्य उद्देश्य खजाना प्राप्त करना था। पूरी की पूरी सोलहवी शताब्दी मे इन स्पेनिश साहसियो ने अमरीकी खानो तथा वहाँ के अन्य उत्पादो को अपने देश मे भेजा। इस तरह अमरीकी उपमहाद्वीप मे स्पेन की उपस्थिति एक महाशक्ति के रूप मे बनी रही किन्तु यहाँ का भविष्य डच लोगो, फ्रासवासियो तथा अन्तिम रूप से अग्रेजो के लिए नियत था।

जब स्पेन का पतन हुआ तो हॉलैण्ड ने अमरीका मे सर्वोच्चता प्राप्त कर ली। लेकिन शीघ्र ही दो अन्य देश, जिनके पास अधिक ससाधन व साज-सामान था, अमरीकी उपमहाद्वीप पर अधिकार करने की इस दौड मे हॉलैण्ड से आगे निकल गये। ये दो देश फ्रास और इग्लैण्ड ही थे। फ्रासीसियो ने अमरीकी उपमहाद्वीप के पश्चिमी भाग की सक्रिय रूप से खोज 1608 से आरम्भ कर दी थी तथा वे उसके दक्षिणी भाग तक 17वी शताब्दी के अन्त तक पहुँच गये थे। फ्रास ने 1664 मे फ्रेंच ईस्ट इण्डिया कम्पनी स्थापित की तथा कुछ समय तक ब्रिटिश लोगो के साथ सफलतापूर्वक

[1] R M Robertson, *History of the American Economy*, Harcourt, Brace and World, Inc, 1964, 69

प्रतिस्पर्द्धा भी की। लेकिन अन्तिम विजय अंग्रेजो की ही हुई। फ्रासीसियो को तो अंग्रेजो ने केवल अपनी सख्या से ही पछाड दिया। 1756 मे कनाडा मे फ्रासीसी आप्रवासियो की सख्या केवल 60,000 थी जबकि ब्रिटिश उपनिवेशो मे अंग्रेज आप्रवासियो की सख्या तब तक 20 लाख हो चुकी थी।[1]

अन्य यूरोपीय देशो के विपरीत ब्रिटिश लोगो ने प्रारम्भ से ही यह देख लिया था कि ये उपनिवेश उसके निर्मित माल के लिए प्रमुख बाजार बन जाएँगे। सोलहवी शताब्दी के अन्त तक ब्रिटेन के लिए यही बात सबसे महत्त्वपूर्ण बन गई थी।

आबादो (Settlements) का आरम्भ

1607 मे दो, एक दूसरे से बहुत दूर उपनिवेश, सागाडहॉक (Sagadahoc) जो अब मेन (Maine) कहलाता है तथा वर्जीनिया मे स्थापित किये गये। जो लोग सोने की खोज मे यहाँ आये थे उनको तो निराशा ही हाथ लगी किन्तु वर्जीनिया की जलवायु तम्बाकू की खेती के लिए उत्तम थी। इग्लैण्ड मे तम्बाकू के लिए विशाल बाजार उपलब्ध था। 1618 मे ही तम्बाकू का ब्रिटेन को किया गया निर्यात 1 लाख पौण्ड मूल्य का था। 1625 मे वर्जीनिया को क्राउन उपनिवेश (crown colony) घोषित कर दिया गया। वर्जीनिया का ही एक सहयोगी उपनिवेश मेरिलैंड मे स्थापित किया गया। इसके बाद ब्रिटिश उपनिवेश मेसाच्युसेट्स तथा कनेक्टीकट (Massachusetts and Connecticut) तक और भी फैल गये। उपनिवेशवाद की अन्तिम लहर की दो प्रमुख दिशाएँ रही—*मध्य क्षेत्रीय उपनिवेश (the middle colonies)* तथा वर्जीनिया के नीचे के क्षेत्र वाले दक्षिणी उपनिवेश।

उपनिवेशो मे आर्थिक जीवन की दशाएँ

ब्रिटिश उपनिवेशो के अस्तित्व की सम्पूर्ण अवधि मे अधिकाश लोग अपनी जीविका भूमि से ही कमाते थे। न्यू हेपशायर से लेकर जॉर्जिया तक लोगो का मुख्य व्यवसाय ही कृषि था। इस अवधि के अधिकाश उद्योग भी वनो या समुद्र से प्राप्त सामग्री पर आधारित थे। जहाँ भूमि कम उपजाऊ होती थी तथा जहाँ की जलवायु अनुकूल नही होती थी वहाँ मछली मारने या जहाज बनाने का काम किया जाता था। कृषि के पीछे इस तरह के पागलपन का परिणाम यह हुआ कि उपनिवेशो मे कारीगरो व प्रशिक्षित लोगो की भारी कमी हो गई। यूरोप से अनुबन्धित (indentured) श्रमिको को बुलाया गया किन्तु वे भी सभी अकुशल या अप्रशिक्षित ही थे। केवल अपराधी लोग या कैदी ही, जिनके पास कोई विकल्प नही रहता, अमरीका आते व अपने साथ अपनी दक्षता या कारीगरी भी लाते। 1619 के बाद नीग्रो लोगो के आयात से श्रमिको के अभाव की समस्या से निपटने का प्रयास किया गया। दक्षिणी भागो के उपनिवेशो मे तो 1700 तक नीग्रो गुलामो को खरीदने व काम पर लगाने की प्रथा मजबूती से स्थापित हो गयी। यह तथ्य भी महत्त्वपूर्ण था कि तम्बाकू, चावल तथा नील जैसी चीजों की खेती अदक्ष नीग्रो गुलामो के लिए अत्यधिक उपयुक्त थी।

[1] *Ibid*, 28

लेकिन उत्तरी राज्यो मे श्रमिको के लिए माँग पूरी अठारहवी सदी मे ज्यो की त्यो बनी रही। वह अन्तिम रूप से तभी समाप्त हुई जब 19वी सदी मे स्वतन्त्र श्रमिको का अमरीका मे आकर बस जाना (immigration) शुरू हो गया।

अधिवास (settlement) की प्रथम शताब्दी मे पूँजीगत वस्तुओ का विशेष रूप से अभाव रहा। उपलब्ध प्राकृतिक ससाधनो से बनी हुई चीजो की प्रचुरता थी। किन्तु धातु से बनी चीजो का अभाव था। उपनिवेशो को अधिक पूँजी उपलब्ध कराई जा सकती थी किन्तु अग्रेज अपने यहाँ की फर्मो मे धन लगाना अधिक सुरक्षित समझते थे।

वणिकवाद (Mercantilism) तथा ब्रिटिश उपनिवेश

15वी से लेकर 18वी सदी तक यूरोप के देश एक ऐसे विचारो के समूह से प्रभावित हुए थे जिसे वणिकवाद कहा जाता था। ये वणिक्वादी लोग राज्य के लिए अधिक से अधिक शक्ति व सम्पदा अर्जित करने के पक्षपाती थे। वे आत्मनिर्भरता तथा अनुकूल भुगतान सन्तुलन के भी समर्थक थे। इन लोगो के अनुसार उपनिवेशो का नियमन मुख्य देश के हितो के लिए किया जाना था। इग्लैण्ड ने उपनिवेशो से लाये व ले जाने वाले माल के विदेशी जहाजो मे आवागमन पर अधिकाधिक प्रतिबन्ध लगा दिये। 1630 मे तो विदेशियो को अमरीकी व्यापार के क्षेत्र से कानूनी रूप से प्रतिबन्धित कर दिया गया। 1651 मे ब्रिटिश ससद ने पहले नौ-परिवहन कानून (Navigation Laws) पारित किये जिन्होने डच जहाजो द्वारा अमरीकी चीजो के लाने ले जाने पर रोक लगा दी। इससे उपनिवेशो मे बहुत क्षोभ व आक्रोश का वातावरण बना जिसकी अन्तिम परिणति क्रान्ति के रूप मे हुई।

ब्रिटिश उपनिवेशकर्त्ताओ को अमरीका मे अपने पाँव मजबूती से जमाने मे करीब 50 वर्ष लगे। 1660 तक वर्जीनिया, मेरिलैण्ड तथा मेसाच्युसेट्स राष्ट्रमण्डल (Commonwealths) के रूप मे स्थापित हो गये। लेकिन अमरीकी मुख्य भूमि पर 1660 तक केवल 80,000 अग्रेज ही पहुँचे थे। 1690 मे उनकी सख्या 2 लाख, 1790 तक 10 लाख तथा अमरीकी क्रान्ति की पूर्व सन्ध्या पर 22 5 लाख तक पहुँच चुकी थी।

कृषि की प्रधानता—18वी सदी के अन्त तक लगभग 90% जनसख्या अपने जीविकोपार्जन के लिए कृषि पर आश्रित थी। उसमे भी देश के दक्षिणी भागो की कृषि सम्पूर्ण उपनिवेश काल मे उत्पादन के मूल्य की दृष्टि से अधिक प्रबल रही। दक्षिणी प्रदेशो के लोगो के पास उपजाऊ भूमि अत्यधिक मात्रा मे उपलब्ध थी। दक्षिणी भागो के अधिवासी (settlers) तम्बाकू, चावल तथा नील की खेती करते थे। ब्रिटिश व्यापारियो द्वारा इस निर्यात योग्य कृषि अतिरेक का उपयोग करने के प्रयास किये गये। ऊपर वर्णित कृषि उत्पादो के अलावा दक्षिणी भागो मे स्थित उपनिवेशो मे गेहूँ, अन्य अनाजो तथा चारे का भी भारी मात्रा मे उत्पादन किया जाता था।

खाद्य पदार्थों के उत्पादन के लिए देश के मध्य भाग मे स्थित उपनिवेश

(middle colonies) जो पोटमैक (Potamac) तथा हडसन नदियों के बीच मे थे, सर्वाधिक उपयुक्त थे। क्रान्ति से पहले के वर्षों मे पेंसिलवेनिया एक महान् गेहूँ उपनिवेश (wheat colony) बन चुका था। इन उपनिवेशो से भारी मात्रा मे फल, सब्जियाँ व पशु सम्पदा भी प्राप्त होते थे। खाद्य पदार्थों के निर्यात से ये उपनिवेश निर्मित वस्तुओं का आयात किया करते थे।

न्यू इग्लैण्ड (New England) मे कृषि पिछड़ी हुई अवस्था मे थी। शुरू से ही वहाँ के निवासियो ने खेती के साथ और धन्धे भी अपनाये हुए थे ताकि उनका जीवन स्तर ऊँचा रह सकता। न्यू इग्लैण्ड मे कृषि सगठन भी कुछ विशिष्ट प्रकार का था। शहर वहाँ की राजनीतिक इकाई ही नही बल्कि कृषि इकाई भी था। ग्रामीणो की जमीन शहरो के नजदीक ही थी। हर ग्रामवासी के पास एक छोटा-सा बगीचा या फलो का बाग तथा 50 से लेकर 100 एकड तक के जमीन के बिखरे-बिखरे टुकड़े होते थे। एक सबके काम आने वाला चरागाह, कुछ सामान्य खेत तथा बेकार जमीन भी होती थी। 18वी शताब्दी मे इन बिखरे हुए टुकडो को एक आन्दोलन के तहत पुनर्गठित किया गया। उन पुराने और बेकार हो चुके खेती करने के तरीको को आधुनिक अमरीकी कृषि पर कोई निशान भी शेष नही रह गया है लेकिन इतना अवश्य कहा जा सकता है कि शहरो का सुव्यवस्थित रूप से विकास सबसे पहले न्यू इग्लैण्ड से ही शुरू हुआ था।

कृषि पर आधारित उद्योग—हालांकि अधिकाश उपनिवेश अपनी आय कृषि से ही अर्जित करते थे, उनमे से कुछ अपनी आय अप्रत्यक्ष रूप से भूमि से प्राप्त करते थ। ऐसा वे फर, चमड़े तथा वनो से प्राप्त इमारती लकडी या ह्वेल के शिकार पर आधारित उद्योगों (extractive industries) से करते थे। इस प्रकार के तत्व निकालने वाले उद्योग उपनिवेश काल मे काफी महत्त्वपूर्ण थे।

फर व्यापार (Fur Trade) के भी दो प्रमुख केन्द्र थे उत्तर मे फिलाडेल्फिया तथा दक्षिण मे चार्ल्सटन। अग्रेज तथा फ्रासीसी लोग फर तथा अन्य जानवरो की खालो की तलाश मे उत्तर व दक्षिणी भागो म भीतर तक घुसते चले गये। 1808 के बाद से फर का सारा व्यापार अमरीकी फर कम्पनी के हाथो मे केन्द्रित हो गया। वनो का भी आर्थिक शोषण किया जाने लगा। मेन तथा न्यू हेपशायर मे तख्तो, पट्टियो आदि को व्यावसायिक स्तर पर निर्मित किया जाने लगा। कुछ मिल जहाज निर्माण के काम मे आने वाली सामग्री का भी निर्माण करने लग। यह उद्योग उत्तरी केरोलिना मे केन्द्रित था। समुद्र तट से नजदीक होने के कारण न्यू इग्लैण्ड मे मछली पकडने का व्यवसाय जोरो पर था। उपनिवेश काल मे ह्वेल मछली के तेल की अत्यधिक माँग थी तथा ह्वेल पकडने वाले लोग न्यू इग्लैण्ड के तट पर ही अधिक सक्रिय थे। 1775 मे 300 से भी अधिक जहाज ह्वेल मछलियाँ पकडने के काम मे लग थे।

धातु एव निर्मित उद्योग—लोहा ही एकमात्र ऐसी धातु थी जो बहुतायत मे उपलब्ध थी। कुछ ताँबा व थोडा बहुत कोयला भी खानो से निकाला जाता था। लोहा गलाने का काम काफी आदिम तरीके से किया जाता था, हालांकि अमरीकी क्रान्ति

के समय तक उसमे कुछ सुधार हो गया था । इस्पात का तो उत्पादन शुरू ही नही हुआ था। क्रान्ति के समय उपनिवेशो का कुल लोहा उत्पादन लगभग 30,000 टन था । उपनिवेश भारी मात्रा मे लोहे की निर्मित वस्तुओ का आयात करते थे ।

उपनिवेशों मे घरो मे लोग खाद्य पदार्थो तथा कपड़ो का उत्पादन करते थे । ये गृह उद्योग कीलो से लेकर रसोई मे काम आने वाले बर्तनो तथा अच्छी किस्म का फर्नीचर तक तैयार करते थे । उपनिवेशो के निवासी अपने घर भी अपने हाथो से बनाते थे । कुछ ऐसे छोटे कारखाने (craftshops) भी होते थे जो गृह उद्योगो से अधिक विशिष्टीकृत थे । ये विविध हस्त शिल्प-निर्माण उद्योग न केवल उपनिवेशो के उत्पादन मे भारी योगदान देते थे बल्कि उनसे भावी औद्योगिक विकास की नीवे भी रखी गई थी ।

उपनिवेशो मे लगे हुए मिल बहुत ही आदिम किस्म के थे । वे चीजो को पीसने की विधि मात्र थे जिन्हे पशुओ, हवा या पानी की शक्ति से चलाया जाता था । सम्पूर्ण उपनिवेश काल मे बहुत ही आदिम यन्त्रो का उपयोग होता था । अमरीकी क्रान्ति के कुछ ही वर्षो पूर्व मिलो द्वारा चीजें तैयार करने की प्रक्रिया मे शक्ति के उपयोग को लेकर कुछ सुधार हुए थे । मिलों की प्रक्रिया (Milling process) अनेक उद्योगो द्वारा अपनायी गयी थी । पूरे दक्षिण तथा उत्तर मे चमडा साफ करने वाले कारखाने (tanneries) थे जो छाल मिलो (bark mills) का उपयोग करते थे । पेन्सिलवेनिया तथा न्यू इग्लैण्ड मे अनेक कागज तैयार करने वाले प्रतिष्ठान थे । मेसाच्युसेट्स तथा न्यूयॉर्क मे अनेक वस्त्र मिल कार्यशील थे । न्यू इग्लैण्ड मे स्थित शराब बनाने वाले कारखाने (distillaries) निर्यात करने के लिए भारी मात्रा मे शराब बनाते थे ।

जहाज-निर्माण भी उपनिवेश काल का एक प्रमुख उद्योग था । अमरीकी जहाज-निर्माण कारखानो (shipyards) का उत्पादन अठारहवी शताब्दी के पूर्वार्द्ध मे अपने सर्वोच्च बिन्दु तक पहुँच गया था । इन जहाजो मे से अनेक का निर्यात किया गया । यह अनुमान है कि 1775 मे ब्रिटिश व्यापारिक जहाजो-बेडे के एक-तिहाई जहाजो का निर्माण अमरीकी जहाज-निर्माण कारखानो मे हुआ था । प्रत्येक क्षेत्र मे विशिष्टता की वर्तमान अवस्था के स्थान पर उपनिवेशो का उत्पादन बिखरा हुआ व अत्यधिक सामान्यीकृत था । किन्तु भावी विशाल उद्योगो के चिह्न उभरने लग गये थे । उदाहरण के लिए, कुछ स्थानो पर उद्योगो के सकेन्द्रण की शुरुआत को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता था । इसके अतिरिक्त यूरोप के देशों मे स्थित सयुक्त पूंजी कम्पनियों की ही भांति एक नये व्यावसायिक सगठन के अभ्युदय की सम्भावना भी स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होने लगी थी । 1751 मे तो एक 'उद्योगो को प्रोत्साहित करने वाली तथा गरीबो को रोजगार दिलाने वाली' समिति भी बनायी गयी थी । साहसी व्यापारी घरो व हस्तशिल्प के कारखानो के उत्पादन को एक ही छत के नीचे इकट्ठा करने लग गये थे । इस तरह एक व्यवसायी-नियोक्ता प्रणाली का भी विकास हो रहा था । फैक्ट्री उत्पादन अभी शुरू नहीं हुआ था । उसे अभी तक बाजारो के विकास की प्रतीक्षा करनी थी ।

अमरीकी उपनिवेशा मे ब्रिटिश नीति

दो शताब्दियो से भी अधिक समय तक अमरीकी उपनिवेश निर्मित वस्तुओ के आयात के लिए ब्रिटेन, जोकि उनका मातृ-देश (mother country) था, पर निर्भर थे। किन्तु जैसे-जैसे वस्तुओ का उत्पादन बढा, वैसे-वैसे उपनिवेशो के व्यावसायियो की स्थिति अधिक मजबूत बनती गई। इस स्थिति ने अग्रेज व्यापारियो *को असन्तुष्ट कर दिया जिसका अन्तिम परिणाम क्रान्ति के रूप मे सामने आया।*

(1) **उपनिवेशों मे मुद्रा की पूर्ति**—उपनिवेशो के आरम्भिक वर्षों मे सिक्को का अभाव था तथा वस्तु-मुद्रा (commodity money) का ही अधिकतर प्रचलन था। सभी प्रमुख यूरोपीय देशों की स्वर्ण तथा रजत की मुद्राएँ निर्बाध रूप से स्वीकार की जाती थी। लेकिन इन मुद्राओ की हमेशा कमी रहती थी इमीलिये औपनिवेशिक *व्यापारियो ने ब्रिटिश अधिकारियो को अलग औपनिवेशिक टकसाल (colonial* mints) स्थापित करने के लिए कहा। मेसाच्यूसेट्स राज्य मे 1656 मे एक टकसाल लगाई भी गई। किन्तु यह प्रयोग असफल रहा क्योकि उसने अपने सिक्को में कम चाँदी का प्रयोग किया। 1690 के बाद पत्र-मुद्रा भी लोकप्रिय हो गई। यह बहुत आश्चर्य की बात है कि उपनिवेशो मे मुद्रा मे एकरूपता स्थापित करने की दृष्टि *से ब्रिटिश ससद ने कोई गम्भीर प्रयास नहीं किया। अच्छी मुद्रा (sound money)* तथा सस्ती मुद्रा (cheap money) के पक्षधरो के बीच विवाद था। किन्तु सम्पूर्ण उपनिवेश काल मे एकरूप एव कुशल मुद्रा व्यवस्था की स्थापना एक जटिल समस्या बनी रही।

(2) **यातायात एव सचार**—17वी शताब्दी मे अमरीकी उपनिवेशो मे *यातायात एव सचार मुख्यत समुद्री मार्ग से था। जहाँ पहले अधिवास (settlements)* स्थापित हुए वहाँ काफी अच्छे बन्दरगाह मौजूद थे। 1700 से पहले तक सडको का तो अस्तित्व ही नही था। सामुद्रिक यातायात को अधिक अच्छा समझा जाता था क्योंकि भूमि-यातायात की लागत काफी अधिक आती थी तथा लायी-ले जायी जाने वाली चीजें अक्सर भारी होती थी। अठारहवी शताब्दी मे एक सडक प्रणाली *विकसित होने लगी। किन्तु मुख्य राजमार्गों की स्थिति फिर भी शोचनीय ही बनी* रही। सदेशवाहन भी धीमा तथा खर्चीला था। 1710 मे एक अमरीकी डाक-व्यवस्था स्थापित की गई किन्तु उसकी भी दरें बहुत ऊँची थी।

(3) **घरेलू व्यापार**—दूरस्थ गाँवो मे बसने वाले लोग अपने कृषि उत्पादन के बदले नमक, दवायें, गोला-बारूद, चाय, कॉफी या ऐसी ही अन्य चीजो का विनिमय करते थे। औपनिवेशिक काल मे उपनिवेशो के घरेलू व्यापार मे दो महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए। एक परिवर्तन तो शहरो व गाँवो के बीच वस्तुओ व सेवाओं के प्रवाह मे प्रसार का था। *दूसरा परिवर्तन तुलनात्मक दृष्टि से तटवर्ती व्यवसाय* का तेजी से विकास हो जाना था।

(4) **विदेशी व्यापार**—औपनिवेशिक विदेशी व्यापार मे दक्षिण के प्रदेश तम्बाकू, चावल तथा नील के प्रमुख उत्पादक होने के कारण सुदृढ स्थिति मे थे। इन दक्षिणी राज्यो का इगलैण्ड के साथ सीधा व्यापार था। इसी कारण से ही दक्षिणी

उपनिवेशो के प्रति वणिकवादी अधिक पक्षपातपूर्ण रवैया रखते थे। लेकिन उत्तरी राज्यो का विदेश व्यापार कोई आसान द्विपक्षीय मामला नही था। ये उत्तरी राज्य अर्द्ध-निर्मित वस्तुओ का भी निर्यात करते थे तथा मध्यवर्ती वस्तुओ का आयात भी करते थे। ग्रेट ब्रिटेन ही स्वाभाविक रूप से सबसे बडा खरीदार था तथा वही उपनिवेशो की पूर्ति का भी सबसे विशाल स्रोत था। 1769 मे अर्थात् क्रान्ति से एक दशक पूर्व, उपनिवेशो ने अपने निर्यातो का 50% इग्लैण्ड को भेजा था। औपनिवेशिक विदेशी व्यापार ने बडे व्यापारियो के वर्ग को भी जन्म दिया। ये भ्रमणकर्त्ता व्यवसायी (itinerant merchants) आयात व निर्यात व्यापार करने मे भारी जोखिम उठाते थे क्योकि उनका व्यापार साधारणत पिछडे हुए सदेशवाहनो, खतरे भरे यातायात के साधनो तथा अनिश्चित मुद्रा पूर्ति पर निर्भर करता था। इन व्यापारियो का प्रभाव निरन्तर बढता चला गया। इन भ्रमणकारी व्यापारियो की कुल सख्या 1770 मे 300 से अधिक नही थी। किन्तु यह व्यापारी अभिजात्य वर्ग शहरो के राजनीतिक, सामाजिक तथा आर्थिक जीवन पर छा गया।

(5) **पुरानी तथा नई उपनिवेश नीति**—जैसा कि पहले लिखा जा चुका है, वणिकवादी लोग नौपरिवहन कानूनो पर अधिक बल देते थे। 1651, 1660 तथा 1663 के व्यापार व नौपरिवहन कानून इग्लैण्ड तथा उपनिवेशो के बीच नये सम्बन्ध स्थापित करने के लिये ही बनाये गये थे। आरम्भ मे उपनिवेशो का व्यापार इन कानूनो से अधिक प्रभावित नही हुआ किन्तु धीरे-धीरे इससे व्यापार का प्रवाह अस्त-व्यस्त हो गया। ब्रिटिश लोगो ने अमरीकी उपनिवेशो को अपना प्रारक्षित बाजार माना। ससद ने इन उपनिवेशो मे कुछ प्रकार की निर्मित वस्तुओ के उत्पादन पर रोक लगाने के उद्देश्य से कानून बनाये ताकि प्रतिस्पर्द्धा का उन्मूलन किया जा सके। एक ऐसा कानून 1699 मे पारित किया गया। 1750 म एक अन्य कानून बनाया गया जिसमे ब्रिटन मे शुल्क-मुक्त लोह-पिड भेजने की अनुमति तो दे दी गई। किन्तु उसमे निर्मित लोह-वस्तुओ के प्रवेश पर पूर्णरूप से रोक लगा दी गई। इस पुरानी उपनिवेश नीति के बारे मे एकमात्र अच्छी बात यही थी कि इसमे वर्णित आर्थिक नियन्त्रण बहुत बडे नही थे तथा उनमे से कुछ की बिना किसी कठिनाई के अनदेखी की जा सकती थी।

क्रान्ति के कारण

(1) **वणिकवादी नीति (Mercantilist Policy)**—मूल रूप से डेढ सौ वर्षो से स्वशासन के अभ्यस्त लोगो पर लादी गई वणिकवादी नीति ने अपने अन्तिम परिणाम मे ऐसे सावैधानिक सघर्ष को जन्म दिया जिसे रणभूमि मे ही हल किया जा सकता था। यह सही है कि अमरीकी क्रान्ति का सकट मूलत एक राजनीतिक सकट था किन्तु वे दबाव और तनाव, जिन्होने ब्रिटिश लोगो के प्रति अमरीकियो के मन म भय व घृणा भर दी थी, आर्थिक कारको से सम्बन्धित थे।

उधर नई उपनिवेशवादी नीति ने सकट को गहरा कर दिया। हालांकि नई उपनिवेशवादी नीति पुरानी नीति का ही प्रसार थी किन्तु ब्रिटिश अधिकारी उसे

अक्षरश लागू करना चाहते थे। उच्च ब्रिटिश अधिकारियो ने चूक करने वालो (defaulters) के विरुद्ध दण्डनीय कार्यवाही करके (वह भी गलत समय पर) आग मे घी झोकने का ही काम किया। नाजुक स्थिति की शुरुआत 1763 मे ब्रिटिश लोगो की फ्रासीसियो पर विजय के बाद हुई। इस सातवर्षीय युद्ध मे उपनिवेशो के निवासियो ने अग्रेजो की किसी भी प्रकार से सहायता नही की थी, साथ ही साथ उन्होने फ्रासीसियो के साथ व्यापार भी जारी रखा था। ब्रिटिश लोगो ने इसे उनकी अकृतज्ञता माना। इसके अतिरिक्त युद्ध ने ब्रिटिश खजाने पर भारी दबाव डाला था तथा ब्रिटिश लोग अपनी क्षतिपूर्ति उपनिवेशो से करना चाहते थे।

(2) **फौजी व्यय**—ब्रिटेन ने अमरीकी उपनिवेशो मे 10,000 ब्रिटिश सैनिक रखने का निर्णय लिया जिनके रख-रखाव पर 3,50,000 पौण्ड की आवश्यकता थी। इस उद्देश्य के लिए ब्रिटिश ससद द्वारा दो नये कर लगाये गये। 1764 मे पारित चीनी कानून (Sugar Act, 1764) एक ऐसा ही कानून था जिससे अमरीकी चीनी उद्योग समाप्त होने का खतरा पैदा हो गया था जबकि वह ब्रिटिश उद्देश्यो को खूब अच्छी तरह पूरा करता था। किन्तु इससे भी अधिक रोष उपनिवेशो मे 1765 के स्टाम्प कानून (Stamp Act, 1765) ने पैदा किया। इसी कानून ने वास्तव मे क्रान्ति का सकट पैदा किया।

चीनी कानून ने वेस्टइण्डीज की बनी गैर ब्रिटिश वस्तुओ के आयात पर कर लगा दिये। इसका मुख्य उद्देश्य ब्रिटिश वस्तुओ को सरक्षण प्रदान करना था। किन्तु स्टाम्प कानून का उद्देश्य तो केवल सरकार की आय बढाना था। उससे कोई भी अन्य वणिकवादी उद्देश्य पूरा नही होता था। इस कानून के अन्तर्गत विभिन्न कानूनी दस्तावेजो पर अलग-अलग लागत के स्टाम्प चिपकाने की आवश्यकता थी। यह एक आन्तरिक कर था तथा उपनिवेशो के लोग इस प्रकार के करो से अनभ्यस्त थे। उपनिवेशो के लोग इस बात को लेकर भी नाराज थे कि जिस ससद ने उन पर यह कर लगाया था उसमे उनका एक भी प्रतिनिधि नही बैठता था। उन्होने इन दोनो करो से प्राप्त राशि के ब्रिटेन भेजे जाने की बात पर और भी आपत्ति की। जैसे ही यह स्पष्ट होने लगा कि ब्रिटिश अधिकारी इन करो को सख्ती से लागू करना चाहते है वैसे-वैसे इनके विरुद्ध प्रतिरोध बढता चला गया। उपनिवेशो मे वकीलो तथा प्रकाशको द्वारा स्टाम्प शुल्क विरोधी प्रदर्शन आयोजित किये गये। 1765 मे ही एक स्टाम्प एक्ट कांग्रेस गठित की गई जिसने ब्रिटिश वस्तुओ के बहिष्कार का कार्यक्रम बनाया। इस सारी स्थिति ने ब्रिटिश व्यापारियो पर इतना विपरीत प्रभाव डाला कि स्वय उन्होने स्टाम्प शुल्क रद्द करने की माँग की। इस तरह स्टाम्प शुल्क 1766 मे रद्द कर दिया गया तथा चीनी पर लगाये गये शुल्क मे भी कटौती की गई।

(3) **कर लगाने का अधिकार**—स्टाम्प शुल्क आदि रद्द कर देने का यह अर्थ नही था कि ब्रिटिश लोगो ने उपनिवेशो पर कर लगा सकने का अपना अधिकार छोड दिया था। उन्होने इस अधिकार को मजबूती से बनाये रखा। एक घोषणा विधेयक (declaratory act) पारित किया गया जिसने ब्रिटिश ससद को औपनिवेशिक मामलो पर कानून बनाने का अधिकार दे दिया। जब 1765 मे चार्ल्स टाउनशैड

ब्रिटेन का प्रधानमन्त्री बना तो उस समय ब्रिटेन के भूस्वामी करो के भार से छूट के लिए काफी आवाज उठा रहे थे। ऐसी स्थिति मे फिर एक बार टाउनशेंड ने अमरीकी उपनिवेशो से आगम प्राप्त करने की चेष्टा की। आन्तरिक करो द्वारा आय प्राप्त करने के स्थान पर, जिनका कि उपनिवेशो के लोग विरोध करते थे, उसने चाय, काच, कागज आदि पर कर लगाये। इन करो को लागू करने के लिए एक कडी तथा सजग प्रशासनिक मशीनरी भी साथ ही साथ कायम कर दी गई। इस कार्यवाही ने पुन: उपनिवेशवासियो को क्रुद्ध कर दिया। फिर एक बार बहिष्कार आयोजित किये गये। 1769 मे अमरीकी आयात उनके सामान्य स्तर का 33% रह गये। ब्रिटिश व्यापारियो ने वहाँ की ससद पर इन करो को रद्द करने के लिए दबाव डाला तथा ससद ने चाय पर लगे हुए समस्त टाउनशेंड शुल्को को उठा लिया।

इन कदमो ने कुछ समय के लिए उपनिवेशो के निवासियो को शान्त कर दिया किन्तु 1773 के चाय अधिनियम (Tea Act, 1773) ने पुन: शान्ति भग कर दी। इस अधिनियम के पारित किये जाने से पहले अमरीका मे चाय ईस्ट इण्डिया कम्पनी द्वारा अप्रत्यक्ष रूप से कई मध्यस्थो (intermediaries) के माध्यम से भेजी जाती थी। इस अधिनियम ने अब चाय प्रत्यक्षत: ईस्ट इण्डिया कम्पनी को ही अमरीका ले जाने की अनुमति दे दी। चाय पर लगे हुए शुल्क को भी उठा लिया गया। ऐसा करने से चाय तो सस्ती हो गई किन्तु मध्यस्थो को इससे आघात पहुँचा। उनकी आवश्यकता समाप्त हो गई। इससे अमरीकी आयातक कार्यक्षेत्र के बाहर हो गये जिससे अमरीकी व्यापारी भयभीत होने लगे। उनका भय यह था कि अगर चाय की ही तरह ब्रिटेन ने अन्य एकाधिकारी कम्पनियो को भी इस तरह एकमात्र व्यापार का अधिकार दे दिया तो अन्य थोक व्यवसाय भी उनके हाथ से छिन जाएँगे।

(4) **बोस्टन 'चाय पार्टी'** (Boston Tea Party)—ईस्ट इण्डिया कम्पनी को चाय के व्यापार पर एकाधिकार प्रदान कर दिये जाने की घटना ने अमरीकी व्यापारियो को काफी नाराज कर दिया। बोस्टन शहर के समृद्ध व्यापारियो और यहाँ तक कि छोटे-छोटे दुकानदारो ने भी नीति सम्बन्धी इस परिवर्तन के प्रति अपनी हिंसक प्रतिक्रियाएँ व्यक्त की। चाय को या तो वापस इग्लैण्ड लौटा दिया गया या उसे बन्दरगाहो पर ही नष्ट कर दिया गया।

उपनिवेश के निवासियो की इस कार्यवाही से अग्रेज बहुत नाराज हुए तथा एक दण्डित करने वाला विधेयक 'इनटॉलरेबल एक्ट' (Intolerable Act, 1774) में पारित किया गया। इस विधेयक मे निम्न बातें सम्मिलित थी—(i) बोस्टन बन्दरगाह को तब तक के लिए बन्द कर दिया गया जब तक ईस्ट इण्डिया को उसको समुद्र मे फेंकी गई चाय का भुगतान नही किया जाता। (ii) बोस्टन नगर मे सेना रखने की व्यवस्था की गई। दोनो ही प्रावधानो को बोस्टनवासियो ने काफी अपमानजनक माना। राजनीतिक विरोध व हिंसा नई ऊँचाइयो तक पहुँच गये। पहली महाद्वीपीय काग्रेस (First continental congress) ने सभी ब्रिटिश वस्तुओं के बहिष्कार का आह्वान किया। अमरीकी उपनिवेशवासियो ने मौलिक स्वतन्त्रता की पुन: प्रतिष्ठा की माँग की, किन्तु अग्रेज अडे रहे। अप्रैल 1775 मे गोलियाँ

चली और मेसाच्युसेट्स राज्य मे आपत्काल की घोषणा कर दी गई।

(5) **ब्रिटिश भूमि नीति**—जो घटनाएँ अन्तिम परिणाम में क्रान्ति का कारण बनी, वे इग्लैण्ड द्वारा अपनाई गई वणिकवादी नीति के विरोध तथा उत्तरी प्रदेशो के औपनिवेशिक व्यापारियो द्वारा अपनी गतिविधियो के प्रसार के इन दो मुद्दो के इर्द-गिर्द केन्द्रित थी। ब्रिटिश भूमि-नीति ने औपनिवेशिक कृषि को उसी तरह अवरुद्ध कर दिया था जिस तरह वणिकवादी नीति ने वहाँ के व्यापार को सीमित किया था। 1763 से पहले ब्रिटिश नीति पश्चिमी प्रदेश के विकास की थी। लेकिन जब अमरीकी उपमहाद्वीप से विदेशी ताकतें लुप्त हो गई तो ब्रिटिश लोगो ने तटवर्ती क्षेत्रो के आस-पास ही केन्द्रित रहना ठीक समझा। सारी पश्चिमी प्रदेश की भूमि को सम्राट के प्रत्यक्ष नियन्त्रण मे रख दिया गया।

1774 मे एक शाही घोषणा की गई जिसमे भूमि का निजी व्यक्तियो को स्थानान्तरण कठिन बना दिया गया। भूमि को अब नीलामियो मे बेचा जाना था तथा न्यूनतम मूल्य भी तय कर दिये गये। इससे पहले जमीनें नि शुल्क दे दी जाती थी, इस परिवर्तन से तम्बाकू की खेती करने वालो तथा सीमाओ पर रहने वाले कृषको को आघात लगा। पश्चिमी प्रदेशो की भूमि को नि शुल्क लेकर आबाद कर सकने की उनकी आशाएँ समाप्त हो गई। इसलिये इन लोगो ने भी ब्रिटिश विरोधी रुख अपनाया क्योकि उनका विश्वास था कि कोई भी अन्य सरकार भूमि आवटित करने म अधिक उदार नीति अपनायेगी। इग्लैण्ड के साथ व्यापार का बार-बार बहिष्कार (boycotts) तथा पत्र-मुद्रा के गिरते हुए मूल्य ने भी किसानो को अग्रेजो के खिलाफ कर दिया। इन सभी तत्वो न मिलकर क्रान्ति से पूर्व आर्थिक अस्थिरता का वातावरण बना दिया। मुद्रास्फीति की प्रवृत्तियो ने आग मे घी डालने का काम किया।

(6) **स्वशासन की भावना का अभ्युदय**—एक इतिहासकार ने लिखा है कि 'क्रान्ति का मुख्य प्रश्न स्वशासन (home rule) ही नही था बल्कि उसका प्रश्न यह भी था कि अपने ही प्रदेश पर शासन कौन करे ?' महान् अतलान्तिक समुद्र ने अमरीका व इग्लैण्ड को 3,000 मील अलग कर रखा था। इन लोगो से ब्रिटिश सम्राट के प्रति स्वामीभक्ति की अपेक्षा करना सही नही था। इतना ही नही, अमरीका की एक चौथाई जनसख्या अन्य यूरोपीय देशो से आई हुई थी और वे देश इग्लैण्ड के घोर शत्रु थे। इस तरह धीरे धीरे स्वशासन की भावना की जडे जमने लगी। सत्य तो यह है कि अमरीका की क्रान्ति स्वतन्त्रता के युद्ध से काफी पहले प्रारम्भ हो चुकी थी।

यद्यपि सरकारी तौर पर अमरीकी क्रान्ति अप्रैल 1775 मे शुरू हो गई थी किन्तु वह 6 वर्षो तक घिसटती रही। अमरीकी मामलो मे गैर-कानूनी ब्रिटिश हस्तक्षेप से पूर्ण मुक्ति को एक पवित्र उद्देश्य बना लिया गया। अमरीकी क्रान्ति का एक महान् विरोधाभास यह रहा कि उसे कभी भी बहुमत का समर्थन प्राप्त नही था। लगभग एक तिहाई उपनिवशो की जनसख्या ब्रिटिश शासन के प्रति वफादार थी। इसके अलावा दूसरी एक-तिहाई जनसख्या न युद्ध क वर्षो म भारी मूल्यो पर

चीजें बेचकर लाभ कमाया। क्रान्ति में अन्तिम विजय तो सैनिक शक्ति के कारण हुई जब 17 अक्तूबर 1781 को यॉर्कटाउन में कॉर्नवालिस को पराजित किया गया।

अमरीकी नेताओं के सामने तात्कालिक समस्या यह थी कि किस प्रकार की सरकार वे अन्तिम रूप से चुनें। चूँकि विशाल उपमहाद्वीप की समस्याएँ भी अत्यधिक थीं इसलिए वे एक मजबूत संघ चाहते थे। नये गणराज्य को गम्भीर वित्तीय संकट का भी सामना करना पड रहा था। क्योंकि स्वतन्त्रता संग्राम के लिए धन की व्यवस्था पत्र-मुद्रा द्वारा की गई थी। एक ऐसा नया संविधान आवश्यक था जिसमें सुदृढ संघ तथा सामाजिक पूँजी-निर्माण पर भारी मात्रा में राशि के विनियोग का प्रावधान हो। 1787 में फिलाडेल्फिया में हुई बैठक (convention) में इन परिस्थितियों को दृष्टिगत रखा गया।

अमरीकी क्रान्ति के प्रभाव

(1) जनसंख्या के पश्चिम की ओर प्रस्थान (Westward movement) की गति क्रान्ति के बाद अत्यधिक तीव्र हो गई जो एक प्रतिबन्धात्मक शाही घोषणा से धीमी पड चुकी थी।

(2) स्वतन्त्रता संग्राम ने ब्रिटिशकालीन सामन्त-व्यवस्था को चूर-चूर कर दिया। स्थानीय लोगों ने उस भूमि पर अधिकार कर लिया जो पहले सम्राट की थी। बडी भूमि जोतों को विभाजित किया गया तथा भूमि को पुनर्वितरित किया गया है।

(3) क्रान्ति ने धार्मिक स्वतन्त्रता की मजबूत आधारशिला रखी। चर्च तथा राज्य के कार्यों को स्पष्ट रूप से पृथक् कर दिया गया।

(4) क्रान्ति ने समाज में स्त्रियों का स्थान काफी उन्नत कर दिया। उसने एक उदार और सार्वभौमिक शिक्षा को बढावा दिया।

(5) बाहरी दुनिया के साथ सम्पर्क स्थापित हो जाने से उपनिवेशों की व्यावसायिक गतिविधियाँ अत्यधिक बढ गयी। ब्रिटिश वस्तुओं के बहिष्कार का युग (era of boycotts) अब समाप्त हो गया तथा नये राष्ट्र ने भारी मात्रा में वस्तुओं का स्वतन्त्र रूप से आयात व निर्यात आरम्भ कर दिया।

(6) उद्योगों को क्रान्ति से भारी लाभ प्राप्त हुआ। विशाल अस्त्र-शस्त्र निर्माण उद्योग तथा जहाज-निर्माण उद्योग स्थापित किये गये। औद्योगिक मजदूरी में भी वृद्धि हुई।

(7) नये राष्ट्र में पूँजीवाद की दृढता के साथ स्थापना होना क्रान्ति की एक महत्त्वपूर्ण घटना रही। एक निस्सीम आर्थिक विकास की क्षमता अमरीकी उप-महाद्वीप में सदैव विद्यमान थी तथा क्रान्ति ने उसे एक नई स्फूर्ति व शक्ति प्रदान की।

1789 में जॉर्ज वाशिंगटन की अध्यक्षता में नये संविधान का निर्माण किया गया। उस संविधान को 4 मार्च 1789 के दिन औपचारिक रूप से स्वीकार कर लिया गया और जॉर्ज वाशिंगटन को अमरीका का प्रथम राष्ट्रपति चुना गया।

दूसरा अध्याय

जनसंख्या का पश्चिम की ओर प्रस्थान

(THE WESTWARD MOVEMENT OF POPULATION)

टर्नर के अनुसार, 'अमरीकी इतिहास मोटे तौर पर महान् पश्चिमी प्रदेशो के उपनिवेशन का इतिहास रहा है। विशाल मात्रा मे स्वतन्त्र भू खण्ड की विद्यमानता, उसका निरन्तर घटते चले जाना तथा पश्चिमी प्रदेशो की ओर अमरीकी अधिवास (American settlement) का अग्रसर होना अमरीका के विकास को अभिव्यक्त करते हैं।'

यूरोप के लोग, जो सयुक्त राज्य अमरीका मे आकर प्रवास कर रहे थे, वहाँ आकर भूमि के विशाल टुकडो पर अपना अधिकार करने के इच्छुक थे। उपनिवेशन आरम्भ होने के कोई 150 वर्षों तक यह भूमि पूर्वी समुद्री तट के समीप अत्यधिक मात्रा मे उपलब्ध थी। किन्तु कुछ समय के बाद इन उपनिवेशो मे लोगो की भीड बढने लगी। नये आने वाले लोगो के पास सीमान्त प्रदेशो मे जाने के अतिरिक्त कोई विकल्प नही था, जहाँ एक विशाल खाली क्षेत्र पडा हुआ था। अनेक ऐसे प्रवासी कृषक भी थे जो नई भूमि की तलाश मे तथा अपना भाग्य आजमाने के उद्देश्य से पश्चिमी प्रदेशो मे जाने लगे थे। इस तरह निरन्तर चलने वाले इस पश्चिम की ओर प्रस्थान के आन्दोलन ने एक नये वर्ग को जन्म दिया जो सीमान्त व्यक्ति (frontiersmen) कहलाये। ये लोग बहुत साहसी तथा हिम्मत की भावना से आगे बढने वाले थे। 1862 के गृह-युद्ध के पहले यही सीमान्त व्यक्ति प्रगति के वास्तविक वीर पुरुष (heroes) बने हुए थे। इन लोगो द्वारा भारी जोखिम उठाने की प्रवृत्ति ने ही अमरीका के विशाल प्राकृतिक ससाधनो के तीव्रगति से विदोहन को सम्भव बनाया।

पश्चिम की ओर प्रस्थान के लिए उत्तरदायी कारक

आरम्भ मे जनसख्या के पश्चिम की ओर प्रस्थान करने की गति अत्यन्त धीमी व अस्त व्यस्त बनी रही। ऐसा इसलिए हुआ कि 1763 की शाही अधिघोषणा ने लोगों के पश्चिम मे आप्रवास पर स्पष्ट रूप से रोक लगा दी थी। इसके अलावा पश्चिमी प्रदेशो की ओर जाने वालो के मन म जगली जानवरो तथा वहाँ के मूल निवासी रेड इण्डियनो का भय समाया हुआ था। यातायात के साधन तो लगभग थे ही नही। किन्तु इन सभी कठिनाइयो पर सीमान्त व्यक्तियो (frontiersmen) ने धीरे-धीरे विजय पायी तथा अमरीकी स्वतन्त्रता की घोषणा के बाद पश्चिम की आर

प्रस्थान का एक नया अध्याय लिखा गया। तीव्रगति से लोगो के पश्चिम की ओर प्रस्थान के निम्न तत्त्व मुख्य रूप से उत्तरदायी थे—

(1) *व्यावसायिक एव औद्योगिक परिवर्तन*—एक बहुत ही लम्बे समय तक (1807–15) पूर्वी तट पर स्थित व्यावसायिक नगर ब्रिटन के साथ युद्ध छिड जाने के कारण किसी भी प्रकार का विदेशी व्यापार नही कर पाये। आयातो की अनुपस्थिति मे नये देश को अपने स्वय के साधनो से काम चलाना पडा। इससे देश के भीतर ही अनेक उद्योगो का अभ्युदय हुआ। 1815 के बाद इन उद्योगो ने इतनी क्षमता व मजबूती प्राप्त कर ली थी कि वे अपने ब्रिटिश सहयोगी उद्योगो के साथ प्रतिस्पर्द्धा करने लग गये थे। अधिकाश पूर्वीतट के उद्योगो के पास भारी अतिरेक था तथा शहरो मे भीड बढती जा रही था। इन परिस्थितियों ने नवागतुको को पश्चिम की ओर प्रस्थान के लिए प्रोत्साहित किया। वहाँ वे अधिक लाभकारी अवसरो की तलाश कर सकते थे। 1812 के बाद श्रम तथा पूँजी काफी मात्रा मे पश्चिमी प्रदेशो की ओर जाने लग गये। इस प्रस्थान को अधिक सुविधाजनक बनाने के उद्देश्य से तथा उसे अधिक तीव्रता प्रदान करने हेतु नौ परिवहन की सुविधाओ का प्रसार किया गया। उपजाऊ भूमि के विशाल भू भागों, इमारती लकडी से भरपूर जगलो तथा ज्ञात एव अज्ञात अनेक प्राकृतिक ससाधनो के भण्डार वाला यह पश्चिमी प्रदेश उतनी ही बडी चुनौती बन गया जितना वह रहस्यपूर्ण था।

(2) **जनसख्या की वृद्धि**—यूरोप के राष्ट्रो से निरन्तर लोगो के आते चले जाने के कारण उपमहाद्वीप के पूर्वी तट वाले प्रदेशो की जनसख्या अत्यधिक तेजी से बढ रही थी। 1790 मे देश की जनसख्या केवल 3 9 मिलियन थी। किन्तु केवल 85 वर्षों मे अमरीका की जनसख्या बढकर 31 5 मिलियन हो गई जो आठ गुनी वृद्धि इगित करती है। गृह-युद्ध के समय तक अमरीका मे जनसख्या वृद्धि की दर 3% वार्षिक के आस पास रही। इस दर ने भी उसकी जनसख्या को लगभग हर 20 वर्ष मे दुगुना कर दिया।

जनसख्या के आकार मे वृद्धि होने से उसका घनत्व भी बढता चला गया। 1790 मे घनत्व 5 व्यक्ति प्रति वर्ग मील से भी कम था जो 1860 तक बढकर 10 6 व्यक्ति प्रति मील हो गया। जनसख्या मे हो रही इस वृद्धि ने भी पश्चिम की ओर प्रस्थान के आन्दोलन (Westward movement) को गति प्रदान की। पश्चिमी प्रदेश की ओर जाना एक सनक या उन्माद बन गया। राष्ट्र का भौगोलिक आकार जो 1789 मे 3 9 लाख वर्ग मील था, 85 वर्षों के बाद बढकर 30 लाख वर्ग मील हो गया। भूमि के भूखे लोग (land hungry people) पश्चिम मे गहरे से गहरे पैठते चले गये तथा अछूती भूमि (virgin lands) व प्राकृतिक व अन्य बहुमूल्य खनिज पदार्थों की खोज उन्हे आगे से आगे ले जाती रही।

(3) **सहायक सरकारी नीतियाँ**—ब्रिटिश लोगो द्वारा अपनायी गयी। नीति के ठीक विपरीत अमरीकी काग्रेस ने जनसख्या के पश्चिम की ओर प्रस्थान के आन्दोलन को अपना पूर्ण समर्थन प्रदान किया। यह आन्दोलन दो प्रकार से लाभकारी था पहला, इससे दूरस्थ क्षेत्रो मे अधिवास (settlement) को बढावा मिला था,

दूसरे, सरकार को जमीनो की बिक्री से भारी रकम मिलती थी।

भूमि का अधिग्रहण तथा विक्रय—नया राष्ट्र, जो अपने आपको सयुक्त राज्य अमरीका कहता था, एक ऐसे विशाल भू भाग से बना था जो अतलातिक तट से मिसीसिपी नदी तक तथा ग्रेट लेक्स से फ्लोरिडा तक फैला हुआ था। मूल 13 राज्यो मे से 7 राज्यो ने तो विलय के समय ही एप्पेलेशियन पर्वतमाला (appalachian mountains) के पश्चिम की ओर पडने वाले भू-भाग पर अपना दावा छोड दिया था तथा उस पर सघीय सरकार का अधिकार मान लिया था। अन्तिम राज्य जार्जिया ने भी अपना यह दावा 1802 मे छोड दिया। 1898 मे हवाई द्वीप के औपचारिक रूप से सयुक्त राज्य अमरीका मे मिला लिये जाने के बाद उसने अपना वर्तमान भौगोलिक स्वरूप प्राप्त कर लिया था। सयुक्त राज्य अमरीका का वर्तमान भौगोलिक स्वरूप आठ समामेलनो (annexations) का परिणाम था। ये समामेलन इस प्रकार थे[1]—

(1) लुइसीयाना का प्रदेश (Territory of Louisiana) जिसे 1803 मे फ्रास से क्रय कर अधिग्रहित किया गया।

(2) फ्लोरिडा जिसे 1819 मे स्पेन से खरीदकर अवाप्त (acquire) किया गया।

(3) टेक्सास गणराज्य (Republic of Texas) जिसका एक राज्य के रूप मे 1845 मे समामेलन हुआ। अमरीकी अधिवासियो की मैक्सिको पर विजय के आठ वर्षों बाद यह गणराज्य स्थापित किया गया था।

(4) ऑरेगन कट्री (Oregon Country) 1846 मे ब्रिटेन के साथ एक सधि से अधिग्रहित हुआ।

(5) मेक्सिकन सेशन (Mexican Cession) 1848 मे मेक्सिको पर विजय प्राप्त कर अवाप्त किया गया।

(6) गेड्सडेन पर्चेज (Gadsden Purchase) 1853 मे मेक्सिको से अधिग्रहित किया गया।

(7) अलास्का पर्चेज (Alaskan Purchase) रूस से 1867 मे की गई।

(8) हवाई समामेलन (Hawaii Annexation) 1898 मे औपचारिक रूप से स्वीकृत हुआ।

इस तरह लगभग आधी शताब्दी मे सयुक्त राज्य अमरीका ने 30 लाख वर्ग मील भूमि अवाप्त कर ली थी। 1862 मे इस विशाल भूभाग का 66% सरकार के पास था। भूमि की बिक्री के तरीके बहुत पहले ही स्वीकृत किये जा चुके थे।

1785 व 1787 के भूमि विधेयक (Land Acts)—स्वतन्त्रता सग्राम मे विजयी हो जाने के बाद अमरीकी कांग्रेस को सरकार के अधीन भूमि की बिक्री या आवटन के लिए तीन प्रमुख निर्णय लेने पडे[2] (1) क्या न्यू इग्लैण्ड की भूमि-प्रणाली

[1] *Ibid*, 100–101
[2] *Ibid*, 101

को चलता रहने दिया जाये ? (2) क्या सरकार भूमि के लिए ऊँचा मूल्य वसूल करे या प्रत्येक व्यक्ति को सस्ती भूमि उपलब्ध कराई जाये ? (3) नये अधिवासित क्षेत्रो (newly settled areas) का मूल उपनिवेशो के साथ राजनीतिक सम्बन्ध क्या हो ?

उपनिवेश काल मे दो प्रमुख भू-प्रणालियाँ (land systems) विकसित हुई थी। पहली प्रणाली न्यू इग्लैण्ड प्रणाली थी जिसे 'कस्बाई आयोजन' (township planning) भी कहा जाता था। इस प्रणाली मे कस्बो को बसाना, कस्बो को सर्वेक्षण किये हुए भूमि के टुकडो मे उपविभाजित करना तथा इन उपविभाजित टुकडो को अधिवासियो को नीलामी द्वारा बेचना सम्मिलित थे। अठारहवी शताब्दी मे इस प्रकार की कस्बाई बस्ती (townships) 6 वर्ग मील की होती और कोई भी व्यक्ति ऐसी भूमि का स्वामी नही बन सकता था जिसकी पहले से पैमाइश न कर ली गई हो। इसके विपरीत दक्षिणी प्रणाली (southern system) में इस प्रकार के आयताकार सर्वेक्षणो की कोई आवश्यकता नही थी। दक्षिण मे तो अधिवासी लोग अपनी पसन्द की जमीन चुन लेते और उस पर ताल्लुके के सर्वेक्षक (country surveyor) से निशान लगवा लेते।

1784 मे थॉमस जेफरसन की अध्यक्षता मे नियुक्त की गई एक काग्रेसीय समिति ने आयताकार सर्वेक्षण प्रणाली (rectangular survey system) प्रस्तावित किया। इस प्रकार न्यू इग्लैण्ड प्रणाली के महत्त्व को स्वीकार कर लिया गया था। यही प्रस्ताव 1785 के भूमि अधिनियम (*Land Ordinance of 1785*) के रूप मे पारित किया गया। इस अधिनियम के अनुसार, 'सरकारी सर्वेक्षको को खाली पडी भूमि (unsettled land) पर आडी रेखाएँ जिन्हें आधार रेखाएँ (base lines) कहा गया तथा खडी रेखाएँ जिन्हे मुख्य याम्योत्तर रेखाएँ (principal meridians) कहा गया, स्थापित करनी थी। 'पहली याम्योत्तर रेखा ओहियो राज्य मे स्थापित की गई। जैसे-जैसे भूमि का सर्वेक्षण पश्चिमी प्रदेशो की ओर बढा अन्य मुख्य याम्योत्तर रेखाएँ भी स्थापित की गईं। आधार रेखाएँ इन याम्योत्तर रेखाओ के लम्ब (perpendicular) के आधार पर खीची गई। इस प्रकार के विभाजन से कस्बो की कतारे (tiers of townships), जिन्हे मालाएँ (ranges) कहा गया, पूर्व से लेकर पश्चिम के प्रदेशो तक फैल गई। ये मालाएँ या पक्तियाँ (ranges) एक विशेष सख्या तथा याम्योत्तर रेखा (meridian) से दिशा द्वारा जानी जाती थी। प्रत्येक कस्बा, जो 6 × 6 मील का होता था, 36 वर्ग मील क्षेत्रफल का था। कस्बे का उपखण्डो मे उपविभाजन सयुक्त राज्य अमरीका मे निम्न प्रकार से किया जाता था—

1785 मे पारित भूमि अध्यादेश मे प्रत्येक एक वर्ग मील के टुकडे को 'उपखण्ड' या 'अनुभाग' कहा गया। इस अध्यादेश से यह भावना भी स्पष्ट रूप से झलकती थी कि सार्वजनिक भूमि सरकारी आय का एक बडा स्रोत होनी चाहिए। टुकडो के न्यूनतम आकार, मूल्य तथा खरीद की शर्तों के बारे मे कडे प्रावधान किये गये। जमीन को सार्वजनिक नीलामियो मे 1 डॉलर प्रति एकड के न्यूनतम मूल्य पर बेचा जाना था तथा रकम पूरी की पूरी नकद के रूप मे लेनी थी। छोटे से छोटा अनुभाग (section or lot) खरीदने के लिए 640 डॉलर

6	5	4	3	2	1
7	8	9	10	11	12
18	17	16	15	14	13
19	20	21	22	23	24
30	29	28	27	26	25
31	32	33	34	35	36

का विनियोग आवश्यक था। किन्तु यह राशि भी अगुवाओं या छोटे किसानों, जो पश्चिम की तरफ प्रस्थान कर रहे थे, के वूते के बाहर थी। सिर्फ धनी व्यक्ति या भूमि कम्पनियाँ ही इस पहले कानून के अन्तर्गत भूमि खरीद सकती थी।

1787 के कानून मे यह प्रावधान किया गया कि उत्तर-पश्चिमी प्रदेश (north-west territory) को जिलो मे गठित किया जाना चाहिए। प्रत्येक जिले मे एक गवर्नर तथा कुछ न्यायाधीश काग्रेस द्वारा नियुक्त किये जाने थे। अध्यादेश मे कुछ नागरिक व धार्मिक स्वतन्त्रताएँ भी सम्मिलित थी। इस अध्यादेश मे उत्तर-पश्चिम मे दासता पर प्रतिबन्ध लगा दिया। इस अध्यादेश मे इन नये क्षेत्रो के लिए भी अन्त मे समानता का दर्जा देने का प्रस्ताव था। अध्यादेश ने नये फैलाये गये क्षेत्रो को भी मातृ-देश (mother country) के उपनिवेश मात्र मानने की प्रथा भी समाप्त कर दी। नये आबाद हुए क्षेत्रों को भी समान राजनीतिक एव आर्थिक अधिकार प्रदान किये गये।

भूमि अध्यादेश (1796–1862)—1785 के अध्यादेश के बाद पश्चिमी प्रदेश में भूमि की अवाप्ति (acquisition) मे दो तत्त्वो के कारण बाधा पडी। पहला तत्त्व वहाँ के मूल निवासियो का बैर भाव था तथा दूसरा तत्त्व सरकारी भूमि का ऊँचा मूल्य था। रेड इण्डियनो का प्रतिरोध अन्तिम रूप से 1794 मे दबा दिया गया तथा 1795 मे इण्डियन सरदारो (Indian braves) के साथ एक सन्धि कर ली गई। 1796 का भूमि अध्यादेश परम्परावादियो के लिए एक और विजय थी। इस अध्यादेश ने न केवल पहले किये गये आयताकार सर्वेक्षणों को स्थाई बना दिया बल्कि इसने न्यूनतम भूमि मूल्य भी बढाकर 2 डॉलर प्रति एकड कर दिया। न्यूनतम भूमि खरीद भी 640 एकड (अर्थात् एक वर्ग मील) की ही स्वीकृत की गई। इस विधेयक के अन्तर्गत बहुत कम भू-भाग बेचा जा सका। 1800 मे न्यूनतम भूमि-क्रय की सीमा को घटाकर 320 एकड कर दिया गया तथा खरीदारो को कुल रकम का केवल आधा हिस्सा ही पहले नकद देना पडता था तथा शेष रकम वे दो किस्तो मे चुका सकते थे। 1804 मे न्यूनतम भूमि क्रय-सीमा घटाकर 160 एकड़ कर दी गई।

1820 में इसे और भी कम करके 80 एकड पर ले आया गया। प्रति एकड भूमि मूल्य भी घटा कर 1 25 डॉलर कर दिया गया। इस व्यवस्था से अगुआ लोग (pioneer) अपना खेत सिर्फ 50 डॉलर के विनियोग से स्थापित कर सकते थे।

किन्तु शुरू से ही अधिवासियो (settlers) की प्रवृत्ति पैमाइश किये जा चुके क्षेत्रों से भी परे जाने की रही। जैसे-जैसे पश्चिम मे भी 'भीड' बढती गई और समय गुजरता गया वैसे-वैसे यह प्रवृत्ति और भी बढी। ये लोग 'आबादकार' (squatters) कहलाये। किन्तु यह आबादकारी (squatting) अवैधानिक थी हालांकि इसे रोका नही जा सकता था। इन आबादकारो ने अपने सघ बना लिये तथा उनकी जमीन खरीदने वाले को रोकने के उद्देश्य से ये उन्हे धमकियाँ देने लगे। यहाँ तक कि कांग्रेस को भी मजबूर होकर इन आबादकारो को छूटें देनी पडी। 1841 मे कांग्रेस ने एक कानून पारित किया जिसमे इन आबादकारो को 160 एकड भूमि न्यूनतम मूल्य पर खरीदने की अनुमति प्रदान कर दी गई। इस प्रकार देश की भूमि-नीति को यथासम्भव उदार रखा गया तथा इसका मुख्य उद्देश्य सरकारी आमदनी बढाना था।

जनसख्या का पश्चिम की ओर प्रस्थान

अगुआ या पथ-प्रदर्शक लोग (pioneers) पश्चिम की ओर अठारहवी शताब्दी के मध्य से ही जाने लग गये थे किन्तु 1790 तक भी 2 5 लाख से अधिक लोग विशाल पश्चिम मे नही पहुँचे थे। जनसख्या का प्रवास (migration) धीरे धीरे तेज होता चला गया। 1800 के बाद की जनगणनाओ के आँकडे जनसख्या मे लगातार पश्चिम-प्रवाह की सूचना देते है। सीमान्त प्रदेश (frontier) अपने प्राकृतिक आकर्षणो के साथ साहसियो के लिये चुम्बक की तरह था।

सयुक्त राज्य अमरीका के धुर दक्षिणी प्रदेशो मे स्थित पुराने कपास के खेतो की उर्वरा शक्ति घटने के कारण भी लोगो का पश्चिम की ओर प्रस्थान 1812 से लेकर अमरीकी गृह-युद्ध होने तक तीव्रतर होता चला गया। 1840 तक तो पहले के कपास उत्पादक राज्य काफी पीछे छूट गये थे। 1860 मे मिसीसिपी व अलाबामा के नये क्षेत्र काफी आगे निकल चुके थे। सीमान्त प्रदेश के टेक्सास क्षेत्र मे प्रसार से कपास के उत्पादन को एक नया आयाम मिला। 'दक्षिण की इस भूमि मे खिचाव (pull) व धक्का (push) दोनो ही थे।' धक्का (push) औपनिवेशिक काल मे ही लगने लग गया था जब जमीनो की प्राकृतिक उर्वरकता घटने लगी थी। छोटे किसानो को और आगे बढने के लिए बाध्य होना पडा। अगुआ लोग इसके बाद नये समृद्ध कपास प्रदेश मे खिंचे (pulled) चले आये। इन लोगो ने सार्वजनिक नीलामियो मे भूमि के विशाल टुकडे खरीदे।

उत्तरी भाग मे पश्चिम की ओर प्रस्थान का आन्दोलन ओहियो (Ohio) से प्रारम्भ हुआ। 1825 तक तो न्यू इग्लैण्ड तथा अन्य पूर्वी राज्यो से लोग ओहियो, इण्डियाना तथा दक्षिणी मिशीगन प्रदेशो मे भारी सख्या मे आने लग गये थे। 1850 तक उत्तरी इलिनोई (northern Illinois) तथा दक्षिणी विसकोंसिन की सारी अच्छी

भूमि आबाद हो चुकी थी। गृह-युद्ध की पूर्व सन्ध्या पर तो लोग मध्य मिनेसोटा प्रदेश की तरफ बढ रहे थे। शुरू के इस सारे काल मे विदेशो से भी जमीन के भूखे लोग देश मे बराबर पहुँच रहे थे। 1789 से लेकर 1812 तक लगभग 2,50,000 लोग यूरोप से अमरीका मे आ चुके थे। नैपोलियन की पराजय के बाद यह आवक और अधिक तेजी पकडती चली गई। यह सख्या 1830 के दशक की 5,00,000 से बढकर 1840 के दशक मे 15,00,000 तथा 1850 के दशक मे 25,00,000 तक पहुँच गई। ये लोग इग्लैण्ड, जर्मनी तथा अन्य उत्तरी यूरोपीय देशो से आ रहे थे। इन आप्रवासियो ने उत्तर-पश्चिमी राज्यो के प्रवास तथा आर्थिक जन-जीवन पर भारी प्रभाव डाला।

उन्नीसवी सदी के आरम्भिक वर्षों मे पश्चिमी प्रदेशो मे जीवन बडा कठिन था। सबसे पहले आने वालो के लिये तो वहाँ गुजारा भर कर सकना सम्भव था। जमीन को साफ करना, मकान बनाना आदि ऐसे काम थे जिनमे पूरी की पूरी एक पीढी खप गई। सूअर पालन तथा अनाज उगाने का काम शुरू किया गया तथा 1830 तक पश्चिम मे माँस के केन्द्र कायम होने लग गये। पश्चिम मे गेहूँ का उत्पादन भी शुरू किया गया तथा 1860 तक वहाँ देश का आधा गेहूँ पैदा किया जाने लगा था। 1820 के दशक मे एरी नहर (*Erie Canal*) के खुल जाने तथा 1840 के दशक मे रैल-यातायात के विकास होने से यह तय हो गया कि सम्पन्न पश्चिमी प्रदेशो के उत्पाद बढती हुई मात्रा मे पूर्वी प्रदेशो तक पहुँचाये जा सकेंगे।

दासता का अर्थशास्त्र—1800 तक सभी मूल राज्यो ने अपने यहाँ से दासो की विदेशो से खरीद की प्रथा का उन्मूलन कर दिया था। किन्तु दक्षिणी प्रदेशो मे दासो की तस्करी जारी रही तथा 1800 से लेकर 1862 तक दासो की जनसख्या मे लगभग 2 5 लाख दास और जुड गये। 1819 मे देश मे 11 दास-मुक्त तथा अन्य 11 दास-प्रथा प्रचलन वाले राज्य थे। 1860 मे लिंकन के राष्ट्रपति चुन लिये जाने के बाद दक्षिणी राज्यो के समक्ष या तो आत्मसमर्पण या फिर पृथक् हो जाने का ही विकल्प रह गया। उन्होने दूसरा रास्ता चुना जिससे देश मे एक 'मूर्खतापूर्ण और अनावश्यक' युद्ध शुरू हो गया।

अमरीका मे दासता का आरम्भ औपनिवेशिक काल मे हुआ था जब वहाँ श्रमिको की कमी थी। दास लोग तम्बाकू, चावल तथा गन्ने की खेती के लिए बहुत लाभदायक थे। दक्षिणी प्रदेशो मे कपास की खेती मे तेजी से वृद्धि होने के कारण भी दास लोग अनिवाय बन गये। दक्षिणी राज्यो के नर्म जलवायु ने भी दास-प्रथा की निरन्तरता को बनाये रखने मे सहायता की। सयुक्त राज्य अमरीका मे बागानो (plantation) ने दास-प्रणाली को आर्थिक आधार प्रदान किया। यू० बी० फिलिप्स के अनुसार, बागान एक ऐसी इकाई थी जिसमे कम से कम 20 दास काम करते थे व एक ओवरसियर उनकी देख-भाल करता था। लुईसियाना के गन्ना उत्पादक क्षेत्रो मे इन इकाइयो का आकार बहुत बडा था जिनमे 20 से लेकर 40 हजार एकड तक भूमि होती थी तथा जो 500 या उससे भी अधिक दासो का उपयोग करती थी। कॉनरॉड तथा मेयर ने गणना की है कि इन दासो से प्राप्त प्रतिफल 2 2 से लेकर

13% तक होते थे।

1860 मे दक्षिणी राज्यो मे लगभग 4 मिलियन नीग्रो तथा 8 मिलियन श्वेत लोग थे। किन्तु 5 मिलियन से अधिक श्वेत लोग भी अत्यधिक निर्धन थे तथा दक्षिणी प्रदेश की अर्थव्यवस्था इतनी अनाकर्षक थी कि वह आप्रवासियों को अपनी ओर खीचने मे असफल रही। 1860 में दक्षिणी प्रदेशो की जनसख्या मे से केवल 3 4% विदेशो मे पैदा हुए लोग थे जबकि न्यू इग्लैण्ड मे यह प्रतिशत 15 था। इतना ही नही, दक्षिणी प्रदेश भूमि, श्रम, पूँजी तथा साहसियो की गतिविधियो की दृष्टि से भी भारी अभावो से ग्रस्त था। जब तक दक्षिण के लोग इन अभावो की क्षति-पूर्ति दासो के शोषण द्वारा कर सकने की स्थिति मे थे तब तक तो वे सन्तुष्ट रहे किन्तु दासो को मुक्त किया जाना (वह भी स्वतन्त्र किये गये दासो को बिना भूमि या 'वैकल्पिक रोजगार प्रदान किये व भूतपूर्व मालिको को बिना मुआवजा दिये) अमरीकी गृह-युद्ध का कारण बनी। यही कारण दक्षिणी प्रदेशो के सामान्य पिछड़ेपन के लिए भी उत्तरदायी थे।

पश्चिम की ओर प्रस्थान के प्रभाव (Effects of Westward Movement)

अमरीकी जनसख्या के पश्चिमी प्रदेशो की ओर प्रस्थान करने से 20 नये राज्यो का जन्म हुआ जिन्होने सघ की सदस्यता स्वीकार की। जनसख्या मे भी तीव्र वृद्धि हुई जैसा कि निम्नाकित तालिका से स्पष्ट है—

वर्ष	अमरीकी जनसख्या (मिलियन मे)
1775	2 5
1800	5 3
1825	11 3
1853	23 3
1860	31 5

हर कुछ वर्षों के बाद जनसख्या का दुगुना होते चले जाना एक तो अत्यधिक ऊँची जन्म दर के कारण था जो 3% वार्षिक थी। इसके अतिरिक्त यह वृद्धि आप्रवासियो के कारण भी हुई जिसका उल्लेख हम पहले कर चुके हैं। मध्य अठारहवी तथा उन्नीसवी शताब्दियो मे अमरीकी जनसख्या के पश्चिम की ओर प्रस्थान को लेकर प्रो० जेकसन टर्नर ने एक सिद्धान्त प्रतिपादित किया है। उनके अनुसार, 'राजनीतिक एव सामाजिक अशान्ति के प्रतिकूल पश्चिम (West) एक प्रकार का 'सेफ्टी वाल्व' (safety-valve) था। उसने पूर्वी प्रदेशो के दबे हुए मजदूरो को एक शरणस्थल प्रदान किया तथा तकनीकी बेकारी के विरुद्ध वह एक प्रकार का बीमा था।' किन्तु प्रो० टर्नर के इस सिद्धान्त का प्रो० क्रूस (Krooss) ने प्रतिवाद किया है। उनका कहना है कि पश्चिम मे बसने वाले प्रारम्भिक अधिवासी कोई बेकार फैक्ट्री मजदूर नही थे बल्कि वे तो कृषक थे। ये कृषक समृद्ध बनने के इच्छुक थे तथा पश्चिम की ओर जाने के लिए उनके पास काफी पैसा था।

पश्चिम की ओर इस प्रस्थान में कुछ शौर्य और कुछ जगली-सौन्दर्य भरा था। 'प्रकृति की शक्तियों के विरुद्ध कभी समाप्त न होने वाला सघर्ष, प्रतिद्वन्द्वी इण्डियनो तथा जगली जानवरो के साथ सघर्ष ने मिलकर एक ऐसे आक्रामक व आत्मनिर्भर व्यक्तियो की किस्म को जन्म दिया जो नियन्त्रणो से घृणा करती थी तथा अपनी आजादी को सीमित करने के किसी भी प्रयास के विरुद्ध थी।' एडमण्ड बर्क ने इसी को 'स्वतन्त्रता की अदम्य भावना' (a fierce spirit of liberty) की सज्ञा दी। पश्चिम की ओर प्रस्थान के आन्दोलन के प्रभावो को हम तीन स्पष्ट वर्गों मे रख सकते हैं—

(1) आर्थिक प्रभाव—चूँकि कृषि उस युग का प्रमुख व्यवसाय था अत पश्चिम की ओर प्रस्थान का कृषि पर सर्वाधिक प्रभाव पडा। विशाल आकार अछूते भू-भागो की क्षमता का पूर्ण विदोहन तभी सम्भव बना जब पश्चिम की ओर प्रस्थान का आन्दोलन अपने पूरे वेग पर था। भू-भाग तो प्रचुर मात्रा मे था किन्तु आवश्यकता तो श्रमिको की थी। जैसा कि जेफरसन ने लिखा था, 'यूरोप मे उद्देश्य यही रहता है कि वे अपनी भूमि से ज्यादा से ज्यादा लाभ कैसे लें क्योकि श्रम वहाँ पर काफी है, यहाँ हमे श्रम का अधिक से अधिक लाभ लेना है क्योकि भूमि तो प्रचुर मात्रा मे है।'

पश्चिम की ओर प्रस्थान की अवधि मे सरकारी भूमि सबसे प्रमुख सट्टा गतिविधियो का केन्द्र बन गई इस युग के अगुआ लोगो ने भूमि के मूल्यों की घटा-बढी मे पैदा होन वाले सट्टे मे भूमि को वास्तव मे जोतने मे भी अधिक रुचि दिखाई। पूर्वी प्रदेशो के किसान पश्चिमी प्रदेशो की अछूती मिट्टी (virgin soil) से इतने अधिक आकृष्ट हुए कि जैसे ही उनकी भूमि खरीदने वाला कोई ग्राहक मिला वे उसे बेचकर पश्चिम की ओर चल पडे। किन्तु भूमि के लिए इस उन्माद (land craze) के कुछ नुकसान भी थे। इससे काफी अपव्यय तथा अनुचित सट्टेबाजी को बढावा मिला। पश्चिम की ओर प्रस्थान के आन्दोलन से युग के तथाकथित किसान खरीदी हुई भूमि के विकास मे कम तथा उसे ऊँचे मूल्यो पर बेचकर उससे लाभ अर्जित करने के अधिक इच्छुक थे।

पश्चिमी प्रदेशो मे विशाल मात्रा मे भू भाग अधिग्रहित करने की प्रवृत्ति ने पूर्व तथा पश्चिम के किसानो के बीच तीव्र प्रतिद्वन्द्विता को जन्म दिया। इसका परिणाम यह निकला कि पूर्वी प्रदेश के किसानो को खेती छोडकर डेयरी फार्मिंग, फलो को उगाने का काम आदि शुरू करने पडे क्योकि उनकी भूमि कम उपजाऊ थी। इसी अवधि मे कपास का उत्पादन तम्बाकू तथा नील के उत्पादन स आगे बढ गया था। यह मुख्य रूप से दक्षिणी प्रदेशो मे दासो का श्रम काम मे लिये जाने तथा नील व तम्बाकू के खेतो की उर्वरा शक्ति कम हो जाने से कपास की खेती के पक्ष मे किसानो के अधिक सख्या मे आ जाने से हुआ। कपास सभी कृषि उत्पादो का राजा बन गया। उसका उत्पादन 1790 की 4,000 गाठो (500 पौण्ड की प्रत्येक गाठ) से बढकर 1860 तक 3 84 मिलियन गाँठें हो चुका था। चावल व गन्ने का उत्पादन भी पश्चिम की ओर प्रस्थान के आरम्भिक वर्षों मे काफी तेज गति से बढा हालाकि

वे उत्पादन की दृष्टि से कपास के साथ प्रतिस्पर्द्धा नही कर सके ।

पश्चिम की ओर प्रस्थान के आन्दोलन के तीव्र होने के साथ ही नये अधिवासियो ने भारी मात्रा मे अनाज का उत्पादन भी प्रारम्भ कर दिया। पशुओं की सख्या मे वृद्धि भी एक महत्त्वपूर्ण व्यवसाय बन गया, क्योकि इस अवधि मे माँस के लिए माग अत्यधिक बढ चुकी थी। पश्चिमी प्रदेशो के कृषको ने पाया कि बेकार पडी जमीन मक्का या मोटे अनाज के उत्पादन के लिए उपयुक्त है जिसे वे पशुओ के आहार के लिए काम लेते थे। पश्चिम की ओर प्रस्थान के आन्दोलन ने वैज्ञानिक खेती के विकास पर भी बल दिया। जेफरयाल तथा लिविंगस्टन जैसे लोगो ने खेती के नवीनतम तरीको को लोकप्रिय बनाया। इग्लैण्ड तथा यूरोप के अन्य देशो से पशुओ का आयात कर उनकी नस्ल सुधारने का काम पूरा किया गया।

उद्योगो का विकास भी जनसख्या के पश्चिम की ओर प्रस्थान से स्पष्ट रूप से प्रभावित हुआ। कार्यशील जनसख्या के अधिकाधिक सख्या मे पश्चिमी प्रदेशो मे चले जाने के कारण पूर्वी राज्यो मे श्रमिको का अभाव हो गया। इसका परिणाम यह हुआ कि जो श्रमिक पूर्वी प्रदेशो मे ही रह गये उन्हे ऊँची मजदूरी दी जाने लगी। लेकिन यह एक सक्रमणकालीन चरण था। साख्यिकी से पता चलता है कि उस जमाने मे भी पूर्वी राज्यो मे भारी सख्या मे लोग बेकार थे। यहाँ तक की मजदूरी की दरें भी 1850 के दशक तक कोई खास ऊँची नही थी। इसके ठीक विपरीत पश्चिमी प्रदेशो मे कृषि मजदूरो का भारी अभाव था जहाँ पर अधिकाधिक भू-भाग कृषि कार्यों के लिए अधिग्रहित किया जा रहा था।

उद्योग के क्षेत्र मे वास्तविक महत्त्व की चीज यह थी कि पश्चिम की ओर प्रस्थान के आन्दोलन ने पूर्वी प्रदेशो के लिए बाजार को काफी व्यापक बना दिया। आने वाले वर्षों मे पूर्वी प्रदेशो ने निर्मित माल तैयार करने मे विशिष्टता प्राप्त कर ली जबकि खाद्य पदार्थों तथा कच्चे मालो का उत्पादन पश्चिमी प्रदेशो का मुख्य कार्य बन गया। जैसे-जैसे यातायात के साधन विकसित हुए पूर्व तथा पश्चिम के बीच निर्मित माल तथा खाद्य पदार्थों का यह आदान-प्रदान भी वैसे-वैसे बढता चला गया। इसका एक परिणाम यह हुआ कि पूर्वी प्रदेशो मे स्थित उद्योगो को बडे पैमाने के उत्पादन के लाभ प्राप्त होने लग गए।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि जनसख्या के पश्चिमी प्रदेशो की ओर प्रस्थान से अनेक आर्थिक लाभ हुए। इससे न केवल पूर्वी प्रदेशो का औद्योगिक उत्पादन प्रोत्साहित हुआ बल्कि पश्चिम मे कृषि उत्पादन को इसके कारण काफी गति मिली। सच पूछा जाए तो अमरीकी अर्थव्यवस्था की भावी समृद्धि की नीव इस पश्चिम की ओर प्रस्थान के आन्दोलन के युग मे ही पडी।

(2) **राजनीतिक एव सामाजिक प्रभाव**—जैसे-जैसे पश्चिमी प्रदेश अधिक प्रभावशाली बने वैसे-वैसे देश मे एक नई राजनीतिक स्थिति पैदा हुई। जब 1862 मे उत्तरी तथा दक्षिणी राज्य आपस मे भिड गये तब शक्ति सन्तुलन की कुन्जी पश्चिम के हाथ मे ही रही। सयुक्त राज्य अमरीका के राजनीतिक इतिहास मे 1860 तक 20 नये राज्यो का सघ मे और प्रवेश कर जाना एक महत्त्वपूर्ण घटना थी।

हालांकि अत्यल्प आबादी वाले ये पश्चिमी राज्य प्रतिनिधि सभा (House of Representatives) में अधिक प्रभावशाली नहीं बन पाये किन्तु सीनेट (Senate) में वे काफी शक्तिशाली सिद्ध हुए। दक्षिणी राज्य अमरीकी संघ में दास-मुक्त एवं दास-प्रथा वाले राज्यों की संख्या में सन्तुलन बनाये रखने की बात पर अड़े हुए थे। उत्तर व दक्षिण के राज्यों के बीच इस झगड़े ने पश्चिमी राज्यों को अधिक प्रभावशाली बनाया। वे राजनीतिक दृष्टि से अधिक सुदृढ़ बन गये। 1928 में राष्ट्रपति पद पर एण्ड्रयू जेक्सन (Andrew Jackson) का चुनाव, जो कि पश्चिमी प्रदेश के थे, इस बात का प्रमाण था कि राष्ट्रीय राजनीति में पश्चिम का प्रभाव निरन्तर बढ़ता जा रहा था। विश्व-प्रसिद्ध अमरीकी राष्ट्रपति अब्राहम लिंकन भी एक पश्चिमी राज्य इलिनोय (Illinois) से ही चुनकर आये थे। पश्चिमी प्रदेशों के लोग अधिक से अधिक स्वतन्त्रता के समर्थक थे तथा वे कम से कम सरकारी हस्तक्षेप चाहते थे। इस प्रकार पश्चिमी प्रदेशों के लोग राजनीतिक क्षितिज पर उभरने लगे तथा इसमें वयस्क मताधिकार के तत्कालीन आन्दोलनों से काफी सहायता मिली। उन्होंने अधिक *लोकप्रिय सरकार के गठन में योगदान दिया तथा ऐसे कानून पारित करवाये जिनसे* कि औद्योगिक लोकतन्त्र की स्थापना होने में सहायता मिली।'

सामाजिक दृष्टिकोण से देखने पर, जो कि पश्चिम की ओर प्रस्थान के आन्दोलन का तीसरा महत्त्वपूर्ण पहलू है, यह स्पष्ट दिखाई पड़ता है कि इस आन्दोलन ने आप्रवासी लोगों को अधिक चुस्त एवं व्यक्तिवादी बनाया तथा उनमें स्वतन्त्रता के प्रति गहरा लगाव कूट-कूट कर भर दिया। विभिन्न जातियों और राष्ट्रीयताओं के लोग पश्चिम में आत्मसात हो गये तथा उनसे मिलकर एक 'मिश्रित अमरीकी नागरिक' (a composite type of American) का विकास हुआ। कुछ विचारकों ने यह भी लिखा है कि पश्चिम की ओर प्रस्थान के आन्दोलन ने लोगों में कानून के प्रति सम्मान को घटाया क्योंकि वहाँ के लोग स्वच्छता से रहने में विश्वास करते थे। उन्हें कोई पूछने वाला नहीं था। उन्होंने 'सांस्कृतिक मूल्यों में इस ह्रास तथा सामाजिक अनुशासन में इस गिरावट को अप्रतिबन्धित व्यक्तिवाद, भौतिक मानदण्ड तथा हिंसा में वृद्धि व कानून के प्रति असम्मान का परिणाम बताया।' बन्दूकें दागते हुए नौजवान पश्चिमी प्रवासी (cowboys) पश्चिम का प्रतीक बन गये।

तीसरा अध्याय

कृषि का विकास

(DEVELOPMENT OF AGRICULTURE)

1862–1920 के दौरान भूमि नीति

1862 से 1920 तक की अवधि को पश्चिम की ओर प्रस्थान का दूसरा चरण भी माना जाता है। यह चरण 1862 मे वासभूमि विधेयक (Homestead Act, 1862)[1] पारित होने के साथ ही आरम्भ हुआ। इस अधिनियम ने वासभूमिपतियो (Homesteaders) को 160 एकड भूमि तक रख सकने की अनुमति दी किन्तु पर्वतीय क्षेत्र मे यह मात्रा काफी कम थी। इस सीमा मे ढील देने के लिए अमरीकी कांग्रेस ने चार अलग अलग भूमि विधेयक बनाये जिनका उद्देश्य अछूती तथा बेकार पडी हुई भूमि का विकास करना तथा पश्चिमी प्रदेशो मे उसे कृषि कार्य के अन्तर्गत लाना था। ये चार विधेयक निम्न थे—

(i) **इमारती लकडी विधेयक**, 1873 के अन्तर्गत ऐसे किसी भी व्यक्ति को 160 एकड भूमि नि शुल्क आवटित की गई जो उसमे से 40 एकड पर पेड लगाने का वायदा करता।

(ii) **मरुभूमि विधेयक**, 1877 ने ऐसे किसी भी व्यक्ति को 640 एकड भूमि 1 25 डॉलर प्रति एकड के भाव से खरीदने की अनुमति दे दी जो तीन वर्ष के भीतर उस भूमि पर सिंचाई की व्यवस्था करने की जिम्मेदारी लेता।

(iii) **इमारती लकडी व प्रस्तर कानून**, 1878 मे महँगी इमारती लकडी व प्रस्तर भूमि को 2 50 डॉलर प्रति एकड की दर से बेचने की व्यवस्था की।

(iv) **इमारती लकडी कटाई कानून**, 1878 ने कुछ क्षेत्रो के नागरिको को सरकारी भूमि से बिना भुगतान किये लकडी काटने का अधिकार दिया यदि उस *लकडी का उपयोग मकान बनाने या कृषि कार्यों के लिए किया जाना था।* और भी अनेक तरीको से सरकारी भूमि निजी व्यक्तियो को हस्तान्तरित की गई।

[1] वासभूमि विधेयक 1862 के अन्तर्गत किसी भी व्यक्ति को जो अपने परिवार का मुखिया है या जो 21 वर्ष की आयु पार कर चुका है तथा सयुक्त राज्य अमरीका का नागरिक है या जिसने अमरीकी नागरिकता प्राप्त करने की अपनी इच्छा के लिए घोषणा-पत्र भर दिया है तथा जिसने सयुक्त राज्य अमरीका की सरकार के विरुद्ध कभी हथियार नही उठाये हैं और न ही उसके शत्रुओ को किसी प्रकार की सहायता पहुँचाई है 1 जनवरी 1863 के बाद से अविनियुक्त सार्वजनिक भूमि (unappropriated public lands) का एक-चौथाई अनुभाग (one-quarter section) या उससे कम भूमि प्राप्त करने का अधिकार होगा।'

सार्वजनिक नीलामियाँ भी 1891 तक चलती रही। पश्चिमी राज्यो तथा रेल मार्ग कम्पनियो को भी संघीय सरकार ने विशाल भू-भाग अनुदान के रूप मे स्वीकृत किये। डाएस विधेयक, 1887 (Dawes Act, 1887) ने लगभग 100 मिलियन एकड मे फैले हुए इण्डियन क्षेत्र (Indian territories) को विक्रय के लिए खोल दिया। वासभूमि विधेयक (Homestead Act) को भी 1904 मे संशोधित किया गया ताकि बसने वाले लोग 640 एकड का एक पूरा अनुभाग (section) खरीद सकते।

भूमि का वितरण—इन वर्षो मे भूमि का जिस प्रकार वितरण हुआ वह बडा रोचक था। सार्वजनिक स्वामित्व की कुल भूमि[1] अमरीका मे 1789 से 1904 के बीच 1,441 मिलियन एकड रही। इसमे से 278 मिलियन एकड भूमि निजी व्यक्तियो द्वारा नकद रकम देकर अधिग्रहित की गई तथा 273 मिलियन एकड भूमि राज्यो तथा रेल-मार्ग कम्पनियो को नि शुल्क दे दी गई। विभिन्न विधेयको के अन्तर्गत निजी व्यक्तियो द्वारा नि शुल्क अधिग्रहित भूमि 147 मिलियन एकड रही। शेष भूमि सरकार द्वारा प्रारक्षित (reserved) कर ली गई। 1904 के बाद विवेक संगत बनाने के उद्देश्य से भूमि नीति मे अनेक परिवर्तन किये गये। किन्तु तब तक लगभग सारी अच्छी कृषि-योग्य भूमि बेची या बाँटी जा चुकी थी। 1920 मे खाली भू-भाग जिसका निपटारा किया जाना था, 200 मिलियन एकड के लगभग था।

भूमि की अत्यधिक उपलब्धि—इस अवधि की अमरीकी भूमि नीति का सबसे महत्त्वपूर्ण पहलू वह गति थी जिससे कृषि योग्य, खनिज तथा इमारती लकडी वाले भू-भाग को निजी व्यक्तियो को हस्तान्तरित किया गया। इस तीव्र गति ने बाद में कुछ समस्याएँ भी पैदा की जब अयोग्य व्यक्तियो ने अपनी भूमि गवा दी तथा वे आसामी बनने के लिए बाध्य हो गये। किन्तु पश्चिमी प्रदेशो का कृषिगत उत्पादन इतना बढ गया था कि उसके बाजार मूल्य लागतो से भी नीचे गिरने लगे थे। अन्त मे, भूमि की अत्यधिक उपलब्धि ने अपव्ययी कृषि पद्धतियो को बढावा दिया।

पश्चिमी प्रदेशो पर अन्तिम चढाई खनिको व पशुपालको (cattlemen) ने की। 1850 के बाद केलिफोर्निया मे स्वर्ण की खोज के बाद पश्चिमी प्रदेशो मे खनिज सम्पदा के सर्वेक्षणो को प्रोत्साहन मिला। इन आवागमनो ने अन्तिम सीमाओ तक अधिवासो को प्रोत्साहित किया। खनिको के पीछे पीछे व्यवसायी, कारीगर तथा अन्य पेशेवर लोग भी इधर आये। गृह-युद्ध (1861–1865) के बाद पश्चिमी राज्यो के महान् मैदानो (great plains) मे पशुपालन उद्योग (range-cattle *industry*) *जोर पकड गया। यह उद्योग 1885 तक अपने चरम बिन्दु पर* पहुँचा किन्तु बाद म उसकी अवनति आरम्भ हो गई। एक स्थान से दूसरे दूर के स्थान तक पशुओ को ले जाने मे बाधाएँ उपस्थित हो गयी जब किसानो ने अपने खेतो के इर्द-गिर्द काँटेदार तारो की बाड लगा दी। रेल मार्ग यातायात विकास के बाद पशुपालन क्रियाएँ अधिक विकेन्द्रित हो गयी।

प्रमुख फसलो का उत्पादन—इस अवधि मे प्रमुख फसलो के कुछ नये क्षेत्र भी स्पष्ट रूप से उभर कर सामने आये। गेहूँ व मक्का के उत्पादक क्षेत्र मिनेसोटा,

[1] R M Robertson, *op cit*, 252

डाकोटाज, इण्डियाना तथा इलिनोय में विकसित हुए। अनाज (corn) उत्पादन[1] 1870 के 800 मिलियन बुशल से बढ़कर 1915 तक 3,000 मिलियन बुशल तक जा पहुँचा। इसी अवधि में गेहूँ का उत्पादन भी 173 मिलियन बुशल से बढ़कर 1,000 मिलियन बुशल हो गया।

1860–1914 की अवधि में कपास का उत्पादन चौगुना हो गया। यह 1914 में 16 मिलियन गाँठो के बराबर हो चुका था। उधर कपास का उत्पादन-क्षेत्र पश्चिमी प्रदेशों में फैलता रहा, तब तक तम्बाकू दक्षिणी प्रदेशों की दूसरे नम्बर की फसल बन गई। जब न्यू इग्लैण्ड तथा न्यूयार्क के डेयरी फार्मिंग के विशेषज्ञ किसान पश्चिमी प्रदेशों की ओर बढ़े तो वहाँ डेयरी उद्योग भी विकसित होने लगा।

अमरीकी कृषि का 1862 से 1920 तक का विकास

(i) **कृषि का यन्त्रीकरण**—कृषि में मशीनों का उपयोग वहाँ आवश्यक हो जाता है जहाँ जनसख्या कम हो तथा श्रमिकों का अभाव हो। खेतों पर मशीनों के प्रयोग का अर्थ होता है पूँजी का प्रयोग ताकि भूमि की उत्पादकता को बढ़ाया जा सके। अमरीकी कृषि के यन्त्रीकरण का पहला काल 1830 से 1880 तक चला जब आधारभूत आविष्कारों का प्रयोग कृषि उत्पादन बढ़ाने के लिए किया गया। दूसरी अवधि 1910 तक चली जिसमें पशु शक्ति पर आधारित मशीनों का व्यापक रूप से उपयोग किया गया। शक्ति-चालित मशीनों का तीसरा काल 1910 के बाद से शुरु हुआ तथा वह आज तक जारी है।

1830 तक अनाज की फसल हाथ के औजारों से काटी जाती थी। गृह-युद्ध से पहले का सर्वाधिक महत्वपूर्ण कृषि आविष्कार पजीकृत कटाई मशीन (mechanical reaper) का रहा। 1857 तक इस्पात के बने हल भी लोकप्रिय हो गये। इस्पात के खुदाई यन्त्र, जुताई मशीनें तथा गाहने की मशीनें भी 1860 तक खूब काम में लिये जा रहे थे। किन्तु इन मशीनों से बहुत कम श्रम की बचत होती थी। 1880 के बाद सयुक्त फसल कटाई व गाहक यन्त्र (combined harvestor-thresher) काम में लिये जाने लगे। 1900 में तो ऐसे अनेक कृषि यन्त्र काम में लिये जा रहे थे जिन्हें पशु शक्ति से चलाया जाता था। 1900 में उपलब्ध पशु शक्ति 18 5 मिलियन अश्व शक्ति क्षमता (horse power) की थी।

1905 में पैट्रोल से चलने वाला ट्रैक्टर बना। प्रथम विश्व-युद्ध तक यह स्पष्ट हो गया कि ये ट्रैक्टर पशु शक्ति को प्रतिस्थापित कर देंगे। 1920 में ही देश में 2 5 लाख ट्रैक्टर हो चुके थे तथा उनकी सख्या तेजी से बढ़ रही थी। पशुओं की नस्ल, मिट्टी की किस्म तथा पौधों की क्षमता सुधारने में विज्ञान का उपयोग भी 1920 के बाद लोकप्रिय हो गया। कृषि में आधुनिक विज्ञान के 'चमत्कार' तो अभी देखे जाने शेष थे किन्तु उनकी नींव रखी जा चुकी थी।

(ii) *गृह युद्ध तथा कृषि के लिए खराब समय* (1864–1896)—गृह-युद्ध के निकट का समय कृषि के लिए खराब रहा। कृषि पदार्थों की पूर्ति उनकी माँग

[1] *Ibid*, 255

की तुलना मे काफी तेजी से बढ रही थी इसलिए उनके मूल्य इतने घट गये थे कि उनसे लागत भी पूरी नही मिल पा रही थी। इसलिए इस अवधि मे कृषि आय काफी गिरी हालांकि खेतो की सख्या तिगुनी हो गई तथा कृषि पदार्थों के उत्पादन का वक्र भी काफी ऊपर चढा।

खेतो की सख्या मे वृद्धि

वर्ष	खेतो की सख्या (मिलियन मे)
1860	2 04
1870	2 66
1880	4 00
1890	4 57
1900	5 74
1910	6 41
1920	6 52

Source Historical Statistics of the United States, 278

हालाकि जनसख्या मे वृद्धि जारी थी किन्तु कृषि पदार्थों की खरीद पर प्रतिशत प्रति व्यक्ति व्यय घट रहा था। 1870 मे लोग अपनी चालू आय का 33% कृषिगत पदार्थो पर खर्च करते थे। 1890 मे यह गिरकर 20% रह गया। इस तरह जहाँ जनसाधारण की आय बढी, वही उन आमदनियो का कृषि क्षेत्र को जाने वाला अनुपात घटता गया।

इस बीच कृषि निर्यात 1870 के 297 मिलियन डॉलर के स्तर से बढकर 1900 तक 840 मिलियन डॉलर तक पहुँच गये। इस निर्यात माँग ने कृषि क्षेत्र की सहायता की किन्तु प्रभावी घरेलू माँग के अभाव मे वह अधिक कुछ प्राप्त नही कर पाया। इसके अतिरिक्त 1865 से 1896 तक अमरीका मे औद्योगिक उत्पादन की विकास दर इतनी तीव्र नही थी कि वह कृषि उत्पादन मे होनी वाली वृद्धि को काम मे ले सकती। गृह युद्ध के बाद उद्योगो मे इतनी तेजी से वृद्धि नही हुई कि वे लाभकारी मूल्यो पर कच्चा माल तथा खाद्य पदार्थ कृषि क्षेत्र से खरीद पाते।

(iii) स्वर्णकाल (1896–1915)—इस काल मे अमरीकी किसान की आर्थिक स्थिति मे महान् सुधार हुए। हालाकि कृषि उत्पादन मे धीमापन आया फिर भी उसके मूल्य काफी बढे तथा कृषि आय मे काफी वृद्धि हुई। कृषि पर आश्रित जनसख्या 32 मिलियन के स्तर पर आकर स्थिर हो गई चूँकि कृपक समुदाय के लोग शहरो मे जाकर पेशेवर बनने लग गये थे। इस तरह 1911 से 1915 तक कृषि आय का प्रति व्यक्ति स्तर 370 डॉलर था जबकि औद्योगिक आय 595 डॉलर थी। फिर भी यह एक अच्छा अनुपात था। कई कृपक अब भी निर्धन थे किन्तु बड़े भूस्वामियो की आर्थिक स्थिति मे भारी सुधार हुआ।

औद्योगिक व कृषि उत्पादन सूचक
(1895=100)

वर्ष	औद्योगिक उत्पादन	कृषि उत्पादन
1895	100	100
1900	120	119
1905	174	130
1910	198	132
1915	256	150

Source T W Schultz, *Agriculture in an Unstable Economy*, 1945, 115

उपर्युक्त तालिका से यह स्पष्ट हो जाता है कि 1895–1915 की अवधि मे जहाँ कृषि उत्पादन मे 50% की वृद्धि हुई वही औद्योगिक उत्पादन 156% बढ गया। उद्योगो के प्रसार की इस तीव्र गति का एक लाभ यह रहा कि वे कृषि-क्षेत्र के अतिरेक का उपयोग करने मे समर्थ हो गये जिससे कृषि आमदनियाँ भी बढी।

(iv) कृषि पर प्रथम विश्व युद्ध के प्रभाव—प्रथम विश्व-युद्ध अमरीकी कृषि के लिए महान् समृद्धि लेकर आया। युद्ध मे सम्मिलित राष्ट्र अपने यहाँ के कृषि-क्षेत्र से लोगो को निकलने के लिए विवश हो गये जिससे उनका कृषि-उत्पादन काफी घट गया। ऐसी परिस्थिति मे ये देश अमरीका से अत्यधिक ऊँचे मूल्यों पर भी खाद्यानो का आयात करने के लिए बाध्य हो गये। अमरीकी भूमिपतियो ने इन देशो की मजबूरी का भरपूर लाभ उठाया।

लेकिन रॉबर्टसन का कहना है कि अनेक लेखको ने अमरीकी कृषि पर प्रथम विश्व-युद्ध के प्रभावो को बढा-चढा कर बताया है। गेहूँ की 1 अरब बुशल की रिकॉर्ड फसल 1915 मे प्राप्त की गई। हालांकि यह उत्पादन बाद के वर्षों मे कम हो गया किन्तु युद्ध के वर्षों मे भी गेहूँ के उत्पादन मे ही सर्वाधिक वृद्धि हुई। इसके अन्तर्गत कृषित-क्षेत्र भी अन्य फसलो की कीमत पर बढा। इसी का परिणाम था कि प्रथम विश्व-युद्ध के समय गेहूँ का उत्पादन 1909–13 के औसत उत्पादन से भी 38% अधिक रहा।

यदि सभी खाद्य फसलो को लिया जाये तो 1914–19 के दौरान उनके अन्तर्गत कुल कृषित क्षेत्र 203 मिलियन एकड से बढकर 227 मिलियन एकड हो

कृषि एव औद्योगिक उत्पादन सूचकाक

वर्ष	औद्योगिक उत्पादन	कृषि उत्पादन
1915	100	100
1916	119	96
1917	118	99
1918	117	105
1919	102	106
1920	111	107

Source Schultz, *op cit*, 121

गया। समस्त खाद्यान्नों का उत्पादन प्रथम विश्व-युद्ध के दौरान 5% बढ़ा जबकि उनके अन्तर्गत आने वाले कृषित क्षेत्र में 12% की वृद्धि हुई। पशुओं की संख्या में 16% की वृद्धि हुई। युद्ध-पूर्व के अपने स्तर की तुलना में तम्बाकू के अन्तर्गत कृषित क्षेत्रफल में 1920 तक 60% की वृद्धि हुई।

(५) कृषि आन्दोलन व प्रदर्शन—उन्नीसवीं शताब्दी में अमरीकी किसान बड़ी दयनीय अवस्था में थे। पश्चिम की ओर प्रस्थान तथा गृह-युद्ध से उनको और भी कठिनाइयाँ उठानी पड़ीं क्योंकि कृषि पदार्थों के मूल्य घटते रहे। किसान लोग विशेष रूप से बैंकरों, रेल सड़क कम्पनियों तथा बड़े भूस्वामियों से विशेष रूप से नाराज थे जिन्हें वे अपना शोषक मानते थे। इस अवधि में चार महत्त्वपूर्ण कृषक आन्दोलन संघ संगठित हुए :

(अ) ग्रैंजर्स (The Grangers) पहला कृषक संगठन था जो 1867 में गठित किया गया था। 1874 तक इसकी सदस्य संख्या 1.5 मिलियन हो गई थी। लेकिन 1880 के बाद इसकी अवनति आरम्भ हो गई। हालांकि यह एक गैर-राजनीतिक संगठन था किन्तु इसने सुधारों के लिए दबाव डाला। यह पश्चिमी प्रदेशों में कृषकों के लिए कई रियायतें व छूटें प्राप्त कर पाने में सफल भी हुआ। इस संघ ने एक बहुत अच्छा सहकारी संगठन भी गठित किया जो ग्रैंज सदस्यों को उचित मूल्य पर सामान्य आवश्यकताओं की वस्तुओं तथा कृषि-औजार उपलब्ध कराता था।

(आ) ग्रीनबैक आन्दोलन (Greenback Movement) ग्रैंज के ही असन्तुष्ट सदस्यों द्वारा आरम्भ किया गया। किन्तु यह समूह बुरी तरह असफल रहा हालांकि इसने एक ग्रीनबैक लेबर नामक एक राजनीतिक दल भी बनाया जिसने 1878 के चुनावों में कुछ सीटें भी जीती थीं। किसानों द्वारा राष्ट्रीय स्तर पर राजनीतिक गतिविधियों में भाग लेने का यह पहला प्रयास था।

(इ) मैत्री संघ (Alliances) स्वतन्त्र कृषक क्लब थे जो दक्षिणी व पश्चिमी राज्यों में गठित किए गये थे। इन स्वतन्त्र क्लबों ने मिलकर नॉर्थ वेस्टर्न अलाएन्स तथा सदर्न अलाएन्स (North Western Alliance and Southern Alliance) बनाये। इन अलाएन्सों ने मौद्रिक सुधारों की वकालत की तथा ये राजकीय नियमन पक्ष में थे। किन्तु इन्हें इनके क्रान्तिकारी विचारों के लिये अधिक समर्थन प्राप्त नहीं हुआ।

(ई) पाप्युलिस्टों (The Populists) ने अपने आपको जनरल वीवर (General Weaver) के नेतृत्व में 1891 में गठित किया। ये लोग एकाधिकार के घोर विरोधी थे। इन्होंने बैंकों, रेलरोड कम्पनियों तथा सन्देशवाहन के साधनों पर सरकारी स्वामित्व की माँग की। किन्तु उनके इस अति क्रान्तिकारी रुख ने उन्हें अन्य परम्परावादी किसानों से विलग कर दिया।

इस प्रकार इस अवधि में आयोजित ये कृषि आन्दोलन कृषक समुदाय की सहायता करने में अधिक सफल नहीं हो पाये। किन्तु उन्होंने भारी वैधानिक सुधारों के लिए मार्ग अवश्य प्रशस्त कर दिया।

(६) सरकारी सहायता—पश्चिमी प्रदेशों में जाने वाले अगुवाओं का उन्नीसवीं सदी के विभिन्न भूमि विधेयकों का लाभ मिला था। किन्तु इन विधेयकों

ने कृषि विकास का कोई कार्यक्रम तैयार नही किया था। हालांकि कृषि विभाग की स्थापना तो 1839 मे ही कर दी गई थी किन्तु उसे मन्त्री स्तर का दर्जा 1889 मे जाकर प्रदान किया गया। 1920 तक विभाग के अधीन तीन कार्य थे . (अ) शोध एव प्रयोग, (आ) कृषि जानकारी का प्रसार, तथा (इ) उत्पादो की किस्म का नियमन।

1860 तक अनेक राज्यो मे कृषि कॉलेज खोले जा चुके थे। 1887 मे पारित हेच विधेयक (Hatch Act, 1887) मे कृषि सस्थानो को सघीय वित्त सहायता देने का प्रावधान किया गया। 1917 के स्मिथ ह्यूस-विधेयक (Smith-Hughes Act) मे कृषि मे व्यावसायिक प्रशिक्षण स्कूल स्तर पर देने के लिए प्रावधान किया गया। 1917 मे पारित दो अन्य अधिनियम भी महत्त्वपूर्ण थे। पहले विधेयक ने कृषि विभाग को यह अधिकार प्रदान किया कि वह खेतो पर खाद्य पदार्थों के उत्पादन व अनुरक्षण को प्रोत्साहन दे। दूसरे विधेयक ने सरकार को खाद्य पदार्थ पशु आहार तथा ईंधन जिसमे खनिज तेल तथा प्राकृतिक गैस भी सम्मिलित थे, तथा खाद व रासायनिक खादो के अवयव, औजार, बर्तन, उपकरण, मशीनें तथा खाद्य पदार्थों, आहारो व ईंधन के वास्तविक उत्पादन के लिए वांछित यन्त्रादि पर नियन्त्रण रखने का अधिकार प्रदान किया। देश मे खाद्य समस्या का सही हल खोज निकालने के लिए हर्बर्ट हूवर की अध्यक्षता मे एक राष्ट्रीय खाद्य प्रशासन भी स्थापित किया गया।

अमरीकी कृषि का प्रसार · 1920–1962

(1) **कृषि समृद्धि**—1921 म कृषि मूल्यो मे मामूली सी गिरावट आयी किन्तु 1925 तक वह पुन ठीक हो गयी। फिर भी किसान समुदाय अप्रसन्न ही रहा तथा वह सुधारवादी विधेयको के लिए माग करता रहा। भूमि के मूल्यो मे अप्रत्याशित वृद्धि हो चुकी थी तथा 1920 मे तो कुछ राज्यो मे एक एकड जमीन 500 डॉलरो तक बिकने लगी थी। 1920 के बाद वाले दशक म किसानो ने भारी मात्रा मे जमीन खरीदी तथा उनका ऋण दायित्व काफी ऊँचा हो गया। 1923 मे ये ऋण दायित्व 11 अरब डॉलर के थे।

किन्तु ये सब कठिनाइयाँ महान् मन्दी से उत्पन्न कष्टो को देखते हुए कुछ भी नही थी। कृषि वस्तुओ का मूल्य निर्देशांक जनवरी 1930 के 147 के स्तर से घट कर फरवरी 1933 तक केवल 57 (1909–14=100) रह गया। कृषि व गैर-कृषि आय के बीच खाई और चौडी हो गई। समग्र कृषि आय जो 1929 मे 14 अरब डॉलर थी। घटकर 1932 मे 6 5 अरब डॉलर रह गई। कृषक लोग अपनी ऋण की स्थाई जिम्मेदारी निभाने मे भी असमर्थ हो गये।

कृषि मूल्यों में पुन वृद्धि का क्रम अप्रैल 1933 से शुरू हुआ तथा वे 1937 मे पुन 131 के स्तर तक पहुँच गये। कुल कृषि आय भी, जो 1932 मे 6 5 अरब डॉलर रह गई थी, 1940 तक बढ़कर 11 अरब डॉलर की हो गई। द्वितीय महायुद्ध से भी मन्दीग्रस्त कृषि को काफी राहत मिली। यह अनुमान लगाया

गया है कि जब द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान औद्योगिक उत्पादन मे 30% की वार्षिक वृद्धि हुई, कृषि उत्पादन भी 5% की दर से बढा। 1946 मे मूल्य नियन्त्रण हटा लिए जाने से भी कृषि मूल्य काफी बढ गये। 1954 तक आते-आते कृषि उत्पादन युद्ध-पूर्व के स्तर से 40% अधिक हो चुका था।

उच्च उत्पादन स्तर तथा अनुकूल कृषि मूल्यो ने मिलकर 1940 तथा 1950 के दशको मे अमरीकी कृपको को समृद्ध बनाने मे महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। 1950 मे कृपको की डॉलर आय 1940 की तुलना मे तीन गुना थी। मूल्यो का समायोजन करने पर भी उनकी वास्तविक आय मे 50% की वृद्धि हो चुकी थी। कुल कृषि आय 1947 मे 17 अरब डॉलर मूल्य की थी। 1962 मे यह 40 अरब डॉलर के स्तर पर पहुंच गई। किन्तु ये महत्त्वपूर्ण वृद्धियाँ भी कृपक समुदाय को सन्तुष्ट नही कर सकी क्योकि इस दौरान गैर कृषि क्षेत्र की आय मे इससे भी अधिक तेजी से वृद्धि हुई थी।

(2) **कृषि कानून**—1920 से पहले सघीय सरकार द्वारा पारित कानूनो का कृषि पर कोई प्रत्यक्ष प्रभाव नही पडा। 1933 से 1941 के बीच पारित कानूनो का उद्देश्य अमरीकी कृषि का मन्दी से पुनरुद्धार करना था। द्वितीय महायुद्ध के दौरान पारित कृषि कानूनो का उद्देश्य कृषि उत्पादन को प्रोत्साहन देना था। युद्धोत्तरकालीन वर्षों मे इन कानूनो का उद्देश्य कृषि व गैर-कृषि आय के बीच वैषम्य घटाना रहा है।

फ्रेंकलिन रूजवेल्ट के राष्ट्रपति चुन लिये जाने के बाद अमरीकी कृषि नीति मे आधारभूत परिवर्तन हुए। अमरीकी कृषि पदार्थों का अन्तर्राष्ट्रीय बाजारो मे राशिपातन (dumping) करने के समर्थको की विजय हुई जब 1933–34 मे डॉलर का अवमूल्यन किया गया। कृषि समायोजन विधेयक (Agricultural Adjustment Act) 1933 मे पारित किया गया। इस विधेयक के अन्तर्गत एक कृषि समायोजन प्रशासन (Agricultural Adjustment Administration or A A A) स्थापित किया गया। इस प्रशासन को कृषिगत पदार्थों की पूर्ति सीमित रखकर उनका मूल्य चढाने का दायित्व सौंपा गया। कृषि समायोजन प्रशासन (A A A) अगली मौसम मे फसलो की बुवाई के क्षेत्रफल का निर्धारण करता था। उन किसानो को समायोजन भुगतान (Adjustment Allowance) या मुआवजा दिया जाता था जो प्रशासन के निर्देशानुसार अपने कृषित क्षेत्र को सीमित करते थे।

लेकिन कृषि समायोजन प्रशासन (A A A) की मूल योजना को सर्वोच्च न्यायालय ने 1936 मे असाविधानिक करार दे दिया। 1938 मे एक सशोधित विधेयक पारित किया गया। मुख्य अनाजो के मूल्यो को समर्थन देने के उद्देश्य से वस्तु साख निगम (Commodity Credit Corporation, C C C) भी 1933 से कार्य कर रहा था। 1938 के सशोधित कृषि समायोजन विधेयक (A A A) ने वस्तुओं के प्रतिकूल ऋण देने के वस्तु साख निगम (C C C) के अधिकारो को और भी बढा दिया। 1939 से 1941 के बीच निगम (C C C) ने गेहूँ, कपास, तम्बाकू तथा अनाज के विशाल भण्डार एकत्रित कर लिये। सरकार इन भण्डारो को

द्वितीय विश्व-युद्ध के दौरान भारी लाभ पर बेचने मे सफल हुई।

द्वितीय विश्व-युद्ध ने अमरीकी कृषि के सम्मुख उपस्थित समस्याओ के स्वरूप को बदल दिया। कृषि उत्पादन मे वृद्धि करना समय की सबसे बडी आवश्यकता बन गई। 1941 मे काग्रेस ने इस सम्बन्ध मे अनेक विधेयक पारित किये। वस्तु साख निगम (CCC) को मुख्य फसलो को उनके मूल्य के 85% तक समर्थन प्रदान करने के निर्देश दिये गये। तिलहनो व मांस के उत्पादन मे बढोत्तरी करने पर अधिक बल दिया गया। किन्तु युद्ध के वर्षों मे मूल्य समर्थन की आवश्यकता ही नही पडी। 1944 से 1946 तक निगम (CCC) ने बहुत कम ऋण स्वीकृत किये। फसलें उगाने पर लगे हुए अधिकाश प्रतिबन्धो को भी द्वितीय महायुद्ध के दौरान हटा लिया गया।

लेकिन द्वितीय महायुद्ध का यह समृद्धि का काल बहुत कम समय का मेहमान रहा। 1948 के बाद पुन एक बार कृषि मूल्यो मे गिरावट शुरू हो गई। वस्तु साख निगम को फिर एक बार ऋण देने की आवश्यकता पड गई। 1949 मे एक कृषि विधेयक लाया गया। इस विधेयक ने कृषि पदार्थों को आधारभूत, गैर-आधारभूत तथा शेष वस्तुएँ, इन तीन श्रेणियो मे वर्गीकृत कर दिया। आधारभूत वस्तुओ को भरपूर समर्थन प्रदान किया गया। 1954 तक निगम ने 7 अरब डॉलर के ऋण दे दिये थे। गेहूँ, मक्का तथा अन्य आधारभूत अनाजो के भारी अतिरेक ने चिन्ता खडी कर दी। कनेडी प्रशासन ने 1961 मे एक विधेयक पारित किया जिसमे गेहूँ तथा मक्का के अन्तर्गत कृषित क्षेत्र मे भारी कमी का प्रस्ताव था। कुल कृषित क्षेत्र के 23% से घटकर यह 1962 मे 18% के स्तर तक आ गया।

(3) माग व पूर्ति के बीच असन्तुलन—1920 के बाद के दशको मे अमरीकी कृषि को हमेशा ही अधिक पूर्ति व कम माग से ग्रस्त होना पडा है। इसके परिणामस्वरूप कृषि मूल्य केवल लागत के बराबर रह पाये है। अत्यधिक पूर्ति के लिए निम्न तत्त्व उत्तरदायी रहे हैं

(अ) 1920 के बाद से अब तक अनाज के उत्पादन मे लगा हुआ 350 मिलियन एकड का कृषित क्षेत्र लगभग स्थिर बना रहा है।

(आ) तकनीकी प्रगति तथा यन्त्रीकरण ने उत्पादकता मे निरन्तर वृद्धि की है। सिर्फ ट्रेक्टरों की सख्या ही 1960 मे 4 75 मिलियन हो चुकी थी जो 1920 मे केवल 2 5 लाख थी।

(इ) मौसम मे अननुमेय उतार-चढाव आये है जैसे गेहूँ का उत्पादन 1933 से 1936 तक औसत उत्पादन स्तर से भी 25% नीचा रहा जबकि वही उत्पादन 1942 में औसत से 44% अधिक था।

(ई) कृषि उत्पादन की मूल्यो के प्रति प्रतिसवेदनशीलता (responsiveness) अत्यधिक धीमी रही है। इसमे समय का अन्तराल बना रहता है।

कृषि पदार्थों के लिए अपेक्षाकृत मन्द माँग के लिए उत्तरदायी कारणो को भी इस प्रकार निचोड कर रखा जा सकता है.

(अ) सयुक्त राज्य अमरीका मे जनसख्या वृद्धि की दर मे कमी आ चुकी

है। यह कमी 1910 के बाद से आई है। 1880 मे जनसख्या वृद्धि की वार्षिक दर 2 6% थी जो 1940 मे घटकर 0 72% रह गई थी। 1960 मे यह बढकर 1 8% पहुँच गई किन्तु 1979 मे यह पुन 1 प्रतिशत से कम पर आ चुकी है।

(आ) कृषि पदार्थों के लिए माँग की आय व मूल्य लोच-शीलता का नीचा होना भी कृषि पदार्थों के लिए होनी वाली वास्तविक माँग को प्रभावित करता रहा है। अनुभवजन्य अध्ययनो से यही स्पष्ट हुआ है कि कृषि पदार्थों के लिए माँग की आय लोच कई दशको से काफी नीची रही है तथा आय मे वृद्धि के साथ इसमें और भी कमी आने की सम्भावना बनी हुई है। कृषि उत्पादन मे भविष्य केवल उन्ही वस्तुओं के साथ है जिन्हें 'खाने मे अच्छी' माना जाता है।

(इ) उपभोक्ताओ की रुचि में परिवर्तन, पोषक आहार की आवश्यकताओ के प्रति जानकारी बढने आदि ने भी खाद्य पदार्थों की माँग को अनाजो से अन्य वस्तुओ की ओर मोड दिया है।

(ई) कृषि पदार्थों से प्रतिद्वन्द्विता करने वाले अन्य औद्योगिक पदार्थों के विकास ने भी कृषि पदार्थों की माग मे कमी की है। उदाहरण के लिए कृत्रिम धागों ने कपास व ऊन की माँग को काफी गिराया है।

(उ) औद्योगिक उत्पादन मे उतार चढावो ने भी कृषि पर विपरीत प्रभाव डाला है। 1896 से 1915 तक के कृषि के स्वर्ण युग मे उद्योगो का प्रसार भी तीव्र गति से हुआ था जिसके कारण कृषि पदार्थों का अतिरेक उसमे खप गया था।

1941 से 1948 तक की अवधि मे कृषि का विकास स्वाभाविक था क्योकि इस बीच घरेलू अर्थव्यवस्था मे भी तेजी का चक्र चला तथा कृषि निर्यातो मे भी तेजी से वृद्धि हुई। 1940 से 1953 के बीच औद्योगिक एव कृषि पदार्थों का उत्पादन अत्यधिक मात्रा मे बढा।

औद्योगिक एव कृषि उत्पादन सूचकाक 1940–1953
(1940=100)

वर्ष	औद्योगिक उत्पादन	कृषि उत्पादन
1940	100	100
1941	130	104
1942	*158	116
1943	190	114
1944	187	118
1945	160	117
1946	134	121
1947	149	116
1950	167	124
1951	179	126
1953	200	131

Source R M Robertson *op cit*, 453

इसके बाद वाले दशक मे कृषि उत्पादन फिर एक बार लड़खड़ाया क्योंकि इस अवधि मे औद्योगिक उत्पादन भी घिसटता रहा। 1953 से 1962 की अवधि मे औद्योगिक उत्पादन कृषि उत्पादन को पीछे छोड देने मे विशेष सफलता प्राप्त नही कर पाया।

औद्योगिक एव कृषि उत्पादन सूचकाक *(1953–1962)*
(1953=100)

वर्ष	औद्योगिक उत्पादन	कृषि उत्पादन
1953	100	100
1955	106	103
1957	110	102
1959	116	111
1961	120	115
1962	130	116

(4) **निर्यातो मे कमी**—दोनो महायुद्धो को छोडकर 1910 के बाद से ही अमरीकी खाद्य पदार्थों तथा पशुओ पर आधारित उत्पादो के लिए निर्यात बाजार मे बराबर कमजोरी बनी रही है। 1930 के बाद तथा 1940 के अन्त तक कृषि निर्यातो मे मामूली वृद्धि हुई। 1940 मे तो वे केवल 500 मिलियन डॉलर थे जो पिछले 50 सालो मे न्यूनतम थे। द्वितीय महायुद्ध के बाद अमरीकी सरकार ने कृषि अतिरेक को विदेशी बाजारो मे राशिपातन (dumping) हेतु उपयोग मे लेने की नीति अगीकार की। युद्धोत्तरकालीन वर्षों मे भारी मात्रा मे किये गये कृषि निर्यात ऋण एव भेट दिये जाने के कारण ही सम्भव हुए। 1948–49 के मध्य किये गये कुल कृषि निर्यातो मे से लगभग 60% के लिए वित्त का प्रबन्ध अमरीकी विदेश सहायता कार्यक्रम के अन्तर्गत किया गया था। 1954 से पी० एल० 480 के अन्तर्गत अमरीका ने अतिरेक वाले अनाजो के निर्यात के लिए भारी अनुदान की व्यवस्था की। व्यापारिक फसलो का निर्यात, जो 1953 मे 2500 मिलियन डॉलर के लगभग था, 1962 मे बढकर 3,500 मिलियन डॉलर तक पहुँच गया। किन्तु *इनमे से भी 40% निर्यात विशुद्ध रूप से सहायता के रूप मे थे।*

(5) **न्यू डील (New Deal) नीति के अन्तर्गत व उसके बाद अमरीकी कृषि**—1933 मे स्वीकार की गई न्यू डील नीति (New Deal Policy) मे मन्दी के आघात से मुक्त हो चुकी कृषि को पुनरुज्जीवित करने के उद्देश्य से निम्न महत्वपूर्ण कार्यक्रम सम्मिलित किये गये थे (अ) कृषि साख सुविधाएँ, (आ) मिट्टी-सरक्षण कार्यक्रम, (इ) कृषि समायोजन कार्यक्रम (Agricultural Adjustment Programme)।

न्यू डील कार्यक्रम ने अमरीका के दूरस्थ भागो मे मिट्टी के सरक्षण, बाढ नियन्त्रण तथा वैज्ञानिक खेती जैसे कार्यक्रमो को प्रोत्साहन दिया। कृषक आबादी के लिए सामाजिक सुरक्षा योजनाएँ भी तैयार की गयी। किन्तु न्यू डील नीति ने यह

अनुभव कर लिया कि मन्दी का मुख्य कारण अति-उत्पादन ही था। जैसा कि पहले भी लिखा जा चुका है, 1933 में एक कृषि समायोजन कार्यक्रम शुरू किया गया जिसका उद्देश्य सब आधारभूत अनाजों का उत्पादन घटाना था। इसके अन्तर्गत गेहूँ व कपास के अन्तर्गत आने वाले कृषित क्षेत्रों के एकड़ों को कम किया गया तथा किसानों को मुआवजे के रूप में 'लाभ-भुगतान' (benefit-payments) किये गये। किन्तु पदार्थों के मूल्यों में वृद्धि करने तथा उसके फलस्वरूप कृषि-क्षेत्र में समृद्धि लाने के लिए कृत्रिम अभाव उत्पन्न करने वाली इस नीति की सफलता के बारे में शुरू से ही सन्देह रहा। अच्छे बीजों तथा सुधरे हुए रासायनिक खादों के प्रयोग के कारण कृषि के अन्तर्गत लिये एकड़ कम कर देने के बाद भी किसानों ने पहले से अधिक फसलें पैदा कीं। इस तरह न्यू डील नीति भी अमरीकी कृषि की मूल समस्याओं का समाधान खोजने में सफल नहीं हुई। ये मूल समस्याएँ थीं (अ) अपर्याप्त मांग, तथा (आ) उत्पादन की ऊँची लागत। केवल द्वितीय महायुद्ध ही इन समस्याओं को हल कर पाया किन्तु वह भी अस्थाई तौर से।

(6) **द्वितीय महायुद्धोत्तर कालीन परिवर्तन**—युद्धोत्तर कालीन अमरीकी कृषि के युग में दो प्रकार के फार्म प्रमुख रहे हैं : व्यावसायिक फार्म तथा गैर व्यावसायिक फार्म। व्यावसायिक फार्म अक्सर बड़े व यन्त्रीकृत होते हैं जबकि गैर व्यावसायिक फार्म 'पिछवाड़े के गाय रखने व बगीचा लगाने वाले' फार्म होते हैं। व्यावसायिक फार्म अपने व्यवसाय के परिमाण को इस सीमा तक बढ़ाने में सफल हो चुके हैं कि जिससे कृषक परिवार को सन्तोषप्रद आय प्राप्त हो सकने के आसार काफी अच्छे हैं।

कृषि उत्पादन भी द्वितीय महायुद्ध के बाद से निरन्तर बढ़ता जा रहा है। अनाज का उत्पादन तो 1959 में ही 200 मिलियन टन की सीमा पार कर चुका था। 1930 की तुलना में पौल्ट्री तथा मांस का उत्पादन भी 1960 तक दुगुना हो चुका था। कृषि पदार्थों के उत्पादन में यह वृद्धि भूमि व श्रम की बढ़ी हुई उत्पादकता का परिणाम रही है। कार्यकुशलता में यह सुधार उत्पादन के साधनों को विभक्त करने व उनका समन्वयन करने में अधिक सुस्पष्टता होने, उन्नत किस्म की फसलों व संकर पशुओं का उपयोग करने, पशु व पौध संरक्षण कार्यक्रमों द्वारा इस सम्बन्ध में होने वाले नुकसानों को घटाने—तथा सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण—खेतों की देखभाल करने वालों की प्रबन्ध कुशलता में वृद्धि का मिला-जुला परिणाम रहा है।

द्वितीय विश्व-युद्ध के बाद की कृषि का एक अन्य महत्त्वपूर्ण पहलू श्रम का पूँजी द्वारा निरन्तर प्रतिस्थापन रहा है। 1958 में मशीनी शक्ति का उपयोग स्तर युद्ध पूर्व, की तुलना में ढाई-गुना था। उत्पादकता में वृद्धि तथा श्रम के स्थान पर बढ़ते हुए पूँजी के प्रयोग ने मिलकर कृषि से काफी जनशक्ति को मुक्त कर दिया है। 1965 में कुल श्रम-शक्ति का केवल 8.5% भाग कृषि कार्यों में लगा हुआ था। यह घटकर 1979 में 5% से भी नीचे आ गया है। हालांकि खेतों की कुल संख्या में कमी आई है किन्तु उनका औसत आकार काफी बढ़ गया है।

युद्धोत्तरकालीन वर्षों में पशुपालन पर भी काफी ध्यान दिया गया है।

लगभग एक अरब एकड़ भूमि चरागाहों के रूप मे प्रयुक्त हो रही है । युद्धोत्तर काल के किसान अब व्यापार के साथ करीबी रिश्ता कायम कर चुके है । वे उन उद्योगो के साथ सीधे अनुबन्ध करने लगे हैं जो उनसे कच्चा माल खरीदने के इच्छुक होते है ।

अमरीकी कृषि की समस्याएँ

(1) विशाल फार्मों का कृषि उत्पादन मे बहुत बड़ा भाग है । 1959 मे 56% बड़े फार्मो का 95% कृषि पदार्थों की बिक्री पर अधिकार बना हुआ था । छोटे खेतो पर लगे हुए लोगों की सख्या घटाने जैसे कई सुधारवादी उपाय करने के बाद भी लगभग 40% छोटे कृषको के लिए गरीबी की समस्या अभी भी बनी हुई है ।

(2) आसामी कृषको (tenant farmers) की समस्या भी 1960 के दशक तक बनी रही । 1880 मे 25% अमरीकी किसान आसामी थे । यह सख्या 1920 मे बढकर 40% हो गई थी । यहाँ तक कि 1960 मे भी यह अनुमान था कि अनाज व गेहूँ के क्षेत्रो मे 40% के लगभग कृषि कार्य आसामियो द्वारा ही किया जा रहा था ।

(3) कृषि क्षेत्र मे भी गरीबी दक्षिणी प्रदेशो मे अधिक स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है । इस क्षेत्र की कृषि को पहला आघात तब लगा जब 1862 मे दासो को मुक्त कर दिया गया । गृह-युद्ध के 75 वर्षो के बाद भी दक्षिणी प्रदेशो की औद्योगिक विकास की गति धीमी बनी रही तथा जनसख्या के समक्ष जीवन निर्वाह खेती से मुक्ति पाने के कोई विशेष अवसर नही रहे । दूसरे महायुद्ध तक भी दक्षिणी प्रदेशों की कृषि गैर-दक्षिणी प्रदेशो की कृषि से घटिया थी । 1962 तक भी प्रति फार्म उपलब्ध भूमि का औसत दक्षिणी प्रान्तो मे गैर दक्षिणी प्रान्तो के मुकाबले आधा था तथा वहाँ हर सात फार्मो के बीच एक ट्रैक्टर का औसत आता था जबकि गैर-दक्षिणी प्रान्तो मे यही औसत 2 फार्मों के बीच एक ट्रैक्टर का था ।

(4) पश्चिम की ओर प्रस्थान के आन्दोलन के समय से ही कृषि पदार्थों के अतिरेक की समस्या ने अमरीकी कृषि को हैरान कर रखा है । यहाँ तक कि 1961 की एक राष्ट्रपति द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट मे भी यह कहा गया कि 'समस्या का परिमाण अतिरेक के आकार द्वारा प्रदर्शित होता है · पिछले साल का अतिरिक्त अनाज इतना है कि वह अगले 6 महीनो तक देश के सारे पशुओ के लिए पर्याप्त है''' कपास का अतिरिक्त स्टॉक इतना है कि वह अगले 6 महीनो तक मिलो को चलाने के लिए पर्याप्त हैं । स्पष्ट हैं कि स्थिति मे सुधार के लिए उत्पादन का प्रभावी माँग के साथ समायोजन वाछनीय है । जब तक यह समायोजन नही हो जाता तब तक अतिरेक की समस्या—चाहे वह प्रसुप्त ही क्यो न हो—लोगो की चिन्ता का एक प्रमुख विषय बनी रहेगी ।'

कृषि सुधार कार्यक्रम

कृषि मे तकनीकी सुधार का आशय रहा है देश को तथा सारे ससार को अधिक खाद्यान्न, पशुओ को अधिक आहार तथा लोगो को अधिक वस्त्र । लेकिन गृह

युद्ध के बाद से ही अमरीकी कृषि को अनेक मन्दियो से गुजरना पडा है। केवल 1895–1920 तथा 1941–52 की दो अवधियो को छोडकर केवल बहुत अधिक कार्यकुशल कृषक ही कृषि को वास्तव मे लाभकारी बनाने मे सफल रहे हैं।

हमने उन अनेक कार्यक्रमो को प्रस्तुत किया है जो सघीय सरकार ने न्यू डील के दौरान व उसके बाद भी कृषि विकास के लिए लागू किये है। लेकिन इनमे से अधिकाश कार्यक्रमो ने केवल बडे उत्पादको को ही लाभ पहुँचाया है। सबसे अधिक अनुदान सबसे बडे भूस्वामियो को मिले। जब न्यू डील के अन्तर्गत कृषित एकडो पर सीमा लगाई गई तब भी इन्ही बडे भूस्वामियो को सबसे अधिक मुआवजे की राशि मिली क्योकि एकडो मे सर्वाधिक कमी भी यही लोग कर सकते थे। छोटे किसानो की स्थिति मे पिछले कुछ वर्षों मे सुधार आया है किन्तु वैसा कार्यशील जनसख्या के अन्य क्षेत्रो मे चले जाने से हुआ है। अमरीका मे यही बात सही रही है। 1790 मे 90% कार्यशील जनसख्या कृषि मे लगी हुई थी। 1960 मे यह 10 प्रतिशत से भी कम हो गयी थी। अपने चरम बिन्दु पर 1916 मे कृषि पर आश्रित जनसख्या 32 5 मिलियन थी जो 1961 मे 15 मिलियन से भी कम रह गई थी। इस बात पर विश्वास नही होता कि इतनी कम कार्यशील जनसख्या इतना अधिक अन्न उत्पादन करती है कि वह न केवल अमरीका के लिए पर्याप्त है बल्कि शेष विश्व भी उसका लाभ उठा रहा है।

अन्य क्षेत्रो मे अधिक लाभकारी अवसरो ने भी कृषि क्षेत्र से जनसख्या का निष्क्रमण तीव्र बनाया है। अकेले 1961 मे कृषि जनसख्या मे 6 लाख की कमी आई थी। अधिकाश कृषि सगठन उन उपायो से सन्तुष्ट थे जो कृषि मे सुधार की दृष्टि से 1960 के बाद किये गये। यहाँ तक कि अहस्तक्षेप की नीति के उत्साही प्रवक्ता भी अब यह मानने लगे है कि आर्थिक उतार-चढावो से किसानो की रक्षा करने के लिए किसी न किसी प्रकार का सघीय कृषि कार्यक्रम आवश्यक होता है। कृषि ने मन्दी का मुकाबला हमेशा उत्पादन के स्तर को बनाये रखकर व मूल्यो को गिरने देकर किया है जबकि उद्योगो की प्रतिक्रिया इसकी बिलकुल विपरीत रही है। यह उपभोक्ताओ की दृष्टि से अच्छी बात हो सकती है किन्तु कृषको के लिए यह बडी कठिनाई उत्पन्न कर देती है। 1960 के बाद से तो अर्थशास्त्री इस बात पर एक मत हैं कि बार-बार आने वाली मन्दियो की बुराई से बचाने के लिए एक कृषि कार्यक्रम बनाया जाना आवश्यक है। इस प्रकार के कार्यक्रम से स्वतन्त्रता की अवधारणा मे किसी प्रकार की बाधा उपस्थित नही होती।

किन्तु यह एक दुख का विषय है कि द्वितीय महायुद्ध के बाद पारित किये गये अधिकाश विधेयक कृषि के क्षेत्र मे वाछित परिणाम प्राप्त कर पाने मे असफल रहे हैं। 1958 मे आर्थिक विकास के लिए नियुक्त समिति ने ठीक ही लिखा था कि, 'पिछले 25 वर्षों की सरकारी नीति तथा अबाध रूप से किये गये विनियोगो के उपरान्त इन तीन कृषि कठिनाइयो—अति उत्पादन, कृषि आय की अस्थिरता तथा कुछ किसानो की घोर दरिद्रता की स्थिति—म से एक भी आसान नही हुई है।'

1979 में अमरीकी कृषि

(i) कृषि कार्य मे लगाये गये एक घण्टे की उत्पादकता अब 1935 की तुलना मे 4 गुना हो चुकी है। 1935 मे एक कृषक 10 लोगो का पेट भर सकता था।

(ii) अमरीकी उपभोक्ता, जिसके सामने अत्यन्त आकर्षक खाद्य पदार्थ चयन के लिए उपलब्ध हैं, अपने घर ले जा सकने योग्य आय का लगभग केवल 17% खाने पीने के सामानो पर खर्च करता है जबकि पिछले दो दशको मे इन चीजो के दाम अत्यधिक बढ चुके हैं।

(iii) हालांकि कृषि जनसख्या 1935 के 30 मिलियन से भी अधिक के स्तर से घटकर 9 5 मिलियन पर आ चुकी है, जो मुख्य रूप से अमरीकी समाज के शहरीकरण से हुआ है, कृषि-उद्योग का निरन्तर प्रसार होता जा रहा है। मौद्रिक अर्थो मे कृषि आज भी अमरीका का अकेला सबसे बड़ा उद्योग है जिसके परिसम्पत् 3,00,000 मिलियन डॉलर से भी अधिक मूल्य के हैं।

(iv) पिछले अनेक वर्षो मे अमरीका मे खेत कम व बड़े होते जा रहे है। खेतो की 2 8 मिलियन की वर्तमान सख्या 1935 की आधी से कम है। हालांकि हर साल करीब 1,00,000 खेत लुप्त हो जाते है किन्तु वे खो नही जाते बल्कि वे अधिक कुशल उत्पादन हेतु पडोस के किसी खेत मे विलीन हो जाते है।

(v) अधिकाश खेत अभी भी 'पारिवारिक खेत' बने हुए हैं यद्यपि उनका औसत आकार अब 150 हैक्टेयर के लगभग हो चुका है जो 1935 मे 62 हैक्टेयर ही था। बड़े आकार के खेत, जिन पर अधिकाश कार्य भाडे के मजदूरो व मशीनो से किया जाता है, देश के कृषि उत्पादन का आधे से भी कम उत्पादन करते है। इस तरह पारिवारिक खेत (family farms) अभी भी अमरीकी कृषि की विशिष्टता बने हुए हैं।

फसले क्षेत्र, उत्पादकता, उत्पादन (1974–76)

फसल	बोया गया क्षेत्र ('000 एकड)		प्रति एकड उपज		उत्पादन	
	1974	1976	1974	1976	1974	1976
अनाज का उत्पादन (कुल)	65357	67222	71 (बुशल)	87	46 63,631	62,16 000
गेहूँ	65613	70824	27 (बुशल)	30	17,96,187	21,47,401
चावल	2536	2501	4432 (Cwt)	4567	1,12,394	1 17,011
तम्बाकू	962	1043	2067 (पौण्ड)	2044	19 89 728	21,34,114
गन्ना	734	759	33 (टन)	37	24,812	25,790

Source : Agricultural Statistics, 1977

की दृष्टि से हम 1815 मे घरेलू स्तर पर चल रहे निर्मित माल उद्योग तथा 1815 से 1860 तक औद्योगिक विकास की प्रवृत्तियो की समीक्षा कर सकते हैं। इसके बाद हम फैक्ट्री प्रणाली के अभ्युदय (Rise of the Factory System) की भी जाँच कर सकते है।

(i) घरेलू निर्मित माल उद्योग (Household Manufacturing)—घरेलू स्तर पर चलाया जा रहा निर्मित माल उद्योग 1805 से 1815 तक अपने चरम बिन्दु पर था। 1820 म अमरीका के कुल सूती वस्त्र का ⅔ भाग अमरीकी परिवारो द्वारा तैयार किया गया था। लेकिन घरेलू स्तर पर चल रहे इन निर्मित माल के उद्योगो की 1830 के बाद अवनति प्रारम्भ हो गई। वे सूती वस्त्र तथा खाद्य पदार्थों को ससाधित (processing) करने की शाखाओ को छोड अन्य सभी उत्पादन की विधाओ से लुप्त होने लग गये। यह अवनति आधुनिक यातायात के साधनो तथा औद्योगिक सगठन के विकास के कारण आयी। फिर भी 1850 तक कुशल कारीगर (craftsmen) ही अधिकाश निर्मित माल के उत्पादन क लिए उत्तरदायी थे। 1815 से 1860 की अवधि मे छोटे-छोटे मिल भी क्रियाशील थे। 1860 की एक सगणना के अनुसार उस वर्ष देश मे लगभग 20,000 लकडी चीरने का काम करने वाले मिल (sawmills) तथा 14,000 आटे के मिल (flour mills) थे। छोटे पैमाने पर चलाये जा रहे चर्म शोधक कारखाने, शराब के कारखाने तथा लोहे की भट्टियाँ स्थानीय बाजारो के लिए माल की पूर्ति करते थे।

(ii) कारखाना प्रणाली (The Factory System)—1845 तक ऊपर वर्णित उत्पादन पद्धतियाँ पुरानी व समयातीत (outdated) हो चुकी थी। प्रो० ए० पी० अशर (A P User) ने कारखाना प्रणाली के आगमन से पहले के वर्षो तथा उसके आगमन के बाद के वर्षों के बीच अन्तर बड़े सुन्दर ढग से अभिव्यक्त किया है 'सर्वाधिक प्रमुख विशेषता जो औद्योगिक क्रान्ति' के बाद की अवधि को उसके पूर्वगामी वर्षों से भिन्न बनाती है वह शारीरिक श्रम (Manual Labour) के स्थान पर मशीनो के प्रतिस्थापन की व्यापकता रही है।'

इस काल के दो सबसे महत्त्वपूर्ण घटना-क्रम इस प्रकार रहे (1) भाप की शक्ति का सफल रूप मे उपयोग, तथा (2) वस्त्र उद्योग के आधारभूत ससाधनो (basic processes) मे शक्ति का प्रयोग। सूती वस्तुएँ निर्मित करने के क्षेत्र मे अत्यधिक तीव्र परिवर्तन हुए। 1860 तक अमरीकी सूती वस्त्र उद्योग लगभग पूरी तरह से यन्त्रीकृत हो चुका था। 1815 से 1860 के बीच पिछली अवधि मे हुए आविष्कारो मे सुधार भी किया गया। इस काल मे ब्रिटिश नवप्रवर्तनो (innovations) को भी अमरीका मे शुरू किया गया।

कारखानो का विकास सबसे पहले सूती वस्त्र उद्योग मे हुआ। 1805 से 1815 के बीच केवल न्यू इग्लैण्ड मे 94 नई सूती मिले निर्मित की जा चुकी थी। 1860 तक न्यु इग्लैण्ड के मिलो मे तकुओ की सख्या चार गुनी हो चुकी थी तथा वहाँ के मिल देश के कुल सूती वस्त्र उत्पादन का तीन-चौथाई भाग निर्मित कर रहे थे। सूती वस्त्र के उत्पादन मे कारखानो ने अपनी श्रेष्ठता प्रदर्शित कर दी थी।

1830 के बाद ऊन उद्योग भी इसी आधार पर सगठित होने लगा। 1860 तक तो वह इस अवस्था मे पहुँच चुका था कि अमरीका की सर्वाधिक विशाल कपडा मिलें ऊनी फैक्ट्रियाँ ही थी।

अधिकाश अन्य उद्योगो मे 1830 से 1860 तक अवधि प्रसार एव नई उत्पादन पद्धतियो के साथ प्रयोगो की रही। 1845 तक लोहा उद्योग के क्षेत्र में अनेको नए प्रतिष्ठान स्थापित हो चुके थे। गृह युद्ध से पहले ब्रेडीज बैंड आयरन कम्पनी (Brady's Bend Iron Company) अमरीका की सबसे विशाल लोहा उत्पादक कम्पनियो मे से थी। 1850 तक तो अमरीकी फैक्ट्रियाँ हथियारो, दीवार घडियो व कलाई घडियो तथा सिलाई मशीनो जैसी चीजो का भारी मात्रा मे उत्पादन करने लग गई थी। सवारी गाडियाँ, वैगन तथा खेती के काम आने वाले औजारो का भी भारी मात्रा मे उत्पादन आरम्भ हो चुका था। ऐसे कारखानो मे भारी स्थिर विनियोग किया गया जिनके बाजार स्थानीय ही न होकर अधिक विशाल थे।

अमरीकी निर्मित वस्तुएँ (U S Manufactures) 1860

मद	वस्तु का कुल मूल्य (मिलियन डॉलरो मे)
सूती वस्तुएँ	107
इमारती लकडी	104
जूते व बूट	92
आटा	248
वस्त्र (सिले सिलाये)	80
लोहा	73
मशीनें	52
ऊनी वस्तुएँ	61
सवारी गाडियाँ, वैगन	36
चमडा	67

Source Eighth Census of the U S Manufactures.

रॉबर्टसन[1] ने अनुमान लगाया है कि 1810 से 1860 तक की अवधि मे निर्मित वस्तुओ की कुल अर्हता (value) 200 मिलियन डॉलर से बढकर 2,000 मिलियन डॉलर अर्थात् दस गुना हो गई। यह स्पष्ट दिखाई देता है कि निर्मित माल उद्योग ने गृह-युद्ध के पहले के 15 वर्षों मे असाधारण प्रगति की। किन्तु कृषि अब भी पहले स्थान पर थी तथा उद्योगो मे कुल पूँजी विनियोग कृषि भूमि तथा भवनो मे लगी हुई पूँजी का केवल छठा भाग था। इतना होने के बाद भी निर्मित माल उत्पादन के क्षेत्र मे अमरीका का विश्व मे स्थान ग्रेट ब्रिटेन के बाद ही अर्थात् दूसरा था तथा वह विश्व का औद्योगिक नेतृत्व करने की दिशा मे निरन्तर आगे बढता जा रहा था।

[1] *Ibid*, 204

2. उद्योग में आधारभूत परिवर्तनों (Key Changes) का काल : 1860–1920

1880 के दशक तक कृषि ही अमरीका में आय सृजन करने वाला सबसे प्रमुख स्रोत थी। लेकिन 1900 तक निर्मित माल का वार्षिक मूल्य कृषि उत्पादन का दुगुना हो चुका था। 1910 तक अमरीकी फैक्ट्रियाँ अपने सबसे निकट के प्रतिद्वन्द्वी जर्मनी के मुकाबले दुगुना उत्पादन कर रही थी। 1913 में अमरीका का औद्योगिक उत्पादन विश्व के कुल औद्योगिक उत्पादन का एक-तिहाई था।[1]

लेकिन यहाँ यह स्पष्ट कर देना उचित होगा कि अमरीकी औद्योगिक विकास यूरोपीय देशो के औद्योगिक विकास से दो अर्थों में भिन्न रहा (1) अमरीका के औद्योगिक उत्पाद 1900 तक प्रमुख रूप से घरेलू बाजार में ही बेचे जाते रहे। साहसियो को ऊँचे तटकरो द्वारा सुरक्षित एव निरन्तर फैलते हुए बाजार देश की सीमाओ के भीतर ही उपलब्ध थे। (2) इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण बात आत्म-निर्भरता की थी। यूरोप के देश कच्चे माल का बाहर के देशो से आयात करने के लिए मजबूर थे। इसके विपरीत जैसा कि बी० एस० क्लार्क ने लिखा है, 'अमरीका की औद्योगिक प्रगति श्रमिकों को कच्चे माल के पास ले जाने का परिणाम थी।'

(1) **तकनीकी परिवर्तन तथा उद्योगो का बढ़ता हुआ आकार**—जैसा कि पहले ही लिखा जा चुका है गृह-युद्ध से पहले सूती वस्त्र उद्योग के उत्पादन में शक्ति चालित मशीनो का प्रयोग काफी सफल रहा था। किन्तु सूती वस्त्र उत्पादन के क्षेत्र में सबसे प्रमुख घटना 1895 में नॉर्थरप (Northrup) द्वारा विकसित स्वचालित करघे की रही। 1900 के बाद स्वचालन के क्षेत्र में और आगे प्रगति हुई। प्रथम विश्व युद्ध के पहले तक दोनो प्राकृतिक धागो, सूत व ऊन, के सम्मुख कोई गम्भीर प्रतिद्वन्द्वी नही था। यद्यपि कृत्रिम धागे (Rayon) के लिए पहला स्वत्वाधिकार (Patent) 1884 में फ्रांस में प्राप्त कर लिया गया था किन्तु कृत्रिम रेशो ने प्राकृतिक धागो के सामने 1920 के पहले तक भी कोई गम्भीर सकट नही उपस्थित किया था।

सिलाई मशीनो के अधिक व्यापक उपयोग के साथ ही सिले-सिलाये वस्त्रो के उद्योगो ने भी काफी तीव्र गति से प्रगति की। 1895 तक सिलाई मशीनें भी शक्ति-चालित बन चुकी थी तथा प्रथम विश्व युद्ध आरम्भ होने से पहले ही प्रेसिंग मशीनें हाथ से इस्त्री करने की पद्धति के स्थान पर प्रतिस्थापित की जाने लगी थी। एक ही नाप की ड्रेसें (standard size dresses) थोक स्तर पर तैयार की जाने लगी थी। जूता बनाने वाले उद्योग की तकनीक में भी भारी परिवर्तन हुआ। 1875 में गुड-ईयर वेल्ट प्रक्रिया (Goodyear Welt Process) को शुरू किया गया जिससे जूते के तलो (soles) को उनके ऊपरी भाग से बिना कीलो के उपयोग के जोडा जा सकता था। 1914 तक जूते निर्मित करने का अधिकांश कार्य मशीनो द्वारा किया जाने लगा था। खाद्य पदार्थो को डिब्बा बन्द (food canning) करने का उद्योग भी 1920 के बाद से दिखाई देने लगा था।

[1] *Ibid*, 331-58

(ii) **पूँजीगत वस्तुओ के उत्पादन का यन्त्रीकरण**—भारी मात्रा मे इस्पात तैयार कर सकने की प्रथम सफल विधि का एक अंग्रेज हेनरी टॉमस बेसेमर तथा एक अमरीकी विलियम केली (William Kelly) ने मिलकर तैयार की थी। संयुक्त राज्य मे यह विधि 1880 के आसपास स्वीकार की गई। विद्युत चालित भट्टी भी 1910 के लगभग काम मे लेना प्रारम्भ किया गया। 1920 से पूर्व लोहा व इस्पात उद्योग के क्षेत्र मे सबसे महत्त्वपूर्ण घटना विभिन्न प्रक्रियाओ के एक दूसरे से जोड देने (integration of processes) की रही जिससे ताप की भारी मात्रा मे बचत सम्भव हो गई। इससे उत्पादन मे अत्यधिक मितव्ययिता आयी।

प्रथम महायुद्ध से पहले इस्पात उत्पादन के क्षेत्र मे हुए दो प्रमुख परिवर्तनो का उल्लेख खास तौर से किया जा सकता है। पहला परिवर्तन आधारभूत खुली भट्टी (basic open hearth) प्रणाली की श्रेष्ठता व उसका तीव्र गति से उपयोग रहा। यह प्रणाली बेसेमर तथा केली द्वारा विकसित प्रणाली से काफी सुधरी हुई प्रणाली थी। इस प्रणाली की लागत बेसेमर प्रक्रिया (Bessemer process) की लागत से काफी नीची रही। दूसरा महत्त्वपूर्ण परिवर्तन मिश्रित इस्पात (alloy steal) का बढता हुआ उपयोग था। प्रथम विश्व युद्ध छिडने तक तो अमरीका मिश्रित इस्पात का विश्व मे एक अग्रणी उत्पादक राष्ट्र बन चुका था। 1910 मे 5 लाख टन से भी अधिक मिश्रित इस्पात का वार्षिक उत्पादन किया जाने लगा था। औद्योगिक उथल-पुथल के इस काल मे अलोह धातुओ (nonferrous metals) का उत्पादन भी निरन्तर बढती हुई मात्राओ मे किया जाने लगा था।

गृह-युद्ध के बाद भाप से चलने वाले इंजिनो व बॉयलरो मे भी कई सुधार हुए। अधिक सुरक्षा के साथ उच्च दबाव प्राप्त किये गये। मशीनी औजारो के क्षेत्र मे एकरूपता, परिशुद्धता तथा डिजाइनो की सादगी की तरफ प्रगति हुई। 1910 के बाद सारे अमरीका मे ओहियो शहर मशीनी औजारो के उत्पादन का प्रमुख केन्द्र बन गया। 1890 के बाद दो महत्वपूर्ण तकनीकी प्रगतियाँ की जा चुकी थी : (अ) मशीनी औजारो को अर्द्ध-स्वचालित या स्वचालित बना दिया गया, तथा (आ) सम्पीडित वायु (compressed air) तथा विद्युत शक्ति का तेजी से धातु-कटाई करने वाले औजारो तथा प्रेसो (presses) को चलाने के लिये उपयोग शुरू हो गया।

(iii) **शक्ति के नये स्रोत**—1860 से 1920 की अवधि मे वायु, जल तथा पशु व मानव शक्ति के उपयोग से शक्ति के अन्य साधनो के उपयोग की दिशा मे भारी परिवर्तन हो चुका था। 1870 के बाद के दशक मे भाप की शक्ति ने पानी की शक्ति से बाजी मार ली थी। 1882 मे न्यूयॉर्क शहर मे एडीसन (Edison) द्वारा निर्मित केन्द्रीय पावर प्लान्ट अमरीका मे विद्युत शक्ति के विकास के इतिहास की एक महान् घटना थी। 1920 तक तो विद्युत शक्ति प्रजनन 40 अरब किलोवाट घण्टे हो चुका था। इस तरह 1920 मे उद्योगो मे काम आने वाली कुल शक्ति का एक-तिहाई भाग विद्युत् प्रजनन से प्राप्त हो रहा था। यह अनुपात विश्व मे सबसे ऊँचा था। 1920 मे कोयला फिर भी शक्ति का सबसे मुख्य स्रोत बना हुआ था। लेकिन पेट्रोलियम ऊर्जा के महान् स्रोत के रूप मे उभरने लगा था तथा जल विद्युत् (Hydro power)

भी दौड़ में सम्मिलित हो चुकी थी। अगले 25 वर्षों में यही दोनों शक्ति के प्रधान स्रोत बनने वाले थे।

(iv) पुंजोत्पादन (Mass Production) की शुरुआत—1860 से लेकर 1920 तक चलने वाली अमरीकी औद्योगिक क्रान्ति के युग की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण प्रवृत्ति पुंजोत्पादन तथा वैज्ञानिक प्रबन्ध का एक-दूसरे से सम्बन्धित विकास होना रही। पुंजोत्पादन (*mass production*) की इस अभिव्यक्ति में आधुनिक अमरीकी उद्योग की लगभग सारी की सारी विशेषताएँ आ जाती हैं। इसमें उच्च स्तर का यन्त्रीकरण सम्मिलित है। 1920 से पहले ही अधिकांश उद्योगों द्वारा मोटर चालित कनवेयरस् (conveyors) प्रयोग में लिये जाने लगे थे। प्रशिक्षित प्रबन्धकों को अप्रशिक्षित प्रबन्धकों की जगह लगाया जा रहा था तथा वैज्ञानिक प्रबन्ध (scientific management) की अवधारणा जोर पकड़ती जा रही थी।

(v) उद्योग का सकेन्द्रण (Concentration)—तकनीकी परिवर्तनों का एक स्वाभाविक परिणाम यही हुआ कि फर्म का आकार काफी बड़ा हो गया। गृह युद्ध के बाद से ही फर्मों के विशाल होने की प्रवृत्ति स्पष्ट होने लग गई थी। 1880 के लगभग एक 'समूह आन्दोलन' (combination movement) या न्यासों का अभ्युदय (rise of trusts) आरम्भ हुआ। 1880 से 1905 के बीच विशालता प्राप्त करने की प्रक्रिया और भी तीव्र हो गई क्योंकि अनेकों छोटी फर्मों ने विलयीकरण (amalgamation) के प्रयास शुरू कर दिये थे।

उद्योग में सकेन्द्रण की तीन मुख्य प्रवृत्तियाँ देखने में आ रही थी (अ) विभिन्न फर्मों का प्रबन्ध मिला-जुला बनाया गया जिससे वे बाजार को बाँट सकें, (आ) फर्मों के वित्तीय ढाँचे का जोड़ना, तथा (इ) एक ही विशाल नई फर्म बनाने के इरादे से छोटी फर्मों के प्रबन्ध, वित्तीय ढाँचे तथा भौतिक सम्पदाओं को साथ में मिलाना। प्रथम प्रकार के समूहीकरण (combination) के प्रयास कोयला, इस्पात, नमक तथा माँस उत्पादक उद्योगों द्वारा 1890 के दशक में किये गये। किन्तु इन एकीकरण के समझौतों (pooling agreements) से कोई विशेष अर्थ हल नहीं हुआ। इसमें कई कानूनी कमजोरियाँ थी। दूसरी प्रकार के समूह भी चीनी, मिट्टी का तेल, वनस्पति तेल आदि के उत्पादन का नियन्त्रण करने की दृष्टि से न्यासों के रूप में 1900 तथा उसके बाद के वर्षों में सामने आये। किन्तु इन न्यासों का घोर विरोध हुआ तथा इन्हें कानूनन अवैध भी घोषित कर दिया गया। अनेक महत्त्वाकांक्षी साहसकर्त्ताओं ने तीसरी प्रकार के समूहों को पसन्द किया जिनमें फर्मों का पूरी तरह से विलय किया जाना था। समूह का रास्ता चाहे कोई भी क्यों न रहा हो, 1904 तक एक विशाल फर्म की उपस्थिति अमरीकी निर्मित माल उद्योग का प्रतीक बन गई।

यह सयोजन आन्दोलन (combination movement) दो चरणों में चला—प्रथम चरण जिसे आड़ा सयोजन (horizontal combination) कहा गया, 1879 से 1893 के बीच पुरानी खाद्य पदार्थ तैयार करने वाली फर्मों के सयोजन से आरम्भ हुआ; द्वितीय चरण जिसे खड़े सयोजन (vertical combination) का नाम दिया गया था 1898–1904 के बीच लगभग सभी पूँजीगत वस्तुएँ बनाने वाले उद्योगों व

कुछ उपभोक्ता वस्तु उद्योगों मे भी हुआ।

1870 तक अमरीका के प्रमुख उद्योग उसकी कृषि प्रधान अर्थव्यवस्था की सेवा करते रहे थे। केवल कुछ उन कम्पनियो को छोडकर जो धातु के बने पुर्जे या रेल की पटरियाँ बनाती थीं, शेष सारी कम्पनियाँ कृषि से प्राप्त वस्तुओं को समाधित करने के काम मे लगी हुई थी। किन्तु 1880 के बाद रेल-सडक परिवहन के विकास ने देश को एकीकृत कर दिया तथा एक राष्ट्रीय बाजार को जन्म दिया। माँग में वृद्धि हुई जिसके परिणामस्वरूप छोटी फर्मों का प्रसार हुआ। अपने आप को दिवालियेपन से बचाने के उद्देश्य से चमडा, चीनी, नमक, मिट्टी के तेल आदि की उत्पादक अनेक छोटी फर्में आडे सयोजन (horizontal combination) के अन्तर्गत बडी इकाइयो मे विलयीकृत हो गई। इस प्रकार जो बडी फर्में बनी उनके उदाहरण के रूप में स्टेण्डर्ड ऑयल कम्पनी, ओहियो, द डिस्टिलर्स एण्ड केटल फीडर्स ट्रस्ट आदि को लिया जा सकता है। इनमे सबसे शानदार कम्पनी स्टेण्डर्ड ऑयल कम्पनी रही। इस कम्पनी का गठन ओहियो की एक रॉकफेलर फर्म द्वारा 1869 मे किया गया था। 1878 तक तो स्टेण्डर्ड ऑयल कम्पनी के पास देश की कुल तेल शोधन क्षमता का 90% स्वामित्व हाथ मे आ चुका था।

इस्पात के क्षेत्र मे कार्नेगी कम्पनी ने 1890 तक अपनी सम्पत्ति का दृढीकरण कर लिया था तथा विशाल लोहा व कोयला भण्डारो पर अपना स्वामित्व कायम कर लिया था। एक अन्य सयोजन से जो मॉर्गन के साथ हुआ, यूनाइटेड स्टेट्स् स्टील कॉर्पोरेशन का 1901 मे जन्म हुआ जिसकी पूँजी स्थापना के समय ही 1 अरब डॉलर थी। सयोजन आन्दोलन का निष्कर्ष निकालने मे हम इस सन्दर्भ मे लाइवमोर के अमरीकी उद्योगो के सम्बन्ध मे दिये गये अनुमानो को ले सकते है। लाइवमोर (Livemore) के अनुसार, 1888 से 1905 के बीच कुल मिलाकर 328 सयोजन हुए। इनमे से 156 सयोजन इतने बडे थे कि उनसे उनके क्षेत्रो पर उनका एकाधिकारिक नियन्त्रण हो गया था। इनमे से अनेक सयोजन असफल रहे किन्तु कुछ अब तक भीमकाय सगठन बन चुके है। 1904 तक निर्मित माल उद्योग मे लगी हुई 40% पूँजी पर इन्ही सयोजनो का नियन्त्रण था।

इसके बाद वाले 1905–1920 के काल मे सकेन्द्रण की यह प्रवृत्ति कुछ धीमी पड गई। कुछ बडी फर्में तो दिवालिया हो चुकी थी तथा कुछ फर्मों को न्यास-विरोधी कानूनो (Anti-trust laws) दण्डित भी किया गया था। स्टेण्डर्ड ऑयल कम्पनी ऑफ न्यूजर्सी तथा अमरीकन टोबेको कम्पनी को शर्मन एक्ट (Sherman Act) के अन्तर्गत विसर्जित (dissolve) कर दिया गया। केवल वाहन उद्योग (Automobile Industry) की फर्में शेष बच रही। 1905 से 1920 की अवधि मे सयोजन आन्दोलन आशिक रूप से तो इसलिये धीमा पड गया कि थोडे ही समय मे काफी अच्छी सीमा तक उत्पादन कार्यकुशलता मे वृद्धि हो चुकी थी तथा आशिक रूप से उसमे यह धीमापन इसलिए भी आया कि आधारभूत उद्योगो मे काफी सीमा तक एकाधिकारिक नियन्त्रण की स्थिति प्राप्त की जा चुकी थी।

(vi) **अमरीकी औद्योगिक क्रान्ति के प्रमुख कारण**—जैसा कि हम इन पिछले

पृष्ठों पर देख चुके हैं, अमरीकी गृह-युद्ध के बाद से लेकर प्रथम विश्व-युद्ध तक का समय वास्तव में अमरीकी उद्योगों के इतिहास में क्रान्ति का काल रहा। इस क्रान्ति को जन्म देने के लिए कई कारण उत्तरदायी रहे—

(अ) आयातों को प्रतिबन्धित करके स्वयं गृह-युद्ध ने निर्मित माल के लिए भारी माँग उत्पन्न कर दी थी।

(आ) देश में भूमि, जल तथा खनिजों के रूप में प्राकृतिक साधनों के विशाल भण्डार विद्यमान थे जो बाद में उद्योग का आधार बन गये।

(इ) बढ़ती हुई जनसंख्या से श्रम की पूर्ति में वृद्धि होती रही। आप्रवास ने भी देश में श्रम की आपूर्ति को बढ़ा दिया। बढ़ती हुई जनसंख्या से उद्योगों को न केवल सस्ता श्रम उपलब्ध हुआ बल्कि उनको विशाल बाजार भी प्राप्त हो गया।

(ई) गृह-युद्ध के बाद लगाये गये ऊँचे तटकरों ने भी उद्योगों को अत्यधिक संरक्षण प्रदान कर उनकी सहायता की।

(उ) सरकार ने आन्तरिक बाजार में अहस्तक्षेप की नीति का अनुसरण किया। इस नीति ने विदेशी प्रतिस्पर्द्धा से उद्योगों की सुरक्षा के साथ मिलकर उद्योगों के विकास में बड़ी सहायता की।

(ऊ) सस्ते जल परिवहन तथा रेलों के जाल बिछ जाने से भी उद्योगों के विकास में सहायता मिली। शक्ति चालित वाहनों (automobiles) के आविष्कार व राजमार्गों के निर्माण से भी महत्त्वपूर्ण योगदान मिला।

(ए) अभियान्त्रिकी (Engineering) के क्षेत्र में नये आविष्कारों ने अनेक नये उद्योगों के विकास को बढ़ावा दिया। बिजली का सामान, रेडियो, साइकिलें, वाहन तथा बाद में हवाई जहाजों का निर्माण करने वाले ऐसे ही कुछ उद्योग थे।

(ऐ) नये उद्योगों ने विज्ञान का प्रयोग प्रबन्ध व श्रम दोनों ही क्षेत्रों में किया। टेलर (Taylor) व उसके अनुयायियों ने इस आन्दोलन का नेतृत्व किया। टेलर का यह निश्चित मत था कि 'कार्य की प्रणालियां व उसमें लगने वाले समय का सही व ध्यानपूर्वक अध्ययन करने से किसी भी काम को कम से कम समय तथा अधिकतम कार्यकुशलता पूर्वक तरीके से करने की विधियाँ खोजी जा सकती हैं। अकुशल श्रमिकों को निकाल बाहर करने तथा श्रेष्ठ श्रमिकों को उत्तेजित करने हेतु मनोवैज्ञानिक दृष्टि से उपयुक्त मजदूरी प्रणाली का प्रयोग कर अधिक उत्पादन भी प्राप्त किया जा सकता है व मजदूरों की मात्रा भी बढ़ सकती है।'

(ओ) यह संयुक्त राज्य अमरीका का सौभाग्य था कि गृह युद्ध के बाद वहाँ ऐसे अनेक साहसी उद्यमकर्ता पैदा हुए जिन्होंने औद्योगीकरण की मशाल को जलाये रखा। बीसवीं शताब्दी के लगने के बाद तो कई महान् साहसकर्ता जैसे एण्ड्रयू कार्नेगी (Andrew Carnegie) इस्पात उद्योग में, फिलिप आर्मर (Philip Armour) माँस डिब्बा-बन्दी उद्योग में, जे० पी० मॉर्गन (J P Morgan) वित्तीय क्षेत्र में तथा जॉन डी० रॉकफेलर (John D Rockefeller) तेल शोधन उद्योग में अमरीकी औद्योगिक विकास को नई ऊँचाइयाँ प्रदान करने में लगे थे। इन औद्योगिक दैत्यों के अतिरिक्त ऐसे सैकड़ों छोटे निर्माता और भी थे 'जो अधिकतर इन्जीनियर, आविष्कारक

या वैज्ञानिक तथा व्यापारी का मिला-जुला रूप होते थे तथा जो अमरीकी निर्मित माल उद्योग के मूल निर्माता थे।'

(ओ) विकास के आरम्भिक चरण में ही पूँजी निर्माण व वित्तीय संस्थाओं का समुचित विकास भी औद्योगिक प्रगति में एक सहायक तत्त्व रहा। विदेशी विनियोग-कर्ताओं ने भी अमरीका में अपनी पूँजी का विनियोग करने में भारी रुचि प्रदर्शित की। देश में लगी हुई कुल विदेशी पूँजी जो 1860 में 400 मिलियन डॉलर थी 1914 तक बढ़कर 1,400 मिलियन डॉलर हो गई। स्वयं अमरीका भी प्रथम विश्व युद्ध छिड़ने तक पूँजी की उपलब्धि में आत्मनिर्भर हो चुका था।

3 *औद्योगिक परिपक्वता का युग 1920 से आज तक*

हर्मन क्रूज के अनुसार, 'नये उद्योग बराबर खुलते रहे व पुराने उद्योग किशोरावस्था से वयस्क बने ताकि बीसवीं सदी का निर्मित माल उद्योग उन्नीसवीं सदी *के निर्मित माल उद्योग से महत्त्वपूर्ण तरीके से भिन्न बन गया।'*

(i) **दो महायुद्धों के बीच का काल** (1920–1939)—उद्योगों के क्षेत्र में दो महायुद्धों के बीच के काल में तीन स्पष्ट प्रवृत्तियाँ देखने में आयीं। 1920 से 1921 तक एक हल्की सी मन्दी आई तथा अमरीकी राष्ट्रीय उत्पाद 40 अरब डॉलर से घटकर 37 6 अरब डॉलर पर आ गया। किन्तु इसके तुरन्त बाद एक अस्थाई तेजी का दौर भी आया। 1929 तक राष्ट्रीय उत्पाद का मूल्य बढ़कर 87 अरब डॉलर तक पहुँच गया। 1923–29 की अवधि में औद्योगिक उत्पादन 25% से बढ़ा। वाहन उद्योग (Automobile Industry) में सर्वाधिक तेजी से प्रसार हुआ। 1923–29 के दौरान ट्रकों व कारों का उत्पादन तो दुगुना हो गया। इसी तरह विद्युत् उत्पादन का स्तर भी 1920 के 43 अरब किलोवाट घण्टे की क्षमता से बढ़-*कर 1929 तक 97 अरब किलोवाट घण्टे हो गया। रिहायशी मकानों तथा* व्यावसायिक इमारतों के निर्माण कार्य में भी भारी तेजी देखने में आई।

किन्तु औद्योगिक गतिविधियों में यह प्रसार एकदम थम गया जब अमरीकी अर्थव्यवस्था 1929 के बाद मन्दी की गिरफ्त में आ गई। अर्थव्यवस्था अति-उत्पादन की अवस्था में पहुँच चुकी थी। शेयर बाजार अक्तूबर 1929 में समाप्त हो गया तथा व्यावसायिक गतिविधियाँ एकदम धीमी पड़ गयी। मूल्य गिरे तथा बेकारी बढ़ी। 1933 में फ्रैंकलिन रूजवेल्ट ने राष्ट्रपति पद सम्भाला तथा एक नया *कार्यक्रम शुरू किया जिसे न्यू डील (New Deal) नाम दिया गया।*

(ii) **संयोजन आन्दोलन (Combination Movement) का पुनरागमन**—खनिज उद्योग तथा निर्मित माल उद्योग में 1920 के बाद उद्योगों के संयोजन के आन्दोलन का पुनरागमन दिखाई दिया। 1920 से लेकर 1930 के बीच खनिज उद्योग व निर्मित माल उद्योग के क्षेत्र में 1268 नए संयोजन गठित हुए जिनमें 4,135 कम्पनियों का विलय हुआ। लगभग 5,591 कम्पनियों का अस्तित्व ही समाप्त हो गया। यह कहा गया कि 'दो कम्पनियाँ देश के इस्पात उत्पादन के

50% पर अधिकार रखे हुए हैं, तीन कम्पनियाँ वाहन (automobile) उद्योग पर छाई हुई हैं, एक फर्म का एल्यूमिनियम उत्पादन पर एकाधिकार है तथा चार विद्युत्, रोशनी व शक्ति प्रणालियाँ राष्ट्र के अधिकाश विद्युत् शक्ति प्रजनन पर कब्जा जमाए हुए है।' 1920 से 1930 के बीच सयोजन आन्दोलनो को कई तत्त्वो ने प्रोत्साहित किया। प्रथमत, 1923–29 की औद्योगिक समृद्धि ने सयोजनो को प्रोत्साहित किया। द्वितीयत, अमरीकी उद्योग एक ऐसी स्थिति मे पहुँच गए थे जहाँ पुनर्गठन या सयोजन के बिना आगे बढ सकना सम्भव ही नही था। तृतीयत, लोग अब इन सयोजनो को लाभप्रद समझने लगे थे। औसत अमरीकी के जीवन स्तर मे निरन्तर सुधार हो रहा था। चतुर्थत, सरकार ने भी सयोजन विरोधी रुख काफी कम कर दिया था। सरकार ने तो अपव्यय बचाने के उद्देश्य से व्यापार सघो के निर्माण को प्रोत्साहन देना शुरू कर दिया था।

सघीय सरकार ने नए विधेयक पारित किये जो सयोजनो (combinations) के प्रति अधिक सहनशील थे। सरकार भी गला-काट प्रतियोगिता को न्यूनतम करने की इच्छुक थी। 1936 मे पारित रोबिन्सन-पेटमैन विधेयक (Robinson-Patman Act, 1936) ने उन प्रतिबन्धो को कुछ नरम बनाया जो 1914 के क्लेटन विधेयक द्वारा लगाये गए थे। 1937 मे मिलर-टाईडिंग्स कानून (Miller-Tydings Act, 1937) पारित किया गया जिसने शर्मन न्याय-विरोधी कानून (Sherman anti-Trust Act) को सशोधित किया तथा निर्माताओ व वितरको के बीच मूल्य समझौतो की अनुमति प्रदान कर दी।

(*iii*) *द्वितीय विश्व-युद्ध के दौरान अमरीकी उद्योग*—द्वितीय महायुद्ध छिड़ने के आरम्भिक वर्षों मे अमरीकी उद्योग को इतना अधिक लाभ हुआ कि सितम्बर 1939 (युद्ध छिड़ने का समय) तथा दिसम्बर 1941 (पर्ल हार्बर पर जापानी आक्रमण का समय) के बीच उसका औद्योगिक उत्पादन दुगुना हो गया। अमरीकी वस्तुओ के लिए यूरोप के देशो की माँग अचानक बढ गई। अमरीकी सरकार ने मित्र राष्ट्रो की सहायता करने का निर्णय लिया क्योकि उसके विचार मे वे लोकतन्त्र की रक्षा के न्यायोचित उद्देश्य के लिए लड रहे थे। इसी उद्देश्य से अमरीका ने अपना रक्षा कार्यक्रम काफी तेज कर दिया। देश के भीतर भी 1939–41 के वर्षों मे उपभोक्ता वस्तुओं का उत्पादन काफी तेजी से बढ चुका था। सैनिक व नागरिक वस्तुओं के उत्पादन को साथ साथ बढाने के प्रयास किये गये। देश के पास पूँजी या श्रम का अभाव नही था जिसकी आवश्यकता उत्पादन का प्रसार करने के लिए थी। समस्या उत्पादन को सगठित करने की थी जिसमे निम्न कठिनाइयाँ आ रही थी (अ) सभी प्रकार की वस्तुओ, कच्चे मालो तथा खाद्य पदार्थों का उत्पादन एक साथ करने की आवश्यकता, (आ) नागरिक उपयोग की वस्तुएँ तैयार करने वाले निर्मित माल उद्योग का सैनिक साज-सामान उत्पादन के लिए रूपान्तरण, (इ) नयी फैक्ट्रियो का निर्माण तथा हथियार व गोला-बारूद के उत्पादन का नये तरीके से सगठन, और (ई) युद्ध की आवश्यकता को ध्यान मे रखते हुए प्राथमिकताओ, आवटनो व राशनिंग व्यवस्थाओ की स्थापना।

पूरे द्वितीय महायुद्ध काल मे युद्ध-सामग्री तैयार करने पर अमरीका द्वारा कुल मिलाकर 186 अरब डॉलर व्यय किये जाने के अनुमान लगाये गये हैं। इसका परिणाम यह निकला कि उसके टैंको की सख्या 1941 के मात्र 1,150 से बढकर 1945 तक 86,000 हो गयी तथा उसके लडाकू हवाई जहाजो का इस अवधि मे कुल उत्पादन 2,97,000 तक पहुँच गया। 1941–45 की अवधि मे अमरीका द्वारा मित्र-राष्ट्रो को भेजी गई कुल सैनिक सामग्री का मूल्य लगभग 50 अरब डॉलर रहा। युद्ध के दौरान मुख्य कमी अल्यूमिनियम, जहाजो, रबर, पैट्रोल तथा ऐसी ही कुछ अन्य चीजो की रही।

(iv) द्वितीय महायुद्ध के बाद का काल—जैसे ही दूसरा महायुद्ध समाप्त हुआ कुछ समय के लिए तो ऐसा लगा कि जैसे देश औद्योगिक क्षेत्र मे पुन मन्दी की तरफ अग्रसर हो रहा है। किन्तु वास्तव मे हल्का सा अवसाद (mild recession) ही आकर रह गया। वास्तव मे हुआ यह कि टिकाऊ वस्तुओं का उत्पादन युद्ध के बाद निरन्तर बढता चला गया। महान् मन्दी वापस कभी नही आई।

द्वितीय महायुद्ध के बाद दो प्रकार के उद्योग प्रमुख रूप से देखने मे आए हैं। प्रथम प्रकार के उद्योगो को 'धीमी प्रगति वाले उद्योग' (slow growth industries) कहा जा सकता है। इस प्रकार के उद्योगो मे वे उद्योग सम्मिलित थे जिनकी विकास दर कुल राष्ट्रीय उत्पाद (G N P) मे वृद्धि की दर से नीची थी। 1950 के बाद लोहा व इस्पात तथा वाहन उद्योग (automobiles) ऐसे ही उद्योगो मे गिने गये। जहाँ तक उत्पादन के कुल मूल्य का प्रश्न है लोहा व इस्पात आज भी सर्वप्रमुख आधारभूत उद्योग बना हुआ है। एक ऐसा भी समय था जब इस्पात उद्योग की विकास दर राष्ट्रीय उत्पाद मे वृद्धि की दर से ऊँची थी। यह कहा जाता था कि 'इस्पात उद्योग का व्यवहार एक परिपक्व अल्प क्रेताधिकारी (mature oligopoly) की विशेषताओं को प्रदर्शित करता है।'

द्वितीय महायुद्ध के बाद के वर्षों मे वाहन उद्योग को भी परिपक्व अल्प-क्रेताधिकारी उद्योग की सज्ञा दी गई। इस उद्योग मे फर्म का आकार शुरू से ही काफी विशाल रहा है। इसके अतिरिक्त डिजाइनें हर साल बदलती रहती हैं। 1955 के बाद उद्योग के सामने बडा कठिन समय आया जब कारो की विदेशी माँग घट गई। यहाँ तक कि स्वय अमरीका मे ही उद्योग को जापानी कारो की भीषण प्रतिद्वन्द्विता का सामना करना पडा।

द्वितीय महायुद्ध के बाद वाले वर्षो मे दूसरे वर्ग के उद्योगो को विकास उद्योग' कहा गया। रसायन उद्योग, इलेक्ट्रॉनिक्स ईंधन व शक्ति से सम्बन्धित उद्योग इन 'विकास उद्योगो' (Growth industries) की श्रेणी मे लिये गये। रसायन उद्योग ने युद्धोत्तरकालीन वर्षों मे असाधारण प्रगति की है। उसने पुराने चले आ रहे उत्पादो के प्रतिस्थापन मे महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी है। प्राकृतिक रेशो का स्थान अब कृत्रिम रेशो ने लिया है तथा प्राकृतिक रबर के स्थान पर भी अब रासायनिक रबर का प्रयोग हो रहा है। जैसे-जैसे उसकी निर्यात माँग बढी है वैसे-वैसे उद्योग ने प्रगति की है। रसायनो का रक्षा सामग्री के उत्पादन मे उपयोग तथा

रासायनिक, प्लास्टिक आदि उद्योगो मे भी उसके प्रयोग मे निरन्तर वृद्धि हुई है जिसने देश के रसायन-उद्योग को और भी आगे बढाने मे महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है।

इलेक्ट्रॉनिक्स का विकास तो पूरी तरह से युद्धोत्तरकालीन घटना कही जा सकती है। 1939 मे 49वें स्थान से आगे बढते-बढते 1956 मे ही यह उद्योग पाँचवे स्थान पर आ गया था। अब विद्युत् ही ऊर्जा का प्रमुख स्रोत है जिसे कोयले, पानी खनिज तेल या आणविक शक्ति द्वारा पैदा किया जाता है।

युद्धोत्तरकालीन वर्षों मे एकाधिकार एव सयोजन की समस्या ने एक नया ही रूप ले लिया है। द्वितीय महायुद्ध समाप्त होने के तुरन्त बाद सघीय न्याय विभाग (Justice Department) के न्यास-विरोधी खण्ड (Anti-trust Division) ने बड़ी कम्पनियो मे से 122 की जाँच की। सरकार ने काफी कड़ा एकाधिकार विरोधी रुख अपनाया। उसने स्वय अपने युद्ध के समय निर्मित अल्यूमिनियम प्लाट स्वतन्त्र निजी कम्पनियो को सौंप दिये।

सयोजनो (combinations) को प्रतिबन्धित करने के इरादे से महायुद्ध के बाद के पहले दशक मे तीन महत्त्वपूर्ण कानून बनाये गये। इनमे से प्रथम विधेयक सेलर-केफोवेर विलय विरोधी कानून (Cellar-Kefauver Anti-Trust Act) था। इस विधेयक को अन्य निगमो के सभी परिसपत् क्रय द्वारा अवाप्त कर लेने की प्रवृत्ति पर रोक लगाने के लिए पारित किया गया। इसका एक उद्देश्य सयोजनो के बीच आपसी प्रतिद्वन्द्विता को भी घटाना था। दूसरा कानून, जिसे मेकग्यूदरे विधेयक (McGuire Act, 1952) कहा गया, 1952 मे पारित हुआ। इसका उद्देश्य न्यूनतम पुनर्बिक्री मूल्य तय करने हेतु उचित-व्यापार अनुबन्धो को क्रियान्वित करवाना था। 1955 मे एक तीसरा परिवर्तन और किया गया जिसके अनुसार एंटी ट्रस्ट शर्मन एक्ट की अवज्ञा करने के अपराधी पर जुर्माने की रकम 5,000 डॉलर से बढाकर 50,000 डॉलर कर दी गई। इस तरह युद्धोत्तरकालीन वर्षों मे सरकारी कानूनों का उददेश्य न केवल बडी फर्मों की कार्य-कुशलता वृद्धि के ध्येय से प्रोत्साहित करने का रहा बल्कि उनका लक्ष्य यह भी था कि छोटी फर्मों को बडे सयोजनो द्वारा निगल लिये जाने से बचाया जाए। किन्तु इनमे से कई कानूनो को सयोजनो ने बडी चतुराई से क्रियान्वित होने से रोका है।

(v) निर्मित माल उद्योग की प्रधानता—फिर एक बार हम औद्योगिक परिवर्तनो वाले भाग की तरफ लौट सकते हैं। किसी भी माप से देखा जाए, आज की अमरीकी अर्थव्यवस्था मे निर्मित माल उद्योग का स्थान सर्वोपरि है। निर्मित माल वाले उद्योगो का वर्तमान मे लाभ मे जितना भाग है वह किसी भी अन्य वर्ग के उद्योग से अधिक है। यही हाल उपकरणों का है। निर्मित माल उद्योग मे काम पर लगे हुए लोगो का कुल श्रम शक्ति (गैर-कृषि) मे प्रतिशत 1947 के 35 से घटकर 1962 मे 30% तथा 1977 मे 32 7% पर आ जाने के उपरान्त इसमे रोजगार पाने वालो की सख्या अभी भी किसी भी अन्य उद्योग के मुकाबले अधिक है। महान् मन्दी के वर्षों को छोडकर हमेशा ही ¼ राष्ट्रीय आय निर्मित माल उद्योग

से प्राप्त होती रही है। अब राष्ट्रीय आय में इनका यह प्रतिशत भाग 30% हो चुका है।

उद्योग मूल से राष्ट्रीय आय : 1929–1977

(मिलियन डॉलर में)

	1929	1940	1945	1960	1977
कृषि, वन	8,278	6,247	14,889	17,286	44,600
खानें	2,048	1,868	2,717	5,207	1,00,400
निर्मित माल उद्योग	21,888	22,336	52,008	1,21,987	4,08,900
निर्माण	3,808	2,569	4,250	21,884	—
थोक, खुदरा व्यापार	13,358	14,337	27,997	67,963	2,37,000
वित्त, बीमा	12,693	8,208	12,830	42,537	1,77,900
यातायात	6,636	5,040	10,536	17,939	58,400
संचार	2,864	3,056	4,244	16,734	
सेवाएँ	10,338	8,854	14,614	49,150	2,13,100
सरकारी प्रतिष्ठान	5,093	8,762	36,764	52,506	2,32,700
शेष विश्व	810	357	369	2,287	17,300
सभी उद्योग योग	87,814	81,634	1,81,248	4,15,480	15,54,800

Source Statistical Abstract of the U S and the Survey of Current Business

संक्षेप में, आय सृजन की दृष्टि से निर्मित माल उद्योग (manufacturing) की आज वही सापेक्ष स्थिति है जो 100 वर्ष पहले कृषि की थी।

'अमरीका में 1870 के बाद से उत्पादन की प्रवृत्तियाँ' पर किया गया प्रो० आर्थर बर्न्स (Arthur Burns) का एक अध्ययन इस सन्दर्भ में उपयुक्त लगता है। प्रो० बर्न्स ने दो बातों का उल्लेख किया है—(अ) पहली बात वह है जिसे हम सब जानते हैं—कि किसी दिये हुए समय बिन्दु पर उद्योग घटते-गिरते हैं तथा जहाँ अधिकांश उद्योगों का विकास होता है वहीं कुछ की अवनति भी होती है, तथा (आ) दूसरा और अधिक महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष यह है कि जैसे-जैसे दशक बीतते हैं वैसे-वैसे व्यक्तिगत उद्योगों की प्रगति की दर अवरुद्ध होती जाती है।

इस तरह प्रो० बर्न्स निम्न निष्कर्षों पर पहुँचे हैं [1] (अ) कुछ विशिष्ट उद्योगों की विकास दर में गिरावट कुल उत्पादन में तीव्र वृद्धि का परिणाम होती है। नई वस्तुओं व सेवाओं के निरन्तर उत्पादन का यही अर्थ होगा कि पुरानी वस्तुओं की माँग सीमित होती चली जाए और नई वस्तुओं की उत्पादन गति जितनी तीव्र होगी पुरानी वस्तुओं के लिए प्रतिस्पर्धात्मक प्रभाव उतने ही अधिक होंगे। उदाहरण के लिए, जमी हुई खाने की चीजों (frozen foods) के लिए अधिक माँग ने डिब्बा बन्द खाने की चीजों (canned foods) की माँग पर विपरीत प्रभाव डाला है।

[1] *Ibid*, 539-68

टैलीविजन ने चलचित्रों पर गहरी चोट की है, रेडियो के उत्पादन को एकदम बदल दिया है और यहां तक कि पुस्तकों की बिक्री पर भी विपरीत प्रभाव डाला है।

(आ) नये व पुराने उद्योगो मे उत्पादन के साधनो के लिए तथा उपभोक्ताओं की पसन्दगी के लिए निरन्तर प्रतिस्पर्द्धा चलती रहती है। तकनीकी प्रगति से ससाधनो की सीमितता के रूप मे लगे हुए प्रतिबन्ध हटते या घटते हैं किन्तु तकनीकी प्रगति से जिस एक उद्योग को अधिक लाभ मिलता है उसके प्रतिद्वन्द्वियो की विकास दर उस सीमा तक तो अवरुद्ध हो ही जाती है।

'युद्धोत्तरकालीन औद्योगिक विकास' के उपशीर्षक के अन्तर्गत इस बात का उल्लेख पहले ही किया जा चुका है कि 'धीमी विकास गति वाले उद्योग' तथा 'विकास उद्योग' के रूप मे उद्योगो का दो प्रकार से वर्गीकरण किया गया है। यह वर्गीकरण प्रो० लुइस पेरेडिसो (Louis Paradiso) द्वारा अमरीकी वाणिज्य विभाग द्वारा सग्रहित आँकडो को आधार मानकर किया गया है। उन्होंने 1941–51 की अवधि के लिए 160 से भी अधिक उद्योगो के आँकडो को तीन वर्गों मे विभक्त किया तेजी से विकास करने वाले, साधारण गति से विकास करने वाले तथा अवनति करने वाले उद्योग। चूंकि इस अवधि म कुल राष्ट्रीय उत्पाद (GNP) 5% की औसत वार्षिक दर से बढी इसलिए ऐसे उद्योग तेजी से विकास करने वाले उद्योग माने गये जिनकी विकास दर 7 5% या उससे अधिक रही। ऐसे उद्योग जिनकी विकास दर शून्य से अधिक किन्तु 7 5% से कम रही उन्हे धीमी विकास गति वाले उद्योग माना गया। कुछ उद्योग अवनति (decline) के लक्षण भी दिखा रहे थे।

60 से भी अधिक उत्पाद तीव्र गति से विकास करने वाले उद्योगो की श्रेणी मे आये। एन्टीबायोटिक्स की वार्षिक विकास दर 118% की रही जो असाधारण कही जा सकती है। टेलीविजन सैटो का उत्पादन भी उतना ही तीव्र रहा। धीमी गति से विकास करने वाले उद्योगो मे अधिकांश पुराने उद्योग थे जिनमे मोटे मोटे खाद्य पदार्थ बनाने वाले, रेडियो, बिजली के पखे, सिगारे तथा चीनी का उत्पादन करने वाले उद्योग सम्मिलित थे। पेरेडिसो ने पाया कि 17 उद्योग तो ऐसे थे जिनमे गिरावट की प्रवृत्ति स्पष्ट रूप से झलक रही थी। इनमे पवन चक्की के लिए पम्प बनाने वाले, साबुन, भाप के रेल इन्जिन आदि का उत्पादन करने वाले उद्योग सम्मिलित थे।

अमरीका के वाणिज्य विभाग द्वारा 1948–60 की अवधि के लिए किये गये एक अन्य अध्ययन मे निर्मित माल उद्योग के क्षेत्र मे और भी कई परिवर्तन सामने आये। तेजी से विकास करने वाले 70 उत्पादो के समूह मे भी 10 उत्पाद (products) ऐसे थे जिनमे निर्बाध रूप से 15% की वार्षिक वृद्धि की दर बनी हुई थी। ऐसे उद्योगों मे सबसे प्रमुख उदाहरण पोलीथीन व ट्रांजिस्टर उद्योग थे। कुछ वस्तुएँ जैसे सिगरेटे तथा कुछ सेवाएँ जैसे टेलीफोन सेवा पर व्यावसायिक उतार-चढावो का कोई विशेष प्रभाव नही पडा। दूसरे उद्योग, जैसे टिकाऊ उपभोक्ता वस्तु उद्योग, आय बढने के साथ एकदम तेजी से बढे।

(vi) द्वितीय औद्योगिक क्रान्ति (1960 के बाद विकास)—गृह-युद्ध तथा

प्रथम महायुद्ध के बीच का काल उद्योग मे यन्त्रीकरण के आगमन का काल रहा। वॉट (Watt) के पहले भाप से चलने वाले इंजिन से लेकर प्रथम महायुद्ध तक बड़े व अधिक क्षमता वाले औद्योगिक यन्त्र लगाये जाते रहे व उनमे सुधार होता रहा। यह प्रवृत्ति द्वितीय महायुद्ध तक अविराम रूप से चलती रही, जिसमे शक्तिचालित प्रविधियाँ शुरू की जाती रहीं।

किन्तु यन्त्रीकरण के अतिरिक्त दो अन्य शक्तियों ने भी अमरीकी औद्योगिक क्षेत्र में हाल ही के वर्षों मे अनेक परिवर्तन किये हैं। ये हैं (1) आजकल की वैज्ञानिक खोजो का औद्योगिक प्रक्रमो मे उपयोग, तथा (2) स्वचालित नियन्त्रण की एकीकृत प्रणाली का विकास। ये दोनो ही परिवर्तन इतने महत्त्वपूर्ण रहे हैं कि कई लोगो ने इन्हे 'दूसरी औद्योगिक क्रान्ति' (second industrial revolution) की संज्ञा दी है। रसायनशास्त्री व धातु विशेषज्ञ (chemist and metallurgists) अब मनपसन्द नई चीजें बनाने की स्थिति मे हैं तथा पुरानी चीजो को बदल सकते हैं। विद्युत् अभियन्ताओ ने बटन दबाकर किसी भी चीज का नियन्त्रण (push-button control) सम्भव बना दिया है।

1960 से 1979 तक अमरीकी उद्योग मे घटित नवप्रवर्तन तथा पुरानी पद्धतियो के सुधार की सूची बनाई जाये तो कई पुस्तकें बन सकती हैं और उनके पूरा होने से पहले ही उनको नवीनीकृत (updated) करने की आवश्यकता पड़ सकती है। और लगभग हर मामले मे यह बात स्पष्ट हो जायेगी कि प्रत्येक उद्योग के विकास मे एक से अधिक उद्योगो के निवेश (inputs) की आवश्यकता पड़ी है तथा अन्तिम उत्पाद (final product) का एक से अधिक कार्यों के लिए उपयोग करने की सम्भावनाएँ रहती हैं। जैसा कि एक पर्यवेक्षक ने लिखा है, 'हम अजायब घरो को पहले से कहीं अधिक तेजी से भर रहे हैं क्योकि कल की नई चीजें आज के साधारण उपकरण तथा आने वाले कल की तकनीक बनते जा रहे हैं।'

अमरीकी उद्योग का आकार औद्योगिक इतिहास की अभूतपूर्व घटना के रूप मे बढ़ता चला गया है। उसमे प्रबन्ध तथा प्रशासनिक पहलू उतने ही महत्त्वपूर्ण बन गये हैं जितना कि उसका तकनीकी पहलू। तकनीकी दृष्टि से अब अमरीकी उद्योग के लिए वे सारी या ऐसी कोई भी चीज बनाना सम्भव है जो तर्क की दुनिया में सोची जा सकती है। लोह इस्पात का सामान बनाने मे कोई समस्या नही रह गई है। विशाल औद्योगिक इकाइयो की सफलता की कुंजी प्रबन्धकीय एव प्रशासनिक कुशलता का औद्योगिक एव अभियान्त्रिकी जानकारी के सयोजन मे है।

और किसी भी अन्य कार्यक्रम मे अच्छा प्रबन्ध व सहक्रियावाद (synergism) इतना महत्त्वपूर्ण नही है जितना कि वह अमरीकी मानव युक्त अन्तरिक्ष उड़ान कार्यक्रम (American manned space flight programme) मे रहा है। आज दिन तक इतिहास की सबसे ऊँची उपलब्धि के रूप मे यह विज्ञान व प्रौद्योगिकी का सयुक्त कार्यक्रम प्रबन्ध एव प्रशासन के क्षेत्र की भी उतनी ही महान् उपलब्धि रहा है।

जिन वैज्ञानिको व इन्जीनियरो ने रॉकेटो व अन्तरिक्ष यानो का निर्माण किया उन्होंने यह बात अनुभव की कि वर्तमान ज्ञान इन चीजो के निर्माण के लिए पर्याप्त नही

है। अनेक चीजे जिन्हे वे बनाना चाहते थे पहले कभी नही बनाई गई थी। नई व अत्यधिक विशिष्टीकृत आवश्यकताओ को पूरा करने के लिए नई अवधारणाओ की आवश्यकता थी। विशाल पैमाने पर जनशक्ति व भौतिक साधनो के सगठन, अभिज्ञान व शिक्षण की भी आवश्यकता थी। भिन्न-भिन्न क्षेत्रो मे विशेषज्ञो को काम पर लगाने तथा उनमे आपस में सहयोग स्थापित करने की भी आवश्यकता थी। यह सब करके अमरीकी मानव युक्त अन्तरिक्ष उडान कार्यक्रम के अगुवाओ ने देश ही नही वरन् विश्व के औद्योगिक इतिहास में एक नया अध्याय लिख डाला है।

अमरीका मे औद्योगिक विकास की नवीनतम शाखा स्वाभाविक रूप से अन्तरिक्ष कार्यक्रम मे सम्बन्धित है जिसे 'सश्लिष्ट भागीदारी' (complex partnership) की सज्ञा दी गई है। इस कार्य को पूरा करने के लिए एक सुविशाल सरकार-उद्योग-अकादमिक मैत्री कार्यक्रम बनाया गया है। 1970 के दशक मे अन्तरिक्ष कार्यक्रम के सर्वाधिक व्यस्त वर्षों मे 4,00,000 के लगभग प्रशिक्षित स्त्री-पुरुष अन्तरिक्ष परियोजना से सलग्न थे। अन्त मे 50 अमरीकी राज्यो मे फैली हुई 20,000 से भी अधिक फर्मों ने इस कार्यक्रम मे अपना योगदान दिया। उन्होने 'नासा' (National Aeronautics and Space Administration, N A S A) के साथ अनुबन्धो के आधार पर एटेना (Antennae) जैसी छोटी चीजो से लेकर अन्तरिक्ष यानो तथा रॉकेटो का निर्माण किया। ये अनुबन्ध सैकडो मिलियन डॉलर मूल्य के रहे।

सामान्य रूप से उद्योगो ने ही अन्तरिक्ष कार्यक्रम के लिए अधिकाश जानकारी तथा अन्य प्रकार की सेवा सुविधाएँ जुटाई। विश्वविद्यालयो ने 'सोचने की शक्ति' (think power) तथा मुख्य अवधारणाओ को पैदा करने व उन्हे निश्चित स्वरूप प्रदान करने का कार्य किया। सरकार ने भी नासा के माध्यम से निर्देश प्रदान किये।

इसी प्रकार विश्व का सर्वाधिक शक्तिशाली रॉकेट सेटर्न–5 जिसने कि अन्तरिक्ष यात्रियो को चन्द्रमा तक पहुँचाया इसी 'सश्लिष्ट भागीदारी' का उत्पाद था। इस रॉकेट का निर्माण व डिजाइनिंग अमरीकी सरकार के अलाबामा स्थित मार्शल स्पेस फ्लाइट सटर पर किया गया। रॉकेट का पहला खण्ड लुइसियाना मे बनाया गया। दूसरा व तीसरा खण्ड केलिफोर्निया मे तैयार किया गया। सभी खण्डो या चरणो (stages) की परीक्षा मार्शल सेटर या फिर मिसिसिपी स्थित नासा जाँच केन्द्र पर की गई। रॉकेट तथा स्वय अन्तरिक्षयान (rocket and spacecraft) दोनो के कल-पुर्जो का निर्माण सैकडो अमरीकी उद्योगो द्वारा मिलकर किया गया। नासा का दायित्व यह देखने का था जब बडे कल-पुर्जे केप केनेडी, फ्लोरिडा के मानव युक्त यान अन्तरिक्ष मे भेजने के स्थल पर पहली बार आएँ तो वे आपस मे एक दूसरे के साथ ठीक प्रकार से सम्बद्ध हो सके। इन सभी भागो को इसी केन्द्र पर जोडा गया। इस बारे में कोई मामूली सी भूल चूक भी सारे कार्यक्रम को समय से पूरा होने से रोक सकती थी।

वित्त एव किस्म नियन्त्रण (quality control) की समस्या से निपटने के लिए नासा ने एक नई प्रबन्ध व्यवस्था तैयार की जिसे 'फेम' (Forecasts and

Appraisals for Management Evaluation) के नाम से जाना गया। यह व्यवस्था कार्यक्रम के प्रभारी मैनेजरो को कार्यक्रम की नवीनतम स्थिति के बारे मे निरन्तर अवगत कराती रही।

एक वाहन (automobile) मे 3,000 से भी कम कार्यशील कल-पुर्जे होते हैं। अपोलो कमाण्ड मोड्यूल (Apollo Command Module) मे 20 लाख से भी अधिक कल-पुर्जे लगे हुए थे। अमरीकी उद्योग तब अपने चरम बिन्दु पर पहुँच गया जब उसने धरती पर बनी अब तक कि इस सर्वाधिक परिष्कृत मशीन का निर्माण कर लिया। अमरीकी मानव युक्त अन्तरिक्ष उडान कार्यक्रमो मे अपनाई गई किस्म नियन्त्रण प्रविधियो की विश्वसनीयता 99 999% तक पहुँच गई थी। यह काम अत्यधिक परिष्कृत औद्योगिक प्रबन्ध की सहायता से ही सफलतापूर्वक किया जा सका था। इस प्रकार 1960 के बाद अमरीकी उद्योगो के क्षेत्र मे हुई दूसरी औद्योगिक क्रान्ति ने विविधता तथा परिष्कृतता के सन्दर्भ मे प्रथम औद्योगिक क्रान्ति को बहुत पीछे छोड दिया है। अन्तरिक्ष कार्यक्रम तो उसका केवल एक उदाहरण है।

वर्तमान अमरीकी उद्योग का जितना अधिक अध्ययन किया जाये उतना ही यह पता लगाना कठिन होता जाता है कि कौनसा उद्योग कहाँ शुरू होता और कौनसा कहाँ समाप्त होता है। एक उद्योग का विकास दूसरे उद्योग मे आवश्यकता पैदा करता है और जब वह आवश्यकता पूरी की जाती है तो नये प्रक्रम (new processes) तैयार हो जाते हैं जिनसे और नये उत्पाद तैयार किये जा सकते हैं। यह सारी प्रक्रिया एक प्रकार का शाश्वत औद्योगिक प्रवाह (perpetual industrial motion) है जो दिन-प्रतिदिन अधिक सश्लिष्ट या जटिल होता जा रहा है।

(vii) **अमरीकी उद्योग की आधुनिक प्रवृत्तियाँ**—आजकल अमरीकी उद्योग नये उत्पाद तैयार करने व पहले से प्राप्त उत्पादो की किस्म सुधारने के लिए आधारभूत एव व्यावहारिक विज्ञान, दोनों ही क्षेत्रो मे होने वाले अनुसन्धानो पर निर्भर है। पिछले दो दशको मे अमरीकी उद्योग मे कुल शोध व विकास पर किया जाने वाला व्यय बढकर चौगुना हो चुका है तथा 1973 मे यह 21,000 मिलियन डॉलर तक पहुँच चुका है। उसमे वृद्धि जारी है।

औद्योगिक अनुसन्धान एव विकास के लिए कोष

(मिलियन डॉलर)

1953	4,000
1957	5,000
1961	11,000
1965	15,000
1969	18,500
1971	19,000
1973	21,000

औद्योगिक उत्पादन सूचकांक : 1950–1973

(1967=100)

मद	1950	1973
मुख्य धातुएँ	80	130
मशीनें	N A	110
यातायात उपकरण	45	135
औजार	25	120
वस्त्र उत्पाद	60	130
चर्म उत्पाद	90	85
पैट्रोलियम उत्पाद	50	130

1950 से 1973 तक की अवधि के लिए औद्योगिक उत्पादन के सूचकांक को देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि अधिकांश औद्योगिक वस्तुओं का उत्पादन दुगुने से भी अधिक हो चुका है। उत्पादन में वृद्धि की सर्वाधिक ऊँची दर सबसे नई वस्तुओं के सम्बन्ध में रही है।

निजी उद्योगों में प्रति मानव-घण्टा (Man-hour) उत्पादन का सूचकांक

(1967=100)

1950	67
1960	75
1967	100
1970	110
1973	127

1960 के बाद के ज्यामितिक दर से हो रहे औद्योगिक प्रसार के काल में प्रति मानव-घण्टा उत्पादन में भी वृद्धि हो रही है। यह भी 1950 के बाद लगभग दुगुना हो चुका है।

(viii) क्षेत्रीय विविधताएँ—विभिन्न प्रदेशों में उद्योगों के विकास की दर में 1950 के बाद भारी अन्तर उभरा है। उत्तरी प्रदेश, जिसमें न्यू इंग्लैण्ड, मैसाच्युसेट्स तथा अन्य कुछ राज्य सम्मिलित है, अन्य प्रदेशों के साथ कदम से कदम मिलाकर चल पाने में कठिनाई अनुभव कर रहा है। 1950 के बाद से ही वस्त्र उद्योग ने, जो इस प्रदेश का प्रमुख उद्योग रहा है, कई उतार-चढ़ाव देखे हैं। उत्तरी क्षेत्र के अन्य परम्परागत उद्योगों ने भी, जैसे चमड़ा व गैर-टिकाऊ उपभोक्ता वस्तु उद्योग, नये उत्पादों के निकलने के साथ गिरावट की ही प्रवृत्ति देखी है। किन्तु पिछले कुछ वर्षों से क्षतिपूरक शक्तियाँ भी सक्रिय हो रही हैं। उदाहरण के लिए, न्यू इंग्लैण्ड 1950 के बाद से ही टिकाऊ उपभोक्ता वस्तुओं के उत्पादन का प्रमुख केन्द्र बन गया है। इन वस्तुओं में इलेक्ट्रॉनिक साज-सामान, मशीनरी, रक्षा सामग्री आदि सम्मिलित हैं। इन उद्योगों के विकास के परिणामस्वरूप रोजगार में भी वृद्धि हुई है।

दक्षिणी-पश्चिमी प्रदेशो जिसमे टेक्सास (Texas) राज्य सम्मिलित है 1950 के बाद नाटकीय ढग से आगे निकल गया है जबकि इससे पहले वह हमेशा ही पिछड़ा रहा था। रसायन उद्योग, हवाई जहाज निर्माण उद्योग तथा मशीनो के उत्पादन ने इस प्रदेश को अत्यधिक लाभ पहुँचाया है जहाँ इससे पहले परम्परागत कृषि तथा कृषि पदार्थों पर आधारित उद्योग की ही प्रधानता थी। दक्षिण पूर्वी प्रदेश मे भी कई नये उद्योगो ने अपनी जडे जमा ली है जिनमे वाहन उद्योग, खाद्य पदार्थ उत्पादक उद्योग, छापे खाने की मशीनें तथा यातायात सामग्री बनाने वाले उद्योग प्रमुख हैं। जहाज निर्माण उद्योग ने भी इस क्षेत्र मे प्रगति की है।

ग्रेट लेकस् क्षेत्र (Great Lakes Region) ने निर्मित माल उत्पादन बेल्ट के रूप मे अपनी स्थिति मजबूत कर ली है। वाहनो (automobiles) के उत्पादन का विकेन्द्रीकरण हो जाने से 1950 के दशक के कुछ वर्षों तक इण्डियाना व मिशिगन राज्यो को भारी आघात लगा था। यहाँ तक कि डेट्रॉयट (Detroit), जोकि महान् इस्पात नगर है, को भी बेकारी का सामना करना पड़ा था। किन्तु इस क्षेत्र ने भी रसायन उद्योग तथा धातु-वस्तु निर्माण उद्योग की स्थापना हो जाने से अपनी स्थिति काफी मजबूत कर ली है।

केलिफोर्निया राज्य वाले धुर-पश्चिमी प्रदेश को भी द्वितीय महायुद्ध के बाद रक्षा सामग्री उद्योगो की स्थापना हो जाने से काफी लाभ मिला है। इसने कृषि के क्षेत्र मे भी अपनी नेतृत्व की स्थिति को बनाए रखा है। इस तरह कुल मिलाकर विभिन्न क्षेत्रो मे द्वितीय महायुद्ध के बाद उद्योगो का विकास काफी एक समान रूप से होता रहा है।

(ix) **छोटे-पैमाने के उद्योग**—सयुक्त राज्य अमरीका मे लघु-उद्योग क्षेत्र पृष्ठभूमि मे ही छूट गया है। इसे 'अलाभकारी समूह' (disadvantaged group) के रूप में जाना जाने लगा है। इसकी प्रमुख समस्याएँ दो रही है: प्रथमत, नीची कार्यकुशलता, तथा द्वितीयत, बाजारो पर अधिकार कर सकने या पूँजी एव साख प्राप्त करने की क्षमता का अभाव। 1952 मे सरकार ने इस सम्बन्ध में एक कानून पारित किया था जिसे मेकग्वाइरे विधेयक (McGuire Act) के नाम से जाना जाता है। इस विधेयक का उद्देश्य छोटे उपक्रमो के हितो की रक्षा करना था। 1953 व 1958 में भी सघीय सरकार ने लघु व्यवसाय विधेयक (Small Business Acts) पारित किये थे। 1953 मे एक नई व्यवस्था, जिसे लघु व्यवसाय प्रशासन कहा गया, भी कायम की गई जिसका उद्देश्य लघु उपक्रमो को वित्तीय एव तकनीकी सहायता प्रदान करना था।

किन्तु ऐसा लगता है कि अमरीकी 'जलवायु' छोटे व्यवसायो के लिए अनुकूल नही है। इस तरह जापान से तुलना करने पर यह स्थिति एकदम विपरीत लगती है। अमरीकी लघु व्यवसाय 'ऊँची मृत्यु दर, छोटे जीवन काल, नीचे व अस्थिर लाभो, न्यून चालू अनुपातो तथा कमजोर तरलता' जैसी बीमारियो से ग्रस्त है।

इन कमजोरियो के बावजूद ऐसे अनेक कथन समय-समय पर सुनाई पडते हैं जिनमे लघु उद्योग के महत्त्व पर प्रकाश डाला जाता है तथा ऐसा स्वतन्त्र उपक्रम को

बढ़ावा देने के नाम से किया जाता है। यह कहा गया है कि 'निजी उद्यम वाली अमरीकी आर्थिक प्रणाली का निचोड़ ही स्वतन्त्र उपक्रम है। केवल स्वतन्त्र प्रतिस्पर्द्धा द्वारा ही बाजारो की स्वतन्त्रता, व्यवसाय मे प्रवेश की स्वतन्त्रता, निजी पहल के लिए अवसरो की अभिव्यक्ति एव उनका विकास तथा व्यक्तिगत निर्णयो मे आस्था को बनाये रखा जा सकता है। इस प्रतिस्पर्द्धा की भावना को सुरक्षित रखना तथा उसका निर्वाह करते जाना न केवल आर्थिक कल्याण की दृष्टि से अपितु इस राष्ट्र की सुरक्षा के लिए भी आवश्यक है। यह सुरक्षा एव आर्थिक कल्याण प्राप्त कर पाना तब तक सम्भव नही है जब तक कि लघु व्यवसाय को प्रोत्साहित एव विकसित न किया जाए।'

किन्तु वास्तविकता यही है कि विशालकाय उद्योगो के इस युग मे छोटे औद्योगिक उपक्रम अमरीका मे हर दिन पुरावशेष (anachronistic) बनते जा रहे है।

पाँचवाँ अध्याय

यातायात सेवाओं का विकास

(GROWTH OF TRANSPORTATION NETWORKS)

देश ने 1789 मे एक नया सविधान स्वीकार किया था जिसने 13 राज्यों को एक राष्ट्र के रूप मे एकीकृत कर दिया था। राज्यो को अब तटकर बाधाएँ (tariff barriers) खडी करने पर रोक लगा दी गई। आन्तरिक व्यापार के क्षेत्र मे एक नये युग का आरम्भ हो रहा था। 1789 मे विभिन्न उपनिवेशो के बीच का आपसी व्यापार उनके पश्चिमी यूरोप के साथ व्यापार से भी कम था। नए राष्ट्र के आर्थिक एकीकरण के लिए यातायात सेवाओ के क्षेत्र मे एक क्रान्ति अनिवार्य बन गयी थी। यह समय पगडण्डियो, शुल्क फाटको तथा कच्ची सडको (trails, turnpikes and towpaths) का युग था। जल परिवहन वस्तुएँ लाने-ले-जाने के लिए सबसे सुविधाजनक साधन था किन्तु कठिनाई यह थी कि नाव द्वारा हर स्थान तक नही पहुँचा जा सकता था। उपनिवेशो के विकास ने सबसे भारवाही घोडो (pack horses) के रूप मे यातायात सेवा को बढावा दिया। ग्रामीण सडकें ही प्रारम्भिक यातायात सेवाओ का आधार थी। लम्बी सडके पूर्वी प्रदेश के विभिन्न शहरो को आपस मे तथा उन्हे पश्चिमी प्रदेशो मे फैलते हुए अधिवासो (settlements of the west) से जोडती थी। इनमे सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण सडक विल्डरनेस रोड (Wilderness Road) थी जिसके निर्माण मे डेनियल बून (Daniel Boone) ने पथ-प्रदर्शक का कार्य किया।

पक्के राज मार्गों (surfaced highways) मे सबसे महत्त्वपूर्ण राजमार्ग कबरलैंड रोड थी जिसे 1811 मे सघीय सरकार ने 13,000 डालर प्रति मील की लागत से, जो उस समय मे बहुत ऊँची लागत मानी गई, बनवाया था। किन्तु इस काल मे सरकार ने अधिक सडक निर्माण कार्य मे हाथ नही डाला। ये सडकें मुख्यत. निजी शुल्क फाटक कम्पनियो (private turnpike companies) द्वारा ही बनाई गई जिनसे वे टोल-टॅक्स वसूल किया करती थी।

प्रारम्भिक वर्षों मे निर्मित सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण नहर, हालाकि वही एक मात्र लाभकारी नहर नही थी, एरी नहर (Erie canal) थी जिसका निर्माण कार्य 1825 मे पूरा हुआ था। इस नहर के निर्माण ने देश मे नहरो के निर्माण कार्य का मार्ग प्रशस्त किया। किन्तु नहरो के निर्माण कार्य मे यह तेजी अधिक दिन नही चली। नहरो की अन्तिम रूप से असफलता का प्रमुख कारण रेल-सडक यातायात का विकास रहा।

रेलमार्ग व्यवस्था (Railroad System)

प्रारम्भिक वर्ष : 1830–1860

बाल्टीमोर तथा ओहियो रेल मार्ग क० ने मई 1830 में 13 मील लम्बे रेलमार्ग को चालू किया था। 1836 में जब चार्लस्टन व हेम्बर्ग रेलमार्ग का काम पूरा हुआ तो उसकी कुल लम्बाई 136 मील थी जो इस समय विश्व की सर्वाधिक लम्बी रेल लाइन थी। 1840 तक अमरीका में रेलमार्ग की कुल लम्बाई 2,818 मील हो गई। 1850 तक 9,000 मील लम्बा रेलमार्ग तैयार किया जा चुका था। किन्तु 1850 से 1860 के बीच देश मे 20,000 मील लम्बी रेल लाइनें और बिछा दी गई। इस तरह 1860 तक रेलमार्गों की कुल लम्बाई 30,000 मील पहुँच गई तथा उनके व्यापार का परिमाण नहरो के बराबर हो गया। गृह-युद्ध के छिड जाने से देश मे रेलमार्गों के निर्माण के काम में काफी कटौती करनी पडी। देश के उत्तरी व दक्षिणी दोनो ही भागो मे पहले बिछाई गई कई रेल लाइनें भी नष्ट कर दी गई।

रेलमार्ग की पूर्णाहुति . 1861–1913

उन्नीसवी सदी के तीसरे चतुर्थांश तक यह बात स्पष्ट हो चुकी थी कि आर्थिक विकास की सन्तोषजनक दर एक विश्वसनीय यातायात सेवा व्यवस्था पर ही निर्भर करेगी। 6 दशको तक (1860–1920) तीव्रगामी व कुशल परिवहन के साधन के रूप मे रेलमार्गों का एकाधिकार देश में बना रहा। रेलो ने इस अवधि में बडी मात्रा मे लाभ कमाया। इसके बावजूद इस सम्पूर्ण अवधि में रेलमार्ग कम्पनियाँ वित्तीय कठिनाइयो से ग्रस्त रही तथा प्रथम विश्व-युद्ध की समाप्ति तक तो उनके राष्ट्रीयकरण करने पर भी गम्भीरता से विचार किया जाने लगा।

हालांकि रेलमार्गों के प्रसार के काम में गृह-युद्ध (1861–65) से भारी बाधा पडी थी किन्तु इन वर्षों मे हुए तकनीकी सुधारो ने रेलो की कार्य-कुशलता में अत्यधिक वृद्धि कर दी। इस तरह गृह-युद्ध समाप्त हो गया तथा पश्चिमी प्रदेशों की भूमि अवाप्त करने का महत्वाकांक्षी लक्ष्य बनाया गया तो नये पश्चिमी प्रदेश के साथ एक सुरक्षित रेलमार्ग की कडी स्थापित करना भी अत्यावश्यक बन गया। अन्तर-उपमहाद्वीपीय रेलमार्ग (Intercontinental Railway) के निर्माण का स्वप्न उतना ही पुराना था जितना रेलमार्गों का आविष्कार। 1862 मे पारित पेसेफिक रेल विधेयक द्वारा कांग्रेस ने यूनियन पेसेफिक रेलमार्ग को नेवेडा (Nevada) राज्य की पश्चिमी सीमा तक रेलमार्ग का निर्माण करने की अनुमति दे दी। एक अन्य कम्पनी सेन्ट्रल पेसेफिक को इसी अवधि मे रेलमार्ग के पश्चिमी भाग का निर्माण कार्य आरम्भ करने की अनुमति दे दी गई।

लेकिन उपमहाद्वीपीय रेल सेवा का निर्माण कोई आसान काम नहीं था। दोनो तरफ निर्माण कर रही कम्पनियो को अनेक कठिनाइयों का सामना करना पडा। यूनियन पेसेफिक कम्पनी के सामने मजदूरो की भर्ती की समस्या आयी।

सेन्ट्रल पेसेफिक कम्पनी को इस्पात प्राप्त करने मे कठिनाई हो रही थी क्योंकि वह पूर्वी प्रदेशो के औद्योगिक नगरो तथा समुद्री बन्दरगाहो से काफी दूर कार्य कर रही थी। दोनो दिशाओ से रेलमार्ग का निर्माण करने वाली कम्पनियो (यूनियन पेसेफिक तथा सेन्ट्रल पेसेफिक) द्वारा निर्मित रेल लाइनो को मिलाने का कार्य 10 मई, 1869 के दिन पूरा हुआ।[1] अमरीकी रेलमार्ग निर्माण के इतिहास मे यह सर्वाधिक महत्त्व-पूर्ण दिन था। 1876 मे दक्षिणी केलिफोर्निया भी उपमहाद्वीपीय रेलमार्ग के साथ जुड गया।

इस प्रकार गृह-युद्ध के बाद के दो दशको मे देश मे राष्ट्रीय रेलमार्ग (great trunk lines) का निर्माण कार्य पूरा किया गया। 1864 से लेकर 1900 तक रेलमार्गों का सर्वाधिक प्रतिशत महान् मैदानी राज्यो (great plains states) मे बिछाया गया जो कुल रेलमार्ग का 50% था। दक्षिण-पूर्वी तथा दक्षिण पश्चिमी राज्य रेलमार्ग निर्माण की दृष्टि से तथा विभिन्न रेलमार्गों के एक प्रणाली के रूप मे सयोजन की दृष्टि से काफी पिछड़े हुए रहे।

देश के रेलमार्गों के निर्माण पर विनियोग 'ऊँची-ऊँची लहरो' (towering waves) के रूप में हुआ। रेलमार्गों के निर्माण पर किया गया वार्षिक व्यय 1873, 1882, 1891 तथा 1911 में नई ऊँचाइयो तक पहुँचा। यह 1876, 1886, 1897 तथा 1820 वर्षों में नीचे गिरा। इस प्रकार रेलमार्गों के निर्माण पर हुए असमान विनियोग से कई बार आर्थिक अस्थिरता की स्थिति भी पैदा हुई। किन्तु इस विनियोग ने देश के आर्थिक विकास के लिए उत्तेजक का भी काम किया क्योकि यह विनियोग 1870 में राष्ट्रीय आय का 20% तथा यहाँ तक 1920 मे उसका 7 5% था।

रेलमार्गों के लिए वित्त व्यवस्था ने कई स्वरूप लिये। प्रारम्भिक वर्षों मे राज्यो तथा नगरपालिकाओ ने भी छोटे छोटे रेलमार्गों के निर्माण मे सहायता की। किन्तु उनका योगदान 1880 मे बन्द हो गया। सघीय सरकार की सहायता इस अवधि मे काफी बढी। सघीय अनुदान का भी सबसे महत्त्वपूर्ण प्रकार भूमि प्रदान (grant of lands) करने के रूप मे था। इन अनुदानो को निर्माण कम्पनियो को आकर्षित करने के लिए अभिप्रेरक (incentive) के रूप मे रखा गया। आरम्भिक वर्षों मे रेल कम्पनियो के अधिकाश अशधारी (Shareholders) लोग विदेशी थे। 1914 तक भी अमरीकी रेलमार्ग प्रतिभूतियो के 20% भाग पर ब्रिटिश नागरिकों का स्वामित्व था।

रेलमार्ग व्यापार (Railroad traffic) का नियमन करने के बारे मे भी पहल उन्नीसवी सदी मे शुरू हो गई। 1870 से पहले एक रेलमार्ग कम्पनी का अपने क्षेत्र मे एकाधिकार होता था। नियमन सम्बन्धी रेलमार्ग कानून (Regulatory Railroad Laws) अनेक राज्यो मे 1871 व 1874 के बीच पारित किये गए। इनमे सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण ग्रेजर कानून (Granger Laws) थे। 1890 तक 30 राज्यो ने इस प्रकार के नियमन कानून पारित कर दिये थे। व्यवसाय को नियमित करने

[1] *Ibid*, 280

वाला सघीय कानून 1887 मे पारित किया गया जिसने सभी अनुचित प्रथाओ (evil practices) पर प्रतिबन्ध लगा दिया। 1930 मे पारित एलकिंस विधेयक (Elkins Act, 1903) मे केवल विभेदकारी दरें वसूलने पर प्रतिबन्ध लगाने का प्रावधान था। 1906 मे पारित हेपबर्न विधेयक (Hepburn Act, 1906) ने अन्तर्राज्यीय व्यापार आयोग (Interstate Commerce Commission), जोकि 1878 मे ही रेलमार्ग कम्पनियो के व्यापार पर निगरानी रखने के लिए गठित कर दिया गया था, को और अधिकार प्रदान किये। आयोग (I C C) को किसी भी रेलमार्ग कम्पनी के हिसाब-किताब की किसी भी समय जाँच करने का अधिकार दिया गया। रेलमार्ग व्यापार को नियमित करने वाला अन्तिम महत्त्वपूर्ण कानून मैन-एलकिंस विधेयक, 1910 (Mann-Elkins Act, 1910) था। इनमे से अधिकाश विधेयको का उद्देश्य रेलमार्गो पर नियन्त्रण स्थापित करना था। किन्तु धीरे-धीरे यह अनुभव किया जाने लगा कि ये कानून पेचीदा व समझ मे न आने जैसे बन गये थे।

1914 मे अमरीका मे रेलमार्गों की कुल लम्बाई सम्पूर्ण यूरोप मे स्थित रेल लाइनो की लम्बाई से अधिक थी। वह विश्व रेलमार्गो का एक-तिहाई थी। 1860 के 30,000 मील लम्बे रेलमार्ग बढकर 2,52,000 मील हो चुके थे। जिस अवधि की हम चर्चा कर रहे हैं उसमे रेलो की लम्बाई मे इतनी तीव्र वृद्धि के लिए अनेक तत्त्व उत्तरदायी रहे। ये तत्त्व थे—(अ) नये प्रदेशो की ओर प्रस्थान, (आ) प्राकृतिक ससाधनो का तीव्र गति से विकास, (इ) व्यापार व व्यवसाय मे तेजी से वृद्धि, (ई) देश का अधिकाश भू-भाग समतल होना, (उ) लोहा व इस्पात उद्योग का तेजी से विकास, तथा (ऊ) बढते हुए लाभ के कारण रेलो मे भारी विनियोग।

प्रथम महायुद्ध के समय रेलो की स्थिति

1910 से 1913 के बीच रेलमार्गों का निर्माण बडी तेजी से हुआ। उसकी औसत गति 3,000 मील वार्षिक रही। किन्तु युद्ध ने ससाधनो को अन्य दिशाओ मे मोड दिया। इसके फलस्वरूप नई रेल लाइनो का निर्माण घटा। स्वय रेलमार्ग कम्पनियो ने मिलकर अप्रैल 1917 मे अपनी समस्याओ का निपटारा करने के लिए एक रेलमार्ग वार बोर्ड गठित किया था किन्तु वे अपने प्रयासो मे असफल रहे। दिसम्बर 1917 मे एक अध्यादेश जारी कर रेलमार्गों को सरकारी नियन्त्रण मे ले लिया जो 26 माह तक चला। रेलमार्ग कम्पनियाँ घाटे मे चलने लगी थीं। इस अवधि म सरकार को भी 1 2 अरब डॉलर का घाटा उठाना पडा।

1920 के बाद अमरीकी रेलें

1920 के बाद अमरीकी रेलो के सामने अलग ही तरह की समस्याएँ आयी। 1920 के बाद पारित सघीय विधेयको ने आम जनता को विभेदकारी दरो (discriminatory rates) से बचाने पर अधिक बल दिया। किन्तु 1920 के बाद ट्रको व अन्य मोटर-चालित वाहनो (automobiles) की प्रतिद्वन्द्विता ने रेलमार्गों

पर सरकारी नियन्त्रण के उद्देश्यो को ही बदल दिया। अब रेलमार्ग कम्पनियो को, न कि जनता को, बचाने की आवश्यकता आ पडी थी।

1920 मे जबकि सरकार ने रेलमार्गों को पुन उनके मालिको के हाथ सौंप दिया तो अनेक नई समस्याएँ उभर कर सामने आ चुकी थी। सरकार को इन रेल कम्पनियो को उन सुधारो के लिए रकम चुकानी थी जो सरकार ने अपने नियन्त्रण काल मे किये थे। बिखर चुके कर्मचारियों व उपकरणो को पुन एक स्थान पर जमा करने के लिए भी काफी धनराशि की आवश्यकता थी। 1920 के यातायात सेवा विधेयक (Transportation Act, 1920) ने रेलो के सम्मुख उपस्थित अल्पकालिक व दीर्घकालिक दोनो ही प्रकार की समस्याओ को हल करने का प्रयास किया। विधेयक ने रेलमार्ग कम्पनियो को 'स्वाभाविक एकाधिकारी' (Natural Monopolies) माना तथा अनुभव किया कि यदि उन पर प्रतिस्पर्द्धा थापी गई तो उससे अनुचित प्रथाएँ ही शुरू होने की सम्भावनाएँ थी। विधेयक ने अन्तर्राज्यीय व्यापार आयोग (I C C) के अधिकारो मे भी अनेक परिवर्तन किये। आयोग को ऐसी दरें निर्धारित करने के निर्देश दिये गये कि जिनसे, 'ईमानदारी, कार्यकुशलता तथा मितव्ययितापूर्ण प्रबन्ध के अन्तर्गत रेलमार्ग कम्पनियाँ अपनी कुल रेल सम्पत्ति के मूल्य पर उचित प्रतिफल प्राप्त कर सकें।' आयोग को रेलमार्ग कम्पनियो को व्यवस्थाओ (Systems) मे पुनर्गठित करने का भी अधिकार प्रदान किया गया तथा विनियोग की दर भी वह नियन्त्रित कर सकता था। इसके अतिरिक्त आयोग रेलमार्ग कम्पनियो को नये रेलमार्गों का निर्माण करने के लिए बाध्य कर सकता था जहाँ व्यापार का परिमाण काफी बढ चुका हो।

उधर 1920 के बाद यात्री आवागमन मे गिरावट प्रारम्भ हो गई। 1929 के बाद महान् मन्दी आ जाने से कम्पनियो की वित्तीय स्थिति और भी खराब हो गई। 1931 मे रेलमार्ग कम्पनियो के प्रबन्ध ने ऐसे अवसर पर भाडा बढाने की माँग की जब उसकी प्रतिद्वन्द्वी यातायात सस्थाएँ उससे व्यवसाय छीनती जा रही थी। इस स्थिति मे आयोग कोई राहत नही दे सकता था। 1932 मे हुए घाटो के कारण आपातकालीन यातायात विधेयक, 1933 (Emergency Transportation Act, 1933) पारित किया गया। नये विधेयक का उद्देश्य रेलमार्ग कम्पनियो का 'अपव्ययपूर्ण प्रतिस्पर्द्धात्मक प्रथाओ से मुक्ति दिलाकर' उन्हे तात्कालिक वित्तीय दबावो से बचाना था। इस विधेयक ने रेल व्यवस्था के दृढीकरण (consolidation) का भी विचार पहली बार सामने रखा। 1936 मे रेलो की आय उन पर लगी हुई पूंजी का सिर्फ 1% थी। ट्रको तथा अन्य वाहनो की प्रतिस्पर्द्धा का भी अत्यधिक हानिकारक प्रभाव पडा था। कोयला, जोकि रेलमार्गों द्वारा ढोई जाने वाली सबसे प्रमुख वस्तु था, ऊर्जा के अन्य साधनो के सामने अपनी स्थिति खोता जा रहा था। इसके बावजूद रेलमार्ग कम्पनियो मे नया विनियोग पूरी तरह बन्द नही हुआ था। 1921–40 की अवधि मे रेलमार्ग कम्पनियो ने उपकरणो व ढाँचो (equipments and structures) पर 11 अरब डॉलर व्यय किये थे।

द्वितीय महायुद्ध व उसके बाद

द्वितीय महायुद्ध ने अमरीकी रेलो को प्रोत्साहन दिया। व्यापार का आवागमन काफी अच्छा रहा। व्यापार का परिमाण प्रथम महायुद्ध की तुलना मे दुगुना हो गया। देश के भीतर सैनिको के लाने ले जाने के काम का 98% तथा सैनिक सामग्री के आवागमन का 91% कार्य रेलो द्वारा किया गया। युद्ध के इन वर्षों मे यात्री एव माल आवागमन के परिमाण मे हुई भारी वृद्धि को अच्छी तरह निपट पाने मे कई तत्त्वो ने सहायता की। मालवाही डिब्बो की क्षमता काफी बढ चुकी थी तथा रेल इन्जिन भी अधिक शक्तिशाली बन गये थे। यातायात के अन्य साधनों के साथ भी एक अच्छा समन्वय स्थापित किया गया।

युद्ध के तुरन्त बाद रेलमार्ग कम्पनियो ने विभिन्न सुधार करने के उद्देश्य से 15 अरब डॉलर की राशि का विनियोग किया। बडी सख्या मे डीजल-विद्युत् खण्ड जोडे गये। यहाँ तक कि आणविक ऊर्जा से चल सकने वाले रेल इन्जिनो की सम्भावना की भी खोज की गई। रेलमार्ग अब सरकार के नियन्त्रण व प्रबन्ध मे हैं।

किन्तु युद्ध की समाप्ति के कुछ ही वर्षों बाद रेलमार्ग पुन मुसीबत मे फँस गये। कोरिया के युद्ध (1950) ने यात्रियो व माल के आवागमन मे वृद्धि करके कुछ समय तक अमरीकी रेलो की सहायता की। किन्तु इन दोनो ही के लाने ले जाने मे 1960 के बाद से ही गिरावट की प्रवृत्ति जारी है। माल ढोने मे रेलो का भाग $\frac{2}{3}$ से घटकर 1961 तक $\frac{1}{2}$ रह गया था। इस बीच यात्री यातायात कुल के 20% से घटकर केवल 3% रह गया। 1961 मे रेल उद्योग ने अपने 27 अरब डॉलर के विशाल विनियोग पर मात्र 1.9% की दर से प्रतिफल प्राप्त किया। युद्ध के बाद रेल उद्योग की प्रमुख समस्या उसकी क्षमता का अतिरेक रही है। रेल उद्योग के लिए, जोकि कुछ सुधार करके अभी के मुकाबले 75% अधिक व्यापार बढा सकता है, अधिक व्यवसाय की आवश्यकता है। 1958 के यातायात विधेयक ने माल व यात्री भाडे की दरो मे परिवर्तन करके खोए हुए व्यवसाय को पुन प्राप्त करने की चेष्टा की।

अमरीकी रेलो के सम्मुख समस्याएँ

(1) *सड़क, वायु तथा जल परिवहन के साथ बढती हुई प्रतिस्पर्द्धा के कारण* रेलो के लिए व्यापार मे काफी कमी आई है। ट्रकें ऊँची दर वाले माल व्यापार पर पूरी तरह कब्जा कर चुकी है जो माल व्यापार का विशेष भाग होता है तथा सडको के जाल के माध्यम से वे उसे तेजी के साथ एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुँचा रही हैं। अधिकाश यात्री यातायात अब हवाई जहाजो ने खीच लिया है।

(2) विभेदकारी करारोपण को भी एक कारण बताया गया है। 1940 मे व्यावसायिक यातायात के समस्त साधनो पर एक कर लगाया था किन्तु ट्रको को उससे मुक्त रखा गया।

(3) सघीय व राज्यीय नियमनो की संख्या अत्यधिक होने से भी स्थिति भ्रामक बन गई है।

(4) सरकार रेल कम्पनियो के प्रतिद्वन्द्वियो को सब प्रकार की सहायता उदार रूप से प्रदान करती रही है। राजमार्गों, हवाई अड्डो तथा जलमार्गों का निर्माण करने के लिए उदार अनुदान दिये गए हैं। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद रेल यातायात की प्रगति को अवरुद्ध करने मे यह तत्त्व भी सहायक रहा है।

किन्तु इन सब कठिनाइयो से यह अर्थ नही निकाल लिया जाना चाहिये कि अब अमरीकी रेलो का भविष्य अन्धकारपूर्ण है। रेले 17 लाख लोगो को रोजगार दे रही हैं। ये देश की कुल सम्पदा का 10% भाग है। रेलमार्गों की कुल लम्बाई अब बढकर 3,75,000 हो चुकी है जो विश्व मे सर्वाधिक लम्बी रेल लाइने हैं। अमरीकी रेलो के पास 30,000 से अधिक इन्जिन, 27,000 यात्री डिब्बे, तथा 17 लाख मालवाही डिब्बे हैं।

जल परिवहन
(Water Transport)

नावो को यान्त्रिक शक्ति से चला सकने के आरम्भिक प्रयास असफल रहे थे। 1807 मे रॉबर्ट फुल्टन (Robert Fulton) ने क्लेरमोण्ट (Clermont) नामक एक भाप से चलने वाली नाव (Steamboat) तैयार की। इसके बाद स्टीम बोटो के निर्माण को व्यावसायिक सफलता मिल गयी। नदियो द्वारा परिवहन का एक नया युग प्रारम्भ हो गया। 1820 के बाद स्टीम बोटो द्वारा माल लाने ले जाने का तेजी से विकास हुआ। 1850 तक लगभग 750 स्टीम बोट पश्चिमी नदियो पर तैरने लगे थे।

व्यापारिक जहाजी बेडा (Merchant Shipping)

अमरीकी नौसैनिको ने अमरीकी क्रान्ति के दौरान इग्लैण्ड के साथ एक समुद्री लडाई मे विजय प्राप्त की थी। 1820 से लेकर गृहयुद्ध छिडने तक अमरीकी एक प्रमुख जहाज निर्माता देश था। क्रान्ति के एक दशक बाद ही जहाज निर्माण उद्योग यूरोप में हो रहे नेपोलियन के साथ युद्धो के कारण भी उत्तेजित हुआ। विदेश व्यापार मे दो प्रकार के जहाज प्रयुक्त हो रहे थे। 'छडे' जहाज (tramp ships) पहली प्रकार के जहाज थे जो जहाँ कही से माल मिलता ले लेते और किसी भी बन्दरगाह पर चले जाते। वे कई महीनो, यहाँ तक कि वर्षों मे भी देश नही लौटते। न्यूयॉर्क की ब्लैक बाल लाइन (*Black Ball Line*) द्वारा *1818* मे एक नियमित जहाजी सेवा आरम्भ की गई। 1820 से 1860 के बीच जहाजो के डिजाइन मे भी भारी परिवर्तन हुए। जहाजो का औसत आकार 1820 के 300 टनो से बढकर 1860 मे 1,000 टन हो गया। 1850 के बाद से तो भाप से चलने वाले जहाजो की सख्या व उनका टन भार दिन दूनो व रात चौगुनी गति से बढे। 1820 के दशक में तो अमरीकी जहाज वहाँ के विदेशी व्यापार का 90% ला-लेजा रहे थे। यह प्रतिशत

1850 मे घटकर 70 पर आ गया।

गृह-युद्ध के दौरान अमरीकी व्यापारिक जहाजी बेडे की अवनति हुई। किन्तु फिर भी तटवर्ती जहाजी सेवा अप्रभावित ही रही क्योकि वह एक पुराने कानून के अन्तर्गत सुरक्षित थी। उसके टन भार मे भी 1860 से 1914 के बीच काफी वृद्धि हुई। प्रारम्भ मे अमरीकी जहाजी बेडे की अवनति का कारण ब्रिटिश जहाज-निर्माण की तकनीकी श्रेष्ठता रहा। कारण जो भी रहे हो, वह गिरावट असाधारण ही रही। विदेश व्यापार के लिए पंजीकृत जहाजी बेडे का टन भार 1860 से 1910 के बीच 25 लाख टन से घटकर 7 लाख टन रह गया। 1860 मे अमरीकी जहाज देश के कुल विदेशी व्यापार का दो-तिहाई माल स्वय ला-लेजा रहे थे जो 1900 तक घटकर दसवां भाग रह गया। किन्तु 1910 से 1915 के बीच अमरीकी जहाजी बेडे के टन भार मे पुन एक बार तेजी से वृद्धि हुई क्योकि युद्ध मे फँसे यूरोप के देशो को माल भेजने का काम अमरीका के जिम्मे ही था।

प्रथम विश्व-युद्ध के दौरान अमरीकी व्यापारिक जहाजी बेडे का टन भार 3 मिलियन टन के लगभग रहा होगा।[1] किन्तु यह काफी कम था। 1916 मे एक जहाजी आयोग (Shipping Board) गठित किया गया जिसे जहाज खरीदने के लिए 50 मिलियन डॉलर दिये गये। सयुक्त राज्य अमरीका द्वारा युद्ध की घोषणा कर दिये जाने के बाद आयोग ने एक आपातकालीन जहाजी बेडा निगम (Emergency Fleet Corporation) की स्थापना की। इस निगम को नये जहाजो का निर्माण करवाने पर 4 अरब डॉलर व्यय करने हेतु प्रदान किये गये। 1918 तक व्यापारिक जहाजी बेडे मे 2 मिलियन टन की वृद्धि की गई। 1921 तक विदेश व्यापार के लिये पंजीकृत जहाजी बेडे का टन भार 11 मिलियन टन के बिन्दु को पार कर चुका था।

1920 मे पारित जहाजी विधेयक (Marine Act) ने सरकार को विदेशी व्यापार हेतु जहाजी बेडे के उद्योग से बाहर निकाल लिया। सरकार के स्वामित्व वाले जहाजो को निजी जहाजी कम्पनियो को नीचे मूल्यो पर बेचने की व्यवस्था की गई। इन सुविधाओ के बावजूद 1920 के बाद व्यापारिक जहाजी सेवा मे गिरावट आती रही। 1928 मे पारित एक विधेयक ने अनुदान की व्यवस्था कर व्यापारिक जहाजो का टन भार बढाने की चेष्टा की किन्तु उसका भी कोई नतीजा नही निकला। टन भार 11 मिलियन टन से घट कर 1929 मे 7 मिलियन टन ही रह गया। 1935 तक अमरीकी आयात-निर्यात व्यापार का केवल एक-तिहाई भाग अमरीकी जहाजो द्वारा लाया-ले-जाया जाने लगा था। हालांकि इन वर्षो में अमरीकी जहाजी बेडा टन भार के हिसाब मे इग्लैण्ड के बाद दूसरे स्थान पर था किन्तु वह धीमा व पुराना हो चुका था।

व्यापारिक जहाजो की इस मन्द प्रगति से चिन्ता होने लग गई। 1936 मे कांग्रेस ने प्रत्यक्ष अनुदान नही देने की पुरानी नीति को बदल दिया। एक नई सस्था, जिसे अमरीकी मेरिटाइम कमीशन (U S Maritime Commission) का नाम दिया गया, 1936 के मर्चेन्ट मेराईन एक्ट द्वारा स्थापित किया गया। इस आयोग

[1] *Ibid*, 30

को अनुदान प्रदान करने का अधिकार दिया गया इस विधेयक का उद्देश्य अमरीकी जहाज निर्माताओ, चालक कम्पनियो व मालिको को उनके कम लागत पर कार्यरत विदेशी प्रतिद्वन्द्वियो के समकक्ष लाने का प्रयास किया गया। जहाज की वास्तविक लागत तथा उसकी अनुमानित विदेशी लागत के बीच का अन्तर अनुदान द्वारा पूरा किया गया। अगर वह जहाज प्रतिरक्षा के लिए उपयोगी होता तो उसकी पूरी लागत सरकार वहन करती। सकार्यशील अनुदान (operational subsidy) भी इसी प्रकार के सिद्धान्त पर आधारित था। आयोग अमरीकी स्वामित्व के अन्तर्गत चलाये जा रहे जहाजो की सकार्यशील लागत तथा विदेशी झण्डे वाले जहाज की सकार्यशील लागत (जो नीची होती थी) के बीच अन्तर का अनुदान देता था।

द्वितीय महायुद्ध

किन्तु *1936* से *1941* के बीच दिया गया अनुदान भी व्यापारिक बेड़े के आकार को पर्याप्त विशाल नही बना पाया। वह द्वितीय महायुद्ध मे अनेक स्थानों पर, जहाँ लड़ाई चल रही थी, माल पहुँचाने के लिए पर्याप्त नही था। सरकारी व्यय पर युद्ध के दौरान लिबर्टी जहाज व विक्टरी जहाज (*Liberty Ships and Victory* Ships) बनाये गये। पर्ल हार्बर पर जापानी आक्रमण के बाद तो अनेक पोत निर्माण स्थलो की मरम्मत की गई तथा कई नये स्थल (shipyards) बनाये गये। जहाज निर्माण के कार्य को दो भागो मे बाँटा गया। जहाज के कल पुर्जे देश के भीतरी भाग मे बनाये जाते व उनको जोड़ने का काम तटवर्ती स्थानो पर किया जाता।

आधुनिक युग

युद्ध के बाद व्यापारिक जहाजी बेड़े को अनेक अप्रत्यक्ष मौद्रिक लाभ प्रदान किये गये। 1946 का व्यावसायिक पोत बिक्री अधिनियम (Merchant Ship Sales Act) अमरीकी जहाज चालको के लिए बहुत लाभप्रद रहा। इस विधेयक मे कई अच्छे जहाजो को बहुत आसान शर्तों पर बेचने की बात सम्मिलित थी। कई जहाजों को तो उनकी युद्ध पूर्व की कीमत के भी एक-तिहाई मूल्य पर बेंच दिया गया। अमरीकी जहाजी प्रशासन (U S Maritime Administration) के अन्तर्गत, जोकि व्यापार विभाग (Department of Commerce) की एक एजेन्सी है, प्रत्यक्ष अनुदान कार्यक्रम (direct subsidy programme) शुरू किया गया। फेडरल मेरिटाइम बोर्ड, जिसका कि अध्यक्ष मेरिटाइम एडमिनिस्ट्रेशन का भी अध्यक्ष होता है, एक विनियामक सस्था (Regulatory Agency) के रूप मे कार्य करता है। यही बोर्ड दरें, सेवाएँ आदि तय करता है तथा जहाजी कम्पनियो के साथ अनुदान अनुबन्ध क्रियान्वित करता है।

सड़क यातायात
(Road Transport)

1920 के बाद यातायात के क्षेत्र मे जो सबसे असाधारण घटना हुई वह

रेलो से सडको की तरफ उसके झुकाव मे निरन्तर वृद्धि की थी। ट्रको व बसो ने रेलो से ऊँचे-स्तर का अधिकाश व्यापार (high grade traffic) छीन लिया है। किन्तु यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि राष्ट्रीय राजमार्गों का निर्माण वाहनो के निर्माण से काफी समय तक पिछडा रहा। इसका परिणाम यह रहा कि कारो व ट्रको का उपयोग शुरू के वर्षों मे केवल शहरी क्षेत्र मे ही किया जाता रहा। शहरो के बीच बस यात्राऐं तथा मोटर-ट्रक यातायात 1920 तक महत्त्वपूर्ण नही बने थे।

मोटर-कार के आगमन से पहले तक सडको के रख-रखाव व निर्माण का दायित्व स्थानीय निकायो या राज्य सरकारो पर था। किन्तु 1920 के दशक मे बहुत कम राज्य सरकारे अपने यहाँ सडको का जाल बिछा सकने की स्थिति मे थी। इसके अतिरिक्त अन्तर्राज्यीय सडको के निर्माण की समस्या भी थी। राष्ट्रीय राज मार्गों के निर्माण हेतु किसी सघीय कार्यक्रम का बनाया जाना आवश्यक था।

अनेक वर्गों ने देश मे एक अच्छी सडक व्यवस्था की माँग की। मोटर-कार क्लब ऐसा ही एक वर्ग था। 1900 मे पहली मोटर-कार प्रदर्शनी आयोजित की गई। न्यूयार्क स्थित अमरीकी ऑटोमोबाइल क्लब तथा केलिफोर्निया का ऑटोमोबाइल क्लब भी इन्ही वर्षों मे बने। अमरीकी सडक निर्माण सघ ने भी इन क्लबो के साथ मिलकर अच्छी सडक व्यवस्था की माँग की। किसानो तथा दूरस्थ क्षेत्रो के विधायको ने भी कुशल सडक व्यवस्था पर बल दिया।

राष्ट्रीय स्तर पर मुख्य सडकों के निर्माण का कार्य सुव्यवस्थित रूप से 1916 मे पारित सघीय सडक सहायता अधिनियम के बाद ही पहली बार आरम्भ हुआ। सरकार ने घोषणा की कि वह ग्रामीण सडको के निर्माण कार्य पर 75 मिलियन डॉलर व्यय करेगी। अच्छी शुरुआत के बावजूद सडक निर्माण कार्य योजनाबद्ध तरीके से नही चला व घिसटता रहा। कृषि प्रधान प्रदेशो मे तो मुख्य सडको की स्थिति 1930 तक भी खराब बनी रही। इन परिस्थितियो मे अच्छे मौसम के अतिरिक्त कुछ मील तक की भी सडक यात्रा सम्भव नही थी।

किन्तु 1930 की महान् मन्दी सडक निर्माण के क्षेत्र मे एक अच्छी घटना सिद्ध हुई। अर्थव्यवस्था को निरन्तर गिरते हुए विनियोग स्तर से बचाने के लिए किये गये अधिकाश सार्वजनिक विनियोग सडक निर्माण पर हुए। 1932 से पहले सडक निर्माण पर सघीय व्यय 10% से अधिक नही था। किन्तु 1932 मे वह बढकर सघीय कोषो का 30% हो गया तथा द्वितीय महायुद्ध के छिडने तक बढता ही रहा। 1933 के बाद तो सघोय राशि से सहायक सडको का भी निर्माण किया गया।

द्वितीय विश्व-युद्ध

महायुद्ध के दौरान राष्ट्रीय सडको की अच्छी प्रकार देखभाल नही हो पाई। कुछ प्रमुख मार्गों की हालत तो काफी खराब हो गई। काग्रेस ने एक पुनर्निर्माण कार्यक्रम बनाया। युद्ध समाप्त होने के बाद के तीन वित्तीय वर्षों मे सघीय सडक सहायता अधिनियम, 1944 (Federal-Aid Highway Act, 1944) के अन्तर्गत

सडको के विकास हेतु 1,500 मिलियन डॉलर खर्च करने का प्रस्ताव किया गया।

1956 मे काग्रेस ने अन्तर्राज्यीय तथा प्रतिरक्षा सडक प्रणाली (interstate and defence highway system) स्थापित करने के लिए अधिकृत कर दिया। इसके अन्तर्गत अमरीका के प्रमुख केन्द्रो को जोडने के लिए कुल मिलाकर 41,000 मील लम्बी सडके बनाने का प्रस्ताव किया गया। यह कार्यक्रम 13 वर्षों मे सम्पूर्ण किया जाना था तथा इस पर 27 अरब डॉलर की लागत आनी थी। किन्तु कुछ समय बाद लागत का सशोधित अनुमान 41 अरब डॉलर हो गया। एक सडक मार्ग कोष (highway fund) स्थापित किया गया जिसमे पेट्रोलियम पदार्थों, ट्रको तथा टायरो से प्राप्त होने वाले करो को एकत्रित करने का प्रावधान किया गया। किन्तु इस प्रावधान की कई लोगो ने आलोचना की और कहा कि यह तो 'जाओ उसके पहले पैसा दो' जैसी बात थी।

मोटर-कारो तथा अन्य वाहनो की सख्या द्वितीय महायुद्ध के बाद से ज्यामितिक दर से बढ रही है। 1895 मे देश मे केवल 4 मोटर कारें रजिस्टर्ड कराई गई थी। 1963 मे रजिस्टर्ड मोटर गाडियो की सख्या 75 मिलियन से भी ऊपर थी। 1968 मे प्रति 10,000 अमरीकियो के पीछे 4,110 मोटर वाहन थे। स्थानीय सडको की कुल लम्बाई 1963 मे 4 मिलियन मील के लगभग थी। राज्यीय व सघीय सडको की लम्बाई क्रमश 1963 मे 9 व 7 लाख मील थी। 1979 मे अमरीका मे मोटर कारो की सख्या 150 मिलियन से ऊपर है।

हवाई यातायात
(Airlines)

वैसे तो अमरीका मे हवाई यातातात प्रथम विश्व युद्ध के दौरान आरम्भ हो चुका था किन्तु 1930 तक भी लोग-बाग नित नये हवाई रफ्तार कीर्तिमानो की स्थापना से रोमाचित होते रहे। बहु-इजिन युक्त हवाई जहाजो के निर्माण के बाद तो हवाई यात्रा आर्थिक दृष्टि से मितव्ययितापूर्ण व सुरक्षित बन गयी। 1935 के लगभग बढते हुए हवाई यातायात का विनियमन करने के उद्देश्य से तीन विनियामक एजेंसियाँ स्थापित की गई। व्यावसायिक हवाई सेवा का प्रथम विनियमन नागरिक उड्डयन अधिनियम, 1938 (Civil Aeronautics Act, 1938) द्वारा किया गया। एक नागरिक उड्डयन प्राधिकरण (Civil Aeronautics Authority) बनाया गया। इस नवीन प्राधिकरण के अन्तर्गत एक नागरिक उड्डयन प्रशासन (Civil Aeronautics Administration) तथा एक नागरिक उड्डयन बोर्ड (Civil Aeronautics Board) गठित किया गया। नागरिक उड्डयन प्रशासन (C A A) हवाई यातायात को बढावा देने व सुरक्षा नियमो को लागू करने के लिए उत्तरदायी था। नागरिक उड्डयन बोर्ड (C A B) समस्त सुरक्षा नियम जारी करने तथा हवाई यातायात का आर्थिक विनियमन करने के लिए उत्तरदायी बनाया गया।

द्वितीय विश्व-युद्ध के दौरान व उसके बाद व्यावसायिक हवाई यातायात की

प्रगति की दर आश्चर्यजनक रही है। 1939 मे अमरीकी हवाई कम्पनियो ने 683 मिलियन यात्री मील (million passanger miles) के बराबर उडाने भरी थी। 1957 मे यही आंकडा 29,000 मिलियन यात्री मील पहुँच गया। 1979 तक इस हवाई यातायात मे कम से कम 10 गुना वृद्धि हो चुकी है।

1958 के सघीय उड्डयन विधेयक ने हवाई यातायात की बढती हुई कठिनाइयों पर ध्यान दिया। उसने नागरिक उड्डयन बोर्ड (C A B) की पुरानी व्यवस्था को समाप्त कर दिया तथा उसके स्थान पर एक सघीय उड्डयन एजेंसी (federal aviation agency) की स्थापना की। इस एजेंसी का काम नागरिक उड्डयन की भौतिक सुख-सुविधाओ पर नियन्त्रण रखना था। एक प्रशासक (administrator), जोकि इस एजेंसी का प्रधान होता है, प्रत्यक्ष रूप से राष्ट्रपति को अपनी रिपोर्ट देता है। वह राष्ट्रीय सुरक्षा तथा व्यावसायिक उड्डयन की आवश्यकताओ के बीच समन्वय भी रखता है। भविष्य हवाई यातायात के साथ है। यह सभी कीर्तिमान तोडने के लिए सन्नद्ध है। दिन के हरेक घण्टे में अमरीकी आसमान मे औसतन 28 हजार गैर सैनिक हवाई जहाज उडते हुए रहते है। हवाई यातायात ने परिवहन के अन्य सभी साधनो को पीछे धकेल दिया है। यात्री आवागमन पर तो हवाई यातायात ने एक तरह से एकाधिकार-सा कर लिया लगता है।

अमरीका में यातायात व सचार 1976–77

	1976	1977
1 हवाई यातायात मिलियन डॉलर		
कुल यात्री मील (प्राप्तियां)	179	195
घरेलू उडानें (यात्री मील) प्राप्तियां (revenue)	145	158
अतर्राष्ट्रीय उडानें (यात्री मील) प्राप्तियां	34	37
2. शहरी यातायात व्यवस्था मिलियन डॉलर		
ले जाए गये यात्री (प्राप्तियां)	5 690	5 979
3 मोटर वाहन मिलियन डॉलर		
वाहनों की सख्या	100	100
सेवा से प्राप्तियां कुल	11 420	13 853
4 प्रथम श्रेणी रेल सेवा मिलियन डालर		
सेवा से प्राप्तियां, कुल	18 574	20 11[redacted]
माल भाडा	17 433	[redacted] 916
यात्री किराया	330	337

छठा अध्याय

महान् मंदी और न्यू डील
(GREAT DEPRESSION AND NEW DEAL)

1929 की गर्मी तक तो अमरीकी शायद यह सोच रहे थे कि उन्होंने शाश्वत समृद्धि का रास्ता ढूंढ लिया है। एक दशक में उनका औद्योगिक उत्पादन ड्योढ़ा हो चुका था। व्यापारी अपने लाभों से तथा मजदूर अपनी मजदूरी से सन्तुष्ट थे। केवल किसान कृषि पदार्थों के मूल्यों को लेकर भुनभुना रहे थे किन्तु उनके साथ तो ऐसा पहले से ही था। हर आदमी यही सोचता था कि इस समृद्धि व उत्पादन में वृद्धि होगी। यहाँ तक कि पश्चिमी देशों की अर्थव्यवस्थाएँ भी लगभग स्थिर हो चुकी थीं। अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में स्वतन्त्र व्यापार की पुनर्स्थापना की आशाएँ बलवती हो चली थी। किन्तु अक्तूबर 1929 में ये सारे सपने चूर-चूर हो गये जब शेयर बेचने की भगदड़ ने शेयर बाजार को हिला कर रख दिया। गिरते हुए शेयर मूल्यों का मनोवैज्ञानिक प्रभाव अत्यधिक भीषण था। अवसाद, फिर मन्दी, तथा अन्त में तो अर्थव्यवस्था का पूरी तरह ठप्प हो जाना ही वास्तविक घटना क्रम बन गया।[1]

महान् मन्दी (Great Depression)

महान् मन्दी ने न केवल अमरीका के पूंजीवाद को निम्नीकृत किया बल्कि उसने अन्य अनेक देशों की पूंजीवादी प्रणाली को भी एक प्रकार से छिन्न-भिन्न कर दिया। महान् मन्दी, यह सही ही कहा गया है, 'लाखों सामान्य-जनों के लिए निराशा व भूख पैदा की तथा उनके दिलों में अन्धी कुढ़न भर दी। इसके कारण कुल मिला-कर 200 अरब मानव-घण्टों का नुकसान हुआ। उसने कुछ ऐसा किया जो किसी विदेशी आक्रामक, राष्ट्रीय सकट या पुराने तरीके की भगदड़ ने कभी नहीं किया था, उसके कारण कई वर्षों तक अमरीकी अर्थव्यवस्था को जैसे लकवा मार गया।'

1929–33 के चार सालों में तो अमरीकी अर्थव्यवस्था जैसे रसातल में हो चली गई। चालू मूल्यों पर राष्ट्रीय उत्पाद 46% घट गया, वह 104 अरब डॉलर से घटकर 56 अरब डॉलर पर आ गया। स्थिर मूल्यों पर देखा जाये तब भी राष्ट्रीय उत्पाद में 31% की गिरावट आ चुकी थी। औद्योगिक उत्पादन घटकर आधा रह गया, थोक मूल्य एक-तिहाई से भी अधिक कम हो गये तथा उपभोक्ता मूल्यों में एक-

[1] *Ibid*, 628

चौथाई गिरावट आ गई।[1] किन्तु सबसे भयकर आँकडे तो रोजगार व बेरोजगारी के बारे मे थे। नागरिक रोजगार मे करीब 20% की गिरावट आयी तथा बेकारो की सख्या 15 लाख से बढकर 1 करोड 30 लाख हो गई। अत्यधिक अनुदार अनुमानो के अनुसार भी कम से कम 25% नागरिक कार्यों मे लगी हुई श्रम शक्ति बेकार हो गई। यदि हम इन आँकडो मे अर्द्ध-बेकारो को और मिला ले तो बेरोजगारी की वास्तविक दर महान् मन्दी के चरम बिन्दु पर 33% तक पहुँच जाती है।

अनुमानित बेकारी 1929–33

वर्ष	बेकारो की औसत वार्षिक सख्या (000)	नागरिक श्रम शक्ति का प्रतिशत
1929	1,550	3 2
1930	4,340	8 7
1931	8,020	15 9
1932	12,060	23 6
1933	12,830	24 9

महान् मन्दी के वर्षों मे मजदूरी की दरो मे तो साधारण गिरावट आयी किन्तु मजदूरो की कुल आय अत्यधिक घट गई क्योकि काम के घण्टे काफी कम हो गये थे।

उत्पादक श्रमिको की वास्तविक साप्ताहिक औसत मजदूरी

(1926=100)

वर्ष	निर्देशाक
1929	101 5
1930	94 3
1931	84 7
1932	69 2
1933	67 9
1934	74 6

Source Bureau of Labour Statistics

औसत साप्ताहिक आय के स्तर को देखने से भी यही स्पष्ट होता है कि सबसे अधिक नुकसान मजदूरो को ही रहा। उसके बाद व्यापार मे लगे लोग रहे। सबसे कम नुकसान वेतन भोगी कर्मचारियो को रहा।

औसत साप्ताहिक आय

(डॉलर मे)

वर्ष	मजदूर	वेतनभोगी कर्मचारी	व्यापारी
1929	27	35	28
1933	19	29	22
1937	25	33	25

Source *Business Statistics*, 1961

[1] *Ibid*, 628-29

सबसे अधिक आघात टिकाऊ वस्तुओं को लगा। 1920 के बाद उनके उत्पादन का चित्र उनमे आई गिरावट को स्पष्ट कर देता है। उत्पादन निर्देशाको के आधार पर (1957=100) 1929 मे 40 के चरम बिन्दु से टिकाऊ वस्तुओ का उत्पादन घटकर 1932 मे केवल 9 रह गया। मार्च 1933 मे टिकाऊ वस्तुओ के उत्पादन का निम्नतम निर्देशाक 8 रह गया था। टिकाऊ वस्तुओ का उत्पादन 80% गिर गया था। गैर-टिकाऊ वस्तुओ का उत्पादन कुछ कम तेजी से गिरा था। वह निर्देशाको के रूप मे 40 से घटकर 28 पर आ गया था (1957=100)।

रॉबर्टसन ने अपनी पुस्तक मे लिखा है कि 'मन्दी की तीव्रता अत्यधिक पीडा-दायक थी किन्तु उसके कभी समाप्त न होने जैसी स्थिति ने तो कुण्ठा व निराशा को जन्म दिया। 1880 के दशक मे आयी मन्दी को 40 वर्ष गुजर चुके थे। 1920-21 के दौरान आयी मन्दी आकस्मिक व घिनौनी थी तथा उसमे टिकाऊ वस्तुओ का उत्पादन 43 प्रतिशत कम हो गया था। किन्तु यह सब होने के उपरान्त उसका व्यवहार मन्दी जैसा ही था—अर्थात् वह आई और जल्दी ही चली गई तथा निर्मित माल का उत्पादन अगले दो वर्षों मे पुन पुराने स्तर तक पहुँच गया। इसके ठीक विपरीत महान् मन्दी के दौरान निर्मित माल का उत्पादन (manufacturing output) 1929 के स्तर को पुन 1936 के अन्त तक ही प्राप्त कर पाया, वह कोई साल भर तक 1929 के स्तर से ऊपर रहा, फिर वापस गिरा तथा महान् मन्दी से पूर्व की स्थिति मे पुन अगस्त 1939 तक ही जाकर पहुँच पाया। टिकाऊ वस्तुओ के उत्पादन मे तो युद्ध पूर्व का स्तर अगस्त 1940 तक अर्थात् महान् मन्दी की शुरुआत के 11 वर्षों के बाद ही पहुँच पाया था।'

महान् मन्दी के कारण

पिछले 50 वर्षों से अर्थशास्त्रियो से बार-बार यही प्रश्न पूछा जाता रहा है कि उस महान् मन्दी के कारण क्या थे जिसने समूची विश्व अर्थव्यवस्था को झकझोर कर रख दिया था। हम उन ताकतो के बीच अन्तर कर सकते हैं जिन्होने आर्थिक गतिविधियो मे गिरावट को जन्म दिया तथा जिन्होने एक व्यापारिक अवसाद (business recession) को सबसे खराब विपत्ति मे बदल दिया।

(1) **बचत विनियोग व उत्पादन की क्षति**—प्रसिद्ध अमरीकी अर्थशास्त्री हैंसन (Hansen) ने तर्क दिया है कि 'महान् मन्दी अनेक विशाल विनियोग उछालो (investment booms) के एक साथ अपने अन्तिम छोर तक पहुँचने का परिणाम थी। और यह भी कि अर्थव्यवस्था की 'परिपक्वता' (maturity) के परिणामस्वरूप बचत अत्यधिक होने लगी थी जबकि विनियोग के अवसर काफी गिर गये थे।' लन्दन स्कूल ऑफ इकनॉमिक्स के प्रो॰ रॉबिन्स ने लिखा है कि 'वास्तविक बचत बहुत कम थी जबकि विनियोग मे अत्यधिक तेजी से प्रसार हुआ और फिर वह अचानक ध्वस्त हो गया क्योकि उसके लिए वित्त अस्थिर बैंक साख से प्राप्त हुआ था न कि स्थिर बचत आदतो से।'

हार्वर्ड स्कूल के समर स्लिचर (Summer Slichter) ने, जोकि महान् मन्दी

के कारणों की जाँच के लिए नियुक्त समिति का अध्यक्ष भी था, अपने अध्ययन के निष्कर्ष में कहा कि 'उस समय की सट्टेबाजी के पागलपन ने व्यापारियों के मन में शेयर बाजार के ढह जाने तथा व्यावसायिक अवसाद पैदा हो जाने का डर घुसा दिया और इसी के परिणामस्वरूप माल तालिकाओं (inventories) तथा पूँजी विनियोगों में कटौती होती चली गई।' शुम्पीटर (Schumpeter) को लगा कि महान् मन्दी के बीज बीसवीं शताब्दी के प्रथम दो दशकों की औद्योगिक गतिविधियों द्वारा बोये गये थे। इन गतिविधियों में सबसे महत्त्वपूर्ण टिकाऊ वस्तुओं का पुंजोत्पादन (mass production) होने लग जाना था। 'बढ़ते हुए उत्पादन के साथ कदम से कदम मिला कर चल पाने के लिए यह आवश्यक था कि अमरीकी उपभोक्ताओं के हाथों में वर्तमान क्रय शक्ति में भी साथ ही साथ वृद्धि होती। उपभोक्ता साख (consumer credit) प्रदान करने की नई प्रथा ने निश्चय ही निर्माताओं को अपनी टिकाऊ वस्तुएँ जैसे, मोटर कारें, रेडियो, रेफ्रिजरेटर आदि कहीं अधिक मात्रा में बेच पाने में सहायता की।' किन्तु इससे भी कोई विशेष सहायता नहीं मिल पायी क्योंकि इस अवधि में लोगों की आय उत्पादकता वृद्धि के अनुपात में नहीं बढ़ सकी। शुम्पीटर ने अनुमान लगाया है कि 1923 से 1929 के बीच उत्पादकता में सम्भावित वृद्धि वास्तविक मजदूरी में होने वाली वृद्धि के मुकाबले तीन गुना रही। स्पष्ट है कि 1930 में आन्तरिक बाजारों में इतनी तीव्र गति से बढ़ता हुआ औद्योगिक उत्पादन खप नहीं पाया।

(2) **भवन-निर्माण कार्य में गिरावट**—1925 के बाद से ही रिहायशी व व्यावसायिक दोनों ही प्रकार की इमारतों के निर्माण कार्य में बड़ी तेजी से गिरावट आयी। 1918 में भवन-निर्माण कार्य में जो अचानक तेजी आयी थी उसने देश को 1920–21 के दौरान आयी एक साधारण सी मन्दी से उबारने में बड़ी सहायता की थी। किन्तु जब यह गतिविधि भी गिरने लगी तो अर्थव्यवस्था पर उसका अत्यधिक निराशाजनक प्रभाव (depressing influence) पड़ा। 1928 तक आते-आते तो देश में निर्माण कार्य में साफ दिखाई पड़ने वाली गिरावट आ चुकी थी।

(3) **गिरते हुए कृषि मूल्य**—1920 के बाद विश्व भर में कृषि पदार्थों के मूल्य में गिरावट की प्रवृत्ति जारी थी। व्यापारियों की भी यह आम शिकायत हो चुकी थी कि किसानों को उनके द्वारा बेची जाने वाली वस्तुओं की मात्रा बराबर *घटती जा रही थी। जैसा कि शुम्पीटर ने लिखा था, 'अनेक क्षेत्रों में हुए नव-*प्रवर्तनों (innovations) से जो यातायात एवं कृषि क्रान्तियाँ पैदा हुई थी वे आखिर अनिश्चित काल तक तो चल नहीं सकती थी और उनकी अन्तिम परिणति मन्दी के रूप में ही होनी थी।'

(4) **शेयर-बाजार में भारी उतार-चढ़ाव**—आम तौर पर शेयर बाजार (stock market) में आने वाले उतार चढ़ाव व्यावसायिक उच्चावचनों (business fluctutions) का कारण नहीं माने जाते। किन्तु 1929 में जो स्थिति बनी वह इस सामान्य नियम का अपवाद ही रही। न्यूयार्क टाइम्स का 24 औद्योगिक इकाइयों का शेयर सूचकांक (stock index) जो 1924 में 110 के लगभग था,

जनवरी 1929 तक चढ़कर 338 तथा सितम्बर 1929 तक तो 452 हो चुका था। इतनी अप्रत्याशित तेजी से विनियोक्ताओ को भारी मौद्रिक लाभ हुए। यही आशावाद लोगो की इस आम धारणा का कारण बना कि अब देश मे स्थाई समृद्धि आ चुकी थी। किन्तु अगले ही महीने अर्थात् अक्तूबर 1929 मे जब इसकी एकदम विपरीत स्थिति (reversal) पैदा हुई तो उसके कारण अमरीकी अर्थव्यवस्था को जो धक्का लगा उसका वर्णन नही किया जा सकता। एक सप्ताह मे ही औद्योगिक शेयरो का सूचकांक घटकर 275 पर आ गया। नवम्बर 1929 मे तो वे 225 पर जा पहुँचे। इस बात को कोई भी निश्चय के साथ नही कह सकता कि यह गिरावट मनोवैज्ञानिक सदमे के कारण आयी या फिर ऐसा विनियोग के लिए उपलब्ध कोषो मे अचानक भारी गिरावट आ जाने के कारण हुआ। किन्तु इन उतार-चढावो ने गणना न कर सकने योग्य हानि पहुँचाई तथा औद्योगिक उत्पादन मे 25% वार्षिक की गिरावट आने लगी।

1929 मे शेयर बाजार के ढह जाने से प्रतिक्रियाओ की एक श्रृंखला को जन्म मिला। उसके परिणामस्वरूप बैंको के दिवालिया हो जाने की एक के बाद एक तीन लहरें आयी। पहली लहर 1930 के अन्त मे, दूसरी लहर 1931 के अन्तिम महीनो मे तथा तीसरी व सर्वाधिक विनाशकारी लहर जो मध्य 1932 मे प्रारम्भ हुई थी, 1933 की सर्दी तक चली। इन बैंको के दिवालियेपन की लहरो ने जमाओ को नष्ट कर दिया तथा साख व्यवस्था को छिन्न-भिन्न कर डाला। बैंको के इस तरह दिवालिया हो जाने का प्रमुख उत्तरदायित्व व्यक्तिगत सघीय बैंको (individual federal reserve banks) द्वारा अपने कर्त्तव्य का ठीक से निर्वाह न कर पाने पर रहा।

(5) **सस्ती मुद्रा नीति**—एक अन्य तत्त्व जो महान् मन्दी के आगमन के लिए उत्तरदायी माना गया वह सघीय रिजर्व प्रणाली (federal reserve system) द्वारा 1924 व 1927 मे सस्ती मुद्रा नीति की घटनाओ की पुनरावृत्ति किया जाना था। इन सस्ती मुद्रा नीति घटनाओ (easy money episodes) ने बडे पैमाने पर सट्टेबाजी को जन्म दिया जिससे अन्तिम परिणाम के रूप मे शेयर बाजार का सर्वनाश हुआ।

(6) **निर्यातो मे तेजी से गिरावट**—कुछ लेखको ने निर्यात मे तेजी से आयी गिरावट को भी महान् मन्दी का एक प्रमुख कारण बतलाया है। लेकिन गहराई से देखने पर ऐसा लगता है कि निर्यातो मे यह गिरावट महान् मन्दी का परिणाम अधिक थी। 1930 मे आयात व निर्यात मे लगभग समान रूप से गिरावट आयी तथा विदेश व्यापार से 1 अरब डॉलर की विशुद्ध बचत रही। 1931 मे यह विदेश व्यापार अतिरेक घटकर 500 मिलियन डॉलर रह गया। इससे भी अर्थव्यवस्था पर निराशाजनक प्रभाव पडा किन्तु विदेश व्यापार मे गिरावट का परिमाण बहुत अधिक नही था।

महान् मन्दी के काल के दौरान उसके उपचार हेतु कई निदान प्रस्तुत किये गये किन्तु उनमे सार्वजनिक वित्त की चली आ रही नीतियो मे क्रान्तिकारी परिवर्तन

सुझाए गये थे तथा संघीय सरकार को भी एकदम नवीन व अपरम्परागत भूमिका निभानी थी। राष्ट्रपति हूवर का प्रशासन यह सब कर सकने में सक्षम नहीं था। संकट की इस घड़ी में भी एक मूर्खतापूर्ण मौद्रिक नीति अपनाई जाती रही। हालांकि पुनर्निर्माण वित्त निगम (Reconstruction Finance Corporation) तथा संघीय कृषि बोर्ड (Federal Farm Board) जैसी संस्थाओं का निर्माण किया जा चुका था किन्तु उन्हें पूरी तरह क्रियाशील नहीं बनाया जा सका।' सरकार व व्यवसाय में नेतृत्व प्राप्त किये हुए लोगों के प्रमाण-पत्रों के आधार पर जन विश्वास बनाए रखने की बात पर आवश्यकता से ज्यादा जोर दिया गया और आय में वृद्धि करने तथा मुद्रा संकुचन को ठीक करने के उपायों पर विशेष ध्यान नहीं दिया गया।'

1932 के चुनावों में रिपब्लिकन दल की हार हुई तथा राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने मार्च 1933 में बागडोर सम्भाली। इस बीच 14 फरवरी 1933 को डेट्रॉयट के सभी प्रमुख बैंकों पर ताला पड़ चुका था। 'औद्योगिक उत्पादन अब कुल क्षमता का मात्र 40 प्रतिशत रह गया था, देश के एक चौथाई पारिवारिक मुखियाओं के पास कोई काम नहीं था और अज्ञात संख्या में लोग अक्षरशः भूखों मर रहे थे।'[1]

नया आर्थिक कार्यक्रम (New Deal Policy)

फ्रैंकलिन रूजवेल्ट के अनुसार, 'वास्तव में हम जो चाहते हैं वह है हमारी आर्थिक प्रणाली में सन्तुलन उद्योग व कृषि के बीच सन्तुलन, मजदूर, नियोक्ता तथा उपभोक्ता के बीच सन्तुलन। हम यह भी चाहते हैं कि हमारे घरेलू बाजार व्यापक एवं समृद्ध बने रहें तथा अन्य देशों के साथ हमारा व्यापार बही-खाते के दोनों तरफ बढ़ता रहे।'

4 मार्च 1933 को शपथ ग्रहण करने के बाद दिये गये अपने प्रथम उद्घाटन भाषण में राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने घोषणा की कि, 'एकमात्र चीज जिससे हमें डरना चाहिए वह डर स्वयं है।' राष्ट्रपति रूजवेल्ट के प्रशासन ने मन्दी से निपटने के लिए जो उपाय किये उन्हें दो श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है (1) राहत व पुनरुद्धार सम्बन्धी उपाय, तथा (2) सुधार एवं पुनर्निर्माण सम्बन्धी उपाय। महान् मन्दी को निकाल बाहर करने का यह दुतरफा प्रयास ही नवीन आर्थिक कार्यक्रम या 'न्यू डील' के नाम से विख्यात हुआ। कुछ अन्य लेखकों ने प्रथम न्यू डील तथा द्वितीय न्यू डील कार्यक्रम के बीच और आगे तक भी भेद किया है। प्रथम न्यू डील कार्यक्रम के अन्तर्गत 1933-35 तथा द्वितीय न्यू डील के अन्तर्गत रूजवेल्ट की 1935 के बाद की नीतियों को सम्मिलित किया गया है।

महान् मन्दी के घोर निराशा से भरे वातावरण में प्रशासन में परिवर्तन आवश्यक बन गया था। फ्रैंकलिन रूजवेल्ट का आत्मविश्वास व शक्ति काफी धीरज बंधाने वाले थे। किन्तु देश को मात्र मनोवैज्ञानिक उन्नयन की ही आवश्यकता नहीं थी। आवश्यकता इस बात की थी कि बेसहारा हो चुके परिवारों को राहत प्रदान की जाये। एक अन्य महत्त्वपूर्ण कार्य गिरते हुए मूल्यों की प्रवृत्ति को उलटने का था।

[1] *Ibid.*, 634

एक और आवश्यक कार्य किसानो व श्रमिको की आय मे वृद्धि करने का था।

(1) बेकारी राहत तथा 'सस्ते' डॉलर—अनेक सस्थाओ के माध्यम से एक बेरोजगारी राहत का सघीय कार्यक्रम तुरन्त शुरू किया गया। डॉलर का अवमूल्यन तब प्रारम्भ हो गया जब उसके पीछे स्वर्ण की मात्रा घटा दी गई। सस्ती मुद्रा की इस सघीय नीति (Federal Policy of Easy Money) का उद्देश्य मूल्य स्तर को ऊँचा उठाना था। कृषि आय का आधारभूत पुनर्समायोजन करने तथा औद्योगिक मजदूरी-मूल्य ढाँचे को नया स्वरूप प्रदान करने का कार्य न्यू डील कार्यक्रम के अन्तर्गत जिन दो सस्थाओ द्वारा पूरा करना था, वे थी—कृषि समायोजन प्रशासन (A A A) तथा राष्ट्रीय पुनरुद्धार प्रशासन (National Recovery Administration)।

(2) कृषि के लिए नवीन आर्थिक कार्यक्रम—हम कृषि समायोजन कार्यक्रम (A A A) कृषि विकास के अन्तर्गत पहले ही देख चुके हैं। इस कार्यक्रम का उद्देश्य कपास उगाने वाले कृषि क्षेत्र मे कम से कम 30% की कमी करना था ताकि उसकी पूर्ति को घटाया जा सके। अस्थाई रूप से इस प्रकार अपने कृषि क्षेत्र मे कमी करने के लिए किसानो को क्षति पूर्ति के रूप मे लाभ-भुगतान (benefit payments) करने का भी प्रावधान था। इसके बाद इसी तरह कृषित क्षेत्र मे कमी का कार्यक्रम अन्य कई प्रकार की फसलो का उत्पादन घटाने की दृष्टि से भी लागू किया गया।

लेकिन कृषि समायोजन कार्यक्रम के अन्तर्गत फसलो के कृषित क्षेत्र को घटाकर कृषि उत्पादन मे कटौती करने की नीति की तीखी आलोचनाएँ की गयी। आलोचको का तर्क था कि इस तरह कृषि पदार्थों का उत्पादन घटाना एक विरोधाभास-पूर्ण नीति थी विशेष रूप से तब जबकि लाखो लोग भूख व कुपोषण से पीडित थे। इस बीच तकनीकी सुधार हो जाने के कारण कृषित क्षेत्र मे कमी द्वारा कृषि पदार्थों के उत्पादन मे कमी करने के लिए जो लक्ष्य निर्धारित किया गया था वह भी पूरा नही हो पाया। इतना ही नही, 1936 मे अमरीका के सर्वोच्च न्यायालय ने कृषि समायोजन विधेयक (A A A) को ही असावैधानिक करार देते हुए रद्द कर दिया क्योकि वह राज्यो के अधिकारो का अतिक्रमण करता था तथा सघीय सरकार द्वारा कर लगाने के अधिकार का दुरुपयोग करता था।

1936 ही मे एक नया कृषि समायोजन विधेयक (Agricultural Adjustment Act) पारित किया गया। इसका उद्देश्य कुछ कृषि पदार्थों के लिए 'समता मूल्यों' (Parity Prices) की स्थापना करना था। ये समता मूल्य 1909–14 की अवधि मे किसानो द्वारा खरीदी गई वस्तुओ के लागत मूल्य के बराबर रखे जाने थे। किसानो को और भी अधिक राहत प्रदान करने के उद्देश्य से 1933 मे एक कृषि साख विधेयक (Farm Credit Act, 1933) लाया गया। इस विधेयक ने भूमि बैंको की स्थापना की तथा उत्पादन साख, मध्यवर्ती साख व सहकारी साख के लिए भी प्रावधान किये।

तीन अन्य विधेयक, जो किसानो को राहत प्रदान करने के उद्देश्य से पारित किये गए, इस प्रकार थे—

(i) कृषि-रहन व पुनर्वित्त अधिनियम, 1934 (Farm Mortgage and Refinancing Act, 1934)—इस विधेयक ने एक संघीय कृषि-रहन निगम स्थापित किया जो कृषि ऋणो के लिए पुनर्वित्त की सुविधा देने मे सहायता करता था।

(ii) कृषि-रहन मोचन-निषेध विधेयक, 1934 (Farm Mortgage Foreclosure Act, 1934)—इस विधेयक ने भूमि बैंक आयुक्तो को इस बात का अधिकार दिया कि वे किसानो को मोचन-निषेध पूर्व उनके स्वामित्व वाली भूमि का पुनर्क्रय करने के लिए ऋण प्रदान करने की सुविधा दे सकते हैं।

(iii) फ्रेजीयर-लेम्के दिवालिया कानून, 1934 (Frazier-Lemke Bankruptcy Act, 1934)—इस विधेयक मे यह प्रावधान किया गया कि कोई भी किसान अपने दिवालिया होने की वजह से बेचे गये खेत को 6 वर्षों के भीतर पुनर्क्रय कर सकेगा। सर्वोच्च न्यायालय द्वारा इस विधेयक को निरस्त घोषित कर दिये जाने के बाद इस अवधि को घटाकर 3 वर्ष कर दिया गया।

(3) उद्योगो के लिए 'न्यू डील'—राष्ट्रीय औद्योगिक पुनरुद्धार विधेयक (National Industrial Recovery Act) 1933 मे पारित किया गया। इसका उद्देश्य मूल्य एव मजदूरी के स्तर को बढाना व काम को फैलाना था जिसके लिये काम के घण्टो मे कमी तथा प्रतिद्वन्द्वियो द्वारा मूल्यो मे कटौती को रोकने जैसे उपाय किये गये। जनरल ह्यू जॉन्सन (General Hugh Johnson) की अध्यक्षता मे एक राष्ट्रीय पुनरुद्धार प्रशासन (National Recovery Administration, N R A) गठित किया गया। इस प्रशासन ने प्रत्येक उद्योग के लिए 'उचित व्यवहार आचार सहिता' (code of fair-practice) तैयार की। 1935 तक ऐसी 557 आचार सहिताएँ स्वीकार की जा चुकी थी। अनेक व्यक्तियो ने राष्ट्रीय पुनरुद्धार प्रशासन द्वारा किये गये उपायो को शका भरी नजरो से देखा किन्तु राष्ट्रीय उत्पाद (G N P) 1933 के 56 अरब डॉलर से बढकर 1935 मे 72 5 अरब डॉलर तक पहुँच गया। वस्तुओ के थोक मूल्यो मे 33% की वृद्धि हुई तथा वे 1930 के अन्तिम महीनों वाले स्तर तक जा पहुँची।

अर्थव्यवस्था मे ढेर सारी नयी मुद्रा प्रवाहित करने (pump priming) के बारे मे काफी चर्चा चली थी जिसे सार्वजनिक व राहत कार्यों पर व्यय करने के सुझाव थे। पहले पहल तो इसे अपव्यय माना गया किन्तु 1936 के बजट मे 4,500 मिलियन डॉलर का घाटा दिखाया गया। यह घाटा अपने आप मे एक रिकॉर्ड था। 1935 के बाद हर चीज मे चढ़ने की प्रवृत्ति आयी तथा यह चल निकली। 1937 के आरम्भ मे निर्मित वस्तुओ का कुल उत्पादन 1929 के स्तर से आगे निकल गया। मूल्य तथा मजदूरी मे भी तेजी से वृद्धि हुई। बेकारी की सख्या मे भी काफी कमी आई।

1937 मे ऐसा सोचा गया कि मन्दी अन्तिम रूप से समाप्त हो चुकी है। इसके परिणामस्वरूप बजट मे घाटे का प्रावधान समाप्त कर दिया गया तथा अनेक राहत कार्यों पर खर्च मे कटौती कर दी गई। किन्तु मार्च 1938 मे मन्दी एक बार पुन लौट कर आ गई। लोगो मे न्यू डील कार्यक्रम के प्रति अविश्वास पैदा हो गया। 1939

अनुमानित बेकारी : 1934–43

वर्ष	बेकारी (मिलियन में)	नागरिक श्रम-शक्ति का %
1934	11 3	21 7
1935	10 6	20 1
1936	9 0	16 9
1937	7 7	14 3
1938	10 4	19 0
1939	9 5	17 2
1940	8 1	14 6
1941	5 6	9 9
1942	2 7	4 7
1943	1 1	1 9

के अन्त तक ही औद्योगिक उत्पादन का स्तर पुन 1937 के चरम उत्पादन तक पहुँच सका। टिकाऊ वस्तुओं के उत्पादन में तो पुनरुद्धार 1940 तक ही सम्भव हुआ। पूर्ण पुनरुद्धार के प्रथम चिह्न भी 1940 ही मे दिखाई पडने लगे थे।

(4) बैंकिंग मे 'न्यू डील'—स्वर्णमान का 1933 मे परित्याग कर दिया गया। 1933 मे एक ग्लास-स्टेगाल विधेयक (Glass-steagall Act) बैंकिंग गति विधियो के विनियमन हेतु पारित किया गया। इस विधेयक ने सघीय रिजर्व बैंक को व्यावसायिक बैंको द्वारा सट्टेबाजी के कार्यो के लिए साख-सृजन पर रोक लगाने का अधिकार प्रदान किया। एक सघीय निक्षेप बीमा योजना (Federal Deposit Insurance Scheme) भी प्रारम्भ की गई तथा प्रत्येक बैंक को इससे सम्बद्ध होने के लिए बाध्य किया गया।

(5) टेनेसी घाटी क्षेत्र (Tennessee Valley Region) के लिए 'न्यू डील'—टेनेसी घाटी क्षेत्र का विकास न्यू डील कार्यक्रम की वह सर्वोत्कृष्ट घटना थी जो कृषि विकास के लिए घटी। इस कार्यक्रम मे 7 राज्य सम्मिलित थे तथा लगभग 20 लाख लोगो पर इसका प्रभाव पडा। इस कार्यक्रम का उद्देश्य बाध व बिजली घरो का निर्माण करना था। साथ ही साथ इसके द्वारा बाढ नियन्त्रण कार्यक्रम, भूमि या मिट्टी के कटाव को रोकना तथा बन लगाने के काम मे तेजी लाने के उद्देश्य भी पूरे किये जाने थे। 'एक दशक के भीतर-भीतर (1933 मे टेनेसी वेली एक्ट के पारित किये जाने के बाद) टेनेसी घाटी योजना ने इन सभी लक्ष्यो को प्राप्त कर लिया था। 1937 में काग्रेस के नाम अपने एक विशेष सन्देश मे ऐसी ■ और क्षेत्रीय आयोजन परियोजनाओ को प्रारम्भ करने की वकालत की थी जिनसे पूरा राष्ट्र लाभ उठा सकता था। किन्तु उसे एक की भी अनुमति नही मिली।'

(6) श्रमिको के लिए 'न्यू डील'—औद्योगिक श्रमिको की दशा सुधारने के लिए चार महत्त्वपूर्ण विधेयक पारित किये गये :

(i) राष्ट्रीय औद्योगिक पुनरुद्धार विधेयक 1933 ने मजदूरो के सगठित होने व सामूहिक सौदेबाजी कर सकने के अधिकार को गारन्टी प्रदान की।

(ii) राष्ट्रीय रोजगार सेवा विधेयक, 1933 (National Employment Service Act) ने सघीय सरकार तथा स्थानीय रोजगार कार्यालयों के बीच सहयोग बढाने के लिए प्रावधान किये।

(iii) वाल्श-हीले विधेयक, 1936 (Walsh-Healey Act) मे फैक्ट्रियो में काम की दशाओ के विनियमन हेतु प्रावधान किये गये।

(iv) उचित श्रम प्रतिमान विधेयक, 1938 (Fair Labour Standards Act) में श्रमिको के लिए न्यूनतम मजदूरी तथा काम के अधिकतम घण्टो के लिए प्रावधान किया गया।

नवीन आर्थिक कार्यक्रम (New Deal Policy) का मूल्याकन

नवीन आर्थिक कार्यक्रम के समर्थको का मानना था कि उसने देश को महा-विनाश से बचा लिया। इसके आलोचको का मानना था कि यह कार्यक्रम अनेक नीतियो की खिचडी था तथा वह अमरीकी अर्थव्यवस्था की आधारभूत समस्याओ को हल करने मे असफल ही रहा।

आलोचको ने यह भी तर्क दिया कि नवीन आर्थिक कार्यक्रम रोजगार व उत्पादन को पुनर्जीवित करने मे असफल ही रहा। 1937 में भी 70 लाख से अधिक औद्योगिक श्रमिक बेकार थे तथा कुल राष्ट्रीय उत्पाद (Gross National Product) भी 71 अरब डॉलर तक ही पहुँच पाया था जबकि वह 1929 मे 82 अरब डॉलर के स्तर तक तो एक बार पहले ही पहुँच चुका था। आलोचको ने नवीन आर्थिक कार्यक्रम पर यह भी आरोप लगाया कि उसने राष्ट्रीय ऋणो को दुगुना कर दिया था। विनियोग की धीमी दर भी गलत सरकारी नीतियों के कारण बनी रही थी। यह भी तर्क दिया गया कि 'निजी उपक्रमो पर प्रहार करके, नौकरशाही विनियमन थोप करके, राष्ट्रीय ऋण भार बढाकर तथा श्रमिको को अनेक प्रकार के विशेषाधिकार प्रदान कर उसने एक अनिश्चितता की स्थिति पैदा कर दी थी जिसमें व्यापार का प्रसार असम्भव बन गया था।' अन्य आलोचको का मानना था कि नवीन आर्थिक कार्यक्रम मुख्य रूप से इसलिए असफल रहा कि वह बहुत अधिक आगे तक नहीं जा पाया। उनके अनुसार 'सार्वजनिक विनियोग अब से एक स्थायी नीति होनी चाहिए थी और अगर धनराशि इस प्रकार व्यय की जाये कि जिसमे राष्ट्रीय सम्पदा में अभिवृद्धि हो जैसे कम लागत के रिहायशी मकानो का निर्माण, स्कूलो, अस्पतालो तथा अन्य सार्वजनिक उपयोग वाले भवनो का निर्माण—तो बजट मे घाटे तथा राष्ट्रीय ऋण भार मे निरन्तर वृद्धि से चिन्तित होने की आवश्यकता नही है।'

इन अनेक आलोचनाओं के उपरान्त यह बात निःसन्देह रूप से कही जा सकती है कि सयुक्त राज्य अमरीका के आर्थिक इतिहास मे यह नवीन आर्थिक कार्यक्रम पथ-प्रदर्शक (pace-setter) के रूप मे जाना जायेगा। इसे पहले से ही एक ऐसे सर्वाधिक शक्तिशाली एव प्रभावशाली मुद्रा सकुचन विरोधी कार्यक्रम के रूप मे ख्याति प्राप्त हो चुकी है जो अब तक के इस प्रकार के कार्यक्रमो मे सबसे विशाल पैमाने पर चलाया गया। नवीन आर्थिक कार्यक्रम ने अमरीकी अर्थव्यवस्था में कुछ ऐसी विशिष्ट

प्रवृत्तियो को जन्म दिया जो उन कार्यक्रम के समाप्त हो जाने के बाद भी कई वर्षों तक सक्रिय रही। इन नवीन प्रवृत्तियो को इस प्रकार रखा जा सकता है—

(1) अमरीकी अर्थव्यवस्था ने, अपने जीवन काल मे पहली बार, आयोजन व केन्द्रीय नियन्त्रण के महत्त्व को पहचाना। गम्भीर आर्थिक सकट का सामना करने मे सरकार की भूमिका भी काफी स्पष्ट हो गई।

(2) नवीन आर्थिक कार्यक्रम को एक नये आर्थिक दर्शन को प्रारम्भ करने का भी श्रेय दिया जाता है। कीन्स द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त नवीन आर्थिक कार्यक्रम के तौर-तरीको के समरूप ही थे।

(3) इस एक नये सिद्धान्त की भी स्थापना हुई कि आर्थिक समृद्धि की पुनर्स्थापना एकाधिकार की स्थापना द्वारा की जा सकती है तथा यह भी कि इस प्रकार के एकाधिकार के लिए सरकारी समर्थन आवश्यक होता है। सरकार द्वारा लाया गया कृषि समायोजन विधेयक (Agricultural Adjustment Act) कृषि एकाधिकार (Farm Monopoly) स्थापित करने का ही एक प्रयास था। राष्ट्रीय औद्योगिक पुनरुद्धार विधेयक (National Industrial Recovery Act) द्वारा इसी प्रकार औद्योगिक एकाधिकार स्थापित करने के भी प्रयास किये गये थे। उत्पादन पर अनेक प्रकार की सीमाएँ लगाकर उसे प्रतिबन्धित कर दिया गया था तथा बिक्री मूल्य भी तय कर दिये गये थे। ये एकाधिकारिक प्रयास अपने अन्तिम परिणाम मे उद्योग व कृषि दोनो ही क्षेत्रो मे माँग व पूर्ति के बीच समानता स्थापित कर पाने मे सफल रहे थे।

(4) नवीन आर्थिक कार्यक्रम ने बैंकिंग सेवाओ तथा मुद्रा के निर्गमन मे भी कुछ नयी बातें सिखाई तथा परियोजनाओ के लिए मजबूत स्रोतो से वित्तीय साधन प्राप्त करने का तरीका भी बताया। मौद्रिक व राजकोषीय उपायों का नवीन आर्थिक कार्यक्रम के सम्पूर्ण कार्यकाल मे अत्यन्त प्रभावशाली ढग से उपयोग किया जाता रहा।

(5) नवीन आर्थिक कार्यक्रम ने प्रशासन को भविष्य मे मन्दी से पैदा होने वाली किसी भी चुनौती का मुकाबला कर सकने की क्षमता व योग्यता प्रदान की।

(6) नवीन आर्थिक कार्यक्रम ने सघीय सरकार को और भी शक्तिशाली बनाया। यह प्रवृत्ति तब से ही चलती चली आ रही है तथा नवीन आर्थिक कार्यक्रम के बाद के वर्षों मे बनी सघीय सरकारे पिछली सरकारो के मुकाबले अधिक शक्तिशाली बनकर सामने आयी हैं।

(7) अनेक सामाजिक सुरक्षा कार्यक्रमो (Social Security Programmes) की शुरुआत कर नवीन आर्थिक कार्यक्रम ने अमरीकी नागरिको को पहली बार उनके सामाजिक दायित्वो से अवगत कराया। उसने सम्पूर्ण सयुक्त राज्य अमरीका मे मानवतावादी कार्यक्रमो तथा सामाजिक सुधारो की एक लहर पैदा कर दी।

इस सन्दर्भ मे नवीन आर्थिक कार्यक्रम प्रो० जे० के० गेलब्रेथ (J K Galbraith) *की इस नई अवधारणा का अनुसमर्थन ही करती लगती है कि 'यदि* अर्थव्यवस्था मे एक मजबूत निजी बाजार की शक्ति दी हुई हो तो प्रतिभार वाली शक्ति (countervailing power) अर्थव्यवस्था की स्वतन्त्र रूप से स्व विनियमन

(autonomous self-regulation) कर सकने की क्षमता को दृढ ही बनाती है और इस तरह सरकारी नियन्त्रण या आयोजन के कुल परिमाण को वाञ्छित या आवश्यक, अन्त मे घटाती ही है।'

प्रो॰ फॉकनर ने लिखा है कि 'नवीन आर्थिक कार्यक्रम मे एक नवीन तत्त्व अहस्तक्षेप की नीति की अवनति को अधिक तेज कर देने का था।'[1]

[1] 'The New element in the New Deal was the acceleration of the decline of the laissez faire '—Faulkner, *American Economic History*

सातवाँ अध्याय

श्रम संघवाद

(TRADE UNIONISM AND LABOUR MOVEMENT)

आरम्भिक श्रम आन्दोलन

अर्थशास्त्री सामान्यतया यह कहते हैं कि आधुनिक श्रम समस्याएँ 'श्रमिक के उसके औजारो से पृथक् हो जाने के कारण' उत्पन्न हुई हैं। जब सयुक्त राज्य अमरीका ने 1776 मे एक स्वतन्त्र राष्ट्र के रूप में अपने अस्तित्व की शुरुआत की तब वह एक बहुत आदिम प्रकार का पूंजीवादी समाज था। अधिकाश जनसख्या गाँवो मे रहती थी तथा 1810 मे 80% श्रम-शक्ति कृषि-कार्यों मे लगी हुई थी।

1790 के दशक मे फिलाडेल्फिया, न्यूयार्क तथा बोस्टन के कुछ शिल्पियो (craftsmen) ने आधुनिक श्रम-सघो के आदि स्वरूप (prototype) कुछ सघ बनाये थे। किन्तु ये अधिकाश सघ अस्थायी व सक्रमणकालीन थे। उनकी सदस्य-सख्या समृद्धि के समयो मे तेजी से बढ जाती तथा मन्दी के समयो मे उतनी ही तेजी के साथ घट जाती। 1819–20 की मन्दी ने ऐसे अधिकाश सगठनो को निर्मूल कर दिया था। लेकिन 1824 से 1837 के बीच शिल्प समितियाँ (craft societies) धीरे-धीरे वापस पुनर्जीवित हुई। इस अवधि के श्रम सघवाद की दो मुख्य प्रवृत्तियों को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है—(1) सामूहिक सौदेबाजी की तकनीक सीख ली गई थी तथा लडने वाले श्रम सगठनों ने हडतालो व बहिष्कारो (strikes and boycotts) का चतुराई व साहस से उपयोग आरम्भ कर दिया था, (2) तीव्र गति से बढती हुई व्यक्तिगत समितियाँ धीरे-धीरे एक दूसरे मे प्रवेश करने लगी तथा स्थानीय व बाद में राष्ट्रीय सघ बनने लगे।[1]

गृह युद्ध के छिड जाने से श्रम आन्दोलन अस्त-व्यस्त हो गया तथा श्रम सघो को उसका आघात सहना पड़ा। किन्तु शिल्प-सघ (craft unions) अब तक काफी लोकप्रिय हो चुके थे। 1864 मे लगभग 300 स्थानीय श्रम सघ बन चुके थे जिनकी सदस्य सख्या 2,00,000 के लगभग थी। ये श्रम सघ मुख्यत न्यूयार्क, पेंसिलवेनिया तथा मेसाच्युसेट्स जैसे औद्योगिक राज्यो मे केन्द्रित थे। 1865 तक कम से कम 11 राष्ट्रीय यूनियनें भी बनाई जा चुकी थीं। 1873 तक देश मे 41 राष्ट्रीय शिल्प सघ थे जिनकी सदस्य-सख्या 3 से 4 लाख के बीच थी।

[1] R. M. Robertson, *op. cit.*, 214.

नाइट्स ऑफ लेवर (Knights of Labour)

अब तक एक विशाल यूनियन बनाने का विचार जोर पकडता जा रहा था। वैसे तो 1864 मे ही शहरो मे स्थित यूनियनो के एक राष्ट्रीय महासघ बनाने का प्रयास हो चुका था किन्तु वह प्रयास सफल नही हो पाया। इस प्रथम प्रयास की परिणति एक राष्ट्रीय श्रमिक यूनियन (National Labour Union) के रूप मे हुई। हालांकि वह असफल रही किन्तु उससे श्रमिक वर्ग की व्यापारिक वर्ग के विरुद्ध एक मजबूत मोर्चा बनाने की इच्छा अभिव्यक्त हो गई।

इस बीच फिलाडेल्फिया मे 1869 मे एक बहुत ही रोमानी श्रम सगठन अस्तित्व मे आ चुका था। यह फिलाडेल्फिया के निर्धन दर्जियो का एक सगठन था जिसे बहुत ही लम्बा नाम—'द नोबल एण्ड होली ऑर्डर ऑफ द नाइट्स ऑफ लेबर'—दिया गया था। इस मच ने श्रमिको के नाम एक नई अपील जारी की तथा उनकी सुरक्षा का उत्तरदायित्व लिया। नाइट्स (Knights of Labour) की प्राथमिक इकाइयाँ स्थानीय सभाएँ थी। चार से पाँच स्थानीय सभाओ (Local Assemblies) से मिलकर एक जिला सभा (District Assembly) तथा जिला सभाओ से मिलकर एक सामान्य सभा (General Assembly) बनती थी। यह सामान्य सभा ही सगठन की प्रशासनिक सस्था (Governing Body) थी।

जैसे-जैसे उसकी सदस्य सख्या बढी, नाइट्स मे 'एक विशाल यूनियन' (One Big Union) बनने की अभिलाषा जागृत हुई। शुरू में तो इसकी प्रगति धीमी रही किन्तु 1881 के बाद इसकी वास्तविक प्रगति आरम्भ हुई। उस वर्ष मे इसकी सदस्य सख्या 20,000 थी। अगले पाँच वर्षो मे अर्थात् 1885 तक वह बढ कर 7,50,000 के अभूतपूर्व स्तर तक पहुँच गई। 1877 के श्रमिक प्रदर्शनो ने इसकी लोकप्रियता को बढा दिया था। नाइट्स ने 1884 व 1885 मे रेलमार्ग कम्पनियो के विरुद्ध कई हडतालें व काम-बन्दियाँ (work stoppages) कराये।

1886 मे द नाइट्स ऑफ लेवर द्वारा एक रेलमार्ग कम्पनी के विरुद्ध की गई हडताल असफल रही। उस असफलता के बाद से उसकी सदस्य सख्या घटने लगी। वह 1890 में घटकर 1,00,000 पर आ गई और 1900 तक तो द नाइट्स एक वृद्ध सगठन बन गया। द नाइट्स की असफलता के कई कारण रहे—(1) इसकी पचमेल (heterogeneous) सदस्यता ने कई नीति सम्बन्धी विरोधो व विवादो को जन्म दिया। (2) सारी शक्ति कुछ शीर्षस्थ नेताओ के हाथो मे सकेन्द्रित हो गई। (3) उसने अपने वित्तीय साधन हडतालो पर बरबाद कर दिये जो सफल रहने पर भी महँगी सिद्ध हुई। (4) उसके सहकारी उपक्रम भी असफल रहे।

अमरीकी श्रमिक महासघ
(The American Federation of Labour, A F L)

1881 मे 6 दृढ व्यवसाय यूनियनो के नेताओ ने मिलकर श्रमिको का एक अन्य महासघ स्थापित करने का प्रस्ताव किया। 1886 मे द नाइट्स से सम्बन्धित कुछ अन्य यूनियनें भी इस नये महासघ मे सम्मिलित हो गई जिसे अमरीकी श्रमिक

महासघ (A F L) का नाम दिया गया। आरम्भ के वर्षों मे इसकी सदस्यता वृद्धि की दर काफी धीमी रही। 1898 मे वह 2,50,000 तक पहुँची थी, लेकिन इसके बाद सदस्यता मे तेजी से वृद्धि हुई तथा 1904 मे वह 16 7 लाख हो गई। 1914 तक इसकी सदस्यता 20 लाख की सीमा पार कर चुकी थी। इसके बाद अमरीकी श्रमिक महासघ (A F L) की सदस्यता मे वृद्धि का दूसरा काल आया। प्रथम महायुद्ध की समाप्ति तक इस महासघ (A F L) की सदस्यता 40 लाख तक पहुंच गई। यह सख्या सभी यूनियन सदस्यो की सख्या का 80% थी।

अमरीकी श्रमिक महासघ की सदस्यता मे इतनी तीव्र गति से हुई वृद्धि के लिए अनेक तत्त्व उत्तरदायी थे। 1898 से 1920 के बीच आर्थिक गतिविधियाँ काफी तेज रही। औद्योगिक उत्पादन अत्यधिक तीव्र गति से बढ रहा था। इसके अतिरिक्त अमरीकी श्रमिक महासघ (A F L) को स्ट्रासर व गोपर्स (Strasser and Gompers) जैसे अनुभवी लोगो के नेतृत्व का भी लाभ प्राप्त था। ये लोग ठोस उपलब्धियो मे विश्वास करते थे तथा इन्होने बिना राजनीति मे पडे श्रमिको के लिए कुछ वैधानिक सुधार करवाये। इसके अलावा उन्होने 'श्रमिको के शत्रुओ को हराने तथा उनके मित्रो को पुरस्कृत करने की नीति' का अनुसरण किया। अमरीकी श्रमिक महासघ की सफलता इसलिए भी मिली कि (1) उसमे अपने ढाँचे मे यथोचित सुधार कर सकने की क्षमता थी, तथा (2) उसने नियोक्ताओ के साथ सम्बन्ध स्थिर बनाने के लिए सामूहिक सौदेबाजी को बढावा दिया।

अमरीकी श्रम सघो की 1920 के बाद प्रगति

श्रम सघो की सदस्यता जो 1920 के आस-पास 50 लाख तक पहुँच गयी थी 1923 मे घटकर 35 लाख पर आ गई। 1929 तक वह लगभग इसी स्तर पर बनी रही। महान् मन्दी के समय उसमे और भी गिरावट आयी। 1933 मे श्रम सघ की कुल सदस्य सख्या 30 लाख के लगभग थी। अमरीकी श्रमिक महासघ (A F L) की सदस्यता इस दौरान 40 लाख से घटकर 22 लाख पर आ चुकी थी।

1920 के बाद श्रम सघो की सदस्यता मे यह गिरावट कई कारणो से आई। मुख्य कारण इस प्रकार थे—(1) 1921 की मन्दी, (2) युद्ध के बाद के वर्षों मे असफल हडताले, (3) नियोक्ता विरोध की एक नई लहर, (4) एक स्थिर मूल्य स्तर बना रहना जिसमे श्रमिक सुरक्षित अनुभव कर रहे थे, तथा (5) प्रगतिशील पुजोत्पादन उद्योगो मे श्रमिकों को सगठित करने के प्रति विशेष रुचि प्रदर्शित न करना। श्रम सघो का नेतृत्व भी कमजोर व अदूरदर्शी लोगो के हाथों मे आ गया था।

1935 के आस-पास श्रमिको मे आपस मे ही श्रम सघो के ढाँचे को लेकर पैदा हुआ विवाद काफी तीव्र हो गया। नये पुजोत्पादन उद्योगो (new mass production industries) जैसे इस्पात, मोटर कार, रबड तथा बिजली उपकरण को सगठित करने के प्रस्ताव का अमरीकी श्रमिक महासघ से सम्बद्ध पुरानी यूनियनो ने विरोध किया। इसका परिणाम यह हुआ कि 1936 मे आठ औद्योगिक श्रम सघो

ने एक नई राष्ट्रीय संस्था 'कमेटी फॉर इण्डस्ट्रियल ऑर्गेनाइजेशन' स्थापित की। तीन वर्ष बाद इसे कांग्रेस ऑफ इण्डस्ट्रियल ऑर्गेनाइजेशन' (C I O) के नाम से जाना गया। इस महासंघ ने अमरीकी श्रमिक महासंघ (A F L) के साथ अपने सभी सम्बन्ध तोड़ लिये।

अमरीकी श्रमिक महासंघ (A F L) तथा कांग्रेस ऑफ इण्डस्ट्रियल ऑर्गेनाइजेशन (C I O) के बीच संघर्ष व विवाद चलता रहा। दोनों ही ओर से दल-बदल होता रहा। सी० आई० ओ० के नेता ए० एफ० एल० के ढीलेपन तथा राजनीति मे जोर शोर से हिस्सा न लेने को बात नापसन्द करते थे। उधर ए० एफ० एल० के नेता सी० आई० ओ० द्वारा परम्परावादी श्रम संघवाद से छिटक कर अलग हो जाने से रुष्ट थे। किन्तु लोकमत के दबाव तथा अत्यधिक कड़े श्रम कानूनो से बाध्य होकर 1955 में दोनों ही महासंघ पुन एकीकृत हो गये। उनका मिला-जुला संघ ए० एफ० एल०–सी० आई० ओ० (A F L–C I O) कहलाया।

श्रम संघो की सदस्यता के आकडे

(मिलियन म)

वर्ष	संख्या
1920	5 0
1925	3 5
1930	3 4
1935	3 6
1940	8 7
1945	14 3
1950	14 3
1955	16 8
1960	17 0
1975	18 0

1920 के बाद के श्रम संघ सदस्यता अनुमानो से स्पष्ट होता है कि उसमे नवीन आर्थिक कार्यक्रम तथा द्वितीय महायुद्ध के काल मे तेजी से वृद्धि हुई। किन्तु यह भी महत्त्वपूर्ण है कि किसी भी समय मे श्रम संघो की सदस्यता कुल नागरिक श्रम शक्ति का 30% से अधिक कभी भी नही रही है।

1933 से 1953 के बीच श्रम संघो की सदस्यता मे तीव्र गति से वृद्धि होने के लिए कई कारण उत्तरदायी थे। ये कारण इस प्रकार थे (1) कुल नागरिक श्रम शक्ति मे 15 मिलियन की वृद्धि हो जाना, (2) श्रम शक्ति की एकरूपता (homogeneity) म वृद्धि (3) श्रम संघो की सदस्यता को सामाजिक मान्यता प्राप्त हो जाना, तथा (4) इस सम्पूर्ण अवधि मे सरकार का श्रमिको के प्रति अनुकूल रुख बने रहना।

महत्त्वपूर्ण श्रम विधेयक (Important Labour Acts)

नारिस–ला गार्डिया विधेयक, 1932 (Norris–La Guardia Act)

स्वतन्त्र रूप से संगठित होने के मार्ग में बाधाएँ हटाने की दिशा में पहला कदम था। किन्तु विधेयक में सामूहिक सौदेबाजी के लाभों को सकारात्मक रूप से प्रत्याभूत नहीं किया गया। सामूहिक सौदेबाजी (collective bargaining) का अधिकार पहली बार वेगनर विधेयक (Wagner Act), जिसे राष्ट्रीय श्रम सम्बन्ध विधेयक भी कहा गया, द्वारा बलपूर्वक कहा गया। श्रमिकों ने वेगनर विधेयक की प्रशंसा करते हुए उसे अपना मुक्ति दस्तावेज (magna charta) माना। किन्तु वेगनर विधेयक भी अधिक विशद नहीं था। उसमें तो सामूहिक सौदेबाजी की परिभाषा भी नहीं की गई थी।

1946 में रिपब्लिकन दल की सरकार ने वेगनर विधेयक में अनेक संशोधन किये। नये कानून को श्रम-प्रबन्ध सम्बन्ध विधेयक (Labour Management Relation Act) का नाम दिया गया। इसका अधिक परिचित नाम टाफ्ट-हार्टले विधेयक (Taft-Hartley Act) था। इस विधेयक में कहा गया कि सार्वजनिक नीति के अन्तर्गत न केवल श्रमिक द्वारा यूनियन का सदस्य बनने के अधिकार की रक्षा की जानी चाहिए बल्कि उसके सदस्य बनने से इनकार करने के अधिकार की भी रक्षा की जानी चाहिए। बन्द-दुकान समझौते (closed-shop agreement), जिनके अन्तर्गत नियोक्ता केवल श्रम संघों के सदस्य को ही काम पर लगा सकते थे, गैर-कानूनी घोषित कर दिये गये। यूनियन शॉप समझौते (union shop agreement) जिनमें गैर-यूनियन सदस्य काम पर रखा जा सकता था किन्तु जिसे एक निश्चित अवधि में यूनियन की सदस्यता स्वीकार करनी होती थी, सही मान लिये गये। टाफ्ट-हार्टले विधेयक में इस बात पर भी बल दिया गया कि यूनियन तथा यूनियन के व्यक्तिगत सदस्यों के हित एक रूप नहीं होते। विधेयक का उद्देश्य श्रम संघों का 'सार्वजनिक हित' में विनियमन करना था। हड़ताल का अधिकार भी एक 'ठण्डे होने की अवधि' (cooling-of period) द्वारा संशोधित कर दिया गया।

12 वर्ष की खुली छूट के बाद श्रमिकों को यह विधेयक काफी प्रतिबन्धात्मक प्रतीत हुआ। श्रम संघों के नेतृत्व ने विधेयक की कटु आलोचना की। उसे 'गुलाम श्रम कानून' (slave labour law) की संज्ञा दी गई। 1959 में पारित श्रम-प्रबन्ध विधेयक (Labour Management Act, 1959), जिसे लैंड्रम-ग्रिफिन विधेयक (Landrum--Griffin Act) के नाम से भी जाना जाता है, में यह सुझाव दिया गया कि श्रम संघों के नेताओं व पदाधिकारियों द्वारा अपनाये जाने वाले भ्रष्ट तरीकों के विरुद्ध यूनियन के व्यक्तिगत सदस्यों के हितों की रक्षा का भी अधिकार होना चाहिए। 1960 के बाद से तथा 1979 तक के श्रम कानूनों में धीरे-धीरे करके टॉफ्ट-हार्टले विधेयक में कुछ छूटें दी जाती रही हैं।

श्रम संघ आन्दोलन का मूल्यांकन

श्रम संघ सदस्यता का वर्तमान 18 मिलियन का स्तर काफी ऊँचा लग सकता है किन्तु यह अभी भी अमरीका की कुल श्रम-शक्ति का एक-चौथाई मात्र ही है। श्रम संघ की सदस्यता खानों, निर्मित माल उद्योगों, निर्माण कार्य तथा यातायात

सैवाओं आदि जैसे विशाल उद्योगों में तो काफी ऊँची है किन्तु वह सरकारी कार्यालयों तथा कृषि क्षेत्र में काफी नीची है। क्षेत्रीय दृष्टि से देखने पर श्रम संघों की सदस्यता पूर्वी, मध्य पश्चिमी तथा पश्चिमी तट के औद्योगिक क्षेत्रों में अधिक घनी है।

यूनियनों की सदस्यता में काफी असमानता भी है। कुछ यूनियनों की सदस्य-संख्या 100 से भी कम है तो दूसरी तरफ यूनाइटेड स्टील वर्कर्स तथा यूनाइटेड ऑटोमोबाइल वर्कर्स जैसी यूनियनों में 10 लाख से भी अधिक सदस्य हैं। अमरीकी लोग मूलत. व्यक्तिवादी है तथा यह प्रवृत्ति यूनियन के सदस्यों में भी झलकती है। एक अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन (I L O) के दल ने, जिसने अमरीका का दौरा किया था, लिखा कि 'सामान्यत अमरीकियों की व्यक्तिवादी प्रवृत्ति तथा जिसमें अनेक यूनियन सदस्य भी सम्मिलित हैं कई बार श्रम संघों के प्रति शंका व अविश्वास पैदा कर देती है क्योंकि श्रम संघ तो स्वभाव से ही एक मिली जुली गतिविधि है" वास्तव में यह कहने में कोई अतिशयोक्ति नहीं है कि श्रम संघों को पूर्ण जन-मान्यता केवल राष्ट्रीय संकट के समयों में ही प्राप्त करने में सफलता मिली है जिनमें दोनों महायुद्ध तथा महान् मन्दी सम्मिलित किये जा सकते हैं। ऐसा लगता है कि अमरीका में श्रम संघ एक ऐसे सामाजिक ढाँचे में कार्यरत हैं जिसे वे तो स्वीकार करते हैं किन्तु वह ढाँचा उन्हें पूरी तरह स्वीकार नहीं करता।' अमरीका में श्रम संघों की धीमी रफ्तार से प्रगति का शायद यही सर्वमं उपयुक्त उत्तर है।

अमरीका में श्रम शक्ति का विकास

अमरीकी श्रम शक्ति में 1974 तक 80% से भी अधिक वयस्क लोग गैर-प्रबन्धकीय क्षेत्र में मजदूरी या वेतनभोगी कर्मचारी थे जो श्रम बाजार में अपनी श्रम-शक्ति बेचने के लिए तत्पर थे।

अमरीकी श्रम शक्ति का सर्वहाराकरण

वर्ष	मजदूरी व वेतन भोगी कर्मचारियों का प्रतिशत	स्व रोजगार लोगों का प्रतिशत	वेतन भोगी प्रबन्धकों प्रशासकों का प्रतिशत	कुल
1780	20.0	80.0	—	100
1880	62.0	36.9	1.1	100
1890	65.0	33.9	1.2	100
1900	67.9	30.8	1.3	100
1910	71.9	26.3	1.8	100
1920	72.9	23.5	2.6	100
1930	76.8	20.3	2.9	100
1940	78.2	18.8	3.0	100
1950	77.7	17.9	4.4	100
1960	80.6	14.1	5.3	100
1969	83.6	9.2	7.2	100
1974	83.0	8.2	8.8	100

Source Edwards Reich and Weisskopf, *The Capitalist System*, 1978, Prentice Hall, 180

आधुनिक निगम क्षेत्र (corporate sector) तथा नौकरशाही की बढ़ती हुई पेचीदगियों के साथ प्रबन्धकों (managers) की संख्या में भी निरन्तर वृद्धि हो रही है। 1970 में 6 5 मिलियन लोगों को प्रबन्धकों, प्रशासकों या मालिकों की श्रेणी में लिया गया था। अमरीकी श्रम शक्ति का बदलता हुआ व्यावसायिक ढांचा निम्न तालिका से स्पष्ट है। तालिका में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण संरचनात्मक परिवर्तन कृषि में लगी हुई श्रम शक्ति के सम्बन्ध में दिखाई पड़ता है। 1910 में कृषि कार्यों में रत 30 8% श्रम शक्ति के स्थान पर 1985 में उसका भाग घटकर 1 6% रह जायेगा। विकास का यह एक अद्वितीय उदाहरण है। तालिका इस प्रकार है—

अमरीकी श्रम शक्ति का बदलता हुआ व्यावसायिक ढांचा

(प्रतिशत में)

	व्यावसायिक समूह	1910	1940	1960	1972	1985*
1	प्रबन्धक, प्रशासक इत्यादि	6 6	7 3	8 5	9 8	10 3
2	सफेदपोश कर्मचारी	14 7	23 8	33 8	38 0	42 6
3	नीली कमीज वाले कर्मचारी	38 2	39 8	39 5	35 0	32 3
4	सेवा कर्मचारी	9 6	11 8	11 7	13 4	13 2
5	कृषि	30 9	17 4	6 3	3 8	1 6
	कुल	100 0	100 0	100 0	100 0	100 0

* अनुमानित।

Source *Ibid*, 182

आठवाँ अध्याय

तटकर नीति एवं विदेश व्यापार का विकास

(GROWTH OF FOREIGN TRADE AND TARIFF POLICY)

1860 से 1920 के बीच अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार पूरी तरह से आधुनिक बन चुका था। इस अवधि में दो मुख्य शक्तियाँ कार्यरत थी। पहली शक्ति यातायात एवं संचार साधनों के तरीकों में हुए भारी सुधार के रूप में सामने आयी—पहला एटलांटिक महासमुद्र पार केबल (Cable) 1866 में काम करने लगा तथा पहली अन्तर-उपमहाद्वीपीय रेल (Transcontinental Railway) 1869 में पूरी हुई। स्वेज नहर भी 1869 में ही यातायात के लिए खुल गई। दूसरा तत्त्व, जिसने विदेश व्यापार को बढ़ावा दिया, औद्योगीकरण की तीव्रगति था।

चूँकि 1873–96 का काल गिरते हुए मूल्यों का काल रहा इसलिए इस बीच हुए विदेश व्यापार की भौतिक मात्रा (physical volume) तो काफी बढ़ी किन्तु डॉलर के रूप में आँकड़े धीमी गति से बढ़े। 1896–1914 की अवधि में मूल्य स्तर में तीव्रगति से वृद्धि हुई। उसके बाद प्रथम महायुद्ध के दौरान विदेश व्यापार में असाधारण वृद्धियाँ हुई। 1915–20 की अवधि में अर्द्ध-निर्मित वस्तुओं व तैयार निर्मित वस्तुओं का कुल निर्यात व्यापार में आधा भाग हो चुका था।

विदेश व्यापार—निर्यात व आयात का मूल्य . 1860–1920

(मिलियन डॉलर में)

वर्ष	निर्यात	आयात	सन्तुलन
1860	334	354	− 20
1870	393	436	− 43
1880	836	668	+ 168
1890	858	789	+ 69
1900	1,394	850	+ 545
1910	1,745	1,557	+ 188
1914	2,365	1,894	+ 471
1918	6,149	3,031	+3,118
1920	8,228	5,278	+2,950

Source Historical Statistics of the US

इस अवधि की तटकर नीतियाँ (tariff policies) संरक्षणवादी (protectionist) स्वभाव की थी। 1861 में अधिकतम अमरीकी तटकर 24% से ज्यादा नहीं

थे तथा उनका औसत 20% के लगभग आता था। 1864 तक यह औसत बढ़कर 47% हो गया था। गृह-युद्ध ने तटकरों की दरों में अत्यधिक वृद्धि कर दी थी। 1890 के मेकिन्ले तटकर (Mckinley Tariff) ने इस स्तर को बढ़ाकर 50% कर दिया। 1897 में पारित डिंगले विधेयक (Dingley Act) द्वारा ये शुल्क बढ़कर 60% हो गये। 1897–1914 के सामान्य समृद्धि के काल में तटकरों की इस ऊँची दर को उचित ठहराया गया। किन्तु 1913 में प्रस्तुत अण्डरवुड-सिम्मस विधेयक (Underwood Simmons Bill) ने इन तटकर दरों को संशोधित किया। इसके परिणामस्वरूप तटकरों का ढाँचा अधिक आसान बन गया। 1920 में तटकरों की औसत दर को घटाकर 25% पर ले आया गया।

1920 के बाद अमरीकी विदेश व्यापार व तटकर

प्रथम महायुद्धोत्तर काल के 8 अरब डॉलर के स्तर से घटकर 1930 की महान् मन्दी के दौरान निर्यात 2 अरब डॉलर पर आ पहुँचे थे। निर्मित माल के निर्यात जो 1920 में 4 अरब डॉलर के लगभग रहे थे, महान् मन्दी के वर्षों में शून्य हो चुके थे।

1920 से लेकर 1933 तक भुगतान सन्तुलन अमरीका के पक्ष में रहा। अमरीका के खाते में लगभग 16 अरब डॉलर का अतिरेक जमा था। किन्तु महान् मन्दी के वर्षों में निर्यात काफी घट गये और उसके कारण भुगतान सन्तुलन पर भी कुछ विपरीत प्रभाव पड़ा। उधर 1941–45 की द्वितीय महायुद्ध की अवधि में विशाल जमा राशि का भण्डार 40 अरब डॉलर के यूरोपीय देशों को किये गये एक-पक्षीय हस्तांतरणों (unilateral transfers) के कारण समाप्त हो गया। 1946 से 1949 के बीच जबकि पश्चिमी यूरोप के पुनर्निर्माण के लिए औद्योगिक वस्तुओं की आपूर्ति करने वाला अमरीका एकमात्र राष्ट्र था, उसका भुगतान सन्तुलन अतिरेक 2 अरब डॉलर वार्षिक का रहा। फिर 1950 से 1955 के बीच विशाल पैमाने पर प्रदान की गई सहायता के कारण अमरीका को इन वर्षों में औसतन 1,500 मिलियन डॉलर वार्षिक का घाटा रहा। समय निकलने के साथ यह घाटा और भी बढ़ता चला गया। 1962 व 1963 में तो घाटा इतना बढ़ चुका था कि वह चिन्ता का विषय बन गया।

अमरीका की भुगतान सन्तुलन स्थिति . 1946–1961

(मिलियन डॉलर में)

वर्ष	विशुद्ध भुगतान स्थिति
1946	+1,926
1950	−3,602
1954	−1,516
1956	− 986
1958	−3,477
1960	−3,800
1961	−2,454

निष्कर्ष रूप मे 1949–61 की अवधि मे अमरीका का कुल भुगतान सन्तुलन का घाटा 23 अरब डॉलर रहा। किन्तु इससे विशेष चिन्ता इसलिये नही हुई क्योंकि अमरीका के पास स्वर्ण का विपुल भण्डार था तथा अल्पकालिक डॉलर परिसपत (short-term dollar assets) भी काफी थे। स्वर्ण परिसम्पत का मूल्य 16 अरब डॉलर था जबकि अल्पकालिक डॉलर परिसम्पत भी 1963 मे 15 अरब डॉलर के थे। इस तरह 1963 मे भी अमरीका के पास स्वतन्त्र विश्व (Free World) के कुल मौद्रिक स्वर्ण का 40% भण्डार था। इसके अतिरिक्त उसकी अन्तर्राष्ट्रीय लेनदारियाँ भी 27 अरब डॉलर के लगभग थी।

तटकर (Tariffs)

प्रथम विश्व-युद्ध के बाद 'शिशु उद्योगो' (infant industries) के एक समूह ने पुन एक बार तटकर शुल्क बढाने की माग की। फोर्डने मकम्बर तटकर विधेयक (Fordney-McCumber Tariff) जो 1922 में लाया गया, ने तटकरो को बढाकर उनका औसत स्तर 33% कर दिया। 1929 मे यह अनुभव किया गया कि तटकरो को ऊँचा रखकर गम्भीर मन्दी से बचा जा सकता है। कांग्रेस ने हॉले-स्मूट तटकर विधेयक (Hawley-Smoot Tariff) 1930 में पारित किया जिसमे तटकरो का औसत स्तर बढाकर 40% कर दिया गया। बाद मे कई लोगो ने यही मत व्यक्त किया कि महान् मन्दी के दौरान तटकरो मे की गई इस वृद्धि ने सकट को और गहरा कर दिया था।

1934 मे एक परस्पर व्यापार समझौता विधेयक (Reciprocal Trade Agreements Act) पारित किया गया जिसमे राष्ट्रपति को तीन वर्ष के लिए यह अधिकार प्रदान किया कि वे अन्य देशो के साथ ऐसे व्यापारिक समझौते कर सकते थे जिनमे 'तटकर रियायतें परस्पर स्वीकृत' करने की व्यवस्थाएँ होती। विधेयक का नवीनीकरण किया जाता रहा तथा 1934 से 1945 के मध्य 29 देशों के साथ इस प्रकार के पारस्परिक समझौते किये गये। 1945 मे जब 1934 के विधेयक को नवीनीकरण के लिए लाया गया तो राष्ट्रपति के तटकर मे रियायत द सकने के अधिकारो म और वृद्धि कर दी गई। रेडल आयोग (Randall Commission) ने 1954 मे सूचित किया कि 1945 का वष व्यापार को उदार बनाने की प्रक्रिया के इतिहास स, जोकि 1934 मे आरम्भ की गयी थी, एक महत्त्वपूर्ण बिन्दु कहा जा सकता है। उसके बाद जो भी सशोधन हुए उनसे राष्ट्रपति के अधिकारो मे वृद्धि के स्थान पर प्रतिबन्ध ही अधिक लगे है।'

बहुपक्षीय अनुबन्धो (Multilateral negotiations) की बढती हुई आवश्यकता को देखते हुए अमरीका ने एक बहुपक्षीय व्यापार सस्था गठित करने का प्रस्ताव किया। 1947 मे व्यापार व तटकर पर एक सामान्य समझौता (G A.T T) किया गया जिसका उद्देश्य अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग बढाना था। अमरीका ने अपने तटकरो मे 1960 म इस नई व्यवस्था के अन्तर्गत लगभग 12% की कटौती की।

अमरीकी विदेश व्यापार की वर्तमान स्थिति

द्वितीय महायुद्ध के बाद के वर्षों मे तो अमरीकी विदेश व्यापार की वृद्धियाँ असाधारण रूप से तीव्र रही हैं। वह विश्व मे पहले स्थान पर पहुँच चुका है तथा उसके निकटतम प्रतिद्वन्द्वी उससे बहुत पीछे छूट चुके है। पूँजीवादी गुट मे उसे नेतृत्व प्राप्त हो चुका है। ओलिवर कोक्स के अनुसार, 'पूँजीवादी व्यवस्था मे नेतृत्व का अर्थ है विश्व के विदेश व्यापार मे प्रभुत्व की स्थापना।'[1] जो नेतृत्व ग्रहण करता है वह अपनी घरेलू आवश्यकताएँ, तथा अन्य लोगो की आवश्यकताएँ दोनो ही पूरी करता है। वह विश्व के अन्य अर्थव्यवस्थाओ को अपने तैयार माल व सेवाओ पर आश्रित करने की क्षमता प्राप्त कर लेता है। इसके कारण नेतृत्व वाले देश के लिए कुछ आवश्यक आयात (critical imports) भी करने जरूरी हो जाते है। दूसरे शब्दो मे, जैसे-जैसे अर्थव्यवस्था परिपक्व होती है उसको अधिकाधिक निर्मित वस्तुएँ निर्यात के लिए उपयोग मे आने लगती हैं और इसीलिये आयात भी सापेक्ष रूप से बढ जाते हैं। 'हालांकि ऐसा लगता है कि सयुक्त राज्य अमरीका अपने विदेश व्यापार पर कम आश्रित है क्योंकि उसके कुल राष्ट्रीय उत्पाद का आकार बहुत बडा है किन्तु इसके उपरान्त वह विश्व का सबसे बडा विदेश व्यापार वाला राष्ट्र है।'

अमरीका का विदेश व्यापार : 1976–77

(मिलियन डॉलर में)

	1976	1977
निर्यातों का मूल्य	1,14,992	1,21,242
आयातों का मूल्य	1 20 678	1 47,671

क्षेत्रवार अमरीकी विदेश व्यापार

(मिलियन डॉलर में)

देश	निर्यात		आयात	
	1976	1977	1976	1977
अफ्रीका	5,206	5,546	12,644	17,024
एशिया	29,728	31,429	39,367	49,422
ऑस्ट्रेलिया व ओशेनिया	2,690	2,877	1,671	1,720
उत्तरी उत्तर अमरीका	24,111	25,752	26,247	29,375
दक्षिणी उत्तर अमरीका	8,368	8,661	9,349	11,591
दक्षिणी अमरीका	8 595	9,275	7,761	9,343

[1] Oliver C Cox, *Capitalism as a System*, 120-35

वस्तुवार (Commodity-wise) आयात-निर्यात

(मिलियन डॉलर मे)

	निर्यात		आयात	
	1976	1977	1976	1977
कुल, सैनिक अनुदान निकाल देने के बाद	1,13,128	1,17,900	1,20,678	1,47,671
कृषि पदार्थ, कुल	22,997	23,671	11,179	13,538
गैर-कृषि पदार्थ, कुल	90,321	94,232	1,09,510	1,33,278

Source Survey of Current Business

नवाँ अध्याय

वर्तमान अमरीकी अर्थव्यवस्था, 1985 के लिए अनुमान

(AMERICAN ECONOMY TODAY, OUTLOOK TO 1985)

1978 मे अपनी 210 मिलियन की जनसख्या के साथ अमरीका मे विश्व जनसख्या का केवल 5 5% भाग बसता है तथा विश्व की भूमिका 6% क्षेत्रफल उसके पास है किन्तु विश्व उत्पादन का 25% अमरीका मे उत्पादित होता है। देश का कुल राष्ट्रीय उत्पाद (G N P) 1 3 मिलियन-मिलियन डॉलर ($ 1·3 million-million) के बराबर है। यह महान् स्थिति दो शताब्दियो के अन्तराल मे प्राप्त की गयी है।[1]

स्वतन्त्र उद्यम अर्थव्यवस्था (Free Enterprise Economy)

अमरीकी अर्थव्यवस्था स्वतन्त्र उद्यम प्रणाली पर आधारित है जिसमे व्यक्ति व निगम बाजारो तथा लाभो के लिए खुले रूप मे प्रतिस्पर्द्धा करते हैं। निजी क्षेत्र का राष्ट्रीय उत्पाद (G N P) 75% भाग है तथा शेष 25% भाग सार्वजनिक क्षेत्र द्वारा पूरा किया जाता है। इसके अलावा आर्थिक नीति निर्धारण मे सरकार महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। वह आर्थिक लक्ष्यो को तय करने तथा आधार क्षेत्रो का विनियमन करने मे सहायता करती है। 1930 के बाद से ही उसकी यह भूमिका और अधिक व्यापक बन गई जबकि महान् मन्दी के दुश्चक्र को तोडने के लिए सरकारी हस्तक्षेप अनिवार्य बन चुका था। इतना ही नही, *1890* मे शर्मन न्यास-विरोधी कानून (Sherman Anti-Trust Act) गठबन्धनो को न पनपने देने के उद्देश्य से पारित कर सरकार ने आर्थिक नीति निर्धारण के क्षेत्र मे अपना पहला बहादुरी भरा कदम रख दिया था।

राष्ट्रीय सकट के समय मे जैसे युद्ध या भारी उतार-चढावो (severe *fluctuations*), जो *आर्थिक-चक्रो* के परिणामस्वरूप उत्पन्न होते हैं, के समय मे सघीय सरकार को प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से नियन्त्रण कर सकने व जब तक आर्थिक सन्तुलन पुन स्थापित न हो जाए तब तक बाजार शक्तियो पर प्रतिबन्ध लगाने का अधिकार है। द्वितीय महायुद्ध के दौरान, उदाहरण के लिए, सरकार ने

[1] Facts About America, USIS

मजदूरी व मूल्यो के उतार-चढ़ावो पर व्यापक नियन्त्रण लगाए थे। ऐसा मुद्रा स्फीति का दृढता से मुकाबला करने के उद्देश्य से किया गया था। सरकारी शस्त्रागार के अन्य हथियारों मे सरकार द्वारा किये जाने वाले खर्च व लगाए जाने वाले करो से पडने वाला भारी प्रभाव, देश मे भुगतान सन्तुलन का स्थिति मे परिवर्तन लाने के उद्देश्य से अमरीकी पूँजी के विदेशो मे ले जाने पर रोक, व्यापार सन्तुलन को प्रभावित करने के ध्येय से तटकर व गैर-तटकर बाधाएँ लगाना तथा मुद्रा की पूर्ति को सीमित करने के उद्देश्य से मौद्रिक व साख सम्बन्धी नियन्त्रण लगाना प्रमुख है।

आय का वितरण

इस तथ्य की प्रशसा की जानी चाहिए कि बाजार अर्थव्यवस्था की शक्तियो ने भी अमरीका मे राष्ट्रीय आय का असाधारण रूप से समान वितरण (egalitarian distribution) करने मे सफलता प्राप्त की है। राष्ट्र की 85% आय स्वामित्व आय (proprietor's income), मजदूरी, वेतन तथा सामाजिक लाभो जैसे सामाजिक सुरक्षा भुगतानो, पेन्शनो तथा अन्य कल्याणकारी भुगतानो के रूप मे है। शेष 15% राष्ट्रीय आय लगानो, मुनाफों तथा ब्याज के रूप म है। यह 15% का आकडा भी धोखा देने वाला है क्योंकि बड़े-से-बड़े अमरीकी निगम जैसे जनरल मोटर्स तथा अमेरिकन टेलीफोन एण्ड टेलीग्राफ कम्पनी की भी शेयर पूँजी अधिकाश साधारण आय वाले मध्यम वर्गीय परिवार के लोगो की ही है।

विशालकाय निगमो के विकास के साथ, जिनके कि हाथो मे विशाल आर्थिक सत्ता केन्द्रित है, विशाल श्रम यूनियनो का भी विकास होता चला गया है जिनकी सदस्य सख्या लाखो करोडो मे है। देश की 90 मिलियन की कुल श्रम शक्ति का पाँचवाँ हिस्सा (अर्थात 18 मिलियन) इन श्रम सघो का सदस्य है। किन्तु विशालकाय व्यावसायिक निगमो व श्रम सघो दोनो ही की शक्ति पर सघीय सरकार की उपस्थिति से उस सीमा तक प्रतिबन्ध लगा रहता है जिस सीमा तक सघीय सरकार अपने विनियमन सम्बन्धी अधिकारो का प्रयोग करती है। पिछले कुछ वर्षो से इन तीनो ही शक्ति केन्द्रो ने एक चौथे शक्ति समूह का प्रभाव अनुभव किया है—वह समूह है उपभोक्ता—जो अब भी ढीले सगठना मे बँधे हैं किन्तु तेजी के साथ इस तरह सगठित होते जा रहे हैं कि जिससे वे आर्थिक निणयो की प्रक्रिया को प्रभावित कर सकें।

अपनी सुविशाल समृद्धि तकनीकी विकास की उच्च अवस्था तथा विशाल उत्पादन क्षमता के उपरान्त सयुक्त राज्य अमरीका के सामने आज वैसी कुछ समस्याएँ उपस्थित हैं जैसी कि अन्य देशो के सम्मुख होती हैं। गरीबी के छोटे-छोटे द्वीप अभी भी समृद्धि के महासमुद्र मे कायम है। 1971 के बाद बेकारी बराबर बढ रही है तथा वह 6 से 8% के मध्य रही है। पर्याप्त कोषो के अभाव म शहरी समस्याएँ विकट बनती जा रही हैं। इससे यही सकेत मिलता है कि अमरीकी अर्थव्यवस्था के सामने अभी कुछ मन्जिलें और भी है।

ससाधन

अमरीकी अर्थव्यवस्था की सुदृढ़ नींव उसकी विशाल उपजाऊ कृषि भूमि, उसके व्यापक खनिज भण्डार, उसके विपुल जल साधनो, उसके वनो तथा उसके सुहावने शीतोष्ण (temperate) जलवायु पर टिकी हुई है।

हालांकि हर चार अमरीकियो में से तीन शहरों में रह रहे हैं किन्तु फिर भी खुली जगह की कमी नहीं है। 200 मिलियन हेक्टेयर से भी अधिक क्षेत्रफल वाले व्यावसायिक वन जो देश में हैं उनमें से तीन-चौथाई देश के पूर्वी भाग मे स्थित हैं। इसके उपरान्त भी अमरीका वन-उत्पादो की दृष्टि से आत्म-निर्भर नही है। वह भारी मात्रा में कागज बनाने की लुग्दी (pulp wood) कनाडा से तथा कुछ विशेष प्रकार की लकड़ियो की सीमित मात्रा अन्य देशो से आयात करता है। देश के अनेक भागो मे वन लगाने के विशाल कार्यक्रम प्रगति पर हैं। किन्तु तथाकथित धनाभाव की इस स्थिति के उपरान्त अमरीका मे 155 सरकारी सरक्षण वाले विशाल राष्ट्रीय वन हैं जो 75 मिलियन हेक्टेयर भूमि पर फैले हुए हैं।

सयुक्त राज्य अमरीका सभी खनिज ससाधनों मे आत्मनिर्भर तो नही है किन्तु कुछ जरूरी साधनो मे देश प्रारम्भ से ही आत्मनिर्भर रहा है। उसके पास लोहे का विपुल भण्डार है तथा 1974 के एक अनुमान के अनुसार उसके पास विश्व के कुल कोयला भण्डारो का एक-चौथाई भाग मौजूद था। ये दोनो खनिज पदार्थ मिलकर देश के आधारभूत उद्योग 'इस्पात' की रीढ की हड्डी बने हुए हैं और यही उद्योग अमरीकी समृद्धि की कुजी रहा है। अन्य खनिज साधन जो बहुतायत से उपलब्ध हैं उनमे तांबा, जस्ता, सीसा, सोना व चांदी प्रमुख हैं। नवीनतम आंकडो के अनुसार थोड़े ही समय पहले तक अमरीका सम्पूर्ण विश्व के खनिज तेल का 50% उत्पादन कर रहा था। वहाँ 3,000 मिलियन बैरल (Barrel) प्राकृतिक तेल व 600 मिलियन बैरल प्राकृतिक गैस प्रति वर्ष निकाले जा रहे हैं।

किन्तु ऊर्जा के लिए बढ़ती हुई औद्योगिक माग ने अमरीका को ईंधन के लिए अन्य देशो पर आश्रित बना दिया है। हालांकि अमरीका की लोहा खानो से प्रति वर्ष 90 मिलियन टन कच्चा लोहा हर वर्ष निकाला जाता है फिर भी अमरीका प्रति वर्ष वेनेजुएला व कनाडा से 40 मिलियन टन कच्चे लोहे का आयात करता है। इसी तरह पैट्रोलियम के लिए बढती हुई माग के कारण 1980 तक अमरीका को अपने कुल उपयोग का 35% तेल आयात करना पड सकता है।

आधुनिक कृषि

अमरीकी खेत हर वर्ष 90,000 मिलियन डॉलर मूल्य से भी अधिक के कृषि पदार्थों का उत्पादन करते हैं। अमरीका विश्व का आधे से भी अधिक सोयाबीन व मक्का का उत्पादन करता है। वह अण्डो, मुर्गियो के विश्व उत्पादन का एक-तिहाई, चनो व कपास का 1/5, तम्बाकू का 1/6, तथा गेहूँ के विश्व उत्पादन का 12% अपने यहाँ पैदा करता है।

अमरीका का अधिकांश कृषि उत्पादन निर्यात किया जाता है। अमरीका मे उगाई जाने वाली एक-चौथाई फसलें निर्यात के लिए होती हैं। देश की सूखे मटर की 60% फसल, चावल व सोयाबीन का 50% व लगभग यही प्रतिशत गेहूँ व कपास का भी निर्यात कर दिये जाते है। इसके बावजूद अमरीका को कई कृषि पदार्थों का आयात करना पडता है। ग्रेट ब्रिटेन व पश्चिमी जर्मनी के बाद अमरीका विश्व का तीसरे नम्बर का सबसे बडा कृषि पदार्थों का आयातक देश है। उसके आयातो मे प्रमुख पदार्थ चीनी, मास, वनस्पति तेल, कॉफी, रबड, कोकोआ, केले तथा चाय है।

सयुक्त राज्य अमरीका की कुल भूमि का आधा भाग वहाँ के खेत घेरे हुए है। लगभग 130 मिलियन हैक्टेयर भूमि पर फसल बोई जाती है। स्थायी चरागाहो तथा वनो द्वारा 560 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्र घिरा है। आज देश की कृषि जनसख्या कुल जनसख्या का 5% से भी कम है जबकि 1935 मे वह 25 5% थी। किन्तु जहाँ पहले एक किसान 10 व्यक्तियो का पेट भरने जैसा अनाज उगा पाता था, आज एक किसान 45 व्यक्तियो के लिए पर्याप्त अनाज उगा रहा है।

उत्पादकता मे यह विशाल वृद्धि अमरीका मे हुई कृषि-क्रांति का परिणाम है। पिछले सौ सालों मे कृषि क्षेत्र मे रासायनिक खादो बीजो, कीटाणुनाशक दवाओ, मशीनो तथा फसलो व पशुओ के बारे मे जानकारी की दिशा म निरन्तर प्रगति होती रही है। 10 लाख से अधिक हारवेस्टर कम्बाइन (Harvestor Combines) तथा 50 लाख से भी अधिक ट्रैक्टर काम मे आ रहे है। 16 मिलियन हैक्टेयर भूमि सिंचित है। इसके अलावा अमरीका अपनी कृषि सम्बन्धी जानकारी मे अन्य देशो को सहभागी बनाये हुए है। उसने मैक्सिको, भारत फिलिपाइन्स तथा अफ्रीका जैसे देशों में गेहूँ, चावल व मक्का अनुसन्धान केन्द्र स्थापित किये हैं। रॉक्फेलर फाउण्डेशन मे कार्यरत कृषि वैज्ञानिक डॉ० नॉर्मन बॉरलॉग (Norman Borlaug) को मैक्सिको मे उनके 'चमत्कारी गेहूँ-बीजो' पर किये गये अनुसधान के लिए नोबेल शान्ति पुरस्कार दिया गया था।

अमरीका विश्व के मछली पकडने वाले देशो मे पाँचवें स्थान पर है तथा उसका वार्षिक मछली उत्पादन 2 से 3 मिलियन टन का है। यह अनुमान है कि 1,35,000 अमरीकी मछली पकडने के काम मे लगे हुए है। तथा वे 90,000 मछली पकडने वाली बोटो (Boats) का उपयोग करके प्रति वर्ष 2,000 मिलियन डॉलर मूल्य की मछलियाँ पकडते हैं।

अमरीकी निर्मित माल उद्योग (U S Manufacturing)

अमरीका निर्मित माल उद्योग मे विश्व मे अग्रणी राष्ट्र है। अमरीका की कुल राष्ट्रीय आय मे एक चौथाई से भी अधिक भाग निर्मित माल उद्योग का है। निर्मित माल उद्योग म सर्वाधिक रोजगार भी मिला हुआ है। इसमे 20 मिलियन लोग लगे हुए है। निर्मित माल उद्योग द्वारा प्रति वर्ष 3,50,000 मिलियन डॉलर मूल्य की वृद्धि (value addition) की जाती है।

अकेली सबसे बडी निर्मित माल उद्योग शाखा यातायात उपकरण बनाने की है। परम्परागत रूप से अमरीका मोटर वाहनो का सबसे बडा उत्पादक देश रहा है। हालांकि अब जापान तथा पश्चिमी जर्मनी से उसे चुनौती दी जा रही है। अन्य प्रमुख उद्योगो मे खाद्य-पदार्थ, रसायन, वस्त्र-निर्माण, प्रमुख धातुएँ, मशीनें तथा विद्युत साज-सामान वाले उद्योग सम्मिलित है।

औद्योगिक गतिविधियो का प्रकार बराबर बदल रहा है। अमरीकी उद्योग प्रति वर्ष अनुसधान पर 12,000 मिलियन डॉलर से भी अधिक खर्च करते हैं ताकि नये उत्पादो व तकनीको का विकास हो। अमरीका मे 11,000 से भी अधिक अनुसधान फर्में हैं जिनमे 3,60,000 वैज्ञानिक व इजीनियर कार्यरत हैं। उनके इस कार्य मे विश्वविद्यालय, सरकारी विभाग तथा निजी न्यास (Private Foundations) सहायता करते है। 1960 के बाद इलेक्ट्रॉनिक्स उद्योग मे आई तेजी के कारण हजारो नये प्लाट तथा उत्पादन शाखाएँ खुल चुकी है।

अमरीकी विदेश व्यापार व भुगतान सतुलन

1971 तक अमरीका मे परम्परागत रूप से शेष विश्व के सन्दर्भ मे अनुकूल व्यापार की स्थिति बनी रही। अमरीका मे बनी हुई पूँजीगत वस्तुओ ने ही द्वितीय विश्व-युद्ध के बाद ध्वस्त योरोपीय देशो की अर्थव्यवस्थाओ को पुन सही दिशा दी तथा जापान के चकाचौंध करने वाले विकास मे सहायता प्रदान की। किन्तु 1960 के दशक के अन्तिम वर्षों मे यह व्यापार सन्तुलन सिकुडने लगा तथा अमरीकी आयातो मे उसके निर्यातो की तुलना मे अधिक तीव्र गति से वृद्धि होती हुई दिखाई पडने लगी। 1971 मे अमरीका को इस शताब्दी मे पहली बार व्यापार सन्तुलन मे घाटा उठाना पडा जो 2,700 मिलियन डॉलर रहा। 1972 मे यह व्यापार घाटा बढकर 6,900 मिलियन डालर हो गया। 1973 मे पुन एक बार व्यापार सन्तुलन मे 1,300 मिलियन डॉलर की बचत रही। मगर 1974 मे फिर एक बार व्यापार मे 3,000 मिलियन डॉलर का घाटा रहा। यह मुख्य रूप से अमरीका द्वारा आयातित पैट्रोलियम पदार्थों के मूल्यो मे तिगुनी वृद्धि हो जाने क कारण हुआ। पैट्रोलियम पदार्थों के आयात पर व्यय की गई राशि 24,000 मिलियन डॉलर हो चुकी थी। 1974 मे कुल मिलाकर भुगतान सन्तुलन का घाटा 8,000 मिलियन डॉलर का रहा जिसमे एक-तिहाई भाग व्यापारिक घाटे (Trade deficit) का था। अन्य घाटे की मदो मे प्रतिरक्षा व विदेशी सहायता पर व्यय, पर्यटको द्वारा खर्च तथा पूंजी का प्रवाह रहे।

निर्यात व्यापार मे प्रमुख अमरीकी वस्तुएँ मशीनें (कम्प्यूटर जिनमे सम्मिलित है), कृषि पदार्थ, स्वचालित उत्पाद (automative products), हवाई-जहाज तथा रसायन वस्तुएं आदि है। पिछले कुछ समय मे प्रमुख अमरीकी आयात पैट्रोलियम तथा पैट्रोलियम उत्पादो, स्वचालित वस्तुओ, खाद्य पदार्थों व पेय पदार्थो (कॉफी), मशीनो व लोहे व इस्पात की बनी चीजो के रहे। पैट्रोलियम पदार्थों की बढती हुई लागत की काफी मात्रा मे क्षति पूर्ति अमरीकी कृषि पदार्थों के निर्यात मूल्य भी साथ

के साथ बढ जाने से हो गई है। यहाँ तक कि इस उद्देश्य के लिए अतिरिक्त कृषि भूमि पर खेती का कार्य शुरू कर दिया गया है।

लेकिन नाजुक भुगतान-सन्तुलन स्थिति, जो विश्व-मौद्रिक असन्तुलनों के कारण और भी खराब हो गई थी, ने अगस्त 1971 में तत्कालीन राष्ट्रपति रिचर्ड निक्सन को डॉलर की स्वर्ण में परिवर्तनशीलता समाप्त घोषित करने के लिए बाध्य कर दिया। राष्ट्रपति निक्सन ने अन्तर्राष्ट्रीय मौद्रिक प्रणाली में आमूल-चूल सुधार लाने के उद्देश्य से व्यापारिक सुधार व व्यापार को उदार बनाने की दिशा में प्रमुख उपाय करने का भी आह्वान किया। घरेलू स्तर पर भी बेकारी व मुद्रा-स्फीति की समस्या का मुकाबला करने के उद्देश्य से अस्थायी मूल्य व मजदूरी नियन्त्रण लागू किये गये।

बाद में किये गये कुछ समझौतों द्वारा विश्व की प्रमुख मुद्राओं के बीच दिसम्बर 1971 में कुछ नये समीकरण स्थापित किये गये। डॉलर को दुबारा 1973 में अवमूल्यित किया गया (पहला अवमूल्यन 1971 में किया जा चुका था)। बाद में मुख्य औद्योगिक राष्ट्रों ने अपनी-अपनी मुद्राओं की विनिमय दर को बाजार शक्तियों पर छोड़ दिया ताकि वे तैरती हुई (Floating) रह सकें।

1971 के बाद अमरीका के सम्मुख आई इन गम्भीर समस्याओं के बावजूद यही प्रत्याशा है कि अमरीका अपने परम्परागत विकास-स्वरूप को प्राप्त कर लेगा। उसकी अर्थव्यवस्था में पुनर्जीवन व सक्रियता के चिह्न 1978–79 में देखे जा सकते हैं। अमरीका के लिए अपने आपको तेल-संकट के बाद भी इतनी जल्दी संभाल पाना इसलिए सम्भव हो पाया कि उसके पास अत्यधिक उच्च किस्म की तकनीक होने के अलावा खनिज तेल के विशाल भण्डार हैं। अन्य यूरोपीय औद्योगिक राष्ट्रों के मुकाबले आयातित तेल पर उसकी निर्भरता काफी कम है। इसके अलावा वह बढ़ती हुई विश्व खाद्य मांग से लाभ उठाने के लिए अपने खाद्य उत्पादन को विशाल मात्रा तक बढ़ा सकता है। विशेषज्ञों का यह भी मानना है कि डॉलर के दो बार अवमूल्यनों तथा जर्मन मार्क व जापानी येन के इस बीच हुए पुनर्मूल्यनों (Revaluations) ने भी अमरीकी निर्यातों को विश्व-बाजार में अपेक्षाकृत सस्ता बना दिया है।

इसके बावजूद अमरीकी अधिकारी यह महसूस करते हैं कि डॉलर का अवमूल्यन तथा तैरती हुई विनिमय दरों (Floating Exchange Rates) की वर्तमान व्यवस्था कोई स्थायी निदान नहीं है। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार तथा मौद्रिक-प्रणाली के लिए नये नियम बनाने होंगे ताकि विश्व-अर्थव्यवस्था को पुनः एक बार अधिक स्थायित्व एवं सतुलन प्रदान किया जा सके।

जनसंख्या एवं औसत वार्षिक वृद्धि दरें - 1965–74

	जनसंख्या (मिलियन में)	जनसंख्या वृद्धि दर प्रतिशत में
अमरीका	211 9	1 7
चीन	809 2	2 3
रूस	252 1	1 0
जापान	109 7	1 2
भारत	595 5	2 3

कुल राष्ट्रीय उत्पाद, प्रति व्यक्ति आय व विकास दरें 1974

	कुल राष्ट्रीय आय (G N P) मिलियन डालर मे	प्रति व्यक्ति आय डालर मे	विकास दरें % मे
अमरीका	14,13 530	6 670	2 4
सोवियत रूस	5,98 640	2 380	3 4
इग्लैण्ड	2 00 830	3 590	2 2
जापान	4 46 026	4 070	8 5

Source World Bank Atlas, 1976

1985 के लिए उत्पादकता सम्भावनाएँ

1947–66 मे वार्षिक उत्पादकता वृद्धि दर का औसत 3 3% था जो 1966–73 की अवधि में घट कर 2 1% पर आ गया था। अब 1973–85 की अवधि मे उत्पादकता वृद्धि दर का वार्षिक औसत 2 5% रहने का अनुमान लगाया गया है। श्रम-सांख्यिकी ब्यूरो के अनुमानो के अनुसार निजी अर्थव्यवस्था मे श्रम-उत्पादकता मे 1973–80 के बीच 2 4% की वार्षिक वृद्धि होगी तथा 1980–85 के बीच यह वृद्धि दर 2 7% रहेगी।

उत्पादकता, जिसे सम्पूर्ण निजी क्षेत्र म लगे हुए लोगो के प्रति घण्टा उत्पादन से मापा जाता है, 1947 से 1973 तक 3% की दर से बढी। मगर इस अवधि मे भी पहले 19 वर्षो में बाद के 7 वर्षो की तुलना मे उत्पादकता में अधिक तेजी से वृद्धि हुई। 1947 से 1966 तक उत्पादकता वृद्धि दर 3 2% थी किन्तु 1967 से 1973 के बीच यह 1 7% ही रही जो काफी गिरावट इगित करती है। 1966 से 1976 के बीच उत्पादकता मे वृद्धि 1 6% वार्षिक से हुई।

उत्पादकता मे यह गिरावट अर्थ-व्यवस्था की औद्योगिक सरचना मे आये परिवर्तनो के कारण आई है। भारी मात्रा मे विनियोग प्रदूषण की रोकथाम (Pollution abatement) के कार्यक्रमो की तरफ मोडने पडे है। पूंजी-श्रम अनुपात मे धीमी वृद्धि हुई है तथा अनेक उद्योग परिपक्व (mature) हो चुके है व उनमे तकनीकी सुधारो की गुजायश बहुत कम है।

जैसा कि पहले लिखा जा चुका है श्रम सांख्यिकी ब्यूरो ने 1973–80 व 1980–85 की इन दो अवधियो मे श्रम-उत्पादकता वृद्धि के अनुमान क्रमश 2 4% व 2 7% वार्षिक के लगाये है। ये दरें 1947–66 के बीच रही उत्पादकता वृद्धि दर से नीची है। 1980–85 के दौरान श्रम शक्ति की बदलती हुई सरचना से भी श्रम-उत्पादकता मे सकारात्मक वृद्धि की प्रत्याशा है।

सोवियत संघ का आर्थिक विकास

पहला अध्याय

लाल क्रान्ति से पूर्व
(PRIOR TO THE REVOLUTION)

रूस मे आधुनिक आर्थिक विकास का युग 1861 मे प्रारम्भ हुआ माना जा सकता है। रूस के जार (रूसी शासक की पदवी) अलैक्जेण्डर द्वितीय ने अपने देश मे कृषि दास-प्रथा (serfdom) को उसी वर्ष समाप्त किया था। इसी वर्ष एटलांटिक समुद्र के उस पार अमरीका दासता का उन्मूलन कर दिये जाने के प्रश्न पर गृह-युद्ध में फँसा हुआ था। उस समय भी रूस एक बहुत फैला हुआ विशाल देश था लेकिन राजनीतिक दृष्टि से वह पश्चिमी यूरोप से अलग-थलग बना हुआ था। वह एक सामन्तवादी राष्ट्र था जहाँ कि अधिकांश जनसंख्या घोर दरिद्रता की स्थिति में जी रही थी। केवल कुछ धनी लोग ही उच्च शिक्षा प्राप्त किये हुए थे जबकि सामान्य-जन साधारणतया निरक्षर थे। देश का तकनीकी-स्तर बहुत ही नीचा था। इसके बावजूद रूस तत्कालीन जापान से कुछ कम ही पिछड़ा हुआ देश था क्योंकि वहाँ एक बड़े आकार वाला सूती वस्त्र उद्योग विद्यमान था तथा वह उस समय के जापान की तरह एकाकीपन में जी रहे द्वीपीय देश की भाँति भी नही था।

अठारहवी सदी के आरम्भिक वर्षों मे पीटर महान् (Peter the Great) ने रूस के आधुनिकीकरण के लिए कुछ प्रयास किये। इस कार्य के लिए अनेक विदेशी विशेषज्ञ रूस में राजकीय उद्योग चलाने के लिए बुलवाये गये। पूँजी की व्यवस्था की गई तथा लोगों की रुचियाँ पश्चिमी देशो की रुचियो के आधार पर बदली गई। लेकिन ये प्रयास कुशल साहसियों तथा पर्याप्त पृष्ठभूमि (infrastructure) के अभाव मे अधिक फलदायी नही हो पाये। रूस मे आर्थिक विकास की दर इग्लैण्ड व फ्रास की तुलना मे नीची बनी रही। यहाँ तक कि रूस मे खाद्यान्नों का उत्पादन भी 1860 मे, उसके पास मौजूद विशाल भूखण्ड के उपरान्त उसकी बढती हुई जनसंख्या की अपेक्षा कम दर से बढ रहा था। 1856 के क्रीमीयाई युद्ध (Crimean War) मे रूस की पराजय ने वहाँ के शासकों को गहरा धक्का पहुँचाया तथा वे कुछ सुधारवादी उपाय करने के लिए बाध्य हो गये। किन्तु इन सुधारवादी प्रयत्नो के पीछे वह प्रतिबद्धता (commitment) नही थी जिसने इसी अवधि मे मेजी जापान (Meiji Japan) को प्रेरणा प्रदान की थी।

रूसी कृषि

कृषि करने की तकनीक रूस में पिछले कई सौ वर्षों मे बिल्कुल नही बदली

थी। 80 प्रतिशत से भी अधिक जनसंख्या खेती पर आश्रित थी लेकिन कुल कृषित क्षेत्र देश के कुल भू-भाग का 25 प्रतिशत से भी कम था। अधिकाश किसान कृषि-दास (serfs) थे जो अपने मालिको के लिए काम करते थे तथा जिन्हे भूमि के साथ ही खरीदा और बेचा जा सकता था। कृषि में पूंजी का प्रयोग बहुत ही थोडा था तथा कृषि उत्पादकता बहुत नीची थी।

1861 के सुधारो का उद्देश्य देश से कृषि-दास प्रथा (serfdom) का उन्मूलन करना था। किसानो को अब भूस्वामियो की निजी सम्पत्ति की तरह नही माना जाता था। इन लोगो को स्वतन्त्र भूखण्ड आवटित किये जिनका मूल्य उन्हे 49 वर्ष तक फैली हुई किस्तो मे चुकाना था। किन्तु इन सुधारो ने भी किसानो का कोई विशेष भला नही किया। जमीन के लिए निर्धारित मूल्य बाजार मूल्य से काफी ऊँचे थे। आवटित भूखण्ड बहुत ही छोटे आकार का था। भूस्वामियो के पास अभी भी जमीन के बहुत बडे-बडे टुकडे मौजूद थे। किसान लोग तो इतने निर्धन थे कि वे खेती के काम के लिए एक घोडा रखने या छोटी-बडी कृषि मशीनो व औजारो का किराया चुकाने मे भी असमर्थ थे।

ये भूमि सुधार जाली अधिक और वास्तविक कम थे क्योकि इनके द्वारा भूस्वामियो को यह चुनने की स्वतन्त्रता दी गई थी कि वे कितनी जमीन अपने पास रखना चाहते हैं। इसका नतीजा यह हुआ कि भूस्वामियो ने अपनी अधिकाश घटिया जमीन दे दी ताकि उन्हे उसके बदले मे अच्छा मौद्रिक मुआवजा मिल सकता। अधिकाश उपजाऊ जमीन को उन्होने अपने पास ही रख लिया जिस पर वे भाडे के मजदूरो से खेती करवा सकते थे। समुदाय का कम्यून (commune) को प्रशासन, कर वसूली तथा नागरिक सुरक्षा के लिए एक इकाई माना गया। किसान लोग इन कम्यूनो से आसानी से अलग नही हो सकते थे। इस तरह कृषि-दास प्रथा (serfdom) को समाप्त कर देने से किसानो को जो तथाकथित स्वतन्त्रता दे दी गई थी वे उसका लाभ नही ले सकते थे और उनकी गतिशीलता प्रतिबन्धित ही बनी रही।

इन सुधारो के परिणामस्वरूप कृषक समुदाय पर भार और भी बढ गया। उन पर अपना बाजार अतिरेक (marketed surplus) बढाने के लिए दबाव बढ गया। उनमे से अधिकाश के पास भूखण्ड इतने छोटे थे कि उनका गुजारा भी नही चलता था। जोतें बिखरी हुई भी थीं। मीर (Mir) या ग्राम कम्यून मे फसलो के हेर-फेर (crop rotation) वाली उस मध्ययुगीन प्रथा को अपनाया जाता था जिसमे एक-तिहाई जमीन को हर बार परती (fallow) छोड दिया जाता। मीर में कुछ वर्षों बाद भूमि का पुन आवटन करने की प्रथा भूमि मे स्थायी सुधार करने के मार्ग मे बाधक थी। इन सभी तत्त्वो ने मिलकर कृषि की कुशलता को काफी कम कर दिया था।

लेनिन ने 1861 के भूमि सुधारो का मूल्याकन करते हुए यह सिद्ध किया कि उनसे उत्पादकता बढाने मे बाधा पहुँचती थी क्योकि उनमे सामन्तवादी तत्त्व रहने दिया गया था। लेनिन ने माना कि रूसी अर्थव्यवस्था के आर्थिक विकास में सबसे बड़ी सस्थागत बाधा (institutional barrier) सामन्तवादी

प्रथा ही थी। 1882 में स्थापित किसान बैंक (peasant bank) ने भी केवल सम्पन्न किसानों व भूस्वामियों की ही सहायता की जिससे उन्होंने बहुत सारी अतिरिक्त भूमि को अपनी निजी सम्पत्ति बना लिया। इससे देश में भू-असमानता की स्थिति और भी विषम हो गई।

इस प्रकार इन भूमि-सुधारों से कृषक-वर्ग बहुत ही असन्तुष्ट रहा। 1905 में किये गये एक असफल विद्रोह के पीछे यही कारण रहा जिसके परिणामस्वरूप जापान के साथ युद्ध में रूस को बहुत ही अपमानजनक पराजय हुई। किसानों को शान्त करने के उद्देश्य से 1906 में जार के प्रधानमन्त्री स्टोलिपिन (Stolypin) ने कुछ और कृषि सुधारों की घोषणा की। मीर (Mir) के महत्त्व को बहुत कम कर दिया गया। भू-लगानों का भुगतान सामूहिक जिम्मेदारी न रखकर व्यक्तिगत उत्तरदायित्व बना दिया गया। कम्यूनों (Communes) में रह रहे किसानों को उनकी जमीनों का मालिक घोषित कर दिया गया। निर्धन किसानों को उनकी जमीन बेचने की अनुमति दी गई और वे भाड़े के मजदूर बन गये। कम्यून द्वारा अपने सदस्यों के आवागमन को प्रतिबन्धित करने का अधिकार समाप्त कर दिया गया।

स्टोलिपिन (Stolypin) सुधारों की आरम्भिक प्रतिक्रिया बड़ी उत्साहवर्द्धक रही। 1907 से 1916 के बीच लगभग 25 लाख किसान अपने कम्यून छोड़ गये तथा उन्होंने 19 मिलियन हेक्टेयर भूमि पर स्वामित्व प्राप्त किया। किसान बैंक (peasant bank) को भी अधिक सक्रिय बनाया गया तथा 1906 से 1915 के बीच उसने विभिन्न प्रकार के विक्रेताओं के लिए 7 मिलियन हैक्टेयर भूमि का बेचान किया। किन्तु इन सुधारों से भी समृद्ध कृषक अधिक लाभान्वित हुए जिन्होंने अपने खेतों का आकार बहुत बढ़ा लिया। 1917 की लाल क्रान्ति की पूर्व सन्ध्या पर अभी भी लगभग 50 प्रतिशत कृषकों के पास मीर-प्रणाली (Mir system) के अन्तर्गत भूमि के छोटे और बिखरे हुए टुकड़े ही थे।

1913 तक की रूसी कृषि की उत्पादकता बहुत नीची थी। रेमण्ड गोल्डस्मिथ (Raymond Goldsmith) ने अनुमान लगाया है कि 1860 से 1913 के बीच रूस में फसलों के उत्पादन में वृद्धि की वार्षिक दर 2 प्रतिशत से भी कम रही। भूमि सुधार न केवल अपने मुख्य उद्देश्य—भूमिहीन लोगों में भूमि के पुनर्वितरण—में असफल सिद्ध हुए बल्कि उल्टे उन्होंने किसानों पर वित्तीय बोझ भी बढ़ा दिया। ये किसान अधिक बड़े निर्यात अतिरेक का उत्पादन करने के लिए बाध्य हो गये तथा उन्हें सरकार और भूस्वामी दोनों ही को अधिक राशि चुकानी पड़ी। इस तरह जार शासन वाले रूस में प्रतिव्यक्ति कृषि उत्पादन का स्तर कई अन्य देशों की तुलना में काफी नीचा रहा।

कृषक लोग दो बातें चाहते थे जिसे जार की सरकार (Tsarist government) दे पाने में असमर्थ थी। ये थीं (1) भूमि का अधिक समान वितरण, तथा (2) भूस्वामियों का उन्मूलन। जैसा कि बेकोव (Baykov) ने लिखा है: 'प्रत्येक राजनीतिक दल, जिसे कि किसानों का समर्थन चाहिए था, को क्रान्ति पूर्व के रूस के अधिसंख्य किसानों की इस शाश्वत एवं आदिम अभिलाषा को पूर्ण करना था।' किन्तु

जब किसानों की इन दो आकांक्षाओं को पूरा नहीं किया जा सका तो सालोमाल किसानों के असन्तोष का गुब्बार बढ़ता चला गया। कृषकों की इस दयनीय दरिद्रता की स्थिति के भागीदार बड़ी-बड़ी फैक्ट्रियों में असह्य काम की दशाओं में काम करने वाले औद्योगिक श्रमिक भी थे। पोल (Poles) लोगों की राष्ट्रवादी माँगों को कुचल जाने तथा यहूदियों को हैरान करने की प्रवृत्ति को बढ़ावा मिलने से हालत और खराब हो गई। सरकार द्वारा चलाये जा रहे पुलिस राज से लोगों को इतनी घृणा हो चुकी थी कि बुद्धिजीवियों द्वारा उसके विरोध ने क्रान्तिकारी एवं आतंकवादी स्वरूप ले लिया।

उद्योगों की हालत

रूस में उद्योगों का विकास पीटर महान् (Peter the Great) की पश्चिमी प्रभाव वाली नीतियों के अन्तर्गत आरम्भ हुआ था किन्तु बाद के वर्षों की विकास दर बहुत धीमी रही। लेकिन इस कार्यक्रम की दो बातें महत्त्वपूर्ण रहीं पहली, राज्य ने नये कारखाने खोलने व खानें चलाने में पहल की, दूसरी, भारी उद्योग की स्थापना बहुत पहले कर ली गई। यूराल की खानों से लौह-भण्डार का शोषण पीटर महान् के शासन-काल में ही आरम्भ हो गया था। अठारहवीं सदी के मध्य तक तो रूस ब्रिटेन से भी अधिक लोहे का उत्पादन करने लगा था। विश्व के सबसे विशाल लोहा एवं ताँबा उत्पादक देश के रूप में उसे जाना जाने लगा। पीटर महान् की मृत्यु ने औद्योगिक विकास की इस गति को धीमा कर दिया। औद्योगिक गतिविधियों में उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में एक बार फिर से तेजी आयी। रूई कातने (cotton spinning) के क्षेत्र में ब्रिटिश तकनीक को अपनाया गया। देश में रेल लाइनें बिछाने के काम में तेजी लायी गयी। 1903 तक देश में 40 हजार मील लम्बी रेल लाइनें बिछा दी गई थीं। इससे कोयला व लोहा उद्योग का द्रुत गति से विकास होने में सहायता मिली।

वर्ष	कोयला (मिलियन पूड)	लौह-पिंड (मिलियन पूड)
1867	27	17
1877	110	25
1887	277	37
1897	684	115
1902	1,005	159

ज़ार के शासन-काल में रूस में हुए औद्योगिक विकास की सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह रही कि उसमें विनियोग भी विदेशियों द्वारा किया गया तथा उन्हें चलाया भी विदेशियों द्वारा गया। यह अनुमान है कि 1900 में रूस की संयुक्त पूँजी कम्पनियों में लगी हुई कुल पूँजी में आधी पूँजी विदेशियों की थी। खान में तो विदेशियों की पूँजी का यह अनुपात और भी ऊँचा था। रूस में रेलों का निर्माण भी मुख्यतः फ्रांस, ग्रेट ब्रिटेन व बेल्जियम द्वारा ही करवाया गया था।

19वीं शताब्दी में रूस में लगाये गए अधिकांश उद्योग डोनबास-डेनिपर

(Donbas–Demeper) क्षेत्र मे ही केन्द्रित थे। कोयले का अधिकांश उत्खनन इसी क्षेत्र मे होता था तथा देश का अधिकांश लोहा भी इसी क्षेत्र मे गलाकर (smelting) तैयार किया जाता था। उन्नीसवी शताब्दी मे रूस मे औद्योगिक सगठन के नाम पर सर्वाधिक महत्वपूर्ण व सामान्य सस्था कुस्तर (Kustar) या गृह उद्योग (household industry) थे। इस उद्योग पर अधिकांशत. पूँजीपति या व्यापारी हावी थे। लगभग 85 प्रतिशत जनसख्या गाँवो मे रहती थी तथा 10 प्रतिशत से भी कम (कुल कार्यशील जनसख्या मे से) लोग उद्योगो मे काम पर लगे हुए थे। कुस्तर या गृह उद्योगो मे लगे हुए लोगो की सख्या वडे पैमाने पर चलाये जाने वाले लोगो की सख्या की तुलना मे दुगुनी थी। जैसा कि मॉरिस डॉब (Maurice Dobb) ने लिखा है, 'रूस मे पूँजीवाद का स्वरूप अब भी अत्यधिक आदिम किस्म का था '' काम घरो पर काम करने वाले कारीगरो को या छोटे ठेकेदारो, जिनके पास वर्क शॉप होते थे, को दिया जाता था और यह काम देने वाले पूँजीपति व्यापारी एव निर्माता दोनो ही होते थे।'

अपने अनुमानो मे रेमण्ड गोल्डस्मिथ ने 1860 से लेकर 1913 तक की अवधि मे रूस मे औद्योगिक उत्पादन मे विकास की दर 6 प्रतिशत वार्षिक के लगभग मानी है। लेकिन यहाँ यह बात महत्वपूर्ण है कि देश मे औद्योगिक आधार काफी सकीर्ण (narrow industrial base) होने के कारण निरपेक्ष रूप मे औद्योगिक विकास की यह दर काफी कम थी। यूरोप के विकसित देशो की तुलना मे रूस बहुत पीछे था। उन्नीसवी सदी के मध्य मे विश्व के सबसे बडे लोहा उत्पादक राष्ट्र होने की अपनी स्थिति से गिरकर यह आठवे स्थान पर आ चुका था। निरपेक्ष रूप मे रूस का लौह-पिण्डो (pig iron) का उत्पादन इग्लैण्ड के उत्पादन का दसवाँ भाग था।

कृषि-दास प्रथा (serfdom) का उन्मूलन निर्माताओ के लिए अत्यधिक लाभकारी रहा। 1870 मे स्वतन्त्र किये जा चुके 40 लाख कृषि दासो के पास अपने हाथो को मजदूरी के बदले बेचने के अलावा कुछ भी नही था। निर्माताओ ने इन लोगो को अपने यहाँ मजदूरी के बदले रख लिया। भू-स्वामियो को भी जो मुआवजा मिला उसे उन्होने सयुक्त पूँजी कम्पनियो मे लगा दिया। इस तरह सयुक्त पूँजी कम्पनियो की सख्या, जो 1861 मे केवल 78 थी, 1871 तक बढकर 357 हो गयी।

उन्नीसवी सदी के अन्तिम वर्षो मे रूस का औद्योगीकरण करने मे रूस की जारशाही सरकार ने सक्रिय भूमिका निभाई। रेल लाइनो के निर्माण को प्रोत्साहित करने के इरादे से सरकार ने निजी निर्माताओ को अभिप्रेरणा (incentive) प्रदान करने, विदेशी पूँजी का गतिशीलन करने तथा कुछ स्थानो पर रेल लाइनो का स्वय निर्माण करने जैसे कार्य किये। इन प्रयासो से रेल लाइनो की लम्बाई 1860 के 1,600 किलोमीटर से बढकर 1913 तक 78,000 किलोमीटर हो चुकी थी। ऐसा हो जाने से कोयला, लोहा व पेट्रोलियम जैसे प्राकृतिक ससाधनो के विदोहन मे काफी सहायता मिली। किन्तु औद्योगीकरण के इस सारे कार्यक्रम एक आलोचनात्मक पक्ष यह था कि इसके लिए वित्तीय साधन जुटाने का सारा भार कृषको पर

अप्रत्यक्ष करो का भार निरन्तर बढाकर किया गया। सरकार ने तटकरो को बढाकर संरक्षणवादी नीति भी अपनायी। यह नीति 1891 मे अपनी चरम अवस्था तक पहुँच गई। 1904 मे स्थिति यह थी कि निर्मित माल पर रूस मे 131 प्रतिशत का आयात शुल्क लगा हुआ था जबकि जर्मनी में यह शुल्क 25 प्रतिशत, इटली मे 27 प्रतिशत तथा अमरीका मे 73 प्रतिशत था।

देश मे अधिकाधिक विदेशी विनियोगकर्त्ताओ को आकर्षित करने के उद्देश्य से 1897 मे स्वर्णमान अपनाया गया। 1890 के बाद देश मे निजी विदेशी पूँजी की आवक (inflow) भी काफी रही। बीसवी सदी के पहले दशक तक देश के कुल पूँजी-निर्माण मे चौथाई भाग विदेशों से आने वाली पूँजी का हो चुका था। 1913 मे रूस के विभिन्न उद्योगो मे विदेशियो द्वारा किया गया कुल विनियोग 2 अरब रूबल मूल्य का था। इसके अतिरिक्त रूसी जारशाही सरकार ने विदेशी ऋण-दाताओं की गारण्टी पर 5 8 अरब रूबल के और ऋण भी विदेशो से ले रखे थे। इस तरह कुल मिलाकर प्रथम विश्व-युद्ध की पूर्व सध्या पर रूस पर 8 अरब रूबल का विदेशी ऋण-भार चढा हुआ था।

रैमण्ड गोल्डस्मिथ ने अनुमान लगाया है कि 1870 से 1913 के बीच रूस का कुल राष्ट्रीय उत्पाद (G N P) लगभग 2 5 प्रतिशत की वार्षिक दर से बढ रहा था। प्रतिव्यक्ति आय मे 1 प्रतिशत से कुछ कम की वृद्धि हो रही थी। ये आँकडे इस बात को सिद्ध करते है कि हालाकि 1917 की सास क्रान्ति से पहले रूस एक पिछडा हुआ देश था किन्तु उसकी अर्थव्यवस्था जडता (stagnation) की स्थिति मे नही थी। उन वर्षो मे रूस मे जो पिछडापन रहा उसका यह अर्थ नही था कि वहाँ के उद्योग या कृषि मे कोई परिवर्तन नही हो रहे थे। 1913 मे रूस मे खाद्यान्नो का उत्पादन 80 मिलियन टन के लगभग था। 1913 मे भी रूस आर्थिक विकास के मार्ग पर पूँजीवादी तरीके से अग्रसर हो रहा था। कुछ लोग तो यह भी मानते हैं कि यदि 1917 मे रूस मे बोल्शेविक क्रान्ति (Bolshevik Revolution) न हुई होती तो शायद रूस भी पूँजीवादी तरीके से विकास करते हुए आज तक पश्चिमी यूरोप के देशो की तरह हो गया होता। ऐसी स्थिति मे रूस मे औद्योगीकरण की शुरुआत करने का श्रेय बोल्शेविक क्रान्ति को देना सही नही होगा। क्रान्ति ने तो औद्योगीकरण की दिशा ही बदल दी और भूमि तथा सम्पत्ति के स्वामित्व मे आक्रोश-पूर्ण परिवर्तन ला दिया।

दूसरा अध्याय

1917 की क्रान्ति और यौद्धिक साम्यवाद

(THE 1917 REVOLUTION AND WAR COMMUNISM)

1913 से पहले आर्थिक विकास की जो धीमी गति रूसी अर्थव्यवस्था मे चल रही थी उस पर प्रथम विश्व युद्ध ने यकायक रोक लगा दी। इस युद्ध ने रूस की अर्थव्यवस्था को इतनी हानि पहुँचायी कि उसके पुनरुद्धार में बाद मे एक दशक का समय लग गया। युद्ध मे एक के बाद एक पराजय ने रूसी अर्थव्यवस्था के खोखलेपन की पोल खोलकर रख दी और रूसी सेना अपने आपको अच्छी सुरक्षा सेना नही सिद्ध कर पायी। सैनिक साज-सामान तथा अन्य प्रकार की युद्ध-सामग्री के अभाव को आक्रमणकारियो के सम्मुख अप्रशिक्षित 15 मिलियन लोगो को लड़ने के लिए झोंक-कर पूरा करने की चेष्टा की गई। ऐसा करने से कृषि तथा उद्योग मे जन-शक्ति का अभाव हो गया। रूस पिछले कुछ वर्षों से जर्मनी पर अत्यधिक आश्रित हो गया था तथा उसके अधिकांश रासायनिक खादो की आपूर्ति, मशीनें तथा अन्य आवश्यक सामान जर्मनी से ही आयात होते थे। यह सब युद्ध होने से पहले तक चलता रहा था। अब प्रथम महायुद्ध ने रूस को उसी शक्तिशाली देश जर्मनी से लड़ने पर बाध्य कर दिया था। इस घटनाक्रम ने रूसी अर्थव्यवस्था पर अत्यधिक भार डाला।

प्रथम महायुद्ध के पहले कुछ वर्षों मे रूसी सेना को काफी पराजयो का मुँह देखना पड़ा तथा उसने अपने कई पोलिश प्रान्त (Polish provinces) खो दिये जिनमे उसके अधिकांश उद्योग लगे हुए थे। पूरी यातायात व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो गई। औद्योगिक उत्पादन मे भारी गिरावट आयी तथा 1917 मे वह 1913 की तुलना मे काफी घट चुका था। कृषि उत्पादन मे भी कमी आयी खाद्य पदार्थों व अन्य कृषि पदार्थों की भी बाजार मे पूर्ति काफी घट गयी। ऐसा इसलिए भी हुआ कि युद्ध के वर्षो में पत्र-मुद्रा अपनी क्रय-शक्ति खो चुकी थी तथा किसान लोग अपनी चीजें ऐसी मुद्रा के बदले में बेचने के लिए तैयार नही थे जिसका मूल्य हर दिन घटता जा रहा था। इसका परिणाम यह रहा कि शहरी क्षेत्रो मे खाने-पीने की चीजो का भारी अभाव हो गया।

युद्ध के दौरान व्यय की गयी अपार धनराशि ने देश मे मुद्रा-स्फीति की अभूतपूर्व स्थिति उत्पन्न कर दी। 1915 मे सरकारी व्यय बढ़कर 11 अरब रूबल हो चुका था जबकि उस वर्ष सरकार को होने वाली प्राप्तियाँ 3 अरब रूबल थी। आय एव व्यय के बीच इस भारी अन्तर को काफी मात्रा मे नये नोट छापकर ही पूरा किया जा सकता था। 1917 मे पत्र-मुद्रा की कुल पूर्ति बढ़कर 16 अरब रूबल

हो गई थी जो 1914 की पत्र-मुद्रा पूर्ति की तुलना मे 10 गुना अधिक थी। उधर किसानो को जब ऐसा लगने लगा कि उन्हे उनकी चीजो के बदले निर्मित माल बराबर गिरती हुई विनिमय दर पर मिल रहा है तो उन्होने शहरी बाजारो मे अपना कृषिगत उत्पादन कम से कम लाना आरम्भ कर दिया। किसानो को तो अपने गावो मे शहरी निर्मित चीजो की जगह अन्य प्रतिस्थापक वस्तुएँ उपलब्ध हो जाती थी किन्तु शहरी जनसख्या को तो खाद्य पदार्थ ही मिलने बन्द हो गये थे। कई फैक्ट्रियो को बन्द कर देना पडा क्योकि न तो श्रमिक उपलब्ध थे और न ही चीजो की माँग। इस सबका एक स्वाभाविक परिणाम घनघोर बेकारी के रूप मे सामने आया और यह बेकारी विशेषकर शहरो मे फैली। हडतालें और खाद्य सामग्री पाने के लिए दगे (food riots) सामान्य बात हो गयी। किसी भी क्रान्ति के लिए इससे अच्छा अवसर और क्या हो सकता था ?

और रूस के क्रान्तिकारी तत्त्वो ने निराश भी नही किया। वास्तव मे 1917 मे रूस के लोगो ने एक नही दो क्रान्तियाँ देखी। पहली और कम प्रसिद्ध क्रान्ति, जिसका की पतन हो गया, उदारवादी मध्यवर्गीय (Bourgeois) लोगो के नेतृत्व मे मार्च 1917 मे हुई। जब जार ने अपनी गद्दी त्यागी तो उसके स्थान पर केरेन्स्की (Kerensky) के नेतृत्व वाली एक अस्थाई (provisional) सरकार गठित की गई। नई सरकार ने बिगडती जा रही स्थिति को हाथ से न निकलने देने की गरज से अनाज के व्यापार को राजकीय एकाधिकार (state monopoly) घोषित कर दिया तथा किसानो को इस बात के निर्देश दिये गये कि वे अपना सारा अतिरिक्त अनाज राज्य द्वारा स्थापित क्रय केन्द्रो पर ही बेचे। लेकिन यह उपाय बुरी तरह असफल हुआ क्योकि केरेन्स्की की कमजोर सरकार उसे लागू नही कर पायी। यह सही ही कहा गया है कि केरेन्स्की की सरकार, जिसका वामपन्थी झुकाव भी था, शुरू से ही अन्त की ओर अग्रसर होने लग गयी थी। अराजकता के इन महीनो मे एक नई शक्ति का अस्तित्व दिखाई पडने लगा था जो श्रमिक प्रतिनिधियो के बने हुए सोवियत (Soviets of Workers' Representatives) थे और जिनके प्रतिनिधि फैक्ट्रियो या अन्य पेशेवर लोगो मे से चुने जाते थे। यही सोवियते (soviets) वास्तविक सरकार बन गये। जैसा कि मॉरिस डॉब ने लिखा है, 'उस गर्मी व सर्दी मे किसान और मजदूर भूस्वामियो की जागीरो या फैक्ट्री के प्रबन्धको के विरुद्ध कडी कार्यवाही की याचिका लेकर यदि किसी के पास जाते थे तो वे ये स्थानीय सोवियतें (local soviets) ही थे।' यह एक प्रकार का द्वैध शासन था जो अधिक समय तक नही चल सकता था।

युद्ध से किसानो और मजदूरो को बराबर कठिनाइयाँ उठानी पडी थी। देश भुखमरी व छिन्न विच्छिन्न होने के कगार पर था। कृषक वर्ग भूस्वामियो से बुरी तरह तग आ चुका था और ग्रामीण क्षेत्रो मे किसान लोग उनके विरुद्ध बगावत मे उठ खडे हुए। उधर शहरो मे औद्योगिक मजदूरो ने सामान्य जनजीवन पहले ही ठप्प कर रखा था। सेना यह सब असहाय होकर देख रही थी क्योकि उस पर अप्रभावी नियन्त्रण था।

अराजकता की इस स्थिति के परिणामस्वरूप केरेंस्की सरकार का तख्ता पलट दिया गया तथा लेनिन के नेतृत्व मे 7 नवम्बर 1917 को बोल्शेविको ने सत्ता अपने हाथो मे ले ली। साम्यवादी दल (Communist Party)[1] एक छोटा किन्तु अनुशासित दल था तथा इसके अधिकाश सदस्य बुद्धिजीवी या औद्योगिक मजदूर थे। क्रान्ति होने के पहले अनेक मार्क्सवादी लेखको को यह सन्देह था कि रूस जैसे पिछडे हुए देश मे समाजवादी क्रान्ति शायद कभी नही हो पायेगी। उन लोगो का मत था कि पहला चरण मध्यवर्गीय क्रान्ति से गुजरने का होना अनिवार्य था। इस बीच उन्हे प्रत्याशा थी कि समाजवादी क्रान्ति अपेक्षाकृत अधिक विकसित देशो मे होगी जिन्हें वे ऐसी क्रान्ति के लिए अधिक परिपक्व मानते थे। लेकिन वास्तविक घटनाएँ इस तरह नही हुई। बोल्शेविको द्वारा सत्ता पर कब्जा करने मे अर्थव्यवस्था एव प्रशासन के छिन्न-भिन्न हो जाने, केरेंस्की सरकार द्वारा स्थूलता से काम लेने व भूमि-सुधार के मामले का निपटारा न कर पाने तथा अन्यायपूर्ण सन्धि करने जैसे कारणों ने सहायता की। लेनिन ने शान्ति और भूमि सुधार को बोल्शेविक क्रान्ति की मुख्य नीति घोषित करते हुए इस अवसर को हाथ से न निकलने दिया तथा उसने असन्तुष्ट किसानो, सैनिको व मजदूरो का समर्थन प्राप्त कर लिया।

रूस मे साम्यवादी क्रान्ति को सफल बनाकर लेनिन ने यह एक बात सिद्ध कर दी कि श्रमिको व किसानो के नाम पर सत्ता पर अधिकार कर लेना सम्भव है चाहे उस देश मे पूँजीवाद कितनी ही पिछडी हुई अवस्था मे क्यो न हो क्रान्ति सफलतापूर्वक सम्पन्न हो जाने के बाद लेनिन ने क्रान्तिकारी सरकार की स्थिति मजबूत करने के उद्देश्य से एक तीन सूत्री कार्यक्रम लागू करने की योजना बनायी। ये तीन चरण थे—(1) जर्मनी के साथ शान्ति स्थापित करना, (2) किसानो के साथ मैत्री का निर्वाह करना, तथा (3) सम्पूर्ण समाजवादी कार्यक्रम को धीरे-धीरे (एक साथ नही) लागू करना।

शान्ति स्थापित करने के प्रश्न पर साम्यवादी दल के भीतर ही मतभेद थे। पार्टी के कई सदस्य सम्मानजनक शान्ति चाहते थे तथा वे साम्राज्यवादी जर्मनी के साथ किसी भी प्रकार की सन्धि के विरोधी थे। किन्तु लेनिन ने सारी स्थिति पर अधिक व्यावहारिक दृष्टि से विचार किया। उसने तर्क दिया कि सैनिक युद्ध से थक चुके थे तथा उन्होंने अपने 'पावो' से शान्ति के लिए मत दिया था, अर्थात् वे युद्ध-क्षेत्रो से भाग खडे हुए थे। लेनिन का मत मान लिया गया तथा जर्मनी के साथ एक सन्धि पर हस्ताक्षर किये गये जिससे नई क्रान्तिकारी सरकार को एक बार साँस लेने का अवसर मिल गया।

कृषको को राहत पहुँचाने की दृष्टि से नई सरकार ने एक आदेश (decree) जारी करके भूस्वामियो, चर्च और अन्य लोगों की जमीनें भी जब्त कर ली और उसके लिए किसी प्रकार का मुआवजा नही दिया गया। यह सारी जमीन तथा उसके साथ जुडी हुई सारी कृषि सम्पत्ति जिला भूमि समितियो के हाथो मे सीधे सौप दी जानी थी। सरकार की इस जमीन को हाथो-हाथ व्यक्तिगत किसानो या भूमिहीनो मे वितरित

[1] A Maddison, *Economic Growth in Japan and USSR*, 93.

कर देने की इच्छा नही थी किन्तु वास्तव मे हुआ ऐसा ही। क्रान्ति का उफान ही कुछ ऐसा था कि जगह-जगह पर स्थानीय किसानो ने बडे-बडे खेतो पर जबरन अधिकार कर लिया तथा उसे आपस मे बाँट लिया। यह काफी आदिम तरीका था। इससे भूमि का काफी उपविभाजन व अपखण्डन भी हुआ। जैसा कि बेकोव (Baykov) ने लिखा है, इन बडी-बडी जागीरो पर कब्जा जमा लेने मे किसानो की जमीदारो के विरुद्ध सामाजिक शिकायतो ने उनके आर्थिक हितो से भी अधिक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई क्योकि किसानो ने कई जगह घरो को जला डाला या उन्हे तहस-नहस कर दिया। अधिकाश मामलो मे इन परिसमाप्त (liquidated) जागीरो को सोवियतो (Soviets) के अधिकार-क्षेत्रो मे हस्तान्तरित करने के स्थान पर बड़े ही अमानवीय तरीके से उन पर कब्जा जमाने के बाद व्यक्तिगत कृषको ने उसे आपस मे बाँट लिया। लोगो द्वारा अपने मन से ही की गई इस जब्ती (Confiscation) से काफी सम्पत्ति बरबाद कर दी गयी तथा जानवरो को मार डाला गया। राजनीतिक कारणो से, केन्द्रीय सोवियत सरकार इस सारी आदिम प्रक्रिया (primitive process) को मूक दर्शक बनकर देखती रही।'

प्रशासनिक तथा राजनीतिक कारणो से केन्द्रीय सोवियत सरकार ने इस बारे मे कोई हस्तक्षेप नही किया। उसके पास हस्तक्षेप करने के लिए पूरा ढाँचा ही नही था।

जहाँ तक उद्योगो पर नियन्त्रण का प्रश्न था, क्रान्ति के आरम्भिक महीनो मे इस सम्बन्ध मे सकट को बुलावा देने की चेष्टा नही की गई। किन्तु स्पष्ट रूप से सोवियत सत्ता का उद्देश्य उद्योग पर नियन्त्रण प्राप्त करना था। यह नियन्त्रण ऊपर तथा नीचे दोनो ही ओर से (from above and from below) प्राप्त किया जाना था। हालाकि उद्योगो को मई 1918 से पहले राष्ट्रीयकृत नही किया गया किन्तु कुछ व्यक्तिगत औद्योगिक इकाइयो को सोवियत प्रशासन ने अपने अधिकार मे कर लिया। 14 नवम्बर 1917 के आदेश से श्रमिक समितियो को कारखानो का निरीक्षण एव प्रबन्ध करने के अधिकार प्रदान कर दिये गये। दिसम्बर 1917 मे 'वेसेंखा' (Vesenkha) का गठन किया गया जिसे राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की सर्वोच्च परिषद् (Supreme Council of the National Economy) के नाम से जाना गया। इस अवधि मे एक प्रकार से दोहरे शासन की भी नौबत आ गयी क्योकि सोवियत सत्ता ने श्रमिको को कारखानो का पूरा नियन्त्रण नही सौंपा था। उन कारखानो के मालिको को भी कारखानो पर नियन्त्रण रखने तथा आदेश देने का अधिकार था। श्रमिको की समितियो (Workers' Committees) को सारे उपक्रम पर नियन्त्रण कर लेने या उसे निर्देश देने के अधिकार नही दिये गये थे।

परिणाम यह हुआ कि पहले-पहल कुछ सामरिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण उद्योगो का ही राष्ट्रीयकरण किया गया। अनाज के व्यापार पर राज्य का एकाधिकार जारी रखा गया। सरकार ने विदेश व्यापार पर भी अपना अधिकार बनाये रखा। जैसा कि बेकोव ने लिखा है, विदेश व्यापार पर सरकारी एकाधिकार बनाये रखने का उद्देश्य पुन. राजनीतिक था—इसका ध्येय था विदेशो से हो सकने वाले वित्तीय

हस्तक्षेप को रोकना।

किन्तु यहाँ भी काफी भ्रामक स्थिति चलती रही। सोवियत सत्ता द्वारा स्पष्ट रूप से जारी किये गये निर्देशो के उपरान्त कई श्रमिक समितियो ने निजी कारखानो को एक तरह से जब्त कर लिया। श्रमिक नियन्त्रण आदेश (Decree of workers' control) द्वारा निर्धारित की गई उनकी सीमा से कई श्रमिक समितियाँ बाहर चली गयी। इसी तरह कई मालिको ने इन आदेशो का विरोध किया और अपनी फैक्ट्रियाँ बन्द कर दी। इस प्रकार की गतिविधियो से मजदूर और भी क्रुद्ध हो गये तथा उन्होंने ऐसे उपक्रमो पर जबरन अधिकार जमा लिया। मॉरिस डॉब ने इस बारे मे लिखा है कि 'यह क्रान्ति का प्रारम्भिक काल था जब अधिकाश वाले असमन्वित स्थानीय पहल द्वारा की गई" इस प्रकार की आरम्भिक प्रवृत्तियाँ वैसे देखा जाये तो नई सत्ता की शक्ति थी' लेकिन इन आरम्भिक प्रवृत्तियो का तात्कालिक प्रभाव गडबडी लाने वाला था।' ऐसा इसलिए हुआ कि फैक्ट्री समितियो को कारखाने चलाने का बिलकुल भी अनुभव नही था। इसके परिणामस्वरूप सारे उत्पादन के सगठन मे अस्त-व्यस्तता आ गई। इसके अतिरिक्त श्रमिक समितियो को एक प्रकार से यह गलतफहमी भी हो गई थी कि उन्होंने जो फैक्ट्रियाँ जब्त की है उनको केवल उनके स्वय के हित मे ही चलाया जाना है। ऐसा होने से विभिन्न उद्योगो के बीच की अन्तर्निर्भरता छिन्न-भिन्न हो गई। मॉरिस डॉब ने एक उदाहरण का उल्लेख किया है, 'डोनेट्ज (Donetz) क्षेत्र मे धातु कारखानो व कोयला खानो ने एक दूसरे को उधार पर कोयला व लोहा देने से मना कर दिया और राज्य की आवश्यकताओ का ख्याल किये बिना लोहा किसानो को बेचना शुरू कर दिया।' 300 से भी अधिक निजी फर्मों पर श्रमिको की समितियो ने जून 1918 के केन्द्रीय निर्देशो के बिना ही अपना अधिकार कायम कर लिया था। 14 फरवरी 1918 के वेसेंखा द्वारा जारी निर्देश, जिसमे कि उसकी अनुमति के बिना किसी भी राष्ट्रीयकरण की मनाही कर दी गई थी, बार-बार अनदेखी व अवज्ञा की गयी।

मध्य मार्ग की खोज मे लेनिन ने ऐसे व्यक्तिगत प्रबन्ध का सुझाव दिया जिसमे कारखानो का प्रबन्ध ऐसे प्रबन्धको को सौंपा जाना था जो प्रत्यक्ष रूप से राज्य के प्रति उत्तरदायी थे। उसने परिणामो के आधार पर भुगतान (payment by results) पर भी बल दिया। वह किसानो के साथ क्षेत्रीय सम्बन्ध भी चाहता था तथा उसने घोषणा की कि नये सम्बन्धो की ओर यथासम्भव धीरे-धीरे बढा जाएगा। लेनिन के कुछ पार्टी सहयोगियो ने ही उसकी इन नीतियो को शत्रुतापूर्ण दृष्टि से देखा। मध्यवर्गीय (Bourgeois) इन्जीनियरो व अर्थशास्त्रियो को काम पर लेने के उसके विचार को 'बुर्जुआओं के साथ गठजोड' कहा गया। इस पृष्ठभूमि मे लेनिन ने अपने राजकीय पूँजीवाद (state capitalism) के उस विचार को रखा था जो सक्रमण काल के लिए था तथा जिसमे पूँजीवाद व समाजवाद दोनो ही के तत्त्व विद्यमान थे। यह सब इस रूप मे होना आवश्यक था क्योकि आरम्भिक महीनो मे सरकार इस स्थिति मे नही थी कि वह तकनीकी दृष्टि से प्रशिक्षित लोगो की सेवाओ के बिना काम चला सकती या कुशल प्रबन्धको के बिना कारखानो का सचालन कर पाती

हालांकि वे लोग उसके क्रांतिकारी विचारों का समर्थन नहीं करते थे।

लेकिन सोवियत सत्ता के इन प्रारम्भिक प्रयोगो का आठ महीनो के भीतर अन्त हो गया जबकि जून 1918 मे देश में गृह युद्ध भड़क उठा था। कई विदेशी सेनाएँ रूस की भूमि पर घुस आयी। देश मे मौजूद पूंजीवाद के समर्थक तत्त्वों को सोवियत सरकार के पतन की प्रत्याशा थी। उन्होने नयी सरकार के साथ सहयोग करना बन्द कर दिया। सरकार के पास अब कोई विकल्प नही रह गया था। उसे अपनी सैनिक आवश्यकताएँ पूरी करने के लिए उद्योगो का राष्ट्रीयकरण करना पड़ा। यह यौद्धिक साम्यवाद के युग का आरम्भ था।

यौद्धिक साम्यवाद (War Communism)

1917 की क्रान्ति के तुरन्त बाद देश मे गृह-युद्ध छिड़ गया था। इस स्थिति में तब और भी बिगाड़ आया जब उन विदेशी शक्तियों ने हस्तक्षेप आरम्भ कर दिया जो रूस मे साम्यवाद की स्थापना होने देने के विरुद्ध थी। जो लोग सोवियत क्रान्ति के विरुद्ध थे आरम्भ मे उनको कुछ सफलताएँ भी मिली। लूट-खसोट सामान्य बात हो गई। 1918 के प्रारम्भ मे सोवियत सरकार कोयला खानो मे से इतनी अधिक खानें विद्रोहियो के हाथो खो चुकी थी कि उसके पास पिछले समय की कोयले की पूर्ति की तुलना मे सिर्फ 10 प्रतिशत कोयले की पूर्ति शेष बच रही थी। इसी तरह सोवियत सत्ता अपने हाथो से अपनी 75 प्रतिशत लोहा गलाने की फाउण्ड्रियाँ (foundries), अनाज उत्पादन का 50 प्रतिशत क्षेत्र तथा चुकन्दर की पूर्ति के स्रोत भी खो चुकी थी।

ऐसी स्थिति मे अब सोवियत सत्ता के सम्मुख उपस्थित सबसे ज्वलन्त प्रश्न क्रान्ति को बचाने का था। सैनिक कामो को सर्वोच्च प्राथमिकता दी गई। प्रशासन को कड़ा एवं केन्द्रीकृत रूप दिया गया।

गृह-युद्ध के प्रभाव

(i) **ईंधन अभाव तथा यातायात की कठिनाइयाँ**—श्वेत सेनाओ (White Armies) द्वारा कोयला खानो पर अधिकार कर लेने तथा बाकू व ग्रोंजी (Baku and Gronzy) के तेल क्षेत्रो से तेल की पूर्ति बन्द हो जाने से क्रान्ति के कुछ ही महीनो बाद उद्योगो तथा यातायात के साधनो को जैसे लकवा मार गया। रेलगाड़ियाँ लकड़ी के कोयले से चलाई गईं। इस तरह रेल-व्यवस्था लगभग समाप्त-सी हो गई। एक बड़ी सीमा तक, जैसा कि डॉब ने लिखा है, 'गृह-युद्ध एक रेल-युद्ध (Railway War) था क्योंकि वह मुख्य लाइनो के आस-पास ही चला और ऐसा इसलिये हुआ कि सैनिको, गोला-बारूद तथा अन्य पदार्थों को ले जाने का साधन रेलें ही थीं। 1916 की तुलना मे ईंधन की खपत 1919 मे घटकर 40 प्रतिशत रह गई थी। औद्योगिक रोजगार 50 प्रतिशत गिर गया। उत्पादकता मे 30 प्रतिशत की कमी आयी। कुल औद्योगिक उत्पादन 14 5 प्रतिशत घट गया।

(ii) **घुड़दौड़ स्फीति व विमुद्रीकरण** (Galloping inflation and demo-

nitisation)—स्फीति ने लाल क्रांति का साये की तरह पीछा किया था। गृह युद्ध ने उसे और भी तेज कर दिया क्योंकि उसके लिए वित्त की व्यवस्था नयी पत्र-मुद्रा जारी करके ही की जा सकती थी। 1920 मे रूबल की क्रय शक्ति 1917 के रूबल का सौवाँ हिस्सा अर्थात् 1 प्रतिशत रह गयी थी। सोवियत सरकार ने मजदूरी तो बढ़ा दी लेकिन कृषक वर्ग तथा अपेक्षाकृत समृद्ध लोगो को इसका भारी नुकसान उठाना पड़ा।

(iii) खाद्य-पदार्थों का अभाव—जब रूबल की क्रय शक्ति घट गयी तो किसानो ने अपना उत्पाद बाजार मे लाना बन्द कर दिया। सरकार को मजबूर होकर कड़ा रुख अपनाना पड़ा। पूर्ति विभाग (the Commissariat of Supplies) या नारकामप्रोद (Narcomprod) ने खाद्य पदार्थों का अधिग्रहण (requisition) शुरू कर दिया तथा उसे सेना व उद्योग के बीच आवंटित किया। लेकिन अनिवार्य अधिग्रहण का भारी पैमाने पर अपवंचन (evasion) हुआ। विशुद्ध कृषित क्षेत्र घट गया। 1920 मे हुई कुल फसल युद्ध पूर्व के वर्षों की फसल से भी कम रही। इसके अतिरिक्त किसानो को भी उनके उत्पादन का प्रतिफल बहुत कम मिला। डॉब ने एक स्थान पर लिखा है कि 'ऐसा लगता है कि जहाँ शहरो को राज्य द्वारा किये गये अधिग्रहण से युद्ध-पूर्व के स्तर की 33 प्रतिशत खाद्य व कृषि पदार्थो की आपूर्ति प्राप्त हुई वहाँ गाँवो को उनके युद्ध-पूर्व के निर्मित माल-प्राप्ति के स्तर का 12 से 15 प्रतिशत ही प्राप्त हो पाया।' इस प्रकार उद्योग तथा कृषि के बीच यह विनिमय, 'औद्योगिक वस्तुओ का गरीब किसानो की सेवाओ के साथ विनिमय था जिसमे उनके खेतो से अनाज जबरन ले लिया गया था।'

विदेशी सहायता से गठित श्वेत सेनाओ (White Armies)[1] से तथा देश मे गृह-युद्ध छिड़ जाने से रूस मे पूरी तरह से अराजकता फैल गयी। अपनी सत्ता को बचाये रखने के लिए हो रहे इस संघर्ष मे नयी क्रान्तिकारी सरकार ने जो निर्भीक या निराशा से प्रेरित होकर प्रयास किये उन्हे ही यौद्धिक साम्यवाद (War Communism) के नाम से जाना गया। पार्टी की विचारधारा का आंशिक रूप से निर्वाह करते हुए तथा आंशिक रूप से आपातकालीन नीतियो को लागू करते हुए जो संयुक्त नीति बनी वह क्रान्ति के इतिहास की एक विशिष्ट अवधि बन गयी। मौद्रिक व्यवस्था के पूरी तरह दम तोड़ देने के कारण सरकार को वस्तुओ के रूप मे भुगतान की नीति अपनानी पड़ी। कई सेवाएँ जैसे यातायात व सार्वजनिक सेवाएँ मुफ्त मे दी गयी। मुद्रा या करारोपण की पूर्ण समाप्ति की किसी को भी प्रत्याशा नही थी। लोगो ने यौद्धिक साम्यवाद की इस नीति को सच्चे साम्यवादी समाज की स्थापना की दिशा मे एक कदम माना। किन्तु लेनिन स्वयं यह कहने के लिए बाध्य हो गया था कि यौद्धिक साम्यवाद एक नीति के रूप मे सरकार पर 'युद्ध और बरबादी की वजह से एक अस्थायी उपाय के रूप में' थोपा गया था।

शहरो और गाँवो मे यौद्धिक साम्यवाद की नीति पर मिश्रित प्रतिक्रिया हुई। किसानो ने इसे अधिक समर्थन नही दिया क्योंकि इसमे हिंसा सम्मिलित थी। उन्होंने

[1] A G Mazour, *Soviet Economic Development, 1921–65*, 17

अपना उत्पादन बाजार मे लाने से स्पष्ट इनकार कर दिया व शहरो मे खाने-पीने की चीजो का अभाव पैदा कर दिया। कालाबाजारी का बोलबाला बढ गया तथा भूखे शहरी लोग थोडे से अनाज के बदले अपनी कीमती चीजें किसानो को देने के लिए मजबूर हो गये। यहाँ तक कि ग्रामीण क्षेत्रो मे खाद्यान्नो के अधिग्रहण के लिए भेजी गयी फौजी टुकडियो से भी कोई विशेष काम नही बना। किसान लोग नगरो से की जा रही 'क्रान्ति के भाग्य को बचाने' की अपील के प्रति उदासीन बने रहे। किसानो के लिए क्रान्ति का अर्थ भूस्वामियों को जमीन से निकाल देने तक ही सीमित था।

स्थिति की विडम्बना कुछ इस तरह सामने आयी कि क्रांति का पुराना नारा—भूमि किसान की—स्वय क्रान्ति के विरुद्ध ही एक अस्त्र बन गया। इस स्थिति से क्रान्ति के नेता बडे नाराज हुए। उन्होंने नगरो को असहयोग करने वाले किसानो पर निर्भरता से उबारने का निश्चय किया। जुलाई 1918 मे सोवियत कांग्रेस (Congress of Soviets) द्वारा एक प्रस्ताव स्वीकार किया गया जिसका उद्देश्य राजकीय फार्मों तथा कृषि कम्यूनो का पुनर्गठन करना था। बडे पैमाने पर समाजवादी खेती को बढावा देकर नगरो व गाँवो के बीच सहयोग बढाना भी इसका उद्देश्य रखा गया। अगस्त 1918 मे एक आदेश जारी किया गया जो कृषि के समाजीकरण (Socialisation of agriculture) की सोवियत कृषि-नीति का आधार बना। समाजवादी ढग से खेती करने को आसान बनाने के लिए नियम पारित किये गये। सरकार का विश्वास था कि नये कानूनो से देश मे वैज्ञानिक खेती के नये प्रतिमान स्थापित होगे। सरकार ने यह भी आशा की थी कि नये कानूनो से किसानो व औद्योगिक मजदूरो के बीच सम्बन्धो मे भी सुधार होगा।

इन राजकीय फार्मों का सचालन राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की सर्वोच्च परिषद् द्वारा होना था। किन्तु यह परियोजना, जिसका उद्देश्य खाद्य समस्या हल करना था, कागजो पर ही रही। यह असफलता आशिक रूप से सरकार के युद्ध मे अत्यधिक व्यस्त रहने के कारण भी हुई। आशिक रूप से यह असफलता किसानो द्वारा किसी भी प्रकार के समाजीकरण का विरोध करने से भी हुई। विदेशी शक्तियों के हस्तक्षेप ने स्थिति को और भी दयनीय बना दिया।

उद्योग का राष्ट्रीयकरण

जब 1917 मे बोल्शेविको ने सत्ता पर अधिकार कर लिया था तब राष्ट्रीय उत्पादन तेजी से गिर रहा था तथा बाजार मे आवश्यक वस्तुओं की भारी कमी थी। नियन्त्रण मे न आने वाली मुद्रा-स्फीति रूबल की क्रय-शक्ति को प्रतिदिन कम कर रही थी। यातायात व्यवस्था एकदम ठप्प होने की स्थिति मे पहुँच रही थी। रेलमार्ग परिवहन को भारी घाटा हो रहा था। अनेको आधारभूत उद्योगो को, कुशल श्रमिको की कमी के अतिरिक्त, कच्चे माल की कमी के सकट का सामना करना पड रहा था।

इन मानसिक सन्तुलन को छिन्न-विच्छिन्न कर देने वाली परिस्थितियो मे नयी-

नयी बनी सोवियत सरकार ने उद्योगों के राष्ट्रीयकरण के कार्यक्रम की शुरुआत की। यौद्धिक साम्यवाद का यह सबसे महत्वपूर्ण प्रयोग था। इस कदम ने सरकार को आर्थिक असमानताएँ समाप्त करने के लिए प्रतिबद्ध कर दिया। नवम्बर 1917 के अपने प्रथम आदेश मे कौंसिल ऑफ पीपल्स कमिसार्स (Sovnarkom) ने सभी श्रमिकों के लिए सामाजिक बीमे की घोषणा की। इसके कुछ ही समय बाद एक अन्य आदेश द्वारा बैंकों का राष्ट्रीयकरण कर दिया गया। फरवरी 1918 मे सर्वोच्च परिषद् ने औद्योगिक इकाइयों की जब्ती के बारे मे नियम जारी किये। उसी महीने मे सोवियत ऑफ पीपल्स कमिसार्स (the Soviet of People's Commissars) ने सारे विदेश व्यापार का राष्ट्रीयकरण कर दिया।

इन राष्ट्रीयकरणों के कर दिये जाने मात्र से आर्थिक असमानताओं का उन्मूलन करने मे कोई विशेष सहायता नहीं मिली। उत्पादन ही इतना थोड़ा था कि उसे अच्छी तरह वितरित किया ही नहीं जा सकता था। लेनिन इन बिगड़ी हुई स्थिति को जान रहा था लेकिन उसे यह भी पता था कि इन परिस्थितियों मे पूँजीवाद को दी गयी कोई भी रियायत क्रान्ति की हार समझ ली जाएगी। इससे पहले कि लेनिन राष्ट्र को क्रान्ति के लक्ष्यों से कुछ पीछे हटने के लिए तैयार कर पाता तीन वर्ष तक प्रतीक्षा करनी पड़ी। तात्कालिक परिस्थितियों मे इसीलिए कड़ाई से राष्ट्रीयकरण की नीति का परिपालन किया गया।

अप्रैल 1918 के आदेश से 10,000 रूबल से अधिक सम्पत्ति पर उत्तराधिकार समाप्त कर दिया गया। सरकार ने फैक्ट्री समितियों से सभी कारखानों का नियन्त्रण भी अपने हाथ मे ले लिया। किन्तु प्रशासनिक व प्रबन्ध सम्बन्धी अनुभव के अभाव का परिणाम यह निकला कि औद्योगिक उत्पादन मे और भी कमी आ गयी। जून 1918 तक सरकार ने लगभग 1,100 संयुक्त पूँजी कम्पनियों पर 'उनकी सारी पूँजी व सम्पत्ति सहित 'अधिकार कर लिया था। इन कम्पनियों में सभी प्रमुख खाने फैक्ट्रियाँ, मिल तथा अन्य व्यावसायिक प्रतिष्ठान सम्मिलित थे। इन्हे राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की सर्वोच्च परिषद् के अधिकार-क्षेत्र मे रख दिया गया। इन प्रतिष्ठानों मे काम करने वाले प्रशासनिक अधिकारियों को एक आदेश द्वारा अपने-अपने पदों पर बने रहने की आज्ञा दी गयी। सारी निजी पूँजी को जमा दिया (frozen) गया।

श्रम संघों की एक संयुक्त घोषणा द्वारा हड़तालें गैर-कानूनी घोषित कर दी गयीं तथा आर्थिक संकट समाप्त करने के लिए केन्द्रीकृत प्रयास करने की अपील की गयी। किसी भी प्रकार की काम रोकने की घटना को (work stoppage) गैर-कानूनी माना गया तथा उसके लिए उत्तरदायी लोगों को विशेष अदालतों द्वारा भारी दण्ड दिलाने की व्यवस्था की गयी। अगस्त 1918 के एक आदेश से वास्तविक परिसम्पत (real estate) पर भी स्वामित्व समाप्त कर दिया गया। नगरों मे मकान, जमीन आदि पर स्वामित्व समाप्त कर दिया गया तथा 10,000 रूबल से अधिक के सभी रहन (mortgages) भी रद्द कर दिये गये। 10,000 रूबल से कम के रहन राजकीय ऋण माने गये।

उत्पादन व वितरण के लिए सरकार का उत्तरदायित्व

नई सरकार ने उत्पादन तथा वितरण दोनो ही का नियमन करने का उत्तरदायित्व लिया। जुलाई 1918 मे स्वीकृत संविधान मे 'व्यक्ति का व्यक्ति द्वारा किया जाने वाला सभी प्रकार का शोषण तथा समाज का वर्ग विभाजन समाप्त करने' की घोषणा की गयी। इसने भूमि का समाजीकरण कर दिया तथा श्रमिकों के नियन्त्रण और राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की सर्वोच्च परिषद की स्थापना का स्थायीकरण कर दिया। इस परिषद् को राष्ट्रीयकृत उद्योगों के नियन्त्रण व संचालन का काम सौंपा गया। परिषद् उत्पादन व वितरण के समन्वय के लिए भी उत्तरदायी बनायी गयी। परिषद् की सहायता के लिए अनेक स्वतन्त्र कमिसरियेटे (Commissariats) या विभाग उद्योग, व्यापार, कृषि, वित्त आदि गतिविधियों के लिए बनाये गये। इनके कार्य एक दूसरे का अतिक्रमण करते थे।

श्रम अनुशासन को और भी कड़ा बनाया गया तथा अक्तूबर 1918 के एक आदेश में सभी नागरिकों को 'अनिवार्य श्रम' के लिए बाध्य कर दिया गया। उत्पादन के साधनों के राष्ट्रीयकरण के बाद सरकार द्वारा नियन्त्रित वितरण व्यवस्था कायम की गयी। यह काम दो संस्थाओं द्वारा किया जाना था खाद्य विभाग एवं कृषि विभाग (the Commissariat of Food and the Commissariat of Agriculture)। वितरण व्यवस्था की सबसे बड़ी कठिनाई खाद्य पदार्थों व अन्य वस्तुओं के केवल गांवों मे ही उपलब्ध होने की थी। 'क्रान्तिकारी निश्चय' भी इस काम म कोई सहायता नही कर पाया। राशनिंग व अधिग्रहण (requisition) बड़े पैमाने पर लागू किये गये। रसद विभाग (The Commissariat of Supplies) ने देश की जनसंख्या को चार भागों मे विभाजित किया

(i) खतरे भरे कामो मे लगे हुए मजदूर,
(ii) औद्योगिक मजदूर,
(iii) सरकारी कर्मचारी,
(iv) गैर-श्रमिक लोग।

इनमे से प्रत्येक वर्ग के लोगो को उत्तरोत्तर घटती हुई दर से खाद्यान्नो का दैनिक राशन आवंटित किया जाता। चौथी श्रेणी मे लोगो को तो लगभग भूखे मरने के लिए छोड़ दिया गया।

सैद्धिक साम्यवाद का परित्याग

तीन वर्ष तक चलने वाले गृह युद्ध के प्रभाव रूस तथा उसकी नयी क्रांतिकारी सरकार के लिए काफी घातक सिद्ध हुए। राजनीतिक सत्ता छीनने के लिए तीव्र संघर्ष हुआ। गृह-युद्ध के अतिरिक्त बाहरी शक्तियों द्वारा देश की घेराबन्दी ने रूस की अर्थव्यवस्था को दयनीय बना देने मे पूरा योगदान दिया। 1921 मे औद्योगिक उत्पादन गिरते-गिरते 1914 के पहले के वर्षों का 13 प्रतिशत रह गया। कृषि तो पूरी तरह से अस्त-व्यस्त हो गयी। 1914 के बाद युद्ध और क्राति के सात वर्षों ने

रूस के लोगों को एक ऐसे स्थान पर ले जाकर खड़ा कर दिया था जहाँ उनके लिए जीवित रह लेने भर तक का प्रश्न शेष रह गया था।

1920 के अन्त में यौद्धिक साम्यवाद का परित्याग कर दिये जाने के पीछे दो अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कारण रहे। पहला कारण किसानों द्वारा कृषि के समाजीकरण का कड़ा विरोध रहा। ये कृषक लोग क्रान्ति के महान् मुद्दों को नहीं समझ पाये। दूसरा कारण था सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था का पूरी तरह से अस्त-व्यस्त हो जाना। सोवियत सत्ता की नीव को ही खतरा पैदा हो गया था। ऐसी स्थिति में यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि यौद्धिक साम्यवाद की नीतियाँ आर्थिक पुनरुद्धार की प्रक्रिया प्रारम्भ करने में असफल रहीं, किन्तु उन्होंने एक आपातकालीन उपाय के रूप में नगरों में रहने वाले लोगों तथा फौज के लिए खाद्य पदार्थ जुटाने में बड़ा उपयोगी कार्य किया। आर्थिक संस्थाओं की एक लड़ी बनाकर यह एक अस्थायी राष्ट्रीय आर्थिक ढांचा तैयार करने में भी सफल रही। यौद्धिक साम्यवाद के अन्तर्गत किये गये उपायों को कई लोग 'साम्यवादी समाज की हड्डियाँ व मास' की संज्ञा देते हैं। मुद्रा के स्थान पर वस्तु-विनिमय को भी साम्यवाद की दिशा में एक महत्त्वपूर्ण कदम माना गया। इस सम्पूर्ण व्यवस्था के बारे में डॉब ने लिखा है कि 'आर्थिक अभाव, सैनिक आवश्यकताओं तथा गृह-युद्ध की थका देने वाली स्थितियों में यह एक अल्पकालिक उपाय के रूप में उभरी थी।' नयी आर्थिक नीति के अन्तर्गत स्वीकार की गयी नीतियाँ यौद्धिक साम्यवाद के उपायों को नरम बनाने का प्रयास थीं ताकि अर्थव्यवस्था का पुनर्निर्माण किया जा सकता व असन्तुष्ट किसानों को भी शान्त किया जा सकता।

तीसरा अध्याय

नवीन आर्थिक नीति

(THE NEW ECONOMIC POLICY)

1921-1928

गृह-युद्ध तो 1921 में समाप्त हो गया किन्तु उसके कारण अर्थव्यवस्था पर जो भार पड़ा वह इतना अधिक था क्रौंसटेड्ट (Kronstadt Garrison) स्थान पर दंगा हो गया। एक बार जब किसान इस बात के बारे में आश्वस्त हो गये कि अब भू-स्वामी हमेशा के लिए खत्म हो चुके हैं तो वे सोवियत सरकार को भी अनाज आदि देने में आनाकानी करने लगे। उद्योग तक कृषि की उत्पादकता में निरन्तर ह्रास होता रहा। इसके परिणामस्वरूप आम जनता के उत्पीड़न, कष्ट तथा असन्तोष बढ़ते रहे। अन्य पूँजीवादी देशों में सोवियत रूस की तरह की ही क्रान्ति निकट भविष्य में ही होने की आशा विलुप्त हो गई। अब यह स्पष्ट रूप से अनुभव किया जाने लगा कि यौद्धिक साम्यवाद के दौरान स्थापित किया गया आर्थिक ढांचा राष्ट्रीय पुनर्निर्माण के कार्य को पूरा करने में सक्षम नहीं है तथा उसमें कुछ परिवर्तनों की आवश्यकता है। लेनिन ने दसवीं साम्यवादी कांग्रेस, जो मार्च 1921 में बुलाई गई, में इन्हीं विचारों को प्रतिध्वनित किया, जब उसने यह बयान जारी किया 'हम गरीबी और बर्बादी की ऐसी स्थिति में जा रहे हैं तथा हमारे श्रमिकों व किसानों की मुख्य उत्पादक शक्तियों पर इतना अधिक व थका देने वाला भार पड़ चुका है कि कुछ समय के लिए हर चीज को इसी मुख्य मुद्दे को दृष्टिगत रखते हुए देखा जाना चाहिए—प्रत्येक मूल्य पर वस्तुओं की मात्रा बढ़ायी जानी चाहिए।'

इसी वातावरण में नई आर्थिक नीति (New Economic Policy) का श्रीगणेश किया गया था। नवीन आर्थिक नीति की विषय सामग्री के बारे में अनेक मतभेद हैं। कई लेखकों ने नई आर्थिक नीति को सोवियत रूस में समाजवाद की स्थापना की असफलता का प्रमाण बताया तो कुछ ने उसे मार्क्सवाद की असफलता, समाजवादी सिद्धान्तों या पूंजीवाद के सम्मुख आत्म-समर्पण या समाजवाद से पीछे हटकर राजकीय पूंजीवाद की ओर जाने की संज्ञा दी। दूसरी ओर कुछ अन्य लेखकों ने नई आर्थिक नीति को शुद्ध साम्यवाद की स्थापना से पहले का कुछ विश्राम, मार्क्सवाद से अस्थायी तौर पर पीछे हटने व समाजवादी राज्य (Socialist State) की स्थापना में विभिन्न महत्त्वपूर्ण शक्तियों का सामरिक पुनर्समूहन (regrouping) किये जाने की संज्ञा दी। साम्यवादी दल के सदस्यों तक में भी यही विचार पैदा हो रहे थे। इन परस्पर विरोधी विचारधाराओं की जड़ वास्तव में देखा जाये तो स्वयं

नवीन आर्थिक नीति में ही विद्यमान थी जो एक ऐसी दोहरे किस्म की व्यवस्था थी जिसमें समाजवाद के तत्त्वों को प्रतिस्पर्द्धात्मक पूंजीवादी संस्थाओं के साथ सम्बद्ध कर दिया गया था।

नवीन आर्थिक नीति के तीन मध्यवर्ती (intermediate) लक्ष्य थे :

(i) प्रत्येक मूल्य पर वस्तुओं की मात्रा बढ़ाना।

(ii) राजनीतिक संकट का समाधान करना अर्थात् आर्थिक संकट बढ़ने के कारण श्रमिकों व कृषकों में केन्द्र सरकार के प्रति मनोमालिन्य की भावना को शान्त करना तथा गाँवों एवं शहरों के बीच बढ़ते जा रहे अलगाव की खाई को पाटना।

(iii) समस्त 'आर्थिक ऊँचाइयों' (Economic Commending Heights) को सरकार के हाथों में रखना तथा उन्हें उत्पादकता के पुनरुद्धार की दिशा में इस प्रकार प्रयुक्त करना कि जिससे 'सर्वहारा वर्ग की सम्प्रभुता' की अन्तिम विजय हो सके।

शुरू-शुरू में यह आशा थी कि स्वतन्त्र बाजार का कार्य-क्षेत्र स्थानीय लेन-देनों तक सीमित कर पाना सम्भव होगा तथा शहरों गाँवों के बीच राष्ट्रीय स्तर पर वस्तु-विनिमय (barter) की व्यवस्था स्थापित की जा सकेगी। लेकिन, लेनिन ही के शब्दों में, 'निजी व्यापार हमसे भी मजबूत सिद्ध हुआ, तथा वस्तु-विनिमय की जगह साधारण खरीद और बिक्री ही चलती रही।'

साम्यवादी दल के वामपन्थी तत्त्वों के द्वारा किये जा रहे विरोध को देखते हुए यह कोई आसान निर्णय नहीं था। इस तरह पीछे हट जाना इन वामपन्थी तत्त्वों को बिल्कुल रास नहीं आया। लेकिन पुनः एक बार वह लेनिन ही था जिसने स्थिति का व्यावहारिक दृष्टिकोण से मूल्यांकन किया। लेनिन ने कहा 'यदि कुछ साम्यवादी सदस्य इसे सम्भव समझने की दिशा में सोचते हैं कि तीन वर्षों में सम्पूर्ण आर्थिक ढाँचे को रूपान्तरित किया जा सकता है तथा कृषि की जड़ों को ही पूरी तरह से बदला जा सकता है तो वे निश्चय ही स्वप्नद्रष्टा (dreamers) हैं, और हमें यह स्वीकार करना होगा कि हम में कुछ ऐसे स्वप्नद्रष्टा भी हैं।' लेनिन ने पार्टी को यह चेतावनी भी दी कि किसानों के साथ समझौता करके ही क्रान्ति को बचाया जा सकता है क्योंकि रूस में किसानों का वहाँ की जनसंख्या में भारी बहुमत है। उसने यह अनुभव कर लिया था कि रूस के किसानों की बुर्जुआ अर्थात् मध्यवर्गीय मनोवृत्ति को समाजवादी मनोवृत्ति में रूपान्तरित करने में अभी कई वर्षों का समय लग जायेगा। लेकिन रूस का समाजवादी देश के रूप में पुनर्निर्माण करने के लिए उसके औद्योगिक उत्पादन में वृद्धि करने की भी अत्यधिक आवश्यकता थी। इन परिस्थितियों में लेनिन ने बड़े पैमाने के उद्योग स्थापित करने पर बल दिया।

व्यापार का विकास करना भी महत्त्वपूर्ण माना गया। लेनिन ने पार्टी के कार्यकर्त्ताओं को एक नया नारा दिया व्यापार करना सीखो। व्यापार में वृद्धि से यह आशा की गई थी कि शहरी आबादी के लिए खाद्य सामग्री जुटाई जा सकेगी तथा उपभोक्ता वस्तुओं का उत्पादन करने वाले उद्योगों के लिए कच्चा माल प्राप्त किया जा सकेगा। इससे पूंजी-संचय भी सम्भव बन सकेगा।

नई आर्थिक नीति के यही उद्देश्य थे और उसके सामने यही कार्य रखे गये थे जब यौद्धिक साम्यवाद के युग से अर्थव्यवस्था के पुनरुद्धार के नये युग की ओर अग्रसर होने का कार्यक्रम बनाया गया था। लेकिन जिन तरीकों से या साधनों से इन उद्देश्यों या कार्यों को नये आर्थिक ढांचे के भीतर ढाल कर एक निश्चित स्वरूप प्रदान किया जाना था वह सब नई आर्थिक नीति के आरम्भ में स्पष्ट नहीं था। गलती करने व सीखने (methods of trial and error) का तरीका अपनाया गया जो सक्रमण काल में राज्य एव निजी स्वामित्व वाली अर्थव्यवस्था के बीच समझौते के लिए चुकाया गया अपरिहार्य मूल्य था।[1]

उपर्युक्त विश्लेषण से एक बात तो स्पष्ट हो जाती है कि नवीन आर्थिक नीति को मुक्त चुनाव से तो स्वीकार नहीं किया गया था। इस नीति को केवल इसलिए अपनाया गया था कि उस समय अर्थव्यवस्था के आर्थिक पुनरुद्धार की अत्यन्त आवश्यकता थी। सोवियत नेताओं ने अपने आपको यह समझा कर सान्त्वना दी की कि अभी भी महत्त्वपूर्ण उद्योगों का नियन्त्रण उनके हीं हाथों में था तथा यह कि जैसे ही स्थिति में थोड़ा सुधार आया पार्टी पुन समाजवाद की ओर लौट जायेगी।

नई आर्थिक नीति के अन्तर्गत कृषि

नई आर्थिक नीति का सामान्य लक्ष्य राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की सभी शाखाओं में उत्पादन का पुनरुद्धार करना था। कृषि उत्पादन में यह पुनरुद्धार किसानों के सहयोग एव व्यक्तिगत पहल (personal initiative) द्वारा ही सम्भव बनाया जा सकता था। इसीलिए नई आर्थिक नीति ने राष्ट्रीयकरण को बनाये रखते हुए, हालांकि जमीन लाखों करोड़ों किसानों के हाथों में ही बनी रही, वास्तविक रूप से भूमि पर मालिक बने हुए लोगों का स्वामित्व स्वीकार किया। हालांकि जमीन बेचने पर पाबन्दी लगा दी गई क्योंकि उसे राज्य की सम्पत्ति माना गया लेकिन जमीन को लीज (lease) पर उठाने, मशीनें किराये पर लेने और यहाँ तक कि जानवर और श्रमिकों को भी भाड़े पर ले सकने की अनुमति दे दी गई। किसानों को अपने उत्पादन का सगठन करने तथा उसे बेचने की पूर्ण स्वतन्त्रता प्रदान की गई। इस स्वतन्त्रता ने समृद्ध किसानों के एक वर्ग को बढ़ावा दिया जिन्हे कुलक (Kulak)-के नाम से जाना गया। नई आर्थिक नीति की अवधि के दौरान सरकार ने छोटे किसानों की सहायता के लिए अनेक उपाय किये तथा कुलकों (Kulaks) के बढ़ने पर प्रतिबन्ध भी लगाये जिन्हे वर्ग-शत्रु माना गया।

सरकार किसानों को खुश रखना चाहती थी ताकि शहरों और गाँवों के बीच आवश्यक चीजों के आदान-प्रदान को फिर से सामान्य बनाया जा सकता। अतिरिक्त अनाज के अधिग्रहण की नीति समाप्त कर दी गई। उसके स्थान पर एक नया अनाज-कर (Food Tax) लगाया गया, जिसे 1923 के बाद मुद्रा में चुकाया जा सकता था। एक सरकारी घोषणा में कहा गया कि 'अब से अधिग्रहण की नीति समाप्त घोषित की जाती है तथा उसके स्थान पर वस्तुओं के रूप में एक कृषि-कर

[1] *Ibid* 52

लगाया जा रहा है। अब हर किसान को यह समझ लेना चाहिए कि वह जितनी ज्यादा जमीन जोतेगा उतना ही अधिक अतिरिक्त अनाज उसकी व्यक्तिगत सम्पत्ति बन सकेगा।' वह इस अतिरिक्त अनाज को स्वतन्त्र बाजार में बेच सकता था।

अतिरिक्त अनाज का निर्धारण प्रति व्यक्ति न्यूनतम जीवन-निर्वाह के लिए आवश्यक अनाज को अलग रखकर ही किया जाता था तथा कर केवल अतिरिक्त अनाज पर ही लगाया गया था। यह इस बात का प्रमाण था कि स्वतन्त्र व्यापार व लाभ की प्रवृत्ति को मान लिया गया था। इसके लिए सुस्थिर मुद्रा की भी आवश्यकता थी। इन परिवर्तनों ने यह भी स्पष्ट कर दिया कि खाद्य पदार्थों के केन्द्रीकृत वितरण की पुरानी व्यवस्था असफल सिद्ध हो चुकी थी।

इस तरह 1925–26 तक अनाज के उत्पादन का पुनरुद्धार हुआ तथा धनी किसानों पर प्रतिबन्ध लगाने की दृष्टि से कृषि-कर को अधिक प्रगतिशील बनाया गया। दूसरी ओर निर्धन किसानों को न केवल करों में रियायत का लाभ मिला बल्कि उन्हें फसलें खराब हो जाने की स्थिति में सहायता भी दी गई।

नई आर्थिक नीति के कार्यकाल की समाप्ति तक देश में कृषक-फार्मों (peasant farms) की संख्या बढ़कर 10 मिलियन हो चुकी थी। कुछ निर्धन कृषक मध्यम वर्ग के किसान बन गये तो कुछ अन्य औद्योगिक मजदूर बन गये। धनी किसानों की जोतों में कमी आई। स्वाभाविक रूप से अनाज के उत्पादन में नई आर्थिक नीति के कार्यकाल में पुनरुद्धार धीरे-धीरे ही हो पाया क्योंकि यह जोतों के आकार पर भी निर्भर था। नई आर्थिक नीति के कार्यकाल के अन्त तक भी अनाज का उत्पादन क्रान्ति पूर्व के स्तर तक नहीं पहुँच पाया था। बाजार अतिरेक में भी गिरावट आई थी।

कृषि उत्पादन में इस धीमी गति से पुनरुद्धार में घरेलू बाजार में कठिनाइयाँ पैदा हो गयी। 1927 में कुछ आपातकालीन उपाय किये गये। धनी किसानों के अनाज को, जिसे उन्होंने सरकार को निश्चित मूल्य पर देने से मना कर दिया था, जब्त कर लिया गया। अनाज का संग्रह करने वालों को जेल भेज दिया गया। समृद्ध किसानों ने इस स्थिति के प्रति अपनी प्रतिक्रिया अपने कृषित क्षेत्र को घटाकर व्यक्त की।

1927 में एक ऐसी सामान्य नीति बनाई गई जिसमें उपायों की एक लम्बी शृंखला थी। निर्धन किसानों को अधिक साख-सुविधाएँ तथा उत्पादन के अन्य साधन उपलब्ध कराये गये। बड़े पैमाने पर अन्न उत्पादन करने के उद्देश्य से नये राजकीय फार्म गठित किये गये। कृषक घरानों के सामूहिकीकरण (collectivisation) के लिए उपायों को तेज कर दिया गया।

नई आर्थिक नीति के अन्तर्गत उद्योग

उद्योग के क्षेत्र में अनेक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए। उत्पादन में और गिरावट न होने देने के लिए उद्योग के पुनर्गठन को आवश्यक बताया गया। इस अवधि में औद्योगिक उत्पादन के संगठन में अग्रलिखित महत्त्वपूर्ण परिवर्तन किये गये[1] :

[1] *Ibid*, 106.

(i) बड़े एवं महत्त्वपूर्ण उद्योग राज्य के स्वामित्व मे बने रहे।

(ii) कुछ उद्योगो मे अस्थायी रूप से उत्पादन रोक देना पडा। अधिकाश छोटे प्रतिष्ठानो को या तो सहकारियो को लीज (lease) पर दे दिया गया या फिर उन्हे वापस उनके पुराने मालिको को लौटा दिया।

(iii) कुछ मौजूदा प्रतिष्ठानो को विदेशियो को भी लीज (lease) पर दे दिया गया तथा नये उत्पादनो के लिए कुछ रियायते भी दी गयी।

(iv) राजकीय तथा निजी पूंजी को मिला-जुलाकर भी कुछ नये प्रतिष्ठान प्रारम्भ किये गये।

इन सभी उपायो के परिणामो का अनुमान 1923 की एक औद्योगिक सगणना मे लगाया गया था। इस सगणना मे शामिल किये गये 1,65,781 प्रतिष्ठानो मे से 88 5 प्रतिशत निजी स्वामित्व मे, 8 5 प्रतिशत सरकारी स्वामित्व मे तथा 3 प्रतिशत सहकारी उपक्रम थे। लेकिन सख्या मे अधिक होने के बावजूद ये निजी उपक्रम इतने छोटे थे कि इनमे कुल श्रम-शक्ति का केवल 12·4 प्रतिशत भाग कार्यरत था जबकि सरकारी प्रतिष्ठानो मे काम मे लगे हुए कुल श्रमिको मे से 84 प्रतिशत को रोजगार मिला हुआ था।

इस तरह विकेन्द्रीकरण की नीति अपनाकर सरकार ने स्वय को अनेक छोटे-छोटे उपक्रमो को सम्भालने की जिम्मेदारी से मुक्त कर लिया और फिर भी औद्योगिक उत्पादन म 'निर्णायक ऊँचाइयां' उसके हाथो मे बनी रही। इन राजकीय उपक्रमो को छोटी इकाइयों को अपने मे मिलाने के लिए ट्रस्ट या समूह (combines) के रूप मे बदला जा सकता था। प्रतिष्ठानो के समूहीकरण (combines of enterprises) का यह क्रम ट्रस्ट बनाने के रूप मे उत्पादन को केन्द्रीभूत (centralise) करने के उद्देश्य से सम्पूर्ण नवीन आर्थिक नीति के कार्यकाल मे चलता रहा।

किन्तु ये सोवियत ट्रस्ट, साधारणतया ट्रस्ट से जो अर्थ लिया जाता है, उससे हटकर थे। वे तो ऐसे सरकारी औद्योगिक प्रतिष्ठान थे जिन्हे लाभ अर्जित करने के उद्देश्य से अपने क्रियाकलाप चलाने के लिए राज्य द्वारा पूरी स्वतन्त्रता प्राप्त थी। इसलिए केवल राजकीय औद्योगिक प्रतिष्ठानो को ही न्यासो या ट्रस्टो के रूप मे बदला जा सकता था। इन ट्रस्टो को उस पूंजी पर स्वामित्व नही था जो उनमे लगी हुई थी। सरकार उनकी पूंजी को स्थानान्तरित या परिसमाप्त कर सकती थी। इस तरह नवीन आर्थिक नीति के कार्यकाल मे बने हुए ये सोवियत ट्रस्ट राजकीय उद्योगो की उत्पादक गतिविधियो को केन्द्रीभूत करने का ही एक स्वरूप थे।

व्यापारिक गतिविधियो को सिण्डीकेटो (Syndicates) मे केन्द्रीभूत कर दिया गया। नई आर्थिक नीति के कार्यकाल के आरम्भिक वर्षों मे केवल ट्रस्ट ही वैधानिक व्यक्तित्व (legal personality) वाली इकाइयां माने जाते थे। फैक्ट्रियो, खानो आदि को 'प्रतिष्ठान' (establishments) का दर्जा दिया हुआ था तथा उन्हे ट्रस्टो का अगमात्र माना जाता था। ट्रस्ट उत्पादन तथा बाजार के बीच कडी के रूप मे काम करते थे।

नई आर्थिक नीति को घोषित करते समय लेनिन ने कहा था कि 'बड़े

पैमाने के उद्योग, उनकी सफलता तथा उनका विकास, साम्यवाद का निर्माण करने के लिए सर्वाधिक प्रमुख आवश्यक शर्त हैं···भारी उद्योग को राजकीय अनुदान की आवश्यकता पड़ती है। यदि हम उसकी व्यवस्था नहीं कर सकते तो एक सभ्य राष्ट्र के रूप मे, एक समाजवादी राष्ट्र के रूप मे तो बात का कहना ही क्या, हमारा अन्त सुनिश्चित है।' यही वाक्य सोवियत सरकार का मूल मन्त्र बन गया।

1924–25 के बाद से राजकीय कोषो का उद्योग के लिए वित्तीय व्यवस्था करने पर विनियोग उद्योगो से प्राप्त आगम से बराबर बढ़ता रहा। नई आर्थिक नीति के कार्यकाल के अन्तिम वर्षों मे उद्योगो की आधारभूत पूँजी का प्रसार एव नवीनीकरण बहुत तेज गति से हुआ। राजकीय बजट से अनुदान, बैंको से उद्योग के लिए साख, विदेशी प्रतिस्पर्द्धा का उन्मूलन, निजी उपक्रम के विरुद्ध प्रतिबन्धात्मक उपाय—ये सभी तत्त्व राजकीय उद्योगो के पुनरुद्धार मे सहयोगी तत्त्व रहे।

1926 मे बड़े उद्योगो ने अपना 1914 पूर्व का उत्पादन स्तर पुन प्राप्त कर लिया था। लेकिन इस बीच जनसख्या 1913 के 139 मिलियन से 1926 मे बढ़कर 147 मिलियन हो जाने के कारण प्रति व्यक्ति औद्योगिक उत्पादन मे गिरावट आ गयी। इसके अतिरिक्त उत्पादन की किस्म मे भी कुछ गिरावट आयी। एक अन्य कठिनाई जो बराबर बनी रही वह निर्मित वस्तुओ की उत्पादन लागत के अत्यधिक ऊँचा बने रहने की थी। एक असन्तुष्ट बाजार (consaturated market) तथा लगभग सौ प्रतिशत राजकीय एकाधिकार, जिसमें की चीजो को ऊँची कीमत पर भी बेचने की गारण्टी थी, लागतो मे कमी करने के लिए कोई अभिप्रेरणा (incentive) नही देते थे।

नई मुद्रा (New Currency)

क्योंकि नवीन आर्थिक नीति[1] मे मौद्रिक अर्थव्यवस्था का बने रहना जरूरी था इसलिए मुद्रा को सुस्थिर बनाना अनिवार्य हो गया तथा साथ ही एक ऐसी बैंकिंग व साख व्यवस्था भी स्थापित करना आवश्यक हो गया जिसे देश के भीतर तथा बाहर दोनों ही जगह मान्यता प्राप्त हो। 1921 मे स्टेट बैंक को पुन खोल दिया गया। सरकार ने सार्वजनिक रूप से घोषणा की कि वह व्यापार, उद्योग, कृषि आदि की पुनर्प्रतिष्ठा करेगी तथा एक 'स्थिर मौद्रिक प्रचलन' (sound monetary circulation) कायम करेगी। पुरानी व बेकार हो चुकी पत्र-मुद्रा को प्रचलन से निकाल लिया गया तथा उसके स्थान पर एक नई पत्र-मुद्रा जारी की गई। 1923 मे स्टेट बैंक ने एक नई सुस्थिर मुद्रा निर्गमित की इस नई पत्र-मुद्रा, जिसे शेरवोनेट्स (chervonets) कहा गया, के पीछे विदेशी मुद्राओ व स्वर्ण की 25 प्रतिशत मूल्य तक की गारण्टी रखी गयी। 1924 मे लगभग 2500 बचत बैंक भी खोले गये जिन्हे स्टेट बैंक से सम्बद्ध किया गया।

आन्तरिक एव विदेश व्यापार

दल के भीतर नई आर्थिक नीति को लेकर सबसे अधिक विरोधी बातें मूल्यो

[1] A G Mazour, *op cit*, 25

लिया, जैसे ठेले और फुटपाथ वाले विक्रेता रह गये। 1923 में देश में 5.04 लाख व्यापारिक संस्थान थे जिनमें से 91 प्रतिशत निजी थे जबकि इन व्यापारिक संस्थानों की संख्या 1927 में 6.43 लाख थी जिनमें से 78 प्रतिशत निजी थे। लेकिन जैसा कि पहले भी कहा जा चुका है ये निजी संस्थान इतने छोटे थे कि नई आर्थिक नीति के कार्यकाल में ही व्यापार का सारा काम सरकारी इकाइयों के हाथों में आ चुका था।

जब नई आर्थिक नीति आरम्भ की गई थी तो विदेश व्यापार को राजकीय एकाधिकार रहने दिया गया था। लेनिन ने तर्क दिया कि 'तटकर की कोई भी नीति साम्राज्यवाद के इस युग में वास्तव में सफल नहीं हो सकती, एक ऐसे युग में जिसमें कि गरीब व अमीर देशों के बीच भारी भेदभाव किया जा रहा है। किसी भी औद्योगिक देश के पास हमारे घरेलू उद्योगों को परास्त करने के लिए पर्याप्त से भी अधिक धन है।' क्रेसिन (Krasin), जो कि विदेश व्यापार नीति का निर्माता था, ने भी कहा कि 'बिना विदेश व्यापार को राजनीतिक एकाधिकार में रखे सोवियत सरकार राजकीय नियोजन व्यवस्था को आगे नहीं बढ़ा सकती।' इस प्रकार के एकाधिकार के कई लाभ थे। इससे विदेशी प्रतिस्पर्द्धा के विरुद्ध पूरी तरह संरक्षण मिल जाता था। विदेश व्यापार पर राजकीय एकाधिकार होने से आयातों को कड़ाई के साथ योजना की आवश्यकताओं के अनुरूप नियमित किया जा सकता था। निर्यात भी नियोजित लक्ष्यों के हिसाब से किये जा सकते थे। राजकीय एकाधिकार होने से विदेश व्यापार का न केवल आर्थिक उद्देश्यों के लिए नियमन सम्भव था बल्कि राजनीतिक उद्देश्यों के लिए भी उसका नियमन किया जा सकता था। इसके अलावा राजकीय एकाधिकार में होने से देश की मुद्रा को विदेशी मुद्रा के साथ सम्बन्धित रखने की आवश्यकता ही नहीं रह जाती थी।

विदेश व्यापार पर राज्य के एकाधिकार के जो ये विभिन्न लाभ थे वे ही सोवियत सरकार द्वारा इस सिद्धान्त से कभी विचलित न होने के कारण भी बने।[1] कुछ समय बाद, जबकि व्यावसायिक नाकेबन्दी हटा ली गई थी, कुछ देशों के साथ अस्थायी व्यापार समझौते भी किये गये। नई आर्थिक नीति के सारे कार्यकाल में विदेश व्यापार पूरी तरह से सोवियत सहकारियों तथा राज्य व्यापार निगमों द्वारा विदेश व्यापार की लोक कमिसारियत की देखरेख में चलाया गया। सोवियत रूस के विदेश व्यापार का सामान्य उद्देश्य किसी तरह का लाभ कमाना नहीं था बल्कि उसके द्वारा राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के विकास में सहयोग प्राप्त करना था। कुछ आयातों की बहुत अधिक आवश्यकता थी किन्तु उनके मँगवाने में अक्सर बाधाएँ आती थीं क्योंकि भुगतान सम्बन्धी कठिनाइयाँ बनी रहती थीं। संक्षेप में निष्कर्ष यही है कि सोवियत रूस का विदेश व्यापार नवीन आर्थिक नीति के कार्यकाल में धीरे-धीरे आगे बढ़ा और वह उसके आखिर तक भी क्रान्ति-पूर्व के स्तर को प्राप्त नहीं कर पाया।

नई आर्थिक नीति के अन्तर्गत श्रम

नई आर्थिक नीति के कार्यकाल में श्रम सम्बन्धों में एक आधारभूत परिवर्तन

[1] Baykov, *op cit*, 73.

आया। यौद्धिक साम्यवाद की अनिवार्य श्रम तथा वस्तुओं के रूप में सबको समान वेतन देने की प्रथा का परित्याग कर दिया गया। श्रम-संघो तथा प्रबन्धको के बीच सम्बन्धो को फिर से स्थापित करने की आवश्यकता अनुभव हुई। वयस्कों के लिए आठ घण्टे के कार्य-दिवस को वैधानिक स्वीकृति प्रदान कर दी गई। श्रमिको को नियुक्त करने व बर्खास्त करने के विषय मे नियम बना दिये गये। ट्रेड यूनियनो को प्रबन्धको के लिए बनाये गये नियमो का उनके द्वारा कड़ाई से अनुपालन कराने की दृष्टि से निरीक्षण के अधिकार दिये गये। नई आर्थिक नीति प्रारम्भ करने से सामाजिक बीमे की व्यवस्था एक वास्तविकता बन गई। ट्रेड यूनियनो को श्रमिको को उद्योग के नियन्त्रण मे हिस्सा लेने के लिए आकर्षित करने, एक नये श्रम अनुशासन का विकास करने तथा श्रम-उत्पादकता बढाने का कार्य सौंपा गया। श्रम-संघो को सभी राजकीय आयोजन सम्थाओ मे भी भाग लेने के लिए कहा गया।

श्रम संघो के कर्तव्यो में दोहरापन (dualism) एक ओर तो श्रमिको के हितो के रक्षक के रूप मे उनके कर्त्तव्य तथा दूसरी ओर उत्पादन के सगठन मे भागीदार होने का कर्त्तव्य, कई भ्रामक स्थितियो का जन्मदाता बना। मजदूरी की वैधानिक निर्धारण (statutory fixation) की व्यवस्था के स्थान पर स्वतन्त्र सामूहिक सौदेबाजी की प्रणाली लागू की गई। वस्तुओ के रूप मे मजदूरी देने की प्रथा के स्थान पर विशुद्ध मौद्रिक मजदूरी आरम्भ की गई। दक्ष व अदक्ष श्रमिको के लिए एक समान वेतन की पुरानी व्यवस्था के स्थान पर मजदूरी मे अन्तर (differential wages) वाली प्रणाली फिर से लायी गयी। एक अत्यधिक कुशल श्रमिक को एक अकुशल श्रमिक की तुलना मे साढे तीन गुना अधिक मजदूरी दी जाती थी। नई आर्थिक नीति के कार्यकाल मे मजदूरी को मुख्य अभिप्रेरक (main incentive) के रूप मे काम मे लिया गया।

श्रम अनुशासन व औद्योगिक उत्पादन का सगठन दोनो ही, जो यौद्धिक साम्यवाद की अवधि मे अस्त-व्यस्त हो चुके थे, नई आर्थिक नीति के कार्यकाल मे पुन जमने लगे अर्थात् उनका पुनरुद्धार हुआ। नई आर्थिक नीति के कार्यकाल मे श्रमिको की औसत वार्षिक मजदूरी मे तेजी से वृद्धि हुई। 1926–27 तक मजदूरी पुन युद्ध-पूर्व के स्तर पर पहुँच गई। प्रथम पचवर्षीय योजना की पूर्व सध्या पर औद्योगिक मजदूरी 1913 की तुलना मे 123 प्रतिशत थी इजीनियरो तथा तकनीशियनो को मजदूरी के अतिरिक्त बोनस भी दिया जाने लगा।

लेकिन यहाँ यह बात कहनी होगी कि नई आर्थिक नीति के कार्यकाल मे औद्योगिक श्रमिको को अन्य किसी भी समुदाय की तुलना मे अधिक भौतिक लाभ मिले। सामाजिक दृष्टि से भी औद्योगिक श्रमिको को प्रथम श्रेणी का तथा अन्य लोगो को द्वितीय श्रेणी का नागरिक समझा गया।

नई आर्थिक नीति के अन्तर्गत निजी पूंजीपति

जैसा कि हम देख चुके है कि निजी पूँजीपति जिसे नेपमेन (Nepmen) भी कहा गया, का खुदरा व्यापार पर नियन्त्रण काफी बढ गया। ऐसा इसलिए हुआ

कि अपने कार्यकाल के आरम्भिक वर्षों मे नई आर्थिक नीति का उद्देश्य राजकीय उद्योगो का विकेन्द्रीकरण करना था। सहकारी इकाइयाँ आन्तरिक व्यापार के लिए पर्याप्त जाल नही बिछा पायी थी और राजकीय उद्योगो को अपनी चीजें बाजार तक पहुँचाने के लिए निजी व्यापारियो के माध्यम का सहारा लेना पडा। नेपमेन (निजी व्यवसायी) शहर व गाँव के बीच होने वाले लेन-देन की एक महत्त्वपूर्ण कडी भी थे। किन्तु 1923 के बाद जैसे-जैसे सहकारी व राजकीय व्यापार इकाइयो का आकार व संख्या बढती चली गई वैसे-वैसे नेपमेन का योगदान घटता चला गया। नई आर्थिक नीति का कार्यकाल समाप्त होने के पहले ही नेपमेन अपना स्थान खो चुके थे।

नई आर्थिक नीति की समाप्ति

साम्यवादी पार्टी नई आर्थिक नीति के कार्यक्रम के बारे मे आरम्भ से ही शकाओ से घिरी हुई रही थी। नई आर्थिक नीति के सैद्धान्तिक विरोध के कारण सरकार को उस पर पुनर्विचार करने के लिए बाध्य होना पडा। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी 1929 की मन्दी, नाजीवाद का उदय तथा चीन पर जापान द्वारा आक्रमण करने जैसी जो महत्त्वपूर्ण घटनाएँ इस बीच हुई थी उन्होंने भी परिवर्तन को अनिवार्य बना दिया था। नई आर्थिक नीति के पार्टी के भीतर के आलोचको का कहना था कि विदेशी सहयोग के अभाव व देश मे ही किसानो द्वारा किये जा रहे असहयोग के बावजूद देश को पूरी गति के साथ औद्योगीकरण का कार्यक्रम छेड देना चाहिए। इन आलोचको का यह मानना था कि इस प्रकार के विशाल औद्योगीकरण का कार्यक्रम स्वतन्त्र उपक्रम की सामर्थ्य से बाहर की बात थी।

नई आर्थिक नीति के आलोचको द्वारा सोचे गये औद्योगीकरण के इस महत्त्वाकाक्षी कार्यक्रम का भार सभी वर्गों पर पडा किन्तु यह भार कृषक वर्ग पर सर्वाधिक पडा। सरकार के सम्मुख यह बहुत बडी समस्या थी क्योकि उसे औद्योगीकरण के लिए वाछित पूँजी ग्रामीण क्षेत्रो से ही जुटानी थी। किन्तु कृषक वर्ग तो अभी भी उदासीन दिखाई दे रहा था। दूसरी ओर युवा तुर्क (radicals) समाजवादी नियोजन के कार्यक्रम को शीघ्रातिशीघ्र लागू करने पर बल दे रहे थे। युवा तुर्को का ऐसा मत था कि इस बारे मे की जाने वाली कोई भी देरी सोवियत सत्ता के अस्तित्व को ही खतरे मे डाल देगी।

सरकार भी अपने उद्योगो के प्रसार कार्यक्रम के बारे मे अब अधिक आश्वस्त अनुभव कर रही थी क्योकि औद्योगिक ऊँचाइयो पर पहले से ही उसका पूर्ण नियन्त्रण हो चुका था। प्रश्न केवल इस कार्यक्रम को गति प्रदान करने का ही था। राज्य योजना आयोग या जिसे गोसप्लान (Gosplan) का नाम दिया गया था, को अधिकतम आर्थिक स्वतन्त्रता का लक्ष्य रखते हुए एक व्यापक कार्यक्रम तैयार करने का कार्य सौंपा गया। पश्चिमी देशो द्वारा रूस के प्रति अपनाये गये आक्रामक रुख से इस प्रकार का निर्णय शीघ्रता से लेने के लिए प्रेरणा ही मिली।

लेकिन यह बात कृषि के लिए सही नही थी जहाँ सरकार को अपने आप पर

इतना भरोसा नही था। 1922 मे एक भूमि आचार संहिता (Land Code of 1922) बनाई गई थी जिसमे किसानो को यह याद दिलाया गया कि सारी भूमि सरकार की सम्पत्ति थी हालाकि उसे जोतने वाले किसान उसका पूरा शोषण करने के लिए स्वतन्त्र थे। नये आर्थिक कार्यक्रम मे पिछली बडी कम्यून प्रणाली के स्थान पर कृषि सहकारियो को प्रोत्साहित करने की व्यवस्था को बढावा दिया गया था तथा इन सहकारियो म ▮ मिलियन किसान सदस्य भी बन गये थे। इन कृषि सहकारियो के गठन के पीछे उद्देश्य यही था कि निर्धन किसानो की सहायता हो सके तथा एक कुलक वर्ग को पनपने से रोका जा सके।

किन्तु सम्पूर्ण नई आर्थिक नीति के कार्यकाल मे पूँजीवादी अर्थव्यवस्था अग्रसर होती रही। कम्युनिस्टो ने भी इस बात को तो माना कि नई आर्थिक नीति मे देश के पुनरुद्धार मे सहायता मिली थी किन्तु उनका यह भी ख्याल था कि यह सैद्धान्तिक धरातल पर एक तरह का अपसरण या पीछे हटना (ideological retreat) था इस 'सामरिक पश्चगमन' (strategic retreat) के साहसिक कदम तथा उद्योगो की 'निर्णायक ऊँचाइयो' (Commending Heights) पर स्थिर रहने की नीति ने जितनी समस्याएँ हल की उससे अधिक उत्पन्न कर दी। इससे सैद्धान्तिक मतभेद बढ गये। बोल्शेविक क्रान्ति जो पूर्ण साम्यवाद के साथ आरम्भ हुई थी अब पूँजीवाद को रियायतें देकर समाप्त हो रही थी। इस बारे में कुछ भी तय नही था कि कब यह सक्रमणकालीन नीतियो का दौर समाप्त होगा तथा कब विशुद्ध समाजवाद आ पायेगा।[1]

नई आर्थिक नीति का योगदान

सोवियत अर्थव्यवस्था पर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करने वाले अधिकाश लेखको का यह मत रहा है कि नई आर्थिक नीति ने आर्थिक स्थायित्व की पुनर्स्थापना की दिशा म अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया था। नई आर्थिक नीति कोई ऐसा कदम नही थी जिसे सोवियत जनता पर थोपा गया हो। जैसा कि डॉब ने लिखा है, 'नई आर्थिक नीति कोई अनोखी चीज नही थी जिसे रातो-रात ऐसे मन्तव्यो पर थोप दिया गया हो जो उसके लिये अजनबी थे और जो पुरानी सत्ता पर प्रत्यक्ष आक्रमण के प्रयास मे असफल होने पर लाई गई हो।' जैसा कि स्वय लेनिन ने 1918 म कहा था कि वर्तमान म देश मे नीचे बुर्जुआ किस्म का पूँजीवाद प्रचलित है किन्तु यह वही एकमात्र सडक है जो बडे पैमाने पर किये जाने वाले राजकीय पूँजीवाद तथा समाजवाद की ओर जाती है और इसके जाने के रास्ते मे वही एक जैसा मध्यवर्ती स्टेशन 'राष्ट्रीय लेखा (National accounting) तथा उत्पादन एव वितरण के साधनो पर नियन्त्रण' पडता है।'

नई आर्थिक नीति के काल मे हुए इस पुनरुद्धार के अलावा इस अवधि मे रोजगार बढा, मजदूरी में वृद्धि हुई तथा काम की दशाओ मे सुधार हुआ। व्यापार का न केवल पुनरुद्धार हुआ बल्कि उसमें थोडी बहुत समृद्धि भी आई। इन घटनाओ ने देश और विदेश के लोगो को आश्चर्य में डाल दिया।

[1] Mazour, *op cit*, 29.

तुलनात्मक उत्पादन , 1913–1928

उत्पादन	1913	1928
लोह पिंड (मिलियन टन)	4 2	3 3
इस्पात ,,	4 2	4 3
कोयला ,,	29 1	35 5
सीमेंट ,,	1 5	1 8
अनाज ,,	82 0	73 0
सूती वस्त्र (मिलियन मीटर)	227 0	2742 0

किन्तु नई आर्थिक नीति के प्रति मूल उदासीनता वैचारिक धरातल पर थी। क्रान्ति का सम्पूर्ण उद्देश्य ही समाप्त हो चुका होता यदि देश का फिर उन्ही निजी व्यावसायियो (nepmen) द्वारा चलाया जाने के लिए छोड दिया जाता। कई लोगो को भय था कि निजी व्यवसायी क्रान्ति से प्राप्त लाभो को नष्ट कर देंगे। लोग लाभ पाने तथा जल्दी से जल्दी धनी बन जाने के लोभ का सवरण नही कर पा रहे थे। इससे भी अधिक शोचनीय बात ग्रामीण क्षेत्रो मे हो रही थी जहाँ सरकार को साम्यवादी विचारधारा की बलि देकर किसानो को रियायतें देनी पड रही थी। मजदूरी के बदले लोगो को काम पर रखने तथा व्यक्तिगत कृषको को लगान के बदले अधिक भूमि दे सकने की व्यवस्थाओ का भी पार्टी के कट्टर सदस्यो ने विरोध किया। इस बारे में एक रोचक बात यह रही कि इस सारे मतभेद के वातावरण मे स्टालिन ने पहले तो मध्य मार्ग अपनाया किन्तु बाद मे सब को स्तब्ध कर दिया।

किसान करो की चोरी करने लग गये थे। पाँच वर्ष म करो की बकाया धनराशि कुल राशि का 45 प्रतिशत हो चुकी थी। इससे सरकार को बडी कठिनाई हुई। अनाज के बाजार मे सट्टेबाजी की प्रवृत्ति के फैल जाने से सरकार और क्रुद्ध हो गई। बढे हुए मूल्यो का लाभ उठाने के लिए समृद्ध किसान सरकारी आदेशो की अवहेलना करने लगे। छोटे किसानो से अतिरिक्त अनाज का ग्रामीण क्षेत्रो मे जाकर अधिग्रहण करना कठिन बनता जा रहा था। समाजीकृत कृषि (socialised agriculture) से कम स्तर का कोई भी उपाय इन समस्याओ का हल नही कर सकता था। इस तरह नई आर्थिक नीति जो वास्तविक अर्थों मे सफल हो गई थी, वैचारिक धरातल पर परास्त हो गई। साम्यवादी सरकार सोवियत रूस को कम से कम सम्भव समय मे विश्व की अग्रणी औद्योगिक शक्ति के रूप मे देखना चाहती थी और मर्यादित नई आर्थिक नीति इसका कोई उत्तर नही बन सकती थी।

चौथा अध्याय

कैंची संकट

(THE SCISSORS CRISIS)

नई आर्थिक नीति का एक प्रमुख उद्देश्य 'स्मिचका' (Smychka) की स्थापना करना था अर्थात् किसानो तथा औद्योगिक श्रमिको के बीच एक प्रकार की एकता या सघ का निर्माण। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए किसानो को कई रियायतें भी दी गयी। किन्तु 1923 के अन्त मे स्थिति काफी जटिल बन गई जब प्रसिद्ध कैंची सकट (scissors crisis) तथा उसके ठीक बाद 'समापन सकट' (liquidation crisis) के कारण सोवियत अर्थव्यवस्था के सम्मुख अभूतपूर्व परिस्थितियाँ उत्पन्न हो गयी। इन परिस्थितियो ने साम्यवादी दल के भीतर ही परस्पर विरोधी पक्षो को उभारा। प्रश्न यह था कि औद्योगिक एव कृषि मूल्यो के सम्बन्ध मे क्या दृष्टिकोण अपनाया जाये ? स्मिचका (Smychka) या मजदूर-किसान एकता का भविष्य इस प्रश्न के सही समाधान पर निर्भर करता था। इतना ही नही, यह कैंची सकट तब उत्पन्न हुआ था जब देश ने नई आर्थिक नीति के अन्तर्गत अपने पुनरुद्धार के लिए एक आर्थिक कार्यक्रम आरम्भ किया ही था।

मॉरिस डॉब ने कैंची सकट का बडे विस्तार मे विश्लेषण किया है। रूसी अर्थव्यवस्था पर लिखने वाले कई अन्य लेखकों ने भी इस विचित्र आर्थिक घटना पर अपना ध्यान केन्द्रित किया है। वैसे देखा जाये तो कैंची (scissors) की घटना तथा उससे पैदा होने वाला सकट अपने आप मे काफी सीधी-सादी चीज थे लेकिन इसके कारणों तथा परिणामो ने उसे काफी जटिल बना दिया था। 1922 के मध्य के बाद, जबकि औद्योगिक व कृषि पदार्थों के मूल्य लगभग 1913 से पूर्व के आनुपातिक स्तर पर मिल गये थे, दो परस्पर विरोधी प्रवृत्तियाँ विकसित होने लगी। जहाँ एक ओर कृषि पदार्थो के मूल्य गिरे वही दूसरी ओर निर्मित वस्तुओ (manufactured goods) के मूल्य चढते चले गये। और इन दोनो मूल्य स्तरो के बीच अन्तर बढता चला गया—अर्थात् कैंची के दोनो फलक (the two blades of the scissors) अधिक से अधिक खुलते रहे। जब कैंची के ये दोनो फलक एक दूसरे से सबसे अधिक दूरी पर थे तब केन्द्रीय साख्यिकी कार्यालय का थोक मूल्य निर्देशांक कृषिगत पदार्थों के लिए 89 तथा औद्योगिक वस्तुओ के लिए 276 था (1913=100)। यथार्थ मे स्थिति कृषि पदार्थों के लिए और अधिक प्रतिकूल थी। थोक व खुदरा कृषि मूल्यो के बीच भी भारी अन्तर था तथा खुदरा औद्योगिक वस्तुओ के मूल्य और भी ऊँचे थे।

औद्योगिक एव कृषि पदार्थो के लिए मूल्य निर्देशाक (1913=100)

वर्ष	कृषि पदार्थ	औद्योगिक वस्तुऐं
जनवरी 1922	104	92
अप्रैल 1922	109	82
अगस्त 1922	100 5	99
सितम्बर 1922	94	112
फरवरी 1923	[redacted] 8	276

कैंची सकट ने 1923 मे ही एक अन्य सकट को जन्म दिया जिसे 'बिक्री सकट' के नाम से जाना गया। किसानो को एक बार पुन यह महसूस होने लगा कि उन्हे उनकी चीजो का सही मूल्य नही मिल रहा है। उन्होने इस स्थिति का डटकर मुकाबला किया। उन्होने निर्मित माल अर्थात औद्योगिक वस्तुओ की खरीद ही बन्द कर दी। ये औद्योगिक वस्तुऐं किसानो के लिए आवश्यक भी नही थी इसलिए उनके लिए इनकी माँग काफी लोचदार थी। किसान इन चीजो के स्थानीय कारीगरो या कुटीर उद्योगो पर निर्भर कर सकते थे। वे अपनी कृषिगत वस्तुओं को औद्योगिक वस्तुओं के बदले बेचने के लिए तभी राजी थे जब उन्हे उनकी वस्तुओ का सही मूल्य दिया जाता। इस सन्दर्भ मे शहरी जनसख्या की, जोकि ये सारी निर्मित चीजें तैयार करती थी, स्थिति अपेक्षाकृत अधिक खराब थी। ऐसा इसलिए था कि जब तक किसान, अपनी वस्तुओं के बदले निर्मित माल नही खरीदते तब तक शहरी लोगो के लिए खाद्य पदार्थ कहाँ से आते? इसलिए स्थिति और भी जटिल बन गई।

औद्योगिक वस्तुओ के मूल्य चढने के कारण

(i) ऊपर के खर्च ऊँचे होना (Higher overhead expenses)—नई आर्थिक नीति के प्रारम्भिक कार्यकाल मे उद्योगो ने अपना उत्पादन बढाना आरम्भ किया ही था और वे अपनी उत्पादन क्षमता का पूरा उपयोग नही कर पाये थे। इससे स्वाभाविक रूप से उनकी चीजो पर ऊपरी लागत काफी ऊँची पडती थी।

(ii) ढीला सगठन—उत्पादन का सगठन बडे ढीले तरीके से किया जाता था तथा प्रशासन अकुशल एव खर्चीला दोनो ही था। इसमे औद्योगिक वस्तुओ की उत्पादन लागत और भी बढ गई थी।

(iii) ट्रस्टो द्वारा मुनाफाखोरी—औद्योगिक ट्रस्ट (जो नई आर्थिक नीति के अन्तर्गत बनाये गये थे अपनी कार्यशील पूँजी बढाने की जल्दी मे लाभ बढाकर उसे पाने की चेष्टा करने लगे थे।

(iv) ट्रस्टों का एकाधिकार—विदेशी प्रतिस्पर्द्धा के समाप्त कर दिये जाने से सोवियत औद्योगिक ट्रस्टो को एकाधिकारिक स्थिति प्राप्त हो गयी जिसके परिणामस्वरूप वे मूल्यो को मनमाने ढग से ऊँचा रख रहे थे।

(v) सग्रह—राज्य द्वारा दी जा रही साख सुविधा ने इन ट्रस्टो को अपनी

चीजो का भण्डार रखने की स्थिति मे ला दिया। वे अपनी चीजें फसल कटने के समय बेचते जब किसानो की सौदेबाजी की शक्ति सबसे कम होती। उधर खुदरा व्यापार मे लाभ की दर अभी भी काफी ऊँची थी क्योंकि वह मुख्य रूप से निजी व्यवसायियो (Nepmen) के हाथो मे था।

कृषि पदार्थों के मूल्य मे गिरावट के कारण

(i) **तेजी से पुनरुद्धार**—कृषि उत्पादन का औद्योगिक उत्पादन की तुलना मे बहुत तेजी से पुनरुद्धार हो गया था क्योकि गृह-युद्ध के दौरान व उससे पहले भी कृषि की बहुत कम आधारभूत पूंजी ही नष्ट हुई थी।

(ii) **अपरिवर्तित सगठन**—भूमि का राष्ट्रीयकरण कर दिये जाने के बाद भी कृषि मे कोई परिवर्तन नही आया। कृषि उत्पादन का सगठन भी अप्रभावित ही रहा।

(iii) **वस्तुओ के रूप मे कर**—वस्तुओ के रूप मे किसानो से वसूल किये जाने वाले कृषि-कर से शहरी जनसख्या को खाद्य-पूर्ति का एक आधार (cushion) तो मिल ही जाता था और किसान उनके पास शेष रहने वाले अतिरेक पर अपनी इच्छानुसार मूल्य नही ले पाते थे।

(iv) **व्यक्तिगत बिक्री**—किसान तो अपना उत्पादन व्यक्तिगत रूप मे ही बेचते थे जबकि उसे खरीदने वाली सस्थाएँ, जैसे सहकारियां, बडी सस्थाएँ होती थी।

(v) **सतृप्त (Saturated) बाजार**—कृषि पदार्थों का निर्यात बहुत धीरे बढा तथा इन वस्तुओं के लिए आन्तरिक बाजार पहले ही बहुत सतृप्त हो चुका था।

(vi) **मुद्रा की आवश्यकता**—खेतो पर काम आने वाले औजार इतने पुराने पड चुके थे कि उन्हे बदलने की आवश्यकता थी। इसका परिणाम यह हुआ कि इन निर्मित उपकरणो को खरीदने के लिए किसानो को नकद रूप मे मुद्रा की बहुत तीव्र आवश्यकता पडने लगी।

(vii) **कम अवसर**—अभावग्रस्त निर्मित वस्तुओ को खरीद पाने के किसानों के पास कम अवसर थे। सहकारियो आदि का जाल भी शहरो मे ही अधिक केन्द्रित था।

इस तरह यही ऊँची औद्योगिक कीमतो तथा नीची कृषि कीमतो के मिले-जुले कारण 'कैंची सकट' के मूल मे थे। इस सकट ने औद्योगिक व कृषि उत्पादन के आगे बढने मे बाधा उपस्थित की। राजनीतिक दृष्टि से देखा जाए तो इसने 'स्मिचका' (Smychka) अर्थात् किसान-मजदूर एकता को ही खतरे मे डाल दिया। कैंची के इन फलको को बन्द करना जरूरी था किन्तु प्रश्न यह था कि उन्हे बन्द किस तरह किया जाए? अगर कृषि गत पदार्थो के मूल्य बढाने का निर्णय लिया जाता तो उसका परिणाम यह होता कि औद्योगिक श्रमिको की वास्तविक मजदूरी घट जाती। या, दूसरे अर्थ मे निर्मित वस्तुओं की निर्माण-लागत और बढ जाती क्योंकि उसमे औद्योगिक मजदूरो को दिये जाने वाले वृद्धिगत वेतन भुगतानो को और जोड देना पडता। इससे पूंजी सचय की दर मे भी कमी आ जाने का खतरा था जोकि उद्योग

के पुनर्निर्माण के लिए अत्यावश्यक थी। इसके अतिरिक्त इससे कृषिगत पदार्थों के निर्यात की सम्भावनाएँ कम हो सकती थीं जिससे अत्यावश्यक मशीनरी के आयात को घटाना पड़ता। कृषि मूल्यो को बढाने की बात मे एक राजनीतिक मुद्दा भी अटका पड़ा था क्योंकि इस प्रकार की मूल्य-वृद्धि का लाभ सम्पन्न किसानों (Kulaks) को ही होने की सम्भावना थी क्योंकि बाजार मे लाने योग्य अतिरिक्त अनाज केवल उन्हीं के पास था। दूसरी ओर औद्योगिक वस्तुओं के मूल्यो मे कमी से पूँजी सचय की दर घटने की सम्भावना थी जिससे उद्योगों का पुनरुद्धार होने मे बाधा आ सकती थी।

खुदरा व्यापार मे निजी व्यावसायियो की उपस्थिति एक अन्य समस्या थी। औद्योगिक वस्तुओं के मूल्य मे की जाने वाली कोई भी कटौती इन खुदरा निजी व्यापारियो के माध्यम से ही हो सकती थी। इस प्रकार औद्योगिक वस्तुओं के थोक मूल्य मे कटौती करना, और वह भी बिना इस बात की गारण्टी के कि वह कभी खुदरा मूल्यो को भी कम कर सकेगी। निजी व्यापारियों की लाभशीलता को ही बढाने का काम होता जोकि सरकार की नीतियों के विरुद्ध होता। इसके अतिरिक्त तत्कालीन परिस्थितियो मे एकदम से निजी व्यापारियों की जगह सहकारियो या राजकीय निगमो का जाल बिछा देना भी सम्भव नहीं था। इन सभी बातो को देखते हुए पार्टी उद्योग व कृषि के सम्बन्धो, कुलकों (Kulaks) के भाग्य, निजी पूँजी के मामले, उद्योग का विकास करने की सम्भावना, तथा समाजवाद की स्थापना को लेकर आपस मे ही बँटी हुई थी। यह सारा कार्य बिना बाह्य सहायता के किया जाना था।

तेरहवी पार्टी काग्रेस, जो 1924 मे हुई, ने इस बारे मे निम्न मत व्यक्त किया—

(i) निजी व्यापार के विकास पर सहकारी व राजकीय व्यापार को और अधिक मजबूत बनाकर नियन्त्रण लगाया जाना चाहिए।

(ii) कैंची के फलको को औद्योगिक वस्तुओं का मूल्य कम कर बन्द किया जाना चाहिए। इसके अतिरिक्त थोक व खुदरा मूल्यों के बीच के भारी अन्तर को कम करके, मूल्यों पर अधिक कड़ा नियमन करके, तथा कृषि पदार्थों के सरकारी मूल्य बढाकर भी इस कैंची सकट को दूर किया जाना चाहिए।

(iii) व्यापार के सामान्य नियोजन के वर्तमान तत्त्वो को सिंडिकेटो (industrial syndicates) व सहकारियो के बीच अनुबन्धो के द्वारा सुदृढ बनाया चाहिए। कृषि पदार्थों के वितरण का कार्य और भी अधिक सहकारियो व राजकीय सस्थाओं के हाथों म केन्द्रित किया जाना चाहिए तथा निजी व्यापारियो को कृषिगत वस्तुओं का व्यवसाय करने से निकाल बाहर कर देना चाहिए। बाद मे निर्मित वस्तुओं के व्यापार से भी निजी व्यापारियो को बाहर निकाल दिया जाना चाहिए।

कैंची सकट व बिक्री सकट (scissors and sales crisis) को हल करने के उद्देश्य मे सरकार ने औद्योगिक वस्तुओं के मूल्य कम करने हेतु तीन उपाय किये—

(i) उद्योगो को दी जाने वाली बैंक साख मे काफी कटौती कर दी गई। इस

उपाय ने औद्योगिक ट्रस्टो व व्यावसायिक सिंडिकेटो को उनकी जमा वस्तुओ को बेचने के लिए बाध्य कर दिया।

(ii) आन्तरिक व्यापार समिति गठित की गई जिसका उद्देश्य अधिकतम बिक्री मूल्य तय करना था।

(iii) कुछ मामलो मे वस्तु हस्तक्षेप (goods intervention) की नीति अपनायी गई। इस नीति के अन्तर्गत कुछ कम मूल्य वाली वस्तुओ का विदेशो से आयात किया गया ताकि औद्योगिक सिंडिकेटो पर दबाव डाला जा सके।

निर्मित माल की उत्पादन लागत घटाने के भी उपाय किये गये। कई महत्त्वपूर्ण कारखानो मे उनकी स्थापित क्षमता से काफी कम काम हो रहा था। उन कारखानो का उत्पादन बढाया गया तथा उत्पादन अधिक कार्य-कुशल कारखानो मे केन्द्रित किया गया। इन उपायो से काफी सफलता मिली और 1924 तक औद्योगिक लागतो मे 20 प्रतिशत की गिरावट आयी। कैंची के फलक बन्द होने लगे। औद्योगिक एव कृषि मूल्यो के बीच अनुपात जोकि सितम्बर 1923 में 3 1 तक पहुँच चुका था, अक्टूबर 1924 तक गिरकर 1 5 1 पर आ गया। औद्योगिक वस्तुओ के मूल्यो मे गिरावट के साथ औद्योगिक उत्पादन मे भी वृद्धि हुई।

पांचवां अध्याय

सामूहिक खेती व कृषि का विकास

(COLLECTIVE FARMING AND THE DEVELOPMENT OF AGRICULTURE)

जारशाही रूस ने सोवियत रूस के लिए कृषि की बड़ी कठिन विरासत छोड़ी। एक ऐसे देश मे जहां की 80 प्रतिशत जनसख्या गांवो मे रहती थी और कृषि कार्यों मे लगी हुई थी भूमि का स्वामित्व भूस्वामियो, धार्मिक मठो, जार व उसके परिवार के सदस्यो तथा कुलक (Kulaks) लोगो के हाथो मे था। भूस्वामियो के एक छोटे से समुदाय का देश की कुल भूमि के 63 प्रतिशत क्षेत्र पर अधिकार था। निम्नांकित तालिका मे 19वीं शताब्दी के अन्त में रूस मे भूमि के वितरण की स्थिति को दर्शाया गया है—

रूस मे भू-सम्पत्ति का वितरण

भू-स्वामी	मिलियन हेक्टेयर	परिवारो की सख्या, (कुल का प्रतिशत)
जमीदार, मठ तथा जार का परिवार	152	—
कृषक	80	15
गरीब व मध्यम किसान	135	85

रूस के[1] कृषक वर्ग (peasantry) मे कुलक लोगो का कुल परिवारो मे प्रतिशत 15 था, मध्यम श्रेणी के किसानो का 20 प्रतिशत तथा गरीब श्रेणी के किसान 65 प्रतिशत थे। कृषि अत्यधिक पिछड़ी हुई अवस्था मे थी, कमर तोड़ देने वाला शारीरिक काम प्रचलित था तथा खेती करने के तरीके भी आदिम व पुरातन-पंथी थे। कृषि-दास प्रथा (serfdom) अभी भी विद्यमान थी और निर्धनता का अखड साम्राज्य था। अक्टूबर 1917 की लाल क्रान्ति होने तक ऐसी ही स्थिति थी।

सोवियत सरकार का पहला कदम, जैसा कि हम देख चुके हैं भूमि पर एक आदेश (decree) जारी करना था जिससे समस्त भूमि का राष्ट्रीयकरण कर दिया गया। इस आदेश मे घोषणा की गई कि 'आज के बाद भूमि बेचने, खरीदने, लीज (lease) पर उठाने, रहन रखने या उसका किसी भी तरह से अलगाव (alienation) करने की मनाही होगी।' भूस्वामियो को किसी प्रकार का मुआवजा नही दिया गया।

[1] G M Papov, *The Soviet Planned Economy* (Compiled), 1974 50-75

भूमि सरकारी सम्पत्ति बन गई तथा उसे उपयोग के लिए मुफ्त में किसानो को सौंप दिया गया। इस तरह किसानो को लगभग 150 मिलियन हैक्टेयर भूमि कृषि कार्यों के लिए प्राप्त हुई। किसानो पर जो 1500 मिलियन रूबल के ऋण थे उन्हे भी समाप्त घोषित कर दिया। लेनिन ने लिखा, 'सर्वहारा वर्ग के अधिनायकवाद के अन्तर्गत पहली बार किसान स्वय अपने लिए काम कर रहा है तथा अपना निर्वाह शहरो मे रहने वालो से भी ज्यादा अच्छी तरह कर रहा है। किसान ने पहली बार वास्तविक स्वतन्त्रता के दर्शन किये है—उसकी अपनी रोटी खा सकने की स्वतन्त्रता, भूख से स्वतन्त्रता।'

लेनिन की सहकारिता योजना

लेकिन इन भूमि-सुधारो से कृषि की कम उत्पादकता तथा बाजार के लिए बहुत छोटे पैमाने पर उत्पादन जैसी समस्याओ के कारण दूर नही हो गये थे। ऐसा इसलिये हुआ कि कृषि-क्षेत्र अभी भी बिखरा हुआ था तथा उसका स्वामित्व व उस पर कार्य करने का अधिकार निजी व्यक्तियो के हाथ मे ही था। निम्न प्रकार के खेत उस समय की कृषि मे विद्यमान थे—(1) छोटे पैमाने के वस्तु एव जीवन-निर्वाह कृषक फार्म, (2) मध्यवर्गीय कृषक फार्म तथा बड़े कुलक फार्म जिनमे बाजार के लिए काफी मात्रा मे उत्पादन होता था, तथा (3) राजकीय फार्म व कम्यून (communes) जिन्हें बड़ी भू-जागीरो में से पुनर्गठित किया गया था।

मुख्य समस्या करोड़ो किसानो को जो बहुत ही छोटे कृषक थे, शोषण से बचाने की थी। इसके साथ ही उत्पादन मे भी वृद्धि करनी थी। लेनिन का विश्वास था कि किसानो को सहकारी सगठनो मे सम्मिलित करके, पहले विपणन सहकारियो व बाद मे उत्पादन सहकारियो मे, किसानो को छोटे पैमाने की व्यक्तिगत खेती से बड़े पैमाने की सामूहिक खेती की दिशा मे जाने के लिए अधिक आसानी से तैयार किया जा सकता है। इससे किसानो व मजदूरो मे मैत्री व एकता भी मजबूत हो सकेगी।

लेनिन ने पूंजीवादी तरीके के अन्तर्गत अपनायी जा रही सहकारिता तथा सोवियत व्यवस्था के अन्तर्गत अपनायी जाने वाली सहकारिता मे महत्वपूर्ण अन्तर बताया। उसने लिखा 'सर्वहारा वर्ग की राज्य सत्ता पर विजय के बाद सहकारियो (cooperatives) की स्थिति में एक आधारभूत परिवर्तन आ जाता है। यहाँ पर सख्या के स्थान पर गुणात्मक पहलू पर अधिक जोर दिया जाता है। सहकारी सस्था जो पूंजीवादी समाज मे एक लघुकाय द्वीप है, छोटी-सी दुकान की तरह होती है। वही सहकारी सस्था, जब वह सारे समाज को अपनी बाहो मे ले लेती है, जिसमे भूमि का समाजीकरण तथा कारखानो का राष्ट्रीयकरण कर दिया जाता है, समाजवाद कहलाती है।'

सामूहिकीकरण (Collectivisation)

नई आर्थिक नीति के कार्यकाल मे किसानो को दी गई वित्तीय एव सगठनात्मक सहायता से 1928 तक उनकी भौतिक दशाओ मे सुधार होने की दृष्टि से काफी

अच्छे परिणाम निकले थे। निर्धन कहे जाने वाले किसानो की संख्या घटकर 35 प्रतिशत रह गई थी जबकि मध्यम वर्ग के किसान परिवार बढ़कर 60 प्रतिशत हो गये थे। कृषि में सहकारिता का भी विकास साथ ही साथ हो रहा था। यह आंशिक रूप से स्वेच्छापूर्वक था तथा आंशिक रूप से पार्टी के दबाव से हुआ था। सामूहिक खेत (collective farms) तथा राजकीय खेत (state farms) कृषि उत्पादन की आपूर्ति मे महत्वपूर्ण भूमिका निभाना प्रारम्भ कर चुके थे। साथ ही ट्रैक्टर तथा अन्य कृषि उपकरणो का उत्पादन करने वाले आधुनिक उद्योग भी बड़ी तेजी से निर्मित किये जा रहे थे। राज्य मशीन एवं ट्रैक्टर स्टेशन (Machine Tractor Stations) जिन्हें 1928 मे गठित किया गया था, सामूहिक फार्म व्यवस्था को सुदृढ बनाने मे सहायक हो रहे थे। एक लम्बे समय तक उन्होंने सामूहिक फार्मों को उत्पादन सम्बन्धी व अन्य तकनीकी सेवाएँ प्रदान की। उन्होंने ग्रामीण क्षेत्रो मे नये औद्योगिक तरीको को ले आने मे भी सहायता की।

कृषि क्षेत्र मे हुए इन स्वस्थ परम्पराओं के विकास के बावजूद सोवियत सरकार ने सर्दी के मौसम की 1928 की बुवाई तथा 1929 की वसन्त ऋतु की बुवाई के समय यह देखा कि सम्पन्न किसान कृषि उत्पादन मे कटौती करने की अपनी नीति को जारी रख रहे हैं। यह स्पष्ट हो गया कि बिना कुछ आपत्कालीन कदम उठाये कृषि के वांछित उत्पादन भण्डार प्राप्त कर पाना सम्भव नहीं होगा। इस दृष्टि से, 1929 की गर्मी मे, बड़े पैमाने की सामूहिक खेती (large-scale collective farming) शुरू करके कुलक लोगों के प्रतिरोध को समाप्त करने का निश्चय किया गया। यह तय किया गया कि अब 'कुलक लोगो की शोषण परस्त गतिविधियों पर नियन्त्रण लगाने की नीतियो के स्थान पर कुलक वर्ग का खात्मा कर देने की नीति अपनाने की आवश्यकता है।' इस नीति सम्बन्धी परिवर्तन को, जिसमे समृद्ध कृषको (Kulaks) को समाप्त किया जाना था, कृषि के क्षेत्र मे दूसरी महान कृषि-क्रान्ति कहा गया। 1918 मे जमीन का निजी स्वामित्व समाप्त किया ही जा चुका था हालांकि कृषि व्यक्तिगत खेती के सिद्धान्त के आधार पर ही चलती रही थी। अब धनी-मानी कृषकों को नष्ट करने का निर्णय कर लिया।

इस प्रकार 1929–30 तक राष्ट्रव्यापी सामूहिकीकरण करने के लिए आवश्यक सभी राजनीतिक एवं आर्थिक पूर्व-शर्तें पूरी की जा चुकी थी। 1929 से 1935 के बीच सम्पूर्ण रूसी कृषक समुदाय को सामूहिक खेतो के अन्तर्गत ले जाया गया। लाखो-करोड़ो छोटे-छोटे व्यक्तिगत कृषक परिवारो के खेतो के स्थान पर सोवियत यूनियन मे 2,43,500 सामूहिक फार्म बना दिये गये। राजकीय फार्मों की संख्या भी 4,000 तक पहुँच गई।

इस तरह थोक-भाव मे जो सामूहिकीकरण हुआ उसमे एक ओर तो सरकारी उपायो का दबाव रहा तथा दूसरी तरफ कृषक समुदाय द्वारा कुछ स्वेच्छापूर्वक किये गये प्रयास भी इस दिशा मे सामने आये। सरकार ने समृद्ध कृषकों या कुलक लोगो के खात्मे के लिए निम्न उपाय किये—

(1) पार्टी संगठन को सामूहिकीकरण आन्दोलन मे भाग लेकर सामूहिक

खेत (Kolkhoz) निर्धन के निर्माण मे सहायता करने के निर्देश दिये गये। गरीब किसानो को संगठित करने को विशेष महत्त्व दिया गया।

(2) ट्रेड यूनियनो को भी कोलखोज आन्दोलन मे सक्रिय रूप से भाग लेने को कहा गया।

(3) एक ऑल यूनियन सेंटर ऑफ मशीन ट्रेक्टर स्टेशन गठित किया गया तथा इन मशीन ट्रेक्टर स्टेशनो (M T S) को हर जिले मे सामूहिकीकरण की स्थापना मे अग्रणी रहने की भूमिका सौंपी गई।

(4) ट्रेक्टर व अन्य कृषि मशीनें तैयार करने वाले उद्योगो का तेजी से विकास करने का कार्यक्रम बनाया गया।

(5) एक कृषि कमिसारयत (Commissariat of Agriculture) स्थापित की गई जिसका काम बड़े राजकीय फार्मों, सामूहिक फार्मों तथा मशीन ट्रेक्टर स्टेशनो के बीच समन्वय स्थापित करना था।

(6) यह आदेश जारी किया गया कि सामूहिक फार्मों का मूल स्वरूप कृषि आर्टेल (Artel) का होगा जिसमें हर चीज का समाजीकरण किया जायेगा।

सरकार द्वारा घोषित इन उपायो के बावजूद सामूहिकीकरण (collectivisation) ने किसानो के ही बीच भारी झगडों व सघर्षों की स्थिति पैदा कर दी। कुलको तथा निर्धन किसानो दोनो ही के द्वारा हत्याएँ, लूट-पाट व आगजनी की घटनाएँ की गयी। इस तरह सामूहिकीकरण के इस तूफानी दौर ने, जिसमे स्थानीय अधिकारीगणो तथा अति उत्साही किसानो द्वारा कई ज्यादतियाँ भी की गई राष्ट्र-व्यापी सामूहिकीकरण के प्रथम चरण मे कृषि उत्पादन के विकास पर विपरीत प्रभाव डाला। सबसे महत्त्वपूर्ण हुए दुष्प्रभाव पशुओ की सख्या घट जाने तथा अनाज के उत्पादन मे कमी हो जाने के रूप मे परिलक्षित हुए जो 1933 तक चलते रहे।

पुन एक बार सरकार ने अनेक ऐसे उपाय किये कि जिनसे उस समय सामूहिक फार्मों के सामने आ रही कठिनाइयो को दूर किया जा सकता। खेती के मौसम मे काम की गति तथा उसके गुणात्मक पहलू पर कडा निरीक्षण लागू कर दिया गया। जटिल कृषि मशीनो को सामूहिक फार्मों से हटा दिया गया तथा उन्हे मशीन ट्रेक्टर स्टेशनो पर रख दिया गया। भू-धारण अधिकारो को स्थायित्व प्रदान करने तथा बहुत विशाल सामूहिक फार्मों को छोटी इकाइयो मे विभक्त करने सम्बन्धी उपाय भी किये गये। सामूहिक कृषको (collective farmers) के कुछ विशिष्ट समूहों पर कुछ विशिष्ट काम पूरा करने का उत्तरदायित्व सौप दिया गया।

धीरे-धीरे पारिश्रमिक देने मे किसानो के काम व दक्षता को भी मान्यता दी गई। राज्य वसूली का तरीका भी 1933 मे बदला गया। सामूहिक फार्मों पर राज्य को प्रति हैक्टेयर एक पूर्व निश्चित मात्रा मे अनाज देने की व्यवस्था लागू की गयी। 1933 मे ही सामूहिक फार्मों को व्यापार करने की भी कानूनी स्वीकृति दे दी गई। इसके अलावा सामूहिक फार्मों, उनके सदस्यो तथा व्यक्तिगत कृषको द्वारा व्यापार 'बाजार मे प्रचलित मूल्यो' पर किया जा सकता था। इस उपाय से यह प्रत्याशा की गई थी कि कोलखोज (collective farm) पर कार्यरत किसानो को आर्थिक पहल करने मे

प्रेरणा मिल सकेगी तथा 'शहरी आबादी के लिए कृषि पदार्थों की आपूर्ति का एक अतिरिक्त स्रोत' खुल जायेगा। फरवरी 1933 मे स्टालिन ने एक नारे का उद्घोष किया—'सभी सामूहिक खेतीहरो को समृद्ध बनाओ।'

प्रत्येक सामूहिक कृषक[1] (collective farmer) तथा बाद मे कृषि मजदूरो को दिये गये इस अधिकार ने, कि वे अपने छोटे से टुकडे पर अलग से खेती कर सकते थे, कृषक परिवारो की दैनिक आवश्यकताओ को पूरा करने की समस्या हल कर दी। इस रियायत का कई सामूहिक कृषको द्वारा दुरुपयोग किया गया व उन्होंने सामूहिक खेत पर काम करने की अपेक्षा अपने टुकडो पर अधिक समय देने की चेष्टा की। उन्होंने कोलखोज पर होने वाले उत्पादन मे भी अधिक से अधिक हिस्सा मार लेने की भी चेष्टा की। कोलखोज की फसल की चोरी तथा उसकी सम्पत्ति की भी चोरियाँ सामान्य बात हो गई थी।

सामूहिक खेतो की कार्य प्रणाली मे 1933–35 के बीच भारी परिवर्तन किये गये। सामूहिक खेतो के नेतृत्व व नियन्त्रण को सुदृढ बनाने की दृष्टि से विशेष राजनीतिक टुकडियाँ भेजी गयी। कोलखोज की सम्पत्ति की सुरक्षा के कडे प्रबन्ध किये गये। कृषि कार्य मे बाधा डालने पर कडी सजा की व्यवस्था की गई तथा सामूहिक खेत के काम की चोरी पर भी दण्ड की व्यवस्था की गई। फसलो की समय पर बुवाई व कटाई कराने के लिए भी कडे उपाय किये गये।

इन सभी उपायो से कृषि उत्पादन मे काफी वृद्धि हो गई। सक्षेप मे, सामूहिक खेतो पर ईमानदारी से काम के आधार पर कृषि उत्पादन के विकास की दशाएँ पैदा की गयी। 1933 के बाद कृषि उत्पादन लगातार बढता रहा। इस वृद्धि के परिणाम-स्वरूप 1935 मे कृषि पदार्थो पर लगी हुई राशनिंग व्यवस्था हटा ली गई।

सामूहिक खेतो से लाभ

(1) सामूहिकीकरण ने कृषि उत्पादन को आधुनिक वैज्ञानिक एव तकनीकी आधार पर सम्भव बनाया तथा कई अन्य ग्रामीण समस्याओ के सफलतापूर्वक समाधान मे सहायता की।

(2) राजनीतिक दृष्टि से देखा जाये तो सामूहिक फार्म प्रणाली ने सोवियत राज्य को शक्तिशाली बनाया। उन्होंने मजदूरो व किसानो के बीच मैत्री व एकता को भी मजबूत किया तथा किसानो द्वारा अपने मामले स्वय निपटाने के लिए परिस्थितियाँ पैदा की।

(3) आर्थिक दृष्टि से सामूहिक खेती व्यवस्था ने बडे पैमाने के उत्पादन के लाभ को सोवियत कृषि की पहुँच के भीतर ला दिया।

(4) सामाजिक दृष्टि से सामूहिक फार्म व्यवस्था ने किसानो को निर्धनता व शोषण से मुक्त करवाने मे सहायता की। इसने ग्रामीण अचलो मे एक नये वर्गहीन समाज की स्थापना करने मे भी सहायता की। इसी का एक परिणाम यह भी हुआ कि गाँवो मे शिक्षको, शस्य वैज्ञानिको (agronomists), पशु चिकित्सको व इन्जीनियरो जैसे

[1] Baykov, *op cit*, 209

बुद्धिजीवियों का एक वर्ग तैयार हो गया। 1940 में ऐसे लोगों की संख्या सामूहिक व राजकीय फार्मों पर कुल मिला कर 15 लाख हो चुकी थी।

सामूहिक खेतों का पुनर्गठन

1938 में कुछ नये कानून लाये गये जो सामूहिक फार्मों का संविधान बने तथा जिनसे सामूहिक फार्मों के आन्तरिक संगठन के नियमन का तथा सामूहिक कृषकों का उनके सामूहिक फार्मों का सदस्य होने की हैसियत से व उनकी अपनी घरेलू अर्थव्यवस्था के स्वामियों की हैसियत से प्राप्त अधिकारों के नियमन का उद्देश्य पूरा किया गया। निम्न कानून (statutes) सर्वाधिक महत्व के रहे—

(1) कोलखोज भू-धारण (kolkhoz tenure) को अन्तिम रूप से तय कर दिया गया। इस सम्बन्ध में लाये गये विधेयक में कहा गया 'आर्टेल (artel) के अधिकार-क्षेत्र वाली भूमि जनता व राज्य की सम्पत्ति है। उसे स्थायी उपयोग के लिए आर्टेल को दे दिया गया है अर्थात् हमेशा के लिए और इसे न खरीदा जा सकता है न बेचा जा सकता है और न ही आर्टेल द्वारा लीज (lease) पर उठाया जा सकता है।

(2) व्यक्तिगत भू आवंटनों पर सीमा लगा दी गई। व्यक्तिगत सामूहिक कृषक के निजी स्वामित्व व उपयोग वाली भूमि ¼ से ½ हैक्टेयर व कुछ जगहों पर 1 हैक्टेयर तक रखी गई।

(3) सामूहिक कृषि किसानों द्वारा निजी तौर पर पशुओं के रखने पर भी सीमा लगा दी गई। यह संख्या 1 गाय 10 भेड़ों व बकरियों तथा कुछ घोड़ों या ऊँटों पर लगाई गई। इन जानवरों को रखने के लिए काम में ली जाने वाली जगहों का समाजीकरण नहीं किया गया।

(4) पिछले कानूनों के विपरीत अब सामूहिक फार्मों पर, कुलक लोगों के बच्चों व अन्य लोग जिनका मताधिकार छीन लिया गया था, आने की अनुमति दे दी गई।

(5) सामूहिक फार्मों के प्रबन्धकों द्वारा फार्म के सदस्यों को मनमाने तरीके से निकाल देने पर प्रतिबन्ध लगाये गये।

(6) नये कानून में कोलखोज के प्रबन्धकों के अधिकारों व कर्त्तव्यों का स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया। उसका कार्यकाल भी 1 वर्ष से बढ़ाकर 2 वर्ष कर दिया गया।

(7) अन्त में, कानूनों में इस बात पर बल दिया गया कि 'आर्टेल इस बात का उत्तरदायित्व लेता है कि वह सामूहिक खेतों को सरकार द्वारा स्थापित योजना एवं आर्टेल के राज्य के प्रति दायित्वों के अनुसार चलायेगा।'

कुल मिला कर किसी न किसी रूप में सामूहिक फार्म के उत्पादन में अनाज उत्पादन के बाजारी अतिरेक का 90 प्रतिशत भाग राज्य के हाथों में पहुँचता था। इससे राज्य अधिकांश अनाजों के मूल्य पर नियन्त्रण रख सकता था। ऐसे जिले जहाँ पर सामूहिक कृषकों को आवंटित करने के लिए भूमि उपलब्ध नहीं थी वहाँ से उन्हें

सामूहिक खेत के उत्पादन का वितरण (1938)

	कुल उत्पादन के प्रतिशत के रूप मे
निश्चित मूल्य पर अनिवार्य राजकोष वसूली	15
राज्य को मशीन ट्रेक्टर स्टेशनों के काम के लिए भुगतान	16
राजकीय वसूली एजेंसियो को बिक्री	5 1
बीज की राजकीय संस्थाओ को वापसी	2
बीज कोष को आवटन	18 6
पशु आहार कोष को आवटन	13 6
सामूहिक कृषको को शुल्क	26 9
अन्य आबटन	2 8

ऐसे जिलो मे स्थानान्तरित करने का सुझाव दिया गया जहाँ भूमि प्रचुर मात्रा मे उपलब्ध थी। सामूहिकीकरण के प्रारम्भिक वर्षों में कोलखोज उत्पादन के प्रयासो का मुख्य जोर अनाज के उत्पादन मे वृद्धि करने पर था। पशु-पालन आदि कार्यक्रम 1934 के बाद मे प्रारम्भ किये गये थे।

सामूहिक खेती प्रणाली ने सोवियत कृषि के विकास मे महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। यह प्रयोग समय की कसौटी पर भी खरा उतरा। द्वितीय विश्व-युद्ध के दौरान जर्मन आक्रामक सेनाओ ने रूसी कृषि को काफी हानि पहुँचाई थी। उन्होने 70,000 गाँवो को नष्ट कर दिया था। वे लोग या तो 1,37,000 ट्रेक्टर ले गये या उन्हे नष्ट कर डाला। यही स्थिति 49,000 फसल कटाई यन्त्रो (harvesters) की भी की गई। इस तरह सामूहिक खेतो को द्वितीय विश्व-युद्ध मे कुल मिलाकर 1,81,000 मिलियन रूबल की हानि उठानी पडी।

युद्ध समाप्त होने के बाद, उनको हुई भारी क्षति के बावजूद, सामूहिक व राजकीय फार्म बहुत जल्दी ही पुरानी स्थिति मे पहुँच गये। आज सोवियत रूस मे लगभग 30,000 सामूहिक खेत है जिनमे 14 मिलियन कृषक परिवार लगे हुए है।

आधुनिक सामूहिक फार्म

अपने अस्तित्व के इन 50 वर्षों मे सामूहिक खेतो को अनेक परिवर्तन देखने पडे है। उनकी वर्तमान स्थिति निम्नांकित तालिका से स्पष्ट होती है—

सामूहिक फार्मों के मुख्य आर्थिक सूचक

	नाप की इकाई	1965	1973
1 सामूहिक खेतो की संख्या	हजारों मे	36 9	31 5*
2 श्रमिकों (सदस्य) की औसत संख्या	मिलियन मे	18 6	13 9
3 अवितरणीय परिसम्पत	हजार मि० रूबल	42 3	74 3
4 कुल वार्षिक आय	,,	17 9	24 0

* संख्या मे यह कमी विलयीकरण एवं पुनर्गठन के कारण आई है।

सामूहिक खेत कृषि पदार्थों के मुख्य उत्पादक एवं आपूर्तिकर्ता (Suppliers) बन गये है। सोवियत सरकार को इन सामूहिक फार्मों से अपनी कुल वसूली का 51 प्रतिशत अनाज, 76 प्रतिशत कपास, 92 प्रतिशत चुकन्दर, 38 प्रतिशत सब्जियाँ, 50 प्रतिशत मास तथा 42 प्रतिशत ऊन प्राप्त हो रही है।

इन आधुनिक सामूहिक फार्मों के पास भारी सख्या मे मशीनें है जिनमे उनके 10 लाख ट्रेक्टर, 3 लाख से अधिक हारवेस्टर तथा 5 लाख ट्रके शामिल हैं। राज्य भी सामूहिक फार्मो को भारी मात्रा मे अनुदान आदि देता है। उदाहरण के लिए, 1974 मे सामूहिक फार्मों को दीर्घकालीन राजकीय ऋणों के रूप में 3,200 मिलियन रूबल स्वीकृत किये गये थे।

1966 से 1970 के मध्य सामूहिक कृषको की वास्तविक आय मे 42 प्रतिशत की वृद्धि होने का दावा किया गया था। चेप्येव सामूहिक फार्म (Chapayev collective farm)[1], जो दक्षिणी रूस के रोस्टोव क्षेत्र का एक विशिष्ट फार्म है, का उत्पादन 1970 के 3,760 रूबल के प्रति व्यक्ति स्तर से बढकर 6,220 रूबल हो चुका है।

1969 मे सामूहिक फार्मों के लिए नये आदर्श नियम स्वीकार किये गये। इन नियमो ने सामूहिक फार्मों के भीतर लोकतन्त्र, आर्थिक स्वतन्त्रता व पहल की भावना को काफी प्रोत्साहित किया है। इन नियमो द्वारा फलो व सब्जियो के उत्पादन हेतु सहायक सामूहिक फार्मों की स्थापना करने को भी प्रोत्साहन दिया गया है। इन्ही नियमो के अन्तर्गत 1970 मे एक नई सामाजिक सुरक्षा बीमा योजना भी लागू की गई थी। इस योजना के अन्तर्गत 12 मिलियन सामूहिक कृषको को वृद्धावस्था पेंशन दी जा रही है। ये सामूहिक कृषक 60 वर्ष की आयु में सेवा निवृत्त होते हैं।

सामूहिक फार्मो के मुख्य सिद्धान्तो व सगठनात्मक स्वरूपो को फिर से बनाया गया है। एक सामूहिक फार्म अब एक ऐसे सहकारी सगठन के रूप मे परिभाषित किया गया है जिसमें कृषक उत्पादन के साधनो के सामाजिक स्वामित्व के सिद्धान्त के आधार पर स्वेच्छा से बडे पैमाने की समाजवादी खेती के लिए एक होकर काम करते हैं। ऐसे नागरिक जिनकी आयु 16 वर्ष हो चुकी हो इसके सदस्य बनते है। एक सामूहिक फार्म की सर्वोच्च प्रशासनिक सस्था सामान्य सदस्यता सभा (general membership meeting) होती है। ये सभाएँ साल मे चार बार बुलाई जाती हैं। इन सामान्य सभाओं म चेयरमेन तथा बोर्ड के सदस्यो का चुनाव किया जाता है जो सामूहिक फार्म दैनिक कार्यों का सचालन करते हैं।

यहाँ यह भी उल्लेख करना आवश्यक होगा कि बढती हुई सख्या मे ये सामूहिक फार्म अपने स्वय के प्रक्रम प्रतिष्ठान (processing enterprises) लगा रहे है। ऐसे प्रतिष्ठानों की सख्या 1973 म 5,400 थी। एक सामूहिक फार्म सामान्य सदस्यगण सभा द्वारा स्वीकृत योजना के अनुसार चलाया जाता है। इस योजना-अनुबन्ध (plan contract) मे राज्य द्वारा सामूहिक फार्म के उत्पादन को एकरूप मूल्य (uniform price) पर खरीदने की गारण्टी होती है। कभी कभी अनाज व

[1] *USSR Yesterday, Today, Tomorrow* 1976, 23

कुछ महत्वपूर्ण औद्योगिक फसलो के उत्पादन को प्रोत्साहित करने के उद्देश्य से ऊँचे मूल्य भी निश्चित किये जाते है।

सामूहिक फार्मों मे आय के वितरण के तरीको को भी धीरे-धीरे बदला गया है तथा उसके कार्यशील सदस्यो को अधिक अभिप्रेरणाएँ देने की बातें शामिल की गई हैं। सबसे पहले फार्म के कुल उत्पादन का उपयोग प्रदाओं (inputs) के भुगतान के लिए होता है। उसके बाद एक श्रमिक पारिश्रमिक कोष बनाया जाता है। शेष भाग का उपयोग करो का भुगतान करने (12 प्रतिशत तक) तथा फार्म के परिसम्पत बढाने में किया जाता है। अब यह महसूस किया जा रहा है कि मौद्रिक अभिप्रेरणाएँ (money incentive) सामूहिक फार्मो का उत्पादन बढाने के लिए काफी महत्वपूर्ण हैं। पिछले कुछ वर्षों से सामूहिक फार्म इकाई-दर (piece-rate), काम के हिसाब से भुगतान (payment-by-the-job), समय-दर (time-rate) तथा समय-दर + बोनस (time-rate plus bonus system) प्रणाली के आधार पर भुगतान करने लगे है। अधिकाश सामूहिक फार्मो ने गारण्टीयुक्त मासिक मौद्रिक मजदूरी देना शुरू कर दिया है। उत्पादन को प्रोत्साहन देने के कारण से सामूहिक फार्मों ने अब अतिरिक्त भुगतान करना व अन्य प्रकार के भौतिक अभिप्रेरक (material incentives) देना भी आरम्भ कर दिया है।

सामूहिक कृषको को उनके अपने उपभोग तथा उनके पशुओं के आहार के लिए अनाज आदि उपलब्ध कराने हेतु फार्मों पर एक वस्तुओ के रूप मे कोष भी बनाया गया है जो उन कृषको को आशिक भुगतान वस्तुओ के रूप मे करता है। सामूहिक फार्म अपने उत्पादन का अधिकाश भाग राज्य को योजना-अनुबन्ध व्यवस्था के आधार पर ही बेचते है तथा उसम से कुछ भाग सामूहिक फार्म बाजार व शहरो मे भी बेचा जाता है। सामूहिक फार्म अपने सदस्यों को मुफ्त उपभोग के लिए (स्वामित्व के लिए नही) भूमि के 0 2 से लेकर 0 5 हेक्टेयर के टुकडे भी आवण्टित करते हैं। इन आवण्टित व्यक्तिगत भूखण्डो (private plots) पर सामूहिक कृषक अपनी निजी सम्पत्ति जैसे मकान, जानवरो का बाडा व पशु आदि रख सकते है।

राजकीय फार्म (State Farms)

सोवियत कृषि उत्पादन मे राजकीय फार्म महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। सोवियत रूस मे लगभग 17,700 राजकीय फार्म (Sovkhoz) है। उनमे लगभग 8 मिलियन लोग लगे हुए हैं तथा उनके अन्तर्गत 106 मिलियन हेक्टेयर के लगभग शुद्ध कृषित क्षेत्र आता है। राजकीय फार्म तथा सामूहिक फार्म दोनो ही काफी बडे होते हैं किन्तु सामूहिक फार्मों से राजकीय फार्मों की भिन्नता यही है कि राजकीय फार्म की सारी सम्पत्ति सरकार की होती है। सामूहिक फार्मों मे उनका स्वामित्व सदस्यो का होता है। राजकीय फार्मों पर काम करने वाले श्रमिको तथा कार्यालय कर्मचारियो को, उद्योग की ही भांति, राज्य मे बधी-बधायी मजदूरी या वेतन मिलता है। सामूहिक कृषको की आय मे फार्म से प्राप्त हिस्सा तथा निजी भू-खण्ड से प्राप्त आय सम्मिलित होते हैं।

औसतन एक राजकीय फार्म के पास 19,000 हैक्टेयर कृषि योग्य भूमि, लगभग 2,000 पशु, हजारों की संख्या में ट्रेक्टर, हार्वेस्टर, ट्रकें आदि होते हैं। वे विद्युत-शक्ति का भी व्यापक उपयोग करते हैं। राजकीय फार्म सामूहिक फार्मों से अधिक विशिष्टीकृत (specialised) भी होते हैं। उनके उत्पादन में निरन्तर वृद्धि हो रही है। 1973 में राजकीय फार्मों ने कुल अनाज उत्पादन का 49%, सब्जियों का 56%, मांस का 43%, अण्डों का 71% तथा ऊन का 46% उत्पादन किया था।

1954 से 1956 की अवधि में पूर्वी सोवियत रूस में नई भूमि (virgin land) को खेती योग्य बनाने का अभियान छेड़ा गया था। इस क्षेत्र में करीब 4,000 नये राजकीय फार्म स्थापित किये गये। करीब 42 मिलियन हैक्टेयर भूमि को कृषि योग्य बनाया गया। यह दावा किया जा रहा है कि केवल इन फार्मों से अब देश में सरकार द्वारा वसूल किये जा रहे अनाज का 25 प्रतिशत प्राप्त होता है।

राज्य ही इन राजकीय फार्मों का उत्पादन के साधन प्रदान करता है तथा अपने बजट में इनको पुन भुगतान न करने वाले कोष आबण्टित किये जाते हैं। इन फार्मों का मुनाफा राजकीय बजट में जोड़ा जाता है। 1960 के दशक के आरम्भिक वर्षों में ऐसा महसूस किया गया था कि राजकीय फार्मों का काम-काज ठीक से नहीं चल रहा है तथा उनकी उत्पादकता गिर रही है। ऐसा श्रमिकों को पर्याप्त अभिप्रेरणाएँ (incentives) न देने के कारण हो रहा था। 1965 में राजकीय फार्मों की कार्य-शैली पर पुनर्विचार किया गया। उन्हें अपना उत्पादन नियोजित करने व उसे बेचने, लाभ का उपयोग करने तथा अपने श्रमिकों को अधिक आर्थिक अभिप्रेरणाएँ दे सकने के अधिकार दिये गये।

इन राजकीय फार्मों में अब विशिष्टीकरण (specialisation) की प्रवृत्ति व्यापक बनती जा रही है। वे अब एक से लेकर तीन फसलों तक का उत्पादन करते हैं। राजकीय फार्म का प्रबन्ध एक निदेशक द्वारा किया जाता है जिसे उच्च आर्थिक सत्ता नियुक्त करती है। इसे एक-व्यक्ति संचालन (one man management) के सिद्धान्त पर चलाया जाता है। हालांकि साथ ही यह भी दावा किया जाता है कि इसके साथ संचालन में सभी श्रमिकों की व्यापक भागीदारी होती है। इन राजकीय फार्मों के चलाने में पार्टी तथा ट्रेड यूनियनें भी काफी हस्तक्षेप करती हैं।

राजकीय फार्मों की उत्पादकता में वृद्धि करने के उद्देश्य से अब श्रमिकों को अधिकतर काम की तुलना में भुगतान व बोनस मिलाकर (payment by-the-job plus bonus system) मजदूरी दी जाती है। इस प्रणाली में उत्पादन परिणाम, इसकी मात्रा व किस्म का लेखा-जोखा रखा जाता है। पिछले कुछ समय से, सामूहिक कृषकों की ही भांति, अनेकों राजकीय फार्म श्रमिकों व कर्मचारियों को थोड़ी-सी व्यक्तिगत खेती करने की अनुमति दी गई है। राजकीय फार्म पर काम करने वाले श्रमिकों की उत्पादकता में वृद्धि करने के लिए इस प्रकार की व्यवस्था आवश्यक थी।

राजकीय फार्मों को पंचवर्षीय एवं वार्षिक योजनाओं के अनुसार लक्ष्य सौंप दिये जाते हैं जिन्हें पहले तो राजकीय फार्मों पर ही बनाया जाता है तथा बाद में

उच्च कृषि अधिकारियो से स्वीकृत करवाया जाता है। जिस मूल्य पर राजकीय फार्म अपना उत्पादन सरकार को बेचते है उन्हे सोवियत सरकार ही स्वीकृत करती है।

सामूहिक फार्म व राजकीय फार्म एक-दूसरे से निकट सम्बन्ध रखते है। वे उत्पादन के सगठन मे अपने अनुभवो का आदान-प्रदान करते हैं तथा एक-दूसरे को वैज्ञानिक तरीके से प्रबन्ध करने मे सहायता भी देते है। पिछले 20 वर्षो मे कृषि मे सोवियत यूनियन के अनुभवो का पूर्वी यूरोप के अनेक समाजवादी देशो द्वारा अनुकरण किया गया है।

सोवियत कृषि का विकास

एक उच्चस्तरीय कृषि-व्यवस्था का निर्माण करना सोवियत सरकार द्वारा प्रमुख लक्ष्य माना गया था। इस उद्देश्य को ध्यान मे रखते हुए कृषि-उत्पादन का औद्योगीकरण करना सोवियत सरकार की कृषि-नीति का मुख्य लक्ष्य रहा है। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए सरकार ने सामूहिक फार्मो के साथ मिलकर कृषि मे नवी पचवर्षीय योजना के दौरान (1971–75) 1,31,000 मिलियन रूबल की राशि का विनियोग किया है। 1975 के बजट मे अकेले एक वर्ष के लिए कृषि हेतु 31,000 मिलियन रूबल आबण्टित किये गये जो, यह दावा किया गया था, कि रक्षा पर व्यय की राशि के दुगुने थे।

सोवियत रूस मे कृषि का सर्वांगीण यन्त्रीकरण चल रहा है। 1975 मे प्रति कृषक विद्युत उपलब्धि 1970 की तुलना मे 50 प्रतिशत अधिक थी। शारीरिक श्रम के स्थान पर मशीनो का उपयोग बराबर बढ रहा है। आठवी व नवी योजना मे मिलाकर ट्रेक्टरो व हार्वेस्टरो की सम्मिलित क्षमता मे 80 प्रतिशत वृद्धि का दावा किया गया है। 1920 के दशक के अन्तिम वर्षों मे, जब सामूहिकीकरण शुरू किया गया था देश मे कुल 27,000 ट्रेक्टर तथा 700 ट्रकें व 2 हारवेस्टर थे। आज सामूहिक फार्मो के पास 23 लाख ट्रेक्टर, 13 लाख ट्रकें तथा 6 लाख हारवेस्टर (grain harvester) है।

गहन यन्त्रीकरण एव स्वचालन द्वारा कृषि-उत्पादन प्राप्त किये जाने के कारण प्रति इकाई उत्पादन म श्रम-प्रदा (labour input) काफी घट गई है। यह उत्पादन क्षमता मे वृद्धि का सूचक है। इसीलिए 1971–74 की अवधि मे वार्षिक उत्पादन में 15% की औसत वृद्धि होने का दावा किया गया है। रासायनिक खादो का उपयोग भी बढ रहा है। 1973 मे सोवियत रूस दुनिया का सबसे अधिक रासायनिक खाद उत्पादन करने वाला देश बन गया था। देश मे प्रति हैक्टेयर लगभग 65 किलोग्राम रासायनिक खाद का प्रयोग किया जा रहा है। किन्तु इस मात्रा को भी अपर्याप्त माना जा रहा है तथा इसमे वृद्धि करने के प्रयास जारी हैं।

भूमि मे सुधार करने का कार्यक्रम देश के अधिकाधिक प्रदेशो मे फैलाया जा रहा है। वोल्गा घाटी के सूखे प्रदेश मे एक शक्तिशाली सिचाई व्यवस्था कायम की जा रही है। सोवियत रूस मे कुल कृषित क्षेत्रफल मे सिंचित क्षेत्रफल 8 प्रतिशत है तथा उससे कुल उत्पादन का लगभग 25 प्रतिशत भाग प्राप्त किया जाता है।

कृषि के क्षेत्र में विज्ञान का प्रयोग बराबर बढाया जा रहा है। कुछ दशकों के अन्तराल में सरकार ने 900 कृषि अनुसंधान केन्द्र खोले हैं। अनाज के उत्पादन को सोवियत कृषि का मेरुदण्ड माना जाता है किन्तु 1960 के बाद फसल खराब हो जाने की कई घटनाएँ हुई है। अनाज का उत्पादन कुल मिलाकर 127 मिलियन हैक्टेयर भूमि में होता है। यह कहा जाता है कि अनाज उगाने के लिए सोवियत रूस की जलवायु सम्बन्धी दशाएँ पश्चिमी यूरोप के देशों की तुलना में अधिक खराब हैं। फसलों में स्थायित्व लाने के प्रयास किये जा रहे हैं किन्तु पिछले दो दशकों में (1960–80) सोवियत यूनियन को कई बार अन्तर्राष्ट्रीय बाजार से गेहूँ आदि को खरीद के लिए बाध्य होना पड़ा है।

कृषि में लगी हुई स्थिर उत्पादक पूँजी 1974 में 1,41,000 मिलियन रूबल तक पहुँच चुकी है तथा कुल शक्ति-प्रजनन क्षमता अब 430 मिलियन अश्व-शक्ति (Horse power) के बराबर है। 1971–74 की अवधि में कुल वार्षिक कृषि-उत्पादन का औसत मूल्य 91,000 मिलियन रूबल रहा जबकि आठवीं पंचवर्षीय योजना में यह औसत 80,500 मिलियन रूबल वार्षिक का रहा था। 1971–74 की अवधि में अनाज उत्पादन का वार्षिक औसत भी 192 मिलियन टन रहा था जबकि यही वार्षिक औसत आठवीं पंचवर्षीय योजना में 168 मिलियन टन व सातवीं पंचवर्षीय योजना में 130 मिलियन टन रहा था। 1975 में फसल खराब हो गई थी तथा कुल अन्न उत्पादन केवल 140 मिलियन टन ही रहा। इन आंकड़ों से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि सोवियत कृषि-उत्पादन में अनिश्चितता का तत्व अभी तक विद्यमान है।

सोवियत कृषि की ठोस उपलब्धियाँ

इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि सोवियत सत्ता के पिछले 63 वर्षों में कृषि में क्रांतिकारी मात्रात्मक परिवर्तन हुए हैं। 1971 तक कृषि-उत्पादन 1913 की तुलना में बढ़कर तीन गुना हो चुका था। श्रम-उत्पादकता में, कृषि-क्षेत्र में, 5 4 गुनी वृद्धि हुई। सामूहिकीकरण से पहले सरकार किसानों से 10 मिलियन टन अनाज की वसूली कर पाती थी जबकि 1940 में उसने किसानों से 36 मिलियन टन अनाज तथा 1970 में तो 66 मिलियन टन अनाज खरीदा था।

कुल कृषि-उत्पादन का वार्षिक औसत सम्पूर्ण आठवीं योजना की अवधि में मूल्य की दृष्टि से 80,500 मिलियन रूबल का रहा था जबकि 1973 में यह राशि 96,000 मिलियन रूबल तक पहुँच गई थी जो 19% की वृद्धि इंगित करती है। ऐसा अनुमान है कि 1918 से 1971 की अवधि में कृषि विकास पर 1,67,100 मिलियन रूबल की राशि का विनियोग किया गया। चीजों व मुद्रा के रूप में कृषकों की आमदनी 1913 की तुलना में 8 गुनी होने का दावा किया गया है। सोवियत रूस संसार-भर में ऐसा एकमात्र देश होने का भी दावा करता है जहाँ राजकीय फार्मों व सामूहिक फार्मों पर काम करने वाले कृषि मजदूरों को वृद्धावस्था पेंशन, अयोग्यता

(शारीरिक) पेंशन, बीमारी में भत्ता व सवैतनिक अवकाश दिया जाता है।

सोवियत कृषि का विकास : 1971–75

(प्रतिशत में)

		औसत वार्षिक उत्पादन, 1971–75	उत्पादन में औसत वार्षिक वृद्धि 1971–75
कुल कृषि उत्पादन ('000 मिलियन रूबल में)		98	17.7
अनाज	(मिलियन टनों में)	195	27.5
कपास	,,	6.75	0.65
मांस	,,	14.3	2.7
दूध	,,	42.3	11.8
अंडे	('000 मिलियन)	46.7	10.9
ऊन	('000 टनों में)	464.0	67.0

सोवियत कृषि की समस्याएँ

सोवियत कृषि के सम्मुख अब एक भारी और जटिल चुनौती है। उत्पादन को अत्यधिक तीव्र बनाना सबसे महत्त्वपूर्ण है। इसके लिए श्रम-उत्पादकता में एक नये स्तर तक की वृद्धि आवश्यक है। इसके अलावा भूमि का अधिक अच्छा उपयोग, उसकी उपजाऊ शक्ति में सुधार, उत्पादन का विशिष्टीकरण एवं उसका केन्द्रीकरण, श्रम का वैज्ञानिक आधार पर संगठन व तकनीकी प्रगति का और अधिक उपयोग भी उतने ही आवश्यक हैं। भूमि में सुधार, व्यापक यन्त्रीकरण तथा विद्युतीकरण भी कृषि-क्षेत्र की कार्य-कुशलता बढ़ाने की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण तत्व हैं।

विशेष ध्यान सिंचित क्षेत्रों में वृद्धि करने पर दिया जाना होगा जो किसी भी मौसम में फसल पैदा करने की गारण्टी दे सकें। यही एकमात्र उपाय है जो सोवियत कृषि को बार-बार पैदा होने वाली अनिश्चित उत्पादन की स्थिति से बचा सकता है। सरकार ने फसलों को सुस्थिर बनाने के लिए अनेक उपाय किये हैं, विशेष रूप से मुश्किल जलवायु की दशाओं में अनेक प्रदेशों में ऐसे उपाय किये जा रहे हैं।

यह विश्वास किया जाता है कि भावी रूसी कृषि अत्यधिक तकनीकी आधार वाली होगी। इसका अर्थ यही होगा कि कृषि-उत्पादन बढ़ाने के लिए औद्योगिक उपायों का प्रयोग किया जायेगा। इस प्रकार के कृषिगत-औद्योगिक ढांचों (agrarian-industrial complexes) के विकास हेतु कृषि श्रमिकों को विविध प्रकार के औद्योगिक श्रमिकों में रूपान्तरित करने की आवश्यकता पड़ेगी। ग्रामीण जनता के भौतिक एवं सांस्कृतिक प्रतिमानों में भी सुधार करना होगा तथा हर प्रकार की औद्योगिक व कृषिगत वस्तुओं की प्रचुर मात्रा में पूर्ति उपलब्ध करानी होगी।

सौभाग्य से सोवियत यूनियन में इन सभी समस्याओं का मुकाबला करने के लिए आवश्यक दशाएँ विद्यमान हैं। उसके पास विशाल भू-खण्ड, सामूहिक व

राजकीय फार्मों के रूप में विशाल समाजवादी कृषि प्रतिष्ठान, एक शक्तिशाली उद्योग, एक प्रगतिशील विज्ञान, एक दक्ष श्रम-शक्ति तथा कृषि-कार्य में प्रशिक्षित लाखों-करोड़ों श्रमिक हैं। कृषि-श्रमिकों को दी जा रही अभिप्रेरणाओं के वर्तमान ढाँचे में साधारण-सा परिवर्तन लाकर तथा एक अधिक विश्वसनीय सिंचाई व्यवस्था की स्थापना करके सोवियत कृषि नई बुलन्दियों को छू सकती है।

वैसे तो सोवियत कृषि में काफी विविधता है तथा वहाँ सभी प्रकार की फसलें उगाई जाती हैं किन्तु मुख्य सोवियत फसलों की उत्पादन की प्रवृत्ति का अनुमान इस तालिका से लगाया जा सकता है

मुख्य फसलों का उत्पादन

(मिलियन टनों में)

मद	1913	1928	1940	1950	1960	1973
अनाज	86	73	96	81	125	223
कपास	74	79	2 24	3 54	4 29	7 66
चुकन्दर	11	10	18	21	57	87
सूरजमुखी बीज	75	2 13	2 64	1 80	3 97	7 34
आलू	32	46	76	89	84	108
सब्जियाँ	6	11	14	9	17	25

1917 की तुलना में 1976 में सोवियत रूस ने अपने कृषि उत्पादन में 340% की वृद्धि कर ली थी। कृषि में पूँजी विनियोगों में भी उत्तरोत्तर वृद्धि हुई है। सातवीं पंचवर्षीय योजना ने कृषि पर 48,200 मिलियन रूबल की राशि का विनियोग किया था। दसवीं पंचवर्षीय योजना (1976–1980) में यह राशि 1,70,000 मिलियन रूबल रखी गई है।

छठा अध्याय

प्रथम पंचवर्षीय योजना : 1928-1933

(THE FIRST FIVE YEAR PLAN : 1928-1933)

नई आर्थिक नीति ने देश की उत्पादन क्षमता को पुनर्स्थापित कर तथा समाजवादी क्षेत्र की प्रधानता को सुदृढ़ कर अपने उद्देश्य को पूरा कर लिया था। लेकिन नई आर्थिक नीति के कार्यकाल की समाप्ति के समय इस बात को लेकर विवाद छिड़ गया कि सम्पूर्ण राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के पुनर्निर्माण का भावी स्वरूप क्या हो ? पार्टी के एक घटक का आग्रह था कि कृषि को प्राथमिकता दी जानी चाहिए जबकि दूसरे घटक का विचार था कि सर्वाधिक प्राथमिकता उद्योग को ही मिलनी चाहिए। यहाँ तक कि उद्योग को प्राथमिकता देने के पक्षधर भी आपस में विभक्त थे। उनका मतभेद औद्योगीकरण की गति को लेकर था, कुछ उसकी तीव्रतम गति के पक्षपाती थे जबकि अन्य लोग धीमी गति की सलाह दे रहे थे।

ऊँचे दर्जे का केन्द्रीकृत प्रबन्ध[1], नियोजित अर्थव्यवस्था की निर्दयी परिपालना, सामूहिकीकरण की ओर भी दहला देने वाली परिपालना (enforcement) इन सभी ने मिलकर नई प्रचारित नीति के कुछ कटु भागों को स्पष्ट किया था। जिन अर्थशास्त्रियों ने स्टालिन की बात मानने से इनकार किया वे जैसे पृष्ठभूमि से विलुप्त हो गये। अन्य अर्थ-विशेषज्ञों ने किसी-न-किसी रूप में इस नियोजित अर्थव्यवस्था को लागू करने में सहायता देने के लिए अपनी सहमति दे दी और अपना काम स्वीकार कर लिया। बिल्कुल इसी तरह की नई आर्थिक नीति ने पंचवर्षीय योजनाओं के लिए मार्ग प्रशस्त किया जिन्होंने वास्तव में सोवियत अर्थव्यवस्था की पूर्णतया कायापलट करने की शुरुआत की।

प्रथम पंचवर्षीय योजना की मान्यताएँ

अन्तिम रूप से स्वीकृत योजना का प्रारूप 960 पृष्ठों का था। अन्तिम रूप रेखा में माना गया कि—

(i) पाँच वर्षों के दौरान फसल खराब हो जाने की किसी भी सम्भावना पर विचार करने की आवश्यकता नहीं है।

(ii) योजना के पहले कुछ वर्षों में ही निर्यातों के अत्यधिक प्रसार हो जाने

[1] A. G. Mazour, *op. cit.*, 34

कमी का लक्ष्य था।

(4) पूंजी-प्रधान उद्योगो का निर्माण विशाल पैमाने पर करने का लक्ष्य रखा गया। इनमे से अधिकाश विनियोग की आकृति विशाल विद्युत-रसायन-धातु निर्माण सयोगो' (electrochemics-metallurgical combinats) के रूप म अर्थात् अन्तर्निर्भर उपक्रमो के समूह (groups of interdependent enterprises) के रूप मे सामने आनी थी। आधारभूत उद्योगो पर विनियोग की जाने वाली कुल 13 5 अरब रूबल की राशि मे से अकेले पूंजीगत वस्तुओ के उत्पादन हेतु 9 8 अरब रूबल आबटित किये गये थे। केवल 2 9 अरब रूबल की रकम उपभोक्ता वस्तुओ के लिए रखी गई थी। क्योकि प्रथम पचवर्षीय योजना का आवश्यक लक्ष्य भारी औद्योगिक प्रतिष्ठानों का निर्माण करना था इसलिए उपभोक्ता वस्तुएँ बनाने वाले उद्योगो के लिए प्रस्तावित योजना राशि म और भी कटौती कर दी गई। यही योजना के निर्माण को एक खतरा पैदा होने की सम्भावना हो गई थी।

(5) विशेष कामो को करने के लिए कर्मचारियो को प्रशिक्षण देने का काम जो प्रथम योजना म लिया गया, उसका एक प्रमुख उत्तरदायित्व था। उदाहरण के लिए, सिर्फ उद्योग के लिए योजनावधि मे 25,000 इजीनियरो को प्रशिक्षित करने की आवश्यकता थी। इतना ही नही, बडे पैमाने के उद्योगो के निर्माण कार्यों के लिए विदेशी विशेषज्ञो को आमन्त्रित किया जाना था।

(6) अन्त मे, इस बात पर बल दिया गया कि हालाकि पहली योजना का उद्देश्य उद्योग का विकास करना था, वह राष्ट्र की अर्थव्यवस्था के सर्वांगीण विकास का ही एक भाग बनने थे।

प्रथम पचवर्षीय योजना के दौरान कुल मिलाकर देश की अर्थव्यवस्था मे 64 5 अरब रूबल का विनियोग किया जाना था। इसमे से 16 4 अरब रूबल बडे पैमाने के उद्योगो के लिए सुरक्षित थे। 23% राशि कृषि के लिए, 4% विद्युतीकरण के लिए, 2% घरेलू व्यापार के लिए, 2% म्युनिसिपल सेवाओ के लिए तथा 6% राशि शहरी क्षेत्र मे मकान बनाने के लिए निर्धारित की गई।

प्रथम पचवर्षीय योजना का प्रारूप योजना आयोग (gosplan) द्वारा तैयार किया गया तथा 1929 मे उसे सरकार ने स्वीकृति दे दी। स्वीकृत योजना मे राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रो को ले लिया गया था। किन्तु विस्तार मे व्याख्या केवल मुख्य बिन्दुओ की ही की गई। मोटे तौर पर योजना का उद्देश्य, 'एक ऐसे उद्योग का निर्माण करना था जो न केवल स्वय उद्योग को ही नये उपकरण प्रदान करे व सम्पूर्ण उद्योग को पुनर्गठित करे बल्कि यातायात व कृषि को भी विकसित करे तथा समाजवाद के लिए आधार तैयार करे।' योजना बनाते समय गोसप्लान को न केवल सरकारी निर्देशो का बराबर ध्यान रखना पडा बल्कि स्थानीय दबावो के लिए भी उसे प्रावधान करना पडा। इसका परिणाम यह रहा कि कई अव्यावहारिक अपरियोजनाएँ भी प्रथम पचवर्षीय योजना मे शामिल कर ली गयी।

कई लेखको ने वर्ष 1928 का रूसी क्रान्ति की सडक पर महत्त्वपूर्ण मील का पत्थर माना है। 1927 की पन्द्रहवी पार्टी काग्रेस द्वारा सरकार के लिए स्वीकृत

महत्त्वाकांक्षी कार्यक्रम स्टालिन की अपने प्रतिद्वन्द्वियो पर पूर्ण विजय थी। यह 'एक राष्ट्र मे समाजवाद' (socialism in a single country) के विचार की ट्रॉट्स्की के अन्तर्राष्ट्रीय समाजवाद के विचार पर भी विजय थी। गोसप्लान ने सोवियत यूनियन जैसे विशाल राष्ट्र के औद्योगिक एव कृषिगत पुनर्गठन की एक महान् परिकल्पना की थी। योजनाकारो का उद्देश्य उद्योगो को वहाँ स्थापित करना भी था। जहाँ प्राकृतिक ससाधन उपलब्ध थे। इसका उद्देश्य न केवल उत्पादन लागत घटाना था बल्कि उद्योगो को सम्भावित युद्ध-क्षेत्रो (war zones) से हटाकर दूर ले जाना भी था।

नई आर्थिक नीति से आयोजन पद्धति पर आ जाने के पीछे कई कारण रहे। क्रान्ति को नई आर्थिक नीति के दौरान पैदा हो चुकी पूँजीवादी ताकतो से बचाने के अतिरिक्त आयोजन पद्धति अपनाने के पीछे पश्चिमी पूँजीवाद से अपने आपको पूरी तरह अलग कर लेने की भी अभिलाषा थी। सोवियत सरकार को दीर्घकालिक ऋणो की सख्त जरूरत थी जिसे पश्चिमी देश तब तक देने के लिए तैयार नही थे जब तक क्रान्ति-पूर्व के उसके ऋणो का फैसला नही कर दिया जाता। युद्ध एव कलह के स्पष्ट आसार दिखाई दे रहे थे। ऐसे सकट के समय मे सोवियत सत्ता के लिए सर्वहारा वर्ग के अधिनायकवाद (dictatorship of the proletariat) को सुदृढ करना आवश्यक बन चुका था। उसे निजी व्यवसायी (Nepmen) को पुन सक्रिय बनने से रोकना भी था तथा क्रुद्ध किसानो को शान्त भी करना था। सरकार को बराबर विदेशी आक्रमण का भी भय था। वह सभी प्रकार की विदेशी वस्तुओ के बिना काम चलाने के लिए बाध्य हो चुकी थी। सरकार ने यह भी अच्छी तरह अनुभव कर लिया था कि देश का अस्तित्व तथा उसकी अन्तिम ताकत उसके अपने उद्योगों पर ही निर्भर करेगी। आयात कितना भी किया जाए वह अपर्याप्त ही रहेगा। यही तत्त्व योजनाकारो के मस्तिष्क मे भी बराबर घूमते रहे थे। इसीलिए औद्योगिक, कृषिगत एव मनोवैज्ञानिक क्रान्ति इस विशाल परिमाण व तीव्रगति से लाने की योजना तैयार की गई जिसकी आर्थिक विकास के इतिहास मे पहले कोई मिसाल नही थी।

प्रथम पचवर्षीय योजना का लागू किया जाना

जैसा कि पहले लिखा जा चुका है, गोसप्लान (राज्य योजना आयोग) ही शीर्ष सस्था थी। उसे सहयोग प्रदान करने के लिए कई अन्य सस्थाएँ और भी थीं। माग व पूर्ति की शक्तियो का स्वतन्त्र बाजार मे मुक्त विचरण करने देने की नीति का परित्याग कर दिया गया। योजना मे उन परियोजनाओ को शामिल नही किया गया जो सबसे अधिक लाभ वाली थी। ऐसी परियोजनाओ को सम्मिलित किया गया जो राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के लिए विशेष महत्त्व की थी। इस्पात, शक्ति, कोयला आदि को लाभ या हानि के बावजूद प्राथमिकता दी गई। यहाँ तक कि स्टेट बैंक को भी उन्हे उनकी ऋण-भुगतान क्षमता (means test) की जाच के बिना ही साख प्रदान करने के निर्देश दिये गये। यह समाजवादी ढाँचे मे ढल रही अर्थव्यवस्था का एक अनोखा

रूप था। अन्य मुख्य बातों में ब्याज से मुक्ति तथा लागत या घिसावट की कोई-भी चिन्ता न होना प्रमुख थे।

प्रथम पंचवर्षीय योजना की असाधारण विशेषताओं में[1] उसकी समाजवादी पद्धति, उसकी तीव्रगति, उसके पूरे होने में विश्वास तथा सम्पूर्ण परियोजना के क्रियान्वयन में एक प्रकार की सूक्ष्मता (precision) को प्रमुख रूप से लिया जा सकता है। इस महान् प्रयास के क्रान्तिकारी पहलुओं को केवल आंकड़ों के माध्यम से अभिव्यक्त करने का प्रयास व्यर्थ होगा। इसकी उपलब्धियों में अत्यधिक गौरव व इसकी असफलताओं में उतनी ही व्यथा थी। दक्ष श्रमिकों तथा प्रशिक्षित कर्मचारियों के भारी अभाव में कई महँगी त्रुटियाँ भी हुईं। उत्पादन लागत कई बार गैर-आनुपातिक रूप से ऊँची रही तो दूसरी ओर चीजों का अपव्यय सामान्य बात थी। मानवीय श्रम व उत्पीड़न के रूप में तो अनेकों ही त्याग व बलिदान किये गये। विदेशी पूँजी की अनुपलब्धि ने लोगों को अपनी कमर पेटियाँ (belts) और अधिक कसने के लिए मजबूर कर दिया। लगभग 33% राष्ट्रीय आय का विनियोग कर दिया गया। आवश्यक आयातों के लिए भुगतान हेतु सरकार को निर्यात करने के लिए बाध्य होना पड़ा जिससे उपभोग में और भी कटौती करनी पड़ी।

औद्योगीकरण करने व सामूहिकीकरण करने की सोवियत अर्थव्यवस्था द्वारा अपनायी गई नीतियों के इस अवधि की आर्थिक नीतियों पर व्यापक प्रभाव पड़े। योजनाबद्ध अर्थव्यवस्था को प्रारम्भ करने में पहल ने सोवियत नागरिकों को गर्व की अनुभूति प्रदान की। उसने राष्ट्रवाद की भावनाओं को जन्म दिया। शारीरिक कष्ट औद्योगिक श्रमिकों व किसानों ने सर्वाधिक उठाए। सरकार ने भी जबरन मजदूरी (forced labour) का उपयोग नहरें, रेल व सड़कें, बाँध आदि का निर्माण करवाने में किया।

औद्योगिक विकास

बड़े पैमाने के उद्योगों के उत्पादन में योजना के पहले वर्ष की 19% की प्रस्तावित वृद्धि के स्थान पर वास्तविक वृद्धि 24% की रही। औद्योगिक लागतों में 4% की कमी आयी। वैसे किस्म खराब हो जाने की शिकायतें आती रहीं। लेकिन यह स्वाभाविक ही था क्योंकि उद्योगों को मात्रा पर ध्यान केन्द्रित करने के निर्देश दिये गये थे। इसके अतिरिक्त आवश्यक योग्यता रखने वाले प्रबन्धकों व दक्ष श्रमिकों की कमी थी। जहाँ तक उत्पादन में मात्रात्मक प्रसार होने का प्रश्न था उसमें प्रथम वर्ष में लक्ष्य से अधिक वृद्धि हुई।

बड़े पैमाने के उद्योगों का कुल उत्पादन योजना के दूसरे वर्ष भी 24% बढ़ा। लागतों में भी कमी आई यद्यपि चीजों की किस्म में गिरावट का क्रम जारी रहा। किन्तु उत्साह मात्रात्मक वृद्धियों में था। यह नारा कि 'प्रथम योजना चार वर्षों में पूरी होगी' तुलना में भी दिया गया। उत्पादन 1931 में 24% के लक्ष्य की तुलना में 42% बढ़ा। तीसरे वर्ष उसमें इस रूप में कुछ कमी आयी कि 24% के

[1] A. G. Mazour, *op. cit.*, 36

लक्ष्य के मुकाबले उसमे 20% वृद्धि ही हो पायी। इस वर्ष मे उत्पादन लागत भी घटने के स्थान पर 6% बढ गयी। 1932 के वर्ष मे भी औद्योगिक उत्पादन के परिणाम कम सन्तोषजनक रहे। कुछ अनुमानो के अनुसार तो बडे उद्योगो का उत्पादन चौथे वर्ष मे 8% ही बढा।

औद्योगिक उत्पादन 1928–1932

(अरब रूबलो मे)

	1928	1932	1932–33
सभी उद्योग	15 7	34 3	36 6
ग्रुप 'ए' (पूंजीगत उद्योग)	7	18	17 4
ग्रुप 'बी' (उपभोक्ता वस्तु उद्योग)	8 7	16 3	19 2

किस्म को लेकर चाहे कोई भी विवाद हो, यह एक निर्विवाद सत्य है कि मात्रात्मक दृष्टि से औद्योगिक उत्पादन मे प्रथम पचवर्षीय योजना काल की वृद्धियाँ काफी महत्त्वपूर्ण रही। लेकिन वे असमान अवश्य थी। मशीनो आदि का उत्पादन तो 157% बढा लेकिन उपभोक्ता वस्तुओ का उत्पादन लक्ष्य का 74% ही बढ पाया। ऐसा इसलिये हुआ था क्योकि कुल विनियोगो मे से 86% विनियोग भारी उद्योगो मे किये गये थे जबकि उपभोक्ता वस्तु उद्योगो मे व्यय की गई राशि नियोजित राशि से भी कम थी।

योजना काल मे उद्योगो के साथ और महत्त्वपूर्ण बात भी घटित हुई। उसका निम्न आधारो पर पूरी तरह से पुनर्गठन कर दिया गया—

(1) प्रतिष्ठान (enterprise) जिसे कि उत्पादन की आधारभूत इकाई माना गया।

(2) उद्योग सयुक्त (the combine) को योजना के उत्पादन का उत्तरदायित्व सौपा गया। इसके अलावा पूँजी निर्देश करने, व प्रतिष्ठानो की देखभाल व निरीक्षण का काम भी 'कम्बाइन' के जिम्मे रखा गया।

(3) ट्रस्टो को प्रतिष्ठान तथा 'कम्बाइन' (combine) के बीच की कडी माना गया।

(4) सर्वोच्च आर्थिक परिषद् सम्पूर्ण उद्योग के लिए वित्तीय योजनाएँ बनाने तथा उत्पादन का निर्धारण करने के लिए उत्तरदायी थी। यह 'कम्बाइन्स' (combines) का नियन्त्रण व प्रबन्ध भी करती थी।

1932 मे स्वय सर्वोच्च आर्थिक परिषद् को भी पुनर्गठित करके तीन औद्योगिक कमिसारयत विभाग (industrial commissariats) बनाई गई।

जैसे ही स्टालिन ने अपनी स्थिति को अधिक सुरक्षित अनुभव किया वैसे वैसे उसने शहरो की किसानो पर निर्भरता को कम करने वाली नीतियाँ अपनायी। प्रथम योजनावधि की औद्योगिक नीति का एक अन्य लक्ष्य देश की पश्चिमी राष्ट्रो पर

आर्थिक रूप से निर्भरता को समाप्त करना था क्योंकि राष्ट्रीय सुरक्षा को मजबूत बनाने की दृष्टि से देश का औद्योगीकरण सबसे महत्त्वपूर्ण माना गया। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए कोई भी कीमत ऊँची नहीं समझी गयी। इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु समस्त उपलब्ध दक्ष श्रमिकों का उपयोग करने व घरेलू तकनीक के पूरक के रूप में विदेशी विशेषज्ञों को बुलाने के अलावा सम्पूर्ण सोवियत संघ के भीतर मौजूद प्राकृतिक संसाधनों का विदोहन करने के लिए भारी संख्या में परियोजनाएँ तैयार की गईं। शारीरिक दृष्टि से योग्य प्रत्येक व्यक्ति को काम पर बुलाया गया तथा समस्त उपलब्ध पूँजी को देश के औद्योगीकरण के लिए प्रयुक्त किया गया। उपभोक्ताओं के कल्याण की अनदेखी की गयी। औद्योगीकरण के दीर्घकालिक लक्ष्यों को तात्कालिक महत्त्व के लक्ष्य बनाया गया जिससे जनसाधारण को आवश्यक वस्तुएँ उपलब्ध नहीं हो पायी।

विकास के प्रमुख निर्देशांक 1927–28 से 1932–33

(बिलियन रूबल में 1926–27 के मूल्यों पर)

	1927–28	1932–33	% वृद्धि
वर्ष के अंत में कुल आधारभूत पूंजी	69 8	126 9	82
सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था में पूंजी विनियोग	8 2	27 7	238
राष्ट्रीय आय	24 4	49 7	103
वर्ष के अंत में उद्योग की आधारभूत पूंजी	9 6	30 7	220
उद्योग में पूंजी विनियोग	1 9	7 4	290
सम्पूर्ण उद्योगों का कुल उत्पादन	18 3	43 3	136
जीवन निर्वाह लागत निर्देशांक (1913=100)	205	176	−24

Source Economic Handbook of the Soviet Union

श्रम कानून

औद्योगिक लक्ष्यों की प्राप्ति प्रमुख रूप से अनुशासित श्रम-शक्ति पर निर्भर करती थी। इस दिशा में स्टालिन की सरकार द्वारा कई कड़े एवं क्रूर कदम उठाये गये। ऐसे श्रमिक जो अनुशासनहीनता करते हुए पाये गये जबरन काम वाले कैम्पों (forced labour camps) में भेज दिये गये या उन्हें लम्बे समय तक के लिए जेल भेज दिया गया। अनुपस्थित रहने, काम छोड़कर एक जगह से दूसरी जगह चले जाने तथा यहाँ तक कि काम में ढील दिखाने पर भी कड़ी अनुशासनात्मक कार्यवाही की गई। ट्रेड यूनियनों को औद्योगीकरण की योजना को क्रियान्वित करवाने के निर्देश दे दिये गये। इन यूनियनों को हड़ताल पर जाने का कोई अधिकार नहीं था। प्रशासन ने निडर व निःशंक होकर काम किया। श्रम-संघों को अपने सदस्यों की ओर से काम की दशाओं, मजदूरी, काम के घण्टों, छुट्टियों आदि जैसे विषयों को लेकर हस्तक्षेप करने या वकालत करने का भी अधिकार नहीं था। इन सभी का निर्धारण केवल सरकार द्वारा ही किया जाता था।

प्रथम पंचवर्षीय योजना के प्रारम्भिक वर्षों में कुशल श्रमिकों की भारी कमी

हो गई। जैसा कि डॉब ने लिखा है, 'उच्च प्रबन्धकीय स्तर के आधे से भी अधिक पदो पर ऐसे लोग आसीन थे जिन्होने कोई भी विशेष तकनीकी प्रशिक्षण प्राप्त नही किया हुआ था।' वास्तव मे कुशल श्रमिको एव इन्जीनियरो को प्रशिक्षित करने के लिए तीव्रतर उपाय किये गये। केवल प्रथम पचवर्षीय योजना की अवधि के दौरान 4,50,000 कुशल श्रमिक प्रशिक्षित किये गये। इनके अतिरिक्त काम सीखने वाले जिन प्रशिक्षार्थियो (apprentices) को बडे पैमाने के उद्योगो मे लगाया जा रहा था उनकी सख्या 1927 के 2 7 मिलियन से बढकर 1932 मे 5 2 मिलियन तक पहुँच गई। योजना मे भारी मात्रा मे विशेषज्ञो को प्रशिक्षित करने के लिए भी प्रावधान किया गया। विश्वविद्यालयो एव तकनीकी स्कूलो की सख्या मे निरन्तर वृद्धि होती चली गयी जैसा कि निम्न तालिका से स्पष्ट है—

	1928 29	1932
विश्वविद्यालय (सख्या)	129	645
विद्यार्थी (000)	167	394
तकनीकी स्कूल (सख्या)	1,054	3 069
विद्यार्थी (000)	208	754

विदेशी लेखको विशेषकर पाश्चात्य लेखको ने इस अवधि के क्रान्तिकारी उत्साह को शका भरी दृष्टि से देखा किन्तु वास्तव मे ऐसी बात नही थी। कम्युनिस्ट पार्टी ने अपने सभी सदस्यो से कहा—'सभी सदस्य अपने प्रयत्नो को आर्थिक कठिनाइयो पर विजय पाने तथा श्रमिक वर्ग की समस्त उत्पादन शक्तियो को गतिशील बनाने के लिये केन्द्रित करे ताकि किसी भी कीमत पर औद्योगीकरण की तीव्र गति को बनाये रखा जा सके तथा प्रस्तावित आर्थिक योजना को आगे बढाया जा सके।' सैकडो कारखानो व हजारो मजदूरो ने इन अपीलो पर ध्यान दिया। जनवरी 1929 मे एक अखिल-सघ समाजवादी प्रतियोगिता (All-Union Socialist Competition) प्रतिष्ठानो के बीच आयोजित किया गया। 1932 तक ऐसी प्रतियोगिताओ मे देश के कुल श्रमिको मे से 70 प्रतिशत श्रमिक भाग ले रहे थे। अत्यधिक उत्साही व अनुकरणीय श्रमिको को कुछ आर्थिक सुविधाएँ भी दी जाती थी। ट्रेड यूनियनो ने पार्टी सगठनो के साथ मिलकर इस प्रकार की समाजवादी प्रतियोगिताएँ (Socialist competitions) आयोजित करने मे प्रमुख एव सक्रिय भूमिका निभाई। 1930 मे आयोजित सोलहवी पार्टी काग्रेस ने श्रम सघो के लिए एक प्रस्ताव पारित किया जिसमे उनके लिए 'श्रमिक समुदाय को गतिशील बनाने व सगठित करने का लक्ष्य रखा गया ताकि समाजवादी समाज की रचना का ध्येय पूरा हो सके। श्रम सघ राज्य के स्थायी एव सबसे निकट के सहयोगी होने चाहिए।'

योजना मे कृषि

जब पहली पचवर्षीय योजना शुरू की गई थी तब सोवियत सघ मूलत एक कृषि-प्रधान देश था। देश की ग्रामीण जनसख्या मे लगभग 25 मिलियन स्वतन्त्र

कृषक परिवार सम्मिलित थे। इस क्षेत्र में सोवियत सत्ता द्वारा एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कायापलट का काम हाथ मे लिया गया। प्रमुख समस्या इन व्यक्तिगत पारिवारिक फार्मो (individual household farms) को विशाल सामूहिक फार्मों मे बदलने का था। प्रथम पंचवर्षीय योजना मे ऐसे ही विशाल राजकीय व सामूहिक फार्म बनाये गये। इन राजकीय एवं सामूहिक खेतो का निर्माण सोवियत कृषि को समाजवादी कृषि के रूप मे प्रतिस्थापित करने का ही एक भाग था।

1928 की ग्रीष्म ऋतु तक भी यह आशा की जा रही थी कि सरकार व्यक्तिगत एवं मध्यम आकार के खेतो को अनछुआ ही रहने देगी। लेकिन ऐसा नहीं हुआ। 1929 मे स्टालिन द्वारा ऐसे किसानो के विरुद्ध कडी कार्यवाही की घोषणा की गई जो सामूहिकीकरण का विरोध कर रहे थे जिसे कि समाजवादी क्रान्ति का एक महत्त्वपूर्ण अंग माना गया था।

सामूहिकीकरण (collectivisation) का मुख्य उद्देश्य सम्पन्न कृषको (Kulaks) या कुलको का निष्कासन करना था। इस कदम से किसानो के बीच भारी हिंसात्मक तनाव पैदा हो गया तथा अनाज की वसूली के लिए सेना की टुकड़ियाँ भेजी गयी। जब किसानो ने यह महसूस कर लिया कि खुली लडाई (open battle) मे तो उनकी हार सुनिश्चित है तो उन्होंने उत्पादन मे कटौती करने की नीति अपना ली। उनके ऐसा करने से सरकार का यह विश्वास और भी दृढ हो गया कि इस समस्या का एकमात्र हल सामूहिकीकरण ही रह गया था। सरकार की आशाओं के ठीक विपरीत सामूहिकीकरण का विरोध सम्पन्न कृषको या कुलको ने ही नही बल्कि छोटे-छोटे कृषकों ने भी किया। इन विरोधी शक्तियो को 1930 तक अन्तिम रूप से पराजित कर दिया गया तथा पुरानी व्यवस्था को नष्ट कर दिया गया। अब से सामूहिकीकरण ही सोवियत कृषि का मुख्य स्वरूप बन गया। इस सारी स्थिति का दुर्भाग्यपूर्ण पहलू यही रहा कि सामूहिकीकरण को जबरन या हिंसा से तभी लागू करना पडा जब सरकार और भी अनेक भीषण समस्याओ से जूझ रही थी। पार्टी में कुछ ऐसे सदस्य भी थे जो सामूहिकीकरण को जबरन लागू किये जाने के पक्ष में नही थे किन्तु स्टालिन कुलको को नष्ट (squeezing out the Kulaks) करने पर अडा रहा जिन्हे वह वर्ग-शत्रु (class enemy) मानता था।

अपने एक 1929 के भाषण मे स्टालिन ने कहा "कुलक वर्ग को, एक वर्ग के रूप मे, करारोपण के उपायो से नही निचोडा (squeeze out) जा सकता और न ही उसे अन्य उपायों से कुचला जा सकता है जब तक कि उत्पादन के साधन उस वर्ग के हाथो में रहने दिये जाते हैं तथा उस वर्ग को जमीन का आजादी के साथ उपयोग करने की अनुमति रहती है" कुलक लोगो को एक वर्ग के रूप मे निचोड देने के लिए हमें इस वर्ग के प्रतिरोध को खुली लडाई मे तोडना होगा तथा उसे उसके अस्तित्व के प्रमुख स्रोत बने हुए साधनो से वंचित करना होगा" इसके बिना सामूहिकीकरण सोचा भी नही जा सकता।'

सरकारी तौर पर सामूहिकीकरण कार्यक्रम 1930 मे प्रारम्भ हुआ। सरकार ने लगभग 16 मिलियन हैक्टयर जमीन से 1,00,000 सामूहिक फार्म बनाने की

योजना बनाई। केवल राज्य का ही इस बात का फैसला करना था कि किसानों के लिए क्या अच्छा है। किन्तु प्रतिरोध और हिंसा कुछ इस तरह भडक उठे कि अस्थायी तौर पर एक बार सरकार को पीछे हटना पडा। कृषक को उसका अपना छोटा-सा निजी खेत रख सकने का अधिकार लौटाया गया। 1932–33 में देश में एक गम्भीर अकाल भी पड़ा जिससे सामूहिकीकरण के आलोचकों को उस नीति का विरोध करने का एक अवसर मिला। किन्तु सामूहिकीकरण तो बन रहन के लिए आया था।

सरकार ने प्रथम पचवर्षीय योजना के दौरान ही राजकीय फार्म या सोवखोज (Sovkhoz) का विचार कार्यरूप में परिणत किया था। यह अनुमान लगाया गया था कि 1930 के अन्त तक राजकीय फार्मों को 5 मिलियन हैक्टेयर भूमि पर स्थापित कर दिया जायेगा। ये फार्म पूरी तरह से राजकीय अधिकार में रहने थे तथा राज्य द्वारा ही सचालित किये जाने थे लेकिन यह एक बडी खेदजनक टिप्पणी है कि ये राजकीय फार्म कभी भी पूरी तरह सफल नहीं रहे। आशिक रूप से ऐसा इसलिए है कि उनमें निजी पहल (private initiative) या रुचि का अभाव रहता है तथा आशिक रूप से उनकी यह असफलता इसलिए भी है कि राज्य उनके उत्पादन के लिए उन्हें कम कीमत चुकाता है।

सोवियत कृषि में प्रथम योजना काल में किये गये इन सस्थागत परिवर्तनों का मिला जुला प्रभाव मिश्रित सा रहा। प्रति हैक्टेयर उत्पादकता में दिखाई पडने जैसी वृद्धि नहीं हुई। किन्तु इतना अवश्य कहा जा सकता है कि इन सामूहिक व राजकीय फार्मों ने यन्त्रीकरण सम्भव बनाया। इन फार्मों ने कृषि पदार्थों के बाजार अतिरेक में भी काफी वृद्धि की जो तीव्र गति से चलाये जा रहे औद्योगीकरण के कार्यक्रम को समर्थन प्रदान करने के लिए अत्यावश्यक था। सामूहीकृत खेती ने ग्रामीण बचतों का औद्योगीकरण के कार्यों के लिए गतिशीलन (mobilisation) करने में भी सहायता की। जैसा कि रेगनर नर्क्से ने लिखा है 'सामूहिक फार्म केवल सामूहिक सगठन (collective organisation) का ही एक रूप नहीं है, इससे भी अधिक वह सचय का एक उपकरण है।' इन फार्मों से बाजार अतिरेक के लिए प्राप्त होने वाले कुल अनाज का 84% भाग प्राप्त होने लगा था।

आन्तरिक एवं विदेश व्यापार

कृषि पदार्थों में चल रहा वैधानिक निजी व्यापार पहली पचवर्षीय योजना के पहले ही वर्ष में समाप्त कर दिया गया। 1929 में निजी व्यापार कुल खुदरा व्यापार का 13 5% रह गया था। 1930 में यह निजी खुदरा व्यापार घटकर 5 6% रह गया तथा 1931 तक बिल्कुल समाप्त हो गया। 1933 में ही पुन स्वतन्त्र बाजार को आशिक रूप से कोलखोज व्यापार (सामूहिक फार्मों की व्यावसायिक गतिविधियाँ) के नाम से चलने की छूट दी गई। लेकिन यह बहुत सीमित था। इस अवधि में सरकार ने कुल कृषिगत बाजार अतिरेक का 95 प्रतिशत खुद बेचा था।

सभी वस्तुओं को दो मुख्य समूहों या वर्गों में बाँटा गया। ये वर्ग थे गैर-बाजार पूर्ति (non market supply) तथा बाजार पूर्ति (market supply)।

गैर-बाजार-पूर्ति वर्ग की वस्तुओ को औद्योगिक श्रमिको, सेना तथा निर्यात के लिए सुरक्षित कर दिया गया। बाजार-पूर्ति वर्ग की वस्तुओ को पुन: 'नियोजित' (planned) तथा 'नियमित' (regulated) वर्गों मे बॉटा गया जिनमे क्रमश: अभावग्रस्त तथा कम अभावग्रस्त उपभोक्ता वस्तुओ को रखा गया। अधिकाश 'बाजार पूर्ति' वर्ग मे आने वाली वस्तुओ का राशनिंग था। सबसे अधिक राशन विशेष समूह (श्रमिको) को मिलता था, उसके बाद प्रथम समूह व द्वितीय समूह को राशन दिया जाता था।

प्रथम पचवर्षीय योजना के दौरान घरेलू व्यापार के निम्न मुख्य उद्देश्य थे—(1) एक विभेदकारी पूर्ति (a differentiated supply), (2) राजकीय व्यापार तथा लोगो के हाथो से क्रय-शक्ति सोखना, (3) मूल्य विभेद (price differentiation) द्वारा 'लाभ' कमा कर उसे सचित करके राज्य बजट मे सम्मिलित करवाने के लिए मोड देना, (4) आवश्यक वस्तुओ को काला बाजारी पर नियन्त्रण लगाना, तथा (5) राशनिंग प्रणाली समाप्त करने के लिए रास्ता तैयार करना।

घरेलू या आन्तरिक व्यापार को इस रूप मे सगठित करने के कई लाभ थे। अत्यधिक केन्द्रीकरण होने के कारण अत्यधिक कम पूर्ति वाली आवश्यक वस्तुएँ भी अनेक क्षेत्रो मे पहुँचाई जा सकती थी। किन्तु इसकी कई हानियाँ भी थी। विभिन्न प्रदेशो मे आवश्यक वस्तुएँ बहुत कम मात्रा मे पहुंच पाती थी। राजकीय व सहकारी व्यापार मे उपभोक्ताओ को अनदेखा किया जाता था। मूल्य अक्सर 'नियोजित मूल्यो' से भिन्न होते थे। विभिन्न श्रेणी के लोगो के लिए वस्तु-विभेद होने के कारण रूबल की क्रय-शक्ति अलग-अलग होती थी। इस कारण रूबल की सार्वदेशिक अर्हता इकाई (universal unit of value) के रूप मे मान्यता समाप्त हो गयी। ये सभी कमियाँ सरकार द्वारा भी महसूस कर ली गई थी तथा 1933 के बाद से ही राशनिंग व्यवस्था को समाप्त करने की तैयारी शुरू कर दी गयी।

विदेशी व्यापार के बारे मे प्रथम पचवर्षीय योजना की मान्यता गलत सिद्ध हुई। 1929 की मन्दी ने भी सोवियत सघ के लिए व्यापार की शर्तों को हानिकारक बना दिया गया। मॉरिस डॉब ने अनुमान लगाया है कि 1930–31 के वर्षों मे मन्दी के कारण रूस के निर्यातो का मूल्य 30% तथा आयातों का मूल्य 20% गिर गया। आयातित माल के मूल्यो मे गिरावट का देश को लाभ मिला क्योकि सोवियत सघ इन वर्षो मे मशीनो व उपकरणो का आयात कर रहा था। खाद्यान्नो के निर्यात 1931 के बाद बढे।

कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि प्रथम पचवर्षीय योजना की उपलब्धियाँ सन्तोषप्रद रही। एक मजबूत औद्योगिक आधार खडा हो रहा था। कुशल जनशक्ति की कमी निरन्तर घटती जा रही थी लेकिन उपभोक्ता लोग योजना के अन्त मे भी अधिक भौतिक अभावो की स्थिति मे जी रहे थे। आवश्यक वस्तुओ के अभाव के साथ जटिल राशनिंग प्रणाली ने मिलकर उनके कष्टो को और भी बढा दिया था। किन्तु इस मामले को लेकर सोवियत सत्ता अधिक चिन्तित नही थी क्योकि उनका मुख्य उद्देश्य सोवियत रूस को एक औद्योगिक महाशक्ति (industrial super power) बनाने का था और वह वास्तव मे प्राप्त होने के ही दौर मे गुजर रहा था।

सातवाँ अध्याय

द्वितीय पंचवर्षीय योजना : 1933-1938

(THE SECOND FIVE YEAR PLAN . 1933–1938)

प्रथम पचवर्षीय योजना को 1932 मे ही समाप्त घोषित कर दिया गया और उसमे पाँच वर्षों के स्थान पर साढे-चार वर्ष का समय ही लगा। दूसरी पचवर्षीय योजना 1 जनवरी 1933 से प्रभाव मे आयी। प्रथम पचवर्षीय योजना को देश के औद्योगीकरण, सामूहिकीकरण तथा कृषि के यन्त्रीकरण की दिशा मे एक कष्टदायी शुरुआत माना जा सकता है। समय-समय पर इसमे तनावपूर्ण तथा हिंसात्मक घटनाएँ भी हुई।

दूसरी पचवर्षीय योजना को पहली योजना की अपेक्षा एक लाभ तो यह रहा कि वह उसके अनुभवो से लाभ उठा सकने की स्थिति मे थी। सच्चाई यह है कि द्वितीय पचवर्षीय योजना के लिए निर्धारित लक्ष्य पहली योजना के लक्ष्यो मे से ही निकले थे। ऐसे चार प्रमुख लक्ष्य थे—(1) औद्योगिक प्रगति का दृढीकरण (consolidation), (2) उत्पादन की किस्म म सुधार तथा लागतो मे कमी करना, (3) नये स्थापित किय गये कारखानो मे उत्पादन को दुगुना करना, तथा (4) यातायात सुविधाओ के निर्माण कार्य का प्रसार करना।[1]

यदि प्रथम पचवर्षीय योजना देश के पूर्ण औद्योगीकरण के लक्ष्य को लेकर चली थी तो दूसरी पचवर्षीय योजना ने स्वय के लिए अधिक सूक्ष्म लेकिन ऊँचा लक्ष्य 'मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण की समाप्ति' (eliminating exploitation of man by man) अपने सामने रखा। जबकि प्रथम पचवर्षीय योजना ने अपना सारा ध्यान भारी उद्योगो के विकास पर केन्द्रित कर दिया था, द्वितीय पचवर्षीय योजना में उपभोक्ता वस्तुओ के उत्पादन पर भी समुचित ध्यान देने के सकेत दिये गये। द्वितीय पचवर्षीय योजना म हल्के उद्योगो को कुछ कम उपेक्षित रखा गया। योजना मे जूतो तथा खाद्य-पदार्थों का उत्पादन दुगुना करने का लक्ष्य था।

किन्तु इनम से कोई भी रियायत बडे पैमाने के उद्योगो के विकास की कीमत पर नही दी जानी थी। विनियोग मे उनके भाग को 75% रखकर उन्हे सर्वोच्च प्राथमिकता प्रदान की जा चुकी थी। द्वितीय पचवर्षीय योजना ने अपने पहले दो वर्ष प्रथम पचवर्षीय योजना के दौरान अधूरे छूट गये निर्माण कार्यों को पूरा करने मे लगाये। किन्तु इस्पात व लौह-पिडो (pig-iron) का उत्पादन दुगुना करने के लक्ष्य को पूरा करने के लिए नयी लोहा गलाने की भट्टियाँ (New blast furnaces) की

[1] A G Mazour, *op cit*, 47-55

भी आवश्यकता थी। यह भी अनुभव किया गया कि अलौह-धातु उद्योगों (non-ferrous metal industries) का विकास भी अत्यावश्यक है। निकल (nickel), तांबा, एल्यूमिनियम आदि के उत्पादन हेतु उद्योग स्थापित किये गये। ये उद्योग साइबेरिया मे लगाये गये। इन उद्योगो ने द्वितीय महायुद्ध के दौरान महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी।

मशीनी ओजारो (machine tools) के लिए विदेशी आयातो पर निर्भरता को कम करना भी अत्यावश्यक था। उनके उत्पादन में तिगुनी वृद्धि का लक्ष्य रखा गया। निकट भविष्य में ही युद्ध छिड जाने की सम्भावना को ध्यान मे रखते हुए उद्योगों के स्थानो का चुनाव इस ढग मे किया गया कि जिससे हवाई आक्रमणो की स्थिति मे वे सुरक्षित रह सकें।

नये ससाधनो की खोज

महत्त्वपूर्ण कोयला व लोहा उद्योग देश के दक्षिणी भाग मे स्थित थे जहाँ उन पर विदेशी आक्रमण से अत्यधिक हानि पहुँचायी जा सकती थी। देश के अन्य भागो मे लोहे व कोयले के भण्डारों की खोज करने के लिए व्यापक सर्वेक्षण करने के आदेश दिये गये। साइबेरिया के कोयला भण्डारों को यूराल के लौह भण्डारो से जोडकर एक विशालकाय लोहा व इस्पात सयुक्त उद्योग (combine) स्थापित किया गया। कजाकिस्तान मे भी नये कोयले के भण्डारो का विदोहन शुरू किया गया। सुदूर आर्कटिक क्षेत्र (Arctic area) मे भी खोज दल भेजे गये। एक 700 मील लम्बी रेल लाइन का भी निर्माण किया गया जिसने इन नये खोजे गये क्षेत्रो को धुर दक्षिणी क्षेत्रो से जोड दिया। यह कमरतोड मेहनत का काम जबरन मजदूरी कैम्पो मे रह रहे बन्दियो (forced labour camp prisoners) द्वारा किया गया। आर्कटिक क्षेत्र मे एक तेल क्षेत्र भी खोजा गया। ह्वाइट सागर व बाल्टिक सागर को 1933 मे एक नहर द्वारा जोड दिया गया। मॉस्को (Moscow) तथा वाल्गा (Volga) नदियो को भी 1937 मे एक नहर से मिला दिया गया। इस प्रकार एक महत्त्वपूर्ण आन्तरिक जल परिवहन का जाल बिछ गया जो भारी सख्या मे यात्री व भारी मात्रा मे माल ले जाने के काम मे लिया जा रहा है।

औद्योगिक विकास

जैसा कि पहले लिखा जा चुका है, पहली योजना द्वारा काफी निर्माण कार्य अधूरा छोड दिया गया था। दूसरी पचवर्षीय योजना मे उद्योगो के विकास हेतु 64 7 बिलियन रूबल (अरब रूबल) की राशि निर्धारित की गई। इस राशि का 60% तो नये उद्योगों के निर्माण पर व्यय करने का प्रस्ताव था तथा शेष 40% मौजूदा कारखानो की मरम्मत या उन्हे पूरा करने के काम मे व्यय किया जाना था। दूसरी योजना मे औद्योगिक उत्पादन 16 5% की वार्षिक वृद्धि करने का प्रस्ताव था लेकिन 1933 मे उसमे 8 9% की ही बढोतरी हुई। साथ ही औद्योगिक वस्तुओ की किस्म घटिया बनी रही। 1934 मे कुछ कडे उपाय अपनाये गये तथा उस वर्ष

वस्तुओ की किस्म मे कुछ सुधार भी दिखाई दिया। 1934 के लिए तैयार की गयी वार्षिक योजना मे औद्योगिक उत्पादन मे 19% की वृद्धि का लक्ष्य रखा गया।[1]

1935 के बाद मे बराबर औद्योगिक वस्तुओ की किस्म मे सुधार लाने पर बल दिया जाता रहा। उस वर्ष के लिए उत्पादन वृद्धि लक्ष्य भी घटाकर 16% कर दिया गया। 1935 के लिए औद्योगिक उत्पादन वृद्धि योजना ठीक तरह चली तथा उसमे 20% की वृद्धि हुई। श्रम उत्पादकता बढ़ाने व उत्पादन लागत घटाने सम्बन्धी लक्ष्य भी पूरी तरह प्राप्त हुए। उद्योग मे स्टाखनोव आन्दोलन (Stakhanov movement) लाने के निर्देश दिये गये जिसका उद्देश्य, 'उत्पादन मे अधिकतम वृद्धि तथा लागत मे यथासम्भव कमी करना था, यह मानते हुए कि उत्पादन कार्यक्रम एक अनिवार्य न्यूनतम लक्ष्य है।' 1936 के लिए नियोजित औद्योगिक उत्पादन वृद्धि लक्ष्य काफी ऊँचा अर्थात् 23% रखा गया। लेकिन फिर भी परिणाम सन्तोषप्रद रहे। सरकारी आंकडो के अनुसार औद्योगिक उत्पादन 30% से बढा। 1937 के लिए भी औद्योगिक उत्पादन मे 20% वृद्धि का लक्ष्य रखा गया था। वह लक्ष्य भी प्राप्त कर लिया गया।

अप्रैल 1937 मे एक सरकारी वक्तव्य प्रकाशित किया गया कि 'राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की अधिकाश महत्त्वपूर्ण शाखाओ के सन्दर्भ मे द्वितीय पचवर्षीय समय से पूर्व ही अपना लक्ष्य प्राप्त कर चुकी है तथा सोवियत उद्योग मे ये लक्ष्य 1 अप्रैल 1937 तक ही पूरे हो चुके हैं।' उस समय पश्चिमी देशो के अखबारो ने इस वक्तव्य पर विश्वास नही किया लेकिन बाद मे प्रकाशित आंकडो ने इसे सिद्ध कर दिया।

औद्योगिक उत्पादन नियोजित एव वास्तविक

(बिलियन रूबलो मे 1926–27 के मूल्यो पर)

	1937 के लिए नियोजित उत्पादन	1937 मे वास्तविक उपलब्धियाँ
पूंजीगत वस्तुओ का उत्पादन (ग्रुप ए)	46	56
उपभोक्ता वस्तुओ का उत्पादन (ग्रुप बी)	47	40
कुल औद्योगिक उत्पादन	93	96

कुल मिलाकर 1937 म द्वितीय पचवर्षीय योजना की उपलब्धियाँ उसके लिए निर्धारित लक्ष्यो से अधिक रही। लक्ष्यो से भी अधिक प्राप्तियाँ धातु-कार्य उद्योगो (Metal-working industry), जिनमे शस्त्र-निर्माण उद्योग भी सम्मिलित था, मे रही। किन्तु सूती कपडो का उत्पादन लक्ष्य से कम रहा। पिछली दो पचवर्षीय योजनाओ के दौरान विशाल स्तर पर निर्मित उद्योगो के परिणामस्वरूप 1937 मे हो रहे समग्र औद्योगिक उत्पादन का 80% भाग नये बनाये गये या जीर्णोद्धार किये हुए कारखानो द्वारा उत्पादित किया जा रहा था। दोनो योजनाओ मे मिलाकर

[1] Baykov, *op cit*, 187

श्रम उत्पादकता में वृद्धि करने के 63% के लक्ष्य की तुलना में उसमें हुई वास्तविक वृद्धि 82% रही। इस प्रकार अनेक कठिनाइयों एवं त्रुटियों के बावजूद, जिनका कि उल्लेख ऊपर किया जा चुका है, द्वितीय पंचवर्षीय योजना को औद्योगिक उत्पादन बढ़ाने में प्रथम पंचवर्षीय योजना की तुलना में अधिक सफलता मिली। इसके साथ-साथ औद्योगिक उत्पादन की किस्म में भी भारी सुधार हुआ।

महत्त्वपूर्ण उद्योगों का उत्पादन

		1913	1933	1938
इंजीनियरिंग व धातु उद्योग (मिलियन रूबल)		1 446	10 882	33 613
मालवाही ट्रकें (000)		15	18	49
कोयला	(मिलियन टन)	29	76	133
कच्चा लोहा	(,)	9	14	27
इस्पात	(,)	4	7	18
तांबा	(000 टन)	—	45	103
चीनी	( )	1,290	995	2 519

कृषि विकास

द्वितीय पंचवर्षीय योजना काल में सामूहिक खेतों (Kolkhoz) तथा राजकीय खेतों (Sovkhoz) को नियन्त्रित व नियमित करने के लिए अनेक उपाय किये गये। अब तक सरकार को इस क्षेत्र में अच्छा अनुभव भी प्राप्त हो चुका था। किसान लोग भी अब यह समझ चुके थे कि वे अपनी आर्थिक स्थिति ईमानदारी और मेहनत से काम करके ही सुधार सकते हैं। किसानों से सामूहिक खेतों पर काम करवाने के लिए बल-प्रयोग भी किया गया। जिन किसानों ने राज्य की भूमि को उपयोग के लिए रख लिया था उन्हें भी बुवाई करने व राज्य को अपने उत्पादन का निश्चित भाग सौंपने जाकि स्थानीय सोवियत तय करती थी, के लिए बाध्य होना पड़ा। इन परिवर्तनों के परिणामस्वरूप कृषि उत्पादन में 1933 के बाद निरन्तर वृद्धि होती चली गई जिसने 1935 में राज्य द्वारा राशनिंग व्यवस्था उठा लेने की परिस्थितियाँ पैदा कीं।

कृषि के नियोजित विकास ने राज्य तथा सामूहिक फार्मों को बहुत अल्प समय में कृषि में पर्याप्त एवं महत्त्वपूर्ण परिवर्तन लाने की स्थिति में पहुँचाया। बड़े आकार के पहले कभी काम न लिये गये भूमि के टुकड़ों को कृषि योग्य बनाया गया। 1939 में राजकीय फार्म 60 मिलियन हैक्टेयर भूमि पर फैल चुके थे जिनमें से केवल 3 मिलियन हैक्टेयर भूमि ही पुराने राजकीय फार्मों की भूमि थी। शेष भूमि नई जोड़ी गई थी।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना तथा उससे पहले प्रथम पंचवर्षीय योजना में रूसी कृषि में किये गये इन प्रयोगों के परिणाम अन्य कृषि-प्रधान देशों के लिए भारी महत्त्व रखते हैं। जैसा कि बेकोव ने लिखा है—'सामूहिक फार्म उत्पादन को,

कृषि का कायापलट

	1913	1933	1938
कुल कृषित क्षेत्र (मिलियन हैक्टेयर)	105	130	137
अनाज उत्पादन (मिलियन टन)	80	90	95
कपास (मिलियन क्विंटल)	6 8	13	27
चुकंदर („)	90	90	167
	1928–32	1933–37	1938
अनाज की औसत उत्पत्ति (क्विंटल प्रति हैक्टेयर)	7 5	9 1	9 3

जिसका अर्थ है बड़े पैमाने की पद्धति वाला उत्पादन, सामूहिक कृषकों की छोटी व्यक्तिगत सहायक कृषि (small personal subsidiary farming) के साथ जोड़कर सोवियत रूस में कृषि उत्पादन की समस्या के आर्थिक व सामाजिक पहलुओं को हल करने की चेष्टा की गई है।'

राशनिंग की समाप्ति

रोटी (bread) व अन्य अनाज की बनी चीजों का राशनिंग 1 जनवरी 1935 के एक आदेश से हटा लिया गया। इस आदेश ने अनाजों के लिए एक एकीकृत मूल्य व्यवस्था भी स्थापित कर दी। इस समाप्ति का अर्थ यह था कि लोग अब किसी भी मात्रा में इन चीजों को खरीद सकते थे तथा उन्हें चुनने की भी स्वतन्त्रता थी। सरकार मूल्यों का नियमन पहले ही की तरह करती रही। 1932 के बाद सहकारियों के जाल का प्रसार कर दिया गया और 1939 तक ग्रामीण क्षेत्रों से अनाज की खरीद आदि का 85% काम इन सहकारियों के नियन्त्रण में आ चुका था। निजी स्तर पर चलाये जाने वाले खुदरा व्यापार को पहले ही परिसमाप्त (liquidate) कर दिया गया था। सामान्यतया सोवियत सरकार मुख्य वस्तुओं के मूल्य नियन्त्रित करने तथा जनसाधारण के काम आने वाली अन्य आवश्यक वस्तुओं के मूल्य द्वितीय योजना काल में नियमित करने में सफल रही।

घरेलू मामलों में इस आरामदायक स्थिति से देश के लिए अनुकूल व्यापार सन्तुलन पैदा हुआ। द्वितीय पचवर्षीय योजना में आयातों में काफी कटौती की गई। 1935 के बाद निरन्तर एक अनुकूल भुगतान सन्तुलन की स्थिति भी पैदा हो गई। साथ ही देश के आन्तरिक उपभोग में कटौती किये बिना निर्यातों का प्रसार कर पाना भी सम्भव हो गया। विदेश व्यापार के लिए आयोजन द्वितीय योजना काल में घरेलू व्यापार के आयोजन की अपेक्षा अधिक सफल रहा। निर्यात व आयात इस प्रकार रहे :

	1913	1932	1937
निर्यात (मिलियन रूबल)	1,520	575	395
आयात („)	1,374	704	306

श्रम (Labour)

4 मई 1935 को स्टालिन ने एक नारा दिया : 'कर्मचारीगण हर चीज तय करें' (Personnel decide everything)। यह कथन अनेकों उत्पादन-गोष्ठियों में विचार-विमर्श का केन्द्र बना तथा साथ ही उत्पादन के तकनीकी स्तर को सुधारने की मांगों पर वाद-विवाद छेड़ा गया। 30 अगस्त 1935 के दिन कोयला खान के एक मजदूर स्टेखनोव (Stakhanov) ने 6 घण्टों के भीतर 102 टन कोयला निकाल कर (hewing out) एक नया रिकॉर्ड कायम किया। इस कीर्तिमान की स्थापना ने श्रम-उत्पादकता एवं श्रम-विभाजन को एक नया आयाम (New dimension) प्रदान किया। उसके प्रयोग का अनेक क्षेत्रों में अनुकरण किया गया। स्टेखनोव जैसे श्रमिक अत्यन्त कुशल श्रमिक थे। जो प्रथम एवं द्वितीय योजनाकाल में प्रशिक्षित किये गये थे। स्टेखनोव आन्दोलन (Stakhanov movement) से औद्योगिक उत्पादन के प्रसार में काफी सहायता मिली तथा 1936 में इसकी वजह से उत्पादकता भी काफी बढ़ गई।

मजदूरी के भुगतान को लेकर श्रमिकों में कुछ असन्तोष बना हुआ था। वस्तु-दर (piece-rate) के अतिरिक्त वेतन-मजदूरी भुगतान की और भी अनेक व्यवस्थाएँ थीं। मजदूरी के निर्धारण की सबसे अपक्व त्रुटि (crudest mistake) बोनस प्रणालियों की बहुतायत तथा उनके मनमानेपन (arbitrariness) की थी। इंजीनियरों व कुशल श्रमिकों को निरन्तर भुगतान करने का परिणाम यह रहा कि कुछ श्रमिक इंजीनियरों से भी अधिक वेतन पाने लगे। द्वितीय महायुद्ध से पहले के वर्षों में इन मजदूरी दरों में संशोधन भी किया गया। इतना ही नहीं विशेषज्ञों के लिए 'व्यक्तिगत वेतन' (personal pay) भी शुरू किया गया।

औद्योगिक रोजगार व मजदूरी

	श्रमिकों व कर्मचारियों की संख्या (मिलियन में)	औसत वार्षिक मजदूरी (रूबल में)
1928	12	703
1932	23	1,427
1937	27	3,038
1938	28	3,467
1942	32	4,100

नये श्रमिकों की प्रथम योजनाकाल में भर्ती भारी मात्रा में की गई थी किन्तु दूसरी पंचवर्षीय योजना में श्रमिकों को दिये गये रोजगार में वृद्धि की दर अधिक नियमित रही। जहाँ पहली योजना में रोजगार प्रदान किये गये श्रमिकों की संख्या निर्धारित लक्ष्य से कहीं अधिक रही थी, दूसरी योजना में रोजगार की यह संख्या निर्धारित लक्ष्य से कुछ कम ही रही। इसके अतिरिक्त प्रथम पंचवर्षीय योजना में प्रत्येक वर्ष रोजगार उपलब्ध कराने की दर प्रति वर्ष श्रम-उत्पादकता में होने वाली वृद्धि-दर से हमेशा आगे बनी रही थी वहाँ दूसरी योजना में इसकी बिल्कुल विपरीत

स्थिति रही। 1937 मे भारी उद्योगो मे प्रति व्यक्ति उत्पादनता 1932 की उत्पादकता का 209% थी जबकि लक्ष्य उसे 163% करने का था। इस तरह दूसरी योजना मे रोजगार की संख्या बढाने की जगह उत्पादकता बढाने पर अधिक जोर दिया गया।

यातायात का विकास

1930 से पहले रूस मे बहुत कम राजमार्ग (High ways) थे। जल-परिवहन भी बहुत खराब तरीके से सगठित था तथा रेलो के उपकरण भी कबाड़खानो मे डाल देने जैसे हो गये थे। औद्योगीकरण एव नगरीकरण की प्रवृत्तियो के तीव्रतर होते जाने के साथ ही अच्छी यातायात सुविधाओं के लिए भी मांग बढने लगी। मौजूदा यातायात व्यवस्था के लिए भारी संख्या में नये सिरे से स्थापित किये गये प्रतिष्ठानो को कच्चा माल पहुँचा सकना तथा पुन: तैयार माल को देश के दूरस्थ क्षेत्रो तक ले जा सकना सामर्थ्य के बाहर था।

अनेक नई रेलमार्ग परियोजनाओं के निर्माण का काम हाथ मे लिया गया। इनमे सबसे महत्त्वपूर्ण लाइनें (lines) बैंकल के उत्तर (North of Baikal) से कोमसोमोल्स्क (Komsomolsk) तक तथा साइबेरिया-पार रेलमार्ग (Trans-Siberian Railroad) की एक शाखा थी जिसमे अनेक बड़े सोवियत शहर जुड गये। तुर्किस्तान-साइबेरिया रेलमार्ग (Turkestan-Siberian Railway) के निर्माण कार्य के पूरे हो जाने से, जो 1931 मे सम्पूर्ण हुई, देश मे एक महत्त्वपूर्ण रेल-कडी स्थापित हो गई। लेकिन ये रेलमार्ग देश की आवश्यकताओ को देखते हुए काफी कम थे। जहाँ 1937 मे यात्री आवागमन 6 गुना बढ चुका था तथा माल की ढुलाई भी 1913 की तुलना में 5 गुनी हो चुकी थी वहाँ इस अवधि में निर्मित अतिरिक्त रेल-लाइनो की लम्बाई मे केवल 44% की वृद्धि हुई थी। 1940 मे जाकर ही रेल-लाइनो की लम्बाई बढ कर 1,00,000 किलोमीटर के योग तक पहुँच सकी थी। पहली पचवर्षीय योजना के अन्त तक इन रेलो का प्रबन्ध काफी अकुशल बना रहा तथा कई विनाशकारी दुर्घटनाएँ हुई। इन स्थितियो मे दूसरी पचवर्षीय योजना के कार्यकाल मे सुधार हुआ।

समस्याएँ व भावी आसार

सबसे कम उपलब्धि वाला क्षेत्र दूसरी पचवर्षीय योजना मे यदि कोई रहा तो वह कृषि क्षेत्र था। यद्यपि सरकार कुलकों के वर्ग को समाप्त करने में सफल हो गई थी लेकिन कृषि के दृढीकरण (consolidation) की जबर्दस्त कार्यवाही बाकी थी। किन्तु कृषि-उत्पादन और विशेष रूप से अन्न उत्पादन बढना शुरू हो गया था। दूसरे, यद्यपि उपभोक्ता वस्तुएँ अभी भी दूसरे स्थान पर थी, जैसा कि पहले लिखा जा चुका है, उनमे भी सुधार दिखाई देने लगा था। रूसी जनसख्या के औसत जीवन-स्तर में भी सुधार हो रहा था यद्यपि पाश्चात्य जगत की तुलना मे अभी भी वह काफी नीचा था।

पूरी होने से पहले द्वितीय पचवर्षीय योजना मे कई परिवर्तन किये गये।

इनमे से अधिकाश परिवर्तन युद्ध के खतरे के कारण करने पडे। उपभोक्ता सामग्री तैयार करने वाले हल्के उद्योगो के मूल 150% वृद्धि के उत्पादन लक्ष्य को घटाकर 100% किया गया। दूसरी ओर, भारी उद्योगो के लिए लक्ष्य को और भी बढ़ावा दिया गया। भारी उद्योग की अनेक शाखाओ मे तो उत्पादन तिगुना कर दिया गया। दूसरी योजना की समाप्ति तक रूस रेल-इन्जिनो तथा मोटरचालित कृषि उपकरणो के उत्पादन म विश्व का अग्रणी देश बन चुका था। ए० जी० माजूर ने लिखा है कि 'एक जागा हुआ दानव उठ रहा था और वह अपनी सुविशाल आर्थिक क्षमता की शक्ति तथा अपनी विशाल भूमि के प्रति चेतन बन रहा था—सदियो से गहरे पैठ चुके निष्क्रियता के वातावरण से कृषको को निकालना तथा औद्योगिक श्रमिको की अल्प उत्पादकता को उच्च उत्पादकता से प्रतिस्थापित करना ही मुख्य उद्देश्य थे। तकनीकी दक्षता में सिद्धहस्तता प्राप्त करना, आधुनिक बडे पैमाने का उत्पादन करना, मात्रात्मक एव गुणात्मक उत्पादन पक्षो को मजबूत करना, जीवन-स्तर मे सुधार लाना लेकिन राष्ट्रीय सुरक्षा की कीमत पर नही—उस समय के मुख्य नारे बने रहे जब तीसरी पचवर्षीय योजना को अपनाया जा रहा था।'

दूसरी पचवर्षीय योजना के दौरान कई समस्याओ का भी सामना करना पडा। विदेशी पूँजी उपलब्ध नही थी। सोवियत सरकार अपने स्वय के ही न्यून ससाधनो से काम चलाने के लिए बाध्य थी। प्रत्येक उपलब्ध रूबल को विकास पर लगाया गया। बडी सख्या मे गाँवो से शहरो को ओर लोगो की आवक ने भीषण खाद्य एव आवास की समस्याएँ पैदा कर दी थी। किन्तु चार वर्षो मे स्थिति अधिकाधिक स्पष्ट होने लगी यद्यपि उसके लिए जो त्याग किये गये वे स्तम्भित कर देने वाले थे। सोवियत रूस का चेहरा बदल दिया गया। एक आश्चर्यजनक औद्योगिक एव कृषिगत क्रान्ति के लिए नीव डाल दी गई थी। सामाजिक ढाँचे को भी पहचाने न जा सकने वाली सीमा तक बदल दिया गया था। राष्ट्र अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर हो रहा था।

जैसे जो कुछ दो योजनाओ मे प्राप्त हो चुका था उससे सतुष्टि नही हुई थी इसलिए सोवियत सघ ने अपने सामने एक नया ही लक्ष्य रखा। लक्ष्य था, 'अमरीका को दौड में पकडना और उससे आगे निकल जाना !' (To catch-up and out-strip America !) इस उद्देश्य को पाने के लिए कोई कसर नहीं उठा रखनी थी। इसी अवधि का दूसरा नारा था 'पचवर्षीय योजना को चार वर्षो मे पूरा करो।' सामरिक महत्व के उद्योगो म उत्पादन तेजी से बढाया गया। युद्ध की पूर्व-सध्या पर 1941 मे रूस का खनिज तेल व इस्पात का उत्पादन 1928 की तुलना म चार गुना तथा कोयले का उत्पादन 6 गुना हो चुका था। भारी सख्या मे ट्रैक्टर व अन्य शक्तिचालित वाहनो का उत्पादन किया जा रहा था। 1937 मे सोवियत रूस मे 2,00,000 कारो का निर्माण हुआ। 1937 तक ट्रको के उत्पादन मे तो सोवियत रूस यूरोप का अग्रणी देश बन चुका था। 1940 तक सोवियत रूस का विद्युत-प्रजनन 50 अरब किलोवाट-घण्टे हो चुका था।

इस तथ्य को स्वीकार किया जा चुका है कि 1928 से 1937 की अवधि मे

सोवियत आर्थिक विकास पश्चिमी देशो की अपेक्षा अधिक तीव्र था। पश्चिमी देशो मे इसी अवधि मे आर्थिक विकास पर महान् मन्दी (1930) का बहुत प्रतिकूल प्रभाव पडा था। प्रो० मूरस्टीन तथा पॉवेल (Moorsteen and Powel) ने इस अवधि मे हुए सोवियत सघ के विकास के लिए भिन्न 'भारो' (weights) का उपयोग किया है। उन्होने अनुमान लगाया है कि 1937 के भारो का उपयोग करने पर 1928–37 की अवधि मे सोवियत सघ की आर्थिक विकास की दर 6 2% वार्षिक आती है जबकि 1928 के भारो का उपयोग करने पर यह विकास-दर 11 9% थी। एक अन्य पश्चिमी लेखक बर्गसन (Bergson) ने अनुमान लगाया है कि 1928 से 1937 की अवधि मे सोवियत सघ मे विनियोग दर कुल राष्ट्रीय उत्पाद (G N P) के 12 5% से बढाकर 26% कर दी गई थी तथा भारी उद्योगो के उत्पादन मे उपभोक्ता उद्योगो के उत्पादन की तुलना मे दुगुनी तेजी से वृद्धि हुई थी। बर्गसन का कहना है कि दुनिया के किसी भी अन्य देश ने इतनी कम अवधि मे अपने बचत प्रयासो को इतनी तीव्र गति से नही बढाया है। इसके साथ ही रक्षा-व्यय भी कुल राष्ट्रीय उत्पाद के 1 3% से बढकर इसी अवधि मे 7 9% हो चुका था। निजी उपभोग मे भारी कटौती की गई।

सोवियत कुल राष्ट्रीय व्यय 1928–37

(प्रतिशत मे)

	1928	1937
निजी उपभोग	79 5	52 5
सामुदायिक सेवाएँ	4 6	10 5
सरकारी प्रशासन	2 1	3 2
रक्षा	1 3	7 9
कुल स्थिर विनियोग	12 5	21 9
माल तालिकाएँ		3 9

Source A Bergson, *The Real National Income of Soviet Russia since 1928*, Harvard, 1961, 130-392

एक अन्य सरचनात्मक परिवर्तन प्रथम दो योजनाओ की अवधि मे रोजगार के क्षेत्र मे आया। 1928 से 1937 के बीच की अवधि मे गैर कृषि श्रम शक्ति कुल श्रम-शक्ति की 29% से बढकर 46% हो गई। इसी अवधि मे गैर कृषि उत्पादन भी कुल उत्पादन का 52% से बढकर 69% हो गया। यह वही काल था जिसमे सोवियत सघ से बेकारी का उन्मूलन कर दिया गया था जिससे कि शहरो की 20 लाख जनसख्या प्रभावित हो रही थी।

कई विदेशी लेखको ने सोवियत सरकार की इस बात को लेकर आलोचना की है कि उसने औद्योगीकरण मे बडी उतावली व निर्दयता (hasty and merciless) से काम लिया था। यह सही है कि सोवियत योजनाओ मे मानवीय भावनाओ के लिए कोई स्थान नही था किन्तु इसके लिए स्टालिन का उत्तर काफी रूखा था।

उसने उस वाक्य को उद्धृत किया जो लेनिन ने अक्टूबर क्रान्ति की पूर्व सध्या पर कहा था 'या तो नष्ट हो जाओ या फिर विकसित पूंजीवादी देशों से आगे निकल चलो।' (Either perish, or overtake and outstrip the advanced capitalist countries)

सोवियत शासन के लिए पचवर्षीय योजनाएँ वे उत्तोलक (levers) थी जिनसे वह राष्ट्र को लम्बे समय से चली आ रही सुस्ती की स्थिति से निकाल कर उसे अपनी छिपी हुई शक्ति व क्षमता का भान करा सकता था। औद्योगीकरण की अत्यधिक तीव्र गति के द्वारा ही सरकार बेकारी का उन्मूलन कर सकती थी तथा सोवियत सघ को विश्व के अग्रणी औद्योगिक राष्ट्रों की पक्ति मे खड़ा कर सकती थी। शायद इसी लक्ष्य को अपने मस्तिष्क में रखते हुए सोवियत सत्ता ने स्टालिन के नेतृत्व मे कभी नरम व कभी आरामदेह विकल्प (soft options) नही चुने।

आठवाँ अध्याय

नियोजन और स्टालिन युग का अन्त

(UPTO END OF STALIN ERA)

तीसरी पंचवर्षीय योजना

तीसरी पचवर्षीय योजना दूसरे महायुद्ध की विभीषिका के नीचे पूरी तरह छिप गई। उसका मुख्य ध्येय राष्ट्र की रक्षा करना बन गया। रक्षा सामग्री के उत्पादन को बढाने की दृष्टि से भारी विनियोगो को उनकी ओर मोडने की आवश्यकता पडी तथा मारिस डॉब ने लिखा है कि 'विनियोग व रक्षा पर मिले-जुले व्यय ने रूस द्वारा युद्ध मे कूद पडने से पहले के वर्ष की राष्ट्रीय आय का शायद आधा हिस्सा निगल लिया था।'

जनवरी 1934 मे ही सत्रहवी कम्युनिस्ट पार्टी काग्रेस ने विकास की गति को तीव्र करने के उद्देश्य से कुछ सशोधनो का (द्वितीय पचवर्षीय योजना मे) सुझाव दिया था। इन सशोधन मे उद्योगो मे यन्त्रीकरण (mechanisation) की गति को तीव्रतर करना, श्रम कुशलता मे वृद्धि करना, अल्प लागतो पर अच्छी किस्म की औद्योगिक वस्तुओ का उत्पादन करना तथा घरेलू बाजार के लिए उपभोक्ता वस्तुओ की बढी हुई मात्रा उपलब्ध कराना सम्मिलित थे।[1] लेकिन इन सशोधनो को आगामी योजना मे सम्मिलित करना इसलिए सम्भव नही रह गया था कि इस बीच अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति बहुत विस्फोटक हो चली थी। जब 1938 मे तीसरी पचवर्षीय योजना की घोषणा की गई तो देश के सम्मुख सबसे महत्त्वपूर्ण प्रश्न उसकी अपनी रक्षा

तुलनात्मक उत्पादन व लक्ष्य

	1938	1942 के लिए तृतीय योजना के लक्ष्य
लौह पिंड (मिलियन टन)	15	22
इस्पात ,,	18	28
कोयला ,,	133	243
खनिज तेल ,,	32	54
अनाज ,,	95	130
सूती कपड़ा (मिलियन मीटर)	3,491	4,900

Source : Maurice Dobb, *Soviet Economic Development since 1917*, 311.

[1] A. G. Mazour, *op cit*, 55.

का था। जैसे-जैसे युद्ध के बादल गहरे होते चले गए वैसे-वैसे उपभोक्ता उद्योगों की अनदेखी हुई। यह आशा, कि आखिरकार अब तीसरी योजना में तो लोगों को अधिक उपभोक्ता वस्तुएँ उपलब्ध हो सकेंगी, चूर चूर हो गई।

1942 के लिए निर्धारित इन लक्ष्यों में दूसरे महायुद्ध ने बाधा डाली। इसलिए तीसरी पचवर्षीय योजना प्राय अधूरी ही रही। 1941 तक सैनिक व्यय 1938 की तुलना में तिगुना हो चुका था। जब 1941 में नाजी जर्मनी ने सोवियत सघ पर आक्रमण कर दिया तो देश के सामने एकमात्र प्रश्न उसके अपने अस्तित्व की रक्षा का रह गया था।

योजना के मुख्य उद्देश्य

(1) यातायात के विकास पर अत्यधिक बल दिया गया जिसे युद्ध एव शाति दोनों ही समयों में अत्यधिक महत्त्वपूर्ण माना गया।

(2) अलौह धातुओं (Non-ferrous metals) का उत्पादन तथा रसायन उद्योग के विकास को सर्वोच्च प्राथमिकता दी गई। *'तीसरी योजना को रसायन योजना बनाओ'—नारा दिया गया।*

(3) उद्योगों को देश के पूर्वी भाग में स्थानान्तरित करने के काम में तेजी लानी थी। कॉकेशियाई तेल क्षेत्र (Caubasian oil fields) काफी असुरक्षित थे। युद्ध के समय तेल की पूर्ति से वचित हो जाने के सम्भावित खतरे से बचने के लिए यूराल के तेल क्षेत्रों में (जहाँ तेल उन्हीं वर्षों में मिला था) तेल की और खोज को तीव्र कर दिया गया।

(4) तीसरी पचवर्षीय योजना का मूल बिन्दु भारी उद्योगों का विकास करना बना रहा। रक्षा आवश्यकताओं को देखते हुए यह लक्ष्य और भी महत्त्वपूर्ण बन गया।

(5) युद्ध को निकट ही भांपते हुए तीसरी पचवर्षीय योजना में शुरू से ही राष्ट्रीय प्रतिरक्षा उपायों को दृढ करने के उपायों पर बल दिया गया। इसी बात को ध्यान में रखते हुए तीसरी योजना में राष्ट्रीय यातायात व्यवस्था स्थापित करने, इस्पात मशीनी औजार तथा रासायनिक उद्योगों का निर्माण करने का लक्ष्य रखा गया था। सैनिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण धातुओं को प्राथमिकता दी गई। योजना में कुछ रेलमार्गों का विद्युतीकरण करने तथा अन्य कुछ मार्गों पर दोहरी लाइनें बिछाने का भी लक्ष्य रखा गया।

युद्ध के लिए तैयारी से लोगों को 'परिश्रम और रक्त' ही मिलने का वायदा था। जैसा कि डॉब ने लिखा है, 'साधारण नागरिक के लिए तगी के वर्षों में उसके द्वारा की गई मेहनत के फल जैसे ही पकने लगे थे वैसे ही उन्हें पहले तो शस्त्रीकरण के लिए किये जा रहे प्रयासों ने तथा बाद में निर्दयी व थका देने वाले युद्ध ने छीन लिया।'

(6) तीसरी पचवर्षीय योजना ने पहले की औद्योगिक प्रतिष्ठान बनाने की नीति का परित्याग करने का उद्देश्य भी रखा। ऐसा इसलिए किया गया क्योंकि बड़े प्रतिष्ठानों का सगर्भता काल (gestation period) अत्यधिक लम्बा होता था।

सामरिक दृष्टि से कुछ ही प्रतिष्ठानों पर अत्यधिक निर्भरता भी अबुद्धिमत्तापूर्ण समझी गई। इसके परिणामस्वरूप उद्योगो को विभिन्न प्रदेशो मे फैलाकर स्थापित करने तथा छोटे कारखाने बनाने की नीति अपनाने का निर्णय लिया गया।

द्वितीय महायुद्ध के प्रभाव

प्रथम दो पचवर्षीय योजनाओ मे उपभोक्ताओ की अनदेखी की गई थी क्योंकि योजनाकार एक औद्योगिक आधार का जल्दी से निर्माण करना चाहते थे। एक नया तत्त्व जो उन्हे आवश्यक उपभोक्ता वस्तुओ से आगे भी वचित रखने वाला था वह *शस्त्र निर्माण पर अत्यधिक व्यय की नयी रफ्तार थी और साथ ही उद्योगो को युद्ध* सामग्री का उत्पादन करने के लिए रूपान्तरित करने की प्रवृत्ति थी। कुल मिलाकर केवल 15% विनियोग उपभोक्ता वस्तुओ के लिए बच रहा था। औद्योगिक उत्पादन के लिए सर्वांगीण विकास दर तीसरी योजना के लिए 14% रखी गई थी। यह साधारण दर भी प्राप्त नही की जा सकी। आक्रमक देश जर्मनी निश्चय ही अधिक शक्तिशाली देश था। रूस जैसे देश के लिए, जिसके पीछे एक दशक के नियोजन का ही आधार था, ऐसे शक्तिशाली शत्रु का सामना करना काफी कठिन काम था। अन्तिम रूप से जो बात सोवियत रूस के पक्ष मे रही और जिसने उसे युद्ध मे विजय भी दिलाई वह उसकी आर्थिक शक्ति से कुछ अधिक ही रही।

द्वितीय महायुद्ध ने एक बात सिद्ध कर दी कि सोवियत सघ का नियोजित विकास एक सही दिशा मे उठाया गया कदम था। उसी के बल पर देश अपने उद्योगो को बहुत ही अल्प सूचना पर युद्ध सामग्री के निर्माण के लिए रूपान्तरित कर सका था। लेकिन साथ ही युद्ध ने कुछ खनिजो तथा कुछ औद्योगिक उपकरणो जैसे मशीनी औजार की कमी को और भी खराब स्थिति मे पहुँचा दिया।

युद्ध ने देश मे भारी विनाश का दृश्य उपस्थित कर दिया। 1942 की सर्दी के मौसम मे किया गया आकस्मिक आक्रमण सोवियत सघ के लिए बडा महँगा पडा। जर्मन फौजे उसकी सीमाओ के 1,200 मील भीतर घुस आई तथा उसे उसके कई खनिज व औद्योगिक केन्द्रो से वचित कर दिया। कोयले, लोहे, इस्पात व खनिज तेल की आपूर्ति 60 से 70 प्रतिशत तक घट गई तथा कृषि पदार्थों का उत्पादन भी 35 प्रतिशत कम हो गया। जैसे-जैसे जर्मन फौज आगे बढी रूसी लोग अपने उद्योगो को पूर्वी प्रदेशो की ओर ले जाते रहे। लेनिनग्राड उद्योगो का लगभग 70% साज-सामान 1941–42 के दौरान खाली किया गया था। 'वीरान इलाको मे मनुष्यो को ले जाकर बसाने का भी काम किया गया। ऐसे युद्ध निर्वासित लोग, जिन्हे फिर से नए इलाको मे बसाया गया, 12 मिलियन के लगभग रहे।'[1]

यह अनुमान लगाया गया कि युद्ध ने सोवियत सघ की उत्पादन क्षमता मे एक-चौथाई कमी कर दी थी। इतना ही नही, युद्ध ने लगभग ढाई करोड लोगो को बेघर कर दिया था।

[1] M Dobb, *Soviet Economic Development since 1917*, 299-300

पुनर्निर्माण कार्यक्रम

युद्ध के वर्षों मे उद्योगो के पूर्वी भागो मे स्थानान्तरित कर दिये जाने से देश मे आवश्यक वस्तुओ की पूर्ति बनी रही क्योंकि इन स्थानान्तरित उद्योगो ने 1943 मे ही उत्पादन आरम्भ कर दिया था। लेकिन युद्ध ने जो सर्वाधिक विशालकाय और अत्यावश्यक समस्या छोडी थी वह ध्वस्त हो चुके विशाल क्षेत्रो को फिर से आबाद करने की थी। लाखो, करोडो लोगो को, जो निर्वासित या अपग हो गये थे, फिर से बसाने की समस्या सबसे अधिक दबाव डाल रही थी। सरकारी आँकडो के अनुसार, द्वितीय विश्व युद्ध के कारण सोवियत सघ को 485 अरब अमरीकी डॉलरों के बराबर हानि उठानी पडी जो उसकी 6 वर्षो की कुल राष्ट्रीय आय के बराबर थी। सम्पत्ति का होने वाला नुकसान इस प्रकार रहा 1,710 शहर, 70,000 गाँव, 35,000 प्लाट व कारखाने, 40,000 अस्पताल, 60 लाख भवन, तथा कम से कम ढाई करोड बेघरबार लोग। सोवियत सरकार द्वारा प्रकाशित युद्ध के पन्द्रह वर्ष के बाद के आँकडो से स्पष्ट होता है कि उसका इस्पात उत्पादन 1942 मे 60 प्रतिशत से गिर गया—अर्थात् 18 मिलियन टन से घट कर 8 मिलियन टन रह गया था। कोयले का उत्पादन 1940 के 166 मिलियन टन से घटकर 1942 मे 75 मिलियन टन रह गया। अनाज के उत्पादन मे भी भारी गिरावट आयी क्योंकि कृषित क्षेत्र मे 60% की कमी आ गई थी। एक ऐसी अर्थव्यवस्था, जिसको इतनी अधिक हानि सहनी पडी हो, का पुनर्निर्माण कोई आसान काम नही था। यह काम कम से कम तीसरी पचवर्षीय योजना की तो सामर्थ्य के बाहर की बात थी। यह भीषण कार्य चौथी पचवर्षीय योजना के लिए छोड दिया गया।

चौथी पचवर्षीय योजना

देश के सामने सबसे आवश्यक कार्य युद्ध-पूर्व के कृषि व औद्योगिक उत्पादन स्तरो को पुन प्राप्त करना था। यही वह एकमात्र उपाय था जो जीवन-स्तर को ऊँचा उठा सकता था तथा अर्थव्यवस्था की गाडी को पुन पटरियो पर ला सकता था। इस अत्यावश्यक कार्य को प्रभावी रूप प्रदान करने के उद्देश्य से ही 18 मार्च 1946 को चतुर्थ पचवर्षीय योजना स्वीकार की गई।

चौथी योजना से 1946–50 के दौरान सोवियत अर्थव्यवस्था के पुनर्निर्माण एव विकास कार्य को पूरा करने की अपेक्षा की गई। उद्योगो के विकास के लिए 205 अरब रूबल की एक बहुत बडी राशि आवटित की गई। भारी उद्योग अब भी विकास कार्यक्रम का केन्द्र-बिन्दु बने रहे क्योंकि यह तर्क दिया गया कि विकास व पुनर्निर्माण के लिए सामग्री इनसे ही प्राप्त हो सकती है। इसके अतिरिक्त देश की सैनिक क्षमता को न केवल बनाये रखने की आवश्यकता थी बल्कि उसका विकास करने की भी आवश्यकता थी ताकि अमरीका की बराबरी की जा सके। यह सब देश के औद्योगीकरण से ही सम्भव था।

अत चौथी योजना मे लोहा व इस्पात, कोयला, मशीन-निर्माण तथा खाद्यान्न

के उत्पादन में बहुत ऊँची वृद्धि दर प्राप्त करने की बात कही गई। लौहा व इस्पात का उत्पादन युद्ध-पूर्व के उत्पादन स्तर से भी 35% ऊपर रखा गया, कोयले का उत्पादन 50% तथा विद्युत शक्ति का उत्पादन 70% ऊपर रखा गया। सबसे असाधारण लक्ष्य इंजीनियरिंग वस्तु उद्योग के लिए निर्धारित किये गये मशीनों का उत्पादन दुगुना करने का लक्ष्य रखा गया। ट्रैक्टरों तथा मोटरों का उत्पादन लक्ष्य युद्ध-पूर्व के उत्पादन से साढ़े-तीन गुना रखा गया।

अक्टूबर 1948 में सोवियत सरकार ने अगले 15 वर्षों के लिए एक भूमि पुनर्ग्रहण कार्यक्रम (land reclamation programme) घोषित किया जिसमें 300 मिलियन एकड़ भूमि सम्मिलित की जानी थी। कार्यक्रम के बारे में की गई, सरकारी घोषणा में कहा गया कि यह कार्यक्रम, 'सूखा पड़ने के विरुद्ध आक्रमण था था जिसमें कृषि के सबसे पुराने शत्रु पर विजय सुनिश्चित थी।' इस योजना के कई पहलू थे जिनमें भूमि के कटाव को रोकना, सिंचाई की सुविधाओं में वृद्धि करना, नए वन लगाना तथा यन्त्रीकृत खेती करना सम्मिलित थे। इस विशाल कृषि कार्यक्रम के लिए भारी मात्रा में विनियोग की आवश्यकता थी। सरकार ने फिर एक बार घरेलू बचत की दर को बढ़ाने की नीति अपनायी।

इसे विडम्बना ही कहा जाना चाहिए लेकिन चौथी योजना में भी उपभोक्ता वस्तुओं के उत्पादन के बारे में कोई सुनिश्चित लक्ष्य निर्धारित नहीं किये गये। उन्हें अपने हाल पर ही छोड़ दिया गया। टिकाऊ उपभोक्ता वस्तुओं का उत्पादन बढ़ाने के बारे में कुछ शब्द कहे गये। लेकिन उपभोक्ता उद्योगों के प्रसार की दर भारी उद्योगों के प्रसार की दर से काफी नीची बनी रही।

आधारभूत उद्योगों की वस्तुओं के उत्पादन में औसत वार्षिक निरपेक्ष वृद्धियाँ

(पंचवर्षीय योजनाओं के परिणाम)

	पहली योजना 1928–32	दूसरी योजना 1933–37	तीसरी योजना 1938–40	चौथी योजना 1946–50
विद्युत (000 मिलियन कि०वा०)	2 1	4 5	4 0	9 6
तेल (मिलियन टन)	2 4	1 4	0 9	3 7
कोयला ,,	7 2	12 7	12 7	22 4
लौह पिंड ,,	0 7	1 7	0 1	2 1
इस्पात ,,	0 4	2 4	0 2	3 0

Source SSSR v tsifzakh v 1970, Moscow, 1971, 90

आधारभूत औद्योगिक वस्तुओं की औसत वार्षिक निरपेक्ष वृद्धियों के ये आँकड़े स्पष्ट करते हैं कि ये वार्षिक वृद्धियाँ अन्य तीन योजनाओं की तुलना में चतुर्थ योजना में काफी ऊँची रहीं। स्पष्टतः चतुर्थ योजना की इन क्षेत्रों में उपलब्धियाँ काफी ठीक रहीं।

मुख्य फसलों का उत्पादन

(मिलियन टन मे)

मुख्य फसल	1928	1940	1950
अनाज	73	96	81
कपास	0 79	2 24	3 54
चुकन्दर	10	18	21
आलू	46	76	[illegible]
सब्जियाँ	11	14	9

Source SSSR, *op cit*, 108

आँकडो से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि 1950 तक भी सोवियत सघ का अनाज का उत्पादन 1913 के 86 मिलियन टन के अनाज उत्पादन स्तर को प्राप्त नही कर पाया था। अन्य कृषि पदार्थों का उत्पादन स्तर भी बहुत अच्छा नही रहा।

चौथी पचवर्षीय योजना के पहले दो वर्ष काफी कठिन रहे। देश मे ऐसा सूखा पडा जो पिछले 50 वर्षों मे कभी नही पडा था। उद्योग का पुनरुद्धार भी 1947 तक ही सम्भव हो पाया। मौद्रिक सुधार किये गये तथा पुराने रूबल की जगह नया रूबल चलाया गया। दिसम्बर 1947 तक खाद्य पदार्थों का राशनिंग भी समाप्त कर दिया गया। वास्तविक मजदूरी मे काफी वृद्धि हुई। खुदरा मूल्य स्तर को नीचे लाया गया। 1954 मे वह युद्ध पूर्व के स्तर से केवल 20% ही अधिक था जबकि मजदूरी का स्तर युद्ध पूर्व की अपेक्षा 65% ऊपर था। इस तरह चौथी योजना के लक्ष्य उसकी अवधि समाप्त होने से पहले ही पूरे हो चुके थे। औद्योगिक उत्पादन युद्ध-पूर्व के स्तर से 70% ऊपर पहुँच चुका था यद्यपि उपभोक्ता वस्तुओं का उत्पादन करने वाले उद्योगों की युद्ध पूर्व की विकास दर पर 23% की वृद्धि ही हो पायी थी। चतुर्थ पचवर्षीय योजना की एकमात्र कमजोरी यही रही कि उसके दौरान खाद्यान्नो के उत्पादन का पुनरुद्धार नही हो पाया।

1953 मे आर्थिक स्थिति

1953 मे स्टालिन की मृत्यु सोवियत सघ की अर्थव्यवस्था के इतिहास मे एक युग की समाप्ति का प्रतीक मानी जा सकती है। स्टालिन ही वह व्यक्ति था जिसने देश मे आयोजन की पद्धति शुरू की थी तथा उसे नियन्त्रित किया था। क्योंकि वह भारी उद्योगो का पक्षधर था इसलिए उसके शासन काल मे भारी उद्योग बराबर पनपते रहे। मनोवैज्ञानिक धरातल पर यदि इस सम्पूर्ण स्थिति का विश्लेषण किया जाये तो यही प्रतीत होता है कि भारी सयन्त्र या उद्योग स्टालिन को शक्ति व सुरक्षा की भावना का अनुभव कराते थे। वह भारी उद्योगो को पहली व सर्वोच्च प्राथमिकता देने की अपनी घोषित नीति से कभी विचलित नही हुआ। स्टालिन की मृत्यु के समय कृषि की स्थिति काफी शोचनीय थी जब स्टालिन की मृत्यु हुई। ऐसा इसलिए हुआ कि निजी पहल (*private initiative*) के अभाव मे स्टालिन युग मे किये गये कृषि सुधार के प्रयास सफल नही रहे।

नियोजित अर्थव्यवस्था के पच्चीस वर्षों मे अर्थात् चौथाई सदी मे औद्योगीकरण के क्षेत्र मे सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए। कुशल श्रमिको व कर्मचारीगणो की सख्या मे भारी वृद्धि हुई। तकनीकी विशेषज्ञो (Technocrats) तथा वैज्ञानिको का वर्ग अधिकाधिक प्रभावशाली बनता जा रहा था। सोवियत सघ एक ऐसी स्थिति मे पहुँच चुका था जहाँ वह कई यूरोपीय देशो से आगे निकल सकता था।

युद्धोत्तर काल मे भी सोवियत सघ का पुनरुद्धार तेजी से हुआ। 1937 से 1953 तक की अवधि मे सोवियत अर्थव्यवस्था की औसत वार्षिक विकास दर 3 5% के लगभग रही। यह विकास दर किसी भी पश्चिम यूरोप के देश से अधिक ऊँची थी। यह तो केवल कृषि का क्षेत्र ही ऐसा रहा जिसमे सोवियत सघ कोई महत्त्वपूर्ण उपलब्धि नही कर पाया। किन्तु कृषि के क्षेत्र मे भी एक सरचनात्मक परिवर्तन आ चुका था जिसके कृषि पर दूरगामी प्रभाव पडने अवश्यम्भावी थे।

कृषि का कुल रोजगार व राष्ट्रीय उत्पाद (G N P.)
मे भाग (1926–65)

	1928	1937	1953	1965
रोजगार	71	54	40	[illegible]
कुल राष्ट्रीय उत्पाद (G N P)	48	31	19	15

किन्तु यह बात भी सर्वविदित हो गई थी कि सामूहिकीकरण के प्रयोगो के वाछित परिणाम सोवियत कृषि के क्षेत्र मे परिलक्षित नही हुए हैं। स्टालिन की मृत्यु की पूर्व सध्या पर रूस जितना अनाज पैदा कर रहा था वह 1914 के स्तर की तुलना मे मात्र 10% ही ऊपर था। प्रति व्यक्ति खेतीहर आय भी सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के लिए आय के औसत से आधी ही थी। किसान सम्पत्तिहीन हो चुके थे तथा इन कृषको को इस बात का भारी अफसोस भी था। स्टालिन के क्रूर तरीको की भी भर्त्सना की गई। वह देश की 2% जनसख्या (लगभग 40 लाख) के जबरन मजदूरी कैम्पो मे कारावास व यातना भोगने के लिए भी उत्तरदायी था। सोवियत कृषि का जहाँ तक प्रश्न है, स्टालिन ने उसकी जितनी समस्याएँ हल की थी उनसे अधिक उसने पैदा कर दी थी।

नवाँ अध्याय

स्टालिनेतर युग में नियोजन

(PLANNING IN POST-STALIN ERA)

मार्च 1953 में स्टालिन की मृत्यु ने सोवियत राजनीति में एक रिक्तता ला दी। सोवियत संघ के नेतृत्व में शीघ्रता से परिवर्तन होते रहे। उसका प्रधानमन्त्री पद जल्दी-जल्दी व एक के बाद एक—मेलेंकोव (Malenkov), बुलगानिन (Bulganin) तथा ख्रुश्चेव (Khruschev) को मिला। नेतृत्व में इतनी शीघ्रता से परिवर्तन स्टालिन के बाद के रूसी नेताओं में परस्पर विरोधी विचारधाराएँ होने के कारण हुए। स्टालिन ने तो सदैव भारी उद्योगों को सर्वोच्च प्राथमिकता देने में विश्वास किया था। उसने 1930 के बाद से ही कृषि के क्षेत्र में भी सामूहिकीकरण की नीति को बराबर जारी रखा था। इस सामूहिकीकरण की नीति की ही अब पुनर्परीक्षा की जा रही थी।

पाँचवी पंचवर्षीय योजना की सार्वजनिक रूप से घोषणा अक्टूबर 1952 में उन्नीसवीं पार्टी कांग्रेस में कर दी गई थी।

पाँचवी पंचवर्षीय योजना

उद्देश्य व मुख्य उपाय

(1) **उपभोक्ता वस्तुओं पर बल**—पाँचवी पंचवर्षीय योजना पहली अन्य योजनाओं से कुछ इस रूप में भिन्न थी कि उसमें उपभोक्ता वस्तुओं तथा पूँजीगत वस्तुओं के उत्पादन को लगभग एक समान प्राथमिकता प्रदान करने का लक्ष्य रखा गया था। पूँजीगत एवं उपभोक्ता वस्तुओं के उत्पादन लक्ष्य क्रमशः 80% व 65% वृद्धि के रखे गये। प्रधानमन्त्री मेलेंकोव, जो स्टालिन का उत्तराधिकारी बना, का यह विश्वास था कि अब समय आ गया है कि जब हमेशा से अनदेखे किये जाते रहे सोवियत उपभोक्ता के कल्याण पर भी ध्यान दिया जाना चाहिए। अप्रैल 1953 में इस आशय की एक सरकारी घोषणा की गई कि सरकार ने अनेक उपभोक्ता वस्तुओं तथा खाद्य पदार्थों के मूल्य घटाने का फैसला किया है। परिणामस्वरूप माँस के मूल्यों में 15%, औरतों के कपड़ों में 14%, सब्जियों में 50% तथा रोटी के मूल्यों में 10% की कटौती की गई। उपभोक्ताओं के हाथों में अधिक क्रय-शक्ति छोड़ने के उद्देश्य से सरकार ने राजकीय बाँण्डों की अनिवार्य खरीद में भी 50% की कटौती कर दी।

इस अकेले उपाय ने सोवियत उपभोक्ताओं को इतनी राहत प्रदान की कि उनके पास अब उपभोक्ता वस्तुओं पर खर्च करने के लिए 1 5 अरब स्वल अधिक राशि थी। किन्तु उपभोक्ताओं के हाथों में क्रय शक्ति बढ़ा देने मात्र से समस्या का समाधान नहीं हो गया। अर्थव्यवस्था में उपभोक्ता वस्तुओं की भारी कमी बनी हुई थी।

अगस्त 1953 में सर्वोच्च सोवियत (Supreme Soviet) के समक्ष प्रधानमन्त्री मेलेंकोव ने दलील दी कि हालांकि बड़े उद्योगों को सर्वोच्च प्राथमिकता दी जाती रहनी चाहिए किन्तु अब उपभोक्ता वस्तुओं का उत्पादन बढ़ाने के लिए भी अनुकूल दशाएं विद्यमान हैं। उसने इस कदम की अत्यावश्यकता पर भी जोर दिया। इस उद्देश्य के लिए, उसने आगे कहा, अनेकों औद्योगिक प्रतिष्ठानों को बड़े पैमाने पर उपभोक्ता वस्तुओं का उत्पादन करने वाले कारखानों में रूपान्तरित करना होगा। ऐसा कहकर मानो मेलेंकोव ने तो मधु-मक्खी या ततैयों के छत्ते को छेड़ दिया था। उपभोक्ता वस्तुओं के उत्पादन में वृद्धि करने का प्रश्न स्टालिन युग में केवल अकादमिक महत्त्व (academic interest) व हल्के-फुल्के मतलब का ही रहा था। मेलेंकोव के विरोधियों ने अब यह तर्क पेश किया कि इस प्रकार की नीति सोवियत राज्य की सुरक्षा के लिए हानिकारक होगी तथा वह उसकी औद्योगिक प्रगति पर भी विपरीत प्रभाव डालेगी। इस तरह मेलेंकोव के प्रस्ताव का अनुमोदन नहीं हो पाया तथा उसे त्यागपत्र देकर अलग होना पड़ा। उसका विरोधी ख्रुश्चेव था जो कुछ वर्षों बाद स्वयं भी इन्हीं नीतियों पर लौटा था।

(2) अनाज का उत्पादन बढ़ाना—पाँचवीं पंचवर्षीय योजना का दूसरा महत्त्वपूर्ण उद्देश्य अनाज के उत्पादन में 40 से 50 प्रतिशत तक की वृद्धि करना था। पिछली उपलब्धियों को देखते हुए यह काफी महत्वाकांक्षी लक्ष्य था। अन्य कृषिगत वस्तुओं के लिए भी उतने ही महत्त्वाकांक्षी लक्ष्य रखे गये। यहाँ भी मेलेंकोव कुछ परिवर्तन करना चाहता था। उसकी इच्छा कृषि पदार्थों का मूल्य बढ़ाने की थी ताकि कृषकों को कुछ अधिक उत्पादन बढ़ाने सम्बन्धी अभिप्रेरणा मिल सके। उसने सामूहिक कृषक द्वारा उसके अपने निजी खेत की देखभाल में भी अधिक स्वतन्त्रता प्रदान करने की वकालत की। उसने यह भी तर्क दिया कि कृषकों को सब्जियों व अन्य डेयरी उत्पादनों के लिए ऊँचे मूल्य दिये जाने चाहिए ताकि उन्हें उनका उत्पादन बढ़ाने के लिए अभिप्रेरणा (incentive) मिल सके।

लेकिन पार्टी ने इन रियायतों को दूसरी ही दृष्टि से देखा। यह भय व्यक्त किया गया कि इस तरह की रियायतें पार्टी के आदर्शों (समाजवादी) के विरुद्ध होंगी। एक अधिक सावधानीपूर्ण कदम लेने की सिफारिश की गई। सिद्धान्त रूप में सामूहिक किसान द्वारा अपने निजी भूमि के टुकड़े (private plot) पर अधिक समय दे सकने की अनुमति देने की बात स्वीकार की गई लेकिन ऐसा सामूहिक खेत के काम की कीमत पर नहीं किया जाना था। 1954 में सरकार ने घोषणा की कि सामूहिक फार्म के प्रत्येक पुरुष सदस्य को वर्ष में 300 कार्य दिवस तथा स्त्री-सदस्य को 200 कार्य दिवस तक काम करना होगा।

पाँचवी योजना का मूल्यांकन

यह एक दुर्भाग्यपूर्ण बात रही कि मेलेंकोव द्वारा किसानो के लिए रियायतो तथा उपभोक्ताओ के लिए हितकारी बातें 1953 के खराब फसल वाले वर्ष में कही गई। 1950 के दशक के आरम्भिक वर्षों मे अनाज के उत्पादन मे कोई वृद्धि नही हुई थी। पशुओ के चारे व आहार की भी भारी कमी थी जिससे दूध व मास का उत्पादन भी घट गया था। पुन एक बार कृषि उत्पादन को बढाने के उपाय किये गये। मेलेंकोव का विरोध कर चुकने के बावजूद पार्टी ने अब आर्थिक अभिप्रेरणाओ पर प्रशासनिक उपायो से अधिक निर्भरता रखने की बात स्वीकार की। पाँचवी पचवर्षीय योजना के अन्तिम वर्ष में अनाज के उत्पादन मे 1950 के स्तर पर 29% की वृद्धि हुई।

1950–55 की अवधि के दौरान औद्योगिक उत्पादन मे 85% की वृद्धि हुई। पहली बार उपभोक्ता वस्तु उद्योगो के उत्पादन मे 76% की वृद्धि रिकार्ड की गई। पूँजीगत वस्तुओ के उत्पादन की प्रमुखता फिर भी बनी रही तथा इसी अवधि में 80% के वृद्धि-लक्ष्य की तुलना में उनका उत्पादन 91% से बढा। उद्योग के क्षेत्र में यह विकास दर वास्तव में असाधारण थी। इसकी प्रशसा करते हुए डॉब ने लिखा कि 'यह अमरीका मे 1899 से 1937 के बीच रही विकास दर की तीन गुना, पश्चिमी यूरोप के देशो मे औद्योगिक उत्पादन में 1950 से 1955 के बीच की वृद्धि दर की भी तीन गुना तथा इस अवधि मे अमरीकी विकास दर की दुगुनी थी।'[1]

आधारभूत औद्योगिक वस्तुओ मे औसत वार्षिक निरपेक्ष वृद्धि
(पचवर्षीय योजनाओ के परिणाम)

	पाँचवी योजना 1951–1955	छठी योजना 1956–1960	सातवी योजना 1961–1965	आठवी योजना 1966–1970
विद्युत, 000 मिलियन (कि०वा०)	16	24	43	47
तेल (मिलियन टन)	7	15	19	22
कोयला (,,)	26	24	14	9
लौह पिंड ( )	3	3	4	4
इस्पात (,,)	4	4	5	5

छठी पंचवर्षीय योजना

1956 मे जब ख्रुश्चेव (Khrushcev) ने प्रधानमन्त्री पद सम्भाला तो राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के प्रबन्ध एव नियन्त्रण मे अनेक महत्वपूर्ण परिवर्तन किये गये। औद्योगिक श्रमिको के लिए अधिक स्वतन्त्रता स्वीकृत की गई जो उन्हे स्टालिन के समय मे कभी नही मिली थी। मजदूरी तथा पेंशनो की नई दरें सुझाने के लिए एक राजकीय समिति नियुक्त की गई। जोखिम वाले कामो मे लगे हुए श्रमिको के लिए अधिक मजदूरी की सिफारिश की गई। श्रम-सघो को अधिक सक्रिय रूप से कार्य

करने की छूट दी गई तथा प्रबन्ध के मामलो और मजदूरी तथा तकनीकी सुधारो को लेकर उन्हे अधिक आलोचनात्मक व स्पष्ट सम्मति देने की अनुमति दे दी गई। इस प्रकार सोवियत सघ मे एक परिवर्तन जन्म ले रहा था।

उद्देश्य

1956 मे प्रारम्भ की गई छठी योजना मे भारी उद्योगो के समर्थको तथा उपभोक्ता वस्तुओ के प्रवक्ताओ के बीच एक प्रकार का समझौता कराने का प्रयास किया गया था।[1] योजना मे राष्ट्रीय आय 60% वृद्धि का लक्ष्य रखा गया। औद्योगिक उत्पादन मे 65% वृद्धि तथा मजदूरी मे 30% वृद्धि का आश्वासन भी इस योजना के उद्देश्यो मे सम्मिलित किया गया।

उपभोक्ता वस्तु उद्योगो तथा पूँजीगत वस्तु उद्योगो के उत्पादनो मे वृद्धि की दरे क्रमश 60% व 70% निर्धारित की गयी। इन दोनो के बीच अन्तर घटाने का विचार व्यक्त किया गया। उपभोक्ता वस्तुओ का उत्पादन बढाने की प्रवृत्ति पाँचवी पचवर्षीय योजना द्वारा शुरू की गई। इस बारे मे महत्त्वपूर्ण बात यह थी कि दोनो क्षेत्रो—पूँजीगत व उपभोक्ता वस्तु—के बीच केवल अन्तर ही कम किया जाना था। इस तरह भारी उद्योगो को सर्वोच्च प्राथमिकता अन्य योजनाओं की तरह इस योजना मे भी दी जाती रही।

योजनावधि मे अनाज का उत्पादन 38% से बढाने का लक्ष्य रखा गया। इस वृद्धि का अधिकाश भाग 'नई भूमि आन्दोलन' (virgin soil campaign) नाम के कार्यक्रम से प्राप्त किया जाता था। कृषि का तीव्र गति से यन्त्रीकरण करने का काम हाथ मे लिया गया। 5 लाख से भी अधिक हारवेस्टर तथा 15 लाख से भी अधिक ट्रैक्टर उपलब्ध कराने की योजना तैयार की गई। योजनावधि मे मास तथा दूध की पूर्ति को दुगुना करने का लक्ष्य रखा गया। भारी पैमाने पर आवासीय व्यवस्था के लिए मकानो के निर्माण की शुरुआत की गई।

वर्ष	मकानो का निर्माण (मिलियन वर्ग मीटर मे)
1953	31
1954	33
1955	34
1956	41
1957	52
1958	71
1959	81
1960	83

श्रम उत्पादकता बढाने पर अधिक जोर दिया गया। स्वचालित (automation) प्रणाली को बडे पैमाने पर लागू करने का प्रस्ताव था। पिछली योजनाओ मे श्रम-उत्पादकता में वृद्धि करने के लक्ष्य, दूसरी पचवर्षीय योजना को छोडकर शायद

[1] A G Mazour, *op cit*, 69

ही कभी पूरी तरह प्राप्त हो पाये थे। परिणाम यह रहा कि उद्योगो के उत्पादन मे इस दौरान जितनी वृद्धियाँ हुईं वे अक्सर रोजगार मे अधिक श्रमिको को लेने के कारण रही। लेकिन छठी योजना मे रोजगार मे वृद्धि करने का लक्ष्य 15% का ही रखा गया जो पिछले लक्ष्यों को देखते हुए काफी नीचा ही था। किन्तु उत्पादकता में वृद्धि करने का लक्ष्य 50 प्रतिशत रखा गया था। वास्तविक मजदूरी मे 30% की वृद्धि तथा किसानो की आय मे 40 प्रतिशत वृद्धि का प्रस्ताव था।

लेकिन, कई कारणो से, इस सारी योजना को 1957 मे सशोधित करना पडा।

आधारभूत परिवर्तन

छठी योजना मे ख्रुश्चेव ने अनेक क्षेत्रो मे आधारभूत परिवर्तन किये। सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन औद्योगिक प्रबन्ध (Industrial Management) तथा प्रशासन मे किये गये। इसने औद्योगिक प्रबन्ध की नवीनतम तक्नीक न अपना पाने की अनेक असफलताओ को स्पष्ट किया। 1956 मे अनेक ऐसी कठिनाइयाँ भी पैदा हो गई थी जिन्होने योजना के क्रियान्वयन को बहुत दुष्कर बना दिया था। यह गणना की गई कि 1957 के लिए 7 अरब रूबल की अतिरिक्त राशि तथा योजना के शेष वर्षों के लिए 37 अरब रूबल की राशि निर्धारित लक्ष्यो को प्राप्त करने के लिए अतिरिक्त समाधनो के रूप मे जुटाई जानी होगी। ख्रुश्चेव ने सत्ता सभालने के बाद यह भी बताया कि योजना को 'काफी अपव्ययपूर्ण तरीके से, महँगी लागतों पर तथा भारी नुकसान मे' चलाया जा रहा था। ख्रुश्चेव इस सारी स्थिति से अप्रसन्न था तथा उसने 1957 म पार्टी की केन्द्रीय समिति से कहा था कि प्रशासनिक ढाँचे मे पूर्णरूप से परिवर्तन (overhauling the administration) की आवश्यकता है। उसने चली आ रही लापरवाही, अपव्यय, विकेन्द्रीकरण के अभाव तथा इनसे भी ऊपर प्रशासन के व्यर्थ के केन्द्रीकरण पर तीखे प्रहार किये जो कि विभिन्न योजनाओ मे दिखाई देते थे।[1]

मई 1957 मे सर्वोच्च सोवियत (Supreme Soviet) ने केन्द्रीय समिति (Central Committee) की सिफारिशो का अनुमोदन कर दिया तथा योजना की प्रणाली को अधिक विकेन्द्रीकृत कर दिया गया। 25 मुख्य आर्थिक मन्त्रालयो को समाप्त कर दिया गया। उनकी सत्ता अब 105 क्षेत्रीय आर्थिक सगठनो (Regional Economic Organisations) के हाथो मे सौंप दी गई जिन्हे राष्ट्रीय आर्थिक परिषद् (Council of the National Economy) के प्रत्यक्ष अधिकार-क्षेत्र मे रखा गया। मास्को मे अखिल सोवियत राज्य आयोजन समिति (All Soviet State Planning Committee) को राष्ट्रीय आयोजन व समन्वयन का प्रभारी (incharge) बनाया गया।

इन सभी परिवर्तनों ने नियोजन को विकेन्द्रित करने मे तो काफी योगदान दिया लेकिन उनसे स्थानीय दबावो (local pressures) तथा आर्थिक प्रदेशवाद

[1] *Ibid*, 70

(Economic provincialism) की सम्भावनाओं के बढ़ने का भी अन्देशा उत्पन्न हो गया।

सम्पूर्ण आर्थिक नियोजन व्यवस्था के पूरी तरह संशोधित कर दिये जाने से भी वांछित परिणाम नहीं निकल सके क्योंकि इस बीच कुछ महत्वपूर्ण उद्योगों की प्रगति की रफ्तार धीमी पड़ने लग गई थी। कृषि में भी तो प्रमुख परिवर्तन शुरू किये गये थे। मशीन ट्रैक्टर स्टेशनों (M T S) को साधारणतया समाप्त कर दिया गया था तथा पुरानी जटिल राजकीय खरीद की व्यवस्था के स्थान पर भी एकरूप क्रय-प्रणाली, जिसमें क्षेत्रीय विभेदकारी मूल्य पर खरीद की जाती थी (a uniform purchase system with regionally differentiated prices) लागू की गई।

मुख्य फसलों का उत्पादन

(मिलियन टनों में)

	1960	1970	1973
कुल फसल	126	187	223
कपास	4	7	8
सब्जियाँ	17	20	25

किन्तु 1957 के आते-आते तो यह स्पष्ट दृष्टिगोचर होने लगा था कि छठी योजना की पूरी जाँच व सुधार (complete overhauling) की आवश्यकता है। सितम्बर 1957 में इस आशय की घोषणा की गई कि एक दीर्घकालिक योजना बनने की प्रक्रिया में चल रही है। इस तरह छठी योजना के मूल रूप को उसके बनाने के दो ही वर्षों के भीतर समाप्त कर दिया गया। इस प्रकार छठी योजना का समाप्त किया जाना शायद आवश्यक भी था क्योंकि उसके लिए निर्धारित किये गये लक्ष्यों का काफी ऊँचा समझा गया, विशेष रूप से उन साधनों के परिप्रेक्ष्य में जो कि उनके लिए उपलब्ध होने थे।

सप्तवर्षीय सातवीं योजना : 1959-65

सप्तवर्षीय सातवीं योजना को फरवरी 1959 से प्रभावी घोषित किया गया। साम्यवादी दल की 21वीं कांग्रेस (Twenty First Congress of the Communist Party) में ख्रुश्चेव ने कहा कि 'सप्तवर्षीय योजना का मुख्य कार्य 1959-65 की अवधि में सोवियत संघ की राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था का इस प्रकार से विकास करना है कि भारी उद्योगों के तीव्र गति से प्रसार, तथा देश की आर्थिक क्षमताओं में अभूतपूर्व वृद्धि के आधार पर अर्थव्यवस्था की सभी शाखाओं का विकास हो सके जिससे कि लोगों के जीवन-स्तर में निरन्तर सुधार को प्रत्याभूत (ensure) किया जा सके।'

मुख्य उद्देश्य

(1) आर्थिक तथा तकनीकी आधार की रचना करना कि जिससे साम्यवादी रूस न्यूनतम सम्भव समय मे विकसित पूँजीवादी देशों से भी प्रति व्यक्ति उत्पादन की दृष्टि से आगे निकल सके।

(2) भारी उद्योगो को ऐसी शाखाओ को सर्वोच्च प्राथमिकता देना जो सम्पूर्ण राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के विकास को और भी आगे बढाने मे सहायक हो।

(3) प्राकृतिक ससाधनो को तीव्र गति से विकसित करना, उत्पादक शक्तियों के वितरण मे सुधार करना, तथा उद्योगो को कच्चे माल के क्षेत्रो के निकट ले जाना व ईंधन को उपभोक्ता क्षेत्रो के निकट लाना।

सप्तवर्षीय योजना में प्रस्तावित व्यय उसके पहले के सात वर्षों मे किये गये कुल योजना विनियोग की तुलना में 80% अधिक था। इस कुल विनियोग मे से 77% उद्योगो, यातायात तथा कृषि के विकास हेतु आवटित किया गया। शेष बची हुई विनियोग राशि का उपयोग शहरी आवास व अन्य सार्वजनिक कल्याण के कार्यों, जैसे स्कूल व अस्पतालो का निर्माण करने के लिए किया जाना था। किन्तु सातवी योजना मे आर्थिक विकास की दर छठी योजना की अपेक्षा नीची रखी गई।

नई सप्तवर्षीय सातवी योजना मे 12 मिलियन लोगो को उद्योगो मे रोजगार प्रदान करने तथा श्रम-उत्पादकता मे 50 प्रतिशत की वृद्धि करने का लक्ष्य रखा गया। श्रमिको को 1960 तक '41 घण्टो का सप्ताह' कर देने का आश्वासन दिया गया जिसे 1962 तक घटाकर 40 घण्टे का सप्ताह कर दिया जाना था। शहरी आवास को बढावा देने की दृष्टि से मकानो के निर्माण-कार्य को 60 मिलियन वर्ग मीटर (रहने की जगह) से बढाकर 1965 तक 90 मिलियन वर्ग मीटर करने का प्रावधान रखा गया। दोनो ही—न्यूनतम मजदूरी तथा पेंशनों—को विभिन्न चरणो मे बढाकर 350 रूबल से 600 रूबल तक ले जाने का भी लक्ष्य रखा गया।

किन्तु सातवी योजना का भी लगभग वही परिणाम हुआ जो इससे पहले छठी योजना का हुआ था। उसे भी मार्च 1963 मे, अर्थात् पूरा होने की तारीख से दो वर्ष पहले, त्याग दिया गया। अब 1965 के लिए निर्धारित लक्ष्यो को पुन संशोधित करके उन्हे काफी नीचे ले आया गया।

सशोधित लक्ष्य : 1964–65

(मिलियन टन म)

	पुरानी योजना	सशोधित नयी योजना
कोयला	600	553
तेल	240	240
लौह पिंड	70	66
इस्पात	[illegible]	89

सातवी योजना को असमय ही समाप्त घोषित कर दिये जाने के पीछे कारण यह दिया गया कि 1958 के बाद से परिस्थितियों मे भारी परिवर्तन आ चुका है। ऐसा लगता है कि तकनीकी परिवर्तनो तथा प्रशासनिक व प्रबन्धकीय स्तर पर किये गये सुधारो ने मिलकर सरकार को सातवी योजना को उसकी अवधि से पूर्व ही त्याग देने के लिए बाध्य कर दिया। इनमे 'नई भूमि योजना' (virgin soil campaign) तथा 'रासायनिक क्रान्ति' (Chemical Revolution) जैसी योजनाओ का उल्लेख किया जा सकता है जो काफी सीमा तक असफल रही। इन्ही कार्यक्रमो पर सातवी योजना को बचाने का उत्तरदायित्व था।

'अछूती भूमि कार्यक्रम' (Virgin Land Programme)

उत्तरोत्तर प्रत्येक योजना मे किये गये अनथक प्रयासो के उपरान्त सोवियत कृषि बराबर पिछड़ी हुई बनी रही थी। ख्रुश्चेव ने कृषि-उत्पादन को बढाने के लिए, अधिक रासायनिक खादो का प्रयोग कर तथा मध्य एशिया मे बेकार पडी विशाल भूमि को कृषि कार्यों के लिए उपयोगी बनाकर नये सिरे से प्रयास किये। यह कार्यक्रम काफी सीधा-सादा तथा उपयोगी लगता था। इसमे अनाज उत्पादन मे 50 प्रतिशत वृद्धि करने का दावा किया गया था। इस कार्यक्रम की एकमात्र कमी यह थी कि जिन क्षेत्रों के लिए इसे बनाया गया था उनमे जनसख्या काफी बिखरी बिखरी थी। लेकिन इस जनसख्या की कमी को अधिक बुलडोजरो व ट्रैक्टरो का उपयोग करके तथा अन्य आधुनिक मशीनो का उपयोग करके पूरा किया जाता था।

दो वर्षों म भी कम समय म 87 मिलियन एकड भूमि को हलो के नीचे ला दिया गया। इसम से अधिकाश भूमि का अधिग्रहण कजाखिस्तान प्रदेश मे किया गया था। 1960 मे इसमे से 70 मिलियन एकड भूमि अनाज के उत्पादन के लिए आवटित की गई जिसे दुगुना करना था। 1958 मे 50 मिलियन एकड भूमि पर गेहूँ का उत्पादन करने की तैयारी भी हो चुकी थी। करीब साढे तीन लाख युवाओ को मध्य एशिया मे काम करने के लिए भेजा गया था। 1958 तक परिणाम भी अच्छे रहे। लेकिन फसलो मे 1959 मे 15 प्रतिशत की गिरावट आयी। 1963 तक फसलो मे लक्ष्य की तुलना मे 20 प्रतिशत की कमी आ चुकी थी तथा सोवियत सघ को अनाज का आयात करने के लिए मजबूर होना पडा था। नई भूमि पर फसलो की यह असफलता वर्षा की कमी तथा रासायनिक खाद की कमी से हुई। 1964 से इस 'नई या अछूती भूमि कार्यक्रम' की असफलता को मान लिया गया, जिस वर्ष सोवियत सरकार ने विदेशों स 12 मिलियन टन गहूँ का आयात किया था।

रासायनिक क्रान्ति (The Chemical Revolution)

अछूती भूमि के विशाल भागो को कृषि-योग्य बनाने की अपनी विशाल परियोजना मे असफल हो जाने के बाद ख्रुश्चेव ने राष्ट्र को रासायनिक क्रान्ति करके समृद्धि की राह पर ले जाने की एक और चेष्टा की। उसने तर्क दिया कि सश्लेषिको (synthetics) के विकास से न केवल उपभोक्ताओ की छोटी-छोटी आवश्यकताओ

को पूरा किया जा सकेगा बल्कि उससे उद्योगो के निर्माण मे भी सहायता मिलेगी जिससे 1970 तक राष्ट्रीय उत्पादन को तिगुना किया जा सकेगा। किन्तु एक जटिल रासायनिक उद्योग ढांचे (Complex of Chemical Industries) की स्थापना के लिए 1963–70 की अवधि मे 46 अरब रूबल के अतिरिक्त विनियोग की आवश्यकता थी। इसके लिए अमरीका, ब्रिटेन व फ्रास से अनेक मशीनो-तकनीको का आयात भी आवश्यक था। लाल क्रान्ति के बाद पहली बार सोवियत सरकार ने पश्चिमी देशो को उसके यहाँ रासायनिक उद्योग मे ढाचा खडा करने के लिए आमन्त्रित किया। फ्रास तथा ब्रिटेन ने रूस को इस सम्बन्ध मे कुछ दीर्घकालिक साख भी स्वीकृत की। किन्तु इस बीच ख्रुश्चेव को ही पद-त्याग करना पडा। आठवी तथा नवी योजनाओ को उद्योग तथा कृषि के अधिक समन्वित विकास के उद्देश्य से बनाया गया जिसमे आधुनिक उद्योगो की प्रगति की ओर झुकाव भी स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता था।

दसवाँ अध्याय

आधुनिक सोवियत उद्योग
(MODERN SOVIET INDUSTRY)

एक औद्योगिक महाशक्ति के रूप मे अब सोवियत सघ का स्थान अमरीका से दूसरा है। लेकिन सोवियत सघ अपनी अर्थव्यवस्था का सचालन बिना बाजार-सयन्त्र की सहायता से करता है जो अन्य विकसित राष्ट्रो मे सामान्य रूप से प्रचलित है। एक शताब्दी से भी कुछ पहले तक रूस मे पिछड़ेपन के सारे तत्व और स्वामित्व के वे समस्त स्वरूप विद्यमान थे जिन्हे कार्ल मार्क्स ने गुलामी, सामन्तवाद तथा पूँजीवाद का नाम दिया था। 1917 के बाद सोवियत सघ द्वारा अपनाये गये उपाय किसी भी राज्य के लिए नये थे। यद्यपि व्यक्तियो पर लगे हुए आर्थिक प्रतिबन्ध—राशनिंग तथा जबरन मजदूरी—आपात स्थिति मे ही लगाने का दावा किया गया है किन्तु यह फिर भी सत्य है कि प्रचलन के सौ रूबलो मे से एक रूबल भी स्वतन्त्र रूप से माग व पूर्ति पर आधारित लेन देन के काम मे नही लिया जाता है। सोवियत अधिकारीगण मूल्यो और लाभो के स्थान पर अभी भी विकास लक्ष्यो (growth targets) को अभिप्रेरक व उपलब्धियो का सूचक बनाये हुए है।

लेकिन सोवियत रूस की अर्थव्यवस्था की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि उसकी औद्योगिक प्रगति है। नियोजित अर्थव्यवस्था ने सोवियत रूस तथा अन्य समाजवादी देशो को अपनी अर्थव्यवस्थाओ मे तीव्र औद्योगिक प्रगति कर सकने की सामर्थ्य प्रदान की है। 1970 मे परस्पर आर्थिक सहायता परिषद् (Council for Mutual Economic Assistance) के सदस्य समाजवादी देशो का औद्योगिक उत्पादन 1950 की तुलना मे 6 8 गुना बढ चुका था जबकि इसी अवधि मे विकसित पूँजीवादी देशो मे यह वृद्धि केवल 2 8 गुना ही हुई थी।

1960 के बाद सोवियत सघ की आर्थिक प्रगति कितनी तीव्र गति से हुई है इसका प्रमाण तो इसी से मिलता है कि आठवी पचवर्षीय योजना (1966–70) के चार वर्षों मे उसकी राष्ट्रीय आय का कुल योग चकाचौंध कर देने वाली 11,66,000 मिलियन रूबल की राशि पर पहुँच गया था। 1971–75 की अवधि मे, जो कि नवी पचवर्षीय योजना का काल था, राष्ट्रीय आय मे 40% की और वृद्धि होने का अनुमान लगाया गया था। सोवियत उद्योग ही इस राष्ट्रीय आय मे होने वाली वृद्धि के लिए उत्तरदायी हैं जो कि देश के कुल राष्ट्रीय उत्पाद मे दो-तिहाई योगदान प्रदान करते है।[1]

[1] M Kaser, *Soviet Economics*, W.U L, 1967.

विकास की वर्तमान अवस्था

आठवी पचवर्षीय योजना के सफलतापूर्वक पूरा हो जाने के कारण सोवियत सघ के औद्योगिक उत्पादन मे 1966–70 की अवधि मे 50 प्रतिशत की वृद्धि हुई।

मुख्य उद्योगो की विकास दर (निर्देशाक)

	1965	1970	1975 (नियोजित)
कुल	100	150	221
इजीनियरिंग व धातु निर्माण	100	174	299
मशीन टूल्स	100	218	447
रसायन व पैट्रोलियम	100	178	306
कृषिगत मशीन	100	141	247
भवन-निर्माण सामग्री	100	150	210
विद्युत् शक्ति	100	146	210

आधुनिक सोवियत उद्योग की एक प्रमुख विशेषता यह रही है कि उपभोक्ता वस्तुओ व पूंजीगत वस्तुओ के बीच उत्पादन का अन्तर घटता जा रहा है। यह अन्तर जो 1950–65 की अवधि मे 1 49 1 था, 1966–70 मे पूंजीगत व उपभोक्ता वस्तु-उत्पादन मे क्रमश 1 01 1 अर्थात् लगभग बराबर-सा हो गया। नवी योजना मे यह बात कही गई थी कि उसके दौरान उपभोक्ता वस्तुओ का औद्योगिक उत्पादन पूंजीगत वस्तुओ के औद्योगिक उत्पादन की अपेक्षा अधिक तेजी से बढेगा।

नवी योजना (1971–75) मे श्रम उत्पादकता मे वृद्धि करने पर भी विशेष बल दिया गया है। श्रम उत्पादकता की यह वृद्धि औद्योगिक क्षेत्र मे 39% रहेगी तथा औद्योगिक उत्पादन मे योजना काल मे होने वाली कुल वृद्धि का 90% इसी उत्पादकता वृद्धि के माध्यम से प्राप्त किया जाएगा। तकनीकी प्रगति सोवियत उद्योग की एक अन्य प्रमुख विशेषता है। मानव श्रम के स्थान पर मशीनो व उपकरणो को निरन्तर प्रतिस्थापित किया जा रहा है। यह प्रवृत्ति औद्योगिक लागतो मे प्रतिबिम्बित हो रही है। मजदूरी का औद्योगिक लागतो मे भाग 1965 के 18% से गिरकर 1971 मे 15 5% पर आ गया है जबकि इसी अवधि मे औद्योगिक लागतो मे शक्ति का प्रतिशत 2 1 से बढकर 2 5 हो गया है। आठवी पचवर्षीय योजना के दौरान लोहा व इस्पात उद्योग मे सर्वाधिक यन्त्रीकरण व स्वचालन किया गया है। यहाँ तक कि कोयला उद्योग जैसा श्रम प्रधान उद्योग भी अधिकाधिक यन्त्रीकृत होता जा रहा है। 1972 तक कोयले को लादने का काम 92% तक यन्त्रचालित हो गया है।

प्रमुख औद्योगिक वस्तुओ का उत्पादन सोवियत सघ मे अन्य किसी भी पूंजीवादी विकसित देश की तुलना मे अधिक तेजी से बढा है।

उसका औद्योगिक उत्पादन (1917–1979) 225 गुना हो चुका है। औद्योगिक वस्तुओ के उत्पादन मे निरपेक्ष वृद्धि की दरें इस प्रकार रही है—

	('000 मिलियन रूबल मे)
सातवी योजना	80
आठवी योजना	119
नवी योजना	154
दसवी योजना	183

सोवियत सघ मे औद्योगिक उत्पादन मे विकास दर अन्य अग्रणी पूँजीवादी देशो की तुलना मे 1976 मे ईस प्रकार रही (1950 के प्रतिशत के रूप मे)—

अमरीका	190
फ्रास	270
प० जर्मनी	380
इटली	460
सोवियत सघ	900

इन उपलब्धियो के साथ-साथ औद्योगिक उत्पादन के क्षेत्र मे कुछ कमियाँ भी रही है। अनेक औद्योगिक प्रतिष्ठान उनके लिए निर्धारित विकास दर को प्राप्त करने मे असफल रहे है। कई औद्योगिक वस्तुओ जैसे गन्धक का तेजाव (sulphuric acid), कॉस्टिक सोडा, धातु काटने की मशीने, रेडियो सेट, टेलीविजन सेट, रेफ्रीजरेटर, मोटर साइकिले इत्यादि का उत्पादन लक्ष्य से कम हुआ है। इसी प्रकार मशीनो का निर्माण करने वाले कुछ कारखानो मे भी उनकी स्थापित क्षमता के अनुरूप कार्य नही हो पाया है। शोध-कार्य के लिए बनाई गई योजनाएँ तथा राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था मे औद्योगिकी प्रचार-प्रसार करने के लिए तैयार कार्यक्रम भी अधूरे रहे है।

सोवियत रूस मे औद्योगिक उत्पादन का कुल राष्ट्रीय उत्पाद (G.N.P) मे निरपेक्ष (absolute) रूप मे भाग इस प्रकार है—

निरपेक्ष मात्राएँ

(हजार मिलियन रूबलो मे)

	1960	1965	1970	1975
कुल राष्ट्रीय उत्पाद	304	420	644	859
औद्योगिक उत्पादन	157	229	374	511

ग्यारहवाँ अध्याय

दसवीं पंचवर्षीय योजना

(THE TENTH FIVE YEAR PLAN)

दसवी पचवर्षीय योजना का मुख्य उद्देश्य, जैसा कि सोवियत सघ के साम्यवादी दल (C P S U) की 25वी कांग्रेस में निर्धारित किया गया था, एक अच्छे सन्तुलित सामाजिक उत्पादन (well-balanced social production) के विकास द्वारा लोगो के जीवन-स्तर मे सुधार लाना तथा उनकी कार्यकुशलता मे और वृद्धि करना, वैज्ञानिक व तकनीकी प्रगति को आगे बढाना, श्रम-उत्पादकता को ऊँचा उठाना तथा राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के प्रत्येक क्षेत्र मे गुणात्मक सुधार को बढावा देना है।[1]

मुख्य उद्देश्य

(1) दसवी पचवर्षीय योजना को एक 'गुणात्मक व कुशलता योजना' (a plan of quality and efficiency) कहा जायेगा। जब दसवी पचवर्षीय योजना को तैयार किया जा रहा था तो विशेष बल राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था मे तकनीकी एव वैज्ञानिक विकास की गति बढाने पर दिया गया। यह गणना की गई है कि नवी योजना के कार्यकाल मे उद्योग ने प्रति वर्ष लगभग 600 नई उत्पादन तकनीके तथा 3,500 नये प्रकार के उत्पादन तैयार किये थे।

(2) दसवी पचवर्षीय योजना का अगला काम शारीरिक कार्य करने वालो के रोजगार मे कमी लाने तथा यन्त्रीकरण व स्वचलन की पद्धतियो को व्यापक पैमाने पर बढावा देने का होगा। यह अनुमान है कि नवी पचवर्षीय योजना मे श्रम बचाने वाली तकनीको के उपयोग से लगभग 17 लाख श्रमिको के श्रम जितनी बचत की जा सकी थी।

(3) 1976–80 के दौरान औद्योगिक उत्पादन 35 से लेकर 39 प्रतिशत बढेगा। उपभोक्ता वस्तु उद्योगो मे यह वृद्धि 40 प्रतिशत रहेगी। मशीन निर्माण उद्योग मे आधुनिक उपकरणो का उत्पादन 50 प्रतिशत से बढ़ जाने की प्रत्याशा है। धातु-कार्य उद्योगो, रासायनिक तथा पेट्रोकैमिकल (Petro-chemical) उद्योगो मे उत्पादन मे 50 प्रतिशत से भी अधिक तक की वृद्धि होने की सम्भावना है।

(4) 1975 के शुरू मे उत्पादन-एव-उत्पादन सघो (Research-and-

[1] B Mochalov, *Economic Development under Tenth Five Year Plan*, Moscow, 1976

production associations) की सख्या 2,300 थी तथा वे औद्योगिक उत्पादन का 24 प्रतिशत भाग पैदा कर रहे थे। दसवी योजना मे ऐसे उत्पादन सघो की स्थापना का काम पूर्ण कर लिया जायेगा।

(5) 'समाजवादी अनुकरण' (Socialist emulation)[1] अब सोवियत सघ मे व्यापक रूप से चल रहा है। यह दावा किया गया है कि 1968 मे इसमे 61 मिलियन श्रमिको ने भाग लिया था तथा 1974 मे उनकी सख्या 81 मिलियन हो गई थी। 1976–80 की अवधि मे देश के सभी श्रमिको द्वारा इस आन्दोलन मे भाग लेने की प्रत्याशा है।

(6) विगत 10–15 वर्षों से सोवियत सघ मे दक्षता के निर्माण (skill formation) का काम बडी तेजी से चल रहा है। 1976–80 के दौरान चलाये जाने वाले व्यवसाय प्रशिक्षण कार्यक्रम से कुल श्रम-शक्ति मे 11 मिलियन अतिरिक्त श्रमिक जुडने की सम्भावना है।

(7) दसवी पचवर्षीय योजना मे बढी हुई उत्पादकता का कुल औद्योगिक उत्पादन वृद्धि मे योगदान 90%, कृषि-उत्पादन तथा निर्माण-कार्य मे 100%, तथा रेलो मे माल ढुलाई के कामो मे 95% रहने की प्रत्याशा की गई है।

(8) अपने सख्यात्मक पहलू (quantitative aspect) के अतिरिक्त दसवी पचवर्षीय योजना का एक महत्त्वपूर्ण गुणात्मक पहलू (qualitative aspect) भी है। योजना के दौरान उत्पादन की किस्म में भारी सुधार लाने की प्रत्याशा है तथा श्रमिको की कार्यकुशलता व उपभोक्ता वर्ग के लाभ भी बढने की सम्भावना है।

(9) दसवी पचवर्षीय योजना मे शक्ति-उद्योग (power industry) विशेष रूप से विद्युत-शक्ति, की अधिक तीव्र प्रगति का अनुमान लगाया गया है। उद्योग को तीन काम करने हैं अप्रयुक्त ईधन समाधनो की खोज करना व उन्हे काम मे लेना, सबसे पहले देश के उस भाग मे जो यूरोप मे पडता है, (ii) साइबेरिया, मध्य एशिया तथा सुदूर-पूर्व मे समृद्ध ईधन भण्डारो की खोज व पुनर्ग्रहण (reclamation) का काम जारी रखना, तथा (iii) देश के पूर्वी भाग से ऊर्जा का पश्चिमी भाग में प्रेषण (transmission) करना।

13 से 15 मिलियन किलोवॉट क्षमता वाले कुछ आणविक ऊर्जा सचालित पावर-स्टेशन 1976–80 के दौरान देश के यूरोप मे पडने वाले भाग में लगाये जायेंगे। साइबेरिया मे विशालकाय जल शक्ति केन्द्र (Hydro Power Stations) प्रतिस्थापित किये जायेंगे। अनेक विशाल ताप बिजली घर (Thermal Power Stations) भी 1976–80 की अवधि मे साइबेरिया मे लगाये जायेंगे जो सस्ते कोयले या गैस से चलेंगे।

दसवी पचवर्षीय योजना मे ही मध्य एशिया मे एक और विशाल शक्ति-केन्द्र (power centre) स्थापित किया जायेगा। शक्ति उद्योग की क्षमता मे दसवी योजना मे प्रस्तावित ये वृद्धियाँ अर्थव्यवस्था मे अन्य उपशाखाओं के लिए आगे आने का

[1] 'समाजवादी अनुकरण' एक आन्दोलन है जिसमें श्रमिक लोग सर्वाधिक मात्रात्मक एव गुणात्मक सकेतो को प्राप्त करने के लिए प्रतिस्पर्द्धा करते हैं।

अच्छा मार्ग बनायेगी। कुल मिलाकर 1980 तक सोवियत संघ में 67 से 70 मिलियन किलोवाट की शक्ति-प्रजनन क्षमताएँ नये सिरे से स्थापित की जायेंगी। इस शक्ति-प्रजनन (power generation) के जुड जाने से सोवियत संघ मे कुल शक्ति-उत्पादन बढकर 13,80,000 मिलियन किलोवाट हो जाने की प्रत्याशा है जो 1970 का दुगुना होगा।

एक राष्ट्रव्यापी शक्ति-जाली (power grid) तैयार करने के विचार से दसवी योजना के दौरान 1,70,000 किलोमीटर लम्बी नई प्रेषण लाइनें (Transmission lines) तैयार करने का भी प्रस्ताव है। इन लाइनो के माध्यम से सोवियत संघ के यूरोप वाले भाग मे पॉवर-ग्रिड मध्य एशिया, उत्तरी कज़ाखिस्तान व साइबेरिया स्थित पॉवर-सिस्टम एक-दूसरे से जुड जायेंगे।

ईंधन उत्पादन व पूंजीगत वस्तुएँ

दसवी पचवर्षीय योजना के दौरान उत्पादक कार्यों के लिए गैस की खपत दुगुनी हो जाने की आशा है तथा तेल का विधायन (processing of oil) भी 25 से 30 प्रतिशत तक बढ जायेगा। अभी भी सोवियत संघ यह दावा करता है कि वह संसार मे पहले नम्बर का तेल-उत्पादक राष्ट्र है। दसवी पचवर्षीय योजना मे तेल निकालने के क्षेत्र मे 25 से 30 मिलियन टन तक की वार्षिक वृद्धियाँ प्राप्त करने का लक्ष्य रखा गया है। दसवी योजनावधि मे ही साइबेरिया के तेल-क्षेत्र उनके लिए निर्धारित 120 मिलियन टन तेल-उत्पादन की वार्षिक क्षमता प्राप्त कर लेंगे। देश के विभिन्न भागो मे अनेक नये पैट्रो-कैमिकल कारखाने स्थापित किये जायेंगे। तेल निकालने के क्षेत्र म स्वचलन का प्रयोग तेजी से किया जायेगा। एक राष्ट्रव्यापी गैस आपूर्ति जाल बिछाया जा रहा है जिसमे कुल मिलाकर 1,00,000 किलोमीटर लम्बी पाइप लाइनें (मुख्य) होंगी।

दसवी पचवर्षीय योजना मे रासायनिक व पैट्रो-रासायनिक उद्योगो के उत्पादन मे 60 से 65 प्रतिशत की वृद्धि का अनुमान है। खनिज उर्वरको का उत्पादन 143 मिलियन टन तक लाये जाने का प्रस्ताव है। रासायनिक रेशो व धागो का उत्पादन भी 15,00,000 टन तक पहुँच जाने की आशा है। यह लक्ष्य वर्तमान प्रतिष्ठानो की कार्यकुशलता को बढाकर तथा अनेक नये औद्योगिक प्रतिष्ठान स्थापित कर प्राप्त किया जायेगा।

इसी प्रकार दसवी योजना मे लौह व अलौह धातुओ के उत्पादन मे भी तथा मशीनें बनाने के काम मे भी और तीव्रता आने की सम्भावना है। अभी भी सोवियत संघ लौह पिण्डो व इस्पात का दुनिया के किसी भी अन्य देश की तुलना मे अधिक उत्पादन कर रहा है। 1980 तक तैयार इस्पात का उत्पादन (finished rolled products) 115–120 मिलियन टन हो जायेगा। अलौह धातु उत्पादन के क्षेत्र मे अल्यूमीनियम, ताँबा तथा निकल (Nickel) का उत्पादन काफी मात्रा मे बढाने का लक्ष्य है।

आगामी 5 वर्षों मे मशीन-निर्माण उद्योग के उत्पादन मे 50–60 प्रतिशत

वृद्धि की आशा की जा रही है। किन्तु इस बार मशीनों, उपकरणों व पुर्जों की किस्म पर अधिक ध्यान दिये जाने के निर्देश भी साथ लगा दिये गये हैं। उन मशीनों का तक्नीकी स्तर, उत्पादकता एवं विश्वसनीयता में भी सुधार लाने की बात कही जा रही है।

उपभोक्ता वस्तुओं का उत्पादन बढ़ाना

स्टालिनेतर युग (Post-Stalin era) में नियोजन के क्षेत्र में उत्पन्न हुई नई प्रवृत्ति का अनुसरण करते हुए दसवीं योजना ने उपभोक्ता वस्तुएँ बनाने वाले उद्योगों के पर्याप्त विकास का प्रस्ताव भी किया है। निर्मित उपभोक्ता वस्तुओं के उत्पादन में 30 से 32 प्रतिशत तक की वृद्धि होने की आशा है। फर्नीचर का उत्पादन 40–50 प्रतिशत से तथा घरेलू काम-काज की वस्तुओं का उत्पादन 60 प्रतिशत से बढ़ाया जायेगा।

उपभोक्ताओं की आवश्यकताएँ पूरी करने वाले उद्योगों की शाखाओं में हल्के उद्योग (Light industry) सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण हैं जो समस्त उपभोक्ता वस्तुओं का 56 प्रतिशत तैयार करते हैं। इस क्षेत्र में भी अधिक स्वचलन स्थापित किया जायेगा तथा नई मशीनें भी लगाई जायेंगी। ऊँचे किस्म के सूती वस्त्र, बनी हुई चीजें, जूते, सिले-सिलाये कपड़े तथा अन्य सामान्य उपभोक्ता वस्तुओं की अच्छी किस्मों का उत्पादन बढ़ाने का प्रस्ताव है।

1970–75 की अवधि में सोवियत मोटर उद्योग (Soviet Motor Industry) ने लगभग 45 लाख कारें निर्मित की थी। 1976–80 की अवधि में कारों के उत्पादन में और वृद्धि की योजना है। ऐसी कारों के उत्पादन को प्राथमिकता दी जायेगी जो सामान्य उपभोक्ता के उपयोग में आ सके। खाद्य-विधायन उद्योग के सामने मुख्य कार्य खाद्य-पदार्थों की किस्म, स्वाद तथा पोषक शक्ति में सुधार करने का है।

कृषि का विकास

कृषि के विकास को बढ़ावा देने की दिशा में दसवीं पंचवर्षीय योजना को काफी करना कुछ है। उद्योगों की कच्चे माल की माँग तथा बढ़ती हुई जनसंख्या की खाद्य-पदार्थों की माँग को पूरा करने के लिए कृषि-उत्पादन में अधिक स्थायित्व तथा तीव्र विकास के उपाय करना अत्यन्त आवश्यक है।

कृषि-उत्पादन तथा पशु-धन में वृद्धि के लक्ष्य को प्राप्त करने के उद्देश्य से राजकीय व सामूहिक फार्मों में गहन उत्पादन करने के साथ-साथ उनका दृढ़ीकरण (consolidation) करने का कार्य भी दसवीं योजना के अन्तर्गत है। खाद्यान्नों के उत्पादन में औसत वार्षिक वृद्धि 20 वर्षों में इस प्रकार हुई है

(मिलियन टनों में)

1956–1960	121 5
1961 1965	130·3
1966–1970	167 7
1971–1975	181 5

1976–80 की अवधि मे अनाज का औसत वार्षिक उत्पादन 215–220 मिलियन टन लाने का प्रस्ताव है जो नवी पचवर्षीय योजना के वार्षिक अनाज उत्पादन के औसत से 35–40 मिलियन टन अधिक है। दसवी पचवर्षीय योजना का लक्ष्य 9 मिलियन टन कपास, 95–98 मिलियन टन चुकन्दर, 15 मिलियन टन मास, 96 मिलियन टन दूध, 61 हजार मिलियन अण्डे 1980 तक उत्पादित करने का है। ये लक्ष्य अप्राप्य नही हैं। 1973 मे, जब मौसम अनुकूल रहा, सोवियत सघ का अनाज उत्पादन 223 मिलियन टन रहा था।

फसलो की खराबी तथा मास, दूध व ऊन आदि के उत्पादन मे कमी का मुख्य कारण समय-समय पर पडने वाले सूखे (droughts) रहे हैं। इसके कारण उपभोक्ता उद्योगो का विकास भी धीमी गति से हुआ है क्योकि सोवियत सघ मे उपभोक्ता वस्तुएँ बनाने वाले उद्योग अपना 75 प्रतिशत कच्चा माल कृषि से प्राप्त करते हैं।

सोवियत कृषि-विशेषज्ञ यह भी तर्क देते हैं कि अमरीका मे कृषि अधिक उत्पादक (सोवियत रूस की कृषि की तुलना मे) इसलिए है कि जलवायु व मिट्टी सम्बन्धी दशाएँ सोवियत सघ म कही अधिक खराब व प्रतिकूल हैं। इसलिए सोवियत सघ मे कृषि-उत्पादन मे अमरीका की तुलना में अधिक पूँजी तथा श्रम के विनियोग की आवश्यकता रहती है।

यही कारण है कि इन दिनो सोवियत योजनाकार कृषि-उत्पादन बढ़ाने के उद्देश्य को, तकनीक व विज्ञान को अधिक मात्रा मे प्रयुक्त करने पर बल दे रहे हैं। 1971–76 के बीच सोवियत कृषि-क्षेत्र को 17 लाख ट्रैक्टर तथा 11 लाख ट्रकें व भारी मात्रा मे अन्य अनेक कृषि उपयोगी मशीनें उपलब्ध करायी गयी। 1976–80 मे यह सख्या बढाकर 19 लाख ट्रैक्टर, 13 5 लाख ट्रकें तथा 5 लाख से भी अधिक हारवेस्टर, करने का प्रस्ताव है।

अनाज का उत्पादन कृषि की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण शाखा बनी हुई है जिसके लिए सबसे अधिक ध्यान, प्रयास व भौतिक साधनो की आवश्यकता पडती है। इस बात की चेष्टा की जायेगी कि जहाँ भी सम्भव हो अनाज के उत्पादन का क्षेत्र बढाया जाये। दसवी पचवर्षीय योजना मे कृषि-विकास कार्यक्रम इस प्रकार बनाया गया है कि कृषि को अत्यधिक प्रगतिशील उत्पादन शाखा के रूप मे बदला जा सके।

कृषि विकास पर दसवी योजना मे किया जाने वाला कुल विनियोग 172 अरब रूबल रहने की आशा है। यह राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था पर कुल विनियोग की जा रही 600 अरब की राशि मे से किया जायेगा। कृषि-उत्पादन मे औसत वार्षिक वृद्धि 14–17 प्रतिशत रहने की सम्भावना है। अगले पाँच वर्षों मे कृषि-क्षेत्र को 50% अधिक कृषि-उपकरण उपलब्ध कराये जायेगे। प्रति श्रमिक विद्युत उपयोग मे भी योजनाकाल के दौरान दुगुनी वृद्धि होने की आशा है जिससे कृषि कार्यों म लग रहे 15 लाख लोगो को वहाँ से हटाना सम्भव होगा। राजकीय तथा सामूहिक खेतो पर उत्पादकता मे 3% वृद्धि की प्रत्याशा की जा रही है।

पूंजी-निर्माण

राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में पूंजी-निवेश करने की दृष्टि से सोवियत संघ विश्व में सर्वोपरि होने का दावा करता है। दसवीं पंचवर्षीय योजना में पूंजी-निवेशों की मात्रा में 24–26% वृद्धि होने की आशा है। इनमें से लगभग दो-तिहाई पूंजी-विनियोग (capital investments) वर्तमान प्रतिष्ठानों के पुनर्निर्माण, उनके औजारों में सुधार तथा उनकी क्षमता का विस्तार करने जैसे कार्यों पर किये जायेंगे। इन विनियोगों से पुराने पूंजी-विनियोगों की प्रभावशीलता में वृद्धि होने की उपेक्षा की जा रही है जो 1976 में 117 बिलियन रूबल मूल्य के थे। किन्तु इस बात के संकेत अभी से मिलने आरम्भ हो गये हैं कि निर्माण-कार्य सब जगह पर्याप्त तेजी से नहीं चल रहा है। इससे काफी नुकसान भी हुए हैं। अब एक अलग से प्रतिष्ठान स्थापित करने की अपेक्षा औद्योगिक कम्प्लेक्स (industrial complexes) बनाने का पक्ष लिया जाने लगा है। अनेक औद्योगिक प्रतिष्ठानों में, जिन्हें दसवीं योजनाकाल में पूरा किया जाना है, विशालकाय कॉमा ऑटो वर्क्स भी सम्मिलित है जो प्रत्येक वर्ष 1,50,000 हैवी ड्यूटी ट्रकों (*Heavy Duty Trucks*) तथा 2,50,000 डीजल इन्जिनों का निर्माण करेगा।

दसवीं योजना में श्रम-कल्याण

1976–80 के दौरान औद्योगिक मजदूरों व कर्मचारीगणों की वेतन-मजदूरी 16–18% से बढ़ने की आशा है। साथ ही उपभोक्ता वस्तुओं के मूल्य इस अवधि में स्थिर रहेंगे। सामूहिक कृषकों की सामूहिक स्वामित्व वाले खेतों से प्राप्त आय 24–27% बढ़ने की प्रत्याशा है। भुगतान तथा लाभ सामाजिक उपभोग कोषों[1] (social consumption funds) से भी किये जायेंगे। इस प्रकार के भुगतानों के 1980 तक बढ़कर 116 अरब रूबल हो जाने की सम्भावना है। 1975 की तुलना में 1980 तक वास्तविक प्रति व्यक्ति आय में 22% वृद्धि होने का अनुमान है।

एक नई बात यह है कि दसवीं योजना में मजदूरी की दरों का अभिप्रेरकों (incentives) के रूप में प्रयोग किया जायेगा। उनका उपयोग उत्पादकता बढ़ाने तथा उत्पादन की किस्म सुधारने के लिए किया जाना है। उत्तरी प्रदेशों व साइबेरिया जैसी जगहों के लिए मजदूरी बढ़ाने का भी प्रस्ताव है जहाँ प्राकृतिक व जलवायु सम्बन्धी दशाएं काफी असन्तोषजनक हैं। ऊँची न्यूनतम मजदूरी लागू करने का काम भी इसी अवधि में पूरा किया जायेगा। सुदूर-पूर्व के प्रदेशों में कार्यरत लोगों को दिया जाने वाला वरिष्ठता बोनस फिर से आरम्भ किया जा रहा है। रात-पाली में काम करने वालों के लिए अधिक मजदूरी देने का प्रस्ताव है। महिला श्रमिकों के लिए काम की दशाओं में सुधार किया जायेगा।

आय में वृद्धि के साथ-साथ उपभोक्ता वस्तुओं की मात्रा तथा उनकी विविधता

[1] ये कोष राष्ट्रीय आय का एक भाग हैं जिसे मजदूरी कोष के अलावा श्रमिकों की कुछ आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए अलग से रखा जाता है। ये सेवाएँ मुफ्त या कम कीमत पर दी जाती हैं।

को बढ़ाने का भी प्रस्ताव दसवीं योजना के प्रारूप में है। मूल्य तो 1970 के बाद से लगभग स्थिर ही रहे हैं। खुदरा मूल्यों का मूल्य-निर्देशांक 1970 के आधार पर अभी 99·6% है।

दसवीं योजना के दौरान औद्योगिक आवास (industrial housing) को भी उच्च प्राथमिकता दी जायेगी। यह दावा किया जाता है कि पूँजीवादी देशों से एकदम भिन्न, जहाँ कि मजदूरों की आय का 25 से 40% केवल मकान किराये पर खर्च हो जाता है, सोवियत संघ में किराया एक परिवार की आय का 3% से अधिक नहीं होता। 1970–75 के बीच लगभग 46 मिलियन फ्लैट बनाये गये थे। दसवीं योजना के दौरान 13–14 मिलियन फ्लैट और बनाने का प्रस्ताव है।

इनके अतिरिक्त दसवीं योजना में सार्वजनिक स्वास्थ्य, शिक्षा आदि के लिए भी प्रावधान है। दवाएँ सोवियत संघ में दुनिया के किसी भी देश की तुलना में सस्ती होने का दावा किया जाता है। औसत आयु 70 वर्ष पहले ही पहुँच चुकी है।

विदेश व्यापार

दसवीं योजनाकाल में विदेश व्यापार के परिमाण में 30–35% वृद्धि का प्रस्ताव है। 1975 में विदेश व्यापार का लेन-देन 51 अरब रूबल पहुँच गया था। पूँजीवादी तथा विकासोन्मुख राष्ट्रों के साथ आर्थिक सहयोग और भी बढ़ाया जा रहा है। फ्रांस, जर्मनी, इटली, अमरीका व जापान के साथ महत्त्वपूर्ण समझौते व अनुबन्ध किये गये हैं जिनसे देश में पोलिथाइलीन (Polythylene) व अन्य रासायनिक वस्तुओं के उत्पादन को बढ़ावा मिल सकेगा।

अब ऐसा दिखाई पड़ने लगा है कि सोवियत संघ आर्थिक सहयोग बढ़ाने का इच्छुक है। जून 1976 में बर्लिन में यूरोपीय साम्यवादी दलों की गोष्ठी में बोलते हुए ब्रेजनेव ने कहा था कि 'यह निर्विवाद रूप से महत्त्वपूर्ण है कि यूरोप में शान्तिपूर्ण सहयोग का ताना-बाना बुना जाये मैं परस्पर लाभकारी सहयोग के बारे में सोच रहा हूँ—व्यापार, उत्पादन में सहयोग तथा वैज्ञानिक व तकनीकी सम्बन्ध।'

इस रूप में सोवियत रूस अपनी दसवीं योजना को चला रहा है।

बारहवाँ अध्याय

श्रम, मजदूरी तथा श्रम संघ
(LABOUR, WAGES AND TRADE UNIONS)

सरकारी तौर पर श्रम को सोवियत संघ मे एक वस्तु की तरह नही माना जाता। उसका शोषण भी नही होता क्योंकि वहाँ कोई निजी पूँजी नही है और वैसे देखा जाये तो राज्य भी कोई नियोक्ता नही है। लेकिन इसके बावजूद सोवियत संघ को पूरी तरह से वर्ग-हीन राज्य (classless state) नही माना जाता। वहाँ दो भिन्न मैत्री रखने वाले वर्ग है किसान और मजदूर। बुद्धिजीवियो का अस्तित्व तो केवल एक परत का सा है। ऐसी परिस्थितियो मे कौन किसका शोषण कर सकता है ? समाजवाद का आदर्श तो 'प्रत्येक से उसकी क्षमता के अनुसार' और 'प्रत्येक को उसके काम के अनुसार' है। राज्य ही विभिन्न व्यक्तियो एव समूहो को अलग-अलग आय आवटित करता है।

श्रम बाजार

श्रम की परिभाषा करते हुए तथा मजदूरी निर्धारण को स्पष्ट करते हुए एक सोवियत पाठ्य-पुस्तक मे लिखा है 'समाजवाद के अन्तर्गत श्रम समाज द्वारा श्रम शक्ति का उपयोग किया जाना नही बल्कि श्रम के स्वामो द्वारा उसका प्रयोग करना है अर्थात् समाज के एक सदस्य की कुल श्रम म प्रत्यक्ष भागीदारी। अत मजदूरी उसकी इस भागीदारी की सीमा का माप है, तथा उसका परिमाण कुल सामाजिक उत्पाद के आकार व व्यक्ति के कार्य के परिणाम दोनो ही पर निर्भर करता है। आय मे अन्तर उनकी दक्षताओ या उनकी उपलब्धियो के अनुपात म हो सकता है लेकिन प्रमुख रूप से व्यक्तियो व समूहो की आय राज्य निर्धारित करता है। श्रम बाजार की इसमे कोई भूमिका नही दिखाई देती।

किन्तु इस सबका यह अर्थ नही है कि माँग व पूर्ति की शक्तियाँ सोवियत श्रम बाजार पर कोई प्रभाव नही डालती। ये शक्तियाँ विभिन्न प्रकार के श्रमिको तथा उनकी सापेक्ष आय को दो प्रकार से प्रभावित करती हैं पहला, वे सरकार के निर्णयो को प्रभावित करती है दूसरा चूँकि सरकारी मजदूरी दरें शायद ही कभी संशोधित होती है तथा वे स्थानीय परिस्थितियो मे ठीक भी नही बैठती, इसलिए प्रबन्धक (managers) सरकारी वेतनमानो का अपवचन (evasion) करने की कोशिश मे रहते हैं।

मजदूरी मे जो अन्तर (wage differentiation) बने हुए थे उन्हे कम

करने मे कई वर्ष लगे। शुरु मे श्रमिको के लिए कोई 1900 भिन्न वेतनमान थे। 1960 तक की इनकी सख्या को घटाकर 10 कर दिया गया था। अब इसे घटाकर 3 तक ले जाने का इरादा है। कर्मचारियो के वेतनमान भी 700 से घटकर 150 रह गये हैं। अब भी भारी उद्योगो, निर्माण कार्यों व यातायात के लिए निर्धारित वेतनमान अन्य गैर-प्राथमिकता वाले उद्योगो व सेवाओ की तुलना मे अधिक हैं।

चूंकि मजदूरी-निर्धारण सोवियत सघ मे अत्यधिक सकेन्द्रित है इसलिए उसका अपवचन करने के तरीके खोजे जाते हैं। अपवचन (evasion) की सबसे आसान विधियाँ या तो वस्तु-दरो (piece-rates) को अधिक रखने या बोनस स्कीमें लागू करने की या फिर श्रमिको को नया दर्जा (regrading) प्रदान कर देने जैसी हैं। यही तरीके स्टालिन युग मे भी काम लिये जाते थे। 1956 मे 78% श्रमिक वस्तु या इकाई दर (piece-rate) पर काम कर रहे थे। चूंकि अदक्ष श्रमिको के वेतनमान बहुत नीचे थे इसलिये उन्हें अर्द्ध-कुशल श्रमिको का दर्जा दे दिया जाता था। 1956 मे मजदूरी दरो मे अत्यधिक सशोधन किया गया तथा श्रमिको की आय मे मूल वेतन का भाग काफी बढ गया। इसके परिणामस्वरूप वस्तु-इकाई दरो (piece-rate) पर काम करने वाले श्रमिको का प्रतिशत 1965 में गिरकर 57 रह गया था।

इससे यही सीखा जा सकता है कि आर्थिक शक्तियाँ सापेक्ष आय के निर्धारण मे हमेशा महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती हैं, चाहे यह अप्रत्यक्ष तरीके से ही क्यो न हो। इस बात के प्रमाण हैं कि कोई भी व्यक्ति जिसे परिणाम के आधार पर भुगतान किया जाता है, उसकी मजदूरी सरकार तय नही कर सकती। सोवियत सघ मे मजदूरी पर प्रभावकारी नियन्त्रण नियोजित मजदूरी कोष के माध्यम से रखा जाता है। दूसरे शब्दो मे, केन्द्र सरकार किसी फैक्ट्री या खान मे मजदूरी के अन्तर को तय नही कर सकती। लेकिन वह उस न्यूनतम राशि का निर्धारण कर सकती है जो मजदूरी या वेतन के रूप मे दी जायेगी, तथा बैंकिंग व्यवस्था से उसे लागू भी कर सकती है। प्रबन्धक साधारणतया इस सीमा से आगे नही जा सकते। पिछले कुछ वर्षों से तो योजना मे मजदूरी मे प्रतिशत वृद्धि को सम्मिलित भी किया गया है।

नियन्त्रित श्रम बाजार के सोवियत अनुभव से अनेक निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं। पहला, ऐसे किसी भी तर्कसगत एव सर्वसम्मत मानदण्ड की खोज पाना लगभग असम्भव है जिसके आधार पर सापेक्ष आय का निर्धारण किया जा सके, दूसरा, तरीका चाहे कोई भी रहे, माँग व पूर्ति की बाजार-शक्तियाँ सापेक्ष आय पर प्रभाव डालने का कोई तरीका खोज ही लेगी जिन्हें राज्य निर्धारित करता है, तीसरा, जाने-माने तरीको से अपवचन शुरु हो जाता है, तथा मजदूरी पर एकमात्र प्रभावी 'पूर्ण विराम' नियोजित मजदूरी कोष पर लगायी गयी सीमा होती है। इस तरीके को अपनी कीमत चुकानी पडती है। मजदूरी कोष मे वृद्धि के लिए अर्जियाँ देने में प्रबन्धक अपना समय नष्ट करके ही अतिरिक्त श्रमिक काम पर ले सकते हैं।[1]

[1] Alec Nove, *The Soviet Economic System*, 1978, Allen and Unwin, 207.

आय अन्तर (Income Differentials) तथा न्यूनतम मजदूरी

इस क्षेत्र मे कई परिवर्तन किये गये हैं। यह काफी जानी-मानी बात है कि 1931 मे स्टालिन ने स्वय हस्तक्षेप करके मजदूरी में अन्तर को 1 4 4 तक बढवाया था। इन्जीनियरो, तकनीशियनो आदि को भी लाभ हुआ था। प्राथमिक व गैर-प्राथमिक क्षेत्रो मे भी वेतन मे अन्तर थे। रिकॉर्ड तोड़ने वालो को भारी मजदूरी वृद्धियो से पुरस्कृत किया जाता था। कम मजदूरी पाने वाले लोगो (जैसे सलासी, डाकिये आदि) तथा उच्च श्रेणी वाले लोगो की आय मे अन्तर बढ़कर 1 12 हो गये थे। स्टालिन ने आखिर इन मजदूरी के अन्तरो की वकालत इसलिये की कि प्रथम दो योजनाओ मे कुशल श्रमिको व तकनीशियनो की पूर्ति बढाना अत्यावश्यक था। साथ ही साथ भारी सख्या मे गाँवो से आने वाले भूतपूर्व किसानो की, जो एकदम अकुशल थे, उत्पादकता बहुत कम थी। दूसरे शब्दो मे माँग व पूर्ति की स्थिति ने मजदूरी मे अन्तर बढाने का पक्ष लिया था।

द्वितीय महायुद्ध के बाद के वर्षो मे, जब आय नीति पर बहुत कम ध्यान दिया गया था, वस्तु-इकाई दरो (piece-rate) पर काम करने वाले श्रमिको को, जैसा कि पहले स्पष्ट किया जा चुका है, काफी लाभ हुआ। काफी विसगतियाँ पैदा हुई क्योकि समय दरे (time rates) तथा वेतन अपरिवर्तित ही रहे। सफ़ेद पोश श्रमिको (white-coller workers) को सबमे अधिक हानि उठानी पड़ी। न्यूनतम मजदूरी स्थापित करने का प्रथम प्रयास 1956 मे किया गया। 1957–65 की अवधि मे सफेद पोश श्रमिको जैसे डाक्टरो व शिक्षको के वेतन भी बढ़ाये गये।

जब न्यूनतम मजदूरी 1956 के 30 रूबल से, कई चरणो मे बढकर 1976 मे 70 रूबल प्रति सप्ताह हो गई तो मजदूरी मे अन्तर भी काफी घट गये। मजदूरी मे ये अन्तर अब 1 1 86 (खानो मे) से 1 1 58 (हल्की व खाद्य सामग्री बनाने वाले उद्योग) तक है। पिछले दो दशको मे विभिन्न श्रेणियो की सापेक्ष स्थिति मे नाटकीय परिवर्तन आये हैं जैसा कि निम्नाकित तालिका से स्पष्ट है[1]

उद्योगो मे मजदूरी

(रूबलो मे)

	1940	1965	1973
श्रमिक	32	102	146
इजीनियर, तकनिशियन	70	148	185
कर्मचारी (क्लर्क आदि)	36	86	119

ये आंकड़े यही तथ्य स्पष्ट करते हैं कि श्रमिक वर्ग को अधिक लाभ हुआ है। 1956 के बाद दो बार वृद्धियाँ हो जाने के बावजूद डाक्टरो तथा शिक्षको के वेतन मजदूरो की तुलना मे अभी भी काफी कम हैं। मास्को के एक बस ड्राइवर को

[1] *Ibid*, 208

200–220 रूबल प्रतिमाह मिलते हैं जो सफेद पोश कर्मचारी की आय से 70 से 80 प्रतिशत अधिक है। डॉक्टर और अध्यापक, जिन्हें कम वेतन मिलता है, अधिकांश महिलाएँ हैं। यहाँ तक कि कनिष्ठ इन्जीनियरों को कुशल श्रमिकों से कम वेतन मिलता है। वास्तव में समानता की प्रवृत्ति काफी दूर तक पहुँच गई लगती है। यह अनुमान लगाया गया है कि 1969–78 की अवधि में औसत मजदूरी में जहाँ 39% की वृद्धि होगी वहाँ न्यूनतम मजदूरी 17% ही बढ़ेगी।

1946 के आँकड़ो में मजदूरी में अन्तर काफी था। किन्तु उसके पास न्यूनतम मजदूरी में की गई बार-बार की वृद्धियों से 1956 तक यह अन्तर निरन्तर घटता रहा। यहाँ यह बात ध्यान रखने योग्य है कि हम सर्वोच्च पदों पर विद्यमान लोगों की नीचे से नीचे के पद वाले से तुलना नहीं कर रहे हैं बल्कि सबसे ऊँचे 10% लोगों से सबसे नीचे के 10% लोगों की तुलना कर रहे है। सर्वोच्च पदों वाले 1% लोगों से तुलना करने पर ये वेतन अन्तर अधिक आयेंगे।

सोवियत रूस में मजदूरी अन्तर की वास्तविकता जानना बहुत जटिल काम है क्योंकि वहाँ कई अतिरिक्त सुविधाएँ व लाभ (perks) भी मजदूरी-वेतन के साथ लगे होते हैं। उदाहरण के लिए कार के उपयोग की सुविधा, अच्छा फ्लैट, अत्यधिक आरामदायक यात्रा-भत्ता तथा कभी-कभी अतिरिक्त 'नोटों भरे लिफाफे।' इनकी गणना करना बड़ा ही कठिन काम है।

1956 के बाद एक बात तो स्पष्ट रूप से उभर कर सामने आयी है कि इन्जीनियरों, लेखा-अधिकारियों, शिक्षकों आदि का अभाव मूल्य (scarcity value) श्रमिकों की तुलना में काफी घट गया है। यह एक कारण है जिसके परिणामस्वरूप मजदूरी में अन्तर काफी घट गये है। एक प्रश्न यह उठता है कि क्या मजदूरी-अन्तर अधिक थे या है। कुछ लोगों का विश्वास है कि 1970 के दशक में कुछ मजदूरी-अन्तर—उदाहरण के लिए मजदूरों व इन्जीनियरों के बीच—काफी कम और कहीं-कहीं तो नकारात्मक बन गये है। 1946 के मजदूरी अन्तर तो इनके सामने अत्यधिक असमान लगते हैं। कई बार ध्यान उन बहुत थोड़े उच्च पदाधिकारियों, कुछ सफल लेखकों, संगीतज्ञों या उच्च विद्वानों की ओर आकर्षित किया जाता है जो काफी आराम व विलासिता से रहते हैं। किन्तु हम इस बारे में अधिक कुछ मालूम नहीं क्योंकि वहाँ हर चीज के बारे में गोपनीयता रहती है।

कृषि आय व ग्रामीण श्रमिक

1966 तक किसानों की आय पूर्णतया इस तथ्य पर निर्भर करती थी कि जिस खेत पर वे काम करते थे वहाँ कितनी राशि वितरण के लिए उपलब्ध थी। ट्रुदोदन (Trudoden) या कार्य-दिवस इकाई को किये गये कार्य का माप माना जाता था। एक कार्य-दिवस-इकाई 1963–64 तक सिर्फ 0 30 रूबल तथा 1·5 किलो अनाज के बराबर थी। राजकीय फार्मों पर भी वेतन उद्योग का 58% ही था। राज्य कृषि उत्पादन के लिए काफी नीचे मूल्य देता था। 1966 तक, कुछ चरणों में, मूल्यों को उचित स्तर पर ले आया गया। उसी वर्ष यह भी निश्चित हुआ

कि कोलखोज पर काम करने वाले श्रमिकों को सोव खोज वेतनमानों पर वेतन दिया जाये। किन्तु कोलखोज वेतन अभी भी औद्योगिक मजदूरों की आय से कम है। किन्तु कोलखोज श्रमिकों को उनके निजी खेत में भी आय प्राप्त होती है इसीलिए *अन्तर अधिक नहीं है।*

ग्रामीण श्रमिकों को अधिक नियमित रोजगार उपलब्ध है—पशु-पालन क्षेत्र में, जहाँ वर्ष भर काम रहता है। लेकिन ग्रामीण व्यवसायों से शहर का जीवन अधिक ऊँचा गिना जाता है। ग्रामीण श्रम काफी असमान रूप से भी बँटा हुआ है। वैसे सोवियत सरकारी घोषणाएँ बेरोजगारी से साफ इनकार करती है किन्तु इन क्षेत्रों में, 'कम काम करने वालों की भारी संख्या' मौजूद है।

महिला रोजगार

सोवियत संघ की श्रम-शक्ति में महिलाओं का अनुपात काफी ऊँचा है। 1973 में सोवियत संघ में काम पर लगे हुए कुल व्यक्तियों में 51% महिलाएँ थी (इनमें यातायात में 24% से लेकर स्वास्थ्य सेवाओं व सामाजिक बीमा में लगी हुई 85% महिलाएँ सम्मिलित हैं)। 52% से भी अधिक नौकरी-शुदा स्नातक महिलाएँ थी। ये शिक्षा, स्वास्थ्य, बैंकिंग सेवाओं, बीमा आदि में काफी अधिक हैं तथा राज्य के अनेक कार्यालयों व आर्थिक प्रशासन के कार्यों में लगे लोगों में उनका प्रतिशत 60 है। उच्च शिक्षण संस्थाओं में कुल विद्यार्थियों में 50 प्रतिशत महिलाएँ है तथा विधि व अर्थशास्त्र में विशिष्ट उपाधि के लिए अध्ययन करने वालों में तो वे 61% हैं।[1]

किन्तु इस सम्बन्ध में दो असन्तोषप्रद बातें भी कही जा सकती हैं। एक तो यह कि अधिकांश महिलाएँ नीची श्रेणी के व्यवसायों में काम पर लगी हुई हैं। दूसरे, जिन व्यवसायों में महिलाएँ अधिक है उन्ही में वेतन सबसे कम है। वैज्ञानिक कार्यकर्त्ताओं में महिलाएँ 40% ही है जबकि वे पाठशालाओं में पढ़ाने वालों में 80% हैं, सेकेंडरी स्कूलों के प्रधानाध्यापकों में उनका प्रतिशत 27 है।

अन्त में, सभी महिला-प्रधान व्यवसाय-समूहों की आय औसत आय से कम है। इनमें डाक विभाग, शिक्षण, स्वास्थ्य, बैंकिंग व व्यापार सेवाएँ सम्मिलित है। उद्योग में क्लर्क या लेखपाल महिलाएँ है जिनको सबसे कम वेतन मिलता है। क्या इसका यह अर्थ लिया जाये कि सोवियत संघ में प्रत्यक्ष उत्पादक गतिविधि को ही अधिक मजदूरी *पाने का अधिकार है? शायद यह ऐसा ही है।*

जन-शक्ति नियोजन

यह सही है कि सोवियत संघ में अनियोजित श्रम गतिशीलता विद्यमान है क्योंकि श्रमिक अपनी नौकरी छोड़ने व अन्य स्थान पर नौकरी करने के लिए स्वतन्त्र हैं। यह नियोजन ऐसी स्थिति में निर्देशात्मक (directive) ही न होकर संकेतात्मक (indicative) भी हो सकता है। लेकिन सोवियत व्यवस्था को इस दृष्टि से एक लाभ है। विभिन्न क्षेत्रों के लिए योजनाएँ उपलब्ध संसाधनों की जानकारी के आधार

[1] *Ibid*, 216–17

पर बनायी जाती है। रोजगार उपलब्ध कराना कर्तव्य है, कार्य के अधिकार को मान्यता प्राप्त है और इसी तरह काम करना भी कर्तव्य है। श्रम उत्पादकता योजनाओं मे विभिन्न उद्योगों मे सम्भावित श्रम बचत तथा श्रम के वैकल्पिक उपयोग (श्रमिको का अन्य उद्योगों या सेवाओं मे उपयोग) दोनो ही का हिसाब देखा जाता है।

इस सोवियत दावे पर विश्वास कर पाना असम्भव है कि वहाँ कोई बेकार है ही नही किन्तु यह कहना उचित होगा कि यहाँ की अपेक्षा बेकारी की समस्या पश्चिमी देशों मे अधिक विकट है। यहाँ तक कि अमरीका मे बेकारी की दर 6% के लगभग है। ब्रिटेन मे तो यह 8% तक पहुँची है। सोवियत संघ मे नौकरी की सुरक्षा ऊँचे दर्जे की है। वहाँ इधर-उधर आ जाने की भी स्वतन्त्रता है। विशेष रूप से नये औद्योगिक क्षेत्रो मे आने-जाने की।

किन्तु रोजगार के क्षेत्र मे भी कुछ समस्याएँ दृष्टिगत होती हैं। एक ऐसी कठिनाई उपलब्ध मजदूरी, आवास व अन्य सुविधाओं को देखते हुए लोगों की साइबेरिया जैसे क्षेत्रो मे काम करने के प्रति अनिच्छा है। एक अन्य शिकायत प्रतिष्ठानो द्वारा अतिरिक्त श्रमिको को हटाने को लेकर है। जब तक वैकल्पिक काम स्थानीय स्तर पर ही उपलब्ध न हो, मजदूरो को रखे रहने के लिए स्थानीय दबाव पड़ते हैं। यह शायद एक उत्तर भी है, उस स्थिति के लिए जहाँ एक ओर तो अनुपयोगी या अर्द्ध उपयोगी श्रमिक होते हैं तथा दूसरी ओर उनका अभाव रहता है। अधिक समस्या विभिन्न प्रकार के श्रमिको की, विशेषकर के विशेषज्ञो की, माँग की व पूर्ति, मे सन्तुलन स्थापित करने की रहती है। 'सोवियत व्यवस्था के आलोचको का कहना है कि वहाँ 'प्रशिक्षित श्रमिको की योग्यताओं (qualifications) तथा राष्ट्रीय उच्च स्तरीय अर्थव्यवस्था की आवश्यकताओं के बीच विसंगतियाँ' विद्यमान हैं। एक अनुमान के अनुसार, सेकेण्डरी पास व्यक्तियो, जिन्होने बाद मे तीन से चार वर्ष तक तकनीकी कॉलेजो मे शिक्षा पायी हो, कि उद्योग मे आवश्यकता 1973 तक भी 40–42% तक ही पूरी की जा सकी थी। इलैक्ट्रोनिक उपकरणो को चला सकने वाले व्यक्तियों की तो विशेष कमी है। इसीलिए जब 17 विशाल नये प्रतिष्ठानो का, एक विशेष प्रदेश (republic) मे, सर्वेक्षण किया गया तो पता चला कि उनमे से कोई भी उत्पादन की पूर्ण क्षमता प्राप्त नही कर पाया था, क्योंकि उन्हे योग्यता प्राप्त श्रमिक उनकी कुल आवश्यकताओं के 58% ही दिये गये थे। रासायनिक उद्योगो को शुरू करने मे हुआ विलम्ब भी 'कुछ सीमा तक योग्यता प्राप्त कर्मचारियो के अभाव' के कारण ही हुआ था। एक अधिक सामान्य प्रकार का असन्तुलन यह है कि 'अकुशल या बिना योग्यता वाले श्रमिक उनकी आवश्यकता मे 15–33% अधिक हैं जबकि कुशल श्रमिक कुल मिलाकर कम हैं, हालाकि उनमे से कुछ की पूर्ति अधिक है।'

इन कुसमायोजना के लिए अनेक कारण उत्तरदायी हैं। दक्ष श्रमिको की भावी आवश्यकता के लिए सूचनाओं का प्रवाह (flow of information) दोषपूर्ण है। उन लोगो के लिए वेतन व पद, जो तकनीकी योग्यता प्राप्त है, अपर्याप्त आकर्षण वाला है। अनेक तकनीकी प्रशिक्षण संस्थानो मे पर्याप्त उपकरण ही नही हैं। उनके

परिसर अपर्याप्त है तथा प्रशिक्षक स्वय अपूर्ण योग्यताओ वाले है।

इस स्थिति मे सुधार हो रहा है। सोवियत सघ मे इन दिनो 'काम के वैज्ञानिक सगठन' को लेकर काफी चर्चा है। तकनीकी प्रशिक्षण का गुणात्मक व मात्रात्मक पक्ष भी सुधर रहा है। एक अनुमान के अनुसार 1973 मे 30% औद्योगिक श्रमिको ने सेकेण्डरी शिक्षा पूरी करली थी जबकि यही प्रतिशत 1952 मे 2 4 था। रूस मे निम्न जन्म-दर से श्रमिको की पूर्ति मे वृद्धि की दर पहले ही गिर रही है। इसलिए नये श्रम की आवक के बारे मे आयोजन अब और भी अनावश्यक हो गया है तथा आने वाले वर्षो मे उनका अधिक कुशलता से प्रशिक्षण भी महत्त्वपूर्ण है।

काम की दशाएँ

सोवियत सघ मे श्रमिको के लिए काम के घण्टो मे काफी कटौती कर दी गई है तथा सप्ताह मे अब कार्यदिवस की सख्या अधिकाश स्थानो पर 5 ही हो गयी है।[1] यह बताया गया है कि 1973 मे सप्ताह मे काम के घण्टो का औसत घटकर 40 7 घण्टे रह गया था जो 1955 मे 47 8 घण्टो का था। सरकारी तौर पर तो इसे मना किया जाता रहा है किन्तु वहाँ कुछ ओवर टाइम भी किया जाता है। इसे वहाँ तूफानी दौर (storming) या (shturmovshchina) या योजना को जल्दी से पूरा करने के लिए दौड का नाम दिया जाता है।

यद्यपि इन बातो को भी सरकारी तौर पर इनकार किया जाता रहा है किन्तु सोवियत सघ मे श्रमिको की अनुपस्थिति, काम चुराना, शराबखोरी, छोटी चोरियो की आदत, घूसखोरी और ऐसी ही छोटी नकारात्मक चीजे देखने म आती हैं। कुछ ऐसे अपराध भी पकडे गये है जिनमे बडे पैमाने पर ढेर सारा कच्चा माल गतव्य स्थल से दूसरी ओर मोड दिया जाता है ताकि उपभोक्ता वस्तुओ का निर्माण किया जा सके। निजी बातचीत के दौरान यह भी पता चला है कि कई लोग कई अप्रचारित तरीको से अतिरिक्त आय भी कमाते है।

सवेतन अवकाश वर्ष भर मे कम से कम 15 दिन का होता है। कई भारी उद्योगो के श्रमिको को यह अवकाश 4 सप्ताह तक का मिलता है। इनके अतिरिक्त वैतनिक मातृत्व अवकाश, अपग होने की स्थिति मे लाभ, बीमारी मे वेतन, वृद्धावस्था पेंशन आदि का भी जिक्र उल्लेख किया जाना चाहिए। बच्चो के लिए भत्ता भी मिलता है। अब ऐसे लोगो को पूरक राशि भी दी जा रही है जिनकी पारिवारिक आय 50 रूबल मासिक से कम है। 1956 मे किये गये सशोधन के बाद पेंशनें 35 रूबल से लेकर 120 रूबल प्रति माह तक हो गई है। स्वास्थ्य सेवा नि शुल्क तथा सेकेण्डरी या उच्च शिक्षा के लिए कोई ट्यूशन फीस नही ली जाती। मकान किरायो मे भी सरकार अनुदान देती है। वास्तविक जीवन-स्तर का मूल्याकन करते समय इन सभी तत्वो का उल्लेख करना आवश्यक है। वास्तव मे श्रमिको को मिलने वाले ये अतिरिक्त लाभ इतने अधिक हैं कि केवल उनकी सूची बनाने के लिए एक अलग पुस्तक की आवश्यकता पडेगी।

[1] *Ibid*, 222

श्रम सघ (Soviet Trade Unions)

श्रम सघो का सगठन सोवियत रुस मे उद्योग के आधार पर होता है तथा उसमें उच्च श्रेणी के लोग, मैनेजर भी, सम्मिलित होते है। इन श्रम सघो में चुनावो से पदाधिकारी नियुक्त होते हैं और इन्हे कुछ लोकतान्त्रिक अधिकार भी प्राप्त है। राष्ट्रीय गोष्ठियो मे अखिल सघ केन्द्रीय परिषद् (All Union Central Council, AUCCTU) का चुनाव किया जाता है। किन्तु सभी स्तरो पर साम्यवादी पार्टी का पूर्ण नियन्त्रण होता है। 1932 व 1954 के बीच अखिल-सघ केन्द्रीय परिषद् का चुनाव करने के लिए केवल एक बैठक हुई थी। केन्द्रीय सस्था को श्रमिको की एक अर्द्ध शासकीय सस्था ही माना जाता है। यह सामाजिक बीमा योजना को क्रियान्वित करने तथा योजना के लक्ष्यों के अनुरूप उत्पादन बढाने के श्रमिको को प्रोत्साहित करने व अन्य सरकारी नीतियो को लागू करने मे सहायता देती है। स्थानीय स्तर पर, श्रम सघो के पदाधिकारी श्रमिकों के हितो की रक्षा का कार्य अपने अधिकारो का दुरुपयोग करने वाले प्रबन्ध के विरुद्ध भी करते है।

लेकिन स्थानीय श्रम सघो का मुख्य कार्य श्रम कल्याण व सुविधाएँ जुटाने का है तथा वे मजदूरी निर्धारण से सम्बन्धित नही होती। उत्पादन को बढावा देने के उद्देश्य से ये श्रम सघ कई 'समाजवादी प्रतिस्पर्द्धाएँ' (Socialist competitions) व्यक्तिगत श्रमिको, समूहो व कारखानो के बीच आयोजित करते रहते है। श्रम सघ पदाधिकारी नियोजित वस्तु-इकाई-दरो (price-rates) से भी सम्बन्धित होते है। इस प्रकार उनके सदस्यो की कुल आय का निर्धारण करने मे उनका हाथ होता है। स्थानीय श्रम सघ प्रबन्धक तथा श्रमिको के बीच बोनस समझौतो, गैर-कानूनी निष्कासन, पदावनति आदि के बारे मे उठने वाले विवादों मे भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। वे समान दर्जे पर, 'वाद-विवाद आयोग' (conflict commissions) मे भी भाग लेते हैं जो कारखानो मे होने वाले ऐसे झगडो को निपटाते हैं। यदि ये आयोग मामले को निपटा सकने मे असफल हो जाते हैं तो फिर उसे अन्तिम निर्णय के लिए केन्द्रीय श्रम सघ को भेजा जाता है। यदि श्रमिक या प्रबन्धक फिर भी ऐसा समझे कि फैसला कानून के विरुद्ध हुआ है तो वे उसके विरुद्ध अदालतो मे अपील दायर कर सकते है।

स्टालिन के युग मे श्रम सघो का कार्य मुख्यत उत्पादन लक्ष्य पूरे करवाने के लिए श्रमिकों का गतिशीलन करना ही रह गया था तथा श्रमिको की रक्षा करने की उनकी भूमिका गौण हो गई थी। इसे इस आधार पर उचित ठहराया जाता था कि चूँकि राज्य ही नियोक्ता है इसलिए श्रमिको की सुरक्षा की कोई आवश्यकता नही है। 1940 के वे अत्यधिक कड़े आदेश, जिनमे बिना अनुमति के काम की जगह बदलने पर रोक लगा दी गई थी तथा अनुपस्थित रहने व देर से आने पर भारी जुर्मानो की व्यवस्था की गई थी, केन्द्रीय श्रम सघ की प्रार्थना पर ही जारी किये बताये गये थे। श्रम सघो का एक काम यह भी था कि वे अपने सदस्यो को राज्य बॉण्ड खरीदने के लिए बाध्य करें। आखिरकार स्थिति इतनी शोचनीय हो गयी कि वह स्वय सरकार

के लिए भी असहनीय हो गई। अनेक स्तरो पर कई असफलताएँ सामने आयी। स्थानीय श्रम सघ अपने सदस्यो को अधिकारो का दुरुपयोग करने वाले प्रबन्ध से नही बचा पाये। 'समाजवादी प्रतियोगिताएँ' कोरी कागजी कार्यवाहियाँ बनकर रह गयी। स्टालिन की मृत्यु के बाद ऐसे कई लेख प्रकाशित हुए जिनमे श्रम सघो के विषय मे भारी असन्तोष व्यक्त किया गया। 1957 मे श्रम सघो की केन्द्रीय समिति ने स्थानीय इकाइयो को सदस्यो के हितो की रक्षा की भूमिका अधिक अच्छी तरह निभाने के निर्देश दिये। उसने स्थानीय श्रम सघो के गतिशीलक (mobilisers) के रूप मे भूमिका पर भी बल दिया तथा उन्हे 'स्थायी उत्पादन परिषदो' (Permanent Production Councils) का सदस्य बनाया।

सोवियत श्रम सघो के बारे मे पश्चिमी देशो मे सामान्य धारणा यह है कि वे श्रम सघ है ही नही। यह सही है कि वे राज्य या दल से स्वतन्त्र होकर काम नही कर सकते। उनका मुख्य काम राज्य या पार्टी द्वारा अपनायी गई नीतियो का परिपालन कराने के लिए श्रमिको का गतिशीलन करना है। इन परिस्थितियो मे श्रमिको के रक्षक के रूप मे दायित्व का निर्वाह कर सकना उनके लिए काफी कठिन है। जहाँ तक उत्पादन लक्ष्यो को पूरा करने का प्रश्न है प्रबन्ध व श्रम सघो के बीच कोई टकराव नही है। ये श्रम सघ श्रमिको के रक्षक के रूप मे अपने दायित्व का निर्वाह नही करते। यह तो प्रबन्धको द्वारा जारी किये गये उन निष्कासन (dismissals) आदेशो को भारी सख्या मे अदालतो द्वारा रद्द किये जाने से ही स्पष्ट है। यह कहा जाता है कि एक क्षेत्र मे तो निष्कासन के विरुद्ध आधी से भी अधिक अपीलो को न्यायालयो ने उचित माना।

तेरहवाँ अध्याय

आयोजन का संगठन व आर्थिक प्रबन्ध
(ORGANISATION OF PLANNING AND ECONOMIC MANAGEMENT)

सोवियत सघ मे आयोजन व प्रबन्ध का सामान्य उद्देश्य उसके विकास को सचालित करने वाले वस्तुनिष्ठ कानूनों का आदर्शतम उपयोग करना, उसके मानवीय, भौतिक एव वित्तीय ससाधनो का सगठन करना तथा मौजूदा जानकारी के भण्डार का साम्यवाद के निर्माण म उपयोग करना है।[1] वहाँ सामाजिक स्वामित्व की प्रधानता है। आयोजन व प्रबन्ध के मुख्य सिद्धान्त सोवियत सघ मे इस प्रकार है

(1) **जनतान्त्रिक सकेन्द्रण (Democratic Centralism)**—सोवियत सघ के आयोजन व प्रबन्ध को सचालित करने वाला यह प्रमुख सिद्धान्त बताया जाता है।

(2) **एक व्यवस्था—विश्लेषण का तरीका (A system—analysis approach)**—चूंकि अर्थव्यवस्था एक जटिल प्रणाली है जिसमे विविध अन्तर्सम्बन्ध तथा अनेक उपप्रणालियाँ (subsystems) जैसे पृथक् आर्थिक प्रदेश व क्षेत्र भी हैं इसलिए यह महत्त्वपूर्ण है कि मुख्य आर्थिक प्रश्नो को अलग से नही बल्कि समग्र रूप से एक व्यवस्था के अन्तगत हल किया जाना चाहिए।

(3) **आर्थिक विकास को बढावा**—श्रमिको के उत्पादक प्रयासो को उत्तेजित करना तथा उनके काम के गुणात्मक पहलू मे निरन्तर सुधार करना भी महत्त्वपूर्ण माने गये हैं।

(4) **प्रशासनिक व आर्थिक उपायो का सयोग**—आर्थिक नियोजन को वैज्ञानिक तरीके से सोचे गये प्रशासनिक व आर्थिक उपायो पर आधारित बताया गया है। इसका अर्थ यह है कि आयोजन एजेंसियो के पास प्रशासनिक अधिकार होने चाहिए। वे अपने इन अधिकारो का प्रयोग कुछ आर्थिक उत्तोलको (economic levers) जिनम मूल्य, मजदूरी, लागत हिसाब, लाभ कमाने के लिए अभिप्रेरणाएँ तथा साख सम्मिलित है।

(5) **कार्यकुशलता**—इसे भी आयोजन व प्रबन्ध का आधारभूत सिद्धान्त माना जाता है। इससे यह बात प्रत्याभूत (ensured) की जाती है कि पूर्व निर्धारित कार्यक्रमो को न्यूनतम सम्भव समय मे पूरा किया जा सके तथा उनमे न्यूनतम जनशक्ति, साधन व वित्तीय प्रदाये (inputs) काम मे आयें।

[1] B I Braginsky, *Soviet Planned Economy*, 1974, 140-52

संगठन

सोवियत सघ मे आर्थिक नियोजन तथा प्रवन्ध को क्षेत्रवार सगठित किया जाता है। राज्य के स्वामित्व वाले औद्योगिक, कृषि, यातायात व निर्माण प्रतिष्ठानो व सगठनो की उत्पादक व अन्य गतिविधियाँ क्षेत्रीय मन्त्रालयो द्वारा सचालित होती है। लेकिन सोवियत सघ मे 15 सम्प्रभु (sovereign) गणराज्य भी हैं। इन गणराज्यो की सरकारे अपने गोसप्लानो (gosplans) द्वारा (अर्थात् राज्य योजना आयोगो द्वारा) तथा आर्थिक मन्त्रालयो द्वारा उनके नियन्त्रण वाले प्रतिष्ठानो के कार्यो का निर्देश करती हैं। ये गणराज्य राष्ट्रीय महत्त्व के प्रतिष्ठानो के लिए भी रूपरेखा तैयार करने मे योग देते है। इन गणराज्यो के अधीन इतने अधिक प्रतिष्ठान है कि वे देश राष्ट्रीय आय का दो तिहाई भाग पैदा करते हैं। इस तरह इन गणराज्यो के पास विशाल आर्थिक क्षमता है। गणराज्यीय योजना आयोग (Republican gosplans) अपनी अर्थव्यवस्थाओं के विकास के लिए व्यापक पचवर्षीय योजनाएँ भी तैयार करते है।

देश मे दो प्रकार के प्रतिष्ठान हैं स्थानीय व गणराज्यीय प्रतिष्ठान तथा पूर्ण-सघीय प्रतिष्ठान। पहली प्रकार के प्रतिष्ठान पूरी तरह स्थानीय एव गणराज्यीय अधिकारियो के अधीन होते है जबकि दूसरी तरह के प्रतिष्ठान आर्थिक मन्त्रालयो (सघीय) के अधीन होते है। आयोजन का एक महत्त्वपूर्ण कार्य पूर्ण-सघीय हितो तथा स्थानीय व गणराज्यीय हितो के बीच अच्छा तालमेल स्थापित करना है। चूँकि सारी की सारी अर्थव्यवस्था नियोजित है इसलिए आर्थिक गतिविधियो को सभी स्तरो पर इस प्रकार सगठित करना सम्भव है कि स्थानीय हितो के साथ राष्ट्रीय हितो का टकराव न हो। इस कार्य के लिए सोवियत सरकार अनेक उपाय काम मे लेती है जो मूल्यो से लेकर मजदूरी, भुगतानों व लागत-लेखा (cost-accounting) तक फैले हुए है। आर्थिक अभिप्रेरणाओ के अतिरिक्त सामाजिक व नैतिक उत्तेजको (stimuli) का भी प्रयोग किया जाता है। दवाव व अन्य ऐसे ही तरीको का उल्लेख न करना ही शायद अधिक शालीनतापूर्ण होगा।

योजना आयोगो (Gosplans) के कार्य

अब हम आर्थिक नियन्त्रणो की वर्तमान सोवियत प्रणाली मे केन्द्रीय एव गणराज्यीय योजना आयोगो के मुख्य कार्यों की विस्तार से चर्चा कर सकते हैं। सोवियत नियोजन प्रणाली के अन्तर्गत वहाँ की सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था आ जाती हैं। सारी आयोजन एजेंसियो का कार्य एक ही आर्थिक नीति तथा योजना बनाने के सामान्य सिद्धान्तो से समन्वित होता है। सोवियत सघ की इन आयोजन एजेंसियो को दो समूहों मे विभक्त किया जा सकता है

(i) सामान्य आयोजन एजेंसियाँ, व

(ii) आर्थिक एजेंसियो के आयोजन उपविभाग।

पहले समूह मे सोवियत सघ की मन्त्रि-परिषद् की आयोजन समिति (State

Planning Committee of the U S S R Council of Ministers), सघीय गणराज्यों के योजना आयोग (Republican gosplans), प्रादेशिक, शहरी तथा जिला योजना आयोग सम्मिलित है। वर्तमान मे गणराज्यो के योजना आयोग सघीय योजना आयोग तथा सम्बन्धित गणराज्यो के मन्त्रालयो के दोहरे नियन्त्रण मे हैं। इस प्रकार सोवियत सघ का योजना आयोग (U S S R gosplan) एक मिली-जुली सघ गणराज्य आयोजना इकाई है जिसकी आधीनता मे क्षेत्रीय मन्त्रालय, जो अपने-अपने क्षेत्र के उद्योगो के लिए योजनाएँ तैयार करते है (जैसे उद्योग, कृषि, यातायात आदि), कार्य करते है। इस प्रकार के सगठनात्मक ढांचे के कारण सोवियत योजना आयोग अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रो तथा विभिन्न गणराज्यो व स्थानीय इकाइयों द्वारा तैयार की गई योजनाओ को समन्वित करने का कार्य करता है।

दूसरे समूह में सघीय एव गणराज्यों के मन्त्रालयो के आयोजना विभाग, प्रमुख प्रतिष्ठानो, ट्रस्टो व उत्पादक सघो के योजना खण्ड आते हैं।

दोनो समूहो का एक-दूसरे से घनिष्ठ सम्बन्ध रहता है।

सोवियत योजना आयोग के कार्य

(1) सरकार से प्राप्त निर्देशो के अनुसार यह आर्थिक विकास के सामान्य पैमाने तथा मुख्य प्रवृत्तियो, प्रमुख समष्टि अनुपातो (macro-economic proportions) तथा सोवियत सघ के परराष्ट्रीय आर्थिक सम्बन्धो का निर्धारण करता है।

(2) यह योजना बनाने के लिए मान्य तरीको, समय सीमाओ तथा कार्य-प्रणालियो को स्पष्ट करता है।

(3) यह सघीय गणराज्यो तथा क्षेत्रीय मन्त्रालयो द्वारा तैयार किये गये राष्ट्रीय आर्थिक नियोजन के प्रारूप की जाँच करता है तथा उनकी योजना को समन्वित करके स्थानीय एव क्षेत्रीय असफलताओ का समायोजन करते हुए उनके आधार पर सामान्य आर्थिक नियोजन का प्रारूप तैयार करता है।

(4) अन्य केन्द्रीय इकाइयो—वित्त मन्त्रालय, स्टेट बैंक तथा श्रम, मूल्य, मजदूरी विज्ञान एव तकनीकी समितियाँ—के साथ मिलकर योजना के दौरान आर्थिक विकास सत्याभूत (ensure) करने की दृष्टि से यह आर्थिक उपाय (economic measures) तैयार करता है। इन उपायो मे उत्पादन को उत्तेजित करने वाले मूल्यों की स्थापना करने बैंको की ब्याज दर तथा साख सम्बन्धी नियमन करने, परिसम्पत् के लिए निश्चित भुगतान करने तथा आर्थिक एजेंसियो व राज्य बजट के बीच सम्बन्धो के लिए मानदण्ड निर्धारित करने जैसे उपाय सम्मिलित है। सोवियत योजना आयोग, सोवियत सघ की विज्ञान अकादमी के साथ मिलकर, दीर्घकालीन तकनीकी नीति व आधारभूत एव व्यावहारिक विज्ञानों की मुख्य प्रवृत्तियों का भी निर्धारण करता है।

केन्द्रीय एजेंसियो को बजट द्वारा वित्त उपलब्ध कराने वाली विनियोग नीति (Budget financed investment policy), विनियोग के लिए कोषों को क्षेत्रवार तथा विभिन्न प्रदेशो में प्रवाह तथा उद्योगो के लिए स्थान का चुनाव करने का अधिकार है। केन्द्रीय एजेंसियाँ अग्रलिखित कामो के लिए भी उत्तरदायी हैं (अ) विदेशी

आर्थिक सम्बन्ध, (आ) आयात निर्यात योजना तैयार करना, (इ) ऋण व साख के आकार का निर्धारण, (ई) विकासोन्मुख देशों को आर्थिक सहायता, (उ) मिले-जुले प्रतिष्ठानों की स्थापना, तथा (ऊ) प्राकृतिक समाधनों का संयुक्त विदोहन ।

(5) अन्त मे, सोवियत योजना आयोग राष्ट्रीय आर्थिक आयोजन के पूरे होने की दृष्टि से निगरानियाँ रखता है । वह योजना से अवांछित विचलनों (undesirable deviations) को रोकने के उपाय करता है । इसका एक मुख्य कार्य सोवियत संघ की योजनाओं को परस्पर आर्थिक सहायता परिषद् (Council for Mutual Economic Assistance) के समाजवादी सदस्य देशों की योजनाओं के साथ समन्वित करने सम्बन्धी प्रस्ताव प्रस्तुत करना भी है ।

राज्यीय योजना आयोगों (Republican Gosplans) के कार्य

गणराज्यों के योजना आयोग गणराज्य की अर्थव्यवस्था के लिए दीर्घकालीन व चालू योजनाएँ तैयार करते हैं । वे गणराज्य के मन्त्रालयों, स्थानीय व प्रादेशिक समितियों द्वारा तैयार की गई योजनाओं मे संशोधन भी करते हैं । वे योजनाओं के पूरे होने के लिए निगरानी भी रखते हैं। वे संघीय-राज्यीय तथा पूर्ण संघीय मन्त्रालयों के योजना विभागों मे पूरी तरह सम्पर्क भी बनाये रखते हैं तथा राष्ट्रीय दृष्टि से महत्त्वपूर्ण प्रतिष्ठानों के लिए भी अपने प्रस्ताव आगे भेजते है ।

प्रादेशिक, नगर एव जिला स्तर पर कार्यरत स्थानीय योजना आयोगों द्वारा भी महत्त्वपूर्ण कार्य किया जाता है । विशेष रूप से वे स्थानीय क्षेत्र के विकास मे प्रतिष्ठानों की पूर्ण क्षमता के उपयोग की ओर ध्यान देते है । स्थानीय नियोजन राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की आवश्यकताओं के साथ घनिष्ठ रूप से जुड़ा होता है ।

विभिन्न मन्त्रालय अपने से सम्बन्धित क्षेत्रों मे उत्पादन एव अन्य आर्थिक गतिविधियों को निर्देशित करते हैं । ये मन्त्रालय अपने-अपने क्षेत्र से अर्थव्यवस्था में वांछित वस्तुओं की पूर्ति के लिए भी उत्तरदायी होते हैं । ये मन्त्रालय अपने क्षेत्र की तकनीकी प्रगति की भी देख-भाल करते हैं । इनका काम यह देखना भी होता है कि सम्बन्धित क्षेत्र लाभ से चलता है या नहीं ।

पिछले कुछ वर्षों मे उद्योग व प्रतिष्ठानों के प्रबन्ध को सुधारने के लिए कुछ परिवर्तन किये गये हैं । केवल व्यक्तिगत प्रतिष्ठान ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण उद्योग को लागत-लेखा (cost accounting) के अन्तर्गत रख दिया गया है । प्रत्येक गणराज्य मे गणराज्यीय उद्योग संघ गठित किये गये हैं । देश मे अनेक विशाल संयुक्त उद्योग (combines) भी है जो संघों (associations) की तरह हैं । प्रबन्ध का यही स्वरूप कृषि, यातायात, निर्माण तथा व्यापार मे भी है ।

योजना निर्माण (Plan Formulation)

योजना बनाने का काम शुरू करने से पहले गत वर्षों मे हुए आर्थिक विकास एव नई आवश्यकताओं का गहन एव व्यापक विश्लेषण किया जाता है । उसके बाद उपर्युक्त सरकारी संस्थाएँ प्रारूप निर्देश (draft directives) के रूप मे नई योजना

के उद्देश्यो व कार्यों को परिभाषित करती है। इन निर्देशो मे मुख्य आर्थिक, तकनीकी तथा सामाजिक समस्याओ, जिनके कि समाधान की आवश्यकता होती है, का उल्लेख किया जाता है। ये निर्देश योजना के सामने रखे गये मुख्य प्रश्न के समाधान की रूपरेखा भी प्रस्तुत करते हैं। राष्ट्रीय आय मे नियोजित वृद्धियों को नये स्थिर व गतिशील परिसम्पत् का निर्माण करने मे किस प्रकार प्रयुक्त किया जाए ?

इसके बाद इन प्रारूप निर्देशो को वाद-विवाद के लिए प्रकाशित किया जाता है। इसके बाद सोवियत सरकार तथा साम्यवादी पार्टी के नेताओं द्वारा उनकी जाँच की जाती है। इन निर्देशो को आधार मानते हुए विभिन्न आर्थिक नियोजन एजेंसियाँ एक पूरी पाँच वर्षो की योजना तैयार करती है। योजना बनाने के इसी तरीके को 'जनतान्त्रिक सकेन्द्रण' (democratic centralism) की सज्ञा दी गई है।

योजनाएँ बनाते समय इस बात का ध्यान रखा जाता है कि मुख्य निर्णय सगठन एव प्रबन्ध के स्तर पर लिये जाएँ जिनके पास अधिकतम मात्रा मे सूचनाएँ उपलब्ध होती हैं। लेकिन वास्तव मे सोवियत योजना-निर्माण केन्द्रीय सरकार का ही विषय-क्षेत्र रहता है। केन्द्रीय सस्थाएँ वे कानून या नियम बना देती हैं जो स्थानीय व क्षेत्रीय एजेंसियो की गतिविधियो का नियमन करने के लिए मानदण्ड का काम करते हैं। इस प्रकार केन्द्रीय सस्थाओ के निर्णयो की नीचे की सस्थाओं द्वारा अनुपालना की जाती है।

समाजवादी गुट (Socialist Bloc) की सयुक्त योजनाएँ

1949 मे यूरोप के समाजवादी देशो द्वारा परस्पर आर्थिक सहयोग परिषद् (Council for Mutual Economic Assistance) ने सदस्य देशों के बीच आर्थिक बहुपक्षीय सहयोग का नया क्रम शुरू कर दिया है। 1971 म सहयोग के लिए एक विशाल कार्यक्रम तथा परिषद के सदस्य देशो के बीच समाजवादी एकीकरण का प्रस्ताव स्वीकार किया गया था। इस कार्यक्रम मे विभिन्न राष्ट्रीय आर्थिक योजनाओं के समन्वयन तथा वैज्ञानिक एव तकनीकी समस्याओ पर मिल जुलकर काम करने का प्रस्ताव किया गया है। इसमे उत्पादन विशिष्टीकरण (production specialisation) तथा पूर्ति एव बिक्री का सगठन करने पर भी बल दिया गया है। विभिन्न समाजवादी देशो के आर्थिक स्तर मे समानता स्थापित करना भी इसका एक उद्देश्य है।

इन समाजवादी देशो का यह सयुक्त आयोजन कार्यक्रम ऐच्छिक आधार पर है। परस्पर अनिवार्यता तभी आती है जब द्विपक्षीय या बहुपक्षीय समझौतो पर हस्ताक्षर कर दिये जाते हैं। व्यापक कार्यक्रम (the comprehensive programme) मे परिषद् के सदस्य देशो से 1990 व 2000 तक उनकी ईंधन व ऊर्जा आवश्यकताओं की भविष्यवाणी करने को भी कहा गया है।

पिछले कुछ वर्षो मे परिषद (CMEA) के सदस्यो ने समस्त क्षेत्रो के विकास के लिए सयुक्त योजनाएँ बनाना आरम्भ कर दिया है। वे न केवल सभी देशो की आवश्यकता के अनुसार वस्तुओ का उत्पादन करने की मिली-जुली योजनाएँ

बना रहे हैं बल्कि मिले जुले अनुसन्धान एव विकास (Research and Development) कार्यक्रम भी उनके द्वारा तैयार किये जा रहे है।

सोवियत सघ की साम्यवादी पार्टी की भूमिका

सोवियत आर्थिक विकास मे सचालक की भूमिका वहाँ की साम्यवादी पार्टी (C P S U) की है। ब्रेजनेव के शब्दो मे, 'पार्टी सम्पूर्ण सामाजिक व्यवस्था का केन्द्र-बिन्दु है, वह सारी सोवियत जनता का सामूहिक मस्तिष्क (collective brain) है।' यह साम्यवादी पार्टी ही है जो राज्य तथा आयोजन सस्थाओ के कार्य निर्धारित करती है तथा इन सस्थाओ व स्वय सरकार मे अपने प्रतिनिधियो द्वारा उनकी कार्यान्विति (implementation) पर दृष्टि रखती है। पचवर्षीय योजनाओ पर दल के निर्देशो को ज्यो का त्यो (in toto) स्वीकार कर लिया जाता है। साम्यवादी दल आर्थिक प्रबन्ध मे भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। प्राथमिक पार्टी सगठनो को प्रशासन के क्रियाकलापो पर निगरानी रखने का अधिकार है। यह भी सोवियत प्रणाली की अपनी ही विशेषता है। ये प्राथमिक सगठन (primary organisations) प्रशासन को उसकी कमियाँ या त्रुटियाँ बताकर उत्पादन के स्तर को ऊँचा उठाने का प्रयास करते है।

श्रम-सघो मे साम्यवादी दल महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। वर्तमान मे श्रम-सघो के प्रत्येक 6 सदस्यो मे से एक साम्यवादी दल का भी सदस्य है। जिस दल की अपनी सदस्य-सख्या अब 15 मिलियन है। आधे से भी अधिक साम्यवादी दल के सदस्य कारखानो, सामूहिक खेतो, राजकीय खेतो, खानो तथा अन्य प्रतिष्ठानो मे काम करते है जहाँ वे अपना प्रभाव व नियन्त्रण बनाये रखते है।

चौदहवां अध्याय

सोवियत अर्थव्यवस्था में आधुनिक प्रवृत्तियाँ
(RECENT TRENDS IN THE SOVIET ECONOMY)

1953 मे स्टालिन की मृत्यु के बाद सोवियत अर्थव्यवस्था मे काफी कुछ बदला है। सोवियत आर्थिक नीति मे अधिक उदारता (liberalisation) आई है। जबरन काम कराने तथा अन्य दबावो का उपयोग करने मे गिरावट आ रही है। जबरन मजदूरी (Forced Labour) अब अतीत की बात बनती जा रही है। राजनीतिक विरोधियो को अब गोली नही मार दी जाती है तथा योजना से सम्बन्धित विषयो पर खुले रूप से वाद-विवाद सामान्य बात बनती जा रही है।

1 बढती हुई विकास-दर

सोवियत रूस का कुल राष्ट्रीय उत्पाद (G N P) तेजी से बढ रहा है। 1953 से 1965 के बीच यह 6 1 प्रतिशत वार्षिक की दर से बढा। कुल राष्ट्रीय उत्पाद के 1970 से 1980 के बीच दुगुना हो जाने का अनुमान है। 1953 से 1965 के बीच सोवियत सघ मे काम के घण्टो मे 15 प्रतिशत की कटौती की गई तथा यह कटौती की प्रवृत्ति जारी है।

प्रति व्यक्ति-घण्टा उत्पादन (per man hour output) की दृष्टि से अब सोवियत रूस केवल जापान व जर्मनी से पीछे है।

प्रति व्यक्ति-घण्टा उत्पादन 1953–65

(वार्षिक औसत चक्रवृद्धि विकास दरें)

जापान	7 8
प० जर्मनी	5 4
सोवियत सघ	5 2
फ्रान्स	4 6
इग्लैण्ड	2 7
अमरीका	2 2
कनाडा	1 9

2 उपभोक्ताओ के लाभ

पिछले कुछ वर्षों मे उत्पादन मे हुई वृद्धियो से सोवियत उपभोक्ता पूरी तरह लाभान्वित होता रहा है। 1950 से 1965 के प्रति व्यक्ति निजी उपभोग मे

5 5 प्रतिशत की वार्षिक वृद्धि हुई है। 1970 के दशक मे उसमे और भी तीव्र गति से वृद्धि हो रही है। 1950 से 1965 के बीच शहरो मे उपलब्ध आवासीयस्थान की प्रति व्यक्ति उपलब्धि 5 8 वर्ग मीटर से बढकर 6 4 वर्ग मीटर हो चुकी थी।

ख्रुश्चेव के सत्ता से हट जाने के बाद पदासीन हुए रूसी नेतृत्व ने लोगो के कल्याण को अपना ध्येय बनाया है। लोगो को सामान्य आवश्यकताओ की वस्तुएँ उपलब्ध करवाने का काम सोवियत योजनाओ का प्रमुख लक्ष्य बन चुका है। 1966 के बाद बनी हुई पचवर्षीय योजनाओ मे उपभोक्ता उद्योगो के विकास की जो दर रखी गई है वह भारी उद्योगो की विकास-दर के बराबर-सी है।

3 'लाइवरमेनवाद' (Libermanism)

स्तालिन युग मे सोवियत फैक्ट्रियाँ केन्द्रीय आयोजन एजेंसी से प्राप्त आदेशो के आधार पर चला करती थी। जहाँ तक उपभोक्ताओ का प्रश्न था वे केन्द्रीय आयोजन एजेंसी के लिए महत्त्वपूर्ण नही थे। इस प्रणाली की असफलता तो उन सरकारी भण्डारो मे खराब और घटिया किस्म की वस्तुओ के भण्डार बढते चले जाने से स्पष्ट हो गई थी जिन्हे खरीदने वाला कोई भी नही था। 1964 मे 257 फैक्ट्रियो का उत्पादन रोक देना पडा था क्योकि उनकी वस्तुएँ कोई भी खरीदने के लिए तैयार नही था। रेडियो, टेलीविजनो, धुलाई मशीनो आदि की घटिया किस्म के बारे मे शिकायतो का ढेर लग गया था। उपभोक्ता किस्म पर जोर देने लगे थे। इस सारी समस्या का निष्कर्ष यही था कि केन्द्रीय आयोजन एजेंसी केवल एक ही मापदण्ड स्वीकार करती थी और वह मापदण्ड था—लक्ष्यो की पूर्ति।

बोनस के भुगतानो को लेकर भी 1960 के बाद कठिनाइयाँ आयी। ये बोनस वस्तुओ की उत्पादित मात्रा तथा सौंप देने के समय के आधार पर दिये जाते थे। लेकिन अब यह स्वीकार्य नहीं था क्योकि उपभोक्ता गुणात्मक पहलू पर जोर दे रहे थे। ऐसी स्थिति मे इस नीति मे परिवर्तन किया गया। कई उद्योगो मे ऐसी व्यवस्था कर दी गई जिससे वे अपने भावी उत्पादन लक्ष्यो का निर्धारण उनकी वस्तुओ की वास्तविक बिक्री से किया करेगे। इसका अर्थ यह हुआ कि अब उपभोक्ताओ की रुचि, केन्द्रीय आयोजन एजेंसी से प्राप्त निर्देश नही, उत्पादन का निर्धारण करेगी। इसीलिए फैक्ट्रियो को उनके भण्डारो को प्राप्त होने वाले ऑर्डरो के आधार पर उत्पादन का आयोजन करने को कहा गया। इन फैक्ट्रियो की सफलता का पता इस आधार पर लगाया जायेगा कि उनकी वस्तुओ को उपभोक्ताओ की स्वीकृति कहाँ तक प्राप्त होती है। इस तरह किसी भी वस्तु की सफलता या असफलता क्रेता की स्वीकृति या अस्वीकृति पर निर्भर करेगी।

ये परिवर्तन प्रो० वाई० जी० लाइवरमेन द्वारा सुझाये गये लाभ-अभिप्रेरणा कार्यक्रम (profit-incentive system) का साराश थे। उसने यह अनुभव किया कि अब सोवियत अर्थव्यवस्था इतनी जटिल और न सभलने योग्य हो चुकी है कि उसका एक केन्द्रीय सस्था द्वारा चलाया जाना सम्भव नहीं रह गया है। उसने अपनी पुस्तक 'योजना, लाभ तथा बोनस' (Plan, Profit and Bonus) 1962 मे प्रकाशित की

जिस पर राष्ट्रव्यापी चर्चा हुई। लाइबरमेन ने जोर देकर कहा कि औद्योगिक कार्यकुशलता तथा किस्म (quality) मे सुधार लाभ की भावना पर जोर देकर किया जा सकता है।[1] उसने सोवियत व्यवस्था की कमी को भाँप लिया। वस्तु की उत्पादित मात्रा तथा उसे सौंप जाने के समय को वस्तु की किस्म से अधिक महत्त्व दिया जाना, उपर्युक्त दोनो मिथ्यात्मक आधारो (fallacies) पर औद्योगिक प्रवन्धको द्वारा अधिक से अधिक उत्पादन लक्ष्य (assignments) प्राप्त करने की चेष्टा करना।

इस स्थिति मे सुधार लाने के उद्देश्य से प्रो० लाइबरमेन ने सुझाव दिया कि लाभ को प्रधान तत्त्व बनाया जाना चाहिए। 'जितना अधिक लाभ उतनी ही अधिक अभिप्रेरणा', कार्यकुशता व किस्म दोनो के लिए। उसने निम्न महत्त्वपूर्ण परिवर्तन सुझाये

(अ) प्रबन्धको को कार्यभार (assignments) चुनने की पूरी स्वतन्त्रता दी जाये। वे कार्यभार की जाँच करे तथा उसी को स्वीकार करे जिसे वे अच्छी तरह व पूरी कार्यकुशलता से कर सके।

(आ) केन्द्रीय आयोजन आदेशो को सरकार व प्रतिष्ठानो के बीच अनुबन्धो से प्रतिस्थापित कर दिया जाना चाहिए कि जिनमे सबसे नीची बोली लगाने वाले को कार्य सौंपा जाये तथा वही उसका मूल्य निर्धारित करे।

(इ) प्रत्येक प्रबन्धको को अनुबन्धित वस्तु का उत्पादन करने के लिए ससाधनो का चुनाव कर सकने की स्वतन्त्रता होनी चाहिए।

(ई) अन्त मे, वस्तु को सौंपने मे की गई जल्दी के आधार पर प्रबन्धको को दिये जाने वाले बोनसो (Bonuses) के स्थान पर भुगतान उत्पादन मे लगी हुई कुल पूँजी पर अर्जित किये गये लाभ की दर पर आधारित किये जाने चाहिए। ऊँची लाभ की दर के लिए बोनस भुगतान की दर भी ऊँची रहनी चाहिए। यह एक स्वाभाविक बात है कि जब लाभ को मुख्य सिद्धान्त मान लिया जाये तो मूल्यों को माँग व पूर्ति की बाजार-शक्तियो के अनुरूप चलना पडेगा, बजाय इसके कि उनका निर्धारण किसी केन्द्रीय सत्ता द्वारा कर दिया जाये।

प्रो० लाइबरमेन ने अपने आलोचको के इस तर्क का भी खण्डन किया कि उनकी योजना पूँजीवादी तरीके की है। उसने कहा कि लाभो को सोवियत सघ मे कभी अमान्यता नहीं दी गई। 'समाजवाद तथा लाभ की मनाही तथा पूँजीवाद द्वारा लाभ को मान्यता समाजवाद को भिन्न बनाने वाली विशेषता कभी नही रही। अन्तर तो उस ढग का है जिससे लाभ बनाया, इकट्ठा किया तथा काम मे लिया जाता है।'[2] यह भी कहा गया है कि उत्पादन का एकमात्र उद्देश्य लाभ कमाना ही नही है। लाभ का प्रयोग तो उत्पादन बढाने व उसकी किस्म सुधारने के लिए किया जाना है। इसीलिए लाइबरमेन के समर्थको ने कहा कि 'लाइबरमेनवाद कोई साम्यवादी विरोधी रामबाण दवा नही था बल्कि वह साम्यवाद को अधिक कुशल बनाने के लिए एक निदान था।' लाभ के सिद्धान्त को प्रयोग के तौर पर कुछ सीमित क्षेत्र मे लागू किया

[1] A G Mazour, *op cit*, 83
[2] Liberman, in *Time*, 12 February 1965.

गया है। मास्को व गोर्की फैक्ट्रियो मे कपडे के उत्पादन मे ये प्रयोग काफी सफल रहे।

4 सरकारी नियन्त्रणो मे ढील

1965 मे केन्द्रीय समिति ने केन्द्रीय नियन्त्रणो मे ढील देने के विषय पर काफी विचार किया। इसका अर्थ था सरकार के स्वामित्व वाले उद्योगो पर चले आ रहे नियन्त्रण को कमजोर करना। फैक्ट्री प्रबन्धको को अधिक पहल देने की छूट दी गई। मूल्य, लागतो तथा बाजार सम्बन्धो को अधिक ध्यान से जाँचा गया। ये सुधार सोवियत सघ के इतिहास मे 1921 की नई आर्थिक नीति के बाद का सबसे महत्त्वपूर्ण मोड थे। प्रारम्भ मे सोवियत सघ के विभिन्न भागो मे स्थित केवल 50 कारखानो को इस प्रयोग के लिए चुना गया। कुछ अधिक कारखानो को भी बाद मे शामिल किया गया। इन कारखानो को अधिक जिम्मेदारी का वहन करना था तथा उनकी उपलब्धि का फैसला उनके द्वारा उपभोक्ताओ को बेची जाने वाली वस्तुओ से किया जाना था। केन्द्रीय सरकार की एजेंसियो की भूमिका सलाह देने तथा व्यापक लक्ष्य निर्धारित करने तक सीमित कर दी गई।

1965 के बाद विनियोगो के लिए वित्तीय व्यवस्था करने के लिए भी एक नई नीति अपनायी गई है। कारखानो की क्षमता का विस्तार करने के लिए वांछित भारी विनियोग या नये कारखानो की स्थापना पर विनियोग की राशि अब ब्याज वाले ऋणो से प्राप्त करने की व्यवस्था की गई। पहले यह राशि बजट-अनुदानो से दी जाती थी। पहले मूल्य भी मनमाने ढग से तय कर दिये जाते थे मगर अब उन्हे वास्तविक उत्पादन लागत पर आधारित किया गया।

5 सैनिक व्यय

सोवियत शासन के आरम्भ से ही सोवियत सैनिक कार्यक्रमो पर कुल राष्ट्रीय उत्पाद का बहुत बडा भाग खर्च किया जाता रहा है। 1953 मे राष्ट्रीय उत्पाद का 14 5% सैनिक कार्यों पर व्यय हुआ। 1953 के बाद लेकिन इसमे कमी आई जब सेना की सख्या घटाकर आधी कर दी गई थी। 58 लाख से 30 लाख की कटौती की गई। अब सैनिक व्यय का भार कुल राष्ट्रीय उत्पाद का लगभग 12% है। यह व्यय भी अमरीका मे सैनिक व्यय के भार की तुलना मे 25% अधिक है तथा पश्चिमी यूरोप के देशो के व्यय की तुलना मे तो तीन गुना अधिक है। यह विशाल सैनिक व्यय सोवियत सघ के आर्थिक विकास को कुछ हद तक सीमित करने वाला तत्त्व (constraint) रहा है। विशेष रूप से हल्के उद्योगो तथा उपभोक्ताओ को इसका नुकसान उठाना पडा है।

6 विदेश व्यापार

विदेश व्यापार के क्षेत्र मे भी सोवियत अर्थव्यवस्था को अधिकाधिक उदार बनाया जा रहा है। इस नीति के बाद मे निर्यातो के मूल्यो मे 9% से भी अधिक तक की वार्षिक वृद्धि हो रही है। व्यापार अभी भी अन्य साम्यवादी देशो पर अधिक

केन्द्रित है। लेकिन सोवियत संघ बाहरी दुनिया के देशों के साथ भी अब अपना व्यापार काफी बढ़ा रहा है। पिछली असुरक्षा की भावनाएँ अब समाप्त हो चुकी है। उसका विदेश व्यापार, कुल राष्ट्रीय उत्पाद के सापेक्ष में, अब उतना ही है जितना अमरीका का। सोवियत सघ के सामने पूँजीगत वस्तुओ के निर्यात तथा खाद्य-पदार्थों एव कच्चे मालो के आयातो की अच्छी सम्भावनाएँ हैं।

7. कृषि मे परिवर्तन

सोवियत सघ मे सर्वाधिक कुशल खेत वे निजी टुकड़े है जो सामूहिक व राजकीय कृषको को व उनके परिवारो को दिये गये हैं। इन भू-खण्डो का आकार ½ से ⅛ हैक्टेयर है और ये कुल कृषित क्षेत्र का मात्र 3 प्रतिशत हैं। किन्तु ये 1965 मे सोवियत सघ मे 40 प्रतिशत मास उत्पादन, 39 प्रतिशत दूध उत्पादन, 67 प्रतिशत अण्डो, 41 प्रतिशत सब्जियो तथा 63 प्रतिशत आलुओं (कुल उत्पादन के प्रतिशत के रूप मे) के उत्पादन के लिए उत्तरदायी थे। किन्तु इन निजी भू-खण्डो की अच्छी कार्य-कुशलता से इनका आकार बढने की कोई गुंजायश नही लगती। लेकिन कृषि-उत्पादन को बढाने के लिए ऊँचे मूल्यों व मजदूरी-दरो का अभिप्रेरको के रूप मे व्यापक उपयोग किया जाने लगा है।

सोवियत अर्थव्यवस्था का मूल्याकन[1]

यह सत्य है कि 1917 से पहले रूसी साम्राज्य बहुत कम विकसित था, वह एक कृषि प्रधान देश ही था और इसलिये एक ऐसे देश का शक्तिशाली औद्योगिक राष्ट्र के रूप मे काया-पलट हो जाना स्वाभाविक रूप से आज के विकासोन्मुख देशो के लिए अध्ययन का एक रोचक विषय है। प्रो० अलेक नोव (Alec Nove) के शब्दो मे, 'सोवियत रूस को एक ऐसे राष्ट्र के रूप मे देखा जाता है और वह सही भी है, जो अपने ही प्रयासो से आगे बढकर सामने आया है तथा अपना औद्योगीकरण भी जिसने अपने ही प्रयत्नो से किया है। इस बात से इनकार नही किया जा सकता कि पश्चिमी देशों की साख तथा मशीनो ने सहायता की किन्तु यह भी तथ्य झुठलाया नही जा सकता कि सोवियत विकास का मॉडल एक ऐसा मॉडल है जिसमे स्वामित्व मजबूती से राज्य के हाथो मे रहा तथा विदेशी उपक्रमो या विनियोगो ने बहुत सीमित भूमिका निभायी। अकुशलताएँ, बलिदान, सरकार की ओर जबरदस्तियाँ तथा सामूहिकीकरण की असफलता आदि के लिए काफी आलोचनाएँ की जा सकती हैं किन्तु ये सब भी सीखने की लागतें ही थी। जहाँ तक सरकार द्वारा किये गये दमन का प्रश्न है, कौन से देश मे औद्योगीकरण जनता की पूर्वानुमति लेकर किया गया है? क्या किसी ने ब्रिटिश जनसख्या से पूछा था कि वह औद्योगिक क्रान्ति चाहती है अथवा नही?'

'अन्त मे सकेन्द्रित योजनाएँ बनाने के क्षेत्र मे सोवियत अनुभव उन सभी के लिए काम की चीज है जो अपने यहाँ औद्योगिक विकास का आयोजन करना चाहते

[1] Alec Nove, *op cit*, 1978, 363

हैं। भारत ने अपने यहाँ नियोजित विकास का कार्यक्रम शुरू करने मे रूस से बहुत कुछ सीखा है। एक सोवियत विशेषज्ञ क्षेमलेव ने कहा था समाजवादी देशों का विकास कार्यक्रम एक काँटो भरे रास्ते से गुजरा था तथा कई चीजें केवल व्यावहारिक अनुभव की प्रक्रिया मे जाकर ही स्पष्ट हो पायी। दूसरे शब्दो में, क्षेमलेव यही कहना चाहता था कि 'हमारी गलतियो से सीखो।'

दूसरे देशो ने सोवियत अनुभव से काफी कुछ सीखा है उनके यहाँ मूल्य सयन्त्र की सीमित भूमिका तथा उनके विनियोग मानदण्डो की जटिलता को अधिक अच्छी तरह समझने की आवश्यकता है।

वास्तव मे, जैसा कि गुनार मिर्डल (Gunar Myrdal) ने लिखा है 'आर्थिक प्रक्रिया का एक बहुत बडे भाग'' लागतो, मूल्यो, लाभ की दरो आदि को, जो मूल्य व्यवस्था के भीतर सकार्यशील होते हैं, निर्देशित करने के लिए अनेक परिवर्तन करने होते हैं।' यहाँ तक कि एकदम अविवेकपूर्ण राजनीति से प्रेरित आर्थिक आन्दोलनों (पिछले कुछ वर्षों में इनमे सबसे महत्त्वपूर्ण निकिता ख्रुश्चेव द्वारा चलाया गया अछूती भूमि आन्दोलन था, जिसके लिए ब्रेजनेव ने 1978 मे प्रकाशित अपनी जीवनी मे उसकी आलोचना की है) ने भी लोगो के गतिशीलन मे तथा उन्हे लक्ष्य तक ले जाने मे अपनी भूमिका निभायी है। यह सही है कि कभी-कभी सोवियत योजनाएँ अव्यावहारिक होती हैं, अधिकाश अवसरो पर उनके लक्ष्य अधूरे रह जाते है, किन्तु वे सकार्यशील (operational) हैं। उनके महान् विनियोग कार्यक्रम नियम से पूरे होते हैं चाहे वे निर्धारित तिथि से कुछ समय बाद क्यो न पूरे होते हो।

पश्चिमी देशो मे भी द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान ससाधनो को युद्ध कार्यों के लिए सकेन्द्रित करने के उद्देश्य से केन्द्रीय नियोजन अपनाया गया था। ऐसा किये जाने से अर्थव्यवस्थाओ मे नई दृष्टिमूलक विसगतियाँ एव विवेकहीनताएँ भी पैदा हो गयी थीं किन्तु उस समय वहाँ भी किसी ने यह तर्क नही दिया कि युद्ध की सामग्री बाजार तन्त्र से चिपके रहकर ही जुटायी जानी चाहिए। सोवियत अर्थव्यवस्था की युद्ध अर्थव्यवस्था (war economy) के साथ समता काफी युक्ति-युक्त है। ऑस्कर लागे (Oskar Lange) ने एक बार सोवियत अर्थव्यवस्था को शाश्वत युद्ध अर्थ-व्यवस्था (perpetual war economy) कहा था। बेंजामिन हिंगिगस, एक प्रसिद्ध विकास अर्थशास्त्री ने लिखा कि 'सम्पूर्ण युद्ध मे, गरीब एव जडप्राय अर्थव्यवस्थाओं के लिए विकास हेतु किये जाने वाले आयोजन की तरह ही, कई सरचनात्मक एव बिखरे बिखरे परिवर्तन करने होते है तथा साधन आवटित किये जाते है किन्तु स्वतन्त्र बाजार से उनकी अनुमति नही ली जाती।' उसने आगे लिखा है, 'और न ही ये वाछित समायोजन सीमान्त होते हैं। इन देशो मे तो स्वय विकास का ही सचालन करना पडता है। इसके लिए क्षेत्रवार नियोजन आवश्यक है। विभिन्न दरें—जिनके आधार पर भारी उद्योग, हल्के उद्योग, कृषि मे सुधार, यातायात एव सदेशवाहन का विकास, आवास की व्यवस्था आदि आगे बढाये जाने होते है, भी जागरुक नीतियो का भाग बन जाती हैं। इस प्रकार के आयोजन मे गणनाएँ करनी होती है, जिनमे

लाभ-लागत तुलनाएँ सम्मिलित होती है, किन्तु ये गणनाएँ भी अब शुद्ध सीमान्त गणनाएँ नही रह गयी है।' हिंग्गिस द्वारा व्यक्त किये गये ये विचार सोवियत व्यवस्था के अध्ययन पर आधारित नही हैं किन्तु वे यह तथ्य उजागर कर देते है कि सोवियत रूस भी एक विकासोन्मुख देश रह चुका है तथा उसके भाग मे भी वे सारी समस्याएँ आयी हैं जो ऐसे देशो के लिए सामान्य होती हैं।

यह सारा तर्क, नोव (Nove) ने लिखा है, कोई चिकनी-चुपडी माफी नही समझा जाना चाहिए। उसके अनुसार, 'सोवियत आर्थिक इतिहास भीषण अपव्ययी, ज्यादतियो, अपराधो (जैसे कि जबरन सामूहिकीकरण) से भरा पडा है तथा यह कहना एकदम अनैतिक होगा कि ये ढेर सारी गलतियाँ या दबाव किसी न किसी रूप मे आवश्यक थे और न ही उन्हे बाद की उपलब्धियों या विकास के आँकडे दिखाकर न्यायोचित ठहराया जा सकता है। लेकिन इस तथ्य को समझना भी आवश्यक है कि सोवियत व्यवस्था एक ऐतिहासिक विकास सन्दर्भ मे उभरी जिसमें जारशाही द्वारा शुरू औद्योगीकरण को आगे बढाया गया। साथ ही यह अनुभव विकासोन्मुख राष्ट्रो के लिए न केवल विशेष रुचि का है बल्कि आर्थिक विकास की कथनी और करनी का यह लेखा-जोखा हमे सोवियत रूस की समस्याओ व उसके आर्थिक इतिहास को अधिक अच्छी तरह समझने का अवसर प्रदान करता है।'

मुख्य कमजोरियाँ व उनके निदान

सोवियत आर्थिक प्रणाली की अधिकाश कमजोरियाँ उसके 'सकेन्द्रण के पैमाने की अमितव्ययिताओ' (diseconomies of centralised scale) से सम्बन्ध रखती हैं। एक ऐसे मॉडल मे जहाँ राज्य, समाज की तरफ से, यह निश्चित करता हो कि किस चीज की आवश्यकता है, क्या उत्पादन किया जाना चाहिए तथा कैसे और किसके लिए किया जाना चाहिए, वहाँ निर्णय लेने तथा जानकारी की छटनी करने का काम इतना बढ जाता है कि वह केन्द्र की क्षमता के बाहर हो जाता है। इस आधारभूत तथ्य को किसी भी सीमा तक पुनर्गठन करके बदला नही जा सकता। इनके दो परिणाम अवश्यम्भावी होते हैं जिन्हे सोवियत प्रणाली मे भी स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है केन्द्र स्वय विभक्त हो जाता है (इसी विचार को अब 'सकेन्द्रित बहुलवाद' (Centralised Pluralism) का नाम दिया गया है), तथा बहुत बडी सख्या मे निर्णय, प्रतिष्ठानो व अन्य स्थानो पर, मातहत (subordinate) कर्मचारियों के क्रियाकलापो पर आश्रित हो जाते है। गुणात्मक सुधार (improvements in quality), नयी डिजाइने तैयार करना आदि स्थानीय एव मध्यवर्ती प्रबन्ध पर निर्भर करते हैं। लेकिन उन्हे ऊपर से प्राप्त अधूरे और समय आदेशो के आधार पर काम करना पडता है। उत्तरदायी या प्रभारी व्यक्ति का भ्रम और भी बढ जाता है जब पार्टी के सगठन भी हस्तक्षेप शुरू कर देते हैं तथा उनके व मन्त्रालयो के बीच भी सम्पर्क एकरूप नही रह पाता। एक ऐसी मूल्य प्रणाली, जो उपलब्धियो के मूल्याकन तथा व्यय पर नियन्त्रण को आसान बनाने के लिए तैयार की हुई है, योजना बनाने वालो को वाछित सूचनाएँ उपलब्ध नही करा सकती। यहाँ तक कि

अभिप्रेरक व्यवस्था (incentive system) भी कई बार बडे विरोधी परिणाम प्रस्तुत करती है। प्रो० नोव ने लिखा है कि 'ऐसे सफलता सूचक तैयार कर पाना असम्भव हो चुका है जो उन कार्यो को उत्तेजित कर सके व पुरस्कृत करने के काम आ सकें जिन कार्यो को पार्टी या योजनाकार चाहते है किन्तु जिन्हे सकार्यशीलता की दृष्टि से (operationally) वे परिभाषित करने मे सक्षम नही है।'

सकेन्द्रण की समस्या एक अन्य समस्या के साथ जुडी हुई है, वह है सूचनाओ के प्रवाह पर सेंसर (censor)। स्टालिन युग मे कई हानियाँ केवल भय से हुई। ऊपर से आने वाले किसी प्रस्ताव के बारे मे प्रश्न नही किया जा सकता था। अब ऐसा नही है। किन्तु अभी भी 'केन्द्रीय प्रतिबन्धो व सूचना प्रणाली मे हेरा-फेरी करने' के उदाहरण है।

पार्टी के सदस्यो द्वारा अत्यधिक हस्तक्षेप एक अलग ही समस्या है। पार्टी के वरिष्ठ सदस्य अर्थव्यवस्था की इस तकनीकी क्रान्ति के युग मे भरपूर कार्यकुशलता के साथ-साथ आर्थिक प्रबन्ध के प्रत्येक स्तर पर नियुक्तियो आदि पर अपना पूर्ण नियन्त्रण भी चाहते है। पार्टी के ये सदस्य सूचनाओ के प्रवाह (flow of information), प्रसारण माध्यमो तथा पुरस्कार वितरण व उसकी राशि पर भी अपना नियन्त्रण रखते है। व्यवस्था मे सुधार करने के मार्ग मे यह एक बडी बाधा है। किन्तु इसका यह अर्थ नही है कि बाजार यन्त्र (market mechanism) की कोई सीमाएँ है ही नही। दीर्घकालीन विनियोग निर्णयो के सम्बन्ध मे मूल्यो की अपनी कमियाँ रहती है। बाजार शक्तियो के कुछ सकारात्मक तो कुछ नकारात्मक प्रभाव होते हैं। ये नकारात्मक प्रभाव बेरोजगारी, एक ही काम के दुहरेपन तथा आय की असमानताओ के रूप मे परिलक्षित होते हैं।

ब्रूस (Brus) ने एक मध्य मार्ग सुझाया है। उसका कहना है कि 'नियोजित अर्थव्यवस्था का एक ऐसा मॉडल जो नियमित (regulated) बाजार यन्त्र का उपयोग करता हो' एक व्यावहारिक निदान है। उसमे 'आधारभूत समष्टि आर्थिक निर्णयो' तथा 'चालू सकार्य समस्याओ' के बीच भेद किया है। इस तरह चालू उत्पादन तथा उपयोग सम्बन्धी निर्णय बाजार यन्त्र पर आधारित होने चाहिए जिन पर केन्द्र कुछ नियम लागू करके नियन्त्रण कर सकता है।

अवधारणाओ की समस्या उत्पन्न हो जाती है जब सोवियत व्यवस्था का नकारात्मक या सकारात्मक पहलू से मूल्याकन करने की चेष्टा की जाती है। हो सकता है, जैसा कि सोवियत सघ का दावा है, वहाँ कोई बेकारी न हो और न ही उससे पैदा होने वाले कष्ट हो। किन्तु वह तकलीफो, विलम्बो तथा कुठाओ से ग्रस्त है जब उपभोक्ता वस्तुओ के वितरण का प्रश्न आता है। हर जगह लगने वाली लम्बी लाइनें (queue) इसका प्रमाण देते हैं। ये नकारात्मक व सकारात्मक पहलू सिर्फ सयोगवश ही सम्बद्ध है। तो फिर यदि पश्चिमी देशो मे बेकारी है, किन्तु वितरण व्यवस्था अच्छी है तो इनमे से 'श्रेष्ठ' कौन-सी व्यवस्था हुई ? इसका मापदण्ड क्या हो ?

इसके बावजूद हम सोवियत प्रणाली को उसकी दुर्बलताओ व दृढताओ के

आधार पर तोल सकते हैं। साथ ही हमें उनकी क्षमता को भी ध्यान में रखना होगा। यदि कमियों का निदान सम्भव है तो सुधार की गुंजाइश रहती है।

सकेन्द्रित योजनाओं में बड़े पैमाने पर विनियोग कम अनिश्चित होते हैं और यह एक सकारात्मक बिन्दु है। किन्तु जो बात ध्यान देने योग्य है वह यह है कि भविष्य के बारे में जानकारी की कमी, न कि कीमतों व प्रतिफल दरों के बारे में गणनाएँ, सोवियत व्यवस्था में विशिष्ट अपव्ययों (conspicuous wastes) का स्रोत है। यह सही है कि विनियोग की मात्रा विनियोग वस्तुओं के उत्पादन कार्यक्रम के सन्दर्भ में समायोजित की जा सकती है, किन्तु ऐसा होता नहीं है। विनियोग आयोजन तथा पूंजीगत वस्तुओं के उत्पादन की योजनाओं में समन्वय दोषपूर्ण रहे हैं।

क्योंकि सोवियत संघ में प्राथमिकताओं का निर्धारण भी केन्द्रीय स्तर पर होता है इसलिए संसाधनों को एक ही उद्देश्य जैसे प्रतिरक्षा पर केन्द्रित किया जा सकता है। स्वाभाविक रूप से कार्य करने वाली बाजार शक्तियाँ वैसा कभी नहीं करेंगी। सापेक्ष आय पर नियन्त्रण लोगों को ऐसे क्षेत्रों में जाने से स्वयं ही रोक देता है जिन्हें कम महत्त्वपूर्ण समझा जाता है जैसे प्रचार का काम, स्टॉक मार्केट आदि। चूंकि मूल्यों तथा आमदनियों पर नियन्त्रण सोवियत संघ में पश्चिम के मुकाबले अधिक प्रभावकारी है इसलिए सामाजिक संघर्षों को अधिक सफलतापूर्वक हल किया जा सकता है या जैसा कुछ लोग कहते हैं, दबाया जा सकता है।

अब हम सोवियत आर्थिक प्रणाली की कुछ कमियों पर भी नजर दौड़ा सकते हैं। इनमें से अधिकांश कमियाँ समष्टि आर्थिक स्तर पर देखने को मिलती हैं। मुख्य समस्या क्षेत्र उत्पादन की किस्म, नव-प्रवर्तन, पहल, दीर्घकालीन उत्तरदायित्व, भ्रामक मूल्य तथा चयन का अभाव से सम्बन्धित हैं। नोव द्वारा लिखित 'ये कमियाँ व्यवस्थागत (systemic) हैं जो केन्द्रीकृत निर्देशात्मक आयोजन प्रणाली के मूल विचार में गहरी धँसी हुई हैं।' इनके लिए कोई आसान या आंशिक समाधान नहीं है। ये कमियाँ उत्पादकता पर विपरीत प्रभाव डालती हैं, अकुशलता को जन्म देती हैं, गलत आबटनों, विसंगतियों तथा अभिप्रेरणाओं से भ्रामक परिणामों की प्राप्ति का निमित्त बनती हैं। सोवियत संघ के उच्च नेता इन कमियों से अपरिचित नहीं हैं किन्तु वे भी इस बारे में कुछ भी कर सकने में असहाय हैं। अधिक कार्यकुशलता तथा ऊँची किस्म के बारे में बात करने में कोई कठिनाई नहीं है किन्तु उन्हें उतनी आसानी से लागू नहीं किया जा सकता। नोव के अनुसार, 'व्यष्टि अर्थशास्त्र के सामान्य क्षेत्र में पश्चिम की श्रेष्ठता निर्विवाद लगती है। सकेन्द्रण से पैमाने की भारी अमितव्ययिताएँ उत्पन्न होती हैं।'

इसके अतिरिक्त पश्चिमी अर्थव्यवस्थाओं व सोवियत अर्थव्यवस्था का अपनी गलतियों को सुधारने का तरीका भी अलग है। एक अमरीकी निगम के अधिकारी ने कहा था कि 'एक चीज जो योजनाओं के बारे में निश्चय से कही जा सकती है वह यह है कि गलतियाँ तो होंगी ही।' सुधार या संशोधन का काम कितनी जल्दी होता है यह इस पर निर्भर करता है कि निर्णय लेने वाले के पास सूचना कब तक पहुँचती है। इस बारे में सोवियत अनुभव अलग ही तरीके का है। ऐसे विचार

जिनसे यह प्रकट होता हो कि राज्य या पार्टी का निर्णय त्रुटिपूर्ण था या तो हतोत्साहित किये जाते है या फिर आगे नही पहुँचने दिये जाते। गलतियाँ या कुप्रबन्ध पश्चिम मे भी कोई असामान्य बात नही है किन्तु स्वतन्त्र अर्थव्यवस्था मे उनके लिये दण्ड की सम्भावनाएँ काफी है।

जब कोई आघात (shocks) लगता है तो दोनो अर्थव्यवस्थाओं की प्रतिक्रिया भिन्न रहती है। जब 1973 मे तेल मूल्यो में अचानक वृद्धि हुई और वे चौगुने हो गये तो प्रभावित पश्चिमी देशो ने ईंधन बचाने के अभियान छेड़े तथा वैकल्पिक ईंधन पर विनियोग बढ़ा दिये। किन्तु सोवियत सघ मे तेल मूल्य अपरिवर्तित ही रहे। जैसे कुछ हुआ ही न हो। किन्तु सोवियत आयोजको ने यह महसूस कर लिया कि पश्चिमी देशों को तेल बेच कर नकद मुद्रा कमा सकते है। इसीलिए दसवी योजना मे ईंधन के लिए प्रयुक्त किये जाने वाले तेल मे कटौती कर दी गई। जैसा कि पहले भी लिखा जा चुका है, सोवियत पद्धति वाली अर्थव्यवस्था ऐसे प्रश्नो पर अधिक ध्यान दे सकती है जो केन्द्र द्वारा निपटाये जाते हो। यही कारण है कि सोवियत सघ एक दीर्घकालीन ईंधन नीति बनाने मे सफल रहा है।

व्यष्टि-आर्थिक मामलो मे ही सोवियत कठिनाइयाँ जमा होती रहती हैं। उनके कानून बड़े अदूरदर्शी होते है क्योंकि उन्हें चालू योजना के लक्ष्यों को पूरा करना होता है। एक नियन्त्रित मूल्य व्यवस्था के कारण सही माँग की दाबर हो ही नही पाती। किन्तु यह बात ध्यान म रखनी होगी कि इन कमियों से सोवियत प्रणाली घटिया नही बन जाती। वास्तव मे उत्पादन तथा अपव्यय दोनो ही के लिए आज की तेजी से बदलती हुई दुनिया मे बदल रही परिभाषाओ के सन्दर्भ मे सोवियत प्रणाली की तुलनात्मक प्रभावशीलता या अभावशीलता को माप सकना असम्भव-सा है। यह निर्णय करना पाठक पर छोड़ दिया गया है।

परिशिष्ट

तथ्य और आँकड़े*

सारणी 1

जनसख्या का आकार, जन्म दर, मृत्यु दर तथा सोवियत सघ मे स्वाभाविक वृद्धि दर

वर्ष	कुल जनसख्या (मिलियन मे)	जिसम से		प्रति 1000 जनसख्या पर		
		ग्रामीण	शहरी	जन्म	मृत्यु	स्वाभाविक वृद्धि
1897	124 5	106 2	18 4	50	32	18
1913	159 1	130 7	28 5	46	29	17
1926	147 0	120 7	26 3	44	20	24
1940	196 7	131 8	64 9	31	18	13
1950	181 6	108 6	73 0	27	10	17
1960	216 2	107 9	108 3	25	7	18
1970	241 7	105 7	136 0	17	8	9
1972	246 3	103 8	142 5	18	8	10

सारणी 2

रूस मे जनसख्या की सामाजिक सरचना

(प्रतिशत मे)

	1913	1928	1939	1974
फैक्ट्री व आफिस कर्मचारी	17	17 6	50 2	81 3
सामूहिक फार्म कृषक	—	2 9	47 2	18 7
व्यक्तिगत कृषक व कारीगर	66 7	74 9	2 6	0 0
भूस्वामी, व्यवसायी आदि	16 3	4 6	—	—
कुल जनसख्या	100	100	100	100

**The Soviet Planned Economy*, Progress Publishers, Moscow, 1974, 309 341

सारणी 3

विनियोग तथा स्थायी परिसम्पत् की स्थापना, आर्थिक विकास की प्रमुख अवस्थाओ मे

('000 मिलियन रूबल मे)

		कुल विनियोग	कुल स्थापित स्थायी परिसंपत्
1918–28		4 4	3 9
प्रथम योजना	(1929–32)	8 8	9 4
द्वितीय योजना	(1933–37)	19 9	17 4
तीसरी योजना के साढे तीन वर्ष	(1938–41)	20 6	18 6
1 जुलाई, 1941 से 1 जनवरी 1946		20 8	19 1
चौथी योजना	(1946–50)	48 1	42 8
पाँचवी योजना	(1951–55)	91 1	81 1
छठी योजना	(1956–60)	170 5	158 0
सातवी योजना	(1961–65)	247 6	231 9
आठवी योजना	(1966–70)	353 8	324 4

सारणी 4

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद सोवियत विदेश व्यापार का विकास

(मिलियन रूबलो मे, चालू मूल्यो पर)

	1946	1950	1960	1970	1973
कुल विदेश व्यापार जिसमे से	1,280	2 925	10,073	22 079	31,300
समाजवादी गुट	698	2 373	7,371	14 403	18,300
विकसित पूँजीवादी देश	491	440	1,917	4 694	13,000
विकासोन्मुख देश	91	112	785	2 982	

सारणी 5

सोवियत रूस मे विद्यार्थियो की संख्या

(मिलियन मे)

1914-1915	10 6
1940-1941	47 6
1960-1961	52 7
1970-1971	79 6
1972-1973	80 7

सारणी 6

सोवियत स्वास्थ्य सेवा के प्रमुख सूचक

	1913	1940	1950	1960	1970
फिजीशियनो की संख्या ('000)	28	155	265	432	668
प्रति 10,000 जनसंख्या पर डॉक्टरो की संख्या	2	8	15	20	[illegible]
हॉस्पिटल बेड्स की संख्या ('000)	208	791	1,011	1,739	2,663
प्रति 10,000 जनसंख्या पर बैड्स की संख्या	13	40	56	80	109

सारणी 7

सोवियत राजकीय बजट

('000 मिलियन रूबल)

	1940	1950	1960	1970	1972
कुल प्राप्तियाँ	18 0	42 3	77 1	156 7	175·1
कुल व्यय	17 4	41 3	73 1	154 4	173·2

सारणी 8

सोवियत संघ मे महिला जनसंख्या

	(मिलियन मे)	(जनसंख्या का %)
1913	80	50
1940	101	52
1959	115	55
1969	129	54
1974	135	54

सारणी 9

राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था मे औसत मासिक मजदूरी

(रूबल मे)

वर्ष	1940	1950	1960	1970	1973
औसत मासिक मजदूरी	33 1	64 2	80 6	122 0	135

जापान का आर्थिक विकास

पहला अध्याय

मेजी पुनर्संस्थापना की पृष्ठभूमि

(MEIJI RESTORATION : BACKGROUND)

जापानी अर्थव्यवस्था का पूर्णरूपेण कायाकल्प तथा उसका असाधारण विकास 1868 मे हुई मेजी पुनर्संस्थापना (Meiji Restoration) के बाद प्रारम्भ हुआ। 1868 की यह घटना जापान के आर्थिक इतिहास मे विशेष महत्त्व की है क्योकि यही सदियो पुरानी सामन्तवादी व्यवस्था के उन्मूलन तथा 260 वर्षो से चले आ रहे तोकुगावा वश (Tokugawa dynasty) के अधिनायकतावादी शासन को उखाड फेंकने के लिए उत्तरदायी थी। जापान के इस कायापलट की गति, जिसके द्वारा वह अर्द्ध-सामन्ती अवस्था से एक आधुनिक पूँजीवादी राज्य बन गया, ने लगभग प्रत्येक आर्थिक इतिहास के पर्यवेक्षक को आश्चर्य मे डाल दिया है। पिछले सौ वर्षो के अन्तराल मे जापानी अर्थव्यवस्था का यह आधुनिकीकरण और भी विलक्षण प्रतीत होता है क्योकि उसकी तुलना मे पश्चिमी देशो मे विकास की प्रक्रिया धीरे-धीरे जमी तथा उसके पीछे सदियो का परिश्रम व उत्पीडन भी था।

यूरोप मे पूँजीवादी तरीके का उत्पादन प्रक्रम मध्य-युग (Middle Ages) से ही आरम्भ हो चुका था; इग्लैण्ड मे तो पूँजीवादी तरीके से उत्पादन की शुरुआत 13वी तथा 14वी शताब्दी से ही देखी जा सकती है। सारी व्यवस्था मे अत्यधिक समय लगा तथा वह विदेशी व्यापार मे वृद्धि के साथ शुरू हुई थी जिसने व्यापारी नियोक्ताओ (Merchant employers) के एक वर्ग को जन्म दिया था। मध्य-युग की समाप्ति पर पश्चिमी यूरोप की प्रमुख विशेषता वहाँ की व्यावसायिक श्रेणियाँ (Merchant guilds) बन चुकी थी। धीरे-धीरे कुछ नये आर्थिक सगठन भी बने जिन्होने बैंकिंग तथा व्यवसाय के क्षेत्र मे क्रान्ति ला दी। अन्त मे कारखाना प्रणाली (Factory system) आई। इन परिवर्तनो के सहायक परिवर्तन के रूप मे बाजारो की व्यापकता, उपनिवेशो का प्रसार, जनसख्या मे वृद्धि और शहरो का विकास तथा स्थल-सेना व नौसेना की बढती हुई आवश्यकताओ का भी उल्लेख करना अनिवार्य हो जाता है। यान्त्रिक आविष्कारो तथा लोहे व कोयले के उपयोग ने भी इस सम्बन्ध मे अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई तथा तीन सौ से चार सौ वर्षो के अनथक प्रयास के बाद ही ग्रेट ब्रिटेन मे कारखानो (factories) को मजबूती के साथ स्थापित किया जा सका था। सम्पूर्ण यूरोप मे कारखाना प्रणाली के प्रचार-प्रसार मे तो और भी अधिक समय लग गया।

इससे तुलना करने पर तो जापानी आर्थिक कायाकल्प की कहानी और भी रहस्यपूर्ण लगने लगती है। उन्नीसवी शताब्दी के मध्य तक भी जापानी अर्थव्यवस्था एक आदिम या पुरातन कृषि अवस्था मे थी। उसके 2[illegible] से 30 मिलियन लोगो[1] मे अधिकाश लोग या तो दास थे या फिर गरीबी से त्रस्त किसान थे। उनमे से अधिकाश आत्मनिर्भर गावो मे रहते थे। अर्थव्यवस्था का मूलाधार तथा उसकी सम्पदा का प्रमुख स्रोत सदियो से अपरिवर्तित तरीको से की जाने वाली चावल की खेती थी।

इन निराशाजनक परिस्थितियो मे जापान का एक महाशक्ति के रूप मे उदय[2] इसी बीच जर्मनी के पुनर्निर्माण की तरह ही 1914 से पिछले 50 वर्षो की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण राजनीतिक परिवर्तन की घटना कही जा सकती है। अनेक पश्चिमी पर्यवेक्षको को जापान की आर्थिक व राजनीतिक क्षेत्र की उपलब्धियाँ इतनी आश्चर्यजनक लगी कि उन्हे उसके पीछे कोई विवेक-सम्मत स्पष्टीकरण भी नही दिखाई दिया। इसका परिणाम यह रहा कि कुछ पश्चिमी विचारक तो उन जापानियो के साथ एकमत हो गये जो अपनी नई गौरवपूर्ण स्थिति की प्राप्ति को किसी दैवी शक्ति की कृपा का परिणाम बताते तो कुछ अन्य पश्चिमी लेखको ने जापान की इस महान् प्रगति को भाग्यशाली घटना-क्रमो (lucky accidents) का परिणाम बताते हुए यह भी लिखा कि बहुत जल्द ही उसकी सामान्यता (mediocrity) का पता चल जायेगा। वैसे देखा जाए तो विशेष रूप से आर्थिक क्षेत्र मे जापान के आधुनिक इतिहास की प्रत्येक अवस्था पर महाविनाश एव पतन की भविष्यवाणियाँ इतनी ज्यादा व प्रभावित करने वाली रही कि उसकी आन्तरिक शक्ति का सही अनुमान (shrewder estimate) तब तक नही लग पाया जब तक कि उसने अपने आपको सयुक्त राज्य अमरीका तथा ब्रिटिश साम्राज्य के विरुद्ध महायुद्ध मे नही झोक दिया।

तोकुगावा जापान एक अवरुद्ध समाज
(Tokugawa Japan A Closed Society)

उन्नीसवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध मे तथा बीसवी शताब्दी मे जापान द्वारा की गई तीव्र प्रगति को अच्छी तरह समझने के लिए तोकुगावा शासन के अन्तर्गत जापान के इतिहास की जानकारी आवश्यक है। 1853 से पहले जापान एक अलग-थलग पडे देश की तरह रहा था जिसका बाहरी दुनिया के साथ किसी प्रकार का सम्पर्क नही था। तोकुगावा शासको के शासन-काल मे, दो शताब्दियो से भी अधिक समय तक, जापान मे विदेशियो के प्रवेश पर पूरी तरह प्रतिबन्ध लगा हुआ था। सरकार विदेशो के साथ किसी भी प्रकार के व्यापार की अनुमति नही देती थी। इसी तरह तोकुगावा सरकार ने विदेश यात्रा व विदेशो मे अध्ययन पर भी रोक लगा रखी थी। सरकार ईसाइयत के प्रसार की भी घोर विरोधी थी तथा तोकुगावा शासको ने जिस एकमात्र पश्चिमी सम्पर्क की अनुमति दे रखी थी वह डच लोगो द्वारा जापान मे स्थापित एक व्यापारिक चौकी थी। चीन जो कि जापान का निकटस्थ पडोसी था, के साथ भी

[1] W W Lockwood, *The Economic Development of Japan*, 1968, 3
[2] G C Allen, *A Short Economic History of Modern Japan*, 1950, 9

जापान के कोई सम्बन्ध नहीं थे। जापानी लोगों को दुनिया से अलग रखने के उद्देश्य से जापानी सरकार 75 टन से अधिक क्षमता वाले जहाजों के निर्माण की भी अनुमति नहीं देती थी।

तोकुगावा लोगों को सत्ता सोलहवीं शताब्दी में लम्बे समय तक चलने वाले गृह-युद्धों से प्राप्त हुई थी। सम्राट एकान्तवास में क्योटो (Kyoto) में रहने लग गया तथा तोकुगावा लोग ही देश के वास्तविक शासनाध्यक्ष बन गये। उन्होंने देश में एक प्रकार की सैनिक तानाशाही कायम कर दी। इस व्यवस्था को बाकुफू (Bakufu) कहा गया। शोगुन (Shogun) या धर्मनिरपेक्ष कहलाने वाले तोकुगावाओं का देश की एक-चौथाई कृषि-योग्य भूमि पर अधिकार था। उन्हें अपनी अधिकांश आय भूमि से ही प्राप्त होती थी। देश की शेष कृषि-योग्य भूमि पर भूस्वामियों या दायम्यो (Daimyo) का अधिकार था जो अपने क्षेत्र पर, जिसे हान (Han) कहा जाता, काफी स्वायत्तता से प्रशासन चलाते थे। दायम्यो तथा शोगुन के कारिंदे (retainers) समुराई (Samurai) के नाम से जाने जाते थे। इस वर्ग के लोग योद्धा (warriors) होते थे जो लड़ाई के समय अपने भूस्वामियों की सेवा में बुला लिये जाते थे। जहाँ समुराई वर्ग के कुछ सदस्यों को काफी अधिक भत्ते आदि मिलते तथा उनके पास प्रशासनिक अधिकार भी काफी मात्रा में होते, वहीं अधिकांश समुराई वर्ग (Samurai) के सदस्यों को मामूली सा चावल दिया जाता था तथा वे रक्षकों (guards) का काम करते थे। तोकुगावा शासन-काल में आम तौर पर शान्ति बनी रही इसलिये समुराई वर्ग के लोगों को योद्धाओं के रूप में कार्य करने की जरूरत बहुत कम ही पड़ी। धीरे-धीरे ये लोग निष्क्रिय तथा परोपजीवी (functionless and parasitic) के हो गये। उनके परिवारों की संख्या करीब 20 लाख थी तथा वे देश पर एक बहुत बड़ा भार बन गये।

किन्तु यह निष्कर्ष निकालना भी गलत होगा कि तोकुगावा जापान कोई आदिम समाज था। सरकार कार्यकुशल व प्रभावशाली थी। केन्द्रीय सत्ता मजबूत थी तथा कहीं भी महत्त्वपूर्ण आन्तरिक गड़बड़ियाँ नहीं थी। हालांकि तोकुगावा जापान के पास इंग्लैण्ड की तुलना में भी कम उपजाऊ भूमि थी किन्तु वह 35 मिलियन लोगों का भरण-पोषण कर रहा था जोकि ब्रिटेन की तत्कालीन जनसंख्या के 5 गुना थे। वह एक अजीबोगरीब किन्तु परिष्कृत संस्कृति थी। पाश्चात्य जानकारी किसी तरह चिकित्सा एवं विज्ञान के क्षेत्र में पहुँच चुकी थी तथा यह अनुमान लगाया गया है कि उन्नीसवीं सदी के आरम्भ में जापान में पश्चिमी यूरोप की तुलना में अधिक साक्षरता थी।

कृषि पर आधारित तोकुगावा जापान का समाज लगभग 270 क्षेत्रीय स्वामियों (Daimyo) तथा एक पूरे के पूरे योद्धा वर्ग समुराई (Samurai) का भरण-पोषण करता था। दायम्यो लोगों को काफी लम्बे समय से सामन्ती अधिकार प्राप्त थे तथा वे क्योटो में रह रहे सम्राट की केवल नाममात्र की आधीनता स्वीकार करते थे। किन्तु 1603 से, जबसे तोकुगावाओं का सैनिक परिवार सत्ता में आया, ये दायम्यो लोग वास्तव में उसकी ही आधीनता में थे। दायम्यो सरदारों ने शोगुन (पैतृक

तोकुगावा तानाशाह) के साथ मिलकर प्रतिवर्ष किसानो के कुल उत्पादन का 40% कर के रूप मे वसूलने की व्यवस्था की हुई थी। शेष बचने वाला खाद्य उत्पादन बाकी बची हुई आबादी का पेट भरने के लिए जैसे-तैसे पूरा पडता था। अकाल, महामारियाँ आदि आते रहते थे तथा बच्चो की हत्याएँ (infanticide) भी असामान्य नही थी।

दायम्यो तथा समुराई वर्ग के परोपजीवी लोगो के बाद जिस गैर-विशेषाधिकार वाले वर्ग का बहुमत था उसमे किसान लोग आते थे। ये किसान कुल आबादी का 75% थे। उन्हे कई प्रतिबन्धो के अन्तर्गत काम करना पड़ता था। उनकी स्थिति यूरोप के कृषि-दासो (Serfs) जैसी थी। उन्हे अपने खेत छोडने तथा शहरो मे जाकर बसने की अनुमति नही थी। इन किसानो से वार्षिक भूमि-कर के रूप मे वसूल किया जाने वाला भुगतान ही शोगुन (Shogun) तथा दायम्यो (Daimyo) की प्रमुख आय थी। यह चावल के रूप मे दिया जाता था तथा धान के कुल उत्पादन का 40% से 50% होता था। इस भूमि-लगान के अलावा किसानो का शोषण और भी कई तरीको से किया जाता था जिसमे उनसे वस्तुओं या सेवाओं के रूप मे भुगतान जबरन ले लिये जाते थे। तोकुगावा काल मे इन किसानों की सामान्य स्थिति इतनी दयनीय थी कि एक लेखक ई० होंजो (E Honjo) ने तो यहां तक लिखा है, 'ऐसा लगता था कि जैसे वे कर देने के उद्देश्य के लिए ही जी रहे हो।' सिंचित खेतो मे उगाई जाने वाली मुख्य फसल चावल थी। अन्य खाद्य फसले जैसे गेहूँ, जौ, सोयाबीन, तथा औद्योगिक फसलें जैसे रेशम के कीडो के लिए शहतूत की पत्तियाँ, नील तथा कपास भी थोडी-थोडी मात्रा मे उगाये जाते थे। तोकुगावा काल मे रेशम के कीडो की खेती (Sericulture) मे असाधारण प्रगति हुई। इसी तरह कृषि तकनीको मे भी तोकुगावा काल मे काफी सुधार हुए जिनसे उत्पादकता मे तीव्र गति से वृद्धि हुई।

तोकुगावा शासन के प्रारम्भिक वर्षों मे देश के ग्रामीण क्षेत्रों मे एक 'स्वाभाविक या प्राकृतिक अर्थव्यवस्था' (Natural Economy) प्रचलित थी। गाँव आत्मनिर्भर थे। अपने मालिको (Lords) को वस्तुओ व सेवाओ के रूप मे कर चुकाने के बाद किसी तरह किसान लोग अपना गुजारा भी कर लेते थे। सिर्फ कुछ चीजे जैसे नमक, धातु का बना सामान व दवाएँ ही वे बाहर से खरीदते। तोकुगावा शासन के बाद के वर्षों मे ग्रामीण क्षेत्रों मे मुद्रा के प्रवेश ने ही पुराने सामाजिक व राजनीतिक ढाँचे को तोडने की प्रक्रिया आरम्भ की।

क्योटो, येदो तथा ओसाका (Kyoto, Yedo and Osaka) जैसे शहरो मे कुछ विशेष प्रकार का निर्मित माल तैयार करने वाले उद्योग भी थे। ये उद्योग मुख्य रूप से विशेषाधिकार प्राप्त दायम्यो या समुराई वर्ग द्वारा की गई माँगो पर निर्भर करते थे। राजधानी एडो (Edo), आधुनिक टोक्यो, की जनसख्या 1780 मे ही 14 लाख पहुँच चुकी थी और उस समय वह शायद विश्व का सबसे घनी आबादी वाला शहर बन चुका था।[1] ओसाका तथा क्योटो भी बडे शहर थे। मुख्य औद्योगिक वस्तुओ मे सूती वस्त्र, ताँबे की बनी चीजे, कागज, छाते, मोमबत्तियाँ तथा परम्परागत दवाएँ

[1] H Rosovsky, *Capital Formation in Japan : 1860–1970*, 66

आनी थी। शिल्प व्यवसायों पर यूरोप की श्रेणियां (Guilds) जैसी सस्थाओं का ही नियन्त्रण था।

ये औद्योगिक श्रेणियाँ (Industrial guilds) मूल्यो, उत्पादन की मात्रा तथा वस्तुओ की बिक्री आदि का विनियमन करती थी। उनकी सदस्यता वशानुगत होती थी तथा वह काफी कम थी। ये औद्योगिक श्रेणियाँ तोकुगावा सरकार के एक आदेश द्वारा बहुत पहले ही अर्थात् 1721 में ही मान्यता प्राप्त कर चुकी थी। किन्तु इन श्रेणियों का कार्यक्षेत्र बहुत सीमित था तथा ये मूल रूप से सामन्ती समाज के अधीन कार्य करती थी। इसके अलावा तोकुगावा काल मे औद्योगिक गतिविधियाँ इन श्रेणियो तक ही सीमित नही थी। किसान तथा शहरी मजदूर भी तैयार माल की विभिन्न वस्तुएँ बनाते थे। जिन्हे वे व्यापारियो को बेच देते और उन व्यापारियो के माध्यम से निर्मित वस्तुएँ उपभोक्ताओ के हाथो मे पहुँचती थी। ये व्यापारी मजदूरो को कच्चा माल तथा औजार खरीदने के लिए अग्रिम या पेशगी रकम भी देते थे।

हालाकि कारखाने (factories) तोकुगावा शासन-काल मे अज्ञात नही थे किन्तु वे बहुत छोटे थे तथा राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था मे उनकी भूमिका विशेष महत्वपूर्ण नही थी। तोकुगावाओ के शासन-काल मे औद्योगिक उत्पादो मे हस्तशिल्प की बनी हुई वस्तुओं की ही प्रधानता बनी रही। इतना ही नही, कारीगरो तथा मजदूरो को घटिया किस्म के लोग माना जाता था। फैक्ट्रियाँ व काम की जगहे, जहाँ सौ के लगभग मजदूर काम करते, आमतौर पर शोगुन या दायम्यो के ही स्वामित्व व सचालन मे होती थी।

इस तथ्य के बावजूद कि तोकुगावा शासन-काल मे जापानी अर्थव्यवस्था मे आत्मनिर्भरता की प्रवृत्ति प्रधान थी, देश के विभिन्न भागो के बीच व्यापार की मात्रा का परिमाण अत्यधिक व्यापक था। विभिन्न प्रान्तो से राजधानी की ओर विशाल मात्रा मे वस्तुओ का प्रवाह होता था। भूस्वामियो के क्षेत्रो मे उत्पादित चावल व अन्य उत्पाद बिक्री हेतु एडो तथा ओसाका भेजे जाते। इस प्रक्रिया ने व्यापारियों के एक वर्ग को जन्म दिया जो विभिन्न वित्तीय एव व्यावसायिक लेन-देन करते थे। यही कारण था कि तोकुगावा काल मे भी जापान मे एक ऐसी वित्तीय व्यवस्था कायम हो चुकी थी जो एशिया के अन्य देशो को देखते हुए काफी समुन्नत कही जा सकती थी। दोनो बडे शहरो (Edo, Osaka) मे विभिन्न प्रान्तो से बिक्री के लिए लाई जाने वाली वस्तुओं को रखने के लिए बडे बडे गोदाम बनाये गये। दायम्यो लोग अपनी भावी आय की जमानत पर भारी मात्रा मे धनराशि पहले ही व्यापारियो से लेते रहते थे। इस प्रवृत्ति के परिणामस्वरूप साहूकारो (financiers) के एक वर्ग का जन्म हुआ जो उधार देने का काम करते थे। विनिमय बिल तथा प्रॉमिसरी नोट की प्रणालियाँ रकम उधार देने के समय काम मे ली जाती थी। तोकुगावा काल मे खुदरा व्यापार भी काफी तेजी से विकसित हुआ। इनमे से कुछ किराने की दुकाने तो बडे पैमाने पर गठित की गई। मित्सुई घराना (House of Mitsui) अठारहवी सदी के आखिर मे अपनी टोक्यो स्थित खुदरा दुकान पर 1,000 आदमियो का रोजगार दे रहा था।

आन्तरिक कानून एवं व्यवस्था बनाये रखने के उद्देश्य से शोगुन ने सड़कों की स्थिति से काफी सुधार करवाया। येदो तथा ओसाका के बीच तटवर्ती व्यापार भी अत्यधिक सुसगठित था हालांकि सरकार जापान को दुनिया से अलग-थलग रखने की नीति का अनुसरण करने के कारण बडे जहाजो के निर्माण की अनुमति नही देती थी। यही कारण था कि जापानी तकनीक भी अलग-थलग रह गई। तोकुगावा प्रशासन के पुलिस राज जैसे वातावरण के कारण विदेशी व्यापार का भी विकास अवरुद्ध ही रहा। शोगुनते (Shogunate) अर्थात् तोकुगावा शासक द्वारा लगाये गये विनियमो से विदेशी व्यापार एकदम अपग बन गया। यहाँ तक कि देश के भीतर भी व्यापार एव आवागमन पर प्रतिबन्ध लगे हुए थे। 1641 के बाद, पृथक्तावादी नीति का अनुसरण करने के कारण, जापान व बाहरी विश्व के बीच व्यापार इतना प्रतिबन्धित था कि केवल चीनी लोग नागासाकी मे तथा डच लोग देशिमा (Deshima) मे बहुत थोडी मात्रा मे विदेशी व्यापार कर सकते थे। इस प्रकार के व्यापार की सरचना तथा मात्रा पर भी कडे प्रतिबन्ध थे। कच्ची रेशम प्रमुख आयात था जिसके बदले मे सोने का भुगतान किया जाता था। यह भी एक कारण था जिसकी वजह से सरकार विदेशी व्यापार को हतोत्साहित करती थी। विदेशी व्यापार का अर्थ था बहुमूल्य धातुओ के भण्डारो मे कमी।

तोकुगावा शासको द्वारा अपनाई गई पृथक्तावाद की नीति (Policy of Seclusion) का प्रमुख उद्देश्य उनकी राजनीतिक व्यवस्था को अक्षुण्ण बनाये रखना था। उन्होंने यूरोपीय पुस्तको का जापानी मे अनुवाद करने की भी अनुमति नही दी। कुछ दायम्यो लोगो द्वारा इस प्रकार के प्रतिबन्धो से बचने की चेष्टाएँ भी की गईं किन्तु कुल मिलाकर तोकुगावा शासन-काल मे पृथक्तावादी नीति अच्छी तरह लागू रही। आर्थिक जीवन पर कठोर नियन्त्रण कई असह्य एव दमनकारी कानूनो द्वारा और भी बुरे बना दिये गये। किसानो को अक्सर एक पूर्व-निर्धारित फसल बोने के लिए बाध्य किया जाता। लोगो के लिए अपनी सामाजिक स्थिति बदलना असम्भव था। सिर्फ सम्पन्न व्यक्ति ही समुराई वर्ग मे शादी इत्यादि (अपने धन के बल पर) करके उसमे प्रवेश पा सकते थे। सरकार ने विभिन्न जातियो व वर्गों के पहनावे तक तय कर रखे थे। केवल समुराई लोगों को ही तलवार लेकर चलने का अधिकार था। ये लोग अपनी तलवारो का उपयोग उन लोगो या व्यापारियो को डराने-धमकाने मे खूब करते थे जिनसे कि वे धन उधार लेते थे। हर्बर्ट नॉर्मन ने लिखा है कि 'यह बाद का सामन्तवाद समाज को एक श्रेणीबद्ध साँचे मे जमाये रखने का इतिहास मे किया गया सर्वाधिक जागरूक प्रयास था।'

तोकुगावा शासन के ढहने के कारण

(1) **भारी ऋणग्रस्तता**—तोकुगावा काल के उत्तरार्द्ध मे सामाजिक एव आर्थिक प्रणाली बिखर जाने के कगार पर आ खडी हुई थी। शोगुन (तोकुगावा शासक) को हर थोड़े समय बाद वित्तीय कठिनाइयो का मुकाबला करना पड़ रहा था। दायम्यो (भूस्वामी) लोग व्यापारियो के भारी मात्रा मे कर्जदार बन चुके थे

तथा वे अपने अगरक्षकों का कार्य करने वाले समुराई लोगो को उनके लिए निर्धारित चावल का भुगतान करने की स्थिति मे भी नही रह गये थे।

(2) **समुराई वर्ग की अनिष्ठा (Disloyalty)**—समुराई लोग इतने अधिक निर्धन हो चुके थे कि वे लोग शहरो मे जाकर बस गये तथा वही नौकरी करने लग गये। उनमे से कुछ डाकू बन गये या सडको पर लूटमार मचाने लग गये। शोगुन तथा कुछ अधिक शक्तिशाली दायम्यो सरदारो के बीच प्रतिद्वन्द्विता भी खुलकर सामने आने लगी।

(3) **विदेशियो का हस्तक्षेप**—इस बात से असहमत हुआ जा सकता है कि जापान के बन्दरगाहो का जबरन खुलवाया जाना ही तोकुगावा शासन के पतन का प्रमुख कारण रहा, किन्तु इस बारे मे कोई सन्देह नही हो सकता कि उसका इस पतन मे बडा योग रहा। 1853 मे अमरीकी नौसेना अपनी गनबोटो (Gunboats) की सहायता से जापानी बन्दरगाहो मे बलात् प्रवेश कर गई। यह आक्रमण धीरे-धीरे और भी बडा बन गया। 1858 मे तोकुगावा शासकों को एक व्यापारिक सन्धि पर हस्ताक्षर करने के लिए बाध्य होना पडा जिसमे ब्रिटिश नागरिको, फ्रांसीसियो तथा अन्य राष्ट्रीयताओ वालो को जापान के साथ व्यापार करने के अधिकार प्राप्त हो गये। विदेशियो के लिए पाँच बन्दरगाह खोल दिये गये। पश्चिमी देशो की नौसेना की शक्ति तब प्रदर्शित हुई जब 1863 व 1864 मे उसने विदेशियो के प्रवेश का विरोध करने वाले दो शहरो पर गोले बरसाये। इस विदेशी आक्रमण ने तोकुगावा शासन की कमजोरी की पोल खोल दी तथा परिवर्तन की आवश्यकता को भी स्पष्ट कर दिया। मगर कुछ लेखको का मत है कि इस विदेशी आक्रमण ने केवल तोकुगावा शासन के पतन को अधिक शीघ्रतापूर्वक करने का ही काम किया। डब्लू० ई० ग्रिफस् ने लिखा है कि 'विदेशी लोग तथा उनके विचार केवल एक अवसर ही थे कारण नही जिनसे दोहरे शासन का भेद खुला उनकी उपस्थिति ने उस पतन को शीघ्रता प्रदान की जो अवश्यम्भावी था वास्तविक कारण देश के भीतर ही कही था, वह बाहर से नही आया था।'

(4) **बुद्धिजीवियो द्वारा विरोध**—चीन मे मिंग वश (Ming Dynasty) का पतन हो जाने के कारण कई चीनी विद्वान् जापान मे शरण लेने आये तथा उन्होने प्राचीन जापानी इतिहास व साहित्य की ओर जापानियो का ध्यान खीचा। इससे उन कालो को गौरवान्वित किया गया जब शोगुन नही बल्कि सम्राट (Emperor) देश का वास्तविक शासक था। जब शोगुन को विदेशियो के साथ समझौता करने के लिए बाध्य होना पडा तथा ऐसा करते समय उसने जापान व उसके सम्राट को असभ्य (barbarians) लोगो के सामने बलि पर चढा दिया तो देशभक्ति की दुहाई देकर बुद्धिजीवियो ने सरकार बदलने की पुरजोर माँग की। अठारहवी सदी मे डच भाषा के माध्यम से जापानी बुद्धिजीवी पश्चिमी विज्ञानो (खगोल-शास्त्र, शरीर-विज्ञान, चिकित्सा व सैनिक विद्याशास्त्र आदि) के बारे मे काफी कुछ सीख चुके थे। इस तरह पश्चिम द्वारा इन वर्षो मे की गई भौतिक प्रगति के बारे मे वे अब बिल्कुल भी अनभिज्ञ नही रह गये थे। उनके इस ज्ञान ने उन्हे पुराने तरीके से

चलाई जा रही तोकुगावा सरकार का और भी कटु आलोचक बना दिया। उन्होंने पश्चिमी राष्ट्रों की बढ़ती हुई शक्ति से जापान को पैदा हुए खतरों का भी अनुमान लगा लिया।

(5) आर्थिक कठिनाइयाँ—अनेक लेखकों ने लिखा है कि 'परिवर्तन में आर्थिक कारण गम्भीर, शायद सर्वाधिक अग्रणी, कारण थे।' 1867 से पहले भारी मात्रा में आर्थिक विशृंखलता पैदा हो चुकी थी। तोकुगावा शासन वित्तीय कठिनाइयाँ बढ़ जाने तथा आर्थिक एवं सामाजिक स्तर पर अन्य अनेक परिवर्तन आ जाने के कारण पहले ही बुरी तरह हिल चुका था। प्रथम तोकुगावा शासक द्वारा विशाल मात्रा में जमा किया गया खजाना 17वीं सदी के उत्तरार्द्ध तक समाप्त हो चुका था। अगली शताब्दी में आर्थिक एवं वित्तीय स्थायित्व बनाये रखने के प्रयास सफल नहीं हुए थे। विदेशी व्यापार के पूर्ण अभाव के कारण तोकुगावा शासक अपनी आय किसानों द्वारा चावल के रूप में चुकाये जाने वाले कर तथा व्यापारियों पर लगाये गये कुछ अन्य करों में ही प्राप्त करते थे। किन्तु ये कर भी भ्रष्ट प्रशासन के कारण कभी भी पूरी तरह वसूल नहीं हो पाते थे। उधर भूमि पर करों की दर ऊँची होने के कारण किसान खेतों को छोड़कर शहरों में जाकर बसने लगे थे।

वित्तीय विपत्ति ने, जो उत्तरोत्तर आने वाली सरकारों के सामने गम्भीर होती चली गई, जापानी मान्य मौद्रिक इकाई की क्रय शक्ति इतनी घटा दी थी कि वह 19वीं शताब्दी के मध्य तक 1661 की तुलना में आठवाँ भाग रह गई। उधर विदेशी आक्रमणों ने सरकार को प्रतिरक्षा पर भी अत्यधिक धनराशि खर्च करने के लिए बाध्य कर दिया था। कागजी मुद्रा को और उदारता से जारी किया गया जिससे आर्थिक जन-जीवन अस्त-व्यस्त हो गया। सामन्ती व्यवस्था बिखरने लगी थी तथा दायम्यो लोग समुराई लोगों के रूप में बेकार बैठने वाले सेवकों का रख-रखाव करने में असमर्थ हो गये थे। अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से दायम्यो लोगों ने अपने चावल के रूप से किसानों से प्राप्त भुगतान को जमानत के तौर पर रखकर व्यापारियों से भारी रकमें ऋण के रूप में लेनी प्रारम्भ कर दी। धीरे-धीरे ये दायम्यो इन व्यापारियों के प्रभाव-क्षेत्र में आ गये तथा वे व्यापारी वास्तविक शासक बन गये। इ० होंजो (E Honjo) ने इसी स्थिति को चित्रित करते हुए लिखा था कि 'ओसाका के समृद्ध व्यापारियों के क्रोध में दायम्यो (Daimyo) का दिल दहला देने की शक्ति है।'

बढ़ते हुए मूल्यों पर नियन्त्रण नहीं रहा। अपनी व्यय की माँगों के बराबर बढ़ते जाने को पूरा करने के लिए दायम्यो लोगों ने न केवल जाली मुद्रा व नोट निर्गमित किये बल्कि भारी मात्रा में कर्ज भी लिये। तोकुगावा शासकों ने मूल्य-वृद्धि पर नियन्त्रण लगाने के उद्देश्य से 1831 व 1843 के दो आदेशों द्वारा सभी प्रकार के व्यावसायिक संगठनों (guilds) को गैर कानूनी घोषित कर दिया। ऐसा इसलिए किया गया क्योंकि सरकार का विश्वास था कि व्यापारियों का प्रभाव बढ़ता जा रहा है तथा वे मनमाने मूल्य वसूल कर रहे हैं। किन्तु यह निदान रोग से भी खराब रहा क्योंकि श्रेणियों के उन्मूलन ने साख व्यवस्था को छिन्न-भिन्न कर दिया। इससे आर्थिक

जन-जीवन और भी अधिक अस्त-व्यस्त हो गया।

बाहरी विश्व के सामने खुल जाने का प्रभाव 1859–67 के मूल्यों में आसानी से देखा जा सकता था। चावल, रेशम तथा चाय जैसी चीजों की कीमतें एकदम चढ गई क्योंकि उनके लिए विदेशों में तीव्र माँग थी। दूसरी ओर सूती वस्त्र, धागे तथा अन्य मशीनों की बनी वस्तुओं का आयात खुल जाने से उनके मूल्य तेजी से घट गये। विदेशी व्यापारी जापान में आकर बसने लगे तथा जापानी पूँजी देश के बाहर प्रवाहित होने लगी।

जापान को बाहरी दुनिया के लिए खोल देने का निर्णय शोगुन ने पश्चिमी नौसेना से पराजित होने के बाद ही लिया था। इस कटु तथ्य ने न केवल शोगुन को उसके शत्रुओं की आँखों में एक शाही अधिकारों का अपहारी (Usurper) बना दिया बल्कि वह देश को दगा देने वाला भी कहा जाने लगा। इससे एक ऐसी स्थिति पैदा हुई जिसमें लोग शोगुन को जापान की वित्तीय कठिनाइयों तथा देश में व्याप्त मौजूद राजनीतिक बुराइयों, दोनों ही के लिए जिम्मेदार मानने लग गये। देश के शक्तिशाली वर्ग शोगुन के विरुद्ध हो गये। शोगुन देश को एक साहसिक तथा सक्रिय नेतृत्व प्रदान करने में असफल रहा जब देश को वैसे नेतृत्व की आवश्यकता थी। उसकी प्रतिष्ठा व विश्वसनीयता दोनों ही समाप्त हो गई। अन्य व्यक्ति व संस्थाएँ इस स्थिति से उबारने के लिए वांछित बन गये।

नये नेतृत्व के लिए खोज का कार्य उन सम्पन्न व्यापारियों ने नहीं किया जिन्होंने तोकुगावा शासन-काल में दोनों हाथों से धन बटोरा था बल्कि यह कार्य निम्न श्रेणी के समुराई (Samurai) योद्धाओं ने किया जो तोकुगावा शासन में एकदम फटेहाल हो चुके थे। इस तरह निम्न श्रेणी के समुराई लोगों ने ही क्रान्ति की शुरुआत की तथा नये जापान के आर्थिक व राजनीतिक ढाँचे को नवीन स्वरूप प्रदान करने में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। अन्य लोगों की तरह पुरानी शासन-व्यवस्था हटने से उनको किसी तरह का नुकसान होने वाला नहीं था। वास्तव में उनका हित तो परिवर्तन में ही था।

कुछ लेखक इस बात पर दृढ मत हैं कि मेजी काल में जापान की आर्थिक प्रगति की शुरुआत तोकुगावा शासन के अन्तिम वर्षों में ही हो चुकी थी। उन्होंने मेजी शासन-काल में हुई उपलब्धियों की आलोचना तक भी की है। किन्तु यह सही नहीं है। यह स्वीकार किया जा सकता है कि तोकुगावा समाज पूरी तरह जड नहीं था। इस बारे में कोई सन्देह नहीं हो सकता कि उसकी संस्थाओं ने जापान के विकास को अवरुद्ध किया था तथा यह भी कि जापान को तीव्र आर्थिक प्रगति के मार्ग पर लाने का कार्य मेजी युग के सुधारों से ही प्रारम्भ हुआ।

यहाँ तक कि 1853 तक भी तोकुगावा शासन अत्यधिक दृढ एवं दुर्भेद्य दिखाई पडता था। किन्तु उसकी नींवें राजनीतिक, आर्थिक एवं बौद्धिक परिवर्तनों से कमजोर पड चुकी थी और उसके सारे भवन को धराशायी करने के लिए एक विदेशी आक्रमण मात्र पर्याप्त था। जी० सी० एलेन के अनुसार, 'जब बाहरी जातियाँ समुराई वर्ग के नेतृत्व में सम्राट के नाम पर तथा शोगुनेट के विरुद्ध आगे

दूसरा अध्याय

मेजी पुनर्संस्थापना

(MEIJI RESTORATION)

अन्तिम तोकुगावा शोगुन (शासक) को 1867 मे पदच्युत कर दिया गया तथा विजयी समुराई जाति के समर्थन से नये युवक सम्राट मेजी को 1868 मे गद्दी पर बिठाया गया। अपनी महान् प्रतिज्ञा मे उसने वायदा किया कि 'साम्राज्य की नीव पुख्ता करने के उद्देश्य से ज्ञान व बुद्धि की तलाश सारे ससार मे की जायेगी।' नये शासन ने तेजी के साथ कुछ सस्थागत सुधार (institutional reforms) किये तथा जापान को दृढता से आर्थिक विकास के मार्ग पर ला खड़ा किया। एकदम आधुनिक पाश्चात्य किस्म की सस्थाएं जापान मे स्थापित की गईं। व्यवस्था मे यह परिवर्तन 'सम्पूर्ण' था तथा इसके समानान्तर दो ऐतिहासिक घटनाएँ—पीटर महान् द्वारा रूस का पश्चिमीकरण व कमाल अतातुर्क द्वारा तुर्की का पाश्चात्यीकरण—काफी कम सफल रही।[1]

पुनर्संस्थापना के पहले दशक मे तेजी से किये गये सुधारो का प्रमुख उद्देश्य नई शासन व्यवस्था को मजबूत बनाना व उसका दृढीकरण करना था। शोगुनते (तोकुगावा शासक की पदवी व इलाका) तथा हान (Han) को समाप्त कर दिया गया। सम्राट को टोक्यो मे एक एकीकृत राष्ट्राध्यक्ष के रूप मे प्रतिस्थापित कर दिया गया। देश को 46 उपखण्डो (Prefactures) मे बाँटा गया। सभी वर्गों के बीच समानता स्थापित की गई तथा पुराने सभी विभेद—जैसे योद्धाओं की वेशभूषा व उनके अधिकार, किसानो, मजदूरो व व्यापारियो की घटिया स्थान—समाप्त घोषित किये गये। लोगों को व्यवसायो की स्वतन्त्रता प्रदान की गई तथा उन्हे किसी भी फसल या वस्तु का उत्पादन करने की छूट दे दी गई। पुराने ढाँचे के खण्डहरो *पर एक नई प्रशासनिक व्यवस्था का निर्माण किया गया। सामन्ती सम्पत्ति अधिकार* छीन लिये गये तथा अपने लगानो को समर्पित कर देने के बदले मे भूस्वामियों को पेंशनें निर्धारित कर दी गई। इसके अतिरिक्त सरकार ने दायम्यो द्वारा लिये गये ऋणों का भुगतान करने का दायित्व लिया। इससे नई शासन-व्यवस्था के लिए जमीदारो व व्यापारियो दोनो ही का प्रतिरोध कम हो गया।

(1) सामान्य आर्थिक परिवर्तन—आन्तरिक व्यापार पर लगे प्रतिबन्ध उठा लिये गये। सामन्ती सम्पत्ति सम्बन्ध समाप्त मान लिये गये तथा भूमि पर स्वामित्व अधिकार प्रदान किय गए ताकि नई जमीन स्वतन्त्र रूप से बिक सकती। वस्तुओं के रूप

[1] A Maddison, *Economic Growth in Japan and U S S R*, 1969,

मे लगे सामन्ती करो के स्थान पर मुद्रा मे राजकीय कर लगाये गये। सारे देश मे कर-भार मे समानता स्थापित की गई। 1873 के भूमि-कर सुधार ने भूस्वामियों से कर वसूलने की एकीकृत प्रणाली स्थापित की जिसमे उनसे उनकी भूमि के नये सिरे से हुए मूल्याकन के अनुपात मे कर लेने की व्यवस्था की गई। वस्तुओ के आन्तरिक आवागमन पर लगे हुए कर तथा देश मे ही लोगो के आने-जाने पर रोक के लिए बने हुए पासपोर्ट केन्द्र हटा लिये गये। सामन्ती चावल वजीफा (Feudal Rice Stipend) तथा दायम्यो व समुराई के सम्पत्ति अधिकारो का लघुकरण (commutation) कर दिया गया। उनके बदले मे सरकारी बॉण्ड तथा पेंशनें दे दी गई।

मेजी शासन के आरम्भिक वर्षों मे विदेशी विशेषज्ञो को देश मे काम के लिए बुलाने की नीति को ओर आगे बढाया गया। 1872 मे सरकार द्वारा काम पर लगाये विदेशी विशेषज्ञो की सख्या 200 के लगभग थी। जापानियो को विदेश जाने व पश्चिमी तकनीकें सीखने के लिए प्रोत्साहित किया गया। लोगो को तकनीकी प्रशिक्षण देने के लिए योजनाएँ बनाई गईं। पाश्चात्य पाठ्यक्रम पर आधारित प्राथमिक शिक्षा सभी के लिए अनिवार्य कर दी गई। भ्रमणकारी शिक्षक सारे देश मे भेजे गये। सरकार ने नये स्कूल व कॉलिज खोले जिनमे खान, इन्जीनियरिंग तथा कृषि से सम्बन्धित कॉलेज सम्मिलित थे। कृषि की पद्धति मे सुधार लाने के उद्देश्य से कृषि प्रयोग केन्द्र खोले गये। मेजी राजनीतिज्ञो ने एक नई राजकोषीय नीति, वाष्प-चालित जहाज सेवा, डाक व तार सेवा तथा कारखानो की शुरुआत की।

नई सत्ता राष्ट्रीय शक्ति की ऐसी आधारशिला तैयार करना चाहती थी जो आन्तरिक विरोधो तथा बाहरी खतरो की पृष्ठभूमि मे भी सुरक्षित रह सके। इस क्रान्ति के नेता भी निम्न समुराई वर्ग के ही वे लोग थे जो शोगुन के विरोधी प्रान्तो (Hans) मे प्रशासको के पदो पर कार्य कर रहे थे। उनको मित्सुई घराने तथा सुमीतोमो (House of Mitsui & Sumitomo) जैसे समृद्ध व्यापारियो का भी समर्थन मिल गया जो नये जापान मे प्रमुख शक्तियाँ बन गये। क्रान्ति मे सर्वाधिक हानि शोगुन ही को हुई। परिवर्तन का प्रतिरोध न करने के कारण दायम्यो को भी उदार मुआवजा मिल गया। इन तरल कोषो मे ये लोग बैंकर, भूस्वामी तथा उद्योग-पति बन बैठे। 1884 मे ये लोग नये सिरे से बनाये गये पदवीधारी लोग (pears) बन गये।

किन्तु समुराई वर्ग को पूरी उदारता से मुआवजा देने की सरकार की पूरी इच्छा के बावजूद वित्तीय कठिनाइयो के कारण उसके लिये वैसा करना सम्भव नही हो पाया। इसके परिणामस्वरूप समुराई लोगो को मिलने वाला मुआवजा उनकी पिछली आय से भी कम रहा। इसका अर्थ यह था कि अब समुराई लोग निठल्ले बैठकर लगानो आदि के बलबूते पर अपना काम नही चला सकते थे। वे नौकरियाँ करने के लिए बाध्य हो गये। बडी सख्या मे समुराई लोगो को प्रान्तीय तथा नगर-पालिका के प्रशासन मे नौकरियाँ दी गई। पुलिस तथा सेना मे भी भारी सख्या मे समुराई लोग लिये गये। जैसा कि उस समय के बारे मे इ० एच० नॉर्मन ने लिखा था कि 'पूरा राज्यतन्त्र समुराई प्रभाव मे भीग चुका था।' ऐसा कुछ तो इसलिए

भी हुआ कि समुराई वर्ग को खपाने के लिए भी कुछ रास्ता निकालना था। इतना ही नही, सरकार ने समुराई लोगो को उद्योगो मे भी रोजगार देने की कोशिश की तथा उन्हे कृषि मे पुन स्थापित करने के इरादे से होक्केइडो द्वीप के उत्तर मे कुछ व्यवस्थाएँ भी की। किन्तु इन सारे प्रयासो के बावजूद सम्पूर्ण समुराई वर्ग को खपाया नही जा सका। उनमे से कई सरकार द्वारा उनकी अनदेखी किये जाने के कारण कटुता से भर गये तथा उन्होने अन्तिम बार एक सशस्त्र विद्रोह का प्रयास भी किया—यह 1877 का सत्सुमा (Satsuma) विद्रोह था।

यहाँ तक कि किसान लोगो ने भी अनुभव किया कि सरकार ने उनकी आशाओ को पूरा नही किया। सरकार द्वारा निश्चित मौद्रिक कर वसूल करने की नीति अपनाने के कारण कई किसानो को अपनी जमीने बेचनी पडी क्योकि उतरते-चढते भावो पर चावल बेचने से उन्हे पर्याप्त राशि नही मिलती थी। मालिको से वे लोग आसामी बन गये। यह इस तथ्य से स्पष्ट है कि देश मे आसामियो के पास मौजूद भूमि का प्रतिशत जो मेजी काल के आरम्भ मे 31 था, उसके आखिर मे 46 हो चुका था। ये आसामी लोग अभी भी ऊँचे लगान देने के लिए बाध्य थे तथा गरीबी की कगार पर जी रहे थे।

(2) **पुनर्निर्माण** (Reconstruction 1868–81)—तोकुगावा घराने को उखाड फेंकने तथा पुनर्संस्थापना के तुरन्त बाद कई छोटे बडे संघर्षों व राजनीतिक झगडो का सामना करने के कारण केन्द्रीय सरकार के वित्तीय साधनो व उसकी प्रशासनिक क्षमता पर कडा जोर पडा। लेकिन इसके बावजूद नई सरकार की उपलब्धियाँ असाधारण रही। सामन्तवादी संस्थाओ का उन्मूलन करने तथा पश्चिमीकरण की शुरुआत करने के बाद मेजी (Meiji) के नेतृत्व वाली इस नई सरकार ने अपना ध्यान पुनर्निर्माण के पहले 14 वर्षों मे देश के विदेशी व्यापार की स्थिति सुधारने की तरफ लगाया। 1869 मे कलात्मक वस्तुओ के निर्यात को प्रोत्साहित करने के लिए एक व्यावसायिक ब्यूरो स्थापित किया गया। आवश्यक वस्तुओ का आयात करने के लिए भी विदेशी मुद्रा प्राप्त करने मे कठिनाई होती थी। कभी-कभी तो विदेशी मुद्रा प्राप्त करने के लिए सरकार स्वय निर्यात का कार्य करती थी। वह घरेलू भण्डारों से चावल, चाय तथा रेशम खरीदती तथा उसे विदेशो मे बेचती। ऐसा करने मे जो आय प्राप्त होती उसका उपयोग अत्यावश्यक आयातो के लिए किया जाता।

पुनर्संस्थापना के बाद के दशक मे विदेशी व्यापार मे सन्तोषजनक वृद्धि हुई। 1868 मे विदेशी व्यापार का कुल मूल्य, चाँदी के येनो मे 26 मिलियन के बराबर था जो 1873 तक बढकर 50 मिलियन येन तथा 1881 तक तो बढकर 62 मिलियन येन हो गया। इसके बावजूद देश के सामने विपरीत भुगतान सतुलन की समस्या विद्यमान थी। केवल 1868 तथा 1876 के अपवादो को छोडकर आयातो का मूल्य हमेशा ही निर्यातो से काफी अधिक रहा। 1868 से 1881 के बीच केवल दृश्य व्यापार मे ही भुगतान मे घाटा 79 मिलियन येन का रहा। कुल भुगतान सतुलन का घाटा तो इससे कही अधिक था क्योकि जापान का विदेशियों की सेवाओ के बदले

तथा जहाजी भाड़ो के रूप मे भी भारी रकम विदेशो को भेजनी पड़ती थी।

1868 से 1881 के बीच विदेशी व्यापार की सरचना एक ऐसे विशिष्ट देश का आभास दिलाती थी जो अपना आधार तैयार करने की कोशिश कर रहा था। अधिकाश आयात विनिर्मित वस्तुओ (Manufactured goods)—विशेष रूप से वस्त्र, पूंजीगत पदार्थों जैसे मशीनें, जहाज, रेल, साज सामान, सैनिक सामग्री, तथा अन्य विनिर्मित धातु पदार्थों—के थे। इनमे से अधिकाश आयात इग्लैण्ड से किये गये। निर्यात मुख्य रूप से कच्चे माल के होते थे जिनमे रेशम व चाय प्रमुख थे। लगभग इसी समय यूरोप मे रेशम के कीडो मे महामारी फैल जाना जापानी रेशम उद्योग के लिए बड़ी भाग्यशाली घटना रही। 1876 मे जापान के आधे निर्यात कच्ची रेशम के थे। जापान के लिए अपने पश्चिमीकरण (Westernisation) के कार्यक्रम को चला सकना बहुत कठिन हो जाता यदि यूरोप मे रेशम के कीडो की वह बीमारी न फैलती जिसकी वजह से जापान को विश्व मे बढी हुई रेशम की माग जिसका कि वह भारी मात्रा मे उत्पादन कर सकने मे समर्थ था, पूरा करने का अवसर मिल गया। निर्यात की दूसरी सबसे प्रमुख मद चाय थी जो प्रमुख रूप से अमरीका को भेजी जाती थी। चावल व तांबा भी निर्यात के पर्याप्त महत्वपूर्ण अग थे। इनमे से अधिकाश मदे किसान परिवारो द्वारा चलाए जा रहे लघु उद्योगों से प्राप्त होती थी।

(3) **वित्तीय कठिनाइयां**—1868 मे नई सरकार के सम्मुख बजट मे भारी घाटा उपस्थित हो गया था। पुनर्सस्थापना के तुरन्त बाद देश मे आतरिक शाति कायम करना बहुत महँगा पडा था। सरकार के लिये नए कर लगा पाना भी सम्भव नही था क्योंकि देश पहले ही अराजकता व विघटन के कगार पर खडा हुआ था। 1868 मे सरकार का खर्च 25 मिलियन येन रहा जबकि उस वर्ष सरकारी प्राप्तियाँ 3 7 मिलियन येन ही रही थी। सरकार ने अनेक जापानी तथा विदेशी व्यापारियो मे धन उधार लिया। किन्तु इन स्रोतो से प्राप्त धनराशि भी 5 4 मिलियन येन ही रही और इसके परिणामस्वरूप उस अकेले वर्ष मे 16 मिलियन येन का घाटा फिर भी शेष रह गया। 1869 मे भी लगभग 20 8 मिलियन येन के खर्च के मुकाबले सरकारी प्राप्तियाँ 10 5 मिलियन येन के बराबर ही रह पाई। सरकार को मजबूर होकर नए नोट छापने पडे तथा दो वर्षों मे 48 मिलियन येन के नए नोट जारी किये गये। इन अपरिवर्तनीय कागज के नोटो के प्रति दायम्यो ने अपना रोष प्रकट किया क्योकि उन्हे इन सरकारी नोटो का उनकी अपनी पत्र-मुद्रा पर विपरीत प्रभाव पडने का भय था। इससे सरकारी नोटो का भारी मूल्य-ह्रास हो गया।

मेजी पुनर्सस्थापना के विरोधी तत्त्वो को 1869 तक अन्तिम रूप से कुचल दिया गया। सरकारी खर्च घटाया गया तथा लोगो का नई सरकार मे विश्वास भी काफी बढ गया। 1871 मे हान (Han) के उन्मूलन से सरकारी आय के स्रोत भी बढ गए। मुद्रा ढालने के कार्य मे भी सुधार के लिए प्रयास किया गया। स्वर्ण येन की विशुद्ध मात्रा परिभाषित करने के लिए एक कानून लाया गया तथा उसे स्टैंडर्ड

सिक्का भी घोषित किया गया हालांकि चाँदी के येन को भी विधि-सम्मत (Legal Tender) मुद्रा माना गया। सरकार द्वारा ओसाका मे नई मशीनो से युक्त एक टकसाल भी स्थापित की गई।

इतना ही नही कई और वित्तीय कठिनाइयो से भी पार पाना था। हालाकि सरकार ने हान को समाप्त घोषित कर दिया था, किन्तु लोगो से उन करो को वसूल करना आसान नही था जो पहले दायम्यो द्वारा वसूल किये जाते थे। समुराई लोगो को पेंशन देने की जिम्मेदारी लेने तथा दायम्यो लोगो के कर्ज का भार अपने पर ले लेने से भी सरकार पर काफी वित्तीय भार पड गया। वायदो से बजट की कठिनाइयाँ और भी बढ गई। 1872 मे, उदाहरण के लिए, जबकि व्यय 58 मिलियन येन का था, प्राप्तियाँ 33 मिलियन येन ही रही। नई पत्र-मुद्रा छापना जरुरी हो गया। हान सरकारो द्वारा स्थानीय स्तर पर नोट छापने की जिम्मेदारी भी अपने पर ले लेने से राज्य पर जो अतिरिक्त भार पडा उससे भी मुद्रा की पूर्ति मे 26 मिलियन येन की वृद्धि हो गई। इस तरह 1872 के अन्त तक पत्र-मुद्रा का कुल परिमाण 100 मिलियन येन हो चुका था। सरकार ने पत्र-मुद्रा के बदले ऐसे बॉण्ड प्रदान करने की योजना बनाई जिन पर 6 प्रतिशत की दर से ब्याज देने की व्यवस्था थी। 1876 मे नोट निर्गमन 94 मिलियन येन पर आ चुका था। इस स्थिति मे तेजी से बढते हुए रेशम निर्यातो द्वारा और सुधार आया। इस तरह ऐसा लगने लगा कि अब सरकार की मुद्रा कठिनाइयाँ काफी कुछ हल हो चुकी है।

इस बीच कर-प्रणाली मे सुधार करने व उसे अधिक व्यवस्थित बनाने का प्रयास किया गया। तोकुगावा काल के मनमाने करो के स्थान पर अधिक समानता स्थापित करने वाली कर प्रणाली लायी गयी। 3% की दर से पहले एक भूमि कर लगाया गया किन्तु 1876 मे उसे घटाकर 2 5% कर दिया गया। 1875 मे छोटे-मोटे करो की सम्पूर्ण व्यवस्था मे इस प्रकार सुधार कर दिया गया कि करो की सख्या अब 1,600 से घटकर 74 रह गई। किन्तु भूमि-कर अभी भी आगम का प्रमुख स्रोत बना रहा तथा 1880 मे उसम कुल प्राप्तियो का 80% भाग प्राप्त हुआ।

लेकिन सरकार की वित्तीय कठिनाइयाँ अभी समाप्त नहीं हुई थी। 1877 मे हुए सत्सुमा विद्रोह (Satsuma Rebellion) को दबाने मे भारी खर्च हुआ। उसे पूरा करने के लिए 27 मिलियन येन के नए नोट और जारी करने पडे तथा 15 मिलियन येन का बैंक ऋण भी लेना पडा। विशेषाधिकार प्राप्त वर्गों को स्वीकृत पेंशनो का लघुकरण (commutation) करके ब्याज-युक्त बॉण्ड जारी करने से भी सरकार पर 174 मिलियन येन का भार पडा। इस तरह राष्ट्रीय ऋण-भार 55 मिलियन येन से बढकर 240 मिलियन येन हो गया। हान के लुप्त हो जाने से कई व्यापारी बैंकरो (Merchant Bankers) का धन्धा समाप्त हो गया और 1873 तक उनमे से कई दिवालिया हो गये। थोडे समय के लिए सारा साख लेन-देन रुक गया और उसके परिणामस्वरूप मुद्रा की बडी तगी आ गई। इस तरह पुराने वित्तीय तत्र के तहस-नहस हो जाने तथा राजनीतिक परिवर्तनो के कारण उत्पन्न होने वाली नई वित्तीय समस्याओ के आ खडे होन से नए सिरे से बैंकिंग सस्थाओ की आवश्यकता पडने

लगी। राष्ट्रीय बैंको (National Banks) की अमरीकी प्रणाली को आदर्श के रूप मे स्वीकार किया गया। 1874 तक चार नेशनल बैंक स्थापित किये गये किन्तु यह प्रयोग असफल रहा। इन बैंको के सामने अपनी परिवर्तनीय पत्र मुद्रा को प्रचलन मे रखने मे कठिनाई आई। व्यापारियो ने नोट निर्ममित करने वाले बैंक के सामने बैंक नोट प्रस्तुत कर स्वर्ण प्राप्त करना मुनाफे का सौदा बना लिया क्योकि उस स्वर्ण से वे वस्तुओ का विदेशो से आयात कर सकते थे। इस तरह नेशनल बैंको के रक्षित कोष खाली हो गये। ऐसी स्थिति में नेशनल बैंक विनियमन में सशोधन किये गये तथा 1876 के बाद उनके नोट भी अपरिवर्तनीय घोषित कर दिये गये जिन्हे सरकारी बॉण्डो की आड मे जारी किया जा सकता था। 1876 से 1880 के बीच 148 नये नेशनल बैंक स्थापित किये गये। लेकिन बिना व्यावसायिक अनुभव वाले लोगो द्वारा गठित किये जाने के कारण वे खराब तरीके से सचालित हो रहे थे तथा अधिकाश वास्तविक बैंकिंग व्यवसाय विदेशी बैंको द्वारा किया जाने लगा। उधर बैंको द्वारा भारी मात्रा मे नोट जारी करने से मुद्रास्फीति पैदा हो गई। जून 1877 मे 95 मिलियन येन की मुद्रा की पूर्ति 1878 तक बढकर 150 मिलियन येन हो गई। चावल के मूल्य 1877 से 1880 के बीच दुगुने हो गये। ब्याज की दरे चढ गई तथा सरकारी बॉण्डो के मूल्य गिर गये। पत्र-मुद्रा की तुलना मे रजत येन का मूल्य इतना चढ गया कि 1881 तक एक रजत येन पत्र-मुद्रा के 80 येन के बराबर हो गया।

सरकार इस मुद्रा-स्फीति से अवगत थी। जीवन-स्तर लागत निरन्तर बढती जा रही थी तथा विदेशी व्यापारी जोर-शोर से शिकायते करने लगे थे। 1880 मे सरकार ने अपने पास जमा कुछ रजत कोषो को बेचकर करेंसी नोटो के घटते हुए मूल्य को नियन्त्रित करने की चेष्टा की। सरकार ने करो को बढाकर अपना बजट का घाटा भी कम किया। 1881 तक वित्त मत्री प्रिंस मत्सुकाता द्वारा वित्तीय स्थिति को अन्तिम रूप से नियन्त्रण मे ले आया गया।

नई सरकार इन वित्तीय तथा राजनीतिक परेशानियों से इतनी झिझोडी जा चुकी थी कि उससे भावी विकास की कोई आशा नही बंधती थी। विदेशी लोग भी जापान के भविष्य के प्रति अधिक आशावान नहीं थे। 'हम समृद्ध जब यह नही सोचते कि जापान कभी बनेगा प्रकृति द्वारा प्रदत्त लाभ, एक जलवायु के अपवाद को छोडकर तथा लोगो की आमोद-प्रमाद व आलस्य मे रुचि इस सम्भावना पर रोक लगा देते है। जापानी लोग एक खुशगवार किस्म के लोग है तथा थोडे मे ही सब्र कर लेने के कारण उनके द्वारा कुछ अधिक पा लेने की सम्भावनाएँ नही के बराबर है।'[1] कम से कम पश्चिमी देशो ने यह प्रत्याशा तो कभी नही की थी कि एक दिन जापान उनका ही प्रतिद्वन्द्वी बन जाएगा। जब 1870 के दशक मे उनका बैंकिंग प्रयोग असफल

[1] 'Wealthy we do not think Japan will ever become the advantages conferred by Nature with the exception of the climate, and the love of indolence and pleasure of the people themselves forbid it The Japanese are a happy race, and being content with little are not likely to achieve much'

—*The Currency of Japan*, 121

हो गया तो विदेशियों को अपनी धारणा में और भी पक्का विश्वास हो गया। 'जापान की नेशनल बैंकिंग व्यवस्था पाश्चात्य विकास को पूर्वी आवास (Oriental habitat) में हस्तान्तरित करने की व्यर्थ चेष्टा का एक और उदाहरण है। दुनिया के इस भाग में सिद्धान्त, जो पश्चिम में मान्य एवं स्थापित होते हैं, अपने गुणों तथा शक्ति को खो देते हैं जो उनमें मूल रूप से विद्यमान होती है तथा वे खर-पतवार (weediness) तथा भ्रष्टाचार की तरफ साघातिक रूप से मुड़ जाते हैं।'[1]

मेजी काल के मुख्य आर्थिक परिवर्तन

मेजी युग के आरम्भ होने के बाद आधुनिकीकरण की एक तीव्र प्रक्रिया प्रारम्भ हो गई।[2] जापान अब पाश्चात्य प्रभावों के आरोही-प्रवाह से पूरी तरह अनावृत्त हो गया। 1868 के बाद के पहले ही दशक में विदेशी व्यापार दुगुने से भी अधिक हो गया। विशाल संख्या में युवा जापानी पश्चिमी विज्ञान एवं तकनीक, राजनीतिक संस्थाओं तथा आर्थिक संगठन का अध्ययन करने के उद्देश्य से विदेश जाने लगे। विदेशी व्यापारी तथा विदेशी विशेषज्ञ भी भारी संख्या में जापान आये। युवा समुराई प्रशासनिक अधिकारियों ने अधिनायकतावादी राष्ट्रीय सुधारों का एक विशाल कार्यक्रम सम्राट के नये शासन के अन्तर्गत छेड़ दिया। ओकुबो, किदो तथा इवाकुरा जैसे लोगों का स्वप्न पहले नई सरकार की शक्ति व सत्ता को आन्तरिक विरोधों की पृष्ठ-भूमि में दृढ़ीकृत करना था तथा दूसरे, एक मजबूत राष्ट्रीय राज्य (Strong National State) बनाना था जो विश्व राजनीति के क्षेत्र में अपनी रक्षा कर सके तथा अपनी बात पर जोर दे सके। अगली चौथाई शताब्दी में यही महत्त्वाकांक्षाएँ राष्ट्रीय आर्थिक विकास के नये दौर का आधारभूत ढाँचा बन गईं। यही महत्त्वाकांक्षाएँ उच्च सरकारी अधिकारियों व नवोदित वित्तदाताओं तथा उद्योगपतियों के बीच एक निकटस्थ वणिकवादी मैत्री (close mercantilist alliance) का भी स्वाभाविक आधार बन गईं।

दोनों ही अर्थात् मेजी पुनर्संस्थापना व उसके तत्वाधान में किये गये सुधारों ने संकट की घड़ी में जापानियों की सुयोग्य नेताओं को आगे ला सकने की असाधारण क्षमता का परिचय दिया। इस प्रकार के सुयोग्य नेतृत्व के साथ जापानियों में जूडो (Judo) जैसी फुर्ती भी थी जिससे वे अपने दाँव आने तक चुप पड़े रह सकते थे और मौका मिलते ही अपने शत्रुओं पर प्रहार कर देते। मेजी शासन के आरम्भिक वर्षों में सरकार ने ढहते हुए सामन्तवादी ढाँचे को पूरी तरह नष्ट करने तथा अपनी सत्ता को सारे देश में अनुभव करा देने के कार्य किये। 1877 में सत्सुमा के विद्रोह को सख्ती से दबा देना इसका एक उदाहरण था। 1881 के बाद सरकार की वित्तीय स्थिति तथा उसकी पत्र-मुद्रा को भी जापान के तत्कालीन चतुर एवं कुशल वित्त मन्त्री काउन्ट मत्सुकाता द्वारा सुदृढ़ आधार प्रदान कर दिया गया।

(1) विकास के लिए आवश्यक ढाँचे (Infrastructure) का निर्माण—नये

[1] *Ibid*., 112.
[2] *Ibid*., 12-13.

उद्योग स्थापित करने तथा यातायात एवं सचार सुविधाएँ उपलब्ध कराने के लिए सरकार द्वारा जोर-शोर से उपाय किये गये। 1870–72 मे एक छोटे से ब्रिटिश ऋण की सहायता से टोक्यो व योकोहामा के बीच पहले रेल-मार्ग का निर्माण किया गया। उसके कुछ ही समय बाद योकोहामा व नागासाकी के बीच स्टीमर सेवा भी आरम्भ की गई। सरकारी अनुदानो द्वारा इसका तेजी से प्रसार कर दिया गया। 1893 तक जापान ने अपनी प्रथम 2,000 मील लम्बी रेल लाइनो, प्रथम 1,00,000 टन भाप से चलने वाले जहाजो तथा पहली 4,000 मील लम्बी टेलीग्राफ लाइनो का निर्माण कर लिया था।

आयातित उपकरणो तथा पश्चिमी विशेषज्ञो की सहायता से देश मे पोत-निर्माण स्थलो (shipyards), शस्त्रागारो, औजार कारखानो तथा तकनीकी स्कूलो की स्थापना की गई या उन्हे आधुनिक बनाया गया। पहला आधुनिक रेशम कताई मिल 1870 मे खोला गया जिसकी देख-रेख एक फ्रांसीसी विशेषज्ञ करता था। सूती धागे की कताई मिलें भी खोली गई या उन्हे इग्लैण्ड से आयातित नवीन उपकरणो से सुसज्जित किया गया। सीमेंट, चीनी, बियर, काच, रसायन व अन्य पाश्चात्य वस्तुओ का उत्पादन देश मे आरम्भ करने के उद्देश्य से प्रायोगिक फैक्ट्रियाँ खोली गईं। कोयला, ताँबा व अन्य महत्त्वपूर्ण खनिजो की खोज व उत्खनन के नए कार्य हाथ मे लिये गये। 1876 से 1896 के बीच खनिजो के उत्पादन मे 7 गुनी वृद्धि हो गई।

इनमे से अधिकाश उपक्रमो के लिए आरम्भ मे सरकार ने ही धनराशि जुटाई। यह बात यातायात, खान उद्योग इजीनियरिंग उद्योग तथा सैनिक सामग्री के बारे मे विशेष रूप से सही थी। बाद मे, जैसे जैसे निजी साहसकर्ता अधिक सक्रिय हुए तथा सरकारी कारखानो को बहुत मामूली-सा लाभ होने लगा, सरकार ने अपनी अधिकाश औद्योगिक सम्पत्ति बहुत सस्ते मूल्य पर निजी उद्योगपतियो के हाथो बेच दी। 1880 मे जारी फैक्ट्रियो के हस्तान्तरण सम्बन्धी विनियमन मे यह सरकारी तौर पर स्पष्ट किया गया कि 'उद्योगो को प्रोत्साहित करने के लिए लगाई गई फैक्ट्रियाँ अब काफी सुसगठित हो चुकी है तथा व्यापार भी काफी समृद्ध हो चुका है इसलिये सरकार अब इन फैक्ट्रियो का स्वामित्व त्याग देगी जोकि लोगो द्वारा ही चलाई जानी चाहिए।' फैक्ट्रियो के निजी हाथो मे स्थानातरित कर देने की इस प्रक्रिया ने बाद के वर्षों मे देश में अनेक विशाल वित्तीय एवं औद्योगिक घरानो की स्थापना मे सहायता की। सामरिक महत्त्व के उद्योगो, जैसे इस्पात व कोयला, को सरकारी नियन्त्रण मे रखा गया।

(2) तीव्र औद्योगीकरण (Fever of Industrialisation)—1868 के बाद की चौथाई शताब्दी मे जापान मे हुई नाटकीय घटनाओ की परिणति वहाँ पर नई आवश्यकताओ व तकनीको के सृजन तथा सरकारी सस्थाओ के एक नए ढाँचे के निर्माण के रूप मे हुई। उन्नीसवी शताब्दी के अन्तिम वर्षों मे तो जापानी व्यावसायिक व राजनीतिक नेताओ को औद्योगीकरण की दीवानगी सी चढ गई थी। इन जापानी नेताओ की ऊँची ऊँची औद्योगिक महत्त्वाकाक्षाओ से कई विदेशी प्रभावित हुए थे। यहाँ तक कि सेना के लोग भी इस औद्योगीकरण के बुखार से नहीं बचे थे। एक

अमरीकी अर्थशास्त्री रॉबर्ट पी० पोर्टर, जो उन दिनों जापान की यात्रा पर गये थे, ने लिखा कि 'सार्वजनिक वक्ताओं में केवल अधिकारीगण ही नहीं पाये जाते जिनका कि काम ही व्यवसाय या कृषि पर भाषण देना है बल्कि यहाँ तक कि एक नौसैनिक अधिकारी भी इसे अपने सम्मान के विरुद्ध नहीं समझता कि वह अपने देशवासियों से यह कहे कि राष्ट्र व्यापार के विकास से ही महान् बन सकता है तथा व्यापार उतना ही सम्मानजनक है जितने कि युद्ध के लिए उनके श्रेष्ठ प्रयास।'

किन्तु यहाँ यह ध्यान देने की आवश्यकता है कि मेजी पुनर्संस्थापना के बाद के प्रारम्भिक वर्षों में राष्ट्रीय आय में जो वृद्धियाँ हुई वे उद्योगों में हुए विकास का प्रत्यक्ष परिणाम नहीं थीं। पहले की जड़प्राय जापानी अर्थव्यवस्था में नई फैक्ट्रियों की स्थापना के लिए दिखाया गया आरम्भिक उत्साह अपने आप में एक प्रमुख आर्थिक परिवर्तन था। पुनर्संस्थापना के आरम्भिक वर्षों में वास्तविक राष्ट्रीय आय में हुई बड़ी वृद्धियाँ मुख्य रूप से कृषि, हस्तशिल्प आदि में हुए सामान्य सुधारों तथा देश के एक मजबूत केन्द्रीय सरकार के अधीन एकीकृत होने के कारण हुई थीं।

औद्योगिक ताप, जिससे सारा देश एक प्रकार से धधकने लग गया था, के उस उत्साह भरे वातावरण के कारण 1880 तक जापान में विशाल पैमाने के उद्योगों की नींव डल चुकी थी। अगला दशक जापानी अर्थव्यवस्था के विकास में एक नया अध्याय था। पिछले वर्षों में डाली गई नींव पर अब एक नयी औद्योगिक व्यवस्था का उदय हो रहा था। नई तकनीक का अपना लिया जाना, बैंकों के माध्यम से पूँजी सचय होने लगना तथा अन्तर्राष्ट्रीय मूल्य स्तर में सामान्य वृद्धि—सभी ने मिलकर औद्योगिक उत्पादन में तीव्र प्रगति का मार्ग प्रशस्त कर दिया।

(3) **युद्ध एवं आर्थिक प्रसार**—एक दशक के अन्तराल में दो युद्धों में विजय प्राप्त करना भी मेजी युग की गौरवशाली घटनाएँ थीं चूँकि उनके कारण राज्य तथा नए उदीयमान पूँजीपतियों (जैबत्सु) के नेतृत्व में यातायात, बैंकिंग व आधारभूत उद्योगों के विकास की दिशा में भारी योगदान मिला। 1894–95 का चीन के साथ युद्ध तो लगभग जापानी प्रशासकों ने जान-बूझ कर ही छेड़ा था। जापान की अपना साम्राज्य स्थापित करने की महत्त्वाकांक्षा बलवती हो चली थी ताकि वह अपने लिए सुरक्षित बाजार व सुनिश्चित कच्चे माल की पूर्ति की व्यवस्था कर सकता।

जापान की यह सैनिक कपट-युक्ति (Military Manoeuvre) असाधारण रूप से सफल रही। चीनी-जापानी युद्ध से विजयी जापान को हरजाने की एक मोटी रकम, करीब 200 मिलियन डॉलर, प्राप्त हुई जो उसके तत्कालीन राष्ट्रीय उत्पाद (G N P) का एक-तिहाई थी। यह हरजाने की रकम 1895–96 में विदेशी मुद्रा के रूप में भुगतान की गई तथा इसने 'सेना व नौसेना का प्रसार सम्भव बनाया व रेल-मार्गों के प्रसार, तार व टेलीफोन की सेवाओं के विकास, यवाता लोहा मिल की स्थापना तथा स्वर्णमान स्वीकार करने में भी जापान की सहायता की।'[1] आर्थिक दृष्टि से युद्ध ने अनेक महत्त्वपूर्ण गतिविधियों को उत्तेजित किया। युद्ध-सामग्री का उत्पादन करने वाले अनेक उद्योगों में तेजी आ गई। इस युद्ध में विजय प्राप्त करने

[1] M Shinohara, *Growth and Cycles in the Japanese Economy*, 1962, 53.

से जापान उन अपमानजनक सन्धियो को भी समाप्त करने मे सफल हुआ जो 1858 मे पश्चिमी शक्तियो द्वारा उस पर थोप दी गई थी।

राजनीतिक दृष्टि से देखा जाय तो इस युद्ध ने सम्राट की शक्ति व प्रतिष्ठा मे काफी वृद्धि की। जापान के नेताओ ने अब सम्पूर्ण एशिया मे अपने साम्राज्य के विस्तार का अभियान छेड दिया। चीन पर विजय प्राप्त करने के तुरन्त बाद उसने फारमोसा पर अधिकार कर लिया। उसने चीन मे भी व्यापारिक, औद्योगिक तथा नौपरिवहन सम्बन्धी अधिकार प्राप्त कर लिये। बाद मे जापान ने चीन मे हुए बोक्सर विद्रोह को दबाने मे भी पश्चिमी देशो के साथ भाग लिया तथा 1901 मे इसके पुरस्कार स्वरूप उसे 26 मिलियन डॉलर की हरजाने की रकम (indemnity) भी प्राप्त हुई।

ये सामरिक सफलताएँ व आवश्यक धनराशि प्राप्त करने के बाद जापान ने अपनी सैनिक गतिविधियाँ दुगुनी तेज कर दी। 1905 मे उसने रूस जैसे विशाल देश को पराजित कर दिया, उसके कराफुतो द्वीप पर अधिकार जमा लिया तथा चीन मे भी और छूटें जीत के पुरस्कार के रूप मे प्राप्त कर ली। कोरिया को 1910 मे अवाप्त कर लिया गया। चीन के साथ युद्ध मे विजय से जो आर्थिक तेजी आई थी रूस पर विजय पा लेने मे वह और भी सुदृढ व गतिवान् हो गई। इसके परिणाम-स्वरूप पुन वित्तीय सस्थाओ, नौपरिवहन तथा औद्योगिक तकनीक की विकास दर मे वृद्धि हो गई। जापान ने अपनी घरेलू बचत के पूरक के रूप मे भारी मात्रा मे विदेशो से ऋण लिये। मूल रूप से फिर भी वह जापान की सम्पदा व औद्योगिक उत्पादकता मे होने वाली निरन्तर वृद्धि ही थी जिसने उसे युद्धो मे विजयी बनाया। इस प्रकार आर्थिक विकास जापान की राजनीतिक महत्त्वाकाक्षाओ का वाहक बन गया।

प्रथम विश्व-युद्ध पूर्व के विश्वसनीय आँकडे तो उपलब्ध नही हैं किन्तु फिर भी यह अनुमान लगाया गया है कि 1890–1914 के बीच जापान की वास्तविक राष्ट्रीय आय मे 80 से 100 प्रतिशत तक की वृद्धि हुई। इतना ही नही यह विकास पर्याप्त मात्रा से अधिक ही था तथा इसमे सभी महत्त्वपूर्ण क्षेत्र आ गये थे। विनिर्माण, खनिज तथा यातायात उद्योग तो दिन-दूनी-रात-चौगुनी गति से बढ रहे थे। श्रम-शक्ति मे होने वाली समस्त वृद्धियाँ उद्योग, व्यापार तथा अन्य सेवाओ मे खप गई थी।

(4) **बडे पैमाने के उद्योगो का विकास**—बढती हुई सख्या मे जापानी लोग अन्तर्राष्ट्रीय बाजार मे बिक्री के लिए अतिरेक का उत्पादन कर रहे थे। 1913 मे पारिवारिक कार्य केन्द्रो (workshops) मे ही कोई 20 लाख लोग लगे थे। रोजगार के स्वरूप मे परिवर्तन आ जाने के उपरान्त कृषि उत्पादन भी बराबर बढ रहा था तथा वह बढती हुई घरेलू माँग के साथ ही बढता जा रहा था। जापान के आयात व निर्यात दोनो ही 1889–93 से 1899–1903 की अवधि मे दुगुने हो चुके थे। अगले दशक मे वे पुन दुगुने हो गये। यह इसलिए सम्भव हुआ कि मेजी युग की समाप्ति तक जापानियो द्वारा स्थापित कारखाने व खानें जितना उत्पादन कर रही थी वह न केवल घरेलू माँग के लिए पर्याप्त था बल्कि विदेशो मे बिक्री के लिए भी

उसे भेजा जा सकता था। निर्यातों में वृद्धि से जापान को अधिकाधिक विदेशी मुद्रा प्राप्त हुई जिसका उसने अपनी औद्योगिक व सैनिक आवश्यकताओं को पूरा करने हेतु मशीनों, उपकरणों व कच्चे माल का आयात करने में अविलम्ब उपयोग किया। मेजी युग के अन्तिम चतुर्थांश में औद्योगिक गतिविधियाँ कितनी तीव्र हो चुकी थी इसका पता तो केवल इस एक उदाहरण से चल सकता है कि कोयले का उपभोग, जो 1893 में 2 मिलियन टन वार्षिक था, 1913 तक बढ़कर 15 मिलियन टन हो गया। रेल-मार्गों की लम्बाई तिगुनी हो गई तथा माल ढोने का परिमाण सात गुना बढ़ गया।

मेजी युग में बड़े पैमाने पर सरकार द्वारा चलाई जा रही योजनाओं में सबसे सफल व्यापारिक जहाज-निर्माण कार्य रहा। मेजी प्रशासन ने जहाज-निर्माण को सरकारी समर्थन 1870 से ही प्रदान किया था। चीन जापान युद्ध ने इसे और तेज कर दिया। सरकार ने घरेलू स्तर पर जहाज निर्माण को बढ़ावा देने के लिए अनुदान की व्यवस्था भी की। इसके परिणामस्वरूप 1913 तक जापान के वाष्प-चालित व्यापारिक जहाज 1.5 मिलियन टन भार के हो चुके थे। यह 1896 की तुलना में तीन गुनी वृद्धि प्रदर्शित करता था।

धातु-निर्माण (Metallurgical) उद्योगों की स्थापना करने में अधिक कठिनाइयाँ आईं। तांबे व कोयले के अलावा और कोई भी खनिज देश में उपलब्ध नहीं थे। विदेशों से मँगाई गई कच्ची व तैयार धातुओं के आयात 1913 में 100 मिलियन येन के रहे। इन आयातों में प्रमुख स्थान लोहे व इस्पात का था। 1913 तक लोह पिंडों का उत्पादन बढ़कर 2.4 लाख टन तथा इस्पात का उत्पादन 2.5 लाख टन हो चुका था। किन्तु यह घरेलू उपभोग का केवल तीसरा हिस्सा ही था। शेष आपूर्ति आयातों से होती थी।

जहाज निर्माण के अलावा इन्जीनियरिंग उद्योग की कुछ शाखाओं में भी साधारण सी सफलता मिली। 1906 में रेलों के राष्ट्रीयकरण के बाद सरकारी आदेशों के बढ़ने से रेल उपकरणों का उत्पादन भी बढ़ा। 1900 के बाद बिजली का सामान तैयार करने वाले उद्योगों की भी प्रगति हुई क्योंकि देश में नये ताप व जल विद्युत गृहों का निर्माण किया जाने लगा था।

मेजी युग में कोयले का उत्खनन करने में भी काफी सफलता मिली। पुनर्संस्थापना के बाद कोयला निकालने की पाश्चात्य तकनीक शुरू की गई। पहले तो उत्पादन काफी कम रहा किन्तु 1894 के बाद वह तेजी से बढ़ गया। 1913 तक 100 खनिज कम्पनियाँ बन चुकी थी जिनकी कुल प्रदत्त पूँजी 39 मिलियन येन थी तथा जिनमें 1·72 लाख मजदूर काम करते थे। 1913 तक जापान लगभग 3 मिलियन टन कोयले का निर्यात करने लगा था। अधिकांश कोयला कुछ बड़ी फर्मों द्वारा उत्पादित किया जाता था। इनमें भी अधिसंख्य फर्में जैबत्सु (Zaibatsu) से सम्बद्ध थी। किन्तु कोयला उत्पादन के तरीके अधिक कार्यकुशलता वाले नहीं थे। 1913 में प्रति श्रमिक कोयले का उत्पादन 123 टन ही था।

कोयला उत्पादन (वार्षिक औसत)

वर्ष	(मिलियन मैट्रिक टन)
1877—1884	0·8
1885—1894	2 6
1895—1904	8 0
1905—1914	16 8
1915	22 3

पुरानी तांबा खानों तथा तेल-शोधन कारखानों के पुनर्गठन से भी काफी लाभ प्राप्त हुए। 1914 तक जापान विश्व का दूसरा सबसे बड़ा तांबा निर्यातक देश बन गया था। यह उद्योग भी कुछ बड़े औद्योगिक घरानों जैसे—फुरूकावा, मित्सुबिशि तथा फुजीता के हाथों में केन्द्रित था। कुछ छोटे-छोटे खनिज उपक्रम भी थे किन्तु यह उद्योग सामान्य रूप से बड़े पैमाने पर ही चलाया जा रहा था।

तेल की खुदाई एक ऐसा अन्य उद्योग था जिसका मेजी युग में तेजी से प्रसार हुआ। 1888 में जापान ऑयल कम्पनी की स्थापना के बाद इसका विकास काफी तीव्र हो गया। जापान में क्रूड ऑयल का उत्पादन 1887 में 33,000 बैरल (Barrel) की तुलना में 1893 में 1,00,000 बैरल हो गया तथा 1903 तक तो यह 12 5 लाख बैरल तक पहुँच गया।

रेलों, जहाजों, फैक्ट्रियों, बिजलीघरों तथा खानों के काम आने वाले उपकरणों का आयात किया जाता था क्योंकि जापान के इन्जीनियरिंग उद्योग की क्षमता सीमित थी। किन्तु इस काल में ही कुछ एस इन्जीनियरिंग उद्योग स्थापित किये गये जो बाद के वर्षों में काफी महत्त्वपूर्ण बन गये। इनमें सबसे प्रमुख फर्म शिबौरा इन्जीनियरिंग वर्क्स था जो 1887 में स्थापित किया गया। यह फर्म बिजली का साज-सामान तथा अन्य मशीनी उपकरण तैयार करती थी। एक अन्य फर्म टोकियो इलैक्ट्रिक कम्पनी ने बिजली के बल्ब बनाने में अग्रणी कार्य किया। फुजीकुरा इलैक्ट्रिक वायर कम्पनी साधारण तार व केबल बनाती थी तथा ओकी इलैक्ट्रिक कम्पनी टेलीफोन व तार के उपकरण तैयार करती थी।

बीसवीं शताब्दी के पहले दशक में विद्युत् शक्ति का प्रकाश कार्यों के लिए उपयोग काफी बढ़ गया। नये बिजलीघर बनाये गये तथा जापान ने अपनी जल शक्ति का उपयोग विद्युत्-उत्पादन के लिए करना आरम्भ कर दिया। 1907 में विद्युत्-उत्पादन 1 15 लाख किलोवाट था जो 1914 तक बढ़कर 7 16 लाख किलोवाट हो गया। बिजली का रोशनी कार्यों के लिये उपयोग बढ़ने से विद्युत् सामग्री तथा इन्जीनियरिंग उपकरणों की अन्य शाखाओं के विकास में भी तेजी आई। इन उद्योगों में विदेशी पूँजी आकर्षित हुई। कई अमरीकी फर्मों ने उनके ही क्षेत्र में कार्यरत जापानी फर्मों के साथ सहयोग कर लिया। इन्जीनियरिंग उद्योग की प्रदत्त पूंजी (paid-up capital) 1893 के मात्र 2 6 मिलियन येन से बढ़कर 1903 में 14 6 मिलियन येन तथा 1913 में 61 1 मिलियन येन तक पहुँच गई। प्रथम महायुद्ध की पूर्व सन्ध्या पर मशीनें, औजार, वाहन आदि के निर्माण में लगे हुए

उद्योगों मे 60,000 से भी अधिक लोग कार्यरत थे। इस सख्या मे वे लोग सम्मिलित नही थे जो जहाज-निर्माण के कार्य मे लगे थे।

अन्य बड़े पैमाने पर उत्पादन करने वाले उद्योगो मे, जिनकी जडें मेजी काल मे ही जमी, सीमेन्ट, चीनी, कांच, बियर, कागज तथा रासायनिक उर्वरक जैसे उद्योगों का उल्लेख किया जा सकता है। इनमे से अधिसख्य उद्योग जापान के महान् औद्योगिक घरानो द्वारा आरम्भ किये गये तथा राज्य ने भी उनकी सहायता की। पाश्चात्य तरीके के कागज का उत्पादन 1871 मे ओजी कम्पनी के निर्माण से शुरू हो गया। कई अन्य फर्मे भी स्थापित की गई तथा 1913 तक कागज का उत्पादन 500 मिलियन पौण्ड के वार्षिक स्तर तक पहुँच गया।

नया बीयर उद्योग (*Beer industry*) शुरू से ही बहुत कम बड़ी फर्मों के हाथ मे केन्द्रित था। सम्पूर्ण व्यवसाय पर जैबत्सु के नियन्त्रण वाली चार बड़ी फर्मों का नियन्त्रण था। चीनी उद्योग मे विशाल पैमाने पर उत्पादन को प्रोत्साहित करने के लिये सरकार ने जैबत्सु को सहयोग दिया। मेजी काल के आरम्भिक वर्षो मे सस्ती चीनी के आयात के कारण जापान का चीनी उद्योग प्रगति नही कर पाया था। हालांकि फारमोसा पर अधिकार कर लेने से जापान को गन्ना उगाने के लिए उपयुक्त जमीन मिल गई थी किन्तु अभी भी जापानी चीनी उद्योग जावा की सस्ती चीनी से प्रतिस्पर्द्धा नही कर पा रहा था। घरेलू उद्योग को सरक्षण प्रदान करने के उद्देश्य से सरकार ने चीनी पर भारी आयात शुल्क लगा दिये व उसे अनुदान भी प्रदान किये। 1902 से 1913 के बीच चीनी का उत्पादन तिगुना हो गया। 1902 से घरेलू चीनी बाजार पर तब तक दाइ निप्पन सैतो कम्पनी का एकाधिकार सा रहा जब तक कि दो अन्य फर्मे 1908 मे प्रवेश नही कर गई। किन्तु ये सभी विशाल फर्मे सरकार की आर्थिक नीति के क्रियान्वयन हेतु अभिकर्ताओ का कार्य करती रहीं।

जापान सीमेन्ट उद्योग के विकास के लिए उपयुक्त था क्योंकि वहां चूने के पत्थर व कोयले के पर्याप्त भण्डार थे। *1871 मे एक सरकारी सीमेण्ट मिल स्थापित की गई थी, किन्तु 1884 मे उसे एक निजी उद्योगपति को बेच दिया गया। एक अन्य फर्म, ओनोदा सीमेन्ट कम्पनी भी 1880 के दशक मे बनी।* किन्तु सीमेंट उत्पादन मे पर्याप्त वृद्धि पश्चिमी पद्धतियो की शुरुआत के बाद ही सम्भव हो पायी। देश के औद्योगीकरण के साथ सीमेंट की मांग भी बढी तथा इसका उत्पादन भी, जो 1896 मे केवल 87,000 टन था, 1913 तक बढ़कर 6 45 लाख टन तक जा पहुँचा।

एक अन्य बड़े पैमाने का उद्योग, जो मेजी काल मे जन्मा, कांच उद्योग था। यह उद्योग 1907 के बाद हो महत्त्वपूर्ण बना जब मित्सुबिशी उद्योग घराने की पूंजी से आसाई ग्लास कम्पनी का पुनर्गठन किया गया। रबर उद्योग की शुरुआत भी प्रथम महायुद्ध के पहले वाले दशक मे ही हुई। चीनी मिट्टी के बर्तन बनाने का उद्योग भी तेजी से विकसित हुआ। 1893 मे इस उद्योग मे लगभग 434 पॉटर (Potters) कार्यरत थे तथा लगभग 3,000 मजदूर इसमे लगे हुए थे। 1914 तक चीनी मिट्टी के बर्तन बनाने वाले प्रतिष्ठानो की सख्या 5,540 हो गई तथा उसके एक-तिहाई

उत्पादन का निर्यात किया जाने लगा।

मेजी काल के जापानी औद्योगिक विकास की सबसे असाधारण विशेषता यही थी कि जिन क्षेत्रों में सरकारी हस्तक्षेप न्यूनतम था उन क्षेत्रों में सर्वाधिक तेजी से प्रगति हुई। जापानी सूती वस्त्र उद्योग के विकास में इसलिये भी सहायता मिली कि देश में परम्परागत रूप से सस्ती दर पर सूती वस्त्र बनाने के लिए स्त्री श्रमिक उपलब्ध थे। जापानी अर्थव्यवस्था को बाहरी विश्व के लिए खोल दिये जाने का लाभ रेशम उद्योग को भी मिला जिसे यूरोप के देशों की तुलना में जापान में कुछ प्राकृतिक लाभ प्राप्त थे। रेशम लपेटने की कला तथा रेशम के कीड़ों की किस्म में भारी सुधार किये गये तथा सरकारी किस्म नियन्त्रण व्यवस्था ने रेशम को मेजी युग की सबसे बड़ी निर्यात मद बना दिया।

मेजी काल के प्रारम्भिक वर्षों में जापान का परम्परागत सूती वस्त्र उद्योग इतनी बुरी स्थिति में था कि पुनर्संस्थापना के बाद के पहले दशक में किये गये कुल आयातों में 40% आयात तो सिर्फ सूती वस्त्र के रहे। यह स्थिति 1890 के बाद बदली तथा सूती तकुओं की संख्या 1887 के 77,000 से बढ़कर 1913 में 24 लाख तक जा पहुँची। न केवल सूती धागे तथा वस्त्र के आयात बन्द हो गये बल्कि जापान सूती वस्त्रों का एक प्रमुख निर्यातक देश बन गया। मेजी काल में ही जापान को ऊनी वस्त्रों का आयात भी प्रतिस्थापित करने में सफलता मिली।

आधुनिक औद्योगिक क्षेत्र के विकास के साथ-साथ मेजी युग में परम्परागत रूप से चलाये जाने वाले लघु उद्योगों का भी विकास हुआ। ये छोटे पैमाने पर चलाये जाने वाले उपक्रम जापानी उपभोक्ताओं की पसन्दगी तथा रहन सहन की आदतों का ख्याल रखते थे तथा आधुनिकीकरण की लहर भी उन्हें समाप्त नहीं कर सकी। मेजी युग के अन्त तक भी औद्योगिक मजदूरियाँ काफी नीची बनी रहीं। ऐसा इसलिए हुआ कि श्रम की पूर्ति उसकी माँग से काफी ज्यादा थी। उनकी रहने की दशाएँ भी अच्छी नहीं थी। एक बड़ी संख्या में महिला श्रमिक तथा अस्थायी वस्त्र मजदूर बड़ी दयनीय स्थिति में रहने के लिये बाध्य थे। इन औद्योगिक श्रमिकों को श्रम-संघ बनाने की अनुमति नहीं थी जो उनके अधिकारों की रक्षा के लिए लड़ सके।

(5) **पाश्चात्य तकनीक व शिक्षा की शुरुआत**—नव-स्थापित मेजी प्रशासन के सामने एक प्रमुख कार्य जापानी शिक्षा एवं तकनीक का पश्चिमीकरण (Western-isation) करने की थी। पश्चिमी देशों की तकनीकों का प्रसार करने के लिए तथा जापानियों को प्रशिक्षित करने के लिए तकनीशियनों को विदेशों से बुलाया गया। रूढ़िवादी तोकुगावा शासन के अन्तर्गत जापान में न तो आधुनिक शिक्षा दी जाती थी और न ही वहाँ कोई विश्वविद्यालय था। आधुनिक दक्षताओं का निर्माण करने के उद्देश्य से सारी शिक्षा-प्रणाली का फिर से संगठन करना तथा उसे नये सिरे से तैयार करना आवश्यक था। यहाँ तक कि स्वर-व्यंजनों (alphabets) का भी सरलीकरण कर दिया गया ताकि साक्षरता तेजी से फैलाई जा सके। 1871 में शिक्षा के लिए अलग मन्त्रालय बनाया गया तथा 1872 में स्कूल प्रणाली कानून पारित

किया गया।

मेजी शासन के आरम्भ में पूरे जापान में शिक्षा व्यवस्था को समानोकृत किया गया। 1886 में चार वर्ष की स्कूली शिक्षा अनिवार्य कर दी गई तथा 1907 में इस अवधि को बढ़ाकर 6 वर्ष कर दिया गया। 5 से 19 वर्ष की आयु के बच्चों की स्कूलों में भर्ती का औसत 1868 में केवल 10% था। मेजी युग के अन्त में इस आयु-वर्ग के 63% बच्चे स्कूली शिक्षा प्राप्त कर रहे थे। जापान ने विशाल पैमाने पर शिक्षा का आयोजन पश्चिमी तरीके से नहीं किया क्योंकि उसमें बीच में पढ़ाई छोड़ने वालों (drop outs) के कारण काफी अपव्यय होता था। जापान में जन-जन को शिक्षित करने का उद्देश्य यह था कि वे साक्षर होकर नई तकनीक फैलाने तथा राष्ट्रीय कृषि को सुधारने में सहायता कर सकें। व्यावसायिक स्कूली शिक्षा पर अधिक बल दिया जाता था तथा आधुनिक विश्वविद्यालयों के साथ अनेक कृषि कॉलेज भी स्थापित किये गये। चिकित्सा, नौ परिवहन, सैन्य शास्त्र तथा मछली-पालन के क्षेत्र में उच्च शिक्षा के लिए तकनीकी स्कूल खोले गये। प्रशासनिक अधिकारियों को प्रशिक्षित करने हेतु टोक्यो में इम्पीरियल यूनिवर्सिटी खोली गई तथा अनेक नये शोध संस्थान भी खोले गये।

इन मेजी सुधारों के अनुवर्तन (follow-up) के रूप में सरकार ने अनेक युवा जापानियों को अध्ययन के लिए अनेक यूरोपीय देशों में भेजा। अनेक विदेशी विशेषज्ञों को भी सेना, नौ सेना, कानून प्रणाली, पुलिस तथा प्रशासन व उद्योग एवं कृषि तक को आधुनिक बनाने के लिए बुलाया गया। ये विदेशी विशेषज्ञ शिक्षा मन्त्रालय में सलाहकारों के रूप में रखे गये तथा इनका मुख्य कार्य नई शोध संस्थाएँ स्थापित करना था। महत्वपूर्ण विदेशी पुस्तकों तथा तकनीकी साहित्य का जापानी भाषा में अनुवाद करवाया गया। 1876 से 1895 के बीच लगभग 4,000 विदेशी विशेषज्ञ जापानी सरकार को अपनी सेवाएँ दे चुके थे। उन्हें उनके ही पदों पर कार्य करने वाले जापानियों से दस गुना वेतन दिया जाता तथा इस अवधि में विदेशी विशेषज्ञों के रख-रखाव पर ही उद्योग मन्त्रालय के कुल बजट की 40 से 50 प्रतिशत रकम खर्च हो जाती थी। अनेक विदेशियों को व्यापारिक जहाजी बेड़े पर भी अधिकारी बनाया गया। एक अनुमान के अनुसार, 1893 में वाष्पचालित जापानी जहाजों पर 722 विदेशी अधिकारी तैनात थे।

जापानी शिक्षा में भर्ती अनुपात (Enrolment Ratios)
(1880–1963)

वर्ष	प्राथमिक व सेकेंड्री स्तर, आयु वर्ग की जनसंख्या का प्रतिशत (5–19 वर्ष)	उच्च सेकेंड्री भर्ती 15–19 वर्ष की आयु वर्ग के प्रतिशत के रूप में	हायर सेकेंड्री भर्ती 20–24 वर्ष की आयु की जनसंख्या के प्रतिशत के रूप में
1880	31	1	0 3
1915	63	21	1 3
1950	86	71	5 2
1963	94	92	10 2

Source. Research Section, Ministry of Education, Japan.

1868 से 1895 के बीच मेजी सरकार ने 600 विद्यार्थियों को पश्चिमी देशों में भेजा। विदेशी तौर-तरीके सीखने के लिए जापानी अधिकारी तथा व्यापारी लोग अक्सर विदेश-यात्राओं पर जाते थे। 1868–95 के बीच लगभग 4,000 सरकारी अधिकारी विदेश गये। मेजी पुनर्संस्थापना के प्रारम्भिक वर्षों में विदेशी तकनीशियनों को देश में बुलाने तथा जापानी नागरिकों को विदेश भेजने पर जो खर्च आता था वह केन्द्रीय बजट का 6 प्रतिशत था। इस सारी चेष्टा में महत्त्वपूर्ण तथ्य यह था कि अपनी अर्थव्यवस्था के तकनीकी उत्थान के लिए जापानी लोगों ने स्वयं भुगतान किया था और चूँकि वे इसके लिए धनराशि खर्च करते थे इसलिये वे यह भी देखते थे कि उनका यह व्यय बेकार न जाने पाये। इसके ठीक विपरीत आज के अधिकाश विकासोन्मुख देश, जिन्हें यह तकनीकी सहायता भेंट के रूप में मिलती है, उसका वे किस तरह अपव्यय करते हैं?

(6) **कृषि का कायापलट**—जापान में बड़े पैमाने के उद्योगों की स्थापना उसके परम्परागत ढाँचे में एकदम स्पष्ट वैषम्य उपस्थित करती थी और इसीलिए उस तरफ बाहरी विश्व का ध्यान काफी आकृष्ट हुआ। किन्तु वह कृषि तथा छोटे पैमाने के उद्योगों का प्रसार ही था जिसने मेजी काल में राष्ट्रीय उत्पादकता एवं आय में अधिकाश वृद्धि की थी।

1873 के भूमि सुधारों ने भूस्वामियों तथा पुराने आसामियों को पट्टे दे दिये, भूमि की बिक्री व उसका हस्तान्तरण सामन्ती प्रतिबन्धों से मुक्त कर दिया तथा भूमि के मूल्य का 3% करों के रूप में लेने की व्यवस्था की। 1878 में इस भूमि कर को घटाकर 2.5% कर दिया गया तथा उस पर लगने वाले सरचार्ज को भी 30% से घटाकर 20% कर दिया। यह कर फसल का लगभग एक-चौथाई पड़ता था। इस भारी भूमि-कर का उपयोग पुराने भूस्वामियों को मुआवजे देने तथा नये प्रशासन को चलाने में किया जाता था। 1868–80 की अवधि में भूमि-कर केन्द्रीय प्राप्तियों का 80% भाग प्रदान करता था। प्रथम महायुद्ध के समय भी भूमि-कर का कुल आगम में 33% भाग था। इस तरह जापान के आधुनिकीकरण का अधिकाश भार उसके कृषि-क्षेत्र ने ही वहन किया था।

नये भूमि-कर पुराने सामन्ती करों से कम भारी थे किन्तु उनका भुगतान नकद में करना पड़ता था तथा प्रत्येक वर्ष एक बँधी-बँधाई धनराशि देनी होती थी। ऊँचे करों के भार तथा कृषि के व्यवसायीकरण होते चले जाने से मेजी युग के प्रारम्भ से आसामियों की संख्या काफी बढ़ गई। 1910 तक खेती कर रहे 39% किसानों के पास बिल्कुल भी जमीन नहीं थी। आसामी प्रथा (tenancy) के अन्तर्गत भूमि का अनुपात 31% (1872) से बढ़कर 1914 में 46% हो गया था। मेजी युग की समाप्ति तक केवल 33% किसान ही उनकी भूमि के मालिक रह गये थे। कृषि जनसंख्या का आकार मेजी युग में लगभग स्थिर ही रहा तथा औसत खेत 1 हेक्टेयर से कुछ कम का था। भूमि के अभाव की जापानी परिस्थिति में अधिक बड़े खेत लाभकारी नहीं थे। फिर लगान की दरें भी काफी ऊँची थी। अत आधारभूत इकाई पारिवारिक फार्म ही रहे।

किन्तु एक सीमित भूखण्ड पर लोगो की भीड बढ जाने से कृषि मे कम उत्पादकता की निरन्तरता बनी रही। कृषि मशीनें तो नही के बराबर थी। आधी से अधिक भूमि तो पशुओं तक के बिना जोती जाती थी। छोटे किसानो की दशा मे सुधार साख के अभाव मे भी अवरुद्ध हो जाते थे। ब्याज की दर 20% या उससे भी ऊँची थी। किसान लोग सर्वाधिक कर देते थे। एक अनुमान के अनुसार 1908 मे जहाँ किसान लोग अपनी आय का 28% भाग करो के रूप मे दे देते थे वही एक उद्योगपति या व्यापारी अपनी आय का 14% ही करो के रूप मे देता था।

1894 से 1914 की अवधि मे खाद्य उत्पादन मे 40% की वृद्धि रिकॉर्ड की गई। राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था मे कृषि के महत्त्व को देखते हुए यह वृद्धि पर्याप्त महत्त्वपूर्ण थी। आंशिक रूप से यह धीमी गति से कृषित क्षेत्र बढने का परिणाम थी। खाद्य उत्पादन मे यह वृद्धि आंशिक रूप से अधिक खाद अच्छी साख सुविधाओं तथा गहन खेती के कारण भी हुई। फसलो के प्रारूप मे विशेष परिवर्तन नही आया। लगभग 55% कृषि-क्षेत्र पर अब भी चावल बोया जाता था जिसे किसान परिवार छोटे-छोटे खेतो पर हाथो के श्रम से ही पैदा करते थे। हालाकि चावल का उत्पादन ही किसानो की आय का प्रमुख स्रोत था किन्तु किसान लोग अपनी आय मे उद्योगो व सहायक सेवाओ के जरिये भी वृद्धि करने लग गये थे।

मेजी युग के जापान मे कृषि उत्पादन मे होने वाली वृद्धि की दर को लेकर कुछ परस्पर विरोधी अनुमान लगाये गये है। यदि हम सरकारी अनुमानो को मान लें तो 1874 से 1913 के बीच कृषि उत्पादन मे 2% की वार्षिक वृद्धि हुई। नाकामुरा द्वारा लगाये गये एक अन्य अनुमान के अनुसार यह वृद्धि दर 0 8% से लेकर 1 2% वार्षिक के बीच रही।

निजी सम्पत्ति के लिए एक निश्चित सम्मान भूमि बेचने के लिए नई स्वतन्त्रताएँ फसलो का स्वरूप बदलने तथा नौकरी बदलने की छूटो आदि ने मिलकर मेजी काल मे कृषि उत्पादकता मे सुधार करने मे सहायता की। नये करो की एक अच्छाई यह रही कि हालाकि वे भारी थे, किन्तु कम से कम निश्चित अवश्य थे। वे उत्पादन के साथ बदलते नही थे जैसा कि तोकुगावा काल म होता था।

नई जापानी सरकार ने तकनीकी परिवर्तनो का प्रचार-प्रसार करने मे भी काफी रुचि ली। जापानी भूमि पर पश्चिमी कृषि तकनीक लागू करने के आरम्भिक प्रयास असफल रहे। तब श्रेष्ठ परम्परागत कृषि तकनीको को फैलाने का काम प्रचार-प्रसार माध्यम से किया जाने लगा। 1885 म अनुभवी किसानो तथा नये खोले गय कृषि कॉलेजो के स्नातको को गाँवो मे विस्तार-सेवा कार्य के लिए भेजा गया। रात्रि कक्षाएँ चलाई गई। 1893 मे प्रत्येक प्रिफेक्चर (prefacture) मे अनुसन्धान सस्थाएँ तथा प्रयोग केन्द्र खोले गये। इन प्रयोग केन्द्रो का एक दायित्व विस्तार सेवा कार्य-कर्त्ताओ को सलाह देने का भी था। व्यापक साक्षरता के कारण विस्तार सेवा प्रकाशित पैम्फलेटो तथा निर्देशो द्वारा भी सम्भव बन गई। नई तकनीकें आसानी से लोकप्रिय बन गई क्योंकि किसान लोग घनी बस्तियों म नजदीक-नजदीक रहते थे।

ब्रिटिश तथा अमरीकी विशेषज्ञो को जांचने के बाद जापानी दशाओं म उपयुक्त

रसायनो व खादो के बारे मे सुझाव हेतु जर्मन विशेषज्ञ बुलाये गये। कृषक सगठनो तथा सभाओ को सरकार द्वारा तकनीक के आदान-प्रदान तथा बीजो की अदला-बदली की दृष्टि से प्रोत्साहित किया गया। 1900 के बाद सहकारी सस्थाओ की भी स्थापना की गई।

मेजी काल मे कृषि उत्पादन मे वृद्धि के कारणो मे तीन कारण प्रमुख रहे. भूमि का अधिक विवेकपूर्ण उपयोग, बीजो मे सुधार, तथा खादो का वृद्धिगत उपयोग। 1878 से 1913 के बीच फॉस्फेट खादो का उपयोग सात गुना बढ गया। 1880 से 1915 के बीच कृषित क्षेत्र मे भी 30% की वृद्धि हुई। अनेक तकनीकी नव-प्रवर्तनो ने भी कृषि उत्पादन बढाने मे सहायता की। कृत्रिम सेने (artificial incubation) की प्रक्रिया ने रेशम के कीडो का शीत ऋतु तथा गर्मी दोनो ही मौसम मे उत्पादन सम्भव बना दिया। सूखी धान खेती से एक ही वर्ष मे दो फसले उगाई जा सकती थी। छोटे जापानी खेतो के लिए एक नये किस्म का हल बनाया गया। घोडो, भेडो, सूअरो व अन्य कृषि कार्य के पशुओ की नस्ल सुधारने के लिए 1867 के बाद से सरकार ने विदेशी पशु जातियो (foreign strains) का आयात किया। सरकार ने पशु-पालन पर प्रचार सामग्री छपवाकर वितरित कराई। कुछ विवादास्पद बातो के होते हुए भी मेजी कृषि द्वारा प्राप्त की गई सफलताएँ प्रभावशाली रही। केवल 4% विनियोग के बावजूद कृषि से सरकारी आगम का एक प्रमुख भाग, अच्छी मात्रा मे बचत तथा विदेशी मुद्रा प्राप्त होती थी। इसके अलावा जनसख्या को खाद्य पदार्थ उपलब्ध होते थे।

(7) दृढ प्रशासन का अभ्युदय—अर्थव्यवस्था को पुनरुज्जीवित करने के लिए एक मुख्य शर्त सुदृढ प्रशासन स्थापित करने की थी जो जापान को एक आधुनिक राज्य तथा सैनिक शक्ति बनाने पर कटिबद्ध हो। नई सरकार ने सादगी व कठिन परिश्रम की परम्परा को और मजबूत बनाया। निजी तथा सार्वजनिक प्रतिष्ठानो को नई भूमिकाएँ प्रदान करने तथा नई तकनीक को प्रोत्साहित करने के उद्देश्य से सरकार ने लचीली एव व्यावहारिक नीति अपनायी। प्रसन्नता की बात यह रही कि जापान मे आर्थिक विकास की नीति का धार्मिक या वैचारिक धरातल पर कोई विरोध नही था। प्रारम्भ से ही सरकार आर्थिक विकास का एक गतिशील तत्त्व बन गई। अन्य देशो से तुलना करने पर जापान मे सरकार द्वारा किया गया विकास खर्च तथा एकत्रित कर राशि सर्वाधिक थी।

जापानी सरकार अपने यहाँ की अर्थव्यवस्था के उत्थान मे अन्य यूरोपीय देशो की सरकारो से अधिक सक्रिय भूमिका निभा रही थी। जैसा कि तालिका से स्पष्ट है, 1913 मे, इटली को छोडकर सरकार का चालू खर्च (current expenditure) जापान मे सर्वाधिक था। 1880 मे जापानी अर्थव्यवस्था मे सरकारी खर्च कुल राष्ट्रीय उत्पाद (G N P) का दस प्रतिशत के लगभग पहुँच चुका था। अर्थव्यवस्था मे हो रहे पूंजी-निर्माण मे भी सरकार का भाग लगभग 40% था। यह भारी सरकारी खर्च असल तो सैनिक व्यय के कारण था जो कि चीन तथा रूस के साथ हुए युद्धो के बाद निरन्तर बढता ही जा रहा था।

राष्ट्रीय उत्पाद (G N P.) के अनुपात के रूप मे
चालू सरकारी खर्च : 1870–1965

देश	1870	1913	1938	1965
कनाडा	4 6	8 1	10 9	13 8
जर्मनी	5 9	8 7	23 1	15 5
डेन्मार्क	—	—	9 3	15 4
इटली	8 1	9 7	15 7	14 7
जापान	6 8	9 1	25 0	19 3
नार्वे	3 8	6 3	9 9	17 0
स्वीडन	4 7	5 6	10 4	19 3
इग्लैण्ड	4 9	7 0	13 0	16 7
अमरीका	3 7	4 2	10 1	17 4
सोवियत रूस	—	—	21 6	23 0

Source A Maddison, *Economic Growth in Japan and the U S S R*, 1969, 13

(8) **वित्तीय स्थायित्व की ओर**—मेजी शासन काल के पहले कुछ वर्षों मे नई सरकार को गम्भीर वित्तीय कठिनाइयो का सामना करना पड़ा था। सरकार द्वारा किये गये बड़े-बड़े वायदो की तुलना मे उसकी प्राप्तियाँ बहुत नीची रही। बजट मे भारी घाटे चलते रहे तथा सरकार को बड़े-बड़े कर्ज लेने पड़े। पत्र-मुद्रा भारी मात्रा मे जारी की गई व सरपट दौड़ती हुई स्फीति पैदा हुई। एक केन्द्रीय बैंक की स्थापना करने के स्थान पर 1872 मे जापानी सरकार ने अमरीका मे उस समय प्रचलित नेशनल बैंक व्यवस्था चालू की। 1876 तक इन नशनल बैंको के नोट जारी कर सकने के अधिकार बहुत बढ़ा दिये गये। 1876 से 1880 के बीच 148 नये नेशनल बैंक खोले गये जिनसे मुद्रा-स्फीति को और बढ़ावा मिला।

1881 से 1885 तक वित्तमन्त्री काउन्ट मत्सुकाता ने सफलतापूर्वक स्फीति पर नियन्त्रण लगाने के लिए एक विस्फीतिकारी नीति अपनायी जिसके अन्तर्गत नये कर लगाये गये व सरकारी खर्च को कम किया गया। उसने जापानी निर्यातो को अधिक स्पर्द्धात्मक बनाने के भी प्रयास किये। मत्सुकाता न आर्थिक विकास के आधार के रूप मे संस्थागत ढाँचा भी अत्यधिक सुदृढ करने की योजना बनाई। मत्सुकाता के ही कार्यकाल मे 1882 मे बैंक ऑफ जापान की एक केन्द्रीय बैंक के रूप मे स्थापना की। अपने दूसरे कार्यकाल मे उसने 1897 मे हाइपोथेक बैंक (Hypothec Bank) की भी स्थापना की जिसका कार्य कृषि विकास तथा उद्योग खोलने मे सहायता करने वाले विभिन्न बैंको को वित्त उपलब्ध कराना था।

उन्नीसवी शताब्दी के अन्तिम दो दशक जापान मे वित्तीय स्थायित्व की स्थापना करने की दृष्टि से महत्वपूर्ण रहे। मौद्रिक प्रणाली इतनी स्थायी बन चुकी थी कि वह चीन तथा रूस के साथ युद्धो से पैदा हुए दबावो को भी सहन कर सकी। जापान की इस नई वित्तीय स्थिरता को 1894–95 के चीन-जापान युद्ध म

परीक्षा के दौर से गुजरना पडा। युद्ध की पूर्व सध्या पर जापान का वार्षिक सरकारी खर्च लगभग 80 मिलियन येन था। किन्तु केवल युद्ध का ही खर्च 200 मिलियन येन आया जिसे 117 मिलियन येन मूल्य के आन्तरिक बॉण्ड जारी करके पूरा किया गया। शेष व्यय को चीन से प्राप्त हरजाने की रकम (indemnity) से पूरा किया गया। इस सम्बन्ध मे असाधारण बात यह रही कि न तो करो मे वृद्धि करनी पडी और न ही राष्ट्रीय ऋण-भार मे कोई विशेष वृद्धि हुई।

1905 मे हुए रूस के साथ युद्ध मे जापान को 1,500 मिलियन येन खर्च करने पडे। यह व्यय प्रमुख रूप से विदेशी कर्जों द्वारा प्राप्त किया गया हालाकि करो मे भी वृद्धि की गई व आन्तरिक बॉण्ड भी जारी किये गये। 1894 से 1907 के बीच राष्ट्रीय ऋण-भार बढकर सात गुना हो गया तथा वह 2,244 मिलियन येन के स्तर तक पहुँच गया।

साधारण आगम (Ordinary Revenue)

वर्ष	(000 मिलियम येन)
1893—1894	85 8
1903—1904	224 4
1906—1907	392 5

महायुद्ध के पहले के 20 वर्षों मे जापानी लोकवित्त की तीन प्रमुख विशेषताएँ थी[1] पहली, वार्षिक खर्च मे भारी वृद्धि, दूसरी, राष्ट्रीय ऋण-भार मे वृद्धि, तथा तीसरी, विदेशी पूँजी का भारी आयात। जापान द्वारा अपने ससाधनो को अपनी राष्ट्रीय शक्ति के विकास हेतु तेजी से विनिसित करने के ये स्वाभाविक परिणाम थे। वृद्धिगत व्यय तथा ऋण राशि का उपयोग मुख्य रूप से युद्धो मे, अस्त्र-शस्त्रो के लिए तथा राष्ट्रीय महत्त्व के उद्योगो की स्थापना के लिए किया गया। लेकिन राजनीतिक महत्वाकाक्षाओं को पूरा करने की इस भाग दौड ने उसकी वित्तीय क्षमताओ पर गहरा दबाव डाला तथा 1914 तक जापान अपने लिये विदेशी साख पा सकने की अन्तिम सीमा तक पहुँच गया।

नोट निर्गमन

(मिलियन येन मे)

वर्ष	सरकारी पत्र-मुद्रा	नेशनल बैंक नोट	बैंक ऑव जापान के नोट
1881	119	34	—
18/5	93	30	4
1890	40	26	103
1895	16	22	111
1900	5	2	180

[1] G C Allen *op cit*, 45

जब हम इस अवधि की जापान की पत्र-मुद्रा के इतिहास पर दृष्टि डालते है तो हम पाते है कि 1881 मे मुख्य वित्तीय उद्देश्य अपरिवर्तनीय पत्र-मुद्रा से मुक्ति दिलाना तथा पर्याप्त निधि की सुरक्षा रखते हुए एक एकीकृत नोट-निर्गमन प्रणाली स्थापित करना थे। इन्ही उद्देश्यो को दृष्टिगत रखते हुए मार्च 1882 मे काउट मत्सुकाता ने तुरन्त एक केन्द्रीय बैंक की स्थापना पर बल दिया था। उसने नेशनल बैंको की उनके बीच आपसी सहयोग के अभाव तथा पत्र-मुद्रा के अत्यधिक जारी करने व उसका असमान वितरण करने के दोषो के कारण आलोचना की। उसने घोषणा की कि राज्य की वित्तीय गतिविधियो का समन्वयन करने के लिए एक केन्द्रीय बैंक आवश्यक है। नेशनल बैंको को अपनी निधियाँ बैंक ऑफ जापान को सौंप देने के लिए कहा गया। 1899 तक सरकारी पत्र-मुद्रा का भी उद्धार (redeemed) कर दिया गया तथा 1904 तक अन्तिम नेशनल बैंक नोट का भी उद्धार हो गया।

इस बीच मत्सुकाता लगातार इस सिद्धान्त को व्यावहारिक रूप प्रदान करने पर बल दे रहा था कि एक स्वस्थ वित्तीय व्यवस्था मे विशिष्ट कार्य करने के लिए अलग-अलग बैंको की स्थापना जरूरी है। उदाहरण के लिए कृषि एव उद्योग को दीर्घकालिक ऋण प्रदान करने, गरीब लोगो की बचत का गतिशीलन करने, विदेशी लेन-देन करने तथा घरेलू व्यावसायिक कार्यकलापो के लिए अलग-अलग बैंक स्थापित किये जाने थे। इन विशिष्ट बैंको मे सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण योकोहामा स्पीशी बैंक 1880 मे स्थापित किया गया।

पत्र-मुद्रा के स्थिरीकरण, केन्द्रीय बैंक की 1882 मे स्थापना तथा एक विदेशी मुद्रा बैंक खोल चुकने के बाद काउट मत्सुकाता का अगला कदम दीर्घकालिक ऋण प्रदान करने वाली वित्तीय सस्थाओ का निर्माण करना था। ऐसी एक सस्था का उल्लेख हम पहले ही कर चुके है जो फ्रास के लाख बैंक के सदृश्य बनायी गयी तथा 10 मिलियन येन की पूँजी से शुरू की गई। इस सस्था का नाम हाइपोथेक बैंक ऑफ जापान था। प्रत्येक प्रिफेक्चर (Prefecture) मे स्थापित 46 कृषि एव औद्योगिक बैंक भी इसी प्रकार का कार्य करने के लिए बनाये गये। जापान का औद्योगिक बैंक 1900 मे स्थापित किया गया। मेजी सरकार ने तो अपने उप-निवेशो, ताइवान व कोरिया, मे भी बैंको की स्थापना की। 1899 मे उपनिवेशन (colonisation) के लिए वित्तीय सहायता उपलब्ध कराने हेतु होक्केइडो कोलोनियल बैंक खोला गया।

इन विशिष्ट बैंको को सरकार व सम्राट द्वारा पूँजी उपलब्ध करायी जाती थी तथा उन पर कडा सरकारी नियन्त्रण रहता था। ये न केवल सरकार के साथ निकट के वित्तीय सम्बन्ध रखते थे बल्कि जैबत्सु (Zaibatsu) की महान् वित्तीय सस्थाओ से भी उनका सम्पर्क था। मेजी काल की एक अन्य महत्त्वपूर्ण वित्तीय सस्था डिपॉजिट्स ब्यूरो थी जो 1877 मे खोली गई थी। यह ब्यूरो छोटी बचतें जमा करता था। 1914 मे इसमे 12 मिलियन जमाकर्त्ताओ ने अपनी 189 मिलियन येन की राशि जमा करायी हुई थी।

जापान मे मेजी युग मे हुई वित्तीय क्रान्ति केवल सरकारी सस्थाओ तक ही

सीमित नही थी। कुछ पुरानी किस्म के साहूकारी घरानो (Money lending houses) ने भी पुनर्संस्थापना के बाद अपना पुनर्गठन कर लिया तथा वे आधुनिक व्यावसायिक बैंको के रूप मे फलने-फूलने लगे। अनेक नेशनल बैंको को भी निजी व्यावसायिक बैंको के रूप मे पुनर्गठित किया गया। 1901 तक देश मे 2,359 पृथक् बैंकिंग फर्में थी जिनकी कुल जमाएँ 516 मिलियन येन हो चुकी थी।

मेजी युग के दौरान जापान मे जो एक विशिष्ट प्रकार की बैंकिंग प्रणाली विकसित हुई वह वहाँ की अर्थव्यवस्था के स्वभाव तथा राज्य की आर्थिक नीति का मिला-जुला परिणाम थी। विशेष बैंक तो सरकारी तन्त्र का ही भाग थे। बैंक ऑफ जापान का कार्य मुद्रा-प्रणाली मे सुधार करने व उस पर नियन्त्रण रखने का था। दूसरे, जापान अपनी सैनिक क्षमता बढा रहा था जिसके लिए उसे भारी मात्रा मे साज-सामान का आयात करना था। योकोहामा स्पीशी बैंक का गठन मुख्य रूप से इसी कार्य के लिए किया गया। तीसरे, क्योंकि जापान मे विनियोगकर्त्ताओं का कोई विशिष्ट वर्ग नही था इसलिए एक बैंको का समूह गठित किया गया जिसका कार्य राष्ट्रीय महत्त्व के बडे पैमाने के उद्योगो को वित्त प्रदान करना था। अन्त मे, डिपॉजिट्स ब्यूरो जैसी संस्थाएँ निर्धन लोगो की बचतें एकत्रित करने के लिए बनायी गयी थी।

किन्तु कार्यों के बारे मे ये बारीक अन्तर तथा विशिष्टीकरण के सिद्धान्त व्यवहार रूप मे नही चल पाये। व्यावसायिक बैंकिंग तथा औद्योगिक बैंकिंग के बीच कार्य विभाजन पूरी तरह प्राप्त नही हुआ। जापानी जनता अपनी जमाओं को साधारण बैंको मे सावधि बचत (Fixed Deposit) जमाओं के रूप मे रखना पसंद करती थी और ये बैंक इस रुपये को औद्योगिक फर्मों मे लगाते थे। इससे कुछ प्रमुख व्यावसायिक घरानो की वित्तीय शक्ति काफी बढ गयी, क्योंकि वे अपने नियन्त्रण वाले बैंको से धनराशि प्राप्त कर सकते थे। सरकार इस खतरे को महसूस करती थी किन्तु वह कुछ भी करने की स्थिति मे नही थी क्योंकि आपातकाल मे वह स्वयं इन्ही बडे वित्तीय समूहो पर निर्भर करती थी। 1894-95 तथा 1904-05 के मध्य सरकार द्वारा जारी किये गए युद्ध बॉण्ड (War Bonds) केवल चार बडे औद्योगिक घरानो की सिंडीकेटों ने ही खरीदे थे। बैंक ऑफ जापान की साधारण बैंकों को नियन्त्रित कर सकने की असमर्थता का परिणाम यह रहा कि देश के स्वर्ण भण्डार गिरते चले गये।

(9) **विदेशी व्यापार मे तीव्र वृद्धि**—1890 के पहले जापान का विदेश व्यापार नगण्य सा था। लेकिन 1881 से 1914 के बीच उसमे दस गुनी वृद्धि हुई। 1881 से 1893 तक लगभग प्रत्येक वर्ष व्यापार सतुलन जापान के पक्ष मे रहा किन्तु चीन-जापान युद्ध के बाद भारी मात्रा मे आयात किये गये जिनसे दृश्य व्यापार सन्तुलन अत्यधिक विपरीत हो गया। सम्पूर्ण मेजी काल निर्यातो मे सर्वाधिक भाग अर्द्ध विनिर्मित माल का रहा। इस अवधि मे निर्यात व्यापार मे प्रवेश करने वाली सर्वप्रमुख विनिर्मित मदें रेशम की बनी चीजें व दियासलाइयाँ रही।

औद्योगीकरण के परिणामस्वरूप सूती धागे का बडे पैमाने पर बाजार निर्मित

हो गया तथा सूती चीजो का निर्यात भी छोटे स्तर पर आरम्भ हो गया। 1900 तक सूती व रेशमी वस्त्र कुल निर्यातो मे 22% तक पहुँच चुके थे। कोयले तथा ताँबे का महत्त्व अपरिवर्तित ही रहा जबकि चाय, चावल तथा अन्य कृषि पदार्थों के निर्यात मे कमी आयी। निर्यातो मे 1900 से 1913 के बीच तीव्र वृद्धि हुई। 1913 मे सूती एव रेशमी वस्त्रो के निर्यात से 30% आय प्राप्त हुई। खनिज एव कृषि पदार्थों के निर्यात, जो उन्नीसवीं शताब्दी मे इतने महत्त्वपूर्ण थे, इस अवधि मे काफी घट गये।

आयात व्यापार मे भी परिवर्तन देखे जा सकते थे। 1880 में आधे के लगभग आयात विनिर्मित वस्तुओ के होते थे। 1913 तक तैयार विनिर्मित माल के आयात कुल व्यापार का 20% रह गये। 1913 मे लगभग एक-तिहाई निर्यात कच्ची रुई व ऊन के थे। दूसरी ओर सूती धागे व सूत की बनी हुई वस्तुओ के आयात इस समय तक काफी कम हो चुके थे। इस परिवर्तन से यही संकेत मिलता था कि देश मे सूती वस्त्र उद्योग काफी विकसित हो चुका था तथा देश विनिर्माण व्यवसाय (Manufacturing trade) स्थापित करने की दिशा मे काफी आगे बढ चुका था। वास्तव मे, मेजी युग की समाप्ति तक, जापान विश्व के अग्रणी विनिर्मित माल बनाने वाले तथा निर्यातक देशो की पंक्ति मे आ चुका था।

जापान के आयातो व निर्यातो के क्षेत्र में मेजी काल मे हुए कायापलट से ही यह आभास होता है कि कितने नाटकीय एव दृढ रूप से जापान मे आधुनिक उद्योग का विकास हो चुका था।

मुख्य निर्यात श्रेणियाँ

(प्रतिशत मे)

वर्ष	खाद्य पदार्थ	कच्चे माल	विधायित कच्चे माल	तैयार माल	खुदरा चीजें	कुल
1877	38 5	8 3	45 8	2 7	4 6	100
1887	26 3	10 9	45 4	13 5	3 9	100
1893	20 5	10 5	40 8	24 5	3 8	100
1897	12 9	10 3	50 8	23 0	2 9	100
1903	11 9	10 5	47 2	27 9	2 4	100
1911	11 6	9 0	47 6	30 7	1 1	100
1913	9 8	8 1	51 9	29 2	0 9	100
1921	6 4	6 3	43 9	41 8	1 5	100

मुख्य आयात श्रेणियाँ

(प्रतिशत मे)

वर्ष	खाद्य पदार्थ	कच्चे माल	विधायित कच्चे माल	तैयार माल	फुटकर चीजें	कुल
1877	12 7	3 7	24 1	56 0	3 5	100
1887	17 8	5 2	30 1	44 4	2 6	100
1893	23 1	21 6	19 7	33 1	2 5	100
1897	24 4	24 4	16 6	33 4	1	100
1903	32 6	30 9	13 6	21 5	1 4	100
1911	10 0	45 0	19 5	24 6	0 7	100
1913	16 5	48 5	17 4	17 0	0 5	100
1921	12 9	46 9	25 1	19 2	0 8	100

Source Kamekichi Takahashi, *The Rise and Development of Japan's Modern Economy*, 1969, 354

उपर्युक्त आँकडे विधायित कच्चे माल व तैयार माल के आयातों में वृद्धि तथा निर्यातो में कमी की प्रवृत्ति को स्पष्ट करते हैं । विशेष रूप से तैयार माल के आँकडो से विनिर्माण उद्योग की प्रगति का पता चलता है ।

मेजी काल मे समग्र आर्थिक विकास

पुनर्संस्थापना के बाद का पहला दशक अशात रहा इसलिए उसके बारे मे कोई विश्वस्त आँकडे उपलब्ध नही होते । 1879–1913 की अवधि के लिए प्रकाशित नवीनतम अनुमानो के अनुसार जापान की इस अवधि की औसत वार्षिक विकास दर 3 3% रही । ओहकावा व रोसोवस्की(Ohkava and Rosovsky) ने अनुमान लगाया है कि इस अवधि मे कृषि उत्पादन 2% से बढा जबकि औद्योगिक उत्पादन मे 5 5% की वार्षिक वृद्धि हुई । किन्तु जापानी अर्थव्यवस्था के कुछ विदेशी पर्यवेक्षक इन अनुमानो को बढा-चढा कर बताये गये अनुमान मानते हैं । एगस मैडिसन (Angus Maddison) ने समग्र आर्थिक विकास की जापानी दर 2 7% के आस-पास रहने का अनुमान लगाया है ।

15 देशो के कुल राष्ट्रीय उत्पाद (G N P) की वृद्धि दरे, 1870–1913

(वार्षिक औसत चक्रवृद्धि विकास दरें)

1	अमरीका	4 3	9	सोवियत सघ	2 5
2	कनाडा	3 8	10	स्विटजरलैण्ड	2 4
3	आस्ट्रेलिया	3 3	11	नार्वे	2 2
4	डेनमार्क	3 2	12	इग्लैण्ड	1 9
5	स्वीडन	3 0	13	नेदरलैण्ड	1 9
6	जर्मनी	2 8	14	फ्रास	1 6
7	बल्जियम	2 7	15	इटली	1 4
8	जापान	2 7		औसत	2 6

ऊपर लिखे गए आँकडो से तो यही स्पष्ट होता है कि मेजी जापान मे आर्थिक विकास की दर अन्य अनेक पश्चिमी देशो की उसी अवधि की विकास दरो से अधिक नही थी। किन्तु जापान ने आधुनिक आर्थिक विकास की नीव डाल दी थी जिससे उसे आगे के वर्षों मे नेतृत्व प्राप्त करने मे सहायता मिली।

जब हम इन आंकडो की तुलना अन्य पडोसी एशियाई देशो से करते है तो मेजी जापान की उपलब्धियाँ अद्वितीय दिखाई देती हैं। जापान ने स्वय को उपनिवेशो के लबादे से मुक्त रखा तथा बैंकिंग, विदेश व्यापार और तटकर के क्षेत्र मे भी सारे विदेशी हस्तक्षेप दूर कर दिये। अनेक पूंजी प्रदान करने वाली सस्थाओ का जाल बिछा दिया गया। जापान ने अपना केन्द्रीय बैंक 1882 मे ही स्थापित कर लिया था जबकि अधिकाश पडोसी एशियाई देशो मे यह कार्य उसके 50 वर्ष बाद ही किया जा सका था।

1913 तक जापानी अर्थव्यवस्था की इस असाधारण प्रगति के लिए दो मुख्य तत्त्व उत्तरदायी रहे (i) आर्थिक विकास को सरकार का सक्रिय समर्थन जिसमे सस्थागत सुधारो के रूप मे किये गये महान् प्रयास, शिक्षा व तकनीक का विकास तथा क्रांतिकारी मौद्रिक एव राजकोषीय परिवर्तन सम्मिलित हैं। (ii) एकदम बन्द अर्थव्यवस्था (closed economy) को अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के लिए खोल दिया जाना जिसके तकनीकी लाभ तथा विशिष्टीकरण की मितव्ययताएँ जापानी अर्थ-व्यवस्था को प्राप्त होने शुरू हो गये। जापान की सबसे प्रभाव डालने वाली बात उसके द्वारा उपभोग पर लगाये गये प्रतिबन्ध रहे। मेजी युग मे जापान मे विनियोग की दर कई यूरोपीय देशो से ऊँची रही। कुल राष्ट्रीय उत्पाद के प्रतिशत के रूप मे घरेलू पूंजी-निर्माण की दर 1887 से 1913 तक 9 1% रही तथा इस अवधि मे सरकारी व्यय उसका 12 4 प्रतिशत के लगभग रहा।

मेजी जापान की एक असाधारण बात यह रही कि उसने एक ऐसी तकनीक तैयार करने में सफलता पायी जो उसकी घटिया भूमि तथा श्रम अतिरेक वाली अर्थ-व्यवस्था के लिए उपयुक्त थी। कई गलतियाँ भी हुईं तथा इस तकनीक की तलाश में धन का अपव्यय भी हुआ किन्तु अन्त में इस तकनीक का इलाज करने में मेजी शासन सफल रहा। कृषि मे सुधार तोकुगावा शासन के कार्य को आगे बढाने के ही रूप मे रहे किन्तु एक सुदृढ औद्योगिक आधार के निर्माण का कार्य ऐसा था जो केवल मेजी काल में ही आरम्भ हुआ तथा जिसने दोनो महायुद्धो के बीच के काल में अनपेक्षित ऊँचाइयाँ प्राप्त कर ली।

तीसरा अध्याय

आर्थिक विकास की अवस्थाएँ

(STAGES OF ECONOMIC DEVELOPMENT)

अपनी भौगोलिक स्थिति व अपनी पृथक्तावादी नीति (Policy of Isolation) के कारण जापान पश्चिमी देशो के सम्पर्क मे आने वाले 19वी सदी के अफ्रेशियाई देशो मे अन्तिम देश था। जब अन्तिम रूप से जापान पश्चिम के सम्पर्क मे आया तो वह एक अत्यन्त निर्धन एवं कमजोर देश था। और उसके बाद, पिछले 110 वर्षों मे वह विश्व के सर्वाधिक शक्तिशाली आर्थिक देशो की श्रेणी मे आ चुका है। जापान का कुल राष्ट्रीय उत्पाद दुनिया मे अब तीसरा सबसे बडा राष्ट्रीय उत्पाद है तथा आज वह जहाज-निर्माण, इस्पात विनिर्माण, मोटरकार उत्पादन तथा कृत्रिम वस्त्र उत्पादन के क्षेत्र मे विश्व का नेतृत्व कर रहा है। आखिरकार इतने कम समय मे जापान ने इतनी महान् प्रगति किस प्रकार की ?

आम बोलचाल में जापान के विकास को 'चमत्कारिक' कहा जाता है, किन्तु वास्तव मे, ऐसा कोई चमत्कार नही हुआ है।[1] सच तो यह है कि यह विकास पिछले सौ से भी अधिक वर्षों मे किये गये जापानियो के अथक् प्रयत्नो का परिणाम है। समय के साथ-साथ इन प्रयत्नो के फल प्राप्त होने लगे। जापान वास्तव मे एक विनिर्माण राष्ट्र (manufacturing country) तो प्रथम महायुद्ध के छिड़ने के समय ही बन पाया था और इस उपलब्धि तक पहुँचने से पहले जापान को अपनी कमजोर कृषि-प्रधान अर्थव्यवस्था को एक विनिमाण प्रधान अर्थव्यवस्था मे बदलने हेतु एक अत्यन्त कठिन सक्रमण काल से गुजरना पडा था।

जापानी आर्थिक इतिहास के एक सुप्रसिद्ध लेखक कामेकिची ताकाहाशी ने मत व्यक्त किया है कि तोकुगावा के सामन्ती ढाँचे द्वारा लगाए गए प्रतिबन्धो को हटा लिये जाने से जापानी लोगो की बौद्धिक क्षमता यकायक पूरे प्रवाह मे आ गयी। इस अकेली घटना ने ही जापान को पश्चिमी तकनीक को अपनाने व आत्मसात् कर लेने में सहायता की। जापान अन्य एशियाई देशो से एक माने मे भिन्न भी था। पुनर्संस्थापना के पहले 30 वर्षो मे, जबकि विदेशी सहायता की आवश्यकता सर्वाधिक थी, तब जापान ने बाहरी सहायता पर निर्भर रहना अस्वीकार कर दिया (क्योकि उस जमाने में इसका अर्थ था विदेशी आक्रमण का भय) तथा उसने अपनी अर्थव्यवस्था का निर्माण अपने ही साधनो से करने का निश्चय किया। इस अवधि मे कई अन्वीक्षाएँ व

[1] T Kamekichi, *The Rise and Development of Japan's Modern Economy*, 1969, Preface, V

त्रुटियाँ हुईं।

1868 से 1895 के वर्षों में एक आधुनिक अर्थव्यवस्था के विकास की नीवें धीरे-धीरे भरी जाती रही। पर्याप्त आर्थिक मजबूती संचित कर ली गई ताकि बाद के वर्षों में वास्तविक स्वावलम्बी विकास की अवस्था (take-off stage) प्राप्त हो सके। मेजी पुनर्संस्थापना के बाद जापानी आर्थिक विकास की सम्पूर्ण प्रक्रिया का अवलोकन करने के लिए इस सारी अवधि को पाँच मुख्य अवस्थाओं में विभाजित किया जा सकता है—

प्रथम अवस्था (1868–1885)

इस अवस्था में दो प्रमुख बातें घटित हो रही थी—एक बात तो जापानी अर्थव्यवस्था का पश्चिमीकरण करने के लिए किये जा रहे पुरजोर प्रयास थे, दूसरी बात सामन्ती प्रथा को हटाने की थी जो कि आर्थिक विकास को अवरुद्ध किये हुए थी। ये सामन्ती सरदार लोग समुराई वर्ग के थे, किन्तु उन्होंने स्वयं ही सुधारों को लाने का साहस किया। यही वह अवस्था थी जब आधुनिक आर्थिक विकास की नीवें डाली गईं।

आत्मसात्करण (assimilation) की गति आरम्भ में तो काफी धीमी रही। देश में झगड़े-फसाद और अव्यवस्थाएँ फैल गईं जो पुराने सामन्ती ढाँचे को तोड़ देने से पैदा हुई थी। आंशिक रूप से ऐसा इसलिए भी रहा कि लोगों को इस बात का भान भी नहीं था कि 'आधुनिक अर्थव्यवस्था' आखिर है क्या? इसलिए आधुनिक अर्थव्यवस्था के विकास के लिए वांछित तत्त्व तैयार किये गये। इस तैयारी में पुनर्संस्थापना के बाद के 18 वर्ष निकल गये।

द्वितीय अवस्था (1886–1913)

इस अवस्था तक उन नीवों का उपयोग कर पाना सम्भव बन गया जो पहले डाल दी गई थी। मेजी पुनर्संस्थापना के इस दूसरे काल में ही अर्थव्यवस्था का आधुनिकीकरण किया गया तथा विकास की दर तीव्र की गई। इस काल में जापान की स्थिति में शेष विश्व के प्रतिकूल तीन महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए जिन्होंने अर्थव्यवस्था को शक्ति प्रदान की—

(1) विदेशों के साथ सन्धियों को संशोधित किया गया। पूर्ववर्ती सन्धियाँ समानता एवं पारस्परिकता पर आधारित नहीं थी। इसीलिए वे आर्थिक विकास में बाधक बनी हुई थी। नई सन्धियों के अन्तर्गत विदेशियों को दिये गये सभी विशेषाधिकार वापस ले लिये गये। शुल्कों पर जापान का नियन्त्रण पुनः स्थापित हो गया।

(2) विदेशी पूँजी के आगमन को अब अनुमति प्रदान कर दी गई। पश्चिमी देशों द्वारा उपनिवेश बना लिये जाने के भय से उन पर पहले प्रतिबन्ध लगा हुआ था।

(3) अन्तिम रूप में, शक्ति सन्तुलन में भी परिवर्तन आ गया। चीन व रूस पर जापान की विजयों ने उसे विश्व मानचित्र पर प्रमुख राष्ट्र के रूप में उभार दिया। ये विजयें भी अर्थव्यवस्था के आधुनिकीकरण के कारण ही सम्भव हुई थी।

यह एक तीव्र विकास का युग था। इस अवस्था मे हालाकि जापान को परिपक्व औद्योगिक राष्ट्रो की श्रेणी मे तो सम्मिलित नही किया जा सकता था किन्तु वह उनकी पंक्ति मे प्रवेश पाने के निकट पहुँच चुका था।

तीसरी अवस्था (1914–1928)

प्रथम महायुद्ध मे जापान ने एक असाधारण आर्थिक शक्ति के रूप मे प्रवेश किया। युद्ध मे फँसे होने के कारण प्रमुख औद्योगिक राष्ट्र अपने परम्परागत औपनिवेशिक या विदेशी बाजारो मे वस्तुओ की पूर्ति की निरन्तरता बनाये रखने मे असमर्थ थे। जापान को जैसे इसी अवसर की प्रतीक्षा थी। देखते ही देखते वह सूती वस्त्र तथा इजीनियरिंग क्षेत्रो मे विश्व का एक प्रमुख विनिर्माण राष्ट्र बन गया। इससे पहले अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार तथा समुद्री यातायात पर यूरोप का एकाधिकार-सा था। युद्ध ने स्थिति को अस्थायी रूप से बदल दिया तथा जापान के अलावा कोई भी अन्य एशियाई देश इस अवसर को पकड पाने की स्थिति मे नही था। जापान ने मेजी काल मे विनिर्माण गतिविधियाँ पहले ही आरम्भ कर दी थी। इसीलिए प्रथम महायुद्ध ने जापान को जैसे तीव्र आर्थिक विकास के लिए अवसर ही प्रदान किया। निम्न क्षेत्रो मे प्रमुख विकास दृष्टिगोचर होने लगा—

(1) सूती धागे का निर्माण, जिसमे बाद मे जापान ने इग्लैण्ड को पहले स्थान से दूसरे स्थान पर ला दिया।

(2) भारी उद्योगो मे, विशेष रूप से इस्पात, जहाज-निर्माण, मशीन टूल्स आदि क्षेत्रो मे भारी प्रगति हुई। इन उद्योगो पर भी पहले इग्लैण्ड तथा जर्मनी का प्रभुत्व स्थापित था।

(3) समुद्री जहाज सेवा तथा विदेशी व्यापार का विकास हुआ।

(4) विदेशी मुद्रा की स्थिति मे सुधार आया।

ये सभी परिवर्तन प्रथम विश्व-युद्ध द्वारा पैदा की गई गरमागरम (Hot-house type) दशाओ के कारण आये जो विकास के लिए वरदान सिद्ध हुए। 1920 से 1928 तक जापान का आर्थिक विकास 1923 के भूकम्प तथा 1927 की आर्थिक विभीषिका (financial panic) के कारण धीमा रहा।

चौथी अवस्था (1929–1940)

महान् मन्दी ने जापानी अर्थव्यवस्था पर भी विपरीत प्रभाव डाला। किन्तु जापानी अर्थव्यवस्था का पुनरुद्धार भी तेजी से हुआ क्योकि उसने येन को 1929 मे पुनर्मूल्यित कर दिया तथा स्वर्ण के स्वतन्त्र आयात व निर्यात की अनुमति दे दी। जहाँ अधिकाश औद्योगिक राष्ट्र मन्दी के समय अन्तर्राष्ट्रीय बाजार मे अपनी चीजें मिट्टी के मोल बेच रहे थे वही जापान को कच्चा माल पहले की अपेक्षा कही अधिक सस्ते मूल्य पर मिलने लगा जिसकी उसे अत्यधिक आवश्यकता थी। इस तथ्य ने महान् मन्दी के समय निर्यात प्रतिस्पर्द्धा की दृष्टि से जापान को लाभ की स्थिति मे पहुँचा दिया। जापान ने विश्व-बाजार पर इतनी तेजी से अधिकार कर

लिया था कि अनेक स्थानो पर तो जापानी वस्तुओ का बायकॉट करने की माँगें होने लगी। 1931 के बाद जापान ने संरक्षणवादी नीति स्वीकार कर ली जिसका उद्देश्य भारी व रसायन उद्योगो म आत्म-निर्भरता प्राप्त करना था जो सैनिक आवश्यकताओ को पूरा करती थी। सरक्षण के परिणामस्वरूप इन उद्योगो मे तीव्र वृद्धि अकित की गई तथा इससे तीव्र तकनीकी विकास की प्रक्रिया भी प्रारम्भ हो गई।

पाँचवी अवस्था (द्वितीय महायुद्धोत्तर काल)

द्वितीय महायुद्ध मे जापान की भीषण पराजय ने उसका सम्पूर्ण आर्थिक ढाँचा व उपकरण नष्ट कर दिये जो उसने युद्ध-पूर्व के वर्षो मे कडी मेहनत से तैयार किये थे। युद्ध के बाद जो एकमात्र साधन जापान के पास बच रहा वह उसके कुशल श्रमिक व तकनीशियन लोग थे जो मेजी काल से ही प्रशिक्षित हो रहे थे और अब उस कुचल देने वाली पराजय के 34 वर्षों के भीतर जापान ने पुन एक बार विनिर्माण के क्षेत्र मे सभी पश्चिमी यूरोपीय देशो को पीछे छोड दिया है। यह असाधारण उपलब्धि कम से कम इन पाँच तत्वो का परिणाम रही है—

(1) सबसे आधारभूत कारण युद्धोत्तरकालीन वर्षो मे हुई विश्वव्यापी तकनीकी क्रान्ति रही है। इसका सर्वाधिक लाभ कई कारणो से जापान को ही हुआ है।

(2) जापान के पास मानवीय साधन तथा तकनीकी जानकारी का विशाल भण्डार था जो पुनर्सस्थापना के बाद से ही वहाँ प्रशिक्षित होते रहे थे। युद्ध के दौरान भारी एव रसायन उद्योगो मे आत्म-निर्भरता की नीति ने भी जापान की तकनीकी क्षमता को काफी बढा दिया।

(3) इन सबसे अलग, युद्ध के बाद जापान के सामने तो अपने अस्तित्व को बनाये रखने का प्रश्न था। इस परिस्थिति ने उसे नवीनतम तकनीकें तथा वैज्ञानिक उपकरणो का प्रयोग करने का साहस प्रदान किया। जब इस क्षेत्र मे पहले नव-प्रवर्तको को सफलता मिली तो अन्य लोगो ने उनका अनुसरण किया। इसका परिणाम यह है कि आज जापानी साज-सामान दुनिया के श्रेष्ठतम उपकरणो मे गिना जाता है।

(4) द्वितीय महायुद्ध के बाद कच्चे माल की पूर्ति अधिकाधिक होती चली गई है। नए व अधिक समृद्ध खनिज-पदार्थ खोजे गये व उनका विदोहन किया गया। नव-स्वतन्त्र देश अपने कच्चे माल बेचने के लिए बहुत आतुर थे और जापान उनका स्थायी ग्राहक बन गया।

(5) अधिकाश कारखानों का समुद्र तट पर स्थापित होना भी लाभकारी रहा। इससे जहाजी सेवाओ की लागत मे काफी बचत रही। अनेक श्रेष्ठ बन्दरगाहो से युक्त जापानी तटो के कारण देश को अपना विशाल बेडा तैयार करने म सहायता मिली।

ये आधारभूत आवश्यकताएँ, जो विकास के लिए इतनी अनिवार्य होती हैं, बहुत पहले ही पूरी कर ली गई। इसीलिए जापान पश्चिमी यूरोप मे भी कई क्षेत्रो मे आगे निकल पाया। इसके अतिरिक्त द्वितीय महायुद्ध के बाद अमरीका द्वारा विशाल

मात्रा मे दी गई सहायता तथा कोरियाई युद्ध (1950) द्वारा प्रदान किये गये अवसरो ने भी जापान को तीव्र गति से विकास करने योग्य बनाया।

उपर्युक्त वर्णित ये पाँच अवस्थाएँ स्पष्ट रूप से यह प्रदर्शित करती है कि जापान का एक औद्योगिक महाशक्ति के रूप मे विकास किस प्रकार हुआ। हालांकि प्रत्येक अवस्था की अपनी विशेषताएँ रही किन्तु दूसरी से लेकर पाँचवी अवस्था तक एक विशेषता सामान्य ही रही। इनमे से प्रत्येक अवस्था मे अपने से पिछली अवस्थाओ द्वारा छोडी गई कठिनाइयो पर विजय प्राप्त करना था तथा पिछली अवस्था से प्राप्त किये गये अनुभवो का आगे के लिए उपयोग करना था। यही वह सामान्य विशेषता थी।

कामेकिची ने लिखा है, 'जापान के चमत्कारिक विकास के रहस्य को खोलने वाली कुंजी विकास की प्रथम अवस्था को समझने म छिपी है। वह यह जानने मे निहित है कि किस प्रकार पूंजीवाद ने जापान को अपना ठिकाना बना लिया जब नीव डालने का काम काफी सीमा तक पूरा हो गया तो बाद का विकास तीव्र एव तीव्रतर होता रहा।' दो प्रमुख प्रक्रियाएँ—सामन्ती व्यवस्था का समाप्त किया जाना तथा यूरोपीय अर्थव्यवस्था जैसी आधुनिक अर्थव्यवस्था का अधिग्रहण—सक्रिय रही। इन दोनो आधारभूत तत्त्वो की अनदेखी करने पर मेजी काल के बाद हुए जापान के विकास का ऐतिहासिक अर्थ समझना कठिनाई होगा।

चौथा अध्याय

प्रथम महायुद्ध व महायुद्धों के बीच का काल

(FIRST WORLD WAR AND THE INTER-WAR YEARS)

मेजी काल के तीसरे व चौथे दशक में स्वय-स्फूर्त विकास (Take-off stage) की अवस्था के अन्तरिम रूप में पूर्ण हो जाने का पता निम्न तत्त्वो या दशाओ से लगता है

(1) अगुवा फर्मों को मिली व्यावसायिक सफलताओ के कारण, जिन्होंने कि पश्चिमी तक़नीक का आयात किया व उसको जापानी दशाओं में आत्मसात (assimilate) कर लिया, उद्योग व व्यवसाय के प्रति अन्य लोगो का उत्साह भी बढा।

(2) पश्चिमी तकनीक को अलग-अलग चरणो मे इस प्रकार स्वीकार किया गया कि प्रथम चरण मे उनका स्वदेशीकरण (Indigenisation) कर दिया गया। दूसरे चरण मे अधिकाधिक फोरमैन (Foremen) प्रशिक्षित किये गये जिन्होंने आधुनिक मशीनरी चलाने मे सिद्धहस्तता पा ली। स्वय-स्फूर्त विकास की अवस्था तीसरे चरण के साथ प्राप्त हो गई जब आधुनिक उपक्रमो के लिए प्रबन्धकीय कर्मचारी (Managerial staff) भी भारी सख्या मे देश में ही प्रशिक्षित होकर निकलने लगे।

(3) आधुनिक बडे पैमाने के उद्योगो के विकास के लिए आवश्यक सहायक उद्योगों (ancillary industries) का विकास भी दिखाई पडने लगा था। जिन तत्त्वो ने इन सहायक उद्योगो की स्थापना मे अपना योगदान दिया वे थे (अ) परिष्कृत बैंकिंग व्यवस्था के कारण पूँजी की अधिक मात्रा मे उपलब्धि। (आ) रेल-मार्गों के प्रसार तथा आधुनिक जहाजी सेवा के आरम्भ हो जाने से यातायात सुविधाओ का आधुनिकीकरण, (इ) कृषि तथा उत्खनन मे हुए सुधारो के कारण सामान्य आर्थिक स्थिति मे सुधार, तथा (ई) मध्यम व निम्न श्रेणी की फर्मों का और आगे विकास जो कि उत्तरोत्तर पश्चिमी तकनीको का प्रयोग कर बडी फर्मे बनती जा रही थी।

(4) इन विभिन्न परिवर्तनो का परिणाम यह हुआ कि. (अ) घरेलू क्रय-शक्ति मे वृद्धि हो गई, (आ) पूंजी सचय बढ गया, (इ) विनिर्माण के लिए आवश्यक कच्चे माल व ऊर्जा स्रोतो मे वृद्धि हुई, तथा (ई) व्यवसाय का विकास हुआ।

ये स्वय-स्फूर्त विकास (Take-off conditions) की दशाएँ कुछ ऐसी थी कि उन्होंने जैसे भावी विकास-प्रक्रिया के पग लगा दिये। इसका परिणाम यह रहा कि

आने वाले वर्षों मे जापानी अर्थव्यवस्था की विकास दर गत वर्षों की अपेक्षा काफी तीव्र रही।

रेल-मार्गों तथा व्यापारिक जहाजो का विकास

वर्ष	रेल-मार्ग (मीलो मे)	वाष्पचालित जहाज टन भार (000 टनो मे)
1890	1,698	[illegible]
1895	2,290	213
1900	3,855	543
1905	4,783	940
1910	5,354	1,234
1915	6,539	1,528
1920	8,475	3,047
1925	10,884	3,547

मेजी काल उस युग के साथ ही पडा जिसमे जापानी अर्थव्यवस्था अपने पाँव मजबूती से जमाने मे सफल हो गई थी। नया सम्राट तैशो (Taisho) प्रथम महायुद्ध आरम्भ होने के दो ही वर्ष पहले सिंहासन पर बैठा। उसकी अवधि 1926 मे समाप्त हुई जो वर्ष जापानी आर्थिक इतिहास मे एक विभाजन रेखा के रूप मे माना जाता है।

जापान के लिए प्रथम और द्वितीय महायुद्ध के बीच के वर्ष तीव्र विकास के वर्ष रहे। उसके उद्योग तथा कुल राष्ट्रीय उत्पाद (G N P) मे भी मेजी काल की अपेक्षा अधिक तेजी से वृद्धि हुई। एक अनुमान के अनुसार 1913 से 1938 तक के बीच जापान का कुल राष्ट्रीय उत्पाद 4% वार्षिक की दर से बढा। उसके कृषि उत्पादन मे 1 2% तथा विनिर्मित वस्तुओ के उत्पादन मे 7% की वार्षिक वृद्धि हुई। 1913–38 के बीच किसी भी देश द्वारा प्राप्त विकास दर से यह दर ऊँची रही।

प्रति व्यक्ति वास्तविक कुल उत्पाद
(Growth of Real G N P Per Capita), 1913–38

(वार्षिक औसत चक्रवृद्धि विकास दरें)

जापान	2 6	इटली	1 0
नॉर्वे	2 1	म	0 8
सोवियत सघ	1 9	अमरीका	0 8
स्वीडन	1 3	इग्लैण्ड	0 7
जर्मनी	1 1	कनाडा	0 0

हालाकि प्रथम महायुद्ध के आरम्भ मे जापान ने मित्र राष्ट्रों का पक्ष लिया किन्तु उसने युद्ध मे भाग नही लिया। इस कारण उसे कोई हानि भी नही उठानी पडी। औद्योगिक उत्पादन काफी बढ गया तथा उसे एशिया मे कई नये बाजार भी प्राप्त हुए। उसके बनाये वस्त्र अब चीन व भारत मे बिकने लगे। उसके व्यापारिक जहाजो की भारी माँग थी। विदेशी मुद्रा-कोष काफी बढ गये।

वास्तविक कुल राष्ट्रीय उत्पाद मे वृद्धि, 1913–38

(वार्षिक औसत चक्रवृद्धि विकास दरें)

जापान	4 0	इटली	1 7
नॉर्वे	2 9	जर्मनी	1 6
सोवियत सघ	2 8	कनाडा	1 5
अमरीका	2 0	इग्लैण्ड	1 1
स्वीडन	1 8	फ्रास	0 9

प्रथम विश्व-युद्ध के प्रभाव

युद्ध का तात्कालिक प्रभाव तो यह रहा कि जापान की वित्तीय कठिनाइयाँ बढ गई क्योकि उसका विदेशी व्यापार तथा ऋण सम्बन्धी क्रिया-कलाप सदैव लन्दन मे ही किये जाते थे। किन्तु जल्द ही यह स्पष्ट हो गया कि जापान बहुत समृद्धि की ओर बढ रहा है। उसके निर्यातो मे दिन-दूनी-रात-चौगुनी वृद्धि हुई। सूती वस्तुओ का निर्यात तो दुगुना हो गया। सूती वस्त्र का निर्यात 1913 के 412 मिलियन गज से बढकर 1918 मे 1,174 मिलियन गज हो गया। पहली बार जापानी सूती वस्त्र भारत, ईस्ट इण्डीज तथा अन्य दक्षिण-पूर्वी एशियाई देशो मे बिकने लगे।

युद्ध के कारण से आई यह तेजी 1920 तक चली। नये औद्योगिक प्रतिष्ठान स्थापित किये गये। फैक्ट्रियो मे रोजगार 1914 के 9 48 लाख से बढ़कर 1919 मे 16 1 लाख हो गया। निर्यात माँग मे ऐसे समय पर तेजी आ जाने से, जबकि युद्ध के नियन्त्रणो की वजह से वह बराबरी पर आयात नही कर पा रहा था, उसके व्यापार मे भारी अतिरेक उत्पन्न हो गया। 1911–14 के दौरान हुए 65 मिलियन येन के व्यापार घाटे की तुलना मे 1915–18 की अवधि मे निर्यातो के आयातो पर आधिक्य का वार्षिक औसत 352 मिलियन येन रहा। मूल्य की दृष्टि से 1918 के निर्यात 1913 की तुलना मे तीन गुना थे। उसके अदृश्य निर्यातो मे भी काफी तीव्र गति से वृद्धि हुई। भाडो से जापान को होने वाली आय, जो 1914 मे 40 मिलियन येन थी, 1918 मे बढकर 450 मिलियन येन हो गई।

निर्यातो मे तुलनात्मक विकास, 1913–37

(वार्षिक औसत चक्रवृद्धि विकास दरें)

अमरीकी डॉलरो मे

जापान	5 2	अमरीका	1 4
मलाया	4 2	विश्व औसत	1 4
कनाडा	3 7	इटली	0 5
आस्ट्रेलिया	2 2	इग्लैण्ड	0 1
नेदरलैण्ड्स	1 8	सोवियत सघ	—12 4

जापान ने निर्यातो मे प्राप्त अधिकाश अतिरेक का उपयोग अपने स्वर्ण कोषो

को बढाने में किया । जापान ने बड़े पैमाने पर स्वर्ण का आयात किया तथा बैंक ऑफ जापान के स्वर्ण कोष काफी बढ गये ।

बैंक ऑफ जापान व जापानी सरकार के स्वर्ण कोष

(मिलियन येन में)

वर्ष	देश में मौजूद	विदेशों में रक्षित	कुल
दिसम्बर, 1914	129	213	342
दिसम्बर, 1920	1 116	1,062	2,178

जापानी वस्तुओं एवं सेवाओं की बढती जा रही माँग का उनकी आन्तरिक अर्थव्यवस्था पर भी प्रभाव पड़ा । मौद्रिक आय बढ गई, पत्र मुद्रा तथा बैंक साख में प्रसार हुआ । उद्योग तथा व्यवसाय ने ऐसी समृद्धि प्राप्त की जैसी उन्हें पहले कभी देखने को भी नहीं मिली थी । लाभ की मात्रा काफी ऊँचाइयों तक पहुँच गयी । सट्टेबाजी की गतिविधियाँ जोर पकड़ गईं तथा नई फर्मों की सख्या बढती गई ।

किन्तु इस समृद्धि में कहीं एक थोथापन भी था । 1914 से 1919 के बीच थोक मूल्य 150% बढ गये थे । आयात व निर्यात मूल्य के आधार पर तिगुने हो गये थे किन्तु भौतिक रूप में वे एक चौथाई से ही बढे थे । औद्योगिक उत्पादन 1914 के 1,371 मिलियन येन से बढकर 1919 तक 6,738 मिलियन येन हो गया था तथा कृषि उत्पादन भी इस बीच 1700 मिलियन यन से बढकर 4,083 मिलियन येन हो गया था । जापानी कम्पनियों की प्रदत्त पूँजी 2,676 मिलियन येन से बढ कर 7,615 मिलियन येन हो गई । इन सभी वृद्धियों में मुद्रा के मूल्य में ह्रास स्पष्ट रूप में झलकता हुआ दिखाई देता था ।[1]

येन के मूल्य में ह्रास तथा बढती हुई मुद्रा-स्फीति का यह अर्थ नहीं था कि जापानी अर्थव्यवस्था को प्रथम महायुद्ध से कोई लाभ नहीं हुआ । कृषि तथा खनिज उत्पादनों में क्रमश 16 व 29% की वृद्धि हुई । रेलों में माल की ढुलाई व यात्री आवागमन दुगुने हो गये । विनिर्मित माल का परिमाण 78% बढा । भवन-निर्माण कार्य में काफी तेजी से वृद्धि हुई तथा रसायनों व इन्जीनियरिंग के क्षेत्र में अनेक नई फर्में खोली गईं । यह सही है कि युद्ध के वर्षों के दौरान खोले गये कुछ कारखाने बाद में बन्द हो गये । किन्तु कुल मिलाकर युद्ध के वर्षों में जापान की उत्पादक क्षमता में महत्त्वपूर्ण बढोत्तरी हुई तथा उसकी विदेशी व्यापार की स्थिति एव तकनीकी परिपक्वता में भी सुधार हुआ ।

उत्पादन क्षमता में हुई इन वृद्धियों का जापानियों के जीवन स्तर पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ने पाया । उपभोग लगभग अपरिवर्तित ही रहा । उपभोक्ता वस्तुओं के उत्पादन में होने वाली वृद्धि जनसख्या की वृद्धि द्वारा बराबर कर दी गई । एक अनुमान के अनुसार वास्तविक औद्योगिक मजदूरी सम्पूर्ण युद्ध-काल में

[1] W W Lockwood *op cit*, 39

लगभग स्थिर रही। शहरी क्षेत्रों में रहने वालों पर बढ़ते हुए मूल्यों का भार वहन करना पड़ा, केवल सम्पन्न लोगों के एक बहुत ही छोटे वर्ग को बढ़ते हुए मूल्यों का लाभ मिला। यह तथ्य युद्ध के कारण आयी तेजी के वर्षों में बचत एवं विनियोग के ऊँचे स्तर का कारण एवं परिणाम दोनों ही बन गया।

अफसोस की बात यह रही कि जापान ने अपने अतिरेक का प्रयोग अपने ऋण चुकाने के लिए नहीं किया। जैसा कि पहले लिखा जा चुका है उनका प्रयोग स्वर्ण आयात करने के लिए किया गया। किन्तु 1917 के बाद अमरीका ने भी स्वर्ण के निर्यात पर प्रतिबन्ध (Embargo) लगा दिया। इसने जापान वित्तदाताओं के लिए कुछ समस्याएँ खड़ी कर दी। उधर सरकार घरेलू स्तर पर ऋण लेकर विदेशी ऋण चुकाने के पक्ष में नहीं थी। केवल अल्पकालिक ऋणों का भुगतान किया गया। अधिकांश विदेश व्यापार अतिरेक को विदेशों में ही जमा होते रहने दिया गया। इनमें से अधिकांश अतिरेक युद्धोत्तरकालीन वर्षों में उत्पन्न हुई विदेशी मुद्रा कठिनाइयों को दूर करने में खर्च हो गये।

दो महायुद्धों के बीच के वर्षों में आर्थिक विकास

1918 में प्रथम विश्व-युद्ध की समाप्ति ने जापान की युद्धतेजी (War boom) के अन्त का संकेत दे दिया। लगातार बनी रहने वाली स्फीति के प्रभाव में आर्थिक गतिविधियाँ इन वर्षों में काफी ऊँची बनी रही थी। युद्ध समाप्त होने के दो वर्षों बाद ही 1920 में यह तेजी ढह गई तथा जापानी अर्थव्यवस्था को मुद्रा संकुचन का सामना करना पड़ा। सबसे पहले थोक मूल्य निर्देशांकों पर इसका प्रभाव पड़ा तथा मार्च 1920 के 322 के स्तर से गिरकर अप्रैल 1921 में वे 190 तक आ पहुँचे। मूल्यों में यह गिरावट कच्चे रेशम तथा चावल के सन्दर्भ में सर्वाधिक रही। जहाज-निर्माण व कोयला उद्योग को भारी धक्का लगा। निर्यातों में कमी आयी तथा अदृश्य मदों में अनुकूल संतुलन की स्थिति में काफी कमी आ गयी।

थोक मूल्य निर्देशांक (1913=100)

समय		जापान	इंग्लैण्ड	अमरीका
मार्च,	1920	322	307	227
अप्रैल,	1921	190	199	142
दिसम्बर	1921	209	157	133
दिसम्बर	1922	183	152	144
अगस्त	1923	190	147	140

Source G C Allen *A Short Economic History of Japan*, 1950, 94

सामान्य स्थिति लौट आने पर शान्तिकालीन आर्थिक अवसरों को पैदा करने की आवश्यकता आ पड़ी क्योंकि जापान की जनसंख्या तो बराबर बढ़ती जा रही थी। जापानी सरकार की प्रशंसा में यह बात कही जा सकती है कि उसके द्वारा

अपनायी गयी उदार साख एवं अनुदान नीतियों के कारण जापान अवसाद (recession) की इस स्थिति से अन्य यूरोपीय देशों की तुलना में जल्दी उबर सका। जापान ने अपनी मुद्रा के मूल्य को तब भी बनाए रखा जब येन के अधिमूल्यित (over valued) होने के कारण उसका आयात बिल बढ़ रहा था। किन्तु 1923 के विनाशकारी भूकम्प ने गहरी चोट की। पुनर्निर्माण के लिए विशाल मात्रा में सामग्री आयात की गई। येन के मूल्य को तब तक गिरने दिया गया जब तक वह 1925 में 20% अवमूल्यित नहीं हो गया।

1923 के भूकम्प में 1 लाख से भी अधिक लोगों की जानें गईं। 5 अरब येन मूल्य की सम्पत्ति नष्ट हो गई। टोक्यो व योकोहामा जैसे विशाल नगरों को भारी नुकसान हुआ। पुनर्निर्माण पर भारी व्यय किया गया जिसके लिये वित्त व्यवस्था कर्ज द्वारा की गई। इस समस्त गतिविधि से देश में 'पुनर्निर्माण तेजी' आ गई। थोक मूल्य निर्देशांक बढ़कर 214 हो गये जो एक वर्ष पूर्व 190 ही थे। इससे वित्तीय अस्थिरता का खतरा पैदा हो गया। सरकार ने मितव्ययता के कुछ उपाय किये किन्तु उनकी परिणति भी 1927 के बैंकिंग संकट के रूप में हुई। यह संकट जापान के भावी आर्थिक विकास के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुआ। कमजोर और अव्यवस्थित बैंक, औद्योगिक तथा व्यावसायिक इकाइयां स्वयं ही नष्ट हो गई तथा कुछ अन्य एक-दूसरे में मिल गईं। सम्पूर्ण बैंकिंग उद्योग का नये सिरे से गठन हुआ तथा बैंकों की संख्या 1927–28 में 1,359 से घटकर 1,031 पर आ गयी।

इस बीच जापान लोकतान्त्रिक शासन पद्धति की ओर भी कदम बढ़ा रहा था। शिक्षा, प्रेस तथा राजनीति में उदारता की नीति स्पष्ट रूप से देखी जा सकती थी। यह उदारता की नीति लाने का श्रेय मध्यवर्गीय लोगों तथा शहरी सर्वहारा लोगों को था। युद्धों के बीच के इन वर्षों में ही जापान को सांविधानिक लोकतन्त्र का पहली बार अनुभव हुआ।

जापान ने 1917 में स्वर्णमान का परित्याग कर दिया था किन्तु कुछ समय तक अनुकूल भुगतान सन्तुलन रहने से प्रोत्साहित होकर उसने 1930 में उसे पुनः अपनाया। स्वर्णमान की पुनर्स्थापना के लिये यह एक दुर्भाग्यपूर्ण घड़ी थी। महान् मन्दी आ जाने के कारण विश्व स्तर पर मूल्य घट रहे थे तथा येन के पुनर्स्थापित मूल्य का निर्वाह कर पाना बहुत कठिन हो चुका था। जापान के थोक मूल्यों में भी लगभग 35% की कमी आयी।

थोक मूल्य निर्देशांकों का उतार-चढ़ाव (1913 = 100)

	जापान	अमरीका
अप्रैल, 1929	170	139
दिसम्बर, 1929	155	135
दिसम्बर, 1930	122	112
अक्तूबर, 1931	110	101

चीन में अपनी सैनिक गतिविधियाँ बढ़ाने के लिए वित्त की व्यवस्था करने हेतु जापान ने 1931 के बाद स्फीति का सहारा लिया। भारी घाटे के बजट सरकार द्वारा बनाये गये। साख को आसान बना दिया गया तथा येन के मूल्य का ह्रास होने दिया गया। कड़े विनिमय नियन्त्रण उपाय किये गये तथा तटकरों में वृद्धि कर दी गई। आयात शुल्कों को 1911 के 10–15% से बढ़ाकर कुछ वस्तुओं पर 100% कर दिया गया। इस अवधि में उसे ब्रिटिश साम्राज्य के बाजारों जैसे चीन व भारत के विभेदकारी तटकरों का सामना करना पड़ा क्योंकि 1931–33 में उन्होंने अपने तट-कर बढ़ा दिये थे। उसकी व्यापार शर्तों (Terms of trade) पर विपरीत प्रभाव पड़ा किन्तु उसके निर्यातों के परिमाण में फिर भी 1929 से 1937 के बीच 70% की वृद्धि हुई। यह उपलब्धि और भी अधिक गौरवपूर्ण थी क्योंकि इसी अवधि में फ्रान्स, जर्मनी, इंग्लैण्ड व अमरीका जैसे देशों को भी अपने निर्यातों में गिरावट का सामना करना पड़ा था।

1931 से 1937 के बीच जापानी निर्यात 5 2% वार्षिक की दर से बढ़े। 1937 में जापान अपने कुल राष्ट्रीय उत्पाद का 25% निर्यात कर रहा था। उसका व्यापारिक जहाजी बेड़ा दुनिया में तीसरा सबसे विशाल बेड़ा था। उसके निर्यातों की संरचना में भी भारी परिवर्तन आ चुका था। 1938 तक तो जापान के 58% निर्यात तैयार माल के थे जबकि यह 1913 में 29% ही था।

प्रथम विश्व-युद्ध के बाद जापान ने मचूरिया, चीन, कोरिया व फारमोसा में प्रत्यक्ष विनियोग की नीति अपनाली थी। 1938 में ये विदेशी विनियोग बढ़ते-बढ़ते 1 25 अरब डॉलर के हो चुके थे। 1930 के बाद के वर्षों में घरेलू विनियोग की भी एक बहुत ऊँची दर प्राप्त कर ली गई थी। 1938 में जापानी लोग अपने कुल राष्ट्रीय उत्पाद का केवल 60% ही उपभोग कर रहे थे। 1938 में सरकारी व्यय कुल राष्ट्रीय उत्पाद का 25% हो चुका था जबकि 1913 में यह प्रतिशत मात्र 9 था। इस अवधि में सैनिक व्यय में भी भारी वृद्धि हो चुकी थी। वह राष्ट्रीय उत्पाद का 16% हो चुका था तथा उससे औद्योगिक वस्तुओं के लिए भारी माँग उत्पन्न हो रही थी। वार्षिक स्थिर विनियोग (annual fixed investment) की दर भी राष्ट्रीय उत्पाद की 15% हो चुकी थी। 1920–38 की अवधि की यह दर मेजी काल की दर से काफी ऊँची थी।

निर्यातों में तीव्र वृद्धि के साथ भारी सैनिक खर्च तथा स्थिर विनियोग की अत्यधिक ऊँची दरों ने मिलकर जापान में जिस विकास दर को जन्म दिया वह मेजी काल की विकास दर से काफी ऊँची रही। इस अवधि में औद्योगिक ढाँचे में प्रमुख परिवर्तन भी हुए। धातु इन्जीनियरिंग तथा रसायन उद्योगों के देश में ही विकसित हो जाने से जापान पूँजीगत साज सामान का आयात बिलकुल बन्द करने की स्थिति में पहुँच गया। 1930 के बाद रेशम उद्योग की अवनति से हुई क्षति की पूर्ति ऊन व रेयन क्षेत्र में हुई भारी प्रगति से हो गई।

जैवत्सु की गतिविधियाँ भी युद्धों के बीच के काल में काफी बढ़ गई। अपनी वित्तीय गतिविधियों द्वारा उसने अनेक भारी उद्योगों तथा कुछ हल्के उद्योगों पर

चालू बाजार मूल्यों पर कुल राष्ट्रीय उत्पाद के अनुपात के रूप में स्थिर विनियोग

(उल्लिखित वर्षों के लिए अनुपातों का औसत)

	1900–13	1920–38	1953–65
जापान	10.4	15.3	28.3
आस्ट्रेलिया	14.9	16.6	24.5
फ्रांस	14.3	15.7	18.9
इटली	13.4	16.1	21.1
स्वीडन	11.1	13.3	21.6
इंग्लैण्ड	7.1	8.6	15.7
अमरीका	18.7	15.6	17.9

Source A Maddison, *Economic Growth in Japan and U S S R*, 1969, 39

अपना काफी प्रभाव स्थापित कर लिया था। 1927 के बैंकिंग सकट के बाद तो जैबत्सु का आर्थिक प्रभुत्व और भी मजबूत हो गया क्योंकि बैंकों की सख्या उस सकट के समय घट गई थी। 1920 में जहाँ देश में बैंकों की सख्या 2,000 से भी अधिक थी वहाँ 1937 तक यह घटकर 377 ही रह गई थी। इनमे भी जैबत्सु (जापानी पूँजीपति घराने) द्वारा नियन्त्रित 7 बैंकों का कुल बैंकिंग व्यवसाय के दो-तिहाई भाग पर अधिकार था। जैबत्सु का न केवल बैंकिंग व्यवसाय पर दबदबा था बल्कि उसने न्यासों तथा बीमा कम्पनियों पर भी अपना नियन्त्रण स्थापित कर रखा था। जैबत्सु ने सरकार के साथ भी निकट के सम्बन्ध स्थापित कर रखे थे। मगर जैसे-जैसे युद्ध की तैयारी में तेजी आने लगी वैसे-वैसे उद्योगों पर सरकार का प्रत्यक्ष नियन्त्रण भी बढ़ता गया। इन उद्योगों को वित्तीय साधन उपलब्ध कराने के लिए विशेष सरकारी बैंक स्थापित किये गये। किन्तु 1937 में बिजली व्यवस्था का राष्ट्रीयकरण करने के अतिरिक्त सरकार ने निजी औद्योगिक गतिविधियों में अधिक हस्तक्षेप नहीं किया।

जापानी अर्थव्यवस्था का दोहरापन (Dual character) भी युद्धों के बीच के वर्षों में ही स्पष्ट हुआ। भारी उद्योगों में बड़े पैमाने पर विनियोग आवश्यक था। इसीलिये उनका प्रबन्ध एव नियन्त्रण जैबत्सु के हाथों में आ गया। जैबत्सु द्वारा नियन्त्रित इन भारी उद्योगों में इस बात का ध्यान रखा गया कि उत्पादन अपने सर्वोत्तम बिन्दु तक होता रहे। इतना ही नहीं, बड़े पैमाने का उत्पादन केवल उन्हीं उद्योगों में शुरू किया गया जहाँ उसकी तकनीकी आवश्यकता थी। छोटे श्रम प्रधान कारखानों को अनुबन्ध पर उठा देना सामान्य प्रथा बन गयी। यही वह तथाकथित दोहरी अर्थव्यवस्था थी जहाँ लघु इकाइयाँ विशाल इकाइयों की पूरक बन गई।

छोटी व बड़ी इकाइयों के बीच उत्पादकता में भारी अन्तर विद्यमान थे। हालांकि बड़े पैमाने पर उत्पादन करने वाली फर्मों को भारी मात्रा में वित्तीय साधन उपलब्ध थे तथा वे आधुनिकतम तकनीक का भी उपयोग करती थीं। फिर भी मजदूरी में भारी अन्तर के कारण छोटी इकाइयाँ भी अपना अस्तित्व बनाये रखने में

सफल हुई। छोटी इकाइयो के लिए बहुत कम मजदूरी देना ही जरूरी था तथा बडी इकाइयो मे भी शिक्षा, सेवा की अवधि व यहाँ तक कि पारिवारिक उत्तरदायित्व को लेकर भी मजदूरी मे अन्तर बने हुए थे। विशाल औद्योगिक इकाइयो मे मजदूर लोग जीवनपर्यन्त अनुबन्धित (Life-time contract) होते थे जबकि छोटी इकाइयो के श्रमिक साधारणतया अस्थायी या अल्प-कालिक होते थे।

छोटे कारखानो मे मजदूरी की दरें कम होने का एक कारण यह भी था कि उनमे अल्प-कालिक श्रमिक या फिर महिलाएँ व बच्चे काम मे लगे हुए थे। उनमे कृषि क्षेत्र से आने वाले अस्थायी श्रमिक भी काम करते थे। इनमे से अधिसख्य छोटे कारखाने ग्रामीण क्षेत्रो मे कार्यरत थे। कई कृषि परिवारो के लिए यह आशिक रोजगार भी उपलब्ध कराते थे। श्रम-सघो का अस्तित्व ही नही था। इस प्रकार का यह श्रम बाजार पश्चिमी देशो के श्रम बाजारो से बिलकुल भिन्न प्रकार का था। इसकी एक विशेषता यह भी थी कि जापान अपने पूँजीगत साधनो का उपयोग भी पश्चिमी देशो की अपेक्षा अधिक समय तक कर सकता था। कई-कई शिफ्टो मे काम करके जापानी लोग पश्चिमी देशो के मुकाबले अपनी मशीनो का भी अधिक गहन उपयोग करते थे।

युद्धो के बीच के इन वर्षों में एक सरचनात्मक परिवर्तन भी जापानी अर्थ-व्यवस्था मे दृष्टिगोचर हो रहा था। कृषि पर आश्रित श्रम-शक्ति 1913 के 15 5 मिलियन से घटकर 1938 मे 13·9 मिलियन रह गयी। कुल श्रम-शक्ति मे भी उसका प्रतिशत इस बीच घटकर 61 से 46 प्रतिशत पर आ गया।

मुख्य उपलब्धियाँ

(1) युद्धो के बीच के इन वर्षों की एक प्रमुख उपलब्धि तो यह रही कि गेहूँ, रेशम के कीडो (cocoons), फलो, सब्जियो तथा खाद्य पदार्थो का उत्पादन काफी तेजी से बढ गया। 1914 से 1929 के बीच कुल खाद्य उत्पादन मे 35% की वृद्धि हुई।

(2) प्रथम युद्ध के बाद आई अल्पकालिक मन्दी के बाद आयात व निर्यात दोनो ही वापस बढे तथा 1925 मे क्रमश 2,573 मिलियन येन तथा 2,306 मिलियन येन की ऊँचाई तक पहुँच गये। 1929 मे आयात व निर्यात दोनो ही के मूल्य 1913 के आँकडो की तुलना मे तीन गुना हो चुके थ।

(3) सूती वस्त्र के क्षेत्र में भारी सुधार किये गये। प्रति व्यक्ति उत्पादन तेजी से बढा। हालाकि कारखानो मे रोजगार 2 मिलियन पर स्थिर ही रहा किन्तु विनिर्मित माल का उत्पादन 70% बढ गया। धातुओ के उत्पादन मे 16% तथा कोयले के उत्पादन मे 10% की वृद्धि हुई। 1929 मे विभिन्न जापानी कम्पनियो की प्रदत्त पूंजी तथा अन्य कोषो की कुल राशि 16,410 मिलियन येन तक पहुँच गई। यह राशि जापान मे विदेशी विनियोग की कुल मात्रा की 20 गुना थी।

(4) कोरिया, फारमोसा आदि स्थानो पर भारी मात्रा मे विनियोग किये गये। 1929 तक 12 लाख से भी अधिक जापानी उनके समुद्र-पार उपनिवेशो मे

रह रहे थे, जिनमे आधे से अधिक कोरिया मे थे ।

(5) 1930 के आस-पास के वर्षों की सबसे उल्लेखनीय विशेषता उसके द्वारा विश्व के सभी प्रमुख बाजारो मे अपना माल भर देना रही । 1930 से 1936 के बीच जापानी निर्यातो का परिमाण (volume) दुगुना हो गया था । मौद्रिक दृष्टि से 1930 के 1,435 मिलियन येन के स्तर से जापानी निर्यात 2,641 मिलियन येन पर जा पहुँचे थे । 1936 तक जापान सूती वस्तुओ का दुनिया का सर्वप्रमुख निर्यातक देश बन चुका था ।

(6) 1930 से 1936 तक जापान का विशुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद (N N P), 1930 के मूल्यो पर, 10 2 बिलियन येन से बढकर 15 8 बिलियन येन हो चुका था । उपभोग मे भी 20% की वृद्धि हुई । इन 6 वर्षों मे जनसख्या भी 64 5 मिलियन से बढकर 70 2 मिलियन हो गई । अत प्रति व्यक्ति उपभोग मे 10% की ही वृद्धि हुई ।

आर्थिक क्षेत्र मे तकनीक एव व्यापार की नई शक्तियो के प्रभाव मे युद्धो के बीच के इस काल म (Inter-war years) काफी महत्त्वपूर्ण रूपान्तरण (transformation) हुआ । परिवर्तन की इस प्रक्रिया को अब समझना इसलिए भी महत्त्वपूर्ण है क्योकि अब जापान ही के कदमो पर एशिया के कई विकासोन्मुख देश भी चलने का प्रयास कर रहे हैं । इसीलिए वित्त, विदेशी व्यापार, उद्योग, कृषि, लघु-उद्योग क्षेत्र आदि म जापान मे हुए आधारभूत परिवर्तनो का विशद विवेचन आगे आने वाले अध्यायो मे किया गया है ।

पाँचवाँ अध्याय

कृषि का विकास

(DEVELOPMENT OF AGRICULTURE)

तोकुगावा शासन-काल मे जनसख्या मे 80% कृषक लोग थे। 1872 मे व्यवसाय मे लगी हुई 19 मिलियन जन-शक्ति मे से 77 प्रतिशत कृषि कार्यों मे सलग्न थी। तोकुगावा शासन मे कृषि-सरचना मे लगभग 270 भूस्वामियो (Lords) को भारी मात्रा मे लगान व सेवाएँ प्राप्त होती थी। किसानो के कुल उत्पादन का लगभग 40% प्रतिवर्ष इन भूस्वामियो, जिन्हे दायम्यो (Daimyo) कहा जाता था, द्वारा अधिग्रहित कर लिया जाता था। तोकुगावा शासन मे कृषि मे सुधार की दृष्टि से कोई भी विशेष प्रयास नही किये गय। दूसरी ओर कई कडे प्रतिबन्ध लगाकर जापान के तोकुगावा शासको ने यही चेष्टा की कि ऐसी शक्तियाँ जोर न पकड पायें जिनसे उनकी सामन्ती नीवें हिल जाएँ।

यहाँ तक कि 1893 तक भी जापान की लगभग 84 प्रतिशत जनसख्या ग्रामीण क्षेत्रो मे रहती थी। हालाकि उनमे से सबके सब कृषि-कार्यों मे नही लगे हुए थे। अधिसख्य लोग परम्परागत आर्थिक गतिविधियो मे ही लगे थे। सिर्फ 16% जनसख्या शहरो मे रहती थी। इस तरह जनसख्या मे हुई इन वर्षों की वृद्धियाँ भी कृषि-क्षेत्र मे ही खपती रही। 1893 से 1898 तक जापान की जनसख्या, जिसमे 3 33 मिलियन की कुल वृद्धि हुई थी, मे से 2 मिलियन लोग ग्रामीण केन्द्रो पर ही खप गये थे जहाँ मुख्य व्यवसाय कृषि ही था।

मेजी युग की कृषि (1868–1913)

मेजी काल मे जापानी कृषि मे अनेक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए। चावल के अन्तर्गत कृषि क्षेत्र 1978 के 2 57 मिलियन चो (Cho) से बढकर मेजी काल के अन्त तक 2 92 मिलियन चो हो गया। अन्य अनाजो के अन्तर्गत आने वाले कृषि क्षेत्र मे भी काफी वृद्धि हुई। हालाकि पर्वतीय क्षेत्र होने के कारण जापान की कुल भूमि मे से केवल 15% भूमि ही कृषि के अन्तर्गत लायी जा सकी थी। इसके बावजूद उसकी कृषि को जनसख्या मे होने वाली वृद्धियो एव प्रतिव्यक्ति उपभोग स्तर मे होने वाली वृद्धि से खाद्यान्नो की बढी हुई माँग को पूरा करने मे सफलता मिली। यहाँ यह बात ध्यान देने योग्य है कि चावल आदि फसलो के उत्पादन मे हुई इन वृद्धियो मे कृषि-क्षेत्र मे होने वाली बढोतरी की भूमिका सीमित रही। मेजी युग मे कृषि उत्पादन मे हुई वृद्धि का प्रमुख स्रोत कृषि पद्धतियो मे सुधार तथा अधिकाधिक गहन

खेती ही थे। मुख्य खाद्य फसलों के उत्पादन मे हुई वृद्धियो को नीचे तालिका मे दिखाया गया है :

अनाजों का वार्षिक औसत उत्पादन

('000 कोकु मे)

	चावल	जौ	गेहूँ
1879–1883	30,874	5,516	2,219
1889–1893	35,549	6,945	3,102
1899–1903	42,268	8,330	3,700
1909–1913	50,242	9,677	4,901

मेजी सरकार ने किसानो को सामन्ती प्रतिबन्धो के शिकजे से मुक्त करने के बाद पहले दो दशको मे अपना ध्यान नई फसलो का उत्पादन शुरू करवाने तथा कृषि की सुधरी हुई पद्धतियो को प्रोत्साहित करने की ओर केन्द्रित किया। कृषि स्कूल व कॉलिज खोले गये। सरकार ने विस्तार-सेवको की नियुक्ति की जिन्होने गाँव-गाँव घूमकर किसानो को सलाह व जानकारी दी। इनमें कुछ योजनाएँ, जैसे 1870 की भेड-पालन परियोजना, असफल भी रहीं किन्तु यह भी खेल का एक भाग था। सिचाई व खाद देने के कुछ नये तरीको को सफलता मिली। कृषि के लिए साख की व्यवस्था मे कई सुधार किये गये।

इन परिवर्तनो के बावजूद जोत का आकार अपरिवर्तित ही रहा। वह लगभग आधे चो (1 2 एकड) के बराबर था। खेतो का यह छोटा आकार आंशिक रूप से तो इसलिए भी था कि चावल की खेती के लिए छोटे खेत ही अधिक उपयुक्त रहते थे जिनकी सिंचाई आसानी से की जा सकती थी। आंशिक रूप से ऐसा इसलिए था कि जापान एक पहाडी देश है और वहाँ चावल की खेती छोटे सीढ़ियोनुमा खेतो पर ही सम्भव थी। ये दोनो ही दशाएँ मेजी काल मे अपरिवर्तित ही रहीं। यहाँ तक कि 1910 मे भी जापान के एक-तिहाई से अधिक खेतो का क्षेत्रफल आधे चो से भी कम था तथा शेष दो-तिहाई खेत भी एक चो या उससे कम क्षेत्र के थे।

भू-धारण प्रणाली (Land tenure system) मे मेजी काल मे काफी क्रान्तिकारी परिवर्तन किये गये। कृषक स्वामियो का प्रतिशत वर्षों के साथ बढता गया। 1910 मे एक-तिहाई से अधिक किसान आसामी थे, 2/5 कृषक-स्वामी (Peasant Proprietors) थे तथा शेष के पास भी थोडी बहुत जमीनें थी। लगानो का भुगतान चावल के रूप मे किया जाता रहा तथा वे फसल का 25% से लेकर 80% तक रहे। किसान लोग अब केवल खाद्य फसलो का उत्पादन करने तक ही सीमित नही रहे, उन्होने कृषि के साथ मछली पकडने का काम भी शुरू किया। उन्होने व्यापारिक फसलें भी उगानी शुरू कर दी। इस क्षेत्र मे कई महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए। कपास पर लगे शुल्क को हटा लिये जाने के बाद उसका घरेलू उत्पादन एकदम बन्द हो गया।

सबसे महान् परिवर्तन कच्ची रेशम के उत्पादन मे हुआ। मूल रूप से कच्चे रेशम का उत्पादन कृषक परिवारो मे किया जाता था। देश के बाहरी दुनिया के साथ सम्पर्क स्थापित हो जाने से रेशम के लिए भारी विदेशी माँग पैदा हो गई। सरकार ने पश्चिमी मशीनो से युक्त शक्ति-चालित रेशम करघे लगाये। कच्ची रेशम का उत्पादन 1868 के 2 78 लाख क्वान से बढकर 1883 मे 4 57 लाख क्वान हो गया।

रेशम का उत्पादन व निर्यात

('000 क्वान मे)

वर्ष	उत्पादन	निर्यात
1883	457	365
1889–1893 (वार्षिक औसत)	1,110	662
1899–1903 „	1,924	1,110
1909–1913 „	3,375	2,563

कच्चा रेशम कृषको की खेती की ही एक उपशाखा थी। 1914 मे न केवल रेशम का उत्पादन बल्कि रेशम लपटने के उद्योग का भी एक महत्त्वपूर्ण भाग किसानो या लघु उत्पादको द्वारा चलाया जाता था। किन्तु इस काल मे रेशम का अधिकाश निर्यात व्यापार विदेशी व्यापारियो द्वारा सचालित होता था।

इस बारे मे एक महत्त्वपूर्ण तथ्य याद रखा जाना चाहिए कि मेजी युग की कृषि ने जापान के आधुनिक विनिर्माण उद्योगो के विकास मे भारी योगदान दिया था। विनिर्माण उद्योग मे हुई प्रगति एक बडे अश तक कृषि के विकास पर आश्रित रही। ऐसी स्थिति मेजी काल के चतुर्थ दशक तक रही। उसके बाद विनिर्माण (Manufacturing) उद्योग अपना विकास स्वय करने की स्थिति मे पहुँच गया। मेजी काल की कृषि ने विनिर्माण उद्योग के विकास मे निम्न प्रकार से सहायता की थी—

(1) जापान को औद्योगिक राष्ट्र बनाने के लिए जिस भारी विनियोग की आवश्यकता थी उसे प्राप्त करने के लिए मेजी सरकार को प्रमुख रूप मे कृषि-क्षेत्र द्वारा प्रदान किये जाने वाले प्रत्यक्ष भूमि करो से प्राप्त आय पर निर्भर रहना पडा। कुल कर-आय मे भूमि-कर का अनुपात 1876 मे 80% से अधिक, 1887 मे लगभग 64% और 1892 मे 57% रहा तथा वह 1910 मे घटकर 20% के स्तर तक पहुँच गया।

(2) अर्थव्यवस्था का आधुनिकीकरण करने के लिए भारी मात्रा मे वस्तुओ के आयात की आवश्यकता थी। इन आयातो के लिए भुगतान कृषि पदार्थों के निर्यात से होने वाली आय मे ही किया जाता रहा। जापानी निर्यातो मे कृषि पदार्थों का भाग 1868–77 मे 80% से अधिक, 1883–87 मे 68% तथा 1888–92 के बीच 60% रहा। जापान द्वारा अपनी अर्थव्यवस्था को आधुनिक बनाने पर सीमा

निर्यात किये जा रहे इन कृषि पदार्थों ने ही लगाई।

(3) मेजी काल के तीसरे दशक के बाद तक भी कृषि जापान के पूंजी-निर्माण का प्रमुख स्रोत बनी रही।

(4) 1897 तक जापानी विनिर्मित वस्तुओं के सबसे बड़े खरीदार किसान लोग ही थे। आरम्भ में ये किसान लोग केवल उपभोक्ता सामान ही खरीदते थे किन्तु बाद में रासायनिक खाद, उपकरण आदि जैसी उत्पादक वस्तुएँ भी इनके द्वारा भारी मात्रा में खरीदी जाने लगी।

(5) आधुनिक अर्थव्यवस्था का निर्माण करने के लिए आवश्यक श्रम-शक्ति भी कृषि-प्रधान गाँवों द्वारा ही प्रदान की गई।

उपर्युक्त विवेचन यही तथ्य उद्घाटित करता है कि जापान की आधुनिक अर्थव्यवस्था के निर्माण में वहाँ की कृषि का विकास कितनी आधारभूत महत्त्व की शर्त थी। 1887 तक जापान की कृषि का विकास मुख्य रूप से कृषि कार्यों के अन्तर्गत आने वाले क्षेत्र में वृद्धि, सामन्ती प्रतिबन्धों के समाप्त घोषित कर दिये जाने, पृथक्तावादी नीति का परित्याग कर दिये जाने तथा देश के सभी भागों में नयी कृषि तकनीक का प्रचार-प्रसार हो जाने से हुआ।

मेजी काल के तीसरे दशक के बाद जापानी कृषि क्षेत्र में आधुनिक उत्पादकता की असाधारण वृद्धि दिखाई देने लगी।

बड़े-बड़े खेतों पर बड़े पैमाने की पाश्चात्य कृषि जापान के छोटे-छोटे और गीले चावल के खेतों के लिए उपयुक्त नहीं थी। किन्तु पश्चिमी कृषि तकनीक के आत्मसात्करण (assimilation) द्वारा बीजों व पौधों की किस्म में सुधार की दिशा में शुरुआत की गई। भूमि के स्वभाव व उचित उर्वरण (fertilisation) सम्बन्धी अध्ययन भी किये गये।

एक 'तान' (Tan)* भूमि पर चावल व गेहूँ का उत्पादन

(इकाई कोकु=4 96 बुशल)

वर्ष	चावल	गेहूँ
1879	1 18	0 57
1884	1 23	0 68
1889	1 42	0 73
1894	1 42	0 81
1899	1 48	0 89
1904	1 53	0 74
1909	1 71	0 99
1917	1 80	1 06
1919	1 86	1 13

* 1 Tan=0 992 Hectares

Source T Kamekichi, *Changes in Agricultural Village Economy in Meiji and Taisho Eras*, 147–48

इस तरह कृत्रिम खादो के उपयोग से कृषि उत्पादकता में असाधारण रूप से वृद्धि हुई। जब देश मे तीसरे मेजी दशक तक रेल-मार्गों के निर्माण का कार्य काफी अशो तक पूरा हो गया तो उससे कृषि उत्पादकता में और भी अधिक प्रगति हुई। जापानी कृषि को देश के विश्व के लिए खोल दिये जाने से भी अप्रत्यक्ष लाभ मिला। कम उत्पादकता वाली फसलें जैसे कपास, नील, गन्ना इत्यादि, जो जापान की भूमि के लिए उपयुक्त नही थी, अपने आप बाहर निकल गई क्योकि उनका सस्ती दरो पर आयात किया जा सकता थी। उनके स्थान पर रेशम के कीडो, चावल, फलो आदि का उत्पादन किया जाने लगा जिनकी कि जापान मे उत्पादकता काफी ऊँची थी।

कृषि उत्पादन की मात्रा (1874–76 मूल्य)

(इकाई 1 मिलियन येन)

वर्ष	चावल	गेहूँ	रेशम के कीडो की खेती	कुल (अन्य शामिल करते हुए)
1874	408	72	32	679
1879	455	71	43	773
1884	423	94	50	792
1889	429	94	51	839
1894	541	122	77	1,025
1899	413	119	106	1,044
1904	664	121	121	1,250
1909	677	135	152	1,337
1914	737	134	183	1,513

Source T Kamekichi, *op cit*, 1969, 293

मेजी काल की कृषि नीति का मूल्यांकन

सम्पूर्ण मेजी काल मे औद्योगीकरण का विकास कृषि के विकास के साथ अविच्छिन्न रूप से जुड़ा रहा। यह स्वाभाविक ही था क्योकि किसी भी देश ने कृषि मे तीव्र विकास किये बिना औद्योगिक विकास कर सकने मे सफलता नही प्राप्त की थी। यदि किसी देश के उद्योगो को कच्चा माल प्राप्त करने मे शुरू से ही विदेशो की ओर देखने के लिए बाध्य होना पड़े तथा उसके किसान उसके शहरो को खाद्य पदार्थ उपलब्ध करा पाने मे समर्थ न हो तो वहाँ औद्योगिक प्रगति की गति धीमी ही रहती है।

इस दृष्टि से तो अपनी सीमित भूमि तथा घटिया मिट्टी के साथ जापान भी एक अपवाद ही रहना चाहिए था। किन्तु वह दो रूपो मे भाग्यशाली था: पहला, वह एक द्वीपीय राष्ट्र था जिसकी जनसख्या छोटी थी, और दूसरा, उसका औद्योगीकरण ऐसे युग मे हुआ जब कच्चा माल आसान शर्तों पर उपलब्ध हो जाता था। इसके अतिरिक्त जापान ने अपने आयातो की लागत सस्ते जल-यातायात, खाद्य पदार्थों के उपनिवेशो से सस्ती दरो पर आयात करके तथा कई घटिया किस्म के कच्चे मालों (second grade raw materials) का उपयोग करने की विधि खोज कर

घटा ली। इसका यह अर्थ नही है कि इन आयातो का कोई वित्तीय भार नही पडता था। यदि मेजी काल के लगभग 5 दशको मे जापान का खाद्य वस्तुओ व कच्चे मालो का उत्पादन लगभग 200% से नही बढता तो जापान उतना महान् विनिर्माण राष्ट्र नही बन पाता जितना कि वह बाद के वर्षों मे बना।

मेजी कृषि का चित्र अधिक गुलाबी (Rosy) भी नही था। कृषि उत्पादकता मे वृद्धि से कृषि वर्गों को लाभ मिला था किन्तु अनेक छोटे किसान, जो कि कम सफल रहे, मेजी पुनर्सस्थापना के पहले दो दशको मे ऋण-भार से ही मालिको से आसामी बन गये। कई किसान वापस अपनी जमीन कभी प्राप्त नहीं कर पाये क्योकि आने वाले वर्षो मे जमीन की कीमत, लगान व रकम पर ब्याज बहुत चढ चुके थे। कृषि जनसख्या मे बढता जा रहा अतिरेक भी कृषि-क्षेत्र के बाहर रोजगार ढूँढने के लिए बाध्य हो गया। ऊँचे लगानो, कृषि ऋणो पर ऊँची ब्याज दरो तथा सरकारी करो के कारण कृषि आय का अधिकाश भाग वित्तीय सस्थाओ, भू-स्वामियो तथा सरकार के पास जाता रहा। शायद जापान की राष्ट्रीय आय में अधिक तेजी से वृद्धि होती यदि मेजी सरकार ने कृषको की दशा तेजी से सुधारने मे कुछ अधिक रुचि ली होती। गरीबी तथा असुरक्षा के कारण ये किसान अपनी उत्पादकता को अधिक नही बढा पाये। जैसा कि डब्लू० डब्लू० लॉकवुड ने लिखा है, 'मेजी नीतियो को इस प्रकार बनाया हुआ माना जा सकता है कि जिनसे राज्य का खर्च चलाने तथा शासक वर्ग की सैनिक व औद्योगिक महत्त्वाकाक्षाओ की पूर्ति करने के लिए कृषि क्षेत्र से अधिकाधिक रकम ऐंठी जा सके।'

कुछ लोगो का मत है कि कम से कम जापानी नेतृत्व ने कृषि मे सुधार करने के नाम पर उतनी पीडादायक विधियाँ तो नही अपनायी जितनी कि बाद मे रूस मे लेनिन व स्टालिन ने अपनायी थी। जो भी हो, इतना अवश्य कहा जा सकता है कि मेजी नीति का उद्देश्य कृषको को औद्योगिक हितो के लिए कार्य करने हेतु बाध्य करता अवश्य रहा। इसके अतिरिक्त मेजी शासन को जापानी कृषि मे एक सर्वांगीण पश्चिमी देशो जैसी कृषि क्रान्ति करने मे भी सफलता नही मिली। ऐसा लगता है कि जापानी कृषि पर प्रकृति द्वारा लगाई गई सीमाओ तथा वहाँ के किसानो द्वारा कृषि से बहुत भारी लाभ अर्जित करने की असफलता ने ही दीर्घकाल मे विनिर्माण के क्षेत्र मे नये अवसरो को खोजने की गति को तीव्र बनाया।

1914 से 1938 के बीच कृषि विकास

1914 से 1930 के बीच जापान की जनसख्या 51 मिलियन से बढकर 64 मिलियन हो चुकी थी। वास्तविक राष्ट्रीय आय लगभग दुगुनी हो गयी। औद्योगिक श्रमिको की वास्तविक मजदूरी मे 60% की वृद्धि हुई। किसानो की वास्तविक आय मे भी वृद्धि हुई किन्तु वे कुछ कम बढी। कच्चे मालो का उत्पादन कोई 46% बढा। 1914 से 1930 के बीच हुई यह वृद्धि मुख्य रूप से मत्स्य-पालन, रेशम के कीडो के उत्पादन तथा कृषिगत कच्चे मालो मे हुई। खाद्यान्नो के उत्पादन मे यह वृद्धि अपेक्षाकृत कम रही। कृषि परिवारो की सख्या 5 5 मिलियन

के स्तर पर ही स्थिर रही। उनकी जोतो का आकार व वितरण भी नही बदला। भू-धारण प्रणाली मे भी परिवर्तन नही आया हालाकि आसामियो की सख्या मे कुछ कमी हुई तथा ऐसे लोगो की सख्या बढी जो अपनी भूमि का थोडा-सा भाग अपने पास रखकर शेष लगान पर उठा देते थे। आधे से भी अधिक कृषित क्षेत्र पर बोई जाने के साथ चावल की फसल सबसे प्रमुख रही। इसके बाद गेहूँ व जौ प्रमुख फसलें थी। इस बीच जो मुख्य तकनीकी परिवर्तन आया वह जापानी कृषि मे कृत्रिम उर्वरको का बढता हुआ प्रयोग था। कृषि पद्धतियो मे कुछ अन्य सुधार भी हुए।

किसानो मे भी प्रथम विश्व युद्ध के दौरान कुछ समृद्धि आयी किन्तु उस तेजी के समाप्त होते ही चावल का मूल्य प्रति कोकु (Koku) जनवरी 1920 के 55 येन के स्तर से घटकर मार्च 1921 मे 25 येन पर आ गया। चावल को समर्थन मूल्य प्रदान करने की दृष्टि से चावल अधिनियम लाया गया। इसके बाद कई वर्षों तक फसलें खराब होने से कृषि मूल्य 1927 मे पुन बढ गये। किन्तु 1930 मे भरपूर फसल हुई। अगस्त 1930 से दिसम्बर 1930 के चार ही महीनो मे चावल के मूल्य 31 येन प्रति कोकु से घटकर 18 येन प्रति कोकु पर आ गये। जापानी किसानो के लिए यह बडा आघात था विशेष रूप से तब जबकि महान् मदी उनकी आय के अन्य स्रोत, कच्ची रेशम, को भी नष्ट करने वाली थी।

जापान के दूसरे सबसे महत्वपूर्ण कृषि उत्पाद कच्चे रेशम के उत्पादन मे 1914 से 1929 के बीच तीन गुना वृद्धि हुई। 1929 तक लगभग 40% कृषक परिवार रेशम के उत्पादन मे लगे थे। रेशम उद्योग के विकास मे होने वाली कोई भी गडबडी उन लोगो पर बहुत बुरा प्रभाव डाल सकती थी। युद्ध के दौरान तो कच्चे रेशम के मूल्य काफी चढ गये थे। फिर इसके मूल्य 1920 मे गिरे किन्तु 1923 तक उनमे काफी सुधार आ गया। तभी अमरीका मे जापानी रेशम का बाजार ढह गया तथा अक्तूबर 1930 तक उसकी कीमत आधी रह गयी। किसानो की नकद आय एकदम कम हो गई। यह ऐसे समय हुआ जब चावल की कीमतें भी गिर चुकी थी। लोगो ने और विशेषकर किसानो ने इस कुप्रबन्ध के लिए सरकार को दोषी ठहराया।

खाद्य-उत्पादन के क्षेत्र मे मछली पकडने वाले उद्योग की अच्छी प्रगति हुई। इसका उत्पादन निर्देशाक 1914 मे 43 की तुलना मे 1929 मे बढकर 127 तक पहुँच गया। मछली पकडने के क्षेत्र मे कुछ तकनीकी सुधार भी हुए जिनके कारण लागत मे कमी आयी।

किन्तु कुल मिलाकर 1929 की मदी ने जापानी कृषि पर गहरा प्रहार किया। उसके रेशम के निर्यात बहुत घट गये तथा उनका मूल्य भी बहुत कम मिला। 1932 मे सरकार ने दो नये विधेयक पारित किये जिन्हे 'विशेष ऋण व क्षतिपूर्ति कानून' तथा 'अचल सम्पत्ति और रहन ऋण व क्षतिपूर्ति कानून' के नाम से जाना गया। इन कानूनो ने केन्द्रीय सहकारी बैंको को तथा बधक बैंको को किसानो को अग्रिम प्रदान करने की अनुमति दे दी। हानि होने की स्थिति मे सरकार ने जिम्मेदारी ली। किन्तु इन उपायो से किसान लोग सन्तुष्ट नही

हुए जो कोरिया व फारमोसा जैसे उपनिवेशो से किये जा रहे आयातों पर प्रतिबन्ध लगाने की माँग को लेकर प्रदर्शन कर रहे थे ताकि वे 'राष्ट्र के मेरुदण्ड के रूप मे, उसकी सैनिक शक्ति के स्रोत के रूप मे तथा विदेशी प्रभावो के विरुद्ध परम्परागत मूल्यो के रक्षक के रूप मे जीवित रह सके।'

चावल उत्पादन, 1915–1937

(वार्षिक औसतें)

समय	उत्पादन (मिलियन कोकु)	उत्पत्ति, प्रति चो (कोकु)
1915–19	57	18 5
1920–24	56	18 6
1925–29	59	18 7
1930–34	62	19 0
1935–37	64	19 5

द्वितीय महायुद्ध मे जापानी कृषि (1939–1945)

इसे भाग्य की विडम्बना ही कहा जाना चाहिए कि जापान के उन किसानो को महान् मदी का शिकार होना पडा जिन्होने पहले औद्योगीकरण के उद्देश्य को पूरा करने के लिए अपनी ओर से भरपूर योगदान दिया था। प्रथम महायुद्ध मे जापानी कृषि के साथ जो हुआ उसके ठीक विपरीत द्वितीय महायुद्ध मे जापानी कृषि को भारी नुकसान उठाना पडा। अधिकाश कृषि जनशक्ति को सेना मे भर्ती कर लिया गया। कृषि भूमि का सैनिक कार्यों के लिए उपयोग किया गया तथा द्वितीय महायुद्ध के दौरान किसानो को रासायनिक उर्वरक नही के बराबर या बहुत अल्प-मात्रा मे उपलब्ध कराये गये। खेतो पर श्रमिको की कमी को मशीनो के उपयोग द्वारा भी पूरा कर पाना सम्भव नही था क्योकि इस्पात का सैनिक कार्यों के लिए उपयोग होने के कारण खेती के पूरे औजार तक भी नही मिल पा रहे थे।

कृषि उत्पादन मे 1942 के बाद गिरावट शुरू हो गयी। 1935 को आधार वर्ष मानने पर 1942 मे कृषि उत्पादन 78% था जबकि 1937 मे वह 111 था। युद्ध के वर्षों मे कृषि के अन्तर्गत कुल क्षेत्रफल मे भी 3 प्रतिशत की कमी आयी। 1945 मे जब मित्र-राष्ट्रो के हाथो जापान की घोर पराजय के बाद उसकी सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था ही ध्वस्त हो गई तो कृषि उत्पादन निर्देशाक भी घटकर 60 से नीचे जा पहुँचा।

अमरीकी अधिकार के काल मे कृषि (1945–1952)

अमरीकी सेना द्वारा जापान पर अधिकार के काल मे (American occupation) वहाँ की कृषि मे कई दूरगामी प्रभाव वाले महान् सुधार किये गये। भूमि सुधारो पर विशेष बल दिया गया। मित्र-राष्ट्रो की सेनाओ के सर्वोच्च कमाडर जनरल मेक आर्थर ने दिसम्बर 1945 मे एक निर्देश जारी किया जिसमे कहा गया

कि 'जापान की शाही सरकार को यह निर्देश दिया जाता है कि वह देखे कि जो लोग जापान की भूमि को जोतते है उन्हे अपनी मेहनत का फल पाने मे अधिक बराबरी के अवसर मिलें।'

अमरीकी अधिकार के दौरान शुरू किये गये भूमि सुधारो का उद्देश्य जापान के वास्तविक किसानो को उनके अनुपस्थित भू-स्वामियो के नियन्त्रण से मुक्त करना था। इस उद्देश्य को प्राप्त करने की दृष्टि से जापानी 'डायट' (ससद) ने 1945 मे एक कृषि सुधार कानून पारित किया जिसमे सरकार को यह अधिकार दिया गया कि वह अनुपस्थित भूस्वामियो से न्यूनतम वैधानिक मूल्यो पर सारी अतिरिक्त भूमि खरीद ले। एक अन्य अधिनियम 'द ओनर-फार्मर एस्टेब्लिशमेंट लॉ, 1946' के द्वारा भू-स्वामियो को एक छोटे से भू-भाग के अतिरिक्त सारी भूमि से बेदखल कर दिया। इन भू स्वामियो को मुआवजे के रूप मे 24-वर्षीय बॉण्ड दिये गये जिन पर 3 66% का ब्याज दिया जाना था। पत्र-मुद्रा के रूप में कुछ नकद मुआवजा भी दिया गया किन्तु पत्र-मुद्रा नोटो की क्रय-शक्ति घट जाने के कारण उन्हें उसका कोई विशेष लाभ नही मिल पाया। इस तरह सरकार ने जो भूमि अधिग्रहित की उसे उन लोगो को बेचा गया जो उसे जोतने के इच्छुक थे। इस भूमि के खरीदारो को इसका मूल्य 30 वर्ष तक किस्तो मे चुकाना था।

इन भूमि सुधार के उपायो के परिणाम आश्चर्यजनक रहे। जब 1949 मे कार्य पूरा हुआ तो 92% किसान अपनी भूमि के मालिक बन चुके थे जबकि 1941 मे ऐसे लोगो का प्रतिशत मात्र 54 था। इस प्रकार के भूमि सुधारो का किसानो पर बड़ा अनुकरणीय प्रभाव पड़ा जिन्होने कि अपने आपको भू-स्वामियो के प्रति दायित्वो से पूरी तरह मुक्त कर लिया। इन किसानो के साथ मेजी युग मे भी न्याय नही हुआ था तथा उल्टे उस युग मे भी उन्हे करो की अधिकाश मार सहनी पडी थी। जापान पर अमरीकी सेना का आधिपत्य कम से कम इन लाखो किसानो के लिए तो वरदान ही सिद्ध हुआ।

इन पेचीदा भूमि-सुधारो को क्रियान्वित करने का काम स्थानीय भूमि आयोगो द्वारा किया गया जो देश के सभी 11,000 गाँवो मे नियुक्त किये गये थे। उनके सामने 40 मिलियन भूमि के टुकड़ो को विभिन्न लोगो मे बाँटने का काम था। 5 आसामियाँ, तीन भू-स्वामियो तथा दो मालिक-कृषको को सदस्य बनाकर गठित किये गये ये आयोग अपने काम को पूरा करने के लिए काफी उपयुक्त थे। स्थानीय लोगो से सुपरिचित होने के कारण ये आयोग दोनों ही पक्षो के लाभ मे मामले को निपटा सकते थे। ये आयोग स्थानीय नेतृत्व को आगे लाने के लिए भी उत्तरदायी थे जो द्वितीय महायुद्ध के बाद जापान के लोकतात्रिक शासन का आधार बन गया। भूमि-सुधार के उपायो को लागू करने के लिए नियुक्त किये गये इन आयोगो की सबसे असाधारण बात यह थी कि उन्होंने वर्ग सघर्ष को जन्म नही लेने दिया। इन स्थानीय भूमि आयोगो के बारे मे यह कहा गया कि 'उन्होंने एक वर्ग को विस्थापित कर उसका स्थान दूसरे वर्ग को नही दे दिया। किन्तु भूमि के स्वामित्व वाले किसानो की सख्या मे वृद्धि हो जाने से जापान में ग्रामीण समाज मे अधिक स्थायित्व आया

तथा प्रतिष्ठा, अधिकार व विशेषाधिकारो को अधिक सामान्य रूप से विभक्त किया जा सका।'

एक ऐसे युग मे जब विश्व के अधिकाश विकासोन्मुख राष्ट्र अपने यहाँ कृषि उत्पादन मे वृद्धि करने के उद्देश्य से इन भूमि सुधारो को लागू करने के लिए तरह-तरह की चेष्टाएँ कर रहे हैं, उनके लिए जापान के भूमि-सुधार अनुकरणीय है। जैसा कि भूमि-सुधारो पर एक विशेषज्ञ डब्लू० आई० लादेजेस्की ने लिखा है, ' जब कभी भूमि-सुधारो के बारे मे कोरी बातचीत की अवस्था का स्थान कुछ ठोस कार्य करने की इच्छा ले लेगी तब जापान के भूमि सुधारो का अनुभव ध्यानपूर्वक देखने योग्य होगा, विशेषकर उन देशो के लिए जहाँ भूमि पर जनसख्या का दबाव भारी है तथा व्यवसाय के वैकल्पिक स्रोत भी उपलब्ध नही हैं।'

द्वितीय महायुद्ध के बाद जापानी कृषि का पुनरुद्धार अधिक तेजी से होने के दो प्रमुख कारण रहे प्रथम, उसका विनाश उतना नही हुआ था जितना कि उद्योगो का हुआ था, और द्वितीय, अमरीकी सैनिक सत्ता ने देश को अकाल के खतरे से बचाने के लिए कृषि विकास के बारे मे सहानुभूतिपूर्ण रुख अपनाया। इस दृष्टि से भूमि-सुधार के उपाय सबसे शक्तिशाली अभिप्रेरक (incentive) सिद्ध हुए। 1955 मे कृषि उत्पादन निर्देशाक, 1935 को आधार-वर्ष मानते हुए, 130 तक पहुँच गये। अमरीकी अधिकार की इस अवधि मे कृषि जनसख्या भी 14 मिलियन से बढकर 17 मिलियन हो गई क्योकि युद्ध-क्षेत्रो से लौटकर आये लोग भी खेती के कार्यों मे लग गये।

आधुनिक वर्षो मे जापानी कृषि

अमरीकी आधिपत्य के काल मे किये गये व्यापक कृषि-सुधारो (1945–52) ने जापानी कृषको को स्थायी समृद्धि प्रदान की। सहायक रोजगारो से भी कृषको की आय मे वृद्धि हुई। 1950 मे राष्ट्रीय आय में कृषि का भाग बढकर 40% तक पहुँच गया। किन्तु 1950 के बाद उद्योगो के शानदार विकास ने पुन एक बार कृषि के राष्ट्रीय आय मे प्रतिशत भाग को 1955 मे युद्ध-पूर्व के स्तर तक घटा दिया। अमरीकी आधिपत्य के बाद जापानी कृषि को आधुनिक बनाने की दृष्टि से किये गये सुधारो का निचोड इस प्रकार है—

(i) **कृषि का यन्त्रीकरण**—अमरीकी आधिपत्य मे न केवल भूमि-सुधारो का कार्य पूरा हुआ बल्कि उस अवधि मे खेतो पर मशीनो का उपयोग भी लोकप्रिय बन गया। यन्त्रीकरण ने कृषि उत्पादकता को बढा दिया तथा किसानो की आर्थिक दशा मे भी काफी सुधार किया।

(ii) **कृषि जनसख्या मे कमी**—औद्योगिक व विनिर्माण क्षेत्र मे अधिक लाभकारी अवसर उपलब्ध होने के साथ ही कृषि मे कार्यरत लोगो की सख्या घटने लगी। 1964 मे कृषि में लगे लोगो का प्रतिशत घटकर 27 पर पहुँच गया जबकि 1955 मे वह 39 था। 1979 मे वह 10 प्रतिशत से भी नीचे आ चुका है। अत्यधिक गहन यन्त्रीकरण हो चुकने के उपरान्त पिछले कुछ वर्षो से जापानी कृषि को श्रम की

कमी का सामना करना पड़ रहा है।

(iii) गहन खेती—कृषि-योग्य भूमि की कमी ने जापानी कृषकों को कृषि की गहन पद्धतियाँ अपनाने के लिए बाध्य कर दिया। अब वे विश्व में सर्वाधिक रासायनिक खाद का उपयोग कर रहे हैं। रासायनिक खाद का वहाँ का प्रति एकड़ उपभोग भारत की तुलना में 25 से 30 गुना अधिक है।

(iv) राष्ट्रीय आय में घटता हुआ प्रतिशत भाग—हालांकि निरपेक्ष रूप में जापान का कृषि उत्पादन निरन्तर बढ़ रहा है किन्तु कुल राष्ट्रीय उत्पाद (G N P) में उसका प्रतिशत भाग अवनति पर है। राष्ट्रीय उत्पाद में कृषि का प्रतिशत भाग 17 8 से घटकर 1964 में 8 9 पर आ गया था। 1979 में यह 5–6% के बीच में है।

(v) जीवन स्तर में सुधार—किसानों के जीवन-स्तर में काफी सुधार हुआ है। हर गाँव में बिजली पहुँच चुकी है तथा 95% से अधिक लोग लिख-पढ़ सकते हैं। अधिकाश लोग टेलीविजन तथा अन्य विद्युत्-चालित आधुनिकतम उपकरणों का प्रयोग करते है।

(vi) कृषि का व्यवसायोन्मुख होना—कृषि का बाजार अतिरेक बराबर बढ़ता जा रहा है। 1952 के 62% से बढ़कर यह बाजार अतिरेक 1979 तक 75% के लगभग पहुँच चुका है।

(vii) सहकारी खेती—कृषि सहकारी साख समितियाँ बनायी गयी हैं। 1964 में 4,900 से अधिक सहकारी कृषि उपक्रम कार्यरत थे।

किन्तु जापान की कृषि आज भी सभी समस्याओं से मुक्त नहीं है जैसी कि कोई कल्पना कर सकता है। किसानों को ऋण उपलब्ध कराने के लिए कोषों का अभाव एक ऐसी ही समस्या है। जो निष्कर्ष प्रो० जी० सी० एलन ने 1950 में निकाला था वह आज भी सही है 'यदि कृषि क्रान्ति को सफलतापूर्वक पूरा करना है तो सरकार को किसी न किसी रूप में बाध्य होकर उसके लिए अधिक ऊँचे अनुपात में वांछित कोषों की व्यवस्था करनी होगी।'

कृषि की भूमिका पर लिखे गये इस अध्याय को समाप्त करने से पहले जापानी कृषि की प्रशंसा में यह बात कहनी पड़ेगी कि उसने पिछले 110 वर्षों में जापानी अर्थव्यवस्था के सर्वांगीण विकास में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण एवं उपयोगी भूमिका निभाई है। उसने बढ़ती हुई जनसंख्या को पर्याप्त खाद्यान्न उपलब्ध कराने में सहायता की है, पश्चिमी देशों से मशीनरी व तकनीक का आयात करने के लिए पर्याप्त विदेशी मुद्रा अर्जित की है, उद्योग का विकास करने के लिए पर्याप्त घरेलू पूंजी जुटाई है तथा एक श्रम भण्डार (Labour pool) के रूप में कार्य किया है जिसमें से उद्योगों ने अपनी आवश्यकतानुसार श्रमिक समय समय पर प्राप्त किये हैं। जापानी कृषि ने अपने देश के उद्योग व विनिर्माण के विकास के लिए जितने त्याग किये हैं उनकी गणना करना भी कठिन है।

छठा अध्याय

उद्योगों का विकास

(GROWTH OF INDUSTRIES)

मेजी पुनर्संस्थापना के बाद के पिछले 110 वर्षों मे जापानी उद्योगो के विकास ने ससार को आश्चर्य-चकित कर दिया है। किन्तु जापान मे हुए इस औद्योगिक विकास मे रहस्य जैसी या पौराणिक चमत्कार जैसी कोई बात नही है। यह एक बिलकुल अलग बात है कि एक एशियाई देश होते हुए भी जापान ने पश्चिमी देशो के साथ होड की है। ऐसा करके जापान ने उन लोगो को एक हल्का सा धक्का भी पहुँचाया है जो यह सोचते रहे है कि पश्चिमी तौर-तरीके अप्रतिम (inimitable) हैं।

बडे पैमाने के उपक्रमो के गठन की आवश्यकता जापान मे मेजी पुनर्संस्थापना के पहले ही दशक मे अनुभव कर ली गयी थी। इसी उद्देश्य को ध्यान मे रखते हुए उन वर्षों मे पूँजी-निर्माण पर सबसे अधिक बल दिया गया था। ऐसा इसलिए किया गया क्योकि जापानी अर्थव्यवस्था के आधुनिकीकरण को सच्ची गति प्रदान करने की यही सबसे आधारभूत शर्त थी। मेजी काल के आरम्भिक वर्षों मे एक प्रमुख प्रश्न यही था कि किस प्रकार ऐसे नये विशाल पैमाने के प्रतिष्ठान गठित किये जाएँ तथा यह सब कम से कम समय मे किस तरह हो ? सारी प्रक्रिया एक विशाल स्तर पर पूँजी-निर्माण से शुरू हुई जो क्रातिकारी तरीके से किया गया। चार सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण तत्त्व, जिन्होने विशाल मात्रा मे पूँजी की खोज को प्रेरित किया, इस प्रकार थे .

(1) विदेशी व्यापार के विकास के कारण जापान को शेष विश्व के लिए खोल दिये जाने से अनेक आवश्यकताएँ उत्पन्न हुई। तोकुगावा काल मे कम पूँजी वाले जापानी व्यापारियों को विदेशी व्यापारियो के साथ लेन-देन करने मे बडी हानि उठानी पडती थी। ये विदेशी व्यापारी जापानियो से उनकी वस्तुएँ सस्ते मूल्यो पर खरीदते तथा उनकी अपनी वस्तुएँ उन्हे महँगे मूल्यो पर बेचते। इसीलिए मेजी सरकार ने अपने आरम्भिक वर्षों मे अर्द्ध-सरकारी व्यावसायिक एव विदेशी विनिमय कम्पनियाँ गठित की। सीधे निर्यात व आयात के लिए भारी मात्रा मे पूँजी की आवश्यकता थी। वास्तव मे वे ही कम्पनियाँ लाभदायक रह सकती थी जो विदेशी व्यापार के क्षेत्र मे कार्य के लिए भारी मात्रा मे पूँजी जुटा सकती थी।

(2) आधुनिक यातायात व सचार के साधनो की स्थापना करने के लिए भी भारी मात्रा में पूँजी की आवश्यकता थी। विकास की गति पश्चिमी आधुनिक सुविधाओ जैसे वाष्प-चालित जहाज, रेल-मार्ग, बिजली व तार सेवाएँ आदि की

स्थापना पर ही निर्भर करती थी। इन सभी के लिए विशाल पूँजी सचय की जरूरत थी। सरकारी विनियोग का उपयोग किया गया किन्तु चूँकि वह अकुशल व अपर्याप्त था इसलिए इन क्षेत्रो मे निजी उद्यमियो को प्रवेश के लिए आमत्रित किया गया।

(3) एक अन्य तत्व, जिसने विशाल पूंजी विनियोगो को आवश्यक बनाया, खनिज उपक्रमो मे बडी मात्रा मे राशि लगाने की आवश्यकता रहा। तोकुगावा काल मे खानो की गतिविधियाँ पुरातन-पथी दशाओ मे सचालित हो रही थी। पश्चिम की बड़े पैमाने की उत्खनन तकनीकों से ही खनिज उपक्रमो को लाभदायक बनाया जा सकता था। किन्तु इसके लिए भी बडी मात्रा मे पूंजी की आवश्यकता थी।

(4) अन्त मे, पूंजी-प्रधान तकनीको पर आधारित भारी विनिर्माण उद्योगो (Heavy Manufacturing Industries) की स्थापना का कार्य पूरा करने के लिए भी भारी विनियोग की आवश्यकता थी। जापानी अर्थव्यवस्था के भावी विकास की दिशा इसी बात पर निर्भर करती थी कि वहाँ आधुनिक भारी पूंजी प्रधान विनिर्माण उद्योगो को कितनी सफलता से स्थापित किया जा सकता था। किन्तु अर्थव्यवस्था के अन्य क्षेत्रो की तुलना मे, मेजो काल के पूर्वार्द्ध मे आधुनिक विनिर्माण उद्योगो की प्रतिस्थापना काफी धीमी रही।[1] वास्तविक तेजी 1887 के बाद ही आ पायी।

आरम्भिक बाधाएँ

हालाकि मेजी सरकार ने देश मे आधुनिक विनिर्माण उद्योगो व उत्खनन के विकास की भरसक चेष्टा की किन्तु वास्तविक स्वय स्फूर्त विकास (Take-off) इस क्षेत्र मे 1884 मे ओसाका स्पिनिंग कम्पनी की स्थापना के बाद ही प्रारम्भ हो पाया। इस विलम्ब के कई कारण थे। 6 प्रमुख समस्याएं निम्नांकित रही

(i) आधुनिक विनिर्माण के विकास एव प्रगति के लिए आवश्यक तकनीक का अभाव—(अ) तकनीकी कर्मचारियो की सख्यात्मक व गुणात्मक कमी (आ) प्रबन्धकीय कर्मचारियो का अभाव। 1880 तक जापान के धीमी गति से हुए विनिर्माण उद्योगो के विकास के लिए यही सबसे आधारभूत कठिनाई रही। किन्तु इस तथ्य को भी अनदेखा नही किया जाना चाहिए कि समय के साथ-साथ इन कमियो को शीघ्र ही दूर कर दिया गया।

(ii) पूंजी सचय की अपर्याप्तता तथा अब तक का अपूर्ण वित्तीय ढाँचा। परिणाम यह हुआ कि आधुनिक विनिर्माण फर्मों की स्थापना व उन्हे चलाने के लिए आवश्यक पूंजी की पूर्ति बहुत सीमित थी। साख मुद्रा मे लेन-देन मे अच्छी वित्तीय सस्थाएँ न होने के कारण बाधाएँ आती थी (उदाहरण के लिए बैंक ऑफ जापान खुल तो 1882 मे गया किन्तु वह 1885 के बाद ही सक्रिय हो पाया)। साथ ही ब्याज-दरें बहुत ऊँची थी, वे 10% से 15% के बीच थी। इससे जापान मे आधुनिक विनिर्माण उद्योगो का विकास व स्थापना काफी सीमित हो गये।

(iii) आधुनिक विनिर्माण कारखानो को उपकरणो से सुसज्जित करने तथा उन्हे चलाने मे आने वाली भारी लागत (अ) यूरोप से जापान तक मशीनें आदि लाने

[1] Kamekichi Takahashi, *op cit*, 226

मे लगने वाला ऊँचा यातायात भाडा। (आ) इसके अतिरिक्त हर चीज का निर्माण करने व उसे चलाने के लिए विदेशी विशेषज्ञो की आवश्यकता पडती थी। (इ) मरम्मत की ऊँची लागत क्योंकि अभी तक जापान मे कोई मशीन टूल (Machine Tool) उद्योग नही था। (ई) ऐसी मशीनो को जिन्हे मूल रूप से यूरोपीय दशाओ के लिए तैयार किया गया था जापानियो के लिए काम लेने मे कई कठिनाइयाँ थी, उदाहरण के लिए, लम्बे कद के यूरोपीय लोगो के लिए बनाई गई मशीने जापानी लोग प्लेटफॉर्म पर खडे रहकर ही काम मे ले सकते थे। (उ) जापान की ऊँची ब्याज दरो मे उसे विदेशियो के साथ प्रतिस्पर्द्धा करने में और भी कठिनाई होती थी।

(iv) इनके अलावा उसे नीचे तटकरो का भी नुकसान था जो असमान सन्धियो मे विदेशियो ने उस पर थोप दिये थे। ये 2 5% से 4% के बीच थे। इनसे भी जापानी वस्तुओ की पश्चिमी वस्तुओ के साथ प्रतिस्पर्द्धा कर सकने की क्षमता घट गई।

(v) भारी मात्रा मे तथा अत्यधिक सस्ती श्रम शक्ति, जिसने एक तरह से सहायता भी की उद्योगो को यन्त्रीकृत करने व उन्हे आधुनिक बनाने मे बाधक थी। वास्तव मे, प्रारम्भ मे तो जापानी विनिर्माण तथा खनिज उद्योगो ने आँख मूँद कर पश्चिमी विशेषज्ञो की योजनाओ को स्वीकार किया। इनमे से कई योजनाएँ ऊँची लागत के कारण असफल हो गई। तब जहाँ कही श्रमिक काम कर सकते थे वहाँ उनको लगाया गया। इस तरह जब जापानियो ने स्वय ही जापानी प्रकार के यन्त्रीकृत प्रतिष्ठान तैयार किये तभी मेजी युग के यन्त्रीकृत उपक्रमो मे पहली बार सफलता दिखाई देने लगी।

(vi) इन बिन्दुओ के अलावा यह तथ्य भी नही भुलाया जाना चाहिए कि उस समय जापानी लोग आधुनिक औद्योगिक प्रतिष्ठानो के बारे मे बहुत कम जानते थे। सच तो यह है कि मेजी काल के आरम्भिक वर्षो मे आधुनिक उद्योग जापान मे लगभग अज्ञात थे। जापानी लोग अक्सर हाथो के श्रम पर आधारित कारखाने पसन्द करते थे। बडे उद्योगो को शुरू करने मे पैदा होने वाले खतरो को दूर रखने के लिए जापानियो ने लघु एव मध्यम दर्जे के उपक्रम प्रारम्भ किये।

मेजी काल म सरकार ने लोगो को वास्तविक प्रदर्शनो द्वारा औद्योगीकरण के बारे मे सिखाया। सरकार ने कुछ आधुनिक विनिर्माण फर्मे अपनी देख रेख मे देश मे प्रतिस्थापित की। किन्तु उनमे से अधिकाश फर्मो को घाटा लगा। इसीलिए 1880 के निजी स्वामित्व को सरकारी कारखाने में हस्तान्तरित कर देने का सरकारी निर्णय एक तरह से सरकार की इस असफलता की स्वीकारोक्ति ही था। इस तरह वास्तविक प्रदर्शनो द्वारा लोगो को आधुनिक उद्योग स्थापित करने की ओर आकृष्ट कर पाने मे सरकार को विशेष सफलता नही मिली। वैसे तो केवल विशाल पूँजी वाली व अनुभवी विदेशी फर्मों पर निर्भर रहकर ही जापान अपने यहाँ आधुनिक विनिर्माण फर्मे स्थापित कर सकता था। किन्तु देश मे आधारभूत धारणा इन विदेशियों की गतिविधियो पर नियन्त्रण लगाने की थी। इस दृष्टि से जापानियो के सामने जो एकमात्र रास्ता खुला था वह यही था कि वे अपने ही प्रयासो से देश मे आधुनिक विनिर्माण उद्योग स्थापित करें।

आधुनिक पूंजी-प्रधान उद्योगों का सरकारी तत्वावधान मे प्रत्यारोपण (Transplantation)

मेजी काल के प्रथम 15 वर्षों मे देश मे आधुनिक पूंजी-सज्जित (capital equipped) कारखानो का प्रत्यारोपण निजी उद्यमियो की सामर्थ्य की बात नही था। उधर सरकार *जापान का उपनिवेशन न होने देने के लिए कटिबद्ध थी। स्वतन्त्र राष्ट्र* के लिए फलने-फूलने का एकमात्र उपाय 'समृद्ध एव सुदृढ' बनने मे था। इसीलिए सरकार ने आधुनिक पूंजी सज्जित पश्चिमी उद्योग देश मे स्थापित करने की नीति अपनायी।

इन्ही कारणो से 1882 तक जापान मे आधुनिक उद्योग स्थापित करने का कार्य सरकार ही ने किया। इस प्रक्रिया के तीन स्वरूप रहे—

(1) *प्रत्यक्ष सरकारी प्रबन्ध वाले उद्योग।*

(2) लोगो को प्रोत्साहित करने के लिए सरकार द्वारा निर्मित एव चलाये जाने वाले कारखाने।

(3) वे निजी उद्योग जिन्हे सरकारी सरक्षण, प्रोत्साहन तथा सहायता प्राप्त थी।

ये तीन प्रकार के उद्योग जापानी अर्थव्यवस्था मे इन रूपो मे प्रकट हुए—

(1) *प्रत्यक्ष सरकारी प्रबन्ध वाले उद्योग : (अ) वे उद्योग जिन्हे बाद मे* निजी उद्यमियो को हस्तान्तरित कर *दिया गया* जैसे खनिज प्रतिष्ठान, नागासाकी शिपयार्ड्स, ह्योगो मैन्युफेक्चरिंग वर्क्स, फुकागावा सीमेट वर्क्स, शिनागावा ग्लास वर्क्स व टाइप फाउण्ड्री। (आ) वे उद्योग जो सार्वजनिक प्रतिष्ठान बने रहे जैसे रेलमार्ग, तार, योकोसुका शिपयार्ड्स तथा ओसाका टकसाल।

(2) मॉडल कारखाने जो लोगो को प्रदर्शित करने के उद्देश्य से सरकार द्वारा चलाये *जाते थे व जिन्हे बाद मे निजी उद्यमियो को बेच दिया गया।* इनमे तोमिओका सिल्क रीलिंग, हिरोशिमा स्पिनिंग कम्पनी तथा आइची स्पिनिंग कम्पनी सम्मिलित थे।

(3) वे प्रकरण जिनमे सरकार ने निजी प्रतिष्ठानो को उपकरण आदि खरीदने के लिये राशि उधार दी जैसे (i) 2,000 तकुओ वाले 20 कताई मिल खोलने के इच्छुक लोगों के लिए राशि का प्रावधान। ऐसे दस मिल देश के *विभिन्न भागो मे स्थापित किये गये। (ii) एक निजी व्यापारिक जहाज उद्योग शुरू करने के उद्देश्य से सरकार ने भाप से चलने वाले कुछ जहाज खरीदे तथा उन्हे* मित्सुबिशी शिपिंग कम्पनी को उधार दे दिया।

इन समस्त उद्योगो मे से खनिज उद्योग फर्में, रेल मार्ग कम्पनियां, योकोसुका शिपयार्ड्स, ओसाका टकसाल व तोमीओका सिल्क रीलिंग उद्योग अपने-अपने क्षेत्रो मे अगुवा बने। *अन्य उद्योग अण्डो की तरह थे जिन्हे सेने से बाद के वर्षों मे आधुनिक भारी उद्योगो का जन्म हुआ।*[1]

मेजी काल के आरम्भ मे सिर्फ सरकार ही के पास साधन थे। किन्तु इन

[1] *Ibid*, 232.

साधनो की भी सीमा थी और वह बहुत जल्द आ गई। इसके परिणामस्वरूप विनियोग के लिए आवश्यक कोषो को निजी विनियोजको के अभ्युदय की प्रतीक्षा करनी पडी। इसके अतिरिक्त सरकार द्वारा चलाई जा रही फर्में एकदम अकुशल व घाटे में चलने वाली फर्में थी। यही तथ्य 1880 मे इन फर्मों के निजी लोगो को हस्तान्तरित कर दिये जाने के लिए उत्तरदायी था।

मेजी काल के दौरान जापान में आधुनिक उद्योगो को शुरू करवाने मे सरकार द्वारा सचालित इन उद्योगो का अपना योगदान अवश्य रहा। इस योगदान को इस तरह निचोड कर देखा जा सकता है—

(1) विभिन्न उद्योगो का सुसज्जित करके व उनका सचालन करके सरकार ने आधुनिक उद्योगो के बारे में एक पाठ पढाया जो काफी उपयोगी सिद्ध हुआ।

(2) अत्यधिक कुशल विदेशी विशेषज्ञो को अपने यहाँ काम पर रखकर जापानी लोगो ने आधुनिक तकनीक का वास्तविक प्रशिक्षण प्राप्त कर लिया। ऐसा होने से भावी तकनीकी प्रगति के भी बीज बो दिये गय। मेजी काल के तीसरे दशक के बाद जापान मे जो भारी उद्योग खुले उनमे काम पर लगने वाले अधिकाश लोग सरकार द्वारा चलाये गये कारखाने मे ही प्रशिक्षित हुए थे।

(3) अन्त म, सरकार ने आधुनिक उद्योगो के विकास को ध्यान मे रखते हुए अपने पूँजीगत साज-सामानो को निजी व्यक्तियो के हाथो बहुत सस्ती दर पर बेचा।

बाधाओ का उन्मूलन

उपर्युक्त वर्णित भारी उद्योगो के विकास मे आने वाली बाधाओ को निम्नलिखित उपायो द्वारा दूर किया गया

(1) जैसे-जैसे आधुनिक शिक्षा के प्रसार के कारण प्रशिक्षित जन शक्ति तैयार हुई वैसे-वैसे आधुनिक उद्योग के बारे मे जानकारी का प्रसार भी होने लगा। खान उद्योग व विनिर्माण मे भारी विनियोग करने की आवश्यकता की बाधा भी तब कुछ कम हो गई जब जापानी तकनीशियनो ने विदेशी मशीनो को स्थानीय परिस्थितियो के अनुरूप ढाल लिया।

(2) दूसरे मेजी दशक तक बनी रहने वाली पूँजी के अभाव की बाधा पर भी विजय पा ली गई जब 1877 व 1885 के बीच आधुनिक वित्तीय सस्थाओ का निर्माण हुआ तथा घरेलू पूँजी-सचय में भी वृद्धि हुई।

(3) विशाल मात्रा मे पूँजी-निर्माण मे नये उद्यमियो का भी महत्त्वपूर्ण योगदान रहा। सयुक्त पूँजी कम्पनियो के विकास व प्रसार ने बडे पैमाने पर उत्पादन करने वाले उद्योगो की स्थापना को अधिक सुविधाजनक बना दिया। वित्तीय गुटो (जैबत्सु)[1] के अभ्युदय के साथ बडे पैमाने के उद्योगो को प्रारम्भ करना आसान बन गया।

(4) आधुनिक यातायात सुविधाएँ तथा उनसे सम्बन्धित उद्योग धीरे-धीरे

[1] वित्तीय गुटो या जैबत्सु की चर्चा आठवें अध्याय मे की गई है।

स्थापित किये गये । ये भी आधुनिक उद्योगो की स्थापना के लिए महत्त्वपूर्ण थे। व्यापारिक जहाजी सेवा का विकास तथा रेल-मार्गों का निर्माण इस क्षेत्र के सबसे महत्त्वपूर्ण योगदान थे।

इन बाधाओ पर प्राप्त की गई विजय के अतिरिक्त निम्न तत्त्व भी आधुनिक उद्योगो को आगे बढाने मे सहायक हुए

(1) कोयले के भण्डारो की खोज भी आधुनिक विनिर्माण उद्योग के विकास का प्रभावी आधार बन गई। ऊर्जा के अन्य स्रोत जैसे जल-विद्युत् 1910 के बाद से प्रभावशाली बन गये। द्वीपीय राष्ट्र के श्रेष्ठ बन्दरगाह, उसकी शीतोष्ण जलवायु तथा पानी की प्रचुर उपलब्धि भी आधुनिक उद्योग के विकास मे सहायक तत्त्व रहे।

(2) विश्व रजत मूल्यो मे आई गिरावट भी सहायक रही। जापान ने रजत-मान अपनाया हुआ था तथा चाँदी के मूल्यो मे कमी येन की विदेशी विनिमय दर मे गिरावट के रूप मे सामने आयी। यह स्थिति जापान के विदेशी व्यापार, उसके खान उद्योग तथा विनिर्माण के लिए बहुत लाभदायक रही। यह प्रभाव 1885 के बाद ही अनुभव किया गया।

उपर्युक्त वर्णित परिस्थितियो से स्पष्ट है कि आधुनिक उद्योगो के विकास के लिए अनिवार्य शर्तें धीरे धीरे हो पूरी की गई। किन्तु असमान सन्धियो के अन्तर्गत आरोपित नीचे तटकरो (Low tariffs) की बाधा फिर भी बनी रही। उन्हे 1899 मे सशोधित किया गया तथा तटकरो के विनियमन पर जापान का पूर्ण नियन्त्रण 1911 मे ही स्थापित हो पाया। सक्षेप मे, औद्योगिक विकास की प्रक्रिया इस अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक दवाव का विरोध करते हुए ही आगे बढी।

आधुनिक बडे पैमाने के उद्योगो का गठन तथा महान् उद्यमियो का उत्कर्ष

मेजी शासन के आरम्भ मे बिलकुल भी पूंजीगत ससाधन नही थे जिसके दो प्रमुख कारण रहे (1) लोगो की बचते थोडी व बिखरी हुई थी, तथा (2) हालांकि कुछ धनी व्यापारी थे किन्तु उनमे से अधिकाश अपनी पूंजी पुनर्संस्थापना की क्रान्ति मे खो चुके थे। इस तरह मेजी काल के आरम्भ के समय सरकार ही एकमात्र ऐसी सस्था थी जो आधुनिक बडे पैमाने के उद्योग प्रारम्भ कर सकती थी। किन्तु सरकार के पास मौजूद सीमित धनराशि भी बहुत जल्द समाप्त हो गई। इस तरह विशाल पैमाने के उद्योगो के विकास को तब तक प्रतीक्षा करनी पडी जब तक पर्याप्त निजी पूंजी जमा हो पाती। निजी पूंजी को तीन स्रोतो से एकत्रित किया गया (i) व्यापार के लिए उत्साह रखने वाले निजी उद्योगपतियो द्वारा बडे पैमाने पर पूंजी सचय की प्रक्रिया प्रारम्भ होना, (ii) सयुक्त पूंजी कम्पनियो का विकास, तथा (iii) आधुनिक बैंकिग व्यवस्था का विकास।

विचाराधीन अवधि के अन्तर्गत बडे प्रतिष्ठान सरकार, निजी व्यक्तियो या फिर सार्वजनिक स्वामित्व वाली स्टॉक कम्पनियो द्वारा गठित किये गये जिनमे से प्रत्येक की अपनी विशेषताएँ थी—

(1) सरकार द्वारा गठित विशाल प्रतिष्ठानो पर ही चर्चा की पहले जा चुकी है।

(2) निजी व्यक्तियो द्वारा विशाल पैमाने के उद्योगो की स्थापना—(अ) व्यापारिक फर्में—इनमे से अधिकाश निजी व्यक्तियो के प्रयासो से विकसित हुई। (आ) व्यापारिक जहाजी सेवा—इसे सरकारी ऋणो से निजी उद्यमियो द्वारा प्रारम्भ किया गया। (इ) खान कम्पनियाँ—कुछ कम्पनियाँ शुरू से ही निजी व्यक्तियो के प्रयासो पर आधारित थी तथा कुछ निजी व्यक्तियो के हाथो मे सरकार द्वारा अपनी खानें बेचने के बाद आयी। (ई) विनिर्माण—ये कम्पनियाँ सरकारी स्वामित्व वाली कम्पनियो को खरीदने के बाद बनी। इनमे नागासा की डॉकयार्ड्स, ह्योगो वर्क्स तथा सीमेंट वर्क्स सम्मिलित थे।

(3) सयुक्त पूँजी कम्पनी प्रबन्ध के अन्तर्गत विशाल स्तर पर पूँजी-निर्माण—(अ) बैंक—एक तो ऐसे बैंक थे जो नेशनल बैंको की तरह विशुद्ध सयुक्त पूँजी कम्पनियो के दूसरे मित्सुई बैंक की तरह निजी प्रबन्ध वाले थे। इसके अतिरिक्त बैंक ऑफ जापान जैसे सरकारी बैंक भी थे। (आ) रेल मार्ग कम्पनियाँ—सारे निजी प्रबन्ध वाले रेल-मार्ग कम्पनी प्रणाली के अन्तर्गत विकसित हुए जैसे हकाई एण्ड निप्पोन रेल रोड। (इ) व्यापारिक जहाजी सेवा—जब 1885 मे निप्पोन युसेन कम्पनी स्थापित हुई तो सभी जहाजी उपक्रम कम्पनी प्रणाली के अन्तर्गत गठित हो गये। एक अन्य बडी जहाजी फर्म ओसाका सोसेन कम्पनी थी। (ई) सूत कताई कम्पनियाँ—आधुनिक विशाल पैमाने पर विनिर्माण ओसाका स्पिनिंग कम्पनी की स्थापना के बाद शुरू हुआ।

सक्षेप मे, 1888 के अन्त तक निजी व्यक्तियो ने विशाल पैमाने के प्रतिष्ठान या तो व्यावसायिक क्षेत्र मे या फिर खानो के क्षेत्र मे बनाये थे। रेल मार्गों, जहाजी सेवा, बैंकिंग आदि प्रमुख क्षेत्रो मे सरकार ही नेतृत्व कर रही थी। निजी क्षेत्र मे विशाल पैमाने पर उत्पादन करने वाली इकाइयो की स्थापना को पर्याप्त पूँजी वाले निजी उद्यमियो के आगमन की प्रतीक्षा करनी पडी। 1892 मे एक जापानी विचारक फुकुजावा युकिची ने धनी व्यक्तियो की विकास मे महत्त्वपूर्ण भूमिका पर बल देते हुए लिखा 'एक स्थान मे पूँजी का सग्रह करने व उसका एकीकृत रूप मे उपयोग करने के लिए धनी व्यक्ति महत्वपूर्ण होते है। जब पूँजी एक स्थान पर पहले ही जमा हो जाती है तो वह उस समाधन के गुणो को खुली छूट दे देती है तथा उसके लिए किसी बाहरी निर्देश की आवश्यकता नही पडती। धनी व्यक्ति फिर देश को मजबूत बनाने मे प्रत्यक्ष रूप से नही तो अप्रत्यक्ष रूप मे सहायता करते हैं।'

1868 मे हुई पुनर्संस्थापना के बाद सरकार ने पूँजीपतियो को समर्थन प्रदान किया। सरकार ने प्रगतिशील उद्यमियो को अपना समर्थन देकर एक ऐसा अवसर प्रदान किया कि जिससे समृद्धि के द्वार उनके लिए खुल गये। एक असाधारण वातावरण बना जिसमे नव-धनाढ्य लोग पैदा होने लगे। इस स्थिति के लिए निम्न तत्त्व उत्तरदायी थे—(1) विदेशी व्यापार का खुल जाना, (2) घरेलू

स्तर पर सामन्तवाद के उन्मूलन से पुराने ढांचे मे एक क्रान्तिकारी परिवर्तन आ जाना, (3) भारी मूल्य उच्चावचन हो रहे थे जिन्होने सटोरियो को शानदार अवसर प्रदान किये, तथा (4) अन्त मे, पश्चिमी तकनीक अपनाने के परिणामस्वरूप कई समाधन, जिन्हे पहले बेकार समझा जाता था, बहुमूल्य बन गये।

मेजी काल के दूसरे दशक की समाप्ति तक निजी पूंजी सचय सर्वाधिक विदेशी व्यापार, सट्टेबाजी, खान क्षेत्र व वास्तविक परिसम्पत (Real Estate) के क्षेत्र मे हुआ। राजनीति से सम्बद्ध व्यापारियो के वर्ग का उदय इस अवधि की एक अन्य महत्त्वपूर्ण घटना थी। पुनर्संस्थापना के बाद स्थापित सरकार का मुख्य राजनीतिक उद्देश्य आधुनिकीकरण करना था। सरकार ने सहज रूप से सोचा कि सुयोग्य निजी व्यवसायी लोग आगे आ सकेंगे तथा वे लोग देश के औद्योगिक विकास को नई गति प्रदान कर सकेंगे। पुनर्संस्थापना ने प्रारम्भ मे इन धनी व्यक्तियो को भयभीत कर दिया था।

इन्ही परिस्थितियो मे सरकार ने स्वय ही औद्योगिक प्रतिष्ठानो की स्थापना करने का प्रयास किया था मगर उसे सफलता नही मिली। जब सरकारी स्वामित्व वाले प्रतिष्ठान असफल हो गये तो यही आशा की गई आर्थिक आधुनिकीकरण का लक्ष्य निजी व्यक्तियो द्वारा अधिक तेजी से प्राप्त किया जा सकेगा। आवश्यकता इस प्रकार के निजी व्यवसायो की थी जिनमे (1) नये जमाने की प्रवृत्तियो को समझने की अन्तर्दृष्टि, (2) व्यवसाय का सचालन करने की योग्यता, तथा (3) आवश्यक पूंजी प्राप्त कर सकने की शक्ति का सयोग हो।

नई मेजी सरकार के पास अपने पहले 20 वर्षो मे इन राजनीतिक व्यवसायियो की सहायता मांगने के अतिरिक्त कोई चारा न था। यह ऐसा समय था जब कम्पनी प्रणाली पूरी तरह विकसित नही हुई थी तथा अर्थव्यवस्था के आधुनिकीकरण के लिए उपयुक्त निजी उद्यमकर्त्ताओ की आवश्यकता थी। सरकार ने इन लोगो को सरक्षण व सहायता का आश्वासन दिया। इस तरह योग्यता वाले निजी व्यवसायियो को चुनना आवश्यक बन गया। इनमे या तो वे धनी लोग आते थे जो मेजी सरकार के साथ सहयोग करना चाहते थे या भूतपूर्व समुराई (Samurai) लोग या फिर वे सामान्य लोग जिन्होने अपने व्यवसाय मेजी पुनर्संस्थापना से तुरन्त पहले या बाद मे शुरु किये थे। सरकारी सरक्षण मे इन लोगो ने शीघ्र ही भारी सम्पत्ति अर्जित कर ली। अपनी इसी पूंजी के बल पर ये लोग मेजी युग मे हुए औद्योगिक विकास के वाहक बन गये।

इन राजनीतिक व्यवसायियो के समूह द्वारा निजी व्यवसाय गठित करने का प्रयास सरकार द्वारा दिये गये ऋणो तथा उसके प्रतिष्ठानो को बहुत ही कम मूल्य पर बेच दिये जाने से काफी मजबूत हुआ। किन्तु यहाँ एक बात याद रखनी होगी कि इस बात की कोई गारन्टी नही थी कि ये निजी व्यवसायी उन कारखानो से लाभ कमा लेंगे जिनमे पहले सरकार घाटा खाकर बैठ रही थी। इन व्यवसायियो को धनी बनाने मे दूसरे तरीके से सरकार ने सहायता की दृष्टि से उनसे भारी लाभ पर सैनिक सामान खरीदा।

मेजी युग के उत्तरार्द्ध के विश्लेषण से यही पता चलता है कि जिन शक्तिशाली उद्यमियो ने जापान के उद्योगो को विकसित किया वे ही लोग थे जिन्होने सरकारी सहायता का लाभ उठाते हुए पूँजी सचय किया था जो आधुनिक उद्योगो के लिए आवश्यक था। इस तरह सरकार द्वारा व्यापारियो को प्रोत्साहित करने की नीति के साथ भ्रष्टाचार का भी खतरा जुडा था। किन्तु मुख्य औद्योगिक स्वावलम्बन के लक्ष्य की प्राप्ति के लिए शक्तिशाली निजी व्यवसायियो को सरक्षण के अन्तर्गत आगे लाना भी आवश्यक था ताकि वे विदेशी पूँजी की प्रतिस्पर्द्धा का मुकाबला कर सकें। जहाँ तक भ्रष्टाचार या दुरुपयोग का प्रश्न है वह तो सारे ससार मे आज तक भी कायम है। मेजी नीति के गुण-दोषो का मूल्याकन इसी रोशनी मे किया जाना चाहिए।

औद्योगिक विकास मे जैबत्सु (Zaibatsu) का योगदान

वित्तीय गुट (Financial clique) जैसे सगठन के विकास ने, जिसे जैबत्सु कहा गया, जापान के उद्योगो के विकास मे महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। पीर-बवर्ची-भिश्ती-खर जैसे ये जैबत्सु मेजी काल के दूसरे दशक से ही बनने आरम्भ हो गये थे। मित्सुई, मित्सुबिशि तथा सुमीतोमो तीन सबसे बडे जैबत्सु थे। ये जैबत्सु तब तक चलते रहे जब तक द्वितीय विश्व-युद्ध के बाद जापान पर अमरीकी आधिपत्य वाली सरकार ने इनको एक आदेश द्वारा समाप्त नही कर दिया।

सयुक्त पूंजी कम्पनी प्रणाली

तीसरे मेजी दशक के बाद सयुक्त पूँजी कम्पनी प्रणाली की शुरुआत व तीव्र विकास ने भी जापान मे आधुनिक उद्योगो के विकास को गति प्रदान की। 1876-81 के बीच कई कम्पनियाँ दिवालिया हो गई। इस प्रणाली को अचानक प्रत्यारोपित करना सरकार की गलती रही। जैसा कि एडम स्मिथ ने भी कहा था, सयुक्त पूँजी कम्पनी प्रणाली यूरोप मे भी केवल स्थिर व्यवसायो जैसे बैंकिग व रेल-मार्गो के लिए ही उपयुक्त थी।

अब, जापान मे कम्पनियो के विकास को समग्रता से देखने पर कहा जा सकता है कि इनका प्रारम्भिक काल 1885 तक चला। प्रथम विकास की अवस्था रेल-मार्ग तथा कपास की कताई के उद्योग मे 1886 से 1893 तक चली। वास्तविक विकास 1894 के बाद से शुरु हुआ तथा धन कमाने का युग प्रथम महायुद्ध के समय आया।

कम्पनी प्रणाली की निम्न उपलब्धियाँ रही—

(1) नेशनल बैंको की स्थापना सयुक्त पूँजी कम्पनी प्रणाली की शुरुआत के कारण ही सम्भव हुई।

(2) एक ही व्यक्ति आधुनिक उपकरणो से युक्त विशाल औद्योगिक उपक्रम के प्रबन्ध मे आने वाले खतरो या कठिनाइयो का सामना नही कर सकता था। अग्रणी औद्योगिक प्रतिष्ठान जैसे निप्पोन रेलवे कम्पनी व ओसाका स्पिनिंग कम्पनी

संयुक्त पूँजी कम्पनी प्रणाली की शुरुआत के बाद ही स्थापित किये जा सके थे।

(3) कम्पनी प्रणाली में नये दक्ष लोग आकर्षित होते थे। इनमें से अनेक लोग 1890 से 1925 तक आधुनिक अर्थव्यवस्था के विकास की अवधि में प्रमुख योगदान देने वाले व्यक्ति भी बने।

मेजी पुनर्संस्थापना के बाद जो निजी व्यवसाय सबसे पहले बड़े पैमाने पर किये जाने लगे उनमें बैंकिंग तथा जहाजी सेवा प्रमुख थे। रेल-मार्ग कम्पनियों व पूँजी प्रधान उत्खनन द्वारा इनका अनुसरण किया गया। किन्तु विनिर्माण के क्षेत्र में लम्बे डग भरे गये। वास्तव में तो उनमें ही जापानी अर्थव्यवस्था की चमत्कारिक प्रगति का आभास हुआ। हालांकि इसकी शुरुआत सरकार द्वारा की गई थी किन्तु इसका वास्तविक विकास निजी साहसियों द्वारा ही किया गया।

बड़े पैमाने पर विनिर्माण का विकास

निम्नांकित पाँच शीर्षक उन कारणों या स्रोतों को इंगित करते हैं जिनसे विनिर्माण उद्योगों की शुरुआत हुई—

(1) सरकार द्वारा शुरू की गई व प्रत्यारोपित औद्योगिक इकाइयाँ जो मुख्यतः सैनिक उद्देश्यों के लिए थी जैसे जहाज निर्माण एवं इस्पात।

(2) वे उद्योग जिनका प्रत्यारोपण सरकारी प्रबन्ध में हुआ या जिन्हें काफी सरकारी संरक्षण प्राप्त था जैसे व्यापारिक जहाजी सेवा, रेल मार्ग कम्पनियाँ, तार सेवा आदि।

(3) आयातों को घटाने के लिए शुरू या प्रत्यारोपित उद्योग जैसे कपास की कताई (Cotton spinning)।

(4) निर्यातोन्मुख उद्योग जैसे यन्त्रीकृत रेशम रीलिंग व चीनी मिट्टी के उद्योग।

(5) आधुनिक उद्योग, जिनकी शुरुआत व प्रत्यारोपण विकास के लिए तब शुरू हुआ जब पूँजी उपलब्ध होने लगी थी। इनमें ताँबा परिशोधन एवं विधायन, लोहा व इस्पात उद्योग तथा कोयला प्रमुख थे।

उपर्युक्त उद्योग जापान में आधुनिक प्रतिष्ठानों की शुरुआत के प्रमुख कारण रहे। ये आधारभूत उद्योग आपस में एक-दूसरे पर निर्भर भी थे। कृषि से रेशम उद्योग चलता था। खनिज कच्चे मालों, जैसे ताँबा व कोयला, से सम्बन्धित उद्योग चलते थे। जहाजी सेवा तथा रेल-मार्ग कम्पनियों ने यातायात के लिए आवश्यक उपकरणों की माँग बढ़ाई। सैनिक उद्देश्यों के लिए कार्यरत उद्योगों का लाभ हुआ। औद्योगिक प्रसार की ये घटनाएँ मेजी शासन के प्रथम 20 वर्षों में घटीं।

1885 के पहले सच्चे अर्थों में विनिर्माण उद्योग के उदाहरणों में सूत कताई, सिल्क की यन्त्रीकृत रीलिंग तथा जहाज-निर्माण से सम्बन्धित क्रियाओं को लिया जा सकता है। किन्तु जापान के आधुनिक विनिर्माण के विकास में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण स्थान सूत कताई (Cotton spinning) का रहा।

निर्माण, सूत कताई व खान क्षेत्र में आया।

(3) पूँजी के अत्यधिक प्रयोग से उत्पादकता भी बढ़ी।

(4) जापानी अर्थव्यवस्था की पूँजी सचय की क्षमता भी काफी बढ़ गई।

(5) रेल मार्गों, जहाजों तथा खानों में काम आने वाले पूँजीगत उपकरणों के लिए बढ़ी हुई माँग के कारण अनेक उद्योगों की शृंखला को जन्म मिला।

(6) इससे मानवीय पूँजी-निर्माण में सहायता मिली।

इस तरह आधुनिक बड़े पूँजी प्रधान उद्योग मेजी काल के दूसरे दशक तक स्वय स्फूर्त विकास की अवस्था (Take off stage) में पहुँच गये। तीसरे दशक तक तो वे न केवल अपने आप प्रगति करने लगे बल्कि अन्य विनिर्माण उद्योगों के विकास में भी वे महत्वपूर्ण भूमिका अदा करने लगे। इसी सन्दर्भ में मेजी पुनर्संस्थापना के पहले दो दशकों के लघु उपक्रम, सरकारी व निजी, विशेष महत्व के रहे।

औद्योगिक विकास 1888–1914

एक बार जब स्वय स्फूर्त विकास (Take-off) के लिए अन्तरिम शर्तें पूरी हो गई तो एक केन्द्र (Hub) सा बन गया जिसके चारों ओर अर्थव्यवस्था का विकास जारी रह सकता था। 1887 के आस पास ही रेल मार्ग व व्यापारिक जहाजी सेवा में इस सीमा तक सुधार हो चुके थे कि उनसे जापान की अर्थव्यवस्था के आधुनिकीकरण में सहायता मिलने लग गई।

उदाहरण के लिए रेल मार्गों की लम्बाई 1885 में 351 मील से बढ़कर 1915 तक 6,539 मील हो गई। जहाजी टन भार इसी अवधि में 60,000 टन से बढ़कर 15,30,000 टन हो गया। 1911 तक सभी मुख्य मार्गों पर काम पूरा हो चुका था।

बैंकिंग व्यवस्था भी प्रभावशाली होने लगी थी। बैंक ऑफ जापान हालांकि 1882 में स्थापित हो चुका था किन्तु एक केन्द्रीय बैंक के रूप में उसने अपना कार्य 1887 के बाद ही पूरी तरह शुरू किया। बैंक ने उद्योगों द्वारा की जाने वाली अधिकाधिक पूँजी की माँगों को साख निर्गमन द्वारा पूरा किया। जापानियों को उनके खोए हुए व्यावसायिक अधिकार भी पुन प्राप्त हो गये। विदेश व्यापार कम्पनियों का एकाधिकार नष्ट हो गया। 1874 में आयातों पर विदेशी व्यापारियों का अधिकार 99% तक था। 1899 तक वह 60% पर आ गया। बड़े पैमाने के उद्योगों के विकास के लिए सुदृढ़ आधार की दृष्टि से कृषि को भी आधुनिक बनाने की चेष्टा की गई।

खनन के क्षेत्र में भी क्रांति आयी। सौभाग्य से मेजी जापान में तांबा, सोना, चाँदी, कोयला व अन्य कुछ खनिज पदार्थ मौजूद थे। तकनीक के अभाव में उनमें से अधिकांश अभी तक अप्रकट ही रहे थे। पुनर्संस्थापना के बाद खनन के विकास से सफलता व लाभ दोनों ही प्राप्त हुए। इन खनिजों के निर्यात से काफी मात्रा में विदेशी मुद्रा प्राप्त हुई।

खनिजों के उत्पादन मे वृद्धि

वर्ष	कोयला ('000 टन)	तांबा (टन)	सोना (कि० ग्रा०)	चांदी (कि० ग्रा०)
1875	567	2,399	174	6,993
1890	2,608	18,115	727	52,844
1900	7,429	25,809	2,125	58,806
1910	15,681	49,324	4,368	1,41,613
1920	29,245	67,792	7,719	1,53,164
1925	31,459	66,487	8,463	1,26,195

Source . Bank of Japan's Statistical Section

कोयला उद्योग के विकास से रेल-मार्गो, जहाजो, कारखानो आदि के विकास मे सहायता मिली। खानो का विकास करने के लिए काम में आने वाली मशीनो का पहले तो आयात होता था किन्तु धीरे-धीरे उनका विनिर्माण भी आरम्भ हो गया। धातुओ को साफ करने के काम के पूरक विनिर्माण के रूप मे बिजली के तार बनने लग गये। इस तरह आधुनिक विनिर्माण के विकास मे खनन एक महत्त्वपूर्ण आधार बन गया।

औद्योगिक विकास मे सरकारी नीतियो का योग

(1) 1894–95 के चीन-जापान युद्ध के बाद सरकार ने सैनिक सामग्री के क्षेत्र मे आत्म-निर्भर बनने का निर्णय कर लिया। इससे जहाज-निर्माण व शस्त्र निर्माण सम्बन्धी क्रियाओ को तीव्र किया गया।

(2) 1896 मे पारित जहाज निर्माण प्रोत्साहन विनियमन के अन्तर्गत अपनायी गयी नीति के अनुसार जापान मे ही युद्धपोत बनाये जाने लगे।

(3) रूस के साथ युद्ध के बाद रेलो का राष्ट्रीयकरण कर दिया गया तथा निजी कारखानो द्वारा रेलों के डिब्बे आदि बना सकने के प्रयास किये गये।

(4) तार, टेलीफ़ोन, बिजली आदि सेवाओ का प्रसार करने मे जापानी सरकार ने देश मे ही बने उपकरणो का अधिकाधिक प्रयोग करने की नीति अपनायी।

इस तरह सरकारी सरक्षण नीति के माध्यम से कई अन्य विनिर्माण उद्योगो का भी विकास हुआ। 1885 के बाद चाँदी के मूल्यो मे गिरावट के कारण तथा येन के अनधिकृत अवमूल्यन के कारण भी जापान को लाभ रहा। फलस्वरूप जापानी निर्यात अधिक सस्ते पडने लगे।

(5) चीन-जापान युद्ध के बाद जापानियो का यह भय तो दूर हो गया कि अगर उन्होने विदेशी सहायता ली तो उन्हे भी गुलाम बना लिया जाएगा। इससे विदेशी पूंजी के उपयोग मे भारी वृद्धि हुई। विदेशी पूंजी आयात करने की सरकारी नीति 1897 मे आरम्भ हुई। उसी वर्ष उसने 43 मिलियन येन मूल्य की विदेशी पूंजी का आयात किया। 1913 तक विदेशी पूंजी आयात 1,970 मिलियन

येन पहुँच चुका था। इस नीति ने न केवल अर्थव्यवस्था के तेजी के साथ निर्माण मे सहायता की बल्कि उसने जापान के औद्योगिक विकास के लिए अनिवार्य पूँजी भी उपलब्ध करायी।

(6) प्रशुल्क नीति पर पुन. नियन्त्रण स्थापित हो जाने के कारण भी सरकार जापान का औद्योगिक उत्पादन बढा सकने मे सफल हुई। 1899 से पहले आयात शुल्को की दर लगभग 3 6 प्रतिशत थी। तट-कर सम्बन्धी स्वायत्तता पूरी तरह लौट आने के बाद जापानी सरकार ने 1913 मे आयात शुल्क 20% कर दिये। इस वृद्धि से सूती धागे का आयात तो बन्द हो हो गया। इससे सरकार की आय मे भी वृद्धि हुई।

कुल मिलाकर इन सबका परिणाम यह हुआ कि चीन के साथ युद्ध के बाद की जापानी अर्थव्यवस्था मे निर्मित वस्तुओ के निर्यात चढते चले गये। आयात प्रतिस्थापन उद्योग भी काफी विकसित हुए। जापान उस स्थिति मे पहुँच गया जहाँ उसकी अर्थव्यवस्था आधुनिक अर्थव्यवस्था के जैसी हो गई। 1902 मे विद्यमान 8,612 कम्पनियो मे से 84% की स्थापना 1894–1902 मे हुई थी। कारखानो के क्षेत्र मे 55% कारखाने उपर्युक्त अवधि मे प्रारम्भ किये गये। इसलिए यह कहने मे कोई अतिशयोक्ति नही होगी कि प्रथम विश्व-युद्ध के दौरान जापान का विश्व के एक महान् विनिर्माण राष्ट्र के रूप मे विकास 1904–05 मे रूस पर विजय के बाद ही आरम्भ हो गया था।

विभिन्न क्षेत्रों से राष्ट्रीय आय

(प्रतिशत मे)

पचवर्षीय औसत	प्राथमिक क्षेत्र	विनिर्माण उद्योग क्षेत्र	सेवा क्षेत्र
1878–1882	64 6	10 6	24 8
1893–1897	51 4	18 7	29 9
1918–1922	34 2	25 8	40 0
1928–1932	21 8	27 7	50 5
1938–1942	17 7	40 3	42 0

इस प्रकार जापान कृषि अवस्था से विनिर्माण अवस्था मे मेजी पुनर्संस्थापना के 30 वर्षों बाद पहुँच गया। जापान की राष्ट्रीय आय मे कृषि का भाग 1898 मे 50% से कम पर आ चुका था। इसी अवधि मे निर्यातो मे कृषि पदार्थों का अनुपात भी घट गया।

कृषि पदार्थो का निर्यातो मे आनुपातिक भाग

(प्रतिशत मे)

पचवर्षीय औसत	कृषि पदार्थों का आनुपातिक भाग	विनिर्माण का प्रतिशत भाग
1873–1877	80 4	19 6
1898-1902	44 0	56 0
1912-1912	44 8	55 2
1918-1922	38 8	61 2

मेजी काल के उत्तरार्द्ध मे विनिर्माण क्षेत्र मे हुई प्रगति का एक प्रभावशाली माप उत्पादन प्रक्रियाओ मे हुआ यन्त्रीकरण रहा। रेशम लपेटने के क्षेत्र मे हुई यान्त्रिक प्रगति एक ऐसा ही उदाहरण है।

रेशम लपेटने (Reeling) मे यान्त्रिक प्रगति

(रेशम उत्पादन का प्रतिशत)

वर्ष	मशीन द्वारा लपेटना	हाथों से लपेटना
1893	41	59
1903	58	42
1914	77	23
1921	84	16
1925	87	13

अधिकाधिक कारखाने मोटर शक्ति का उपयोग करने लग गये। तृतीय मेजी दशक मे लगभग 30% कारखाने मोटर शक्ति का उपयोग कर रहे थे। 1914 मे यह प्रतिशत 60 हो गया। 1925 मे यह 78% तक पहुँच गया। विनिर्माण मे लगी हुई कम्पनियों की प्रदत्त पूँजी, जो 1896 मे मात्र 400 मिलियन येन थी, 1913 मे बढकर 2,000 मिलियन येन तथा 1924 मे 10,849 मिलियन येन हो गई।

अगर हम गौण उद्योगो को खनन व विनिर्माण उद्योगो मे उपविभाजित करें तथा 1887 के आय स्तरों की 1912 के आय स्तरो के साथ तुलना करे तो ज्ञात होता है कि विनिर्माण में आय मे आठ गुना वृद्धि हुई। विनिर्माण मे भी प्रमुख उद्योग कताई-बुनाई का था जिसमे 1912 मे कुल श्रम-शक्ति का 65% लगा हुआ था। सूती कपडे के निर्यात, जो 1890 मे मात्र 1,70,000 येन के थे, 1913 तक बढकर 33 6 मिलियन येन हो गये। निम्नांकित तालिका से स्पष्ट है कि किस प्रकार प्रथम महायुद्ध से पहले के 25 वर्षो मे तकुओ की सख्या व सूत का उत्पादन बढा

वर्ष	तकुओ की सख्या (हजारो मे)	सूत का उत्पादन (मिलियन पौंड मे)
1887	77	—
1893	382	88
1897	971	220
1903	1,381	317
1913	2,415	607

औद्योगिक विकास 1914–1938

उन विनिर्माण उद्योगो जो 1914 से पहले ही महत्त्वपूर्ण बन चुके थे जैसे सूती वस्त्र व रेशम, की क्षमता काफी बढ गई। कई अन्य उद्योग जैसे रसायन, ऊनी वस्त्र, इन्जीनियरिंग तथा लोहा व इस्पात, जिन्हे पश्चिम से प्रत्यारोपित किया गया था, भी काफी फैल गये।

विभिन्न उद्योगों का उत्पादन . 1914–1929

वर्ष	सूती धागा (मिलियन पौंड)	कच्चा रेशम ('000 क्वान)	कोयला (मि० टन)	इस्पात ('000 टन)	सीमेण्ट ('000 टन)	विद्युत शक्ति ('000 कि०वाट)
1913	607	3,741	21	255	645	504
1920	727	5,834	29	533	1,353	1,214
1925	975	8 284	32	1,043	2,508	2,768
1929	1,117	11,292	34	2,034	4,349	4,194

पूर्ति पक्ष की दृष्टि से, इस काल के उद्योगो को उत्पादन के उन्नत तरीको तथा वैज्ञानिक अनुसधान का लाभ मिला। रेशमी कपडे का बुनाई उद्योग काफी फैला। सूती वस्त्र उद्योग मे प्रगति जारी रही। इस क्षेत्र मे महत्त्वपूर्ण उपलब्धि यह रही कि शक्ति-चालित करघो से युक्त कई विशाल शेड (shed) स्थापित हो गये। 1928–29 में यही शेड 2/5 सूती वस्त्र निर्यातो के लिए उत्तरदायी थे। 1926 के बाद कताई व बुनाई दोनो ही क्षेत्रो में कार्यकुशलता मे असाधारण सुधार हुआ। युद्ध से पहले ऊनी वस्त्र उद्योग बहुत छोटा था। किन्तु प्रथम विश्व-युद्ध ने इस उद्योग को भी भारी प्रोत्साहन दिया। गर्म कपडे का उत्पादन 1914 में 1 6 मिलियन गज के स्तर से बढकर 1929 में 9 मिलियन गज तक जा पहुँचा।

धातु निर्माण उद्योग 1914 के बाद विकसित हुए किन्तु वे सूती वस्त्र की तुलना मे दूसरे स्थान पर ही रहे जिनमें अभी भी एक-चौथाई श्रम शक्ति लगी हुई थी। इस्पात का उत्पादन 1914 के 2,55,000 टन से बढकर 1929 में 2 मिलियन टन हो गया किन्तु अपनी आवश्यकता का एक बहुत बडा भाग जापान अब भी आयात करता था। 90% कच्चा लोहा चीन व मलाया से आयात होता था। युद्ध से पहले अधिकाश इस्पात सरकारी कारखानो, जो यवाता में स्थित थे, में तैयार होता था। युद्ध के दौरान कई निजी इस्पात मिल भी स्थापित किये गये किन्तु 1929 तक भी यवाता स्वयं ही देश के अधिकाश इस्पात का उत्पादन कर रहा था।

कोयला खान उद्योग मे भी युद्ध के बाद उत्पादन काफी तेजी से बढा। 1913 से 1919 के बीच यह 21 मिलियन टन से बढकर 31 मिलियन टन हो गया। उसके बाद थोडा धक्का लगा तथा उत्पादन पुन 1929 में जाकर ही 34 मिलियन टन तक पहुँच पाया। जहाज-निर्माण में भी इस अवधि मे प्रगति धीमी रहीं। भारी उद्योगो में कुल मिलाकर भी प्रगति धीमी रही तथा 1929 तक भी लोहा व इस्पात उद्योग ने जापान के विनिर्माण उद्योगो मे उतना महत्त्व-पूर्ण स्थान प्राप्त नही किया था जितना उसे यूरोप में प्राप्त था। कुछ विदेशियो ने इससे यह निष्कर्ष निकाल लिया कि जापानी लोग केवल हल्के उद्योग ही चला सकते है (खासतौर से सूती वस्त्र व अन्य वस्त्र-निर्माण उद्योग) तथा उसके द्वारा 'विनिर्माण राष्ट्र के रूप मे प्रमुख महत्त्व का स्थान' प्राप्त करने की बहुत कम सम्भावना थी।

इजीनियरिंग उद्योग की प्रगति अधिक तीव्र थी। 1920 के बाद अनेक

इजीनियरिंग वस्तुओ के आयातो मे भारी गिरावट आ जाने से जापान के अपने इजीनियरिंग उद्योगो का विकास हुआ। एकमात्र अन्य उद्योग, जिसे सम्मिलित किया जा सकता है, चीनी मिट्टी के बर्तन (Pottery) बनाने का था। यह छोटे पैमाने पर चलता रहा।

बडी मात्रा मे वस्तुओ एव सेवाओ का उत्पादन जापान मे विशिष्ट रूप से होता रहा। पश्चिमी तकनीक पर आधारित उद्योगो के साथ-साथ छोटे पैमाने के व्यवसाय भी चलते रहे। उनमें से अनेक पश्चिमी देशो के साथ इस सम्पर्क के बावजूद अप्रभावित ही रहे। इनमें आवासीय मकान निर्माण व्यवसाय जापानी तरीके की वेशभूषा व खाद्य-सामग्री तैयार करने वाले उद्योग तथा कई अन्य सम्मिलित थे। बडे व नये उद्योगो के आगमन से ये पुराने व्यवसाय विलुप्त नही हुए। 1920 के लगभग जापान की अर्थव्यवस्था मे एक ओर विशाल पैमाने के नए उद्योगो तथा दूसरी ओर पुराने छोटे पैमाने के उद्योगो के चलते रहने से कई लोगो का ध्यान आकृष्ट हुआ।

1929 से पहले के वर्षों मे औद्योगिक विकास की प्रवृत्ति मे कोई विशेष परिवर्तन नही आया तथा निर्यात व्यापार मुख्य रूप से वस्त्रो तक ही केन्द्रित रहा। परन्तु इनमें 1929 से 1937 के बीच भारी परिवर्तन आये। यह वह समय था जब जापान युद्ध की तैयारी कर रहा था। इन वर्षों मे उत्पादन मे प्रमुख वृद्धि पूंजीगत वस्तुओ के क्षेत्र मे लगे हुए उद्योगो मे हुई। वस्त्रो के उत्पादन मे कुछ सापेक्ष कमी आई जबकि धातुओ व रसायनो तथा इजीनियरिंग सामान का भाग बढता चला गया, 1937 के अन्त तक कुल श्रम-शक्ति मे उनका अनुपात बढकर 45% हो चुका था।

विभिन्न विनिर्माण उद्योगो मे फैक्ट्री रोजगार के प्रतिशत · 1929–1937

वर्ष	वस्त्र	धातुएँ	मशीनें	रसायन	अन्य	कुल	कुल फैक्टरी रोजगार (हजारो मे)
1929	50 4	6 2	13 8	6 4	23 2	100	1,825
1936	37 9	9 7	18 3	11 1	23 0	100	2,593
1937	35 2	10 6	20 5	11 0	22 7	100	2,937

लेकिन औद्योगिक प्रगति पूंजीगत वस्तुओ तक ही सीमित नही रही। सूती वस्त्र उद्योग आगे बढता रहा व उसने अच्छी व ऊँची किस्म की वस्तुओं का उत्पादन शुरू कर दिया। सूत का उत्पादन दुगुना हो गया व निर्यात घट गये। रेयन उद्योग मे सबसे तीव्र प्रगति हुई जो 1937 तक विश्व मे पहले स्थान पर आ गया। इस उद्योग ने 1929 के 27 मिलियन पौण्ड रेयन के स्थान पर 1937 मे 326 मिलियन पौण्ड रेयन का उत्पादन किया। 1929 से 1936 के बीच रेशम के उत्पादन मे तो विशेष गिरावट नही आयी किन्तु उसके उत्पादन का मूल्य 857 मिलियन येन से घटकर 517 मिलियन येन पर आ गया। ऐसा रेशम के मूल्यो मे कमी आ जाने से हुआ।

इस अवधि मे वस्त्र-निर्माण के क्षेत्र मे रोजगार मे आने वाली सम्पूर्ण सापेक्ष कमी को मन्दी के कारण ही आयी हुई नही माना जा सकता। यह कमी उन तकनीकी सुधारो के कारण भी आयी जो इन वर्षो मे श्रम की बचत के उद्देश्य से किये गये थे। 1927 से 1933 के बीच पुरानी मशीनें पूरी तरह बदल दी गई।

रसायन उद्योग मे भी भारी परिवर्तन हुए। अपव्ययो को घटाकर लागतो को नीचे लाया गया। जैसे 1928 मे प्रति 100 पौण्ड कागज का उत्पादन करने के लिए 94 पौण्ड कोयला ऊर्जा के रूप मे काम लिया जाता था। कोयले का यह उपयोग 1937 मे गिरकर 57 पौण्ड रह गया। चीनी मिट्टी के बर्तन बनाने के उद्योग मे भी क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए। कन्वेयर बेल्टो (Conveyor Belts) के प्रयोग ने उत्पादन मे तेजी ला दी। कोयले की जगह बिजली का इस्तेमाल किया जाने लगा।

लोहा व इस्पात उद्योग मे भी तकनीकी सुधार हुए। 1929 से 1936 के बीच लोहा गलाने की भट्टियो की औसत क्षमता बढ़कर दुगुनी हो गई। 1936 तक तो तैयार इस्पात के निर्यात उसके आयात से बढ़ गये थे। 1930 से 1936 के बीच धातु-निर्माण उद्योगो मे प्रति मानव घण्टे उत्पादन मे 25% की वृद्धि हुई। कोयला खानो मे जमीन के नीचे काम करने वाले श्रमिको का प्रतिव्यक्ति (प्रति शिफ्ट) उत्पादन 1928 के 0 7 टन से बढ़कर 1931 मे 1 2 टन हो गया। यह और भी अधिक प्रशसनीय था क्योकि विनिर्माण मे सुधार भी प्रमुख रूप से मन्दी के वर्षो मे ही किये गये थे।

सरकारी नीतियो का प्रभाव

सरकार की वित्तीय एव शस्त्रीकरण की नीतियो ने उद्योगो के विकास को अत्यधिक प्रभावित किया। सरकार ने उद्योगो के सगठन व उनकी कार्यकुशलता दोनो ही मे सुधार करने की दृष्टि से कुछ उपाय किये। 1930–31 अर्थात् मन्दी के वर्षो मे सरकार ने कई उद्योगो के ढह जाने या दिवालिया हो जाने से बचाने हेतु भी कदम उठाये। सबसे महत्त्वपूर्ण कदम औद्योगिक विवेकीकरण ब्यूरो की स्थापना का था जिसमे आपसी समन्वय द्वारा विभिन्न उद्योगो की कार्य-कुशलता बढाने का प्रस्ताव था। ब्यूरो का एक कार्य प्रमुख उद्योग नियन्त्रण कानून के अन्तर्गत उत्पादन, बिक्री व मूल्यो का विनियमन करना भी था। 1930–31 मे सरकार पर मुख्य रूप से बड़े उद्योगपतियो का नियन्त्रण था इसलिए भी उद्योगो को मन्दी से बचाना सरकार की एक प्रमुख नीति बन गई। किन्तु 1935 तक, मन्दी के खत्म हो जाने के बाद, राजनीतिक सत्ता सैनिक तत्त्वो के हाथो मे आ चुकी थी जो राष्ट्र की सामरिक शक्ति मे वृद्धि करने के लिए उद्योगो का विनियमन करना चाहते थे।

युद्ध के लिए की जा रही तैयारियो ने उद्योगो पर राष्ट्रीय नियन्त्रण आवश्यक बना दिया। जहाजी सेवा व जहाज-निर्माण के क्षेत्र मे विशेष हस्तक्षेप किया गया। आयातित तेल पर शुल्क बढा दिया गया ताकि जल विद्युत् प्रजनन को बढावा मिल सकता। जैबत्सु की सस्था पर प्रहार किया गया क्योकि वह राज्य के हितो

को खतरे मे डालती थी। सेना मे शक्तिशाली घटको ने एक अर्द्ध-यौद्धिक अर्थव्यवस्था (Quasi War Economy) के निर्माण पर बल दिया। ये लोग पूंजीपतियो के हितो को नष्ट कर समाधनो को युद्ध-कार्यों की तरफ मोडना चाहते थे। वे गुट जो आर्थिक कल्याण मे नही बल्कि साम्राज्य के विस्तार मे अधिक रुचि रखते थे, इस काल मे शक्तिशाली हुए। यह निर्णय निकालना सही नही होगा कि इन वर्षों मे जापानी साम्राज्यवाद को बढावा देने वाले तत्वो की जडें आर्थिक कारको मे थी।

चीन मे पुन आक्रमण के लिए भारी सैनिक व्यय की आवश्यकता थी। सरकार की घाटे की वित्त व्यवस्था, जो 1937 मे 605 मिलियन येन की थी, 1939 तक बढकर 1298 मिलियन येन तथा 1941 तक 2,406 मिलियन येन हो गई। घरेलू उत्पादन पर नियन्त्रण लगा दिया गया तथा सैनिक साज-सामान तैयार करने वाले उद्योग पूरे वेग से चलने लगे। इससे शान्तिकालीन उद्योग एव व्यवसाय अस्त-व्यस्त हो गय।

उद्योगवाद की ओर रूपान्तरण

द्वितीय विश्व-युद्ध के पहले का जापान विभिन्न प्रकार से पश्चिमी यूरोप व अमरीका से निम्नतर था। किन्तु वह लैटिन अमरीका, अफ्रीका व एशिया के देशो से बहुत आगे बढ चुका था। 1937 में जापान का ऊर्जा उपभोग भारत से 20 गुना था। सबस महत्त्वपूर्ण बात विनिर्माण गतिविधियो में वृद्धि की थी। उसका निर्देशाक 1905–09 के 69 से बढकर 1930–34 तक 377 पर जा पहुँचा था। स्पष्ट रूप से जापानी उद्योगो के विकास ने इस अवधि में उसके प्राथमिक उत्पादन को बहुत पीछे छोड दिया था। इस चौथाई शताब्दी में प्राथमिक वस्तुओं का उत्पादन तो दुगुना भी नही हो पाया। विदश व्यापार व यातायात सेवाओ में भी दो से चार गुना वृद्धि हुई।

विनिर्माण, यातायात व व्यवसाय का विकास 1885–1938

(निर्देशाक 1910–1914=100)

वार्षिक औसत	विनिर्माण उत्पादन	रेल सेवा	आयातो का परिमाण	निर्यातो का परिमाण
1885 89	—	2	16	16
1895 99	37	24	46	31
1905–09	69	68	87	61
1910 14	100	100	100	100
1915 19	160	161	124	168
1920–24	217	218	190	142
1925 29	313	277	242	217
1930–34	377	256	277	327
1935–38	600	354	347	505

समग्र विनिर्माण में हुई वृद्धियों को अगली तालिका में प्रदर्शित किया गया है। यह निर्देशाक जो नागोया कॉमर्शियल कॉलेज द्वारा तैयार किया गया था, कुछ बढ़ा-चढ़ाकर विनिर्माण की प्रगति का चित्र देता है किन्तु इतना सही है कि 1905 के बाद विनिर्माण के क्षेत्र में निरन्तर उच्च वृद्धि हुई। यदि यह वृद्धि निरन्तर 5% की भी रही हो तब भी वह प्रभावशाली थी।

जापान में विनिर्माण उद्योग के भौतिक उत्पादन में वृद्धि

(*निर्देशाक : 1910–1914=100*)

वार्षिक औसत	वस्त्र	मशीनें	बिजली	समस्त विनिर्माण
1895–99	41	25	—	37
1900–04	[illegible]	33	10	48
1905–09	70	61	27	69
1910–14	100	100	100	100
1915–19	152	162	198	160
1920–24	185	244	356	217
1925–29	270	355	653	313
1930–34	352	410	1,002	377
1935–38	416	920	1,517	600

अन्य देशों के साथ जापानी औद्योगिक विकास की तुलना करने से पता चलता है कि जापान को अपनी नेतृत्व की स्थिति दो अवधियों में प्राप्त हुई : प्रथम विश्व युद्ध के वर्ष तथा 1931–35 की महान् मन्दी जब उसकी अर्थव्यवस्था मुद्रा-प्रसार के प्रभाव से आगे बढ़ती गई। इसके विपरीत अधिकांश अग्रणी देशों के आर्थिक इतिहास में इन दोनों अवधियों ने विकास को अवरुद्ध किया।

विनिर्माण गतिविधि का जापान, विश्व व चुने हुए देशों में विकास 1876–1938

(निर्देशांक 1913=100)

वार्षिक औसत	विश्व	जापान	अमरीका	इंग्लैण्ड	भारत
1876–1880	25	—	17	50	—
1881–1885	30	—	24	57	—
1896–1900	54	35	45	74	54
1901–1905	67	48	66	77	69
1906–1910	80	64	79	83	85
1911–1913	94	93	92	93	97
1921–1925	103	205	129	76	122
1926–1930	139	297	160	92	146
1931–1935	128	410	118	92	175
1936–1938	185	631	167	122	230

Source League of Nations, *Industrialisation and Foreign Trade*, 1945

खाली आंकड़ो से उन वास्तविक प्रक्रियाओं का अनुमान नहीं लग सकता जिनसे विनिर्माण उद्योगो में वास्तव मे प्रगति हुई। प्रसार के इन वक्रों (curves)[1] के पीछे कई शक्तियों की पेचीदा प्रतिक्रियाएँ निहित हैं। शहरी औद्योगिक रोजगार मे जन शक्ति की वृद्धि, बाजारो का विस्तार जिसमे घरेलू व विदेशी दोनो ही स्तरो पर विनिमय मे वृद्धि, नये व विविध रूपो मे जैसे कारखानो, माल सूचियो व उपकरणो के रूप मे पूंजी का सचय, नई तकनीकी दक्षताओं तथा व्यावसायिक सगठन के स्वरूपो का विकास, आदि ऐसी ही प्रतिक्रियाएँ थी। इस विकास की रूपरेखाओं का सार सक्षेप मे निम्नांकित तालिका मे दिया गया है—

जापान मे फैक्ट्री उद्योग का विकास 1909–38

वर्ष	फैक्ट्रियो की सख्या	श्रमिको की सख्या (हजारो मे)	उत्पादन का कुल मूल्य (मिलियन येन)
1909	32,390	1,012	781
1914	31,859	1,187	1,371
1919	44,087	2,025	6,738
1924	48,394	1,977	6,625
1929	60,275	2,384	7,994
1934	80,880	2,580	9,758
1938	113,205	3,718	20,101

जापानी उद्योग के यन्त्रीकरण को प्रमाणित करने वाले आंकड़ों से भी इन वर्षो मे हो रहे परिवर्तन का अनुमान लगाया जा सकता है। 1914 से 1938 के बीच फैक्ट्रियो मे स्थापित किया गया कुल शक्ति-चालित उपकरण 500% से बढ़ा। 1936 मे मोटरो की अश्व शक्ति (Horse Power) क्षमता 5 मिलियन थी। प्रति श्रमिक शक्ति की उपलब्धि 1 69 अश्व शक्ति थी। 1914 के बाद यन्त्रीकरण की प्रगति निरन्तर रही। 1920 के बाद प्रारम्भ हुए विवेकीकरण (rationalisation) अभियान मे शक्ति चालित मशीनो व उपकरणो मे भारी वृद्धि हुई। बिजली की पूर्ति तो अविश्वसनीय रूप से बढ़ी। 1938 मे दस मे से नौ जापानी घरो मे बिजली पहुँच चुकी थी। उद्योगो के विद्युतीकरण ने जापान को उसके प्राकृतिक ससाधनो का विकास करने तथा गांवो व कस्बो मे छोटे-छोटे कारखानो की स्थापना करने मे सहायता की। 1914 से 1938 के बीच श्रम उत्पादकता में असाधारण वृद्धि के पीछे इन वर्षों में वहाँ शक्ति चालित मशीनो के उपयोग में हुई महान् वृद्धि ही थी। उद्योग के भीतर भी प्रबन्धको व श्रमिको दोनो ही के अनुभव व कार्यकुशलता में वृद्धि हुई।

जापान के आर्थिक विकास ने वहाँ के सेवा क्षेत्र के रोजगार मे भी भारी वृद्धि की। आंकड़े 1880 से 1930 के बीच सेवा-रोजगार मे तिगुनी वृद्धि इगित करते हैं इस प्रसार की प्रक्रिया मे अर्थशास्त्री कोलिन क्लार्क ने अपने इस तथ्य की पुष्टि पायी कि आर्थिक विकास ने अन्य स्थानो की तरह जापान मे भी ससाधनो को उत्तरोत्तर प्राथमिक क्षेत्र से सेवा एव विनिर्माण के क्षेत्र मे स्थानान्तरित किया है। क्लार्क ने

[1] W W Lockwood *op cit* 1968, 119

यह भी पाया कि द्वितीय महायुद्ध के पहले जापान मे सेवा उद्योगो द्वारा उत्पन्न रोजगार अन्य औद्योगिक देशो की तुलना मे काफी ऊँचा था।

प्रमुख निष्कर्ष

उपर्युक्त वर्णित तथ्यो के प्रकाश मे हम कुछ निष्कर्षो पर पहुँच सकते है। मेजी पुनर्संस्थापना के बाद के 70 वर्षो मे जापान की उत्पादक शक्ति मे आश्चर्यजनक वृद्धि हुई। इस रिकॉर्ड मे और भी सुधार करने का श्रेय भी जापान की दूसरे महायुद्ध के बाद की औद्योगिक प्रगति को ही है। 1885 से 1935 के बीच समग्र वृद्धियाँ चार गुनी रही। वार्षिक दर के हिसाब से ये वृद्धियाँ 3 3% थी। यमुदा (Yamuda) के अनुमानो से 1885 से 1910 के बीच वास्तविक आय लगभग दुगुनी हो गई। इसके बाद प्रथम विश्व-युद्ध तक वह पुन दुगुनी हो गई। प्रथम महायुद्ध के बाद के एक दशक मे फिर दोहरी होने के बाद 1930 के दशक मे उसमे 50% वृद्धि हुई।

यह जापान का सौभाग्य था कि प्रथम महायुद्ध के दौरान उसकी कोई बरबादी नही हुई। 1914 से 1938 तक हुए तीव्र जापानी औद्योगिक विकास के लिए एक यह तत्त्व भी उत्तरदायी था। किन्तु 1939 से 1945 का द्वितीय महायुद्ध काल एक अलग कहानी है। पहली बार जापान ने स्वय को एक अन्तर्राष्ट्रीय युद्ध मे झोक दिया जिसने उसके उद्योगो पर करारी चोट की तथा उसकी समृद्धि की नीव को ही उखाड फेका।

द्वितीय महायुद्ध के दौरान व युद्धोत्तर-कालीन उद्योग

द्वितीय महायुद्ध के दौरान उद्योगो को सबसे अधिक हानि उठानी पडी। औद्योगिक उत्पादन छिन्न-विच्छिन्न हो गया। उद्योग के दौरान लगभग प्रत्येक उद्योग को युद्ध-सामग्री तैयार करने के लिए बाध्य होना पडा। इसका परिणाम शस्त्र-निर्माण व अन्य सैनिक सामग्री तैयार करने वाले उद्योगो के असन्तुलित विकास के रूप मे सामने आया।

द्वितीय महायुद्ध की समाप्ति तक लगभग सभी जापानी उद्योग बरबाद हो चुके थे। अधिकाश मशीने, भवन तथा उपकरण नष्ट हो चुके थे। उसके महान् औद्योगिक शहर मलबे के ढेर बन चुके थे। कच्चे माल का कही अता-पता ही नही रह गया था। परिणाम यह हुआ कि उसका औद्योगिक उत्पादन युद्ध-पूर्व के स्तर की तुलना मे एकदम नीचे गिर गया।

किन्तु जापानी उद्योगो का पुनरुद्धार उतना ही आश्चर्यजनक था जितना कि वह वेगवान था। 1950 से 1953 तक कोरियाई युद्ध ने जापानी उद्योगो के पुनरुद्धार मे सहायता की। इसके अलावा 'जापान मे बनी हुई' (Made in Japan) वस्तुओ की माँग द्वितीय विश्व-युद्ध के बाद अत्यधिक तेजी से बढी। युद्ध-पूर्व भारी उद्योगो पर दिया गया अधिक जोर भी उसके शीघ्र पुनरुद्धार मे सहायक रहा। इनमे

से अधिकाश भारी उद्योगो ने युद्ध के बाद तीव्र गति से प्रगति की। 1955 तक जापान द्वितीय महायुद्ध की बरबादी से एकदम उबर चुका था। 1963 मे तो उसका औद्योगिक उत्पादन निर्देशाक (1960=100) 142 तक पहुँच चुका था जबकि 1935 मे यह 29 था। वस्त्रो का उत्पादन 1955 से 1963 के बीच दुगुना हो गया। रसायनो का 1962 का उत्पादन युद्ध-पूर्व स्तर का चौगुना था। 1970 मे जापान मे 53 मिलियन कि० वा० बिजली का प्रजनन हो रहा था। 1974 व 1975 के अपवाद वर्षो के अलावा, जब तेल मूल्यो मे आकस्मिक तिगुनी-चौगुनी वृद्धि से उसकी औद्योगिक विकास दर शून्य हो चुकी थी, जापानी उद्योग 10% से अधिक ऊँची वार्षिक विकास दर से निरन्तर आगे बढ रहे हैं। 1979 मे जापान का औद्योगिक उत्पादन विश्व मे तीसरा सबसे विशाल राष्ट्रीय उत्पादन है। इस दृष्टि से जापान केवल अमरीका व सोवियत सघ से पीछे है।

सातवाँ अध्याय

महत्त्वपूर्ण भारी उद्योग

(IMPOTANT HEAVY INDUSTRIES)

दूसरे मेजी दशक के बाद जापान में एक औद्योगिक प्रणाली का स्वरूप उभरने लगा था। मशीनी तकनीक का आत्मसात्करण (assimilation), बैंकिंग व औद्योगिक पूँजी सचय, विश्व समृद्धि व वृद्धिगत मूल्यो के प्रसारात्मक (expansive) प्रभाव— सभी ने मिलकर तीव्र औद्योगिक उत्पादन सम्भव बनाया।[1]

1 वस्त्र उद्योग (Textile Industries)

वस्त्र उद्योगो का विकास जापानी अर्थव्यवस्था मे क्रान्ति लाने वाले तत्वो मे अकेला सबसे महत्त्वपूर्ण तत्त्व था। इसके विकास को तीन प्रमुख कालो में विभाजित किया जा सकता है।

मेजी काल 1868–1913

मेजी काल मे जापान मे रेशम उद्योग का उत्थान एक परम्परागत उद्योग के अन्तर्राष्ट्रीय माँग की प्रतिक्रिया के रूप मे आगे बढ जाने का उदाहरण था। प्रथम महायुद्ध के पहले तक विश्व मे रेशम माँग बराबर बढती रही। जापानी रेशम उद्योग ने बाजार मे प्रभुत्व स्थापित कर लिया। कच्ची रेशम का उत्पादन, जो 1893 मे 7 5 मिलियन पौंड था, 1913 तक बढकर 28 मिलियन पौंड हो गया। चीन व अन्य यूरोपीय प्रतिद्वन्द्वी काफी पिछड गये। 1898 के बाद अमरीका द्वारा रेशम पर आयात शुल्क बढा दिये जाने से कुछ कठिनाई अवश्य हुई। किन्तु रेशम के निर्यात 1913 तक भी सूती वस्त्र निर्यात से आगे ही रहे।

रेशम के उत्पादन मे वृद्धि तथा उसकी किस्म मे सुधार तकनीकी प्रगतियो द्वारा प्राप्त किये गये। रेशम के कीडे पालने व रेशम लपेटने, दोनो ही मे आधुनिकीकरण हुआ। हाथ मे चरखी पर लपेटने की जगह मशीनो का उपयोग शुरू हो गया। किन्तु उद्योग फिर भी प्रमुख रूप से छोटे पैमाने पर ही चलाया जाता रहा। रेशम के कीडे पालने मे लगभग 33% किसानो को पूरक आय प्राप्त होती थी। 1913 मे ग्रामीण क्षेत्रो में 4701 मशीन रीलिंग इकाइयाँ स्थापित हो जाने के उपरान्त रेशम हाथ से लपेटने वाली 2 84 लाख इकाइयाँ कार्यरत थी। रेशम बुनने का काम भी किसान लोग ही करते थे। रेशम उत्पादन मे मुख्य लागत तत्त्व उसमे लगने वाला

[1] W W Lockwood *op cit*, 28

श्रम ही था।

इस अवधि मे विकसित होने वाला दूसरे नम्बर का सबसे बडा उद्योग, जो बाद मे सही रूप मे बडे पैमाने पर उत्पादन वाला उद्योग भी बना, सूती वस्त्र उद्योग था। सूती वस्त्र उद्योग की प्रशसा मे यह बात कहनी होगी कि वह सम्पूर्ण विश्व मे औद्योगिक क्रान्ति करने मे अगुवा रहा है। इस अवधि मे जिन तत्त्वो ने सूती वस्त्र उद्योग के विकास मे अपना योग दिया वे इस प्रकार थे—(1) एक विशाल तैयार उपभोक्ता बाजार, (2) हस्तशिल्प के साथ इसका तालमेल, (3) कताई व बुनाई के लिए अल्प मजदूरी पर श्रमिको की उपलब्धि, (4) कपडा मिलो की पूँजी के लिए सीमित आवश्यकता (5) चीन व भारत से सस्ते कपास की प्राप्ति, तथा (6) पर्याप्त उष्ण जलवायु जो बुनाई के लिए उपयुक्त थी।

मेजी शासन के अन्तिम दो दशको मे सूती वस्त्र के उत्पादन मे फैक्ट्री प्रणाली मजबूती के साथ स्थापित हो गई थी। 1913 तक जापान के वस्त्र उद्योग का घरेलू बाजार पर पूर्ण वर्चस्व स्थापित हो चुका था। इसके अलावा वस्त्रो के निर्यात को बढाने के प्रयास पूरी तेजी से किये जा रहे थे तथा वस्त्र उद्योग को विश्व मे अगुवा बनाने के प्रयास जारी थे।

सूती वस्त्र उद्योग के क्षेत्र मे पर्याप्त प्रगति 1890 के बाद ही की जा सकी। 1899 तक वस्त्र उद्योग के क्षेत्र मे 1 17 मिलियन तकुओ से युक्त 83 मिल थे तथा सूत का उत्पादन 355 मिलियन पौण्ड हो चुका था। विशाल फर्मों द्वारा उद्योग को आधुनिक बनाने व शक्ति चालित करघे स्थापित करने के उद्देश्य से एक जापान कॉटन स्पिनर्स एसोसिएशन भी गठित की जा चुकी थी। 1913 तक उद्योग की क्षमता दुगुनी हो चुकी थी। उद्योग मे अब 2 4 मिलियन तकुवे (Spindles) थे तथा सूत उत्पादन 672 मिलियन पौंड हो चुका था। कारखानो का आकार व उनकी कताई क्षमता भी काफी बढ गई। विदेशी बाजारो मे उनकी प्रतिस्पर्द्धात्मक शक्ति बेहतर बाजार एव साख अवस्था तथा उद्योग के एकीकरण से और भी बढ गई थी।

जापान का सूत उत्पादन उसकी शिफ्ट प्रणाली (Shift System) के रात दिन काम करते रहने के कारण पश्चिमी यूरोप के देशो के मुकाबले 2 से 3 गुना था। शक्ति चालित करघो के उपयोग के बाद बुनाई मे भी क्रान्ति आ गई। 1913 मे इन शक्ति चालित करघो की सख्या 50,000 थी। किन्तु इस अवधि मे बुनाई कुटीर उद्योग ही बनी रही। उसमे महिला श्रमिक ही मुख्य रहे। मजदूरी तो जापानी स्तर से भी नीची थी। किसी प्रकार के फैक्ट्री कानून नही थे। कुछ अच्छी मिलो को छोडकर शेष सभी मे काम व जीवन की दशाएँ शोचनीय थी।

किन्तु सूती वस्त्र उद्योग अन्तर्राष्ट्रीय जगत मे अपना सिक्का जमा रहा था। 1913 तक जापानी सूत चौथाई विश्व को निर्यात होने लगा था। इसी तरह 1913 मे जापान अपनी मिलो मे विधायित (processed) आधा कपास विदेशो को भेज रहा था। 1900 के साथ 1913 की तुलना से स्पष्ट है कि कताई मिलो का उत्पादन 150% बढा जिसमे से आधे का निर्यात कर दिया गया। सूती वस्त्र बनाने

के लिए रुई का उपभोग करने वाले दुनिया के देशो मे जापान अग्रणी हो गया। 1913 मे जापान अपने रुई आयात का 60% भारत से तथा 25% अमरीका से मगवाता था। उसने ब्रिटेन व भारत को चीन के बाजारो से खदेड दिया था। किन्तु उसके निर्यात मोटे व भारी किस्म के कपडो के थे और वे दूर के बाजारो तक नही पहुँचे थे। अभी तक भी जापान विश्व बाजार मे लकाशायर मिलो के लिए गम्भीर चुनौती नही बना था। 1910–13 मे ब्रिटिश निर्यात जापानी निर्यातो का 30 गुना थे। स्वय जापान मे भी सूती वस्त्र उद्योग रेशम के बाद दूसरे स्थान पर था।

यह सही है कि इस अवधि मे बडे पैमाने के उत्पादन ने जापान की कुछ ही आर्थिक गतिविधियो को छुआ था। निम्न तालिका मे तकुओ की सख्या व उत्पादन मे प्रथम महायुद्ध के पहले के 25 वर्षो मे हुई वृद्धियां दिखाई गई है—

वर्ष	तकुओ की सख्या (हजारो मे)	सूत का उत्पादन (मिलियन पौड म)	कताई कम्पनियो की सख्या
1887	77	—	—
1893	382	88	40
1897	971	220	74
1903	1,381	317	51
1907	1,540	393	42
1913	2,415	607	44

वस्त्र उत्पादन की एक अन्य महत्त्वपूर्ण शाखा जो पूरी तरह पश्चिमी देशो के सम्पर्क से ही विकसित हुई, ऊन उद्योग थी। सरकार ने 1877 मे सैनिको की वर्दी बनाने के लिए एक फैक्ट्री लगाई थी। इसके बाद 1890 मे कुछ निजी फर्मे भी लगी जो सैनिको के लिए कपडा, कम्बले आदि बनाती थी। ऊनी कपडो का उत्पादन, जो 1903 मे 8 2 लाख गज था, 1913 मे बढकर 17 6 लाख गज हो गया। किन्तु ये मिल आयातित ऊनी धागे पर आश्रित थे। उद्योग पर कुछ बडी कम्पनियो का अधिकार था। 1913 मे ऊनी उद्योग के कुल उत्पादन का मूल्य 24 मिलियन येन था।

मेजी युग के अन्त तक वस्त्र उद्योग जापान के विनिर्माण मे सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण उद्योग बन चुका था। 1913 मे विनिर्माण उद्योगो मे लगे हुए कुल श्रमिको मे से 60% वस्त्र उत्पादन करने वाले कारखानो मे लगे थे। वस्त्र उत्पादन के कुल मूल्य मे 37% भाग रेशमी चीजो का तथा 53% भाग सूती वस्त्र का था।

मेजी युग का वस्त्र उद्योग एक ऐसी आर्थिक गतिविधि का प्रतिनिधित्व करता है जिसमे उसकी परम्परागत कृषक अर्थव्यवस्था तथा एक नवीन पूंजीवादी अर्थव्यवस्था एक दूसरे से मिलते है। विशाल कताई मिल निश्चय ही पूँजीवादी क्षेत्र का प्रतिनिधित्व करते थे किन्तु वे भी अपने श्रमिको की आपूर्ति हेतु किसान परिवारो पर निर्भर करते थे। इस तरह सूती, ऊनी तथा रेशमी वस्त्रो के उत्पादन मे लगी विशाल इकाइयो को भी पुराने समाज के साथ तालमेल स्थापित कर चलना पड रहा था।

विस्फोटात्मक प्रगति 1914–1938

प्रथम महायुद्ध काल तथा उसके बाद के वर्षो ने वस्त्र उत्पादन के क्षेत्र

मे भारी तकनीकी परिवर्तन प्रारम्भ किये। सूती वस्त्र, ऊन व रेशम उद्योगो के बारे मे उपलब्ध आंकडो से उनकी इसी तीव्र प्रगति का पता चलता है।

वर्ष	सूत उत्पादन (मिलियन पौंड)	कच्चा रेशम (हजार क्वान)	ऊनी कपडा (मिलियन गज)
1913	607	3,741	81
1920	727	5,834	71
1925	975	8,284	161
1929	1,117	11,292	222

इन आंकडो से स्पष्ट है कि वस्त्र उद्योग ने 1914 के बाद भारी प्रगति की। रेशम उद्योग की भारी प्रगति भी माँग पक्ष की तरफ तो अमरीका मे रेशम की भारी खपत से तथा पूर्ति पक्ष की तरफ उत्पादन की विधियो मे हुए सुधार व अनुसन्धान से प्रभावित एव लाभान्वित हुई। अमरीका मे जापानी रेशम फैशनेबल कपडो के लिए लोकप्रिय बन गया था।

उधर सूती वस्त्र उद्योग मे भी भारी प्रगति हुई। तकुओ की सख्या 1913 के 2 4 मिलियन से बढकर 1929 तक 6 65 मिलियन हो गई। मिल भी बहुत बडे बन गये। वस्त्र उद्योग मे एकीकरण की प्रवृत्ति भी जोर पकड गई थी तथा 1929 तक देश के 56% तकुवे केवल 7 इकाइयो के अधिकार मे आ चुके थे। 1913 से 1929 के बीच कताई व बुनाई की गतिविधियाँ सयुक्त रूप से भी की जाने लगी। कताई करने वालो (Spinners) के पास करघो की सख्या 1913 के 24,000 से बढकर 1929 तक 74,000 हो गई। उनका वस्त्र उत्पादन चौगुना हो गया। अब वस्त्र उद्योग ने अच्छे किस्म का कपडा भी बनाना आरम्भ कर दिया। सबसे महत्वपूर्ण परिवर्तन विशालकाय शेड (Sheds) स्थापित होने का रहा जिनमे 50 से भी अधिक शक्तिचालित करघे लगे होते थे।

मोटे रूप मे 1929 तक उद्योग के मुख्य अवयव निम्न थे . (1) कताई मिलें जो धागा बुनकरो व निर्यात के लिए तैयार कर रही थी, (2) बडे कताई-बुनाई मिल जो अपने सूत का स्वय उपयोग करते तथा निर्यात के लिए कपडा बना रहे थे, (3) मध्यम आकार के बुनाई शेड (Weaving Sheds) जो शक्तिचालित करघो का उपयोग करते तथा निर्यात के लिए कपडा बना रहे थे, (4) छोटे बुनाई शेड जिनमे 50 से कम करघे थे तथा जो घरेलू बाजार के लिए कपडा बुनते, तथा (5) अवनति की ओर अग्रसर घरेलू उद्योग जिनमे हथकरघे लगे थे।

1926 के बाद कताई व बुनाई दोनो ही क्षेत्रो मे कार्यकुशलता मे आश्चर्यजनक वृद्धि हुई। ऊन उद्योग को प्रथम महायुद्ध से बहुत प्रोत्साहन मिला। सूत का उत्पादन 1921 के 21 मिलियन पौण्ड से बढकर 1929 तक 64 मिलियन पौण्ड हो गया। 1920 के बाद घरेलू स्तर पर ऊनी वस्त्रो की बढी हुई माँग मे भी प्रमुख भाग जापानी ऊन उद्योग को ही मिला।

इन आंकडो को देखते हुए यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि अग्रणी वस्त्र

उद्योगो का 1913 से 1929 के बीच काफी तीव्र विकास हुआ। उनके उत्पादक तरीको तथा उनकी कार्य-कुशलता मे भारी सुधार हुए। इतना ही नही, वस्त्र-निर्माण मे लगे उद्योगो ने जापानी औद्योगिक प्रणाली मे अपना महत्त्वपूर्ण स्थान बनाये रखा। 1930 मे उनमे कुल श्रमिको में से 25% श्रमिक लगे थे।

तकनीकी प्रगति सूती वस्त्र उद्योग में अधिक उल्लेखनीय रही। उत्पादन के पैमाने मे भी भारी वृद्धि हुई। कार्यरत तकुओ की औसत सख्या 1929 के 5 8 मिलियन से बढकर 1935 मे 8 2 मिलियन पर जा पहुँची।

सूत उत्पादन

(मिलियन पौंड मे)

1913	492
1923	796
1929	1,026
1934	1,158
1937	1,485

सूती चीजो के निर्यात भी इस अवधि में तेजी से बढे जिसका सकेत निम्न तालिका से मिलता है

सूती वस्तुओ (Cotton goods) का निर्यात

(मिलियन येन मे)

वर्ष	राशि
1913	34
1918	238
1921	206
1925	433
1929	413
1931	199
1934	492
1936	484

सूती वस्त्र उद्योग मे कुल करघो की सख्या

(हजारो मे)

करघों का प्रकार	1922	1929	1936
हथ करघ	165	86	51
छोटे शक्ति चालित करघे	122	106	76
चौडे शक्ति चालित करघे	96	171	266

द्वितीय महायुद्ध व युद्धोत्तर काल

द्वितीय महायुद्ध ने वस्त्र उद्योगो को बुरी तरह क्षतिग्रस्त कर दिया था। उधर रेशम उद्योग को कच्चा माल न मिलने से हानि हो रही थी। युद्ध के बाद रेशम उद्योग को उसके पुराने उत्पादन स्तर तक पहुँचाने के प्रयास किये गये। मजदूरी व लागतो मे भारी वृद्धि हो जाने के कारण युद्ध के बाद रेशम उद्योग मे कुछ सरचनात्मक परिवर्तनो की आवश्यकता थी। श्रम बचत के उपाय शुरू किये गये। किन्तु इन सबसे कोई लाभ नही हुआ क्योकि युद्ध के बाद तो रेशम उद्योग की माग ही घट जाने से उसकी अवनति हो रही थी। फिर मनुष्य-निर्मित कृत्रिम धागो से बने कपडो ने तो रेशम की माग को और भी घटा दिया। निर्यातो मे उसका भाग इस स्तर तक गिरा कि 1936 मे 85 मिलियन गज से घटकर वे 1963 मे 62 मिलियन गज पर आ गये। 1979 तक रेशम का जापान के निर्यातो मे प्रतिशत भाग नगण्य हो चुका है।

सूती वस्त्र उद्योग को भी द्वितीय महायुद्ध से उतनी ही हानि हुई। 1937 मे कार्यरत 285 मिलो की जगह 1945 मे सिर्फ 38 मिल सुरक्षित बच रहे थे। इसी अवधि मे तकुओ की सख्या 12 5 मिलियन से घटकर 2 मिलियन पर तथा करघो की सख्या 1,16,000 से घटकर 23,000 पर आ गई। द्वितीय महायुद्ध मे सूती वस्त्र उद्योग की इस विशाल स्तर पर हुई बरबादी ने उसके पुनर्निर्माण को एक गम्भीर समस्या बना दिया।

कच्ची रुई के अभाव ने समस्या को और भी विकट व पेचीदा बना दिया। 1946 मे अमरीकी आधिपत्य वाली सैनिक सरकार ने सयुक्त राष्ट्र सघ वस्तु साख निगम से प्रार्थना की कि वह जापान को 2 लाख रुई की गाँठे भिजवाए। आधिपत्य सरकार (Occupation Government) ने सूती वस्त्र उद्योग की क्षमता को 4 मिलियन तकुओ तक प्रतिबन्धित कर दिया। यह सीमा 1937 मे जापान द्वारा प्राप्त की जा चुकी क्षमता का भी एक-तिहाई थी।

जब 1952 मे अमरीकी आधिपत्य समाप्त हुआ तो सम्पूर्ण उद्योग को पुनर्गठित करने के प्रयास नये सिरे से प्रारम्भ किये गये। कई मिलो ने नवीनतम मशीनें प्राप्त कर ली तथा प्रति मानव घण्टा उत्पादकता एकदम बढने लगी। साथ ही साथ कृत्रिम रेशो वाले उद्योग मे भी विनियोग किया गया। अब सम्पूर्ण उद्योग पर 10 बडी फर्मों का नियन्त्रण है। उनके अलावा लगभग 8,200 स्वतन्त्र उत्पादक हैं। 10 विशाल कम्पनियो का लगभग 109 मिलो पर नियन्त्रण है। इनमे 1 4 लाख मजदूर लगे है। छोटे स्वतन्त्र निर्माताओ ने भी 1 लाख मजदूर रखे हुए है। जापान ने वस्त्र उत्पादन व निर्यात के क्षेत्र मे विश्व म प्रथम स्थान प्राप्त कर लिया है। हालाकि भारत, ब्रिटेन की सूती वस्तुएँ तथा अमरीकी कृत्रिम रेशे के कपडे उसके बहुत निकट के प्रतिद्वन्द्वी हैं। 1969 मे जापान का कृत्रिम रेशो का उत्पादन 13 मिलियन टन तथा सूती वस्त्र का उत्पादन 280 मिलियन गज था।

1979 मे स्थिति के विश्लेपण से यही पता चलता है कि कृत्रिम रेशो वाले

उद्योगो ने सूती वस्त्रो से बाजी मार ली है । इजीनियरिंग व रासायनिक वस्तुओ के उत्पादन व निर्यात मे वृद्धि हो जाने से जापान के निर्यातो मे सूती वस्त्र के निर्यात का प्रतिशत भाग भी घटता जा रहा है । अब देश के निर्यातो मे उसका प्रथम स्थान नही है जैसा कि 1930 के बाद के दशक मे था ।

2. लोहा व इस्पात उद्योग

तलवार निर्माताओ के रूप मे जापानी शिल्पियो को शताब्दियो तक प्रतिष्ठा मिलती रही । किन्तु हुआ कुछ इस तरह कि विभिन्न धातुओ जिनमे लोहा व इस्पात भी सम्मिलित है, के उत्पादन मे पश्चिमी उत्पादन पद्धतियाँ अपनाने मे जापान को सर्वाधिक कठिनाई हुई । इस कठिनाई के लिए कई कारण उत्तरदायी थे

(1) धातु व भारी इजीनियरिंग सामान के उत्पादन मे अधिक खर्चीली पूँजीगत वस्तुएँ चाहिए थी ।

(2) *धातु विनिर्माण के वर्तमान तरीके परम्परागत तरीको से अत्यधिक भिन्न* थे । उनके लिए उच्च वैज्ञानिक जानकारी तथा प्रशिक्षित श्रमिको की आवश्यकता थी ।

(3) किसी भी देश के लिए धातुओं को सर्वोत्तम पैमाने पर विनिर्मित करना तभी सम्भव है जब वहाँ कई धातुओं का एक साथ विनिर्माण होता हो । उसके लिए विशाल बाजार भी आवश्यक था ।

(4) कोयले व लोहे, दोनो ही के अभाव के कारण भी जापान को काफी कठिनाई थी । *उद्योग को भारी मात्रा मे सरकारी सरक्षण की आवश्यकता थी ।* इसे सरकारी सहायता राजनीतिक कारणो से अधिक व आर्थिक लाभो से कम मिली ।

प्रथम अवस्था 1881–1914

प्रारम्भिक मेजी वर्षों मे लोहे का घरेलू उत्पादन उतना था जितना लोहा-युक्त रेत से प्राप्त हो पाता था । 1896 मे लोहे का घरेलू उत्पादन मात्र 26,000 *टन था । इस्पात का उत्पादन देश मे शून्य था तथा 2 2 लाख टन की सम्पूर्ण* आवश्यकता आयात द्वारा पूरी होती थी । सरकार ने 1901 मे यवाता आयरन

लोहा व इस्पात उद्योग

(हजार टनो मे)

वर्ष	लौह पिंड	तैयार इस्पात
1896	26	1
1906	145	69
1913	243	255
1920	521	533
1925	685	1,043
1929	1,087	2 034
1931	917	1,663
1936	2 008	4 539

Source Department of Commerce and Industry, Japan

वर्क्स के नाम से एक कारखाना लगाया। कुछ वर्षों बाद कई निजी कम्पनियो द्वारा भी बहुत से कारखाने लगाये गये। इसके परिणामस्वरूप 1913 तक लोह पिंडो का उत्पादन 2,43,000 टन तथा इस्पात का उत्पादन 2,55,000 टन तक पहुँच गया। इससे घरेलू आवश्यकताओ का क्रमश 48% व 34% पूरा होता था। शेष आयात किया जाता था। तकनीकी कठिनाइयो तथा कच्चे लोहे व कुकिंग कोयले की कमी के कारण इस उद्योग को काफी कठिनाइयाँ उठानी पडी।

प्रसार का काल 1914–1938

हालांकि 1914 से 1929 के बीच धातु विनिर्माण उद्योगो का काफी प्रसार हुआ किन्तु अभी भी ये गौण महत्त्व की ही रही। 1929 मे इस्पात उत्पादन 2 मिलियन टन से कुछ ऊपर था किन्तु फिर भी जापान को आयातो पर निर्भर रहना पडता था। आशाजनक तथ्य यही था कि आयातो पर उसकी यह निर्भरता निरन्तर घटती जा रही थी। प्रथम महायुद्ध से पहले तक अपने घरेलू उत्पादन से जापान को उसकी जरूरतो का 30% इस्पात मिल पाता था। 1929 मे यह प्रतिशत 70 तक पहुँच गया। 1929 मे लोह पिंड उत्पादन भी 1913 की तुलना मे चार गुना हो चुका था। धातु गलाने की भट्टियो के लिए 90% कच्चा लोहा चीन व मलाया से आयात किया जाता था। अधिकाश लोह पिंडो का उत्पादन यवाता आयरन वर्क्स मे होता था।

लोहा व इस्पात बनाने के तरीको मे भी सुधार हो रहा था। 1929 से 1936 के बीच भट्टियो की औसत क्षमता दुगुनी हो गई। बिजली से गलाए जाने वाले इस्पात का भी उत्पादन बहुत तेजी से बढने लगा। इसने जापान की उच्च किस्म का इस्पात बना सकने की क्षमता का सकेत दिया। विभिन्न प्रकार के इस्पात तैयार कर सकने की उसकी क्षमता भी काफी बढ गई।

द्वितीय महायुद्ध व उसके बाद

लोहा व इस्पात उन उद्योगो मे से था जिन्होने द्वितीय महायुद्ध के वर्षों मे ही कीर्तिमान स्थापित किये। इसका परिणाम यह हुआ कि 1943 मे जापान के के पास सम्पूर्ण क्षेत्र का सबसे विशाल लोहा व इस्पात उद्योग था। इस्पात का उत्पादन 1944 मे अपने सर्वोच्च बिन्दु पर था। युद्ध समाप्त होने के बाद भी इनमे से कारखाने सही सलामत बच गये किन्तु समस्या कच्चे माल के अभाव की थी। अमरीकी आधिपत्य वाली सरकार ने जापान के लोहा व इस्पात उद्योग को पुनर्स्थापित करने मे अधिक रुचि नही ली।

किन्तु अमरीकी आधिपत्य के काल मे इस उद्योग मे कई परिवतन हुए। सरकारी स्वामित्व वाली निप्पोन सेतेत्सु कम्पनी व जैबत्सु के स्वामित्व वाली अन्य कम्पनियो को पुराने यवाता वर्क्स तथा एक नई कम्पनी फुजी आयरन एण्ड स्टील कम्पनी के अन्तर्गत पुनगठित किया गया। ये दोनो कम्पनियाँ तथा एक अन्य तीसरी कम्पनी निप्पोन कोकन कम्पनी मिलकर आधुनिक समय की तीन सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण

इस्पात उत्पादक फर्म बन चुकी है।

लोह पिंड उत्पादन 1949 म 1 5 मिलियन टन तथा इस्पात उत्पादन 3 मिलियन टन था। 20 वर्षों के अन्तराल में वह कई गुना हो गया। 1969 में उसका इस्पात उत्पादन 82 मिलियन टन था। इस्पात के उत्पादन म अब दुनिया भर में जापान अमरीका व रूस के बाद तीसरे स्थान पर है। जापान ने इस्पात के उत्पादन में 100 मिलियन टन का लक्ष्य पार कर लिया है तथा 1980 के बाद किसी भी समय वह अमरीका व रूस से भी आगे निकलने की महत्वाकाक्षा रखता है। 1978–79 के निर्यातो मे इस्पात का स्थान काफी प्रमुख रहा है।

3 कोयला खनन उद्योग

पुनर्संस्थापना के बाद पहली आधुनिक कोयला खान क्युशु (Kyushu) मे शुरू की गई। 1883 के बाद होक्वेइडो कोयला क्षेत्र का विदोहन शुरू किया गया। लोहा व इस्पात उद्योग के विकास के साथ और अधिक कोयले की खोज का काम तेज किया गया।

आरम्भिक वर्ष 1881–1914

शुरू मे कोयले का उत्पादन काफी कम था किन्तु 1894 के बाद औद्योगीकरण की गति बढने के साथ ही उसके उत्पादन मे भी तेजी से वृद्धि होने लगी। 1913 तक जापान मे 100 खनन कम्पनियाँ थी जिनकी प्रदत्त पूँजी 39 मिलियन येन थी। उनमे 1 7 लाख खनिक कार्यरत थे।

1890 के बाद जापान थोडी-थोडी मात्रा मे कोयले का निर्यात करने लग गया तथा 1913 तक वह 3 मिलियन टन प्रति वर्ष तक पहुँच चुका था। देश मे ही उसका सबसे विशाल खरीदार नमक उद्योग था। 1890 के बाद जब विनिर्माण उद्योगो मे भाप की शक्ति का प्रयोग आरम्भ हो गया तो वे कोयले के सबसे बडे उपभोक्ता बन गये। इस अवधि मे अधिकाश कोयला उत्पादन कुछ ही फर्मों द्वारा किया जाता था जो जैबत्सु से सम्बन्धित थी। 1913 मे प्रति कार्यरत व्यक्ति उत्पादन 123 टन ही था तथा प्रति व्यक्ति शिफ्ट (Per Man-Shift) उत्पादन 0 53 टन आता था।

तीव्र विकास 1914–1938

प्रथम महायुद्ध के दौरान जापान के कोयला उत्पादन मे काफी तीव्र गति से वृद्धि हुई। युद्ध के वर्षो मे कोयला उत्पादन मे कुल मिलाकर 10 मिलियन टन की वृद्धि हुई। किन्तु उसके बाद 1929 तक कोयला उद्योग की प्रगति काफी धीमी रही।

1936 मे कोयले के उत्पादन मे 1931 के मुकाबले महत्त्वपूर्ण वृद्धि हो जाने के उपरान्त कोकिंग कोयले का आयात जारी रहा। यह आयात उसके इस्पात उत्पादन के लिए आवश्यक था।

कोयला उत्पादन

(मिलियन टनो मे)

1875	0 6	1921	26 2
1885	1 2	1925	31 5
1895	5 0	1929	34 3
1905	13 0	1931	28 0
1913	21 3	1936	41 8
1919	31 3		

द्वितीय महायुद्ध के बाद

द्वितीय महायुद्ध के दौरान हुई बरबादी ने कोयला खान उद्योग पर कुछ समय के लिए विपरीत प्रभाव डाला। किन्तु उद्योग ने 1947 तक अपना युद्ध-पूर्व का उत्पादन स्तर पुन प्राप्त कर लिया था। 1948 से 1953 की अवधि कोयला उद्योग के लिये पुनरुद्धार का काल था।

एक अनुमान के अनुसार जापान के सम्पूर्ण कोयला भण्डार विश्व कोयला भण्डारो का मात्र 0 4% है। 1969 मे भी कोकिंग कोयले (Coking Coal) के लिए 52 मिलियन टन की माँग रही जिसमे से आधे से अधिक आयात किया गया। 1979 तक जापान की कोयला माँग 100 मिलियन टन के करीब पहुँच चुकी है। किन्तु अपने कोयला भण्डारो की सीमितता का ख्याल करते हुए तथा कोयले की घटिया किस्म को देखते हुए सरकार अब जल-विद्युत क्षमता के विकास पर अधिक बल दे रही है। खनिज तेल की कीमते 1979 तक चौगुनी हो जाने के बाद वैकल्पिक ऊर्जा स्रोत का विकास जापानी विनिर्माण उद्योगो के लिए जीवन-मरण का प्रश्न बन गया है।

4 इन्जीनियरिंग व रसायन उद्योग

मेजी युग मे इन्जीनियरिंग उद्योग कोई भी सम्मानजनक आकार प्राप्त करने मे असफल रहा था हालाकि 1979 मे वह जापान के विनिर्माण उद्योगो के क्षेत्र मे सर्वप्रमुख स्थान पर है। मेजी शासन काल के अन्तिम वर्षों तक भी अपने व्यापारिक जहाजो मे से अधिकाश जापान ने विदेशी पोत-निर्माण स्थलो से ही प्राप्त किये थे। कुछ सरकारी पोत-निर्माण स्थलो को निजी व्यावसायियो को सौप दिया गया। कुछ नये निजी पोत-निर्माण स्थल (Shipyards) जैसे ओसाका आयरन वर्क्स तथा ओनो शिप बिल्डिंग कम्पनी भी स्थापित हुए।

जहाज-निर्माण के काम मे तेजी 1896 के जहाज-निर्माण प्रोत्साहन अधिनियम के पारित होने के बाद आयी। 1913 तक देश मे 6 ऐसे पोत-निर्माण स्थल थे जहाँ 1,000 टन से अधिक क्षमता वाले जहाज बन सकते थे। जहाज-निर्माण उद्योग मे इस समय 26,000 श्रमिक लगे हुए थे।

१ मेजी काल मे रेलो, जहाजो, फैक्ट्रियो आदि के निर्माण के लिए आवश्यक

अधिकाश औजारो व उपकरणो का आयात करना पडता था। किन्तु इस काल मे स्थापित की गई कुछ इन्जीनियरिंग कम्पनियाँ जैसे शिबौरा इन्जीनियरिंग वर्क्स, 1887, टोक्यो इलैक्ट्रिक कम्पनी तथा कावासाकी कम्पनी बाद के वर्षों मे काफी महत्त्वपूर्ण बन गयी।

इन्जीनियरिंग उद्योग की प्रदत्त पूंजी 1893 के 2 6 मिलियन येन से बढकर 1913 मे 61 मिलियन येन हो गई। विद्युत सप्लाई कम्पनियो मे विनियोग की गई पूंजी 1893 के 2 मिलियन येन से बढकर 1913 तक 200 मिलियन येन तक पहुँच चुकी थी। 1913 मे इन उद्योगो मे 60,000 से अधिक लोग कार्यरत थे।

हल्के इन्जीनियरिंग उद्योगो की कुछ शाखायें जैसे साइकिल निर्माण, जो बाद के वर्षों मे काफी प्रमुख बन गई, इसी अवधि मे शुरू की गई थी। इन उद्योगो मे साइकिल निर्माण उद्योग प्रमुख व्यवसाय बना। हालाकि साइकिलो का उत्पादन 1914 मे काफी कम था तथा उसके अधिकाश हिस्से-पुर्जे भी आयात किये जाते थे किन्तु इस उद्योग का उल्लेख इसलिए जरूरी है कि वह नये उद्योगो की शुरुआत का एक प्रारम्भिक उदाहरण है। ऐसे ही उद्योग बाद मे जापान के विनिर्माण मे प्रमुख बन गये।

तीव्र प्रगति . 1914–1938

भारी इन्जीनियरिंग की एक प्रमुख शाखा के रूप मे जहाज-निर्माण उद्योग प्रथम महायुद्ध के बाद एक प्रमुख उद्योग बन गया। 1919 मे कुल व्यापारिक जहाजो का टन भार जिन्हे जापानी पोत-निर्माण स्थलो मे तैयार किया गया था, 6,50,000 टन था।

जहाज निर्माण

वर्ष	वाष्पचालित जहाज (हजार टन मे)
1919	646
1922	71
1929	165
1932	54
1936	295

इन्जीनियरिंग की कुछ अन्य शाखाओ मे प्रगति अधिक तीव्र थी। घडियो, वाहनो तथा औजारो का आयात निरन्तर गिरता गया जो इस बात का द्योतक था कि इनका देश मे ही उत्पादन बढ रहा था। यह गिरावट रेलो के रोलिंग स्टॉक, बिजली के उपकरण, वस्त्र मशीनरी तथा छपाई की मशीनो मे अधिक स्पष्ट थी। पैडल चालित साइकिलो का उत्पादन भी काफी तेजी से बढा तथा 1920 तक जापान साइकिलो मे आत्मनिर्भर हो गया।

1929 के पहले लगभग सारे टरबाइन (Turbine) आयात किये जाते थे। 1937 तक उनमे से अधिकाश जापान मे बनने लग गये। 1936 तक विशाल आकार की इस्पात ढलाई का काम भी किया जाने लगा। कई विदेशी विशेषज्ञो ने भी माना कि जापान की इन्जीनियरिंग वस्तुओ की किस्म मे काफी सुधार हुआ था।

रसायन उद्योग का आरम्भ 1920 के बाद ही हुआ। 1920 मे रासायनिक खाद का कुल उत्पादन 5,89,000 टन था। 1929 तक यह बढकर 11,81,000 टन हो गया। 1929 के बाद रसायन उद्योग मे भी स्पष्ट सुधार हुए। रासायनिक खाद के कारखानो का पैमाना काफी बढा दिया गया।

द्वितीय महायुद्ध व उसके बाद

युद्ध ने इन्जीनियरिंग उद्योग को तीव्रता प्रदान की। 1944 मे इन्जीनियरिंग वस्तुओ का उत्पादन 1937 की तुलना मे तीन गुना था। युद्ध के तुरन्त बाद सत्तारूढ हुई अमरीकी आधिपत्य वाली सरकार को यह पसन्द नही था कि जापान एक महत्त्वपूर्ण इन्जीनियरिंग राष्ट्र बने। इससे पुन एक बार सैनिक खतरा पैदा हो सकता था। द्वितीय महायुद्ध के बाद के वर्षों मे कच्चे माल तथा पूँजी का अभाव भी इन्जीनियरिंग उद्योग के विकास मे प्रमुख बाधाएँ बने हुए थे। आधिपत्य सरकार ने जैबत्सु का समाप्तीकरण कर दिया था जिससे स्थिति और भी जटिल बन गई थी।

मगर 1950 का कोरियाई युद्ध जापान के इन्जीनियरिंग उद्योग के लिए जैसे भगवान का दिया हुआ कोई वरदान था। इस घटना ने आधिपत्य सरकार का दृष्टिकोण भी बदल दिया। जहाज निर्माण के क्षेत्र मे सबसे शानदार प्रगति हुई। इस क्षेत्र मे जापान 1956 तक दुनिया के सभी देशो से आगे निकल गया तथा विश्व का पहले नम्बर का जहाज निर्माता बन गया। 1978–79 मे बने 50% से भी अधिक तेल-वाहक जहाज (Tankers) जापानी पोत निर्माण स्थलो पर तैयार किये गये। वर्तमान मे जापान मे 1000 से भी अधिक पोत-निर्माण स्थल है। 1967 मे जापान ने कुल मिलाकर 17 मिलियन टन भार के व्यापारिक जहाज बनाये थे। 1969 मे यह टन भार बढकर 93 मिलियन टन हो गया जिसमे से 28 मिलियन टन का तो निर्यात किया गया था। वर्तमान मे जापान विश्व मे बनने वाले कुल जहाजो मे से 50% अकेले बनाता है।

द्वितीय महायुद्ध मे पहले जापान कारो का आयात करता था तथा इस उद्योग की विशेष प्रगति नही हुई थी। मगर 1960 के बाद से यह उद्योग अत्यधिक महत्त्वपूर्ण बन गया है। अधिकाश यूरोपीय देशो व यहाँ तक कि अमरीका के मोटरकार बाजारो मे जापानी कारो का अम्बार लग गया है। 1969 मे जापान अमरीका के बाद विश्व का दूसरे नम्बर का सबसे बडा कार निर्माता राष्ट्र बन गया। 1969 मे उसने 4 7 मिलियन से भी अधिक कारो का निर्माण किया था। 1960 से 1965 के बीच जापानी कारो के निर्यात 15 गुना हो गये। 1969 मे लगभग 1 मिलियन कारो का निर्यात किया गया। जापानियो का इरादा 1979–80 तक विश्व बाजार मे जापानी कारो का ढेर लगा देने का है। ये कारें अमरीका व यूरोप के बाजारो मे तो वहाँ की स्थानीय कारो से भी अधिक लोकप्रिय है। जापान का रासायनिक खादो का निर्यात भी बहुत ऊँचाई तक पहुँच चुका है। 1969 मे वह 315 मिलियन येन मूल्य तक पहुँच गया था। रासायनिक खाद का घरेलू उपभोग भी जापान मे विश्व मे सर्वाधिक है।

आठवाँ अध्याय

आर्थिक विकास में जैबत्सु की भूमिका

(THE ROLE OF THE ZAIBATSU)

मेजी युग[1] में बड़े पैमाने वाले उद्योगों के विकास की चर्चा करते समय पीर-बवर्ची-भिश्ती-खर (Jack of all trades) जैसे सगठन जैबत्सु, जिसने वित्तीय गुट बनाकर प्रबन्ध के क्षेत्र मे एक नई प्रवृत्ति को जन्म दिया, को अलग से देखना आवश्यक है। पुनर्संस्थापना के बाद के प्रारम्भिक वर्षो मे अधिकाश नये प्रतिष्ठान विशेषज्ञ व्यावसायियो द्वारा शुरू किये गये। इन लोगो ने जापानी अर्थव्यवस्था मे पहले भी अपना साधारण-सा स्थान बना रखा था। किन्तु एक तरह से सभी लोग इस दृष्टि से नौसीखिये ही थे। उस समय कुछ ऐसा माहौल था कि अगर किसी के पास थोडी पूँजी की शक्ति व सक्षम प्रबन्धकीय कर्मचारी होते तो वह उद्योग के किसी भी क्षेत्र मे तुलनात्मक दृष्टि से काफी लाभकारी स्थिति प्राप्त कर सकता था। इन परिस्थितियो मे जागरूक साहसकर्त्ता, जिन्होंने थोडी-बहुत पूँजी एकत्रित कर ली थी, ऐसे व्यवसायो पर अधिकार जमाने व उन्हे सफलतापूर्वक चलाने मे सफल हुए जिनसे मूल रूप से उनका कभी कोई सम्बन्ध नहीं रहा था। उदाहरण के लिए प्रमुख जैबत्सु घराना मित्सुई जो व्यापार के क्षेत्र मे प्रारम्भ होकर बैंकिंग, कोयला खनन व धातु खनन के क्षेत्रो मे महत्त्वपूर्ण बन गया, मित्सुबिशि घराना जहाजी सेवा के क्षेत्र मे प्रारम्भ हुआ मगर उसने जहाज निर्माण, कोयला तथा धातु-निर्माण के क्षेत्रो मे भी प्रवेश कर लिया। अन्य लोग, जो समृद्ध बने, वे ही थे जिन्होने अन्तर्सम्बन्धित विशाल उपक्रमो मे भारी विनियोग किया था। इनमे सूत कताई के क्षेत्र मे सूत के थोक व्यापारियो द्वारा विनियोग या रेल-मार्गों के निर्माण मे क्युशु कोयला खान मालिको द्वारा किये गये विनियोगो को उदाहरण के रूप मे लिया जा सकता है। इस तरह निजी व्यक्तियो द्वारा सचित की गई पूँजी को न केवल उन लोगो द्वारा अपने मूल व्यक्तिगत उपक्रमों को विशाल पैमाने के प्रतिष्ठानो के रूप मे विकसित करने पर विनियोग किया गया बल्कि उसे अर्थव्यवस्था के अन्य क्षेत्रो मे भी विशाल पैमाने की औद्योगिक इकाइयां गठित करने के उपयोग मे लिया गया।

'जैबत्सु'[2] का शाब्दिक अर्थ 'धनी गुटो' (Money cliques) से है जिसे विभिन्न क्षेत्रो मे अपनी गतिविधियाँ फैलाये हुए कुछ महान् जापानी औद्योगिक घरानो को इगित करने के लिए उपयोग मे लाया जाता है। सब कामो के थोडे-थोडे जानकार

[1] K. Takahashi, *op cit*, 254-55
[2] G C Allen, *op cit*, 125

इस 'जैवत्सु' का ढाँचा वैसे तो मेजी युग के दूसरे दशक मे ही बनना आरम्भ हो गया था किन्तु उस युग मे और विशेष रूप से विकास की उस अवस्था मे जब उन लोगो से बड़ी आशाएँ की जाती थी जो अपने विशाल पूँजी भण्डारो के साथ व्यवसाय के प्रति उत्साह का अच्छा समागम कर सकते थे, इन बहुउद्देश्यीय या बहुमुखी व्यावसायिक सगठनो (Zaibatsu) के माध्यम से उद्यमियो को बहुत लाभ कमाने के अवसर मिल रहे थे। समय के साथ-साथ इस नई प्रबन्धकीय प्रवृत्ति ने विशाल जैवत्सु फर्मों को जन्म दिया। मित्सुई, मित्सुबिशि, सुमीतोमो तथा यासुदा चार सबसे बड़े जैवत्सु थे किन्तु अन्य अनेक छोटी व मध्यम इकाइयाँ भी इन्ही चिह्नो पर विकसित हुईं जो जापान के आर्थिक विकास की एक विशिष्टता बनी। (अमरीकी आधिपत्य वाली सरकार (1945–52) ने इन सभी कम्पनियों का समाप्तीकरण कर दिया था।) यह कहने मे कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी कि मेजी युग मे जापान के आधुनिक बड़े पैमाने के औद्योगिक प्रतिष्ठानो की स्थापना का बहुत कुछ श्रेय जैवत्सु द्वारा आरम्भ किये गये उपक्रमो को ही रहा।

इन प्रमुख और गौण जैवत्सु इकाइयो ने जापान के आर्थिक उत्थान मे बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई तथा दोनो महायुद्धो के बीच ये इकाइयाँ जापान की अर्थव्यवस्था म जैसा स्थान प्राप्त किये हुए थीं वैसा विश्व के अन्य देशो में कोई उदाहरण नही था। जैवत्सु का महत्त्व केवल आर्थिक क्षेत्र तक ही सीमित नही था क्योकि वे देश की राजनीति पर भी प्रभाव डालने की स्थिति मे थे। वैसे प्रमुख रूप से जैवत्सु का अधिकार-क्षेत्र बैंकिंग व वित्त तक सीमित रहा किन्तु प्रथम महायुद्ध के बाद उनकी रुचि औद्योगिक प्रतिष्ठानो की ओर मुड गई।

ये महान् औद्योगिक घराने (जैवत्सु) प्रथम महायुद्ध व उसके बाद के वर्षों के दौरान आकार व शक्ति की दृष्टि से बराबर बढते चले गये। 1880 के दशक मे सरकार द्वारा उद्योगो से हाथ खीच लिये जाने के बाद तो आधुनिक उद्योग की सभी प्रमुख शाखाओं पर इनका पूर्ण प्रभुत्व स्थापित हो गया अब उन्होने छोटे पैमाने के व्यवसायो पर भी अप्रत्यक्ष रूप से अपना प्रभाव स्थापित करना प्रारम्भ कर दिया। अन्तर्निगम (Intercorporate), व्यक्तिगत तथा राजनीतिक गठबन्धनो के एक पेचीदा पिरामिड जैसे ढाँचे (Pyramid-like structure) द्वारा इन प्रमुख जैवत्सु इकाइयो ने विशाल उपक्रम स्थापित कर लिये जिनका नियन्त्रण जहाजी सेवा, व्यवसाय, बैंकिंग, बीमा, वास्तविक परिसम्पत, खनन, विनिर्माण तथा औपनिवेशिक कम्पनियो तक फैल चुका था। आर्थिक सत्ता का उनका यह सकेन्द्रण (concentration) उनकी सेना तथा सरकारी अधिकारियो के साथ साँठ-गाँठ से सम्भव बना था। इसके अलावा जापान मे अमरीका या ब्रिटेन की तरह आर्थिक सकेन्द्रण पर प्रतिबन्ध लगाने वाले न्यास-विरोधी कानून (Anti-Trust Laws) भी बने हुए नही थ।

दोनो महायुद्धो के बीच के वर्षों मे अधिकाश बैंक भी जैवत्सु के स्वामित्व या नियन्त्रण मे थे। एक सगठित पूँजी बाजार के अभाव मे व्यावसायिक फर्मों के लिए ये बैंक ही निजी पूँजी प्राप्त कर सकने के प्रमुख स्रोत थे। इतना ही नही, ये जैवत्सु बैंक निरीक्षण या अन्य सरकारी विनियमनो से भी मुक्त थे। इससे उन्हे अपने

कमजोर प्रतिद्वन्द्वियों को अपने में विलय करने में कोई कठिनाई नहीं हुई तथा 1927 के बैंकिंग संकट के समय उन्होंने ऐसा ही किया।

एक समूह के रूप में जैबत्सु व उनके अन्य छोटे उपग्रहों (Satellites) का जापानी अर्थव्यवस्था के आधुनिक क्षेत्र पर प्रभुत्व था। वे कृषि क्षेत्र में चल रहे अत्यन्त छोटे पैमाने के उत्पादन की तुलना में गम्भीर वैषम्य की स्थिति दिग्दर्शित करते थे। छोटे पैमाने का यह उत्पादन विनिर्माण के क्षेत्र में भी व व्यवसाय के क्षेत्र में भी था इसलिए यह वैषम्य और भी स्पष्ट झलकता था। यह अब सभी द्वारा स्वीकार किया जाता है कि जैबत्सु की संस्था[1] (institution of Zaibatsu) ने पूंजी संचय की दर को तीव्र बनाने व तकनीक का आधुनिकीकरण करने में महान् योगदान दिया जो जापान के औद्योगिक विकास के वाहक बने। उसने जापान को बड़े पैमाने के उत्पादन की मितव्ययिताओं का लाभ दिलाया, उसने अर्थव्यवस्था के विशाल क्षेत्रों का निर्देशन जैबत्सु फर्मों द्वारा काम पर लगाये गये सुयोग्य तकनीशियनों व प्रबन्धकों के हाथों में सौंपा, उसने एक ऐसा तरीका विकसित किया कि जिससे मालिकों को होने वाला भारी लाभ पुनर्विनियोग के काम में लेना (ploughing back) सम्भव बन गया।

हालांकि जापानी उद्योग के वित्त व नियन्त्रण पर संकेन्द्रण जैबत्सु के ही हाथों में हो जाना तकनीकी दृष्टि से लाभकारी रहा, तथापि इसके सामाजिक पहलू उतने प्रशंसनीय नहीं थे। उसने आय व अवसरों की असमानताओं को बनाये रखने में सहायता की जो लगभग सामन्ती युग जैसी ही बनी रही। उसने आधुनिक उद्योग में अधिनायकतावादी नियन्त्रण (authoritarian control) की प्रवृत्ति को बढ़ावा दिया जो राजनीतिक व आर्थिक प्रजातन्त्र की स्थापना की दृष्टि से हानिकारक थी। उसने स्वतन्त्रता व निजी पहल के विकास को अवरुद्ध किया तथा जापान में एक सशक्त श्रम संघ आन्दोलन के विकास में भी बाधा डाली। जैबत्सु ने जापान में 1930 के बाद संसदीय लोकतन्त्र की पराजय में भी सहायता की।

पूंजी-निर्माण के प्रोत्साहनकर्त्ता के रूप में. 1913–1938

उपर्युक्त वर्णित जैबत्सु की कुछ बुराइयों के बावजूद यह कहा जा सकता है कि किसी भी अन्य संस्था की तुलना में उसने जापानी अर्थव्यवस्था में पूंजी-निर्माण की दिशा में अधिक महत्वपूर्ण सहायता की। आधुनिक बैंकों, व्यावसायिक फर्मों तथा उद्योगों का स्वामित्व महान् जैबत्सु घरानों (जिनमें शाही घराना सम्मिलित था) में केन्द्रीभूत हो गया था। सम्पत्ति से प्राप्त आय का यह संकेन्द्रण उच्च पदों पर आसीन प्रबन्धकों को ऊँचे वेतन व बोनस का भुगतान करने से और भी मजबूत बना। इनके नीचे लघु व मध्यम आकार के कोई 4 मिलियन उद्यमी थे जिन्होंने भी जैबत्सु पिरामिड के निर्माण में अपना योग दिया।

विचारार्थ अवधि में जैबत्सु की सम्पत्ति के कुल परिमाण का पता लगा पाना काफी कठिन काम है। मगर ओलैंड डी रसेल[2] ने जापानी सूत्रों के माध्यम से मित्सुई

[1] W W Lockwood, *op cit*, 61

[2] *Ibid*, 278-79.

घराने की 1937 की कुल सम्पदा 1,635 मिलियन येन होने का अनुमान लगाया है। बहुत सम्भव है कि चारो विशाल जैबत्सु घरानो, जिनमे मित्सुबिशि, सुमीतोमो तथा यासुदा के व्यावसायिक साम्राज्य भी सम्मिलित है, की कुल सम्पदा उपर्युक्त राशि की कम से कम दुगुनी हो।

किन्तु इन पारिवारिक सम्पदा की अद्वितीयता व रोचकता उनके आकारो की ही नहीं थी। जापानी विशालकाय सगठनो पर नियुक्त एव अमरीकी मिशन के द्वारा मित्सुई घराने का विश्लेषण इस सम्बन्ध मे एक अच्छा उदाहरण प्रस्तुत करता है। प्रथमत, मित्सुई की 11 पारिवारिक शाखाओ की कुल सम्पत्ति का 90% से भी अधिक नवम्बर 1945 तक सयुक्त रूप मे रखा जाता था। उस पर पारिवारिक परिषद् (family council) का सयुक्त नियन्त्रण था जिसकी अध्यक्षता सबसे बड़े लड़के के परिवार की होती थी। द्वितीयत, इस सम्पदा म से 90% से भी अधिक पूँजी मित्सुई होशा नामक सबसे विशाल होल्डिंग कम्पनी मे इक्विटी शेयरो के रूप मे तथा अन्य बैंको व फर्मो मे लगी हुई थी। उधर होशा कम्पनी ने अपनी कुल पूँजी का 75 से 90% भाग इस तरह विनियोग किया हुआ था कि वह सम्पूर्ण जापानी अर्थव्यवस्था मे फैली हुई अनेक सहायक कम्पनियो पर नियन्त्रण किये हुए थी। इन स्थितियो मे, जैसे-जैसे जापान मे पूँजीवाद का विकास हुआ, उसमे बचत करने का प्रमुख दायित्व उच्च आय वर्ग वाले लोगो ने निभाया।

प्रमुख उद्योगो का अधिग्रहण

मेजी युग मे उन राजनीतिज्ञो, जो कि विशिष्ट सरकारी नीतियो के क्रियान्वयन के लिए उत्तरदायी थे, तथा उन व्यावसायिक घरानो, जो कि वित्तीय ससाधन उपलब्ध करा सकते थे के बीच विशेष सम्बन्ध स्थापित हुए। सरकार को वित्तीय सहायता उपलब्ध कराने के बदले म समय समय पर जैबत्सु बहुत सस्ते मूल्यो पर सरकारी कारखाने खरीदते रहे तथा मूल्यवान अनुबन्ध भी पाते रहे। सरकारी ऋणो के निम्नाकन (Underwriting) द्वारा भी उन्होने भारी लाभ कमाये। 1890 मे मित्सुबिशी ने टोक्यो मे शाही महल के निकट बेकार पड़ी जमीन का एक टुकड़ा कौड़ियो के मोल खरीदा जो दस वष बाद वहाँ का सबसे प्रसिद्ध व्यापार-केन्द्र बन गया। अन्य जैबत्सु घरानो को भी ऐसे ही अच्छे लाभ मिले। उन्होने जापान द्वारा लड़े गये युद्धो म भी वित्त उपलब्ध कराया तथा उपनिवेशो के विकास मे भी सहायता की। उन्होने सामरिक महत्त्व के उद्योग स्थापित करने मे भी सरकार को मदद दी। जब वित्तीय सकट के समय कुछ पुराने व्यापारिक घराने दिवालिया हो जाते तो उनकी सम्पत्ति कोई भी जैबत्सु घराना अधिग्रहण कर लेता। प्रथम विश्व युद्ध के दौरान उन्होने अपने औद्योगिक प्रतिष्ठानो का विस्तार किया तथा युद्धोत्तरकालीन दशक मे उनके व्यावसायिक व वित्तीय हितो मे भारी बढ़ोत्तरी हुई।

1929 मे जैबत्सु अपनी शक्ति व प्रभाव के चरमोत्कर्ष पर थे। अधिकाश प्रतिद्वन्द्वी चित हो चुके थे। जापानी ससद (Diet) की शक्ति बढ़ रही थी। अपने राजनीतिक सम्बन्धो द्वारा जैबत्सु नीति-निर्धारण को प्रभावित कर रहे थे। मेजी युग

मे तो ये जैबत्सु फर्मे सरकार का एजेंट मात्र थी किन्तु 1929 मे तो वे सरकार पर अपनी इच्छाएँ थोप सकती थी। उनकी स्थिति विशेषाधिकारयुक्त हो गई क्योंकि उद्योग व व्यापार की प्रत्येक महत्त्वपूर्ण शाखा पर उनका नियन्त्रण था। 1920 के बाद तो वित्तीय सहायता व तकनीकी जानकारी उपलब्ध कराने के बहाने जैबत्सु ने लघु उत्पादन-क्षेत्र मे भी प्रवेश कर लिया था। वैसे तो सभी जैबत्सु घरानो मे आपसी प्रतिद्वन्द्विता थी किन्तु जब सैनिक गुट, जो उनके विकास के विरोधी थे, से उनका आमना-सामना होता तो वे एक हो जाते।

द्वितीय महायुद्ध के बाद जैबत्सु

इस बात मे कोई दो मत नही हो सकते कि दोनो महायुद्धो के बीच की अवधि मे व्यापार व उद्योग की तीव्र प्रगति के पीछे प्रेरणा का स्रोत जैबत्सु सस्था ही रही। प्रो० जी० सी० एलन ने बडी ही सटीक भाषा मे लिखा है कि 'जैबत्सु आर्थिक उत्थान के ज्वार पर ऊपर चढे जिसे उन्होने स्वय ही उठाया था।' किन्तु जैबत्सु का अत्यधिक प्रभुत्व भी जापान के लिये महँगा पडा क्योकि इन विशाल फर्मों के कारण ही जापान दूसरे महायुद्ध मे कूदने के लिए बाध्य हुआ। वे अपने व्यावसायिक हितो को बढावा देने के लिए भ्रष्ट से भ्रष्ट तरीके का उपयोग करने से भी नही हिचकते थे। कुछ लोग तो यह भी आरोप लगाते है कि जैबत्सु के लिए व्यावसायिक हित राष्ट्रीय हितो से भी ऊपर थे। 1930 के बाद उन्होने जापान की साम्राज्यवादी नीति का केवल इसीलिए समर्थन किया कि उससे उनके व्यावसायिक हितो को बढावा मिलता था। इस तरह यदि दो महायुद्धो के बीच के काल मे हुए जापानी अर्थव्यवस्था मे उद्योगो का आधुनिकीकरण करने का कार्य जैबत्सु ने पूरा किया तो द्वितीय महायुद्ध मे आर्थिक महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति हेतु जापान को धकेल-कर उन्होंने उन उद्योगो को बरबाद भी अपने ही हाथो से कर दिया।

सैनिक विजय के आकर्षण के अलावा द्वितीय महायुद्ध मे भाग लेने के पीछे जापान का आर्थिक कारण अपने लिए एकाधिकार बाजार प्राप्त करना रहा। जैबत्सु ने इस अभिलाषा को और भी तीव्र बनाया। यही एकमात्र कारण रहा कि द्वितीय महायुद्ध के बाद जापान मे स्थापित अन्तरिम अमरीकी आधिपत्य वाली सरकार ने वहाँ सबसे पहले जैबत्सु की सस्था को उखाड फेंकने का ही काम किया। इस नीति का उद्देश्य आर्थिक सत्ता के मुट्ठी-भर लोगो के हाथ मे सकेद्रण को रोकना व अधिक न्यायपूर्ण एव लोकतात्रिक सामाजिक व्यवस्था कायम करना था।

1945 मे प्रशासन सम्भालने के तुरन्त बाद अन्तरिम सरकार ने एक आदेश (decree) जारी करके महान् जैबत्सु फर्मों का द्रवीकरण (dissolved) कर दिया। इन फर्मों को छोटी इकाइयो मे विभाजित एव उपविभाजित कर दिया। अधिकाश प्रभावशाली व्यक्तियो को, जो पहले जैबत्सु फर्मों पर नियन्त्रण किये हुए थे, अपने स्थानो से हटा दिया गया। 1947 मे न्यास विरोधी कानून (Anti-trust laws) पारित किये गये ताकि ये फर्मे फिर कभी सिर उठाने की स्थिति मे न रहे।

1954 तक जैबत्सु की सम्पत्ति व अधिकार पूरी तरह नष्ट किये जा चुके

थे किन्तु यह सब पूँजीपतियो ने पुराने ढाँचे को पूरी तरह नष्ट नहीं कर पाया। उल्टे अन्तरिम सरकार निजी एकाधिकार समाप्त कर सरकारी एकाधिकार को स्थापित करने मे ही सफल हुई। इसके अतिरिक्त उन्मूलन की यह नीति भेदभावपूर्ण थी। इससे मित्सुई की व्यावसायिक एकाधिकार की स्थिति समाप्त करने मे तो सफलता मिली किन्तु मित्सुबिशि का बैंकिंग व वित्तीय एकाधिकार तथा यासुदा (Yasuda) के एकाधिकार फिर भी बने रहे। इस परिस्थिति मे जापानी अर्थव्यवस्था को उदार बनाने व विकेन्द्रित करने का अन्तरिम सरकार का उद्देश्य आंशिक रूप से ही पूरा हो पाया।

इतना ही नहीं, जैबत्सु के समाप्त कर दिये जाने का द्वितीय महायुद्ध मे नष्ट हो चुकी जापानी अर्थव्यवस्था के पुनर्निर्माण पर बडा बुरा प्रभाव पडा। युद्ध मे पहले नए उद्योग स्थापित करने मे पहल करने का काम जैबत्सु का ही था। युद्ध के बाद जापान को पूरी तरह पगु बना देने के उद्देश्य से अमरीकी आधिपत्य वाली सैनिक सरकार ने जैबत्सु को अपने अधिकाश परिसपत भी बेचने के लिए विवश किया।

किन्तु जैबत्सु का यह भाग्य नही था कि वह इस तरह एकाएक ही मृत्यु का शिकार बन जाता। यदि दूसरे महायुद्ध ने उसे बरबाद किया था तो 1950 के कोरियाई युद्ध ने उसे पुनर्जीवित (resurrected) कर दिया। अमरीकी सरकार ने अरबो डॉलर की लागत से जापान मे शस्त्र-निर्माण के कारखाने खोले ताकि कोरियाई युद्ध क्षेत्र तक हथियार शीघ्रातिशीघ्र पहुँचाए जा सके, जहाँ अमरीका की प्रतिष्ठा दाव पर थी। न्यास-विरोधी कानूनो को सशोधित किया गया ताकि कारखानो की स्थापना के लिए महान् जैबत्सु फर्में अधिक पूँजी व साख जुटा सके। परिणाम यह रहा कि 1954 मे अन्तरिम सरकार द्वारा जापान से जाने के लिए पहले ही जैबत्सु का पुन एक आर्थिक शक्ति के रूप मे उदय हो चुका था। मित्सुई, मित्सुबिशी तथा सुमीतोमो का अनेक उद्योगो व वित्तीय सस्थाओ पर पुन नियन्त्रण स्थापित हो गया। 1954 की मुद्रा सकुचन की स्थिति, जिसने कई कमजोर फर्मों का उन्मूलन कर दिया, ने भी जैबत्सु के पुन विकास मे सहायता की जो कि इस तरह के सकटो से निपटने मे पर्याप्त शक्तिशाली थे। किन्तु जैबत्सु का पुनरागमन कभी भी सम्पूर्ण रूप मे नहीं हो पाया।

1960 के बाद जैबत्सु के स्वरूप मे आधारभूत परिवर्तन हुए। वे अब पहले की तरह राज्य की नीतियो को प्रभावित कर पाने की स्थिति मे नहीं रह गये थे। उनका वित्तीय व प्रशासनिक नियन्त्रण भी ढीला पड चुका था। इन नई प्रवृत्तियो पर टीका करते हुए प्रो० जी० सी० एलन ने लिखा है कि 'विभिन्न जैबत्सु मे ही केन्द्रापसारी (centrifugal) व केन्द्राभिमुखी (centripetal) शक्तियाँ सक्रिय हो चुकी हैं उनके अगो (limbs) मे स्वतन्त्र जीवन पैदा हो चुका है।' विभिन्न गुटो के बीच प्रतिद्वन्द्विता बढ रही है तथा प्रत्येक गुट नये उद्योग मे अपना अधिक से अधिक भाग प्राप्त करने के लिए सचेष्ट है। जैबत्सु अब ढीले और बिना आकृति वाले (loose and shapeless) सगठन बन चुके हैं।

नवाँ अध्याय

लघु उद्योगों की स्थिति

(THE SMALL-SCALE INDUSTRIES)

आज दिन तक लघु उद्योगो की आर्थिक उपादेय इकाइयो के रूप मे विशिष्टता व महत्त्व का बना रहना जापानी अर्थव्यवस्था की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण विशेषता कही जा सकती है। पचास से भी कम श्रमिको वाली, यहाँ तक कि पाँच से भी कम श्रमिको वाली इकाइयो का अस्तित्व विशाल पूँजी-प्रधान प्रतिष्ठानो की प्रतिस्पर्द्धा होते हुए भी आज तक बने रहना केवल जापान ही की विशिष्टता रही है।

कृषि क्षेत्र मे एक ही परिवार का छोटा-सा खेत आज भी सगठन का सबसे प्रमुख स्वरूप बना हुआ है। महायुद्ध से पहले चावल व अन्य फसलो का उत्पादन हाथ के श्रम से ही देश के 5 मिलियन किसान परिवारो द्वारा किया जाता था। वे जिन खेतो को जोतते थे उनका औसत आकार 2 5 एकड के लगभग था। अधिक सेवा-व्यवसाय भी, बैंकिग व यातायात को छोडकर, स्वतन्त्र व्यक्तिगत इकाइयो द्वारा ही चलाए जाते थे। अधिक से अधिक पारिवारिक सदस्यो या कुछ भाड़े के मजदूरो की सहायता ली जाती थी। यही बात थोक व खुदरा व्यापार, भवन-निर्माण व स्थानीय यातायात, मनोरजन के साधनो या पेशो के बारे में सही थी।

किन्तु इन लघु उत्पादन इकाइयो ने विनिर्माण, खनन तथा दूरी तक चलने वाले यातायात के साधनो के क्षेत्र मे अपना स्थान खो दिया। यह स्पष्ट रूप से इस लिए हुआ कि उत्पादन का बड़ा पैमाना पूँजी सचय तथा तकनीकी अनुभव मे वृद्धि के साथ अधिक व्यावहारिक बन चुका था। बाजारो के प्रसार व उत्पादो के समानी-करण के साथ बड़े पैमाने पर उत्पादन और अधिक कार्यकुशलता-पूर्ण बन गया। अनेक निर्यात-प्रधान उपभोक्ता उद्योगो मे भी बडे पैमाने का उत्पादन अधिक प्रमुख बन गया। घरेलू बाजार मे जहाँ डिजाइनें व विविधताएँ अधिक महत्त्वपूर्ण थी लघु उत्पादको का काम अच्छी तरह चलता रहा।

यहाँ तक कि फैक्ट्री प्रणाली वाले उद्योगो मे भी छोटे कारखाने एक तकनीकी इकाई के रूप मे अपनी प्रतिस्पर्द्धात्मक शक्ति का प्रदर्शन करने मे सफल रहे। 100 से कम श्रमिको वाले कारखाने 1934 मे निजी फैक्ट्रियो द्वारा किये गये कुल उत्पादन मे एक तिहाई भाग के हिस्सेदार थे। वे कुल श्रमिको मे से 50% को रोजगार प्रदान कर रहे थे तथा 1919 के बाद से अपना उत्पादन अशदान पूर्ववत् रखे हुए थे।

युद्ध के लिए तैयारियो के काल मे 1934 के बाद औद्योगिक स्वरूप मे कुछ

भारी परिवर्तन किये गये जिनका लाभ बड़े पमाने के उद्योगो को अधिक मिला। किन्तु यह तथ्य महत्त्वपूर्ण है कि 1930 के बाद के वर्षों मे भी लघु एवं मध्यम आकार के उद्योगो ने विशाल शस्त्र-निर्माण कारखानो के सहायक के रूप मे अपनी सापेक्ष स्थिति पर आच नही आने दी।

विनिर्माण के क्षेत्र मे छोटे वर्कशॉप अपने सम्बन्ध मे दिये गये आँकडो से भी अधिक महत्त्वपूर्ण रहे। इन वर्कशॉपो मे 1934 मे 1 मिलियन छोटे-छोटे परिवार कार्यरत थे। इनमे से आधे से अधिक तो एक आदमी वाले वर्कशॉप थे। पाँच व्यक्तियो से भी कम रोजगार वाले इन वर्कशॉपो का 1930 के बाद के वर्षों के औद्योगिक उत्पादन मे लगभग 25% भाग बना रहा। 1930 म इन छोटे उद्योगो का विशुद्ध उत्पादन 832 मिलियन येन मूल्य का आँका गया था।

रोजगार के बारे मे भी आँकडे महत्त्वपूर्ण हैं। 1930 के जनगणना आँकडे बतलाते हैं कि पांच या उनसे कम व्यक्तियो वाले उपक्रम 2 5 मिलियन से अधिक लोगो को रोजगार दे रहे थे। औद्योगिक कार्यस्थल जिन्हे फैक्ट्रियो की श्रेणी मे भी नही रखा जा सकता (जिनमे पाँच या उससे अधिक श्रमिक कार्यरत थे) जापान के कुल विनिर्माण रोजगार का 50% प्रदान कर रहे थे। इसकी तुलना मे ऐसी फैक्ट्रियाँ जिनमे 100 या उससे अधिक श्रमिक कार्यरत थे केवल 25% रोजगार प्रदान कर रही थी व औद्योगिक उत्पादन मे उनका भाग 50% था।

ये लघु या कुटीर उद्योग, मुख्यत खाद्य पदार्थों, चीनी मिट्टी के बर्तनो, साइकिलो, रबर के जूतो, खिलौनो, बिजली के बल्बो तथा मशीनो के पुर्जो का उत्पादन करते थे। निम्नांकित प्रतिशत विभिन्न उद्योगो मे 1932 मे किये जा रहे पारिवारिक उत्पादन (household production) के महत्त्व को स्पष्ट करते हैं—

उद्योग	रोजगार, उन कारखानो मे जहाँ		उत्पादन, उन कारखानो मे जहाँ	
	पाँच से कम श्रमिक	पाच या उससे अधिक श्रमिक	पाँच से कम श्रमिक	पाँच या उससे अधिक श्रमिक
सूती वस्त्र	48	52	31	69
रेशम	66	34	57	43
चीनी मिट्टी	57	43	62	38
लकडी के खिलौने	85	15	56	44

यदि 100 श्रमिको से कम वाली समस्त इकाइयो को लिया जाये तो ज्ञात होता है कि 1934 मे वे समग्र विनिर्माण उत्पादन के 45 से 50% भाग का उत्पादन कर रही थी। उनमे 65% लोग लगे हुए थे। इसकी तुलना अमरीकी स्थिति से की जा सकती है जहाँ 1935 मे 100 श्रमिको से कम रोजगार वाले कारखानो मे केवल 29% मजदूर कार्यरत थे।

निर्यात के क्षेत्र मे भी ये छोटी इकाइयाँ काफी सक्रिय थी। कृत्रिम धागे, कच्चे रेशम, सूती धागे, व चीनी को छोडकर शेष सभी विनिर्मित वस्तुएँ, जिनका

कि निर्यात किया जा रहा था, लघु एव मध्यम क्षेत्र द्वारा उत्पादित की जा रही थी। 1931 से 1937 के बीच छोटे बुनकरो ने अपने बाजारो का अपने विशाल प्रतिस्पर्द्धियो की तुलना मे अधिक तेजी से प्रसार किया था।

छोटे उद्यमी

जापानी लघु उद्योगो की चर्चा करते समय उत्पादन की तकनीकी इकाई अर्थात् फैक्ट्री तथा उपक्रम या व्यावसायिक इकाई मे अन्तर किया जाना आवश्यक है। इन व्यावसायिक इकाइयो मे निर्णय लेने का दायित्व होता है। 1930 मे लाभकारी कार्यों मे लगे हुए 30 मिलियन जापानियो मे से 6 मिलियन लोग अपने आपको 'नियोक्ता' (employers) बताते थे। इनमे से अधिकाश लोग या तो कृषि मे थे या फिर स्वतन्त्र रूप से अपना कोई छोटा सा वर्कशॉप चलाते थे।

जापानी व भारतीय औद्योगीकरण मे अन्तर भी काफी प्रेरणा प्रदान करने वाला है। फैक्ट्री उपक्रम जापान मे भारत की तुलना मे अधिक तेजी से विकसित हुए किन्तु वहाँ उन्होने लघु एव कुटीर उद्योगो को नष्ट नही किया। जापानियो को लघु उद्योगो की उत्पादन तकनीक को आधुनिक बनाने मे सफलता मिली।

जापान मे छोटी या मध्यम औद्योगिक इकाई उसे माना जाता है जिसमे 300 से कम श्रमिक लगे हो। 1955 मे ऐसी इकाइयाँ 73% रोजगार के लिए उत्तरदायी थी। 1960 मे भी यह 70% था।

आकार के आधार पर रोजगार व उत्पादन का प्रतिशत

पैमाना		रोजगार (1960)	उत्पादन (1960)
छोटे उपक्रम	(3 से कम श्रमिक)	6 9	1 9
लघु उपक्रम	(29 से कम श्रमिक)	27 1	14 7
मध्यम उपक्रम	(299 से कम श्रमिक)	35 6	32 6
बड़े पैमाने के उपक्रम	(999 से कम श्रमिक)	13 6	20 5
विशालकाय उपक्रम	(1000 से कम श्रमिक)	16 8	30 3

लघु एव कुटीर उद्योगो के विकास की अवस्थाएँ

(*1*) *मेजी युग*—*मेजी पुनर्संस्थापना से पहले जापान मे टोन्या प्रणाली*' (Tonya system) काफी लोकप्रिय थी। टोन्या' शब्द का प्रयोग एक छोटे उत्पादक या' थोक विक्रेता के लिए होता था। वह एक प्रकार का मध्यस्थ था जो उत्पादक एव बाजार के बीच की कडी बना हुआ था। वह अपनी पूंजी का उपयोग एक स्थानीय कृपक उद्योग को गठित करने मे करता था। 1868 के बाद इस व्यवस्था मे काफी अन्तर आ गया किन्तु 1880 के बाद विशाल पैमाने पर उत्पादन का आरम्भ भी लघु स्तर पर किये जाने वाले उत्पादन की इस टोन्या प्रणाली को नष्ट नही कर पाया।

मेजी शासन का सम्पूर्ण काल जापान की औद्योगिक क्रान्ति का सबसे बडा भाग रहा है। इसी अवधि मे पश्चिमी उत्पादन पद्धतियाँ अपनायी गयी तथा बडे

पैमाने का उत्पादन शुरू किया गया। किन्तु मेजी अर्थव्यवस्था की एक उल्लेखनीय विशेषता यह रही कि उसके आधुनिकीकरण पर दिये गये बल से जापान के छोटे पैमाने के उद्योगो पर कोई विपरीत प्रभाव नही पडा। वे जीवित रहे क्योकि किसानो की पूरक आय के वे ही एकमात्र स्रोत थे। उन्होने उस युग मे जापान के विनिर्माण क्षेत्र की सहायता की जब उसमे पूँजी का अभाव था।

आन्तरिक बाजार की आवश्यकताओ को पूरा कर सकने की दृष्टि से पुनर्संस्थापना के पहले वाली टोन्या प्रणाली लघु उपक्रमो मे परिवर्तित हो गई। एक अन्य तत्त्व जिसने मेजी काल मे लघु उद्योगो के विकास को अवरुद्ध नही होने दिया, यह था कि आयातित पश्चिमी ढग के विशाल पैमाने के उद्योगो तथा घरेलू किस्म के छोटे पैमाने के कुटीर उद्योगो मे कही कोई प्रतिस्पर्द्धा पैदा नही हुई। ऐसा इसलिए हुआ कि बडे उद्योग तो शस्त्रादि की आवश्यकता पूरी करने मे लग गये जबकि छोटे उद्योग आन्तरिक बाजार की आवश्यकताओ को पूरा करने का काम करते रहे। इस तरह दोनो एक-दूसरे के प्रतिस्पर्द्धी बनने के स्थान पर पूरक बन गये। पश्चिम के प्रभाव से भी इस अवधि के कुटीर व लघु उद्योगो को लाभ हुआ।

(2) **तैशो काल** (Taisho Era)—छोटे पैमाने के उद्योगो का विकास तैशो काल मे असाधारण तेजी से हुआ इसे औद्योगिक विवेकीकरण का काल भी कहा जाता है। प्रथम विश्व-युद्ध के बाद घरेलू व विदेशी बाजार काफी व्यापक बन चुके थे। जनसख्या भी काफी बढ चुकी थी। इन तत्त्वो ने लघु एव कुटीर उद्योगों के लिए यान्त्रिक उत्पादन पद्धतियाँ अगीकार करना अनिवार्य सा बना दिया।

प्रथम विश्व-युद्ध के बाद दुनिया-भर मे जापानी वस्तुओ की बढ चुकी माँग को केवल बडे पैमाने के उद्योगो द्वारा पूरा करना सम्भव नही था। इसके अलावा बडे पैमाने के उद्योग अपनी स्थापित क्षमता के विस्तार मे अधिक रुचि भी नही ले रहे थे क्योकि माँग की इस वृद्धि को वे अस्थायी मानते थे। इसने एक उप-अनुबन्ध (Sub-contracting) की प्रणाली को जन्म दिया। समय के साथ यह प्रणाली सामान्य हो गई। अब तक भी बडे व छोटे पैमाने के उद्योगो के बीच समन्वयन मे यह प्रणाली महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। उप-अनुबन्ध के द्वारा दोनो क्षेत्र साथ मिलकर काम कर सकते है। छोटे निर्माता अपने उत्पादन को एक या कुछ बडी फर्मो को बेचते है। इस प्रणाली का दुरुपयोग भी हुआ है तथा सरकार ने उसे रोकने के उपाय भी किये है। उप-अनुबन्धकर्त्ताओ को किये जाने वाले भुगतानो के विलम्ब को रोकने के लिए एक कानून बनाया गया।

सरकार ने भी इस अवधि मे छोटी फर्मो को औद्योगिक सहकारियो के रूप मे सगठित हो जाने के लिए प्रोत्साहित किया। इसे 'नव टोन्या प्रणाली' (New Tonya System) की सज्ञा दी गयी। इसके पीछे इरादा यह था कि पूँजी व कच्चा माल सही समय व निरन्तर उपलब्ध कराकर इन लघु इकाइयो की निर्यात क्षमता को विकसित किया जाये। 1925 मे पारित एक कानून द्वारा उन सब लोगो को निकाल बाहर किया गया जो वास्तविक उत्पादन नही कर रहे थे। इस तरह पुरानी टोन्या प्रणाली समाप्त हो गई जिसमे टोन्या केवल मध्यस्थ बनकर वास्तविक

उत्पादक का शोषण करता था।

नई टोन्या प्रणाली के अन्तर्गत शक्ति-चालित मशीनों के प्रयोग पर बल दिया गया। छोटे प्लाट के कार्य-पैमाने को भी बढाया गया। पुरानी टोन्या प्रणाली मे तो जो व्यक्ति टोन्या के लिए काम करता था वह उसके नौकर की तरह था किन्तु नयी 'टोन्या प्रणाली' के अन्तर्गत वह पूरी तरह लघु उद्यमकर्त्ता बन गया।

1930 के दशक मे यह पाया गया कि लघु स्तर पर उत्पादन करने वाले उद्योगो के सम्मुख कुछ प्रमुख समस्याएँ थी। उनके उपकरण पुराने व अनुपयुक्त थे। उनके पास पर्याप्त पूँजी भी नही थी। तकनीकी सुधार काफी धीमा था तथा विभिन्न फर्मो के बीच अन्यायपूर्ण प्रतिस्पर्द्धा थी। इसके निदान हेतु 1931 मे 'इण्डस्ट्रीयल एसोसियेशन लॉ' पारित किया गया जिसके अन्तर्गत छोटे उपक्रमो को सघ बनाने के लिए प्रोत्साहित किया गया। इन सघो का उद्देश्य कुछ नियन्त्रण स्थापित करना था।

(3) **द्वितीय महायुद्ध काल**—1937 के बाद से तो सरकारी नीति सैनिक साज-सामान के उत्पादन को अधिकतम करने की बन गई थी। इसके परिणामस्वरूप घरेलू उपभोग के लिए उपलब्ध साधनो मे कमी आयी। कच्चे मालो पर कड़े आर्थिक नियन्त्रण लगा दिये गये जिनसे लघु उद्योगो पर विपरीत प्रभाव पडा।

द्वितीय महायुद्ध के दौरान भी छोटे पैमाने के उद्योगो की स्थिति और खराब होती चली गई क्योकि हर जगह नियन्त्रण लगा दिये गये थे। केवल उन्ही छोटी इकाइयो को कार्य करते रहने की अनुमति दी गई जो युद्ध सामग्री मे कुछ योग दे सकती थी। 1942 तक अधिकाश छोटी फर्में लुप्त हो गई। मित्र-राष्ट्रो की बमबारी ने अधिकाश ढॉचा (Infrastructure) नष्ट कर दिया था तथा युद्ध के अन्त मे लघु उद्योगो की स्थिति सोचनीय हो चुकी थी।

(4) **युद्धोत्तर काल**—युद्ध समाप्त होने के बाद लघु पैमाने के उद्योगो का पुनरुद्धार भी उतनी ही तीव्र गति से हुआ। ऐसा इसलिये था क्योकि युद्ध के समय लगाये गये अधिकाश नियन्त्रण (War controls) उठा लिये गये थे। चूँकि ये छोटी फर्में भाडे के मजदूरो पर अधिक आश्रित नही थी इसलिए इन्हे अपना काम शुरू करने मे देर भी नही लगी। युद्ध के बाद उपभोक्ता वस्तुओ के तीव्र अभाव ने छोटे पैमाने के उद्योगो को आगे आने के लिए स्वर्ण अवसर प्रदान किया। युद्ध समाप्त होने के तुरन्त बाद अमरीकी आधिपत्य वाली सरकार द्वारा जैबत्सु को समाप्त कर दिये जाने से भी छोटी फर्मो को आगे आने मे अत्यधिक सहायता मिली।

किन्तु 1947 मे सरकार द्वारा स्वीकृत 'प्राथमिकता फार्मूला' छोटी इकाइयों के विपक्ष म था क्योंकि उसमे उन आधारभूत उद्योगो को अधिमान (preference) प्रदान करने की बात कही गई थी जिससे देश के पुनर्निर्माण के कार्य मे सहायता मिल सकती थी। कच्चा माल भी इन्हे पहले आवटित किया गया। छोटी इकाइयो की आशाओ पर तब और भी पानी फिर गया जब युद्ध के समय सैनिक सामग्री तैयार करने वाली बडी फर्में शान्ति स्थापना के बाद उपभोक्ता वस्तुओ के उत्पादन मे लग गयी। 1949 मे अपनायी गयी विस्फीतिकारी नीतियो ने भी लघु उद्योगों के विकास को आघात पहुँचाया।

कोरियाई युद्ध ने इस निराशाजनक स्थिति में पुनः एक आशा की किरण जगा दी। बडी फर्मों को कई आर्डर मिले जिन्हे उन्होने बाद मे छोटी इकाइयो को ठेके पर दे दिया। इस तरह जापानी अर्थव्यवस्था की दोहरी स्थिति समाप्त नही हुई। 1950 के बाद मध्यम व छोटे आकार की फर्मों ने, जो बडी फर्मों के लिए उप-अनुबन्धकर्ता (sub-contractors) का काम करती थी, अपने उपकरणो को आधुनिक बना दिया ताकि उनकी उत्पादन लागत कुछ घट पाती। 1960 के बाद विकसित हुई कैरेत्सु (Keiretsu system) प्रणाली ने भी इस क्षेत्र मे भारी परिवर्तन किये। यह प्रणाली अनेक आश्रित उप-अनुबन्धकर्त्ताओ को निर्देशन देने, गठित करने व आगे लाने का काम करती है।

1960 के बाद जापानी अर्थव्यवस्था मे छोटे पैमाने के उद्योगो का स्थान पुन महत्वपूर्ण हो गया है। 1963 के लघु व्यवसाय आधारभूत कानून के अनुसार लघु उपक्रम वह है जिसमे 50 मिलियन येन से कम का पूँजी विनियोग हो तथा जिसमें नियमित रूप से 300 से अधिक लोगो को रोजगार न दिया जाता हो। खनन के क्षेत्र में 50 मिलियन येन पूँजी व 1,000 श्रमिको तक की इकाइयो को भी छोटी इकाई माना गया है। व्यवसाय एव सेवाओ के क्षेत्र मे 10 मिलियन येन तक की पूँजी व 50 श्रमिको तक की इकाइयो को लघु इकाई करार दिया गया है।

उपर्युक्त वर्णित श्रेणियो के अनुसार 1960 में देश की कुल 3 22 मिलियन औद्योगिक इकाइयो मे मे 3 20 मिलियन इकाइयाँ छोटे पैमाने की इकाइयाँ थी। यह देश की कुल औद्योगिक इकाइयों का 99 4% था। 1962 मे देश की श्रम-शक्ति का 78% छोटे व्यवसायो म लगा हुआ था। वे देश के कुल उत्पादन का 48% पैदा कर रहे थे। 1979 मे भी इन लघु इकाइयो का उत्पादन व रोजगार मे प्रतिशत भाग लगभग अपरिवर्तित ही रहा है। उनके महत्त्व मे किसी प्रकार की कमी नही आई है।

सरकार ने वाणिज्य एव अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार मन्त्रालय के अन्तर्गत छोटे पैमाने के उद्योगो की देखभाल के लिए एक एजेंसी स्थापित की है। इन इकाइयो के आधुनिकीकरण के लिए ब्याज-मुक्त ऋण भी दिये गये हैं। पिछले 35 वर्षों मे सरकार ने छोटे पैमाने के उद्योगो का विकास करने के उद्देश्य से भारी सख्या में बहुत कम ब्याज पर भी ऋण दिये हैं। बडे पैमाने पर उत्पादन करने वाली तथा छोटे पैमाने पर उत्पादन करने वाली इकाइयो के बीच सम्बन्धो का विनियमन करने के उद्देश्य से 1963 मे एक महत्त्वपूर्ण विधेयक भी पारित किया गया था। छोटे पैमाने की इकाइयो को प्लाट, भवन तथा यहाँ तक कि कच्चे माल के लिए भी ऋण सुविधाएँ उपलब्ध हैं।

छोटे पैमाने के उद्योगो ने जापानी अर्थव्यवस्था के विकास मे बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। श्रम के आधिक्य से उसे शक्ति मिली है। उसने लोगो की विविध रुचियो को पूरा किया है। वह अपनी कार्यकुशलता बढाने के लिए हमेशा तत्पर रहा है। एक प्रमुख अर्थशास्त्री ने उनके बारे मे एकदम ठीक ही लिखा है कि 'यदि आर्थिक प्रसार की गत्यात्मकता का अधिकाश सम्बन्ध मेजी सरकारी अधिकारियो व जैबत्सु प्रबन्धको से रहा तो उसे वास्तविक सामग्री उपलब्ध कराने में छोटे किसान, व्यापारी व उद्योगपतियो ने भी अपनी क्षमता को देखते हुए कम योगदान नहीं किया।'

दसवाँ अध्याय

आर्थिक विकास में सरकार का योगदान

(STATE AS PROMOTER OF ECONOMIC DEVELOPMENT)

औद्योगीकरण की दिशा में एशिया में किये गए प्रयासों का इतिहास एक बहुत कठोर पाठ पढ़ाता है। कोई भी देश विदेशों से औद्योगिक क्रांति को आयात नहीं कर सकता, उसे किसी मशीन की तरह अपने यहाँ उतार कर चालू नहीं कर सकता " विदेशी उदाहरण उत्तेजक हो सकते हैं " किन्तु परिवर्तन की सच्ची शक्ति देश के भीतर से ही आ सकती है। भूतपूर्व अमरीकी सचिव एचेसन के शब्दों में बाहरी विश्व तो केवल 'खो रहे अवयव या कड़ी' (missing link) को ही उपलब्ध करा सकता है।[1]

आर्थिक विकास की शुरुआत करने वाले लोगों के लिए सबसे नाजुक समस्या यही होती है कि वे पहल (initiative) तथा उत्तरदायित्व की क्रियाओं को किस प्रकार संगठित करें। दूसरे शब्दों में, एक उद्यमी के कार्यों को सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण माना जा सकता है। यहाँ प्रमुख भूमिका राज्य को ही निभानी पड़ती है। राज्य के गतिशील नेतृत्व के अभाव में आर्थिक विकास की दर धीमी रहती है। इसका यह अर्थ नहीं है कि प्रत्येक समस्या के आसान हल के लिए सरकार की ओर एक सर्व-शक्तिमान संस्था के रूप में देखा जा सकता है। वह एक अवास्तविक तरीका कहलाएगा। राज्य को आर्थिक गतिविधियों का संचालन इस रूप में करना चाहिए कि जिससे आर्थिक जीवन में अधिकाधिक व्यक्तियों को अवसर एवं अभिप्रेरणाएँ प्रदान कर वह आर्थिक विकास की प्रक्रिया को वास्तविक गति दे सकें।

आधुनिकीकरण करने से पहले 50 वर्षों के जापान के अनुभवों के अध्ययन से इस बारे में काफी कुछ सीखा जा सकता है। क्योंकि, 110 वर्ष पहले जापान भी किसी भी अन्य एशियाई देश की तरह था। उसकी 30 मिलियन आबादी उतनी ही कृषि-प्रधान थी जितनी अन्य किसी स्थान पर थी। भूमि पर तीव्र दबाव था। तकनीक परम्परागत थी। कुपोषण, बीमारियाँ, शिशुओं की हत्या का कोई पार नहीं था। अन्य तत्त्व भी कोई विशेष आशाजनक नहीं थे। उसके औद्योगिक संसाधन अपर्याप्त थे तथा उसका राजनीतिक ढाँचा सामन्ती था। वहाँ के लोगों को तोकुगावा शासकों ने 250 वर्षों तक कृत्रिम रूप से दुनिया से अलग रखा था।

इन सबके बावजूद मेजी पुनर्संस्थापना के 75 वर्षों के बाद जापान में उत्पादक शक्तियों का जो विकास दिखाई दिया वह पश्चिमी राष्ट्रों के इतिहास में भी नहीं

[1] W. W. Lockwood, *op. cit.*, 499

मिलता। एक पृथक् एवं पिछड़े राष्ट्र से वह एक प्रमुख औद्योगिक एवं व्यावसायिक राष्ट्र बन गया। उसकी औद्योगिक क्षमता इतनी भीषण बन चुकी थी कि जब उसने 1941 मे उसे युद्ध में झोंक दिया तो अमरीका जैसे देश को जापान को परास्त करने के लिए सैनिक कार्यों पर चार वर्षों तक अपार धनराशि खर्च करनी पड़ी।

किसी भी माप से यह एक असाधारण प्रगति थी। यह तकनीकी प्रगति का एक करिश्मा था। जापान के आर्थिक विकास मे राज्य की भूमिका जांचते समय इन तीन बातो का ध्यान रखा जाना चाहिए—

(1) यह चर्चा मुख्य रूप से उन कदमो तथा दृष्टिकोणो तक सीमित है जो सरकारी तन्त्र द्वारा समय-समय पर औपचारिक रूप से घोषित किये गये है। इसका अन्य मुद्दों से कोई सम्बन्ध नही है जैसे कि राज्य पर किसका नियन्त्रण था।

(2) यह विवेचन राष्ट्रीय सरकार की नीतियो से सम्बन्ध रखता है तथा इसमे स्थानीय निकायो का कही भी उल्लेख नही हुआ है।

(3) यह मुख्य रूप से उन राजकीय नीतियो से सम्बन्धित है जिन्होने किसी न किसी रूप मे जापान की वास्तविक प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय आय को प्रभावित किया। यह औद्योगीकरण के दौरान उठाये जाने वाले विवादो या मूल्यो (values) से सम्बन्धित नही है।

स्पेंगलर (Spengler) ने लिखा है कि 'आर्थिक विकास के गति-विज्ञान (dynamics) के क्षेत्र की विभिन्न परिकल्पनाओ (hypotheses) की जाच के लिए जापान एक आकर्षक प्रकरण प्रस्तुत करता है। आधुनिक समयो मे व सास्कृतिक विवाद एव सवाद (synthesis) का सीमा क्षेत्र रहा है। जापान की अपनी अधिकाश प्रगति का श्रेय उन लोगो के नव-प्रवर्तनो (innovations) को रहा है जिन्हे अर्नाल्ड टॉयनबी ने 'सृजनकर्त्ता अल्पसख्यक' (creative minority) की सज्ञा दी है।' उसका विकास उसके[1] अपने भौतिक परिवेश की चुनौती की प्रतिक्रिया भी रहा है—'सीमित भूमि साधन किन्तु हर तरफ से समुद्र तक पहुँच'। उस पर युद्धो, मूल्यो के उतार-चढ़ावो तथा अन्य सास्कृतिक एव भौतिक तत्वो का महान् प्रभाव पड़ा है। औद्योगीकरण की समस्याओ मे जापान का अनुभव एशियाई देशो के लिए पश्चिमी देशो के अनुभवो से कई रूपो मे अधिक उपयोगी हो सकता है।

मेजी युग मे राज्य द्वारा उद्योगो मे अगुवाई

एक बार जब सम्राट की सत्ता अच्छी तरह स्थापित हो गई तो मेजी जापान के नेता महान् शक्ति एव कुशलता के साथ उसके औद्योगिक विकास की नीव डालने मे जुट गये। नौकरशाही (bureaucracy) तथा व्यापारी वर्ग ने एक प्रकार का सयुक्त मोर्चा बना लिया। मेजी सरकारी अधिकारी देश के उद्योगो व व्यापार के विकास का जोरदार समर्थन करते थे। यह सही है कि इसके पीछे उनका प्रमुख उद्देश्य

[1] *Ibid*, 503.

देश को सैनिक शक्ति बनाना था और इसीलिये वे पश्चिमी देशो के रहस्य जानने मे उत्सुक थे। राज्य के शक्तिशाली बनाने मे मेजी नेताओ व उनके उत्तराधिकारियो ने आर्थिक हितो की बलि देने मे कभी हिचकिचाहट नही दिखाई। किन्तु ये लोग शक्ति की उपासना तथा धन-सम्पदा की उपासना को एक दूसरे के सहयोगी उद्देश्य मानते थे। उनका नारा था 'फुकोकु क्यो हे'—अर्थात् एक समृद्ध देश एक सुदृढ सेना।

मेजी अधिकारियो ने यह अच्छी तरह समझ लिया कि औद्योगीकरण ही देश की सैनिक शक्ति का आधार बन सकता है। इसीलिये उन्होंने औद्योगीकरण को देश की नीति का प्रमुख ध्येय बना लिया। जन-कल्याण के स्थान पर शक्ति प्राप्त करने के प्रति यह पक्षपात बना रहा। किन्तु मेजी प्रशासको ने आर्थिक समस्याओ को भी मोटे रूप मे लिया। उन्होंने यह अनुभव कर लिया कि औद्योगीकरण के पीछे सहज मशीनो या तकनीकी विशेषज्ञो का आयात कर लेने से भी बहुत अधिक अपेक्षाएँ हैं। वे तोकुगावा शासन के कालातीत ढाँचे को नष्ट करने मे लग गये तथा उसके स्थान पर उन्होने न्याय, प्रशासन एव प्रतिरक्षा पर आधारित एक आधुनिक ढाँचे की स्थापना पर बल दिया। उन्होने अनिवार्य शिक्षा का कार्यक्रम प्रारम्भ किया। इस तरह 1868 मे हुई पुनर्संस्थापना के एक दशक के भीतर जापान एक मजबूत केन्द्रीय सरकार की स्थापना के साथ आर्थिक आधुनिकीकरण का मार्ग प्रशस्त करने की ओर बढ चला। मेजी युग की कुछ प्रमुख विशेषताएँ निम्नांकित रही—

(1) मेजी शासन पश्चिमी दबावो के उपरान्त जापान की स्वतन्त्रता बनाये रखने मे सफल रहा। जब सरकार अशक्त थी तो उसने असमानतापूर्ण सन्धियो को भी मान लिया किन्तु 1899 मे जब वह मजबूत हो गई तो उसने उन्हे रद्द कर दिया। देश के भीतर विदेशी व्यावसायिक उपक्रमो की स्थापना को हतोत्साहित किया गया। प्रारम्भ से ही आर्थिक नीति बाहरी हस्तक्षेप से मुक्त रही। वह भावना से राष्ट्रीयतावादी थी।

(2) मेजी शासको ने बहुत जल्द ही देश मे गम्भीर प्रतिरोध को समाप्त कर दिया। सरकार अधिनायकवादी तथा नौकरशाही वाली बनी रही। ससद नाम-मात्र की सस्था थी। सरकार को राष्ट्रीय विकास के लक्ष्य प्राप्त करने के लिए आगे बढने की हर प्रकार से छूट थी।

(3) सरकार आर्थिक नीतियो के प्रति समर्पित थी। कई बार शकाएँ व जल्दबाजी भी होती किन्तु सरकार आर्थिक क्षेत्र मे सर्वशक्तिमान व हर जगह उपस्थित रही। उद्योग, बैंकिग, रेलो के निर्माण आदि मे उसके प्रयोगो मे कई त्रुटियां दिखाई देती है। यद्यपि जापान के प्रशासको व व्यावसायियो को अधिनायकतावादी परम्पराएँ ही विरासत मे मिली थी किन्तु वे जापान की आधुनिकता प्रदर्शित करने के लिए उतावले थे।

यह याद रखा जाना चाहिए कि राज्य ने ही जापान मे औद्योगीकरण के लिए पहल की। 1868 के बाद वाले दशक मे राज्य ने रेलमार्गो व तार की लाइनो का निर्माण किया। उसने नई कोयला खानें तथा अनुसधान केन्द्र खोले। उसने लोहा गलाने की भट्टियां, पोत-निर्माण स्थल तथा मशीन टूल कारखाने लगाये। उसने सूत

कताई व रेशम लपेटने के काम को यन्त्रीकृत करने के लिए विदेशी उपकरणो व विशेषज्ञो का आयात किया। सरकार ने ही सीमेंट, कागज तथा कांच का उत्पादन करने के लिए मॉडल फैक्ट्रियाँ लगाई। इस तरह पश्चिमी तकनीक पर आधारित अधिकाश कारखाने सरकार द्वारा ही खोले गये। उसी ने प्रारम्भिक खतरे उठाये तथा अनेक निजी उद्यमों को सहायता दी।

किन्तु प्रत्यक्ष सरकारी उद्यम की यह अवधि जल्दी ही समाप्त हो गई। 1882 के बाद सरकार ने नेतृत्व प्रदान करना बन्द कर दिया। उसे अधिकाश प्रतिष्ठानो मे हानि हुई। अब सरकार ने निजी उद्यमियो को प्रोत्साहन देने की नीति अपनायी। अधिकाश सरकारी प्रतिष्ठानो को कुछ निजी पूँजीपतियो के हाथों बेच दिया गया जो बाद मे जैबत्सु के रूप मे सामने आये। राजकीय पूँजीवाद की अवनति होने लगी हालाकि 1930 के बाद वह पुनर्जीवित हुआ। राजकीय स्वामित्व कुछ चुने हुए उद्योगो मे रहा। उदाहरणस्वरूप सैनिक उद्देश्यो के लिए सरकार ने यवाता आयरन वर्क्स स्थापित किया। वह इस्पात उद्योग मे अपना प्रभुत्व जमाये रहा। 1906 मे सभी प्रमुख रेलमार्गों का राष्ट्रीयकरण कर दिया गया। सरकार टेलीफोन, तार, टकसाल तथा कुछ सैनिक व नौसैनिक उपयोग के कारखानो को स्वय चलाती रही। उसने जापानी बैंकिंग व्यवस्था पर अपना नियन्त्रण बनाये रखा।

एक अनुमान के अनुसार 1934 मे सरकारी विनियोगो का कुल मूल्य 4,500 मिलियन येन के बराबर था। शाही रेलो मे ही 3,682 मिलियन येन लगे हुए थे। 1930 मे की गई राष्ट्रीय सम्पत्ति का सगणना के अनुसार जापान की राष्ट्रीय एव स्थानीय सरकारो के पास 18 अरब येन मूल्य की सम्पत्ति होने का अनुमान लगाया गया था। यह वहाँ की कुल 110 अरब येन की राष्ट्रीय सम्पत्ति का छठा भाग थी। लगभग यही अनुपात तत्कालीन अमरीकी सम्पदा मे अमरीकी सरकार का था। 1937 मे चीन के साथ दुबारा लडाई छेड देने के बाद ही सरकार ने पुन उद्योगो मे भारी प्रत्यक्ष विनियोग करने तथा उन पर नियन्त्रण स्थापित करने की नीति अपनायी।

अप्रत्यक्ष सरकारी प्रयास

(1) शिक्षा—राष्ट्रीय एकता एव प्रतिरक्षा के बाद मेजी सरकार ने सर्वाधिक ध्यान शिक्षा पर ही केन्द्रित किया। इससे पहले शिक्षा केवल समुराई (Samurai) लोगो की बपौती थी। सरकार ने कई शिक्षित व्यक्ति पश्चिमी विचारो व उद्योगो का अध्ययन करने हेतु विदेश भेजे। 1871 मे एक शिक्षा विभाग बनाया गया। चिकित्सा, सैनिक विज्ञान, व्यवसाय, मत्स्य पालन तथा कृषि के क्षेत्र मे स्कूल कॉलेज खोले गये। शिक्षा एव अनुसधान के क्षेत्र मे प्रमुख केन्द्र के रूप मे टोक्यो शाही विश्वविद्यालय को आगे लाया गया। जापान के प्रमुख शिक्षाशास्त्री अमरीकी विचारो से प्रभावित हुए।

अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र मे सारी प्रगति की गई। 1900 मे देश के 27,000 स्कूलो मे 5 मिलियन बच्चे शिक्षा प्राप्त कर रहे थे। कॉलेजो व विश्वविद्यालयो मे 15,000 छात्र थे। 1903 तक 240 तकनीकी स्कूल गठित किये

जा चुके थे। जनसख्या की दृष्टि से जापान मे इजीनियरो का अनुपात कई पश्चिमी यूरोप के देशो से ऊँचा हो चुका था। शिक्षा के प्रसार ने आर्थिक अवसरो में वृद्धि की तथा असमानताओ को कम किया। राज्य के किसी भी अन्य उपक्रम ने इतना लाभाश नही प्रदान किया था जितना कि शिक्षा ने।

(2) **मौद्रिक एव राजकोषीय नीतियाँ**—मेजी जापान मे बचत का गतिशीलन एक महत्त्वपूर्ण समस्या थी। हालांकि कुल विनियोग में सरकार का भाग काफी कम था किन्तु उसने हर कदम पर देश के पूँजी-निर्माण को प्रभावित किया। जैसे-जैसे सरकार द्वारा नई तकनीकों को लोकप्रिय बनाया गया वैसे वैसे विनियोग की गति तीव्र हुई। आय व धन की भारी असमानताओ ने निजी पूँजी निर्माण की सहायता की। बचतो के उत्पादक उपयोग को प्रोत्साहन देने के लिए एक नई वित्तीय प्रणाली की आवश्यकता थी। 1868 से 1881 तक अस्त-व्यस्त वित्तीय इतिहास यही स्पष्ट करता है कि ये प्रक्रियाएँ निर्माण की अवस्था में थी। केवल भारी मात्रा में पत्र-मुद्रा निर्गमित करके ही मेजी सरकार अपनी प्रारम्भिक आवश्यकताएं पूरी कर सकती थी। एक अधिक व्यवस्थित समाधान बाद मे खोजा गया।

1873 का भूमि-कर सुधार भूमि लगान को अधिक व्यवस्थित रूप मे वसूल करने की दिशा मे एक प्रमुख कदम था। अधिकारियो ने पूँजी की पूर्ति मे वृद्धि करने के लिये सयुक्त पूँजी कम्पनियो को प्रोत्साहन दिया। पत्र मुद्रा तथा बैंकिंग के क्षेत्र में 1880 के बाद के दो दशको तक लगातार काउन्ट मत्सुकाता द्वारा दूरगामी सुधार किये गये। 1882 मे स्थापित बैंक ऑफ जापान को केन्द्रीय बैंक के रूप में विकसित किया गया।

(3) **बैंकिग का विकास**— मेजी काल में स्थापित किये गये अर्द्ध-सरकारी बैंको ने बैंकिंग के विकास मे महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। बैंक ऑफ जापान के अतिरिक्त उनमें योकोहामा स्पीशी बैंक, जापान का औद्योगिक बैंक तथा हाइपोथेक बैंक ऑफ जापान भी सम्मिलित थे। ये बैंक जैबत्सु द्वारा सचालित निजी बैंको के साथ सहयोग करके चलते थे। 1900 के बाद इन सरकारी बैंको के पास कुल प्रदत्त पूँजी का पाँचवाँ भाग था। डाकखानो की बचत योजना को डिपॉजिट ब्यूरो के अन्तर्गत शुरू किया गया।

सरकारी बैंको का प्रमुख उद्देश्य निजी बचतो का सरकारी वित्तीय आवश्यकताओ के लिए उपयोग करना था। बैंक ऑफ जापान अन्य बैंको को नियन्त्रित करता था। योकोहामा स्पीशी बैंक ने देश को एक कुशल विदेशी विनिमय-प्रणाली प्रदान की। औद्योगिक बैंक ने उद्योगो के लिए देश के भीतर तथा विदेशो से ऋण जुटाय। हाइपोथेक बैंक ने कृषि क्षेत्र को साख सुविधाएँ प्रदान की।

प्रथम महायुद्ध से पहले तक जापान मे मुद्रा एव साख का प्रसार कुल मिलाकर एक अस्त व्यस्त प्रक्रिया थी। उसमे बार-बार मन्दी व तेजी की स्थितियाँ आती रहती थी। किन्तु मन्दी की स्थितियाँ काफी कम समय तक रही तथा पत्र मुद्रा के प्रारम्भिक अनुभवो के बाद सरपट दौड़ती हुई स्फीति पर भी नियन्त्रण पा लिया गया। कुल मिलाकर जापान ने मुद्रा व साख की आधुनिक पेचीदगियो को सफलतापूर्वक निपटा

लिया जिनमे राज्य का उत्तरदायित्व सर्वाधिक था। उसने बहुत रूढिवादी नीति भी नही अपनायी। विकास की इस प्रक्रिया मे कई नव-प्रवर्तन भी आवश्यक थे। इनमे नये विनियोगो की आवश्यकता थी। मुद्रा व साख के क्षेत्र मे मौद्रिक-प्रसार द्वारा सार्वजनिक नीति ने इन आवश्यकताओ को पूरा करने मे सहायता की।

(4) मेजी कर प्रणाली व उपक्रम—राजकीय नीति का एक सबसे प्रभावशाली हथियार करारोपण होता है। इसमें न केवल करो का पैमाना व भार (Scale and incidence) सम्मिलित होते है जिन्हे कि सरकार लगाती है बल्कि वे उद्देश्य भी शामिल होते है जिनके लिए उन करो का प्रयोग किया जाता है।

मेजी युग मे किये कर-सुधारो ने एक निश्चितता का वातावरण पैदा किया। उनमें कुल मिलाकर कटौती भी की गई। मनमाना करारोपण समाप्त किया गया। 1873 के भूमि-कर सुधार कानून के बाद भूमि-कर सरकारी आय का प्रमुख स्रोत बन गया। 1882 मे उसमे कुल करो का 82% प्राप्त हुआ। 1887 में पश्चिम से आयकर का विचार भी देश मे लाया गया। 1896 में व्यावसायिक लेन-देन (Turnover) पर एक सामान्य कर भी लगाया गया। 1905 मे एक साधारण सा उत्तराधिकार कर भी लगाया गया। किन्तु इन सभी करो से 1913 तक भी कुल आगम का केवल 15% भाग प्राप्त होता था। 1880 से 1913 तक अप्रत्यक्ष कर ही सरकारी आय का प्रमुख स्रोत थे। 1893 व 1913 मे उनका भाग क्रमश 79% तथा 63% था। इस बीच स्थानीय निकाये भी करो द्वारा आय प्राप्त कर रही थी। वे राष्ट्रीय करो का 40% थे।

दो महायुद्धो के बीच सरकारी नीति

जब प्रथम महायुद्ध समाप्त हो गया तो शस्त्रास्त्रो पर व्यय में कटौती कर दी गई। सरकार ने कृषि विकास के लिए व सामाजिक कल्याण के लिए अधिक कोष नियत किये। 1921 में चावल के मूल्य स्थिर करने के लिए भी सरकार ने भारी राशि खर्च की। उसने सार्वजनिक स्वास्थ्य, शहरी सफाई आदि के नये दायित्व स्वीकार किये। कर-प्रणाली मे सशोधन किया गया। किन्तु जापानी संसद की इन सभी उपायो मे अधिक रुचि नही थी। उसकी रुचि तो अधिकाधिक कोष बड़े बैंको व बड़े पैमाने के उद्योगो के लिए जुटाने मे थी तथा उसने कृषि पर बहुत कम ध्यान दिया। कर-प्रणाली मे भी कोई आधारभूत परिवर्तन नही किये गये। आय की बड़ी मात्रा पर बहुत हल्के कर लगाये गये। दोनो महायुद्धो के बीच के वर्षो मे कुल कर भार राष्ट्रीय आय के 10 से 15 प्रतिशत के बीच रहा।

युद्ध से पहले की जापानी सरकारो ने अपने कर लगाने के अधिकार का उपयोग आय मे अधिक समानता स्थापित करने के लिए नही किया। सम्पत्ति से प्राप्त भारी आय पर बहुत कम कर लगाये गये। 1940 मे किये गये कर सुधारो के बाद ही आयकर का एक प्रभावशाली अस्त्र के रूप मे उपयोग आरम्भ हुआ। किन्तु, अन्य एशियाई देशो के विपरीत, जापान के समृद्ध व्यक्तियो की प्रशंसा मे यह बात कही जा सकती है कि उन्होने अपने धन का उपयोग पूंजी-निर्माण को बढ़ावा देने के

लिए किया।

युद्धो के बीच के काल मे औद्योगिक विकास अन्य प्रकार के राजकीय हस्तक्षेपो से भी प्रभावित हुआ। कृषि, जहाज-निर्माण तथा रेलो के विकास के लिए भारी अनुदान दिये गये। किन्तु इन अनुदानो की भूमिका जापान मे आर्थिक विकास मे काफी सीमित ही रही। 1931 मे इन अनुदानो की कुल वितरित राशि मात्र 61 मिलियन येन ही थी। इसी तरह तटकरो ने भी राष्ट्रीय विकास मे कोई महत्वपूर्ण योगदान नही दिया। 1911 मे निर्धारित तटकर नीति के पीछे यही सिद्धान्त अपनाया गया कि जो कच्चे माल जापान मे उपलब्ध नही होते उन्हे शुल्क मुक्त प्रवेश दिया जाए। विलासिताओ पर भारी तटकर लगाये गये। इस तरह दोनो महायुद्धो के बीच के वर्षों मे जापान अत्यन्त साधारण तटकरो वाला देश बना रहा।

विदेशी अर्थ-नीति

विदेशो मे आर्थिक अवसरो की खोज एक ऐसा क्षेत्र था जिसमे सरकार ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी। इसमे वे सभी नीतियाँ सम्मिलित थी जो विदेशो से वस्तुएँ, विचार, पूँजी तथा व्यक्तियो के देश मे आने से सम्बन्ध रखती थी। ये नीतियाँ राज्य के लिए विशेष ध्यान देने योग्य थी क्योंकि जापान की विदेशी वस्तुओ तथा तकनीक पर निर्भरता अत्यधिक थी। द्वीपीय राष्ट्र की राजनीतिक असुरक्षा के कारण भी इन आवागमनो पर नियन्त्रण आवश्यक था। राज्य ने इस सम्बन्ध मे निम्न उत्तरदायित्व ग्रहण किये—

(1) उसने अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक सम्पर्क के लिए संस्थागत ढाँचा तैयार किया। राजनीतिक सम्बन्ध स्थापित करने के अतिरिक्त इसमे जापानी वित्तीय प्रणाली को विश्व मुद्रा बाजारो से जोड़ने की मशीनरी का निर्माण करना भी इसमे सम्मिलित था। 1897 मे स्वर्णमान का अपनाया जाना तथा योकोहामा स्पीशी बैंक की स्थापना किया जाना (विदेशी विनिमय की देखभाल हेतु) इसी दिशा मे उपाय थे।

(2) तकनीकी सहायता के प्रदान किये जाने के महत्त्व पर पहले ही प्रकाश डाला जा चुका है। इसमें भी पहल करने का काम सरकार ने ही किया था।

(3) श्रम व पूँजी के जापान से बाहर जाने के विनियमन का कार्य भी राज्य ने ही किया। इसका प्रमुख सम्बन्ध उपनिवेशो के साथ व्यापार से था तथा वह अर्थ-व्यवस्था के सर्वांगीण विकास के लिए काफी महत्त्वपूर्ण था।

(4) सरकार ने भारी मात्रा मे पश्चिमी देशो से कर्ज लिये। 1897 से 1913 तक राज्य सरकार की साख पर ही यूरोप के मुद्रा बाजारो से जापान ने 2 बिलियन येन मूल्य के कर्ज लिये। इससे जापान को अपने घरेलू साधनो का सम्वर्द्धन करने मे सहायता मिली।

विदेश व्यापार का विकास—राज्य ने जापानी व्यवसायियो को विदेशो मे व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित करने मे बहुत सहायता की। राज्य उन उद्योगो के विकास के बारे मे अधिक चिन्तित था जो अपने आयातों के लिए अपने निर्यातो द्वारा भुगतान कर सकती थी। सरकार ने विदेश व्यापार तकनीको के विकास मे सक्रिय रुचि ली।

उसने जापानी वस्तुओं की विदेशों में प्रदर्शनियाँ लगाईं। उसने एक पूरे औपनिवेशिक साम्राज्य की स्थापना की जिसमें जापानी व्यवसायी निर्बाध रूप से व्यापार कर सकते थे। अपने विदेश व्यापार में जापानी सरकार ने बहुपक्षीय व्यापार के सिद्धान्त को स्वीकार किया। उसने अपने लिए कच्चा माल सस्ते से सस्ते बाजारों में खरीदा तथा निर्मित माल को श्रेष्ठतम सम्भव मूल्यों पर जहाँ भी सम्भव हुआ बेचा। 1929–30 के दौरान जापान को अमरीका के साथ व्यापार में 75 मिलियन येन तथा चीन के साथ व्यापार में 143 मिलियन येन का लाभ रहा। जापान ने इस अतिरेक का उपयोग अपने यूरोप व एशिया के साथ हुए क्रमश 233 मिलियन येन व 123 मिलियन येन के घाटों को पूरा करने में किया। इस बीच जापान के सैनिक तत्त्व सम्पूर्ण एशिया पर विजय पाने की अपनी योजना को आगे बढ़ा रहे थे। उनकी ये योजनाएँ ही उनके विनाश का कारण बनीं।

इस तरह आर्थिक साम्राज्यवाद[1] सैनिक प्रसारवाद की दासी बन गया। शक्ति, कूटनीति, विनियोग, व्यापार एवं प्रवास सभी का एक साथ सहारा लिया गया। इन सबने मिलकर कुछ समय के लिए सम्राट के अधिक गौरव (Greater glory of the Emperor) के लिए तथा साथ ही कुछ व्यावसायिक हितों की स्वार्थ-पूर्ति हेतु कार्य किया। करदाता धैर्य से इन सबके लिए धन उपलब्ध कराते रहे।

साम्राज्य के लिए तलाश 1930 के बाद आरम्भ हो चुकी थी। 1931 में मन्चूरिया पर विजय के बाद जापान के आर्थिक प्रतिष्ठानों के क्षेत्र में साम्राज्य स्थापना का लक्ष्य प्रमुख बन गया। 1938 के अन्त तक जापान का मचूरिया में विनियोग बढ़कर 3,600 मिलियन येन हो चुका था। एक अनुमान के अनुसार 1936 से 1939 तक जापान को कोरिया तथा फारमोसा से प्रति वर्ष 213 मिलियन येन का विशुद्ध प्रतिफल प्राप्त हो रहा था। सफेदपोश कर्मचारियों के लिए भी साम्राज्य नौकरियाँ पाने का अच्छा क्षेत्र बन गया था। 1933–37 के बीच कोरिया, फारमोसा व मचूरिया ने जापान के कुल निर्यातों में से 37% को खपाया था तथा खाद्य पदार्थ व कच्चे माल के रूप में उसके कुल आयातों में 29% का योग दिया था। किन्तु इन साम्राज्यवादी नीतियों का बड़ा बुरा अन्त हुआ तथा उनसे केवल हथियारों पर खर्च ही बढ़ा। जापान के आर्थिक इतिहास में यही एक बिन्दु था जहाँ युद्धोन्मत्त (war maniacs) लोगों ने देश को गलत दिशा दी जिसने उस पर द्वितीय महायुद्ध की बरबादी थोप दी।

संरक्षणवाद एवं अनुदान

इस बारे में कोई सन्देह नहीं हो सकता कि जापान द्वारा घरेलू व उसके औपनिवेशिक बाजारों में अपनायी गई संरक्षणवादी नीति ने वहाँ के विनिर्माण-उद्योग को भारी लाभ पहुँचाया। रेशम व सूती वस्त्र जैसे पुराने उद्योगों को तो विशेष संरक्षण की आवश्यकता नहीं थी किन्तु इस तटकर सहायता का कई नये उद्योगों को लाभ हुआ।

[1] *Ibid*, 535

जहाज-निर्माण एक ऐसा उद्योग रहा जिसे सरकारी सहायता व अनुदानो का भारी लाभ मिला। शुरु से ही उसे मेजी अधिकारियो ने काफी महत्त्वपूर्ण माना व उस पर ध्यान दिया था। इन नीतियो ने ही 1913 तक जापान को विश्व का एक महत्त्वपूर्ण व्यापारिक जहाजी बेडे वाला राष्ट्र बना दिया था। जहाज-निर्माण व सेवा के विकास मे दी गई सरकारी सहायता सक्षेप मे इस प्रकार रही—

(1) 1896 व 1909 के कानूनो के अन्तर्गत सकार्यशील अनुदान (operating subsidies) दिये गये। बडी कम्पनियो को उनकी जहाजी सेवाएँ बढाने तथा उनके जहाजी बेडे को आधुनिक बनाने के लिए सहायता दी गई। 1900 से 1914 तक जहाजी कम्पनियो को अपनी विशुद्ध आय का 77% इन अनुदानो से प्राप्त हुआ।

(2) प्रमुख जापानी बन्दरगाहो के बीच व्यापार करने से विदेशी जहाजो को 1894 के बाद से रोक दिया गया। 1911 मे तो उन्हें तटवर्ती व्यापार से पूरी तरह बाहर कर दिया गया।

(3) एक न्यूनतम आकार के जहाजो का निर्माण करने पर 1896 से 1917 तक अनुदान दिया जाता रहा। बडे और अधिक गति वाले जहाजो के लिए अनुदान अधिक दर पर दिया जाता था।

(4) 1931 मे व्यापार के प्रसार के साथ ही जहाज-निर्माण को और आधुनिक बना दिया गया। 4,000 टन से अधिक क्षमता वाले तथा 13 5 समुद्री मील से अधिक गति वाले जहाजो के निर्माण व्यय का 20% जापान की सरकार अनुदान के रूप में देती थी। 1937 तक जापान के पास 4 मिलियन टन क्षमता का वाष्प-चालित जहाजी बेडा तैयार हो चुका था जिसकी गति 14 समुद्री मील प्रति घण्टा से अधिक थी।

साराश रूप मे राजकीय सहायता व प्रोत्साहनो ने प्रारम्भिक वर्षों में जापान के जहाज-निर्माण उद्योग को काफी सहायता प्रदान की। इसके बिना उसका व्यापारिक जहाजी बेडा 1880 से 1910 के बीच प्रत्येक दशक म दुगुना नही हो सकता था। 1941–44 के बीच जापान ने जो विशाल साम्राज्य जीता तथा अपने नियन्त्रण में रखा वह भी उसकी नौसैनिक शक्ति का ही परिणाम था जो द्वितीय महायुद्ध के दौरान नष्ट हो गई थी।

कृषि मे सरकार का योग

यह कुछ आश्चर्यजनक प्रतीत हो सकता है कि जापान के एक सामन्ती देश से आधुनिक देश के रूप मे रूपान्तरण के लिए कृषि मे पूर्ण क्रान्ति की आवश्यकता नही पडी। यही कारण था कि मेजी क्रान्ति ने औसत किसान के जीवन पर कोई विशेष प्रभाव नही डाला। देश का 15% से भी कम क्षेत्रफल कृषि-योग्य था। इसमें से अधिकाश भाग पर किसान लोग 2 से 3 एकड के छोटे-छोटे टुकडो पर गहन खेती कर रहे थे। पुनर्संस्थापना के बाद की जापानी सरकारो ने कृषि सुधार की दिशा मे कुछ कदम उठाये भी जिनसे मेजी युग के अन्त तक कृषि उत्पादन दुगुना हो चुका था। सरकार ने जापानी कृषि को औद्योगीकरण की बदलती हुई आवश्यकताओ के अनुरूप ढालने की भी चेष्टा की। राष्ट्रीय सरकार ने कई तकनीकी सहायताएँ तथा ग्रामीण

सार्वजनिक कार्य शुरू किये। स्थानीय संस्थाओ ने भी भूमि के पुनर्ग्रहण, सडको के निर्माण व सिंचाई के विकास मे सहायता की। कृषि सहकारियो व ग्रामीण मछली पकडने वाले सघो का गठन किया गया। 1890 के बाद सरकार ने कृषि अनुसन्धान क्षेत्रो का जाल बिछाया तथा भू-प्रबन्ध, कीटाणु नियन्त्रण, उन्नत बीज तथा रासायनिक खादो से सम्बन्धित तकनीकी समस्याओ के समाधान हेतु कई एजेन्सियाँ भी स्थापित की। वन सरक्षण कार्यक्रम भी चलाया गया।

कृषि को दी गई इस तकनीकी सहायता जितना और कोई भी सार्वजनिक व्यय फलीभूत नही हुआ। इसने युद्ध-पूर्व कृषि की उत्पादकता 50 से 75% तक बढा दी। किन्तु इन तकनीकी सहायताओ तथा कुछ पूँजीगत सहायता के अलावा कृषि का भाग्य मेजी काल मे निजी व्यक्तियो तथा बाजार शक्तियो के हाथो मे सौंप दिया गया। भू-धारण प्रणाली तब तक दोषपूर्ण बनी रही जब तक द्वितीय महायुद्ध के बाद अमरीकी आधिपत्य वाली सरकार ने क्रांतिकारी भूमि-सुधार नही कर लिये। कृषि मामलो पर 1920 के बाद से ध्यान दिया जाने लगा। जन मागो से बाध्य होकर सरकार को सक्रिय रूप से ग्रामीण सहायता करनी पडी। 1935 तक प्रत्येक 3 खेतो मे से 2 सहकारी समितियो के सदस्य बन चुके थे। किन्तु लम्बे समय से चली आ रही कृषि समस्याओ पर भारी व प्रभावी प्रहार करने का कार्य अमरीकी आधिपत्य वाली सरकार ने ही अन्जाम दिया।

श्रमिक हितों का सरक्षण व सरकार

प्रथम महायुद्ध से पहले की जापानी सरकारो ने श्रमिको की सुरक्षा के लिए बहुत कम कानून बनाये थे। काम के घटो, मजदूरी या बाल श्रम के बारे मे भी कोई कानून नही थे। श्रमिक हितो की सुरक्षा करने वाले कानूनो के लिए माग मेजी काल के प्रारम्भिक वर्षो से की जाने लगी थी। पहला कानून 1905 का खान कानून था। 1919 मे अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन (I.L.O) की स्थापना के बाद पहली बार अन्तर्राष्ट्रीय सस्था द्वारा जापानी सरकार पर वहाँ के श्रमिकों के हितो की सुरक्षा हेतु कानून बनाने के लिए दबाव डाला गया। मजदूर सघो की सदस्यता बडी धीमी गति से बढी। 1926 मे मजदूर सघो की सदस्यता 3 लाख के लगभग थी। 1932 मे फैक्ट्री एक्ट का अधिकार-क्षेत्र बढाया गया। 1921 से 1936 के बीच श्रम कानूनो के क्षेत्र मे काफी प्रगति की जा चुकी थी किन्तु 1937 के बाद वे निरर्थक हो गये। सैनिक उद्देश्यो की पूर्ति ने इन श्रम कानूनो को बहा दिया। युद्ध के बाद इस क्षेत्र मे सारा कार्य नये सिरे से करना पडा।

व्यापार पर नियन्त्रण

मेजी राजनीतिज्ञ आधुनिक उद्योग स्थापित करने की जल्दी मे थे, विशेष रूप से उन्हे जिनसे सैनिक शिक्षा का विकास होता हो। इसीलिए अपनी औद्योगिक नीति मे भी जापानियो ने, सैनिक सगठन के क्षेत्र की ही भाँति, जर्मन, ढाँचे का अनुसरण किया। छोटे पैमाने के उद्योगो मे जापानी सरकार ने अधिक हस्तक्षेप नही किया।

जब 1880 मे जापानी सरकार ने उद्योगो के विकास का दायित्व छोड दिया तो निजी पूँजीपतियो ने अपनी जडें मजबूती से जमा ली। प्रो० जी० सी० एलन के शब्दो मे, जैबत्सु का विकास 'राष्ट्रीय नीति के अग' के रूप मे हुआ। सैनिक व नागरिक प्राधिकरणो ने हमेशा राष्ट्रीय आर्थिक नीतियो के क्रियान्वयन मे सहयोग किया। यह फिर भी कहना होगा कि 1880 के बाद छोटे व बडे दोनो ही उद्योगो को काफी अशो तक स्वतन्त्र रहने दिया गया था, यद्यपि इसके लिए 'अहस्तक्षेप' की नीति' का शब्द काम मे नही लाया जा सकता। सरकार ने बैंकिंग तथा वित्तीय नीतियो के द्वारा नियन्त्रण के कुछ उत्तोलक (levers) अपने हाथो मे रखे। फिर भी आर्थिक एव औद्योगिक शक्ति के सकेन्द्रण के लिए असीमित अवसर दे दिये गये थे।

युद्ध, मदी तथा औद्योगिक नियन्त्रण

प्रथम महायुद्ध के बाद आर्थिक गतिविधियो मे राजकीय हस्तक्षेप बढ गया। यह हस्तक्षेप श्रम कानूनो, तटकर अधिनियमो आदि के रूप मे सामने आया। महान् मदी के समय तो बडे उद्योगपतियो ने स्वय सरकार से हस्तक्षेप करने के लिए कहा। बडे उद्योगो की कार्यकुशलता बढाने व लागतें घटाने के लिए एक कार्यक्रम शुरू किया गया। 1930 मे इसी उद्देश्य से सरकार द्वारा एक विवेकीकरण ब्यूरो स्थापित किया गया प्रमुख उद्योग नियन्त्रण कानून 1931 मे पारित किया गया। सरकार ने छोटे विनिर्माताओ व व्यापारियो को विनिर्माण सघो तथा निर्यातक सघो के रूप में एकीकृत हो जाने के लिए प्रोत्साहित किया। 1937 के चीन-जापान युद्ध के बाद देश 'नये आर्थिक ढाँचे' की तरफ बढने लगा जिसने विशाल उपक्रमो पर राज्य का नियन्त्रण के असीमित अधिकार प्रदान किये। युद्ध के समय यह नियन्त्रण और भी बढ गया। 1941 मे देश मे करीब 20,000 नियन्त्रण एजेन्सियाँ थी।

1945 मे युद्ध समाप्त हो जाने के बाद देश के पुनर्निर्माण मे जापानी सरकार ने सक्रिय भूमिका निभायी। एक दशक से भी कम समय मे देश का पुनर्निर्माण कर पाना एक ऐसा आश्चर्य था जो केवल जर्मनी द्वारा दोहराया गया।

राज्य की भूमिका के बारे मे थोडा हटकर रॉबर्ट पी० पोर्टर के इस कथन को देखा जा सकता है जो इस अमरीकी अन्वेषक ने इस शताब्दी के आरम्भ मे प्रस्तुत किया था 'इस अवधि में जापानी लोग आर्थिक एव व्यावसायिक प्रश्नो के साथ जितना जूझ रहे थे उतना दुनिया के इतिहास मे शायद ही कभी कोई व्यक्ति या जाति जूझी होगी। सम्राट, प्रधानमन्त्री, मन्त्रिमण्डल, जापानी ससद (Diet) के सदस्य, अन्य अधिकारी—सबके सब जापान की भावी प्रगति व महानता के रग मे रगे हुए थे तथा उसे विश्व के उस भाग का सर्वाधिक प्रभुत्व वाला देश बनते देखना चाहते थे। सार्वजनिक भोज पर, सभी प्रकार के सरकारी उत्सवो पर यही सुनाई पडता था कि जापान की भौतिक प्रगति को तीव्रतर बनाने के लिए क्या किया जा सकता है? जापानी भाषा के पत्रो ने इसी प्रश्न को उठा रखा है तथा सभी प्रकार के उपक्रमो का विदोहन उतने ही हर्षोल्लास से किया जा रहा है जितना हमारे देश (अमरीका) के निर्माण के समय किया गया था।'

ग्यारहवाँ अध्याय

विदेश व्यापार

(THE JAPANESE FOREIGN TRADE)

आधुनिक जापान का कोई भी पहलू इतना नाटकीय नही है जितना कि 1868 के बाद उसके विदेश व्यापार मे हुई क्रांतिकारी वृद्धि ।[1] आर्थिक पृथक्ता की स्थिति मे जीने वाला यह लघुकाय द्वीपीय राष्ट्र पिछले 110 वर्षों मे विश्व के विशालतम व्यावसायिक साम्राज्यो मे से एक बन गया है । 1850 मे जापान के पास व्यापारिक जहाजी बेडा नाम को भी नही था । यदि कोई जापानी देश से बाहर जाना चाहता और पकडा जाता तो उसे मृत्यु-दण्ड मिलता था । 50 टन से अधिक की क्षमता वाला कोई भी जहाज जापान मे निर्मित नही किया जा सकता था ।

इस पृष्ठभूमि मे आधुनिक समयो मे हुआ कायाकल्प आश्चर्य मे डाल देने वाला है । द्वितीय महायुद्ध की बर्बादी से पहले जापान ने व्यापार का जाल बिछा दिया था तथा वह दुनिया मे पाँचवें स्थान पर आ चुका था । एशिया मे उपभोग की जाने वाली कारखानो से उत्पादित वस्तुओ का प्रमुख भाग जापान उपलब्ध कराता था ।

स्वय जापान के लिए विदेश व्यापार आर्थिक समृद्धि का द्वार खोलने वाली कुजी सिद्ध हुआ । एक नई तकनीक ने उसके सम्पूर्ण आर्थिक जीवन मे क्राति ला दी । विदेशी बाजारो पर जापान की निर्भरता उसकी अपनी व उपनिवेशो की सीमा पार कर गयी । इससे कुछ राजनीतिक असुरक्षा भी पैदा हो गयी । इस सम्भावना से बचने के लिए साम्राज्यवादी विचारधारा वाले कुछ सैनिक तत्त्वो ने एक हिंसक दौर मे दूसरे महायुद्ध के दौरान सभी कुछ दाव पर लगाकर पूर्वी एशिया मे एक नया साम्राज्य स्थापित करने की चेष्टा की । जो परिणाम निकला वह आज इतिहास बन चुका है । युद्ध ने जापान के औद्योगिक ढाँचे की व्यावसायिक नीवो को ही नष्ट कर दिया । युद्धोत्तरकालीन पीढियो को वे नीवें फिर से बनानी पडी ।

आन्तरिक एव विदेशी व्यापार की पारस्परिक निर्भरता

यह विचार कि विदेशी बाजारो को प्राप्त करना ही जापानी औद्योगीकरण का मूलाधार रहा, अर्द्ध-सत्य ही है । यह सही है कि प्रारम्भिक प्रोत्साहन (initial stimuli) तथा नई तकनीक प्रमुख रूप से विदेशो से ही आयी थी । इस रूप मे जापान की औद्योगिक क्राति विदेशी व्यापार का सृजन भी रही । किन्तु राष्ट्रीय प्रतिक्रिया भी सकारात्मक व सम्पूर्ण रही तथा सारी अर्थव्यवस्था मे सक्रिय भी रही । इसके

[1] W W Lockwood, *op cit*, 304

परिणामस्वरूप उत्पादकता एवं सम्पदा मे निरन्तर वृद्धि हुई जिससे आयात व निर्यात दोनों ही का बहुत विकास हुआ। जैसे-जैसे किसी देश की राष्ट्रीय आय बढती है उसे विदेश व्यापार मे भी लाभ होता है।

यदि जापान का विदेश व्यापार बढा तो आन्तरिक व्यापार भी पीछे नही रहा। उल्टे आन्तरिक व्यापार का परिमाण हमेशा अधिक रहा। कोई भी देश एक कमजोर एव अनिर्मित अर्थव्यवस्था के बल पर महान् विदेशी व्यापार की सरचना नही कर सकता। जापान मे न केवल आन्तरिक एव विदेशी व्यापार एक-दूसरे से निकट बने रहे बल्कि वे एक ही प्रक्रिया के दो पहलू भी बने रहे। जापानी अर्थव्यवस्था का विकास इन दोनों ही पहलुओ की पेचीदा अन्तर्प्रतिक्रिया (interaction) का ही परिणाम था।

दूसरा अनिवार्य निर्णय जापान को राष्ट्रीय आर्थिक विकास का ही एक 'घात-प्रतिघात' मामला बताना होगा। कई अर्थों में उसका विकास अन्तर्राष्ट्रीय विकास का एक अनूठा उदाहरण था। विदेशी प्रभाव तथा विदेशी व्यापार ने उसके विकास म महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। यह जापान का सौभाग्य रहा कि उसने अपनी अर्थव्यवस्था के लिए आधुनिकीकरण का मार्ग ऐसे समय में चुना जब सम्पूर्ण विश्व अर्थव्यवस्था का प्रसार हो रहा था। स्वय जापान ने पहले 70 वर्षों तक एक बहुत उदार व्यापार नीति अपनायी।

विदेश व्यापार का विकास . 1868–1938

1868 से 1938 के बीच जापान के विदेश व्यापार मे तीव्र एव भारी वृद्धि हुई।

विदेशो के साथ जापानी व्यापार का विकास 1885–1938

वार्षिक औसत	कुल मूल्य (मिलियन येन में)		
	आयात	निर्यात	सतुलन
1885–1889	47	55	+ 8
1895–1899	206	163	– 43
1905–1909	468	413	– 55
1915–1919	1,423	1,663	+240
1925–1929	2,849	2,449	–355
1930–1934	2,212	2,058	–154
1935–1938	3,868	3,772	– 96

इस विकास की अनेक विशेषताओ की तरफ ध्यान आकृष्ट हो जाता है। एक ऐसी प्रवृत्ति आयात व निर्यात दोनों ही मे बराबर वृद्धि की रही है। वे हर दशक में दुगुने होते चले गये तथा उनकी वार्षिक विकास दर 7 5% से अधिक ही रही। यह विश्व आयातों में विकास की दर से दुगुनी थी। आधुनिकीकरण की प्रक्रिया अपने पूरे जोर पर थी। विदेशों से भारी मात्रा में मशीनों तथा कच्चे माल का आयात कर जापान ने विश्व व्यापारिक नीतियो का भरपूर लाभ उठाया।

प्रथम विश्व-युद्ध ने जापानी निर्यातो की वृद्धि के लिए एक अनूठा सुअवसर प्रदान किया। वास्तव मे 1932–37 के बीच की व्यापारिक तेजी एक लम्बे समय से चली आ रही गतिविधियो के गहन हो जाने का ही परिणाम थी। यह दो रूपो मे भिन्न थी: (1) जापानी व्यापार अब सम्पूर्ण विश्व मे फैल चुका था, तथा (2) जापान के निर्यात महान् मन्दी के दौरान लगभग अप्रभावित ही रहे। व्यापार मे प्रसार, जो मेजी काल से आरम्भ हो चुका था, आगे बढता गया। चार सीमित युद्धो, मूल्यो मे आने वाले उतार-चढावो, भूकम्पो तथा कुछ अन्य सकटो ने व्यापार मे इस दीर्घकालिक वृद्धि को अस्थायी रूप से छिन्न-विच्छिन्न किया। किन्तु पहला वास्तविक आघात तो तभी लगा जब इस ढांचे को युद्ध की तैयारियो के चक्कर मे उत्तरोत्तर बिगाडा गया तथा बाद मे तो वास्तविक युद्ध ने इसे नष्ट ही कर दिया था।

व्यापार मे इस प्रसार की दूसरी विशेषता के रूप मे कोई यह अनुमान भी लगा सकता है कि शायद बढते हुए निर्यात अधिकाधिक विशुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद सोखते जा रहे थे अथवा आयातो का राष्ट्रीय आय मे भाग बढता जा रहा था।

शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद (N.N.P.) के प्रतिशत के रूप मे जापान का विदेश व्यापार, 1885–1938

(यमुदा के अनुमान)

वार्षिक औसत	शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद (मिलियन येन मे)	राष्ट्रीय उत्पाद के प्रतिशत के रूप मे	
		निर्यात	आयात
1885–1889	937	5 9	5 1
1895–1899	1,962	8 3	10 5
1905–1909	3,106	13 2	15 1
1915–1919	7,623	21 8	18 [illegible]
1925–1929	13,621	18 3	20 9
1930–1934	12,029	17 1	18 4
1935–1938	18,377	20 5	21 0

1860 के शून्य से शुरु होकर आयात व निर्यात दोनो ही 1900 तक शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद का 10% हो चुके थे। दोनो महायुद्धो के बीच के वर्षों मे ये अनुपात 15 से 20% के बीच रहे। 1918 के बाद निर्यातो ने न केवल आयातो के लिए वित्त प्रदान करने मे प्रमुख भूमिका निभाई बल्कि उन्होने जापानी आर्थिक गतिविधि को बाहरी दुनिया से जोड दिया। 1912 से 1937 के बीच आयात राष्ट्रीय आय का 20% रहे। जापान ने आयात अधिक किया क्योंकि उसे कौशल तथा साधन दोनो की आवश्यकता थी। उसकी क्रय शक्ति भी बढ गई थी।

इस अवधि की तीसरी विशेषता आयातो व निर्यातो मे समानान्तर वृद्धि की रही। यह भौतिक आकार व मूल्य दोनो ही के बारे मे सही था। उतार-चढाव भी आए जैसे प्रथम महायुद्ध मे निर्यातो की तेजी ने भारी अतिरेक पैदा कर दिया था। 1910–14 से 1935–38 के बीच आयात ज्यामितिक दर से प्रति वर्ष 5 2% बढे। निर्यातो की वृद्धि दर 6 7% रही।

चौथी विशेषता से पता चलता है कि प्रथम महायुद्ध से पहले व उसके दौरान जापान का व्यापारिक इतिहास उसके विरुद्ध ही रहा। 1909 से 1918 के बीच आयात मूल्य निर्देशांक लगभग तिगुने हो गये जबकि उसके निर्यातों के मूल्य 85% ही बढ़े। दूसरे शब्दों मे जापान निर्यातों के बदले आयात प्रतिकूल शर्तों पर प्राप्त कर रहा था। इसका अर्थ यह भी था कि जापान की बढ़ती हुई तकनीकी कुशलता व निम्न मजदूरी स्तर से एशिया, अमरीका आदि जापानी वस्तुओं के खरीदार लाभान्वित हो रहे थे।

जापान के विकास मे विदेश व्यापार की भूमिका

विदेश व्यापार ने जापान की अर्थव्यवस्था को तीन रूपों मे प्रभावित किया—

(1) उसने आधुनिक विज्ञान, मशीनी तकनीक तथा व्यावसायिक सगठन को प्रारम्भ करने मे सहायता की। बढ़ते हुए आयातों ने पश्चिम के औद्योगिक राष्ट्रों के साथ एक स्थायी सम्पर्क कायम कर दिया। इसके अतिरिक्त जापान के बढ़ते हुए निर्यातों ने अनेक उत्पादक उपक्रमों मे विनियोग को प्रोत्साहन दिया। उसने नये कौशल का बड़े पैमाने के उत्पादन मे उपयोग करने पर भी बल दिया। उससे नगरीकरण को भी बढ़ावा मिला। परिवर्तन तथा विश्वास को प्रोत्साहन देने मे भी उसने काफी गतिशील भूमिका निभाई। विदेश व्यापार ने ही जापान की प्राकृतिक साधनों की निर्धनता को दायित्व के स्थान पर परिसम्पत मे बदल दिया।

(2) दूसरा योगदान भी पहले योगदान के साथ साथ चला। विश्व बाजार मे पहुँच होने के कारण उसे वे वस्तुएँ प्राप्त करने मे सुविधा रही जिनका उत्पादन वह स्वय सस्ती दर पर नही कर सकता था। उनका भुगतान निर्यात द्वारा किया जाता था। उदाहरण के लिए, युद्धों के बीच के वर्षों मे उपयोग मे लाये गये लोहे व इस्पात का 20% से भी कम जापानी कच्चे लोहे से बना था। सक्षेप मे विश्व अर्थव्यवस्था ने जापान को विशिष्टीकरण का लाभ निरन्तर बढ़ते हुए पैमाने पर लेने योग्य बनाया। विश्व के किसी भी अन्य देश का इस अवधि के बहुपक्षीय व्यापार से उतना लाभ नही मिला जितना कि जापान को प्राप्त हुआ। बहुपक्षीय व्यापार ने जापान की नई औद्योगिक तकनीक की उत्पादकता को और बढ़ाने म योगदान दिया।

(3) विदेश व्यापार का तीसरा प्रभाव यह रहा कि जापान की अर्थव्यवस्था विश्व के उतार-चढ़ावों से जुड़ गई। यह स्थिर बनाने तथा अस्थिरता प्रदान करने का काम साथ-साथ करता रहा। उदाहरण के लिए, फसल खराब हो जाना कम गम्भीर बन गया क्योंकि चावल बाहर से मँगवाया जा सकता था। दूसरी ओर जब 1929–32 की मन्दी मे उसका रेशम बाजार नष्ट हो गया तो जापान को कई अव्यवस्थाओं एव कुसमायोजनों का सामना करना पडा।

व्यापार-शिक्षा के माध्यम के रूप मे

मेजी क्रान्ति, जैसा कि सर जॉर्ज सेंसम ने लिखा है, वास्तविक अर्थों मे 'एक आन्तरिक विस्फोट' थी। किन्तु जिस तथ्य ने उसे तकनीकी एव आर्थिक सगठन

के क्षेत्र में क्रान्तिकारी बनाया। वह यही था कि उसने पश्चिम के लिए अपने द्वार खोल दिये थे। पश्चिमी विनिर्माताओं को अब भारी संख्या में देश में आने दिया गया। जापानियों ने ब्रिटिश धातु-विज्ञान एवं वस्त्र-निर्माण, अमरीकी रेल प्रणाली, फ्रान्सीसी कानून, व जर्मन सैनिक विज्ञान का अध्ययन किया। वियना में लगे एक विश्व व्यापार मेले में एक जापानी एम्पोरियम 'साम्राज्य के स्थानीय कार्यों को प्रदर्शित' करने के उद्देश्य से लगाया गया। एक को छोड़कर ये सभी अवसर मेजी शासकों द्वारा खूब अच्छी तरह काम में लिये गये। मेजी शासकों ने प्रत्यक्ष विदेशी विनियोग की अनुमति नहीं दी क्योंकि उन्होंने देख लिया कि उसकी एशियाई देशों में अन्तिम परिणति उपनिवेश बनने के रूप में हुई थी। विदेशी उपक्रमों के बारे में इस सशयपूर्ण रवैये में 1900 के बाद ही ढील दी गई। वास्तव में उन दिनों स्वर्णमान भी पश्चिमी पूँजी आकर्षित करने के उद्देश्य से ही अपनाया गया था। युद्धों के बीच के काल में जापानियों ने भारी कर्ज लिये। कुछ विदेशी फर्मों को जापानी फर्मों में स्वामित्व सम्बन्धी अधिकार प्राप्त करने की अनुमति दी गई। जैसे, 1905 में अमरीकी जनरल इलैक्ट्रिक कम्पनी ने जापानी टोक्यो इलैक्ट्रिक लाइट कम्पनी में अपना कुछ हिस्सा रखा। इस प्रकार की व्यवस्थाओं से तकनीकी क्रान्ति की शुरुआत हुई।

किन्तु इस प्रकार की विदेशी भागीदारी का पैमाना सीमित ही रहा। जापान में कुल प्रत्यक्ष विदेशी विनियोग 1913 व 1933 में क्रमश 70 व 200 मिलियन येन ही था। संख्यात्मक दृष्टि से यह नगण्य था। जापान तथा एशिया के अन्य देशों के बीच मूल अन्तर यही रहा कि 1868 के बाद जापान ने भारी मात्रा में आयात किये तथा विदेशों में उत्पादन तकनीकों व संस्थाओं को लेकर अपने यहाँ पनपाया। जापानियों ने सीखने की तत्परता दिखाई। युवक बादशाह मेजी ने 1868 में ही घोषित कर दिया था कि 'बुद्धि एवं ज्ञान सारे संसार में खोजा जाएगा ताकि साम्राज्य की नींव मजबूती से स्थापित की जा सके।'

कुछ बहुत कम कीमत वाले आयात बहुत आधारभूत सिद्ध हुए। लेथ मशीन (Lathe Machine) एक ऐसा ही उदाहरण रही। यही हाल छपाई की मशीनों, उन्नत बीजों, कीटाणुनाशक दवाओं, सूखे सैलों (dry cells) तथा गैस इन्जिन का रहा। 1889–93 के दौरान मशीनों के आयात का वार्षिक औसत मात्र 6 मिलियन येन रहा। यही औसत 1909–13 में 30 मिलियन येन तथा 1929–33 में 120 मिलियन येन रहा था। किन्तु उन्होंने अर्थव्यवस्था का तो कायाकल्प ही कर दिया।

आरम्भिक वर्षों में तो कारखानों की बनी चीजों ने घरेलू हस्तशिल्प के बने वस्त्रों आदि को अपनी जगह से पदच्युत कर दिया। किन्तु यह कुछ समय के लिए ही हुआ। जल्द ही हर तरफ विदेशी वस्तुओं की नकल करने के लिए कई छोटे छोटे कारखाने खुल गये। वे साबुन, माचिसें, जूते, छाते आदि बनाने लगे। उस समय की एक सरकारी रिपोर्ट में लिखा गया कि 'विदेशी वस्तुओं के पीछे पागलपन हर कहीं दिखाई पड़ता था तथा हर चीज विदेशी वस्तुओं की नकल करके बनायी जाने लगी थी।'

यूरोप तथा अमरीका से आयातो ने, कुछ व्यवसायो के समाप्त हो जाने के बावजूद, देश मे नई आवश्यकताओ व तकनीको को जन्म दिया जो समय के साथ विशाल पैमाने के उद्योगो के रूप मे सामने आयी। इस तरह पुराने व्यवसायो की समाप्ति से हुई हानि की तुलना मे इन उद्योगो से नये व्यवसाय स्थापित होने के रूप मे होने वाले प्रसारवादी प्रभाव कही अधिक थे। यातायात के उपकरणो के तुरन्त आयात के साथ बड़े पैमाने पर उत्पादन के लिए मशीनें मँगवाना जापान के तीव्र विकास मे सहायक रहा। 1868 के पहले पहियो पर चलने वाले वाहन जापान मे कही दिखाई नही पड़ते थे। किन्तु दो ही दशको मे वहाँ रेलो का जाल बिछ गया जिनसे बाजार व्यापक बना, श्रम की गतिशीलता बढी तथा नये नगरों का जन्म हुआ।

विदेश यात्रा तथा जापानियों द्वारा अध्ययन ने भी उनके बाद के वर्षो के विकास मे सहायता की। पश्चिमी विशेषज्ञो को आधुनिक जापान का सृजनकर्ता कहना तो अतिशयोक्ति होगी परन्तु उस देश के विकास मे उनका योगदान किसी भी तरह नगण्य नही था। हाल ही के वर्षों मे कुछ देशो के उदाहरण से स्पष्ट हो जाता है कि केवल मशीनो या उपकरणो का आयात कर लेना ही काफी नही है। बिना तकनीकी सलाह के, जिसे कि जापानियो ने तत्परता से प्राप्त किया उन मशीनो को जग ही लग सकता है। जापान का अनूठापन इस प्रकार की सहायता अधिक न पा सकने की असफलता मे नही बल्कि ऐसी सहायता के बिना काम चला सकने की गति मे रहा है। जैसे, 1895 मे जहाज निर्माण करने वाली एक जापानी कम्पनी मे 224 विदेशी विशेषज्ञ कार्यरत थे। 1920 तक किसी भी जापानी जहाज पर एक भी विदेशी काम पर लगा हुआ नही था। यह एक ऐसा युग था जब विकसित देश मशीनें व तकनीक निर्बाध रूप से उपलब्ध कराते थे। इसीलिए जापानी लोग, जहाँ कही भी जरूरत पड़ी, श्रेष्ठ पश्चिमी तकनीक प्राप्त करने मे सफल हो पायें।

निर्यातो की प्रगति

अधिक सकारात्मक रूप से, विदेश व्यापार तकनीकी परिवर्तनो को सक्रिय भी कर सकता है। क्योकि बढते हुए निर्यात नई आय व नये रोजगार का सृजन करते हैं। वे प्रभावित उद्योगो मे आधुनिक विज्ञान, मशीनो तथा कौशल को प्रोत्साहित भी कर सकते हैं, और यही वास्तव मे मेजी जापान मे हुआ। चूँकि निर्यात उन आयातो के भुगतान के लिए आवश्यक थे, जिन्हें राष्ट्रीय प्रतिरक्षा एव विकास के लिये किया जा रहा था, इसलिए उनकी वृद्धि राज्य नीति का एक अंग बन गयी तथा सरकार ने उन्हें भारी प्रोत्साहन दिया। विश्व की कुल माँग मे इसी अवधि मे आयी तीव्रता का भी जापान के औद्योगीकरण पर काफी महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ा। 1858 मे जापानी बन्दरगाहो को विदेश व्यापार के लिए खोल दिये जाने के बाद उसके निर्यात व्यापार मे जो प्रसार आरम्भ हुआ वह आज तक कायम है। सम्पूर्ण मेजी काल के प्रत्येक दशक मे (1868–1911) विदेशो से आने व वहां जाने वाले साज-सामान दुगुने होते चले गये। 1900 तक वे 200 मिलियन येन की सीमा पार कर चुके थे।

आरम्भिक वर्षों मे ये निर्यात प्रमुख रूप से खाद्य पदार्थों व कच्चे मालों के थे। सबसे बडी मद कच्चा रेशम था जिसका निर्यात मे प्रतिशत 40 के लगभग था। जापान के बन्दरगाह जब सबसे पहले विदेश व्यापार के लिए खोले गये तो चाय, तावा या रेशम के साधारण से निर्यातो से भी देश मे उनका अभाव हो जाता था। इससे उनके मूल्य बढ जाते थे। पूर्ति काफी बेलोचदार थी। सर्वप्रथम बाजारो को व्यापक बनाने की आवश्यकता थी। इसका परिणाम यह हुआ कि उत्पादन मे प्रसार एव सुधार हुए। विदेशी व्यापार के खुल जाने के बाद कच्चा रेशम उद्योग एक परम्परागत उद्योग से बडे पैमाने के उद्योग के रूप मे रूपान्तरित हो जाने का एक ज्वलन्त उदाहरण है। 150 से भी अधिक वर्षो तक 65% से लेकर 80% कच्चा रेशम (कुल उत्पादन का) निर्यात किया जाता रहा था।

रेशम के विपरीत आरम्भिक वर्षों मे जापान द्वारा उत्पादित पश्चिमी देशो की कारखाना प्रणाली पर आधारित वस्तुएँ केवल घरेलू बाजार के लिए थी। इनमे जहाज, मशीनें, कागज, सूत, सीमेंट आदि चीजे सम्मिलित थी। 1900 से 1913 के बीच सूती वस्त्र के निर्यात तिगुने हो गये। इसके बाद सस्ती विनिर्मित वस्तुओ का निर्यात शुरू हुआ जिसका परिमाण बढता ही गया। वे विदेशो को भेजी जाने वाली वस्तुओ मे बढते-बढते 60% हो गये। जहाँ तक विकास की दर का प्रश्न है दोनो महायुद्धो के बीच के काल मे जापानी निर्यातो की वृद्धि दर तत्कालीन औद्योगिक पश्चिमी राष्ट्रो की तुलना मे बहुत आगे रही। वास्तव मे 1901–05 से 1931–35 की अवधि मे विश्व निर्यातो के भौतिक परिमाण (physical volume) मे केवल 20% की ही वृद्धि हुई थी। इसकी तुलना मे जापान के निर्यात परिमाण मे 600% बढे।

सामान्य धारणा के विपरीत, युद्ध से पहले का जापान विदेशी बाजारो पर उससे कही कम निर्भर रहा जितना कि उसके बारे मे सोचा जाता है। 1910 तक उसकी यह निर्भरता 15% तक पहुँची थी। साधारणतया जापान के निर्यातो का उसकी राष्ट्रीय आय के साथ अनुपात 1 5 रहा। किन्तु यह अवश्य कहा जा सकता है कि यह अनुपात अमरीका व ब्रिटेन की तुलना मे तीन गुना था। 1930, 1936 व 1938 मे जापान को निर्यातो से प्राप्त हुई कुल प्राप्तियो की तुलना उसके विशुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद (N N P) से की जा सकती है[1]—

(मिलियन येन मे)

	1930	1936	1938
शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद	10 224	15,779	20,682
शुद्ध निर्यात प्राप्तियाँ	1 371	2,427	3,048
शुद्ध निर्यात प्राप्तियाँ—राष्ट्रीय उत्पाद (प्रतिशत)	13·4	15 4	14 7

[1] *Ibid*, 344

1927–36 की अवधि मे राष्ट्रीय उत्पाद का लगभग 15% भाग साधारणतया विदेशी बाजारो को निर्यात किया जाता रहा। विदेशी बाजारो पर जापान की निर्भरता की सीमा तथा स्वरूप का स्पष्ट अनुमान वस्तु उत्पादन के साथ निर्यातो की तुलना द्वारा लगाया जा सकता है। प्राथमिक उद्योगो (primary industries) मे घरेलू बाजार का प्रभुत्व बना रहा—

(i) **कृषि**—1928–36 की अवधि मे जापान के कुल निर्यातो मे खाद्य पदार्थों का भाग केवल 7% ही रहा। जापानी कृषि की दो सर्वप्रमुख निर्यात मदे रेशम व चाय थी। बाद मे रेशम का निर्यात चाय के मुकाबले कही अधिक हो गया।

(ii) **मछली उत्पाद**—जापान विश्व के प्रमुख मछली उत्पादक राष्ट्रो मे से है। द्वितीय महायुद्ध से पहले उसका मछली उत्पादन अमरीका के मुकाबले दुगुना था। वह विश्व के कुल मछली उत्पादन का पाँचवा भाग था। युद्ध से पहले 90% से अधिक मछली उत्पादन घरेलू उपभोग के काम आता था। प्रथम महायुद्ध के बाद डिब्बा-बदी तथा अवशीतन (canning and refrigeration) ने मछली उत्पादनो को काफी बढावा दिया। वह निर्यात माग ही थी जिसके कारण मछली पकडने के लिए अलग जहाज (fishing vessels) तथा अवशीतन जहाज (refrigerator ships) बनाये गये। कुछ किस्म की मछलियो के उत्पादन का तो 90% निर्यात किया जाने लगा। किन्तु कुल मिलाकर 1930 के दशक मे, जब मछली निर्यात अपने चरम बिन्दु पर था, उसमे कुल उत्पादन का 10% भाग काम आ रहा था।

(iii) **खनन**—खनन के जापान के आरम्भिक विकास मे निर्यात प्रमुख महत्त्व के रहे। 1913 के बाद औद्योगिक खनिजो के लिए जापान की अपनी आवश्यकताएँ ही इतनी बढ चुकी थी कि उनके निर्यात अपने आप ही कम हो गये। कोयले के निर्यात तो महायुद्धो के बीच के वर्षों मे बन्द ही हो गये। ताँबे का अवश्य निर्यात-धातु के रूप मे विकास हुआ। प्रथम महायुद्ध से पहले वह अपने ताँबा-उत्पादन का 60% निर्यात करता था, किन्तु 1936 तक यह प्रतिशत घटकर 20 पर आ गया।

(iv) **विनिर्मित माल का निर्यात**—विनिर्मित माल के क्षेत्र मे ही विदेश बाजार जापान के लिए सर्वाधिक महत्त्व का रहा है। कभी-कभी मेजी काल के बाद जापानी उद्योगो मे हुए विकास का एकमात्र कारण उनकी वस्तुओं के लिए उत्पन्न विदेशी माग को ही बताया जाता है। किन्तु यह धारणा सही नही है। 1928–37 के बीच जापान के कुल विनिर्मित माल उत्पादन का 25 से लेकर 35% भाग निर्यात किया गया। यह उस समय के किसी भी अन्य औद्योगिक राष्ट्र, ब्रिटेन, जिसमे सम्मिलित है, के मुकाबले अधिक ऊँचा प्रतिशत था। अन्तिम एव प्रामाणिक रूप से इस स्थिति का पता लगाने के लिए विनिर्मित माल के उत्पादन निर्देशाको की निर्यात के लिए प्रयुक्त विनिर्मित माल के निर्देशाको के साथ (नागोया निर्देशाक) तुलना की जा सकती है—

आश्चर्य की बात है कि प्रथम महायुद्ध के पहले तक विनिर्मित माल की उत्पादन वृद्धि दर उनके निर्यातो की वृद्धि दर से ऊँची रही। स्पष्ट है कि विनिर्मित माल का अधिकाश भाग बढती हुई घरेलू माग को पूरा करने मे खप गया। विदेश

व्यापार के लिए प्रयुक्त विनिर्मित माल और घरेलू माग के लिए प्रयुक्त विनिर्मित माल की वृद्धि दर एक सी रही।

	विनिर्मित माल उत्पादन	विनिर्मित माल का विदेशों को निर्यात
1905–1909	69	61
1910–1914	100	100
1915–1919	160	173
1920–1924	217	157
1925 1929	313	252
1930–1934	377	326

औद्योगिक तकनीक व निर्यात

निर्यातो का एक प्रत्यक्ष योगदान तो यही रहा कि उन्होने मशीनो, खाद्यान्नो व कच्चे मालो के भुगतान के लिए राशि जुटाई। 1870 से 1930 के बीच किये गए कुल आयातो का एक-तिहाई भुगतान तो केवल रेशम के निर्यातो से हो गया। दूसरे, निर्यात व्यापार मे ही जापानी व्यावसायियो को नए उपक्रम आरम्भ करने के अत्यधिक लाभकारी अवसर प्राप्त हुए। तीसरे, निर्यात व्यापार मे लगे हुए विभिन्न उद्योगो की उत्पादन गतिविधियो मे वृद्धि से विशाल पैमाने के विपणन, उत्पादन तथा वित्त की मितव्ययिताएँ भी प्राप्त होने लगी। अधिकाश निर्यात मदें ऐसे उद्योगो द्वारा निर्मित की जाती थी जिनके लिए भारी मात्रा मे घरेलू माग भी थी। यह बात रेशम सूती वस्त्र, रेयन, चीनी व कागज जैसे उद्योगो के लिए सही थी। मुख्य जापानी निर्यातो मे ऐसे पदार्थ भी थे। जिनमे कारखानो का सर्वोत्तम आकार (optimum size) मध्यम या लघु पैमाने का था।

निर्यात व्यापार के कुछ अन्य प्रभाव निम्न रहे—

(1) निर्यात व्यापार ने न केवल कुछ उद्योगो को बहुत बडा बनाया बल्कि उसने जापान के कुछ महान् शहरो मे उत्पादन का क्षेत्रीय सकेन्द्रण भी कर दिया। 1938 तक तीन महान् औद्योगिक केन्द्र टोक्यो ओसाका व नागोया मे जापान की कुल श्रम शक्ति का 30% लगा था तथा वे देश के कुल कारखाना उत्पादन का 33% भाग निर्मित कर रहे थे।

(2) निर्यातो के कारण विभिन्न वस्तुओ का समानीकरण भी हुआ। कई उद्योगो मे विदेशी माग ने अधिक एकरूप एव स्टैंडर्ड डिजाइनो वाली चीजो के उत्पादन को बढावा दिया। घरेलू बाजार के लिए उत्पादित वस्तुओ के उत्पादन मे इतनी एकरूपता आवश्यक नही थी।

इस तरह जापान के आर्थिक विकास मे वहाँ के निर्यात बाजार की भूमिका को निम्न रूपो मे देखा जा सकता है—

(1) आवश्यक आयातो का भुगतान निर्यातो ने किया। (2) उन्होंने आय वृद्धि की गत्यात्मकता तथा पूँजी-निर्माण मे योगदान दिया, तथा (3) उन्होने तकनीकी प्रगति को (अ) नए सम्पर्क व अवसर प्रदान करके, व (आ) कुछ प्रमुख

उद्योगो मे उत्पादन का पैमाना बढाकर, प्रोत्साहित किया। किन्तु जैसा कि पहले भी लिखा जा चुका है, इस अन्तिम बिन्दु पर आवश्यकता से अधिक बल नही दिया जाना चाहिए।[1]

यह आधुनिक युग की एक दु खान्तिका ही है कि अत्यधिक आर्थिक निर्भरता राष्ट्रीय असुरक्षा को जन्म देती है। जापानियो का इस बारे मे चिंतित रहना स्वाभाविक ही था। अपने आर्थिक प्रसार के चरम बिन्दु पर पहुँचने के बाद भी वे पूर्वी एशिया मे प्रभुत्व स्थापित करने के लिए शायद एक तरह से बाध्य ही हुए। *यह विडम्बना ही कही जानी चाहिये कि साम्राज्य स्थापना की इस चेष्टा का मूलाधार* आर्थिक कारण रहे। वास्तविकता यह थी कि *1930* के बाद आर्थिक राष्ट्रीयवाद को बढावा मिलने के कारण जापान के आर्थिक प्रसार पर ब्रेक लग गये थे तथा उसका भविष्य थोडा अन्धकारमय होने लगा था।

विदेश व्यापार 1934–1962

	निर्यात			आयात		
	1934–36	1953	1962	1934–36	1953	1962
कुल मूल्य (मिलियन डालर मे)	936	1,275	4 916	980	2 410	5 637
निर्भरता अनुपात (Dependency Ratio) राष्ट्रीय उत्पाद का %	20 0	6 7	9 2	20 5	12 7	8 8

द्वितीय महायुद्ध के बाद का विदेश व्यापार

उपर्युक्त तालिका यह स्पष्ट करती है कि विदेश व्यापार पर जापान की प्रतिशत निर्भरता द्वितीय महायुद्ध के बाद बराबर घटती जा रही है। युद्ध के तुरन्त बाद अर्थात् अमरीकी आधिपत्य के काल म जापान का विदेश व्यापार युद्ध पूर्व के मुकाबले बहुत नीचे स्तर पर था। उसकी औद्योगिक क्षमता तथा उसका जहाजी बेडा दोनो ही दूसरे महायुद्ध मे नष्ट हो चुके थे। इन तत्त्वों ने जापान की निर्यात क्षमता को भी एकदम सीमित कर दिया था। किन्तु 1950 के कोरियाई युद्ध ने स्थिति को वापस बदल दिया। इस युद्ध के कारण जापान भारी मात्रा मे विदेशी मुद्रा अर्जित करने की स्थिति मे पहुँच गया। 1951 मे जापान के निर्यात 1949 की तुलना मे 165% अधिक थे। आयातो मे भी वृद्धि हुई। विदेशी माँग के बढ जाने के कारण निर्यात की जाने वाली वस्तुओ के घरेलू मूल्य भी काफी चढ गए। इस आन्तरिक स्फीति ने पुन एक बार अस्थाई तौर पर उसके निर्यातो को सीमित कर दिया।

1953 के बाद निर्यात सवर्द्धन के लिए कुछ महत्त्वपूर्ण उपायो की घोषणा की गई—(1) आन्तरिक मूल्य स्तर को विश्व मूल्य स्तर के समकक्ष लाने के लिए

[1] *Ibid*, 377

एक मुद्रा सकुचन की नीति तैयार की गई। (2) आयात लाइसेन्स केवल उन्ही फर्मों को जारी किये गये जो निर्यात के लिए विनिर्मित वस्तुएँ बनाती थी। ये दोनो उपाय सफल रहे तथा 1955 तक जापान के निर्यात असाधारण रूप मे बढ गये। किन्तु अभी तक भी युद्ध-पूर्व का निर्यात स्तर प्राप्त नही किया जा सका था। इस बारे मे विलम्ब कई कारणो से हो रहा था। युद्ध के तुरन्त बाद जापान अपने अधिकाश समाधन देश के पुनर्निर्माण मे लगाने के लिए बाध्य हो गया था। अमरीकी आधिपत्य वाली सैनिक सरकार द्वारा किये गये भारी खर्च से देश मे स्फीति पैदा हो गई जिसने जापानी निर्यातो को अपेक्षाकृत महँगा बना दिया। जैबत्सु के उन्मूलन कर दिये जाने से भी जापान की व्यावसायिक क्षमता पर करारा आघात हुआ। रेशम के स्थान पर रेयन के उपयोग के बढ जाने से भी जापानी निर्यातों पर अत्यधिक विपरीत प्रभाव पडा।

किन्तु 1960 के बाद से निर्यातो मे जो वृद्धि शुरू हुई है वह निरन्तर जारी है। 1960 तक जापान के पूंजीगत वस्तुओ के निर्यात मे 70% की वृद्धि हुई थी। 1951 से 1961 के बीच जापान के निर्यात व आयात क्रमश 14 7% तथा 13 1% की वार्षिक दर से बढे। इस बीच उसका राष्ट्रीय उत्पाद 9 7% की दर से बढा।

जापानी आयातो व निर्यातो मे वृद्धि : 1956–1969

(इकाई : मिलियन डॉलर)

वर्ष	निर्यात	आयात
1956	2,501	3,229
1958	2,877	3,033
1960	4,055	4,491
1962	4,916	5,637
1969	15,990	15,024

जापान के वर्तमान विदेश व्यापार मे क्रेता एव विक्रेता के रूप मे सबसे पहला स्थान अमरीका का है। 1969 मे जापान के कुल निर्यातो का 31% अकेले अमरीका को भेजा गया। पिछले कुछ वर्षों मे जापान ने अनेक तटकर हटाकर अपने आयातो को भी अधिक उदार बनाया है।

1970 के बाद जापान के निर्यातो मे वृद्धि विस्मयकारी रही है। 1970 से 1979 के बीच इनमे 12 से 15% की वार्षिक (औसत) वृद्धि होती रही है। केवल 1973 व 1974 के वर्ष इस बारे मे अपवाद रहे है जब तेल मूल्यो की आकस्मिक वृद्धि ने जापानी आयात बिल मे भारी वृद्धि कर दी थी तथा उसके निर्यातो की लागत को भी काफी बढा दिया था। जापान द्वारा अमरीका को किये जाने वाले निर्यात तो 1970–79 के वर्षों मे इस तेजी से बढे हैं कि 3 अक्टूबर 1978 को अमरीकी सरकार ने एक चेतावनी जारी की कि यदि जापान ने अमरीका से अपने निर्यातो के बराबर वस्तुओ का आयात नही किया तो अमरीका जापान से आने वाली वस्तुओ पर प्रतिबन्ध लगा देगा।

बारहवाँ अध्याय

द्वितीय महायुद्ध के बाद असाधारण प्रगति
(EXPLOSIVE GROWTH AFTER SECOND WORLD WAR)

जापान के आधुनिकीकरण की प्रथम शताब्दी, जिस तरह वह शुरू हुई थी, अब व्यावहारिक ऊर्जा के विस्फोट के साथ समाप्त होती है " फिर एक बार, 1868 की ही तरह, जापानी नेता बाहरी विश्व की ओर टकटकी लगाये देख रहे है जहां उनके लिए भय भी है और भविष्य भी। पुन एक बार देश मे एक नवीन औद्योगिक क्रान्ति तीव्र हो रही है जिसमे निजी एव सार्वजनिक दोनो ही क्षेत्र सक्रिय हैं।[1]

असाधारण विकास दर (High Pitched Growth)

अमरीकी आधिपत्य के वर्षो मे जापान ने पराजय तथा बरबादी से निकलने के लिए पूरी चेष्टा की। जब 1952 मे मित्र-राष्ट्रो ने जापान पर अपना सैनिक अधिकार त्यागा तो जापानी अर्थव्यवस्था अपने युद्ध-पूर्व के स्तर पर पहुँच चुकी थी। उसके बाद से वह जिस गति से आगे बढ़ी है उसकी समानता तो युद्ध-पूर्व के वर्षों मे कही नही मिलती। 1951 से 1963 के बीच जापान का वास्तविक राष्ट्रीय उत्पाद तिगुना हो चुका था तथा उसमे 9% से अधिक वार्षिक वृद्धि हो रही थी। इस अवधि मे प्रति व्यक्ति आय भी 8% प्रति वर्ष के हिसाब से बढ रही थी।

जापान के आर्थिक विकास के निर्देशाक
(1934–36=100)

वर्ष	वास्तविक राष्ट्रीय आय	पिछले वर्ष पर % वृद्धि
1951	107	—
1952	118	9 8
1953	124	5 8
1954	129	2 8
1955	142	11 4
1956	156	9 7
1957	167	7 2
1958	176	5 0
1959	204	16 3
1960	236	15 6
1961	264	11 8
1962	286	8 5
1963	315	10 0

[1] W W Lockwood, *op cit*, 593

सर्वाधिक प्रगति विनिर्माण उद्योगो मे हुई। उनके उत्पादन का परिमाण 1951 मे 1963 के बीच चौगुना हो गया। सेवाओ का राष्ट्रीय आय मे 50% योगदान रहा। केवल कृषि व वन-सम्पदा का प्रतिशत घटा। ये दोनो किसी जमाने मे आधी राष्ट्रीय आय का स्रोत थे किन्तु अब वे घट कर 15% आय का स्रोत रह गये। 1951 से 1963 के बीच जापान ने असाधारण प्रगति की। अब जापान उन देशो की पंक्ति मे आ गया है जहाँ आम आदमी के लिए गरीबी समाप्त हो चुकी है। इस रूप मे अब उसकी औद्योगिक क्रान्ति वयस्क हो चली है।

जनसंख्या, समग्र राष्ट्रीय उत्पाद (G N P.) और प्रति व्यक्ति उत्पाद : 1973–1975

	1973	1974	1975
जनसख्या ('000)	7,95,920	8,09,251	8,22,800
राष्ट्रीय उत्पाद (G N P) (अमरीकी मिलियन डॉलर)	4,11,260	4,46,030	4,95,180
प्रति व्यक्ति उत्पाद (अमरीकी डॉलरो मे)	3,800	4,070	4,460

चुने हुए कुछ देशो की जनसख्या व प्रति व्यक्ति आय मे वार्षिक वृद्धि . 1965–1974

देश	जनसख्या वृद्धि (%)	प्रति व्यक्ति आय (%)
लाल चीन	1 7	—
भारत	2 3	3 2
जापान	1 2	8 5
सोवियत रूस	1 0	—
अमरीका	1 0	2 4
इंग्लैण्ड	0 4	2 2
फ्रास	0 8	4 8
प० जर्मनी	0 6	3 9

उपर्युक्त आँकडे अपनी बात स्वय बोलते है। जापान की प्रति व्यक्ति आय उसके समग्र राष्ट्रीय उत्पाद के साथ निरन्तर बढती जा रही है। उसकी 1 2% की वार्षिक जनसख्या वृद्धि दर काफी सन्तुलित एव नियन्त्रित है। राष्ट्रीय उत्पाद मे जापान की वृद्धि-दर ससार मे सर्वाधिक है। 1978 के एक अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन मे जापानी वित्त-मन्त्री ने कहा था कि वे 6% की वार्षिक वृद्धि दर को जापान मे बहुत नीची मानते हैं।

प्रमुख क्षेत्रों के प्रति व्यक्ति आय तथा कुल राष्ट्रीय उत्पाद : 1974

प्रदेश या देश	प्रति व्यक्ति आय (अमरीकी डॉलर में)	कुल राष्ट्रीय उत्पाद (G N P) (अमरीकी '000 मिलियन डॉलर)
उत्तरी अमरीका	6,630	1,553
ओशेनिया (Oceania)	4,110	88
जापान	4,070	446
यूरोप	3,580	1,629
सोवियत रूस	2,380	599
मध्य पूर्व	1,480	116
मध्य अमरीका	960	[illegible]
दक्षिणी अमरीका	950	198
अफ्रीका	370	148
एशिया	230	461

वैषम्य पुन स्पष्ट रूप मे देखा जा सकता है। अकेले जापान का समग्र राष्ट्रीय उत्पाद (G N P) सम्पूर्ण एशियाई देशो के राष्ट्रीय उत्पाद से भी अधिक है। इसी तरह उसकी प्रति व्यक्ति आय भी यूरोप के देशो से भी अधिक है।

चुने हुए देशो की प्रति व्यक्ति आय, : 1975

(अमरीकी डॉलरो मे)

लाल चीन	350
भारत	150
जापान	4 460
इजराइल	3,580
कुवैत	11,510
सोवियत रूस	2,620
प० जर्मनी	6,610
इंग्लैण्ड	3,840
फ्रास	5,760
स्वीडन	7,880
अमरीका	7,060
कनाडा	6,650
ब्राजील	1,010
आस्ट्रेलिया	5,640
इण्डोनेशिया	180

उपभोग मे क्रान्ति

स्वय जापानी अब उपभोग क्रान्ति के बारे मे बात करने लगे है। 1951 से 1963 के बीच जापान मे उपभोग दुगुना हो चुका था। 1979 मे जापान का उपभोग-स्तर 1951 के मुकाबले पाँच गुने से भी अधिक हो चुका है। उपभोग मे इस वृद्धि मे सभी वर्गों को लाभ मिला है। युद्ध के बाद श्रमिको की आय मे तेजी से वृद्धि हुई है। इससे श्रमिको का उपभोग-स्तर काफी सुधर चुका है। ग्रामीण क्षेत्रो मे भी उपभोग मे काफी सुधार आया है। इन घटनाओ ने जापान की 'दुमंजिली' (Double Decker) अर्थव्यवस्था मे आर्थिक असमानताओं को कम कर दिया है। सफेदपोश कर्मचारियो की तुलना मे किसानो व मजदूरो का प्रतिशत उपभोग अधिक तेजी से बढा है।

उपभोग की इस तेजी (consumption boom) के साथ उत्पादन के ढाँचे व तकनीक मे क्रान्तिकारी नवप्रवर्तन (innovations) भी हुए हैं। एक ओर 1955 के बाद से निरन्तर बढती हुई उत्पादकता के कारण अनेक नयी वस्तुएँ तथा सेवाएँ प्राप्त हो रही है तो दूसरी ओर उपभोग मे वृद्धि के कारण समग्र माँग मे होने वाली वृद्धि ने विनियोग स्तर को आगे बढाने मे सहायता की है। टिकाऊ उपभोक्ता वस्तुओ के उत्पादन मे हुई वृद्धि विशेष ध्यान देने योग्य है। कुल औद्योगिक उत्पादन मे हुई वृद्धि मे उनका भाग एक-तिहाई है। कृषि मे भी बाजार बढने के साथ कृषक लोग बडे पैमाने के तथा अधिकाधिक पूंजी-प्रधान उत्पादन तरीको को अपना रहे हैं।

उपभोग मे वृद्धि के कई सामाजिक एव मनोवैज्ञानिक प्रभाव भी पड़े है। बढती हुई आय तथा अधिक आर्थिक सुरक्षा के वातावरण से नई व्यावसायिक गतिशीलता एव भविष्य के प्रति विश्वास जगे है। प्रत्येक चार मे से तीन जापानी परिवार अब अपने आपको मध्यवर्गीय आय वाले परिवार मानते है।

औद्योगिक शक्ति

जापान अब एक समर्थ औद्योगिक महाशक्ति बन गया है। उसकी मजदूरी दरें तथा वास्तविक आमदनियाँ यूरोप के देशो से आगे निकल गई है। छोटे उत्पादको पर यह दबाव बढता जा रहा है कि या तो वे अपनी कार्यकुशलता बढाएँ या फिर व्यवसाय से निकल जाएँ। आज उसके विनिर्माण उद्योग इटली, फ्रास, इगलैण्ड या पश्चिमी जर्मनी विनिर्माण उद्योगो से अधिक उत्पादन कर रहे हैं। अब जापान के आगे केवल दो ही विशालकाय राष्ट्र—अमरीका व सोवियत संघ—रह गये हैं। अब जापान दुनिया की औद्योगिक महाशक्तियो मे तीसरे स्थान पर है।

विस्फोटात्मक प्रगति के प्रमुख कारण

(1) **राजनीतिक अवसर**—प्रमुख कारण राजनीति से सम्बन्ध रखता है जो अर्थशास्त्रियो द्वारा आमतौर पर बनाये गये विकास मॉडलो मे सम्मिलित नही होता। सर्वप्रथम, मित्र-राष्ट्रो के आधिपत्य (1945–52) के दौरान जापान मे एक उदार

एवं एकीकृत राजनीतिक सत्ता की स्थापना को प्रोत्साहन दिया गया। दूसरे, अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियो ने भी जापान के पुनरुद्धार मे सहायता की। विजयी मित्र-राष्ट्रो द्वारा युद्ध के बाद भारी मात्रा मे एव उदार आर्थिक सहायता ने जापान के पुर्ननिर्माण मे सहायता की। उसके बाद से ही आज तक जापान शान्ति-क्षेत्र बना रहा है तथा बिना शस्त्रार्थ पर व्यय किये वह अमरीकी सुरक्षा छाते के नीचे सुरक्षित है। इस पृष्ठभूमि मे जापान उस औद्योगिक विकास मे भागीदार बन पाया है जो द्वितीय महायुद्ध के बाद लगभग सभी औद्योगिक राष्ट्रो मे देखने मे आया है।

(2) *उत्पादकता एव मजदूरी मे वृद्धि—1935 से 1950 तक जापान का सम्पर्क आधुनिकतम औद्योगिक तकनीको से कटा रहा। परन्तु शान्ति एव व्यापार की पुनर्स्थापना के बाद उसने अपनी अर्थव्यवस्था के पुनर्निर्माण के लिए पुन पश्चिम से तकनीक का आयात किया। तकनीक उधार लेना जापानियो के लिए कोई नयी बात नही थी।* विदेशी कम्पनियो को जापानी कम्पनियो मे भागीदारी की अनुमति दी गयी जिसने जापानी उद्योगो की उत्पादक व प्रतिस्पर्द्धात्मक क्षमता मे पर्याप्त वृद्धि कर दी।

देश के भीतर भी औद्योगिक अनुसन्धान को बढावा दिया गया। 1955 के बाद अनुसन्धान पर किये जा रहे व्यावसायिक कम्पनियो के खर्च निरन्तर बढते जा रहे है। प्रमुख प्रतिष्ठानो मे तो ये खर्च अब अमरीकियो द्वारा किये जा रहे खर्च से कम नही हैं। इस तरह आर्थिक विकास की कुजी श्रम की उत्पादकता मे होने वाली निरन्तर वृद्धि मे ही निहित रही है। 1961 तक समाप्त हुए दशक मे उत्पादकता 7 5% वार्षिक से बढ रही थी। कृषि मे भी उत्पादकता वृद्धि के कारण लगभग आत्म-निर्भरता की स्थिति आ चुकी है। उत्पादकता मे इस वृद्धि के साथ ही औद्योगिक मजदूरी मे द्वितीय महायुद्ध के बाद बराबर वृद्धि हो रही है। 1979 मे जापान के उद्योगो पर 'शोषित उद्योग' (sweated industries) होने का आरोप नही लगाया जा सकता। रोजगार के क्षेत्र मे भी चहुँमुखी प्रगति हुई है। वास्तव में कुछ क्षेत्रो मे तो श्रमिको का अभाव देखने मे आ रहा है।

(3) **विनियोगो का ज्वार** (Tied of Investment)—*1951–55 के बीच कुल विनियोग राष्ट्रीय उत्पाद का 27 3% तथा 1956–60 मे वे 31 8% पहुँच गये थे। व्यापार को उदार बनाने तथा सरकार द्वारा आय दुगुनी करने की योजना से प्रोत्साहित होकर 1961–63 की अवधि मे तो विनियोग 40% के स्तर तक जा पहुँचे थे। 1953 से 1965 तक जापान मे कुल विनियोग दर का औसत* 32 1% रहा। यह विनियोग की दर ससार के किसी भी अन्य देश की तुलना मे अधिक ऊँची तथा जापान की अर्थव्यवस्था की असाधारण प्रगति का एक प्रमुख कारण रही। इसके अलावा शान्तिकालीन अर्थव्यवस्था मे विनियोग की इतनी ऊँची दर अद्वितीय ही कही जायेगी विशेष रूप से जहाँ अर्थव्यवस्था मे किसी प्रकार के दबाव काम मे न लिये जा रहे हो।

विनियोग की दर : 1953–65
कुल राष्ट्रीय उत्पाद का प्रतिशत

देश	कुल स्थिर विनियोग
बेल्जियम	18 3
कनाडा	23 4
फ्रांस	18 9
प० जर्मनी	23 3
इटली	21 1
जापान	28 3*
नेदरलैंड्स	23 4
स्वीडन	21 6
इंग्लैण्ड	15 7
अमरीका	17 9
सोवियत रूस	24 0

* इसमे माल तालिकाएँ (Inventories) सम्मिलित नही हैं।

जापानी विनियोग की एक अन्य प्रमुख विशेषता यह रही कि इसमे से बहुत कम भाग भवन-निर्माण पर लगाया गया। ऐसा प्रमुख रूप से जापानी मकानो के कम लागत पर निर्मित होने के कारण हुआ। इससे जापान को भारी बचत रही जब कि अन्य देश आवास पर इसी अवधि मे भारी रकमे खर्च कर रहे थे। इसके अलावा सिर्फ विनियोग दर ऊँची होने मात्र से पूंजी-निर्माण के आर्थिक विकास मे योगदान का पूरा अनुमान नही लगाया जा सकता। ऐसा इसलिए है कि इस प्रकार के विनियोग का एक भाग तो पुरानी मशीनो को बदलने मे लग जाता है तथा उससे नई मशीनो आदि मे कोई बढोत्तरी नही होती। पूंजी स्टॉक के अनुमान बड़े कठिन होते है। एक मोटे अनुमान से पता चलता है कि जापान मे पूंजी स्टॉक की वृद्धि अन्य देशो की तुलना मे बहुत अधिक तेज रही है। वह अमरीका से तीन गुना तथा सोवियत रूस से भी तीव्र रही है।

एक कारण[1] जिसकी वजह से जापान अपनी विनियोग दर को इतना बढा देने के बावजूद घटते हुए प्रतिफल के प्रभावो से बचा रह सका है उसमे अन्य देशो की तुलना मे रोजगार का अत्यधिक तेजी से बढना है। ऐसा विशेष रूप से गैर-कृषि क्षेत्र मे हुआ है। जब पूंजी स्टॉक को अतिरिक्त श्रमिको को उपकरण आदि उपलब्ध कराने के लिए बढाया जाता है तो उससे साधन अनुपात (factor proportions) नही बदलते। इसीलिये वहाँ घटते हुए प्रतिफल नही दिखाई दिये हैं।

(4) **सार्वजनिक एव निजी बचत का उच्च स्तर**—यह भी आश्चर्यजनक ही कहलायेगा कि अधिकाश विनियोग सार्वजनिक बचत द्वारा किये गये है। सालोसाल करो की दर घटाने के बावजूद सरकार के चालू खाते मे अतिरेक बढता रहा है। 1950 से 1960 के बीच कर प्राप्तियाँ तिगुनी हो चुकी थी। केवल इसी स्रोत से देश को 21% बचत प्राप्त हुई। बहुत सम्भव है कि करो मे इन कटौतियो ने ही

[1] A Maddison, *op cit*, 59

शायद यहाँ कर प्राप्तियों को बढ़ाया है।

सरकार की इस सक्रिय भूमिका के साथ-साथ नई पूँजी के स्रोत मुख्यत निजी रहे हैं। यहाँ तक कि विदेशी पूँजी की आवक भी कम ही रही है। बड़े प्रतिष्ठानों के उपकरणों में केवल 10% विदेशों से प्राप्त किये गये है। अमरीकी आधिपत्य के समाप्त होने के बाद से ही जापान ने अपने विकास के लिए वित्त की व्यवस्था स्वयं ही की है। पिछले कुछ वर्षों में व्यक्तिगत बचतों से कुल राष्ट्रीय बचतों का 40% प्राप्त होता रहा है। ये व्यक्तिगत बचतें 1956 में कुल निकृत्य आय का 14 6% थी जो 1962 तक बढ़कर 21 4% हो चुकी थी। यह वृद्धि उपभोग में हुई भारी बढ़ोत्तरी के बावजूद हुई है। विनियोग न्यास कई स्थानों पर गठित किये जा चुके हैं। बड़ी संख्या में परिवारों के पास कम्पनियों के शेयर हैं। लोगों के पास इस तरह शेयरों के बढ़ने को कुछ टीकाकारों ने 'नये जन-पूँजीवाद' का नाम दिया है। व्यावसायिक बैंकों ने भी सफलतापूर्वक बचत व साख का विनियोगों के लिए भारी मात्रा में गतिशीलन किया है।

(5) आय दोहरा करने (Doubling the income plan) की योजना—1960 में आर्थिक नियोजन एजेंसी ने एक दीर्घकालीन योजना बनायी जिसका उद्देश्य 1960–70 के दशक में 7 2% की विकास दर प्राप्त करना था। आय दुगुना करने की यह योजना न केवल सफल हुई बल्कि इस योजना की सफलता ने भावी आय-वृद्धियों का भी रास्ता आसान बना दिया। यदि अब 1985 तक जापान का कुल राष्ट्रीय उत्पाद (G N P) सोवियत रूस के मुकाबले अधिक हो जाये तो आश्चर्य नहीं होगा।

सतत आर्थिक विकास सार्वजनिक नीति के कई क्षेत्रों में किये गये उपायों पर निर्भर करता है। इनमें पहला स्थान विदेश व्यापार के अवसरों में वृद्धि का तथा दूसरा घरेलू औद्योगिक प्रतिष्ठानों की क्षमता बढ़ाने का है। ये दोनों एक दूसरे के साथ क्रिया-प्रतिक्रिया करते हैं तथा एक तीसरे तत्त्व पर निर्भर करते हैं और वह तत्त्व है राजनीतिक स्थायित्व।

(6) विदेश व्यापार—जापान की युद्धोत्तरकालीन प्रगति में अन्तर्राष्ट्रीय बाजारों में उसका पुन प्रवेश, वह भी पूरी तरह बरबाद हो चुकने के दस वर्षों से भी कम समय में, प्रमुख तत्त्व रहा है। 1951 से 1963 तक जापान के निर्यात विश्व निर्यातों की तुलना में तीन गुना अधिक तेजी से बढ़े।

तुलनात्मक निर्यात उपलब्धियाँ

(वार्षिक चक्रवृद्धि प्रतिशत दरें)

जापान	17 1
इटली	13 9
प० जर्मनी	11 7
सोवियत रूस	8 9
इंग्लैण्ड	5 2
अमरीका	4 7

यह भी आश्चर्य की बात है कि जापान की विदेशी कच्चे माल पर निर्भरता मे भारी कमी आ रही है जबकि उसके उद्योग वर्तमान मे युद्ध-पूर्व की तुलना मे कई गुना उत्पादन कर रहे हैं। पहले जो बहुत सारी चीजे आवश्यक थी उन्हे औद्योगिक सश्लिष्टो (synthetics) ने प्रतिस्थापित कर दिया है। औद्योगिक कच्चे माल मे जापान का आयात अनुपात अभी भी अन्य यूरोप के देशो से ऊँचा है किन्तु इसकी क्षति-पूर्ति खाद्य पदार्थो, मशीनो तथा अन्य उपभोक्ता वस्तुओ के कम जापानी आयात अनुपात से हो जाती है। जहाँ तक राष्ट्रीय उत्पाद के सन्दर्भ मे कुल आयातो का प्रश्न है वे 1936 मे 24 3% तक पहुँच चुके थे। 1962 मे वे 12 2% पर आ गये थे। 1979 मे ये आयात 10% के इर्द-गिर्द है।

अब जबकि जापान अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (I M F) तथा ओ०ई०सी०डी० जैसे सगठनो का सदस्य है उसके लिए युद्ध-पूर्व के वर्षों की तरह व्यापार एव विनिमय नियन्त्रणो को लागू कर पाना सम्भव नही रह गया है। इन नई 'खुले दरवाजे' वाली नीति से वैसी ही कुछ समस्याएँ उत्पन्न हो गई हैं जैसी कुछ अन्य यूरोपीय देशो को हो रही है। किन्तु जापान की तीव्र विकास दर तथा अपेक्षाकृत स्थिर मूल्य अर्थव्यवस्था के कारण वह अपनी चाले ठीक से चल सकने की स्थिति मे है।

जापान को कई बार भुगतान सन्तुलन मे घाटो का सामना करना पडा है परन्तु हर बार मौद्रिक प्रतिबन्धो से उसने वापस सन्तुलन स्थापित करने मे सफलता प्राप्त की है। जापान को दीर्घकालिक घाटो या अतिरेको की समस्या का कभी सामना नही करना पडा (1974–75 इसमे अपवाद वर्ष रहे है)। सुधारो की तीव्र गति तथा मूल्य मजदूरी ढाँचे द्वारा तेजी से समायोजन सम्भव बनाने से विशेष कठिनाइयाँ नही आयी हैं। जापान ने अपने भुगतान घाटो को पूरा करने के लिए समय-समय पर अमरीका तथा यूरोप से ऋण लिये है। उसने मुद्रा कोष तथा विश्व बैंक से भी उधार लिया है। 1945 से 1964 के बीच जापान को अमरीका से 1 अरब डॉलर मूल्य की सहायता मिली। जापानी सरकार ने देश मे प्रत्यक्ष विदेशी पूँजी विनियोग पर जानबूझ कर प्रतिबन्ध लगा रखे है। किन्तु उसने विदेशो मे प्रत्यक्ष जापानी पूँजी विनियोग पुन आरम्भ कर दिये है तथा जापानी सरकार विकासोन्मुख देशो को पूँजी उपलब्ध कराने मे सक्रिय भूमिका निभा रही है।

(7) **अनुसन्धान एव विकास**—जापान ने तकनीकी क्रान्ति के लिए महान् प्रयास किये है। 1964 मे भी राष्ट्रीय उत्पाद का 1 4% भाग अनुसन्धान एव विकास पर खर्च किया गया। 1979 मे यह खर्च 2% के लगभग है। निरपेक्ष रूप मे जापान के शोध प्रयास अमरीका व रूस के बाद तीसरे स्थान पर आते हैं। रेडियो, टेलीविजन, मिनी मोटर साइकिलें, कैमरे, जहाज-निर्माण आदि के क्षेत्र मे जापानी अनुसन्धान का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है।

अधिकाश जापानी औद्योगिक प्रतिष्ठानो मे बडी शोध इकाइयाँ है। कुछ तो उनमे से यूरोपीय देशो की शोध इकाइयो से काफी बडी है। बैंक ऑफ जापान तथा आर्थिक नियोजन एजेन्सी दोनो ही मे अर्थशास्त्रियो की भरमार है। इसका परिणाम यह है कि आर्थिक निर्णय, यूरोप के देशो की तुलना मे, कही अधिक आँकडो व

निश्चित जानकारियो पर आधारित होते हैं।

विज्ञान एव तकनीक के लिए स्थापित जापानी सूचना केन्द्र प्रति वर्ष लाखो वैज्ञानिक शोध पत्रो का जापानी भाषा मे अनुवाद करता है। जापानी अधिकारी व व्यापारी बराबर विदेशो मे आते-जाते रहते है ताकि वे नये विचार सीख सकें। तकनीक के आयात पर काफी धन खर्च किया जाता है। और यह प्रक्रिया सरकार के नियन्त्रण मे है। तकनीक के आयात पर किये गये समझौतो की सरकार बारीकी से जाँच करती है।

(8) सरकारी नीति—सरकारी नीतियो से भी आर्थिक विकास की गति को बल मिला है। सरकार ने औद्योगिक प्रसार तथा निर्यात सवर्द्धन के लिए सारे वित्तीय एव सस्थागत ढाँचे को फिर से तैयार किया है। सरकार ने विनियोग के लिए विशाल ससाधन उपलब्ध कराये हैं तथा अनुसन्धान एव विकास पर मोटी रकमे खर्च की हैं। सरकार ने अपने आप को अनावश्यक हस्तक्षेप से भी दूर रखा है तथा उसने व्यवसाय व उद्योगो को काफी स्वतन्त्र ही रहने दिया है।

(9) स्वतन्त्र उपक्रम—नव-प्रवर्तन तथा विकास की कसौटी पर जापानी व्यावसायिक प्रणाली अब तक खरी उतरी है। हालाकि उससे पहला लाभ पूँजीपति को मिलता है किन्तु वह श्रमिकों व उपभोक्ताओ को भी लाभ पहुँचाती है।

जापान के नये पूँजीवाद का भविष्य वहाँ पर ससदीय लोकतन्त्र की प्रणाली के सफलतापूर्वक चलने पर निर्भर करता है। पूँजीवाद पर आधारित औद्योगीकरण तथा स्वतन्त्र उपक्रम एक दूसरे के अभिन्न अग हैं। आज जापान मे मजबूत और परिपक्व ससदीय सरकार है। तथा स्वतन्त्र उपक्रम के प्रति सरकार की प्रतिबद्धता ने न केवल जैबत्सु को पुनर्जीवित कर दिया है वरन् उसने ऐसी कई विशाल स्वायत्त शासी इकाइयो को पनपाया है जो जापानी अर्थव्यवस्था के तीव्र विकास मे योग दे रही हैं।

(10) असीमित श्रम पूर्ति—औद्योगिक विकास के लिये जापान के पास अक्षरश असीमित मात्रा मे श्रम उपलब्ध था। किन्तु फिर भी रोजगार मे जनसख्या के मुकाबले अधिक तेजी से वृद्धि हुई है। 1979 मे जापान की जनसख्या वृद्धि दर तो मात्र 1% के आस-पास आ चुकी है। भीड भरे कृषि क्षेत्र से श्रमिको का भारी विवर्तन (shift) हुआ है। केवल 1953 से 1965 के बीच के 12 वर्षों मे कृषि क्षेत्र मे श्रमिको की सख्या मे 4 6 मिलियन की कमी आयी। यह श्रम की पूर्ति मे एक अतिरिक्त योगदान था। इस तत्त्व ने ही गैर कृषि रोजगार को 3 8% की वार्षिक दर से बढा पाना सम्भव बनाया, वह भी ऐसे देश मे जहाँ जनसख्या 1% वार्षिक से ही बढ रही हो। यह वृद्धि दर भी (रोजगार मे) दुनिया के किसी भी औद्योगिक देश की तुलना मे अधिक तीव्र रही है।

उद्योगो के भीतर भी कम उत्पादकता से अधिक उत्पादकता वाले क्षेत्रो मे रोजगार का स्थानान्तरण हुआ है। 1950 के आरम्भ मे करीब 25% श्रम शक्ति 1 से 9 श्रमिको वाले ऐसे प्रतिष्ठानो म लगी थी जिनकी उत्पादकता बहुत नीची थी। 1963 तक यह प्रतिशत घटकर 16 रह गया था। 1979 मे यह लगभग समाप्त

हो चुका है, अर्थात् कम उत्पादकता वाले उद्योगो का उन्मूलन हो गया है ।

श्रम की पूर्ति लोचदार होने की वजह से जापान के मजदूरी स्तर मे हुई समग्र वृद्धि उसके वहाँ हुई उत्पादकता वृद्धि के मुकाबले कम रही। इससे लागतें कम रहीं, विशेष रूप से अवसाद के समयों मे। यही कारण था कि 1653 से लेकर 1979 तक भी अन्तर्राष्ट्रीय बाजारो मे जापानी वस्तुओ की प्रतिस्पर्द्धाशीलता ज्यो की त्यो बनी रही है। अन्य देशो की तुलना मे उसके निर्यातो मे अधिक तेजी से वृद्धि होने का एक कारण यह भी रहा है।

यह जापान का सौभाग्य है कि उसके पास प्रशिक्षित जनशक्ति का अपार भण्डार है। पेचीदा उद्योगो, विदेश व्यापार तथा जहाजी सेवाओ के क्षेत्र मे उसके पास अनुभव का खजाना है। इतना ही नहीं, जापान का शिक्षा के क्षेत्र में प्रयास कई यूरोप के देशो की तुलना मे अधिक विशाल रहा। युद्धोत्तर काल मे उच्च शिक्षा के क्षेत्र मे भारी प्रसार हुआ है। युद्ध-पूर्व की तुलना मे जापान में इन्जीनियरो की सख्या 1979 तक कई गुना हो चुकी है।

(11) **निम्न उपभोग स्तर**—जापानी लोगो मे उपभोग पर नियन्त्रण लगा सकने की एक असाधारण क्षमता है। यह पहले भी लिखा जा चुका है कि मेजी युग के बाद से ही सरकार द्वारा तथा विनियोग हेतु सौंपे जाने वाले समाधनो का कुल राष्ट्रीय आय मे भाग बढता ही गया है तथा एक बार तो वह 40% की ऊँचाई तक पहुँचा है। युद्धोत्तर काल मे जबकि सैनिक व्यय लगभग नही के बराबर हुआ है, सरकारी उपभोग अन्य देशो की तुलना मे काफी नीचा रहा है। अधिकाश ऋण-भार मुद्रा स्फीति के कारण हल्का हो गया था तथा सरकार के अन्य हस्तान्तरण व्यय भी यूरोपीय देशो की तुलना म नीचे रहे। प्रति व्यक्ति जापानी खाद्य उपभोग व्यय इतना कम है कि 1965 मे वह मात्र 68 डॉलर था जबकि उस समय अमरीका मे यह व्यय 134 डॉलर था। सरक्षणवादी नीतियो तथा खाद्य पदार्थों के ऊँचे मूल्यो ने भी जापानी खाद्य उपभोग को न्यूनतम सम्भव स्तर पर रखा है।

इस तरह युद्धोत्तर काल मे जापान के तीव्र आर्थिक विकास को प्रभावित करने मे इन तत्त्वो का विशेष महत्त्व माना जा सकता है[1]—

(i) पुनरुद्धार का तत्त्व।

(ii) बहुत विशाल साधन प्रयाएँ (factor inputs)। गैर-कृषि रोजगार मे 3 8% तथा पूँजी स्टॉक मे 12 1% की उच्च दर से वृद्धि हुई। जर्मनी, जोकि राष्ट्रीय उत्पाद में वृद्धि के हिसाब से दूसरे स्थान पर रहा, मे ये वृद्धि दरें क्रमश 2 5 व 8 5 प्रतिशत रहीं।

(iii) कम उत्पादकता वाले उद्योगो से अधिक उत्पादकता वाले क्षेत्रो मे साधनो के हस्तान्तरण करने की असाधारण क्षमता।

(iv) कौशल तथा प्रशिक्षित जनशक्ति की असाधारण पूर्ति।

(v) सैनिक व्यय के माध्यम से होने वाले आर्थिक अपव्यय का पूर्ण अभाव।

विकासोन्मुख देशो को जो तीव्र आर्थिक विकास चाहते है, वे अधिकाश बातें

[1] *Ibid*, 63

सीखनी व करनी होगी जिन्हे जापान ने किया है। उन्हे उच्च पूंजी-निर्माण की दर पर जल्दी से जल्दी अपना ध्यान केन्द्रित करना होगा। उन्हे जनसख्या पर नियन्त्रण लगाने के अधिक कडे उपाय करने होगे तथा विकसित देशो का अधिक सक्रिय सहयोग प्राप्त करना होगा।

जोसफ स्टालिन[1] ने भविष्यवाणी की थी कि द्वितीय महायुद्ध के बाद जापान के तीव्र विकास का विजयी पूँजीवादी प्रतिद्वन्द्वी देश सहन नही करेंगे। 1952 के बाद का रिकॉर्ड इस भविष्यवाणी को नकारते हुए भविष्य के प्रति आशाएँ उत्पन्न करता है। यह एक भूतपूर्व जापानी प्रधानमन्त्री के उस स्वप्न को साकार रूप प्रदान करता है जिसमे उन्होने जापान को उत्तरी अमरीका व पश्चिमी यूरोप के साथ खडा करके 'स्वतन्त्र विश्व के तीन स्तम्भ' बनाने की कल्पना की थी।

[1] W. W. Lockwood, *op cit*, 668